ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

तस्य खिलभागो हरिवंशः

(तत्र भविष्यपर्व)

प्रथमोऽध्यायः

जनमेजयकी संतति एवं पौरव तथा पाण्डववंशकी प्रतिष्ठाका वर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

शौनक उवाच

जनमेजयस्य के पुत्राः पठ्यन्ते लौमहर्षणे।
कस्मिन् प्रतिष्ठितो वंशः पाण्डवानां महात्मनाम्॥ १
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे।
त्वत्तः कथयतः सर्वं वेद्म्यहं तत् परिस्फुटम्॥ २

सौतिरुवाच

पारीक्षितस्य काश्यायां द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः।
चन्द्रापीडश्च नृपतिः सूर्यापीडश्च मोक्षवित्॥ ३
चन्द्रापीडस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्।
जनमेजय इत्येवं क्षात्रं भुवि परिश्रुतम्॥ ४
तेषां श्रेष्ठस्तु राजासीत् पुरे वारणसाह्वये।
सत्यकर्णो महाबाहुर्यज्वा विपुलदक्षिणः॥ ५
सत्यकर्णस्य दायादः श्वेतकर्णः प्रतापवान्।
अपुत्रः स तु धर्मात्मा प्रविवेश तपोवनम्॥ ६
तस्माद् वनगताद् गर्भं यादवी प्रत्यपद्यत।
सुचारोर्दुहिता सुभ्रूर्मानिनी भ्रातृमालिनी॥ ७

बदरिकाश्रमनिवासी प्रसिद्ध ऋषि श्रीनारायण (अथवा अन्तर्यामी नारायण), नर (नारायणसखा अर्जुन अथवा आदिजीव हिरण्यगर्भ) तथा नरोत्तम (इन हिरण्यगर्भ एवं अन्तर्यामीसे भी श्रेष्ठ शुद्ध सच्चिदानन्दघन पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण)-को और (इन नरनारायण तथा नरोत्तमके तत्त्वको प्रकट करनेवाली) देवी सरस्वतीको एवं (देवी सरस्वतीने संसारपर अनुग्रह करनेके लिये जिनके शरीरमें प्रवेश किया है, उन) व्यासजीको प्रणाम करके अविद्यारूपी अज्ञानान्धकारको जीतनेवाले इतिहास-पुराण आदि ग्रन्थोंका पाठ आरम्भ करे॥

शौनकजीने पूछा—लोमहर्षणकुमार! जनमेजयके पुत्र कौन और कितने कहे जाते हैं? महात्मा पाण्डवोंका वंश किसपर प्रतिष्ठित हुआ?॥ १॥ मैं इसे सुनना चाहता हूँ, इसके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है। आपके बतानेसे मैं इन सब बातोंको स्पष्टरूपसे जान लूँगा॥ २॥

सौतिने कहा—शौनकजी! परीक्षित्कुमार जनमेजयकी पत्नी काशिराजकन्या वपुष्टमाके गर्भसे दो पुत्र हुए। उनमेंसे एक थे चन्द्रापीड, जो राजा हुए और दूसरेका नाम था सूर्यापीड, जो मोक्षधर्मके ज्ञाता थे॥ ३॥ चन्द्रापीडके सौ पुत्र हुए, जो उत्तम धनुर्धर थे। क्षत्रियोंका वह समुदाय जनमेजय (अथवा जानमेजय)-के नामसे भूमण्डलमें विख्यात हुआ॥ ४॥ उनमें सबसे बड़ा महाबाहु सत्यकर्ण था, जो हस्तिनापुरमें राजा हुआ। वह यज्ञ करनेवाला और उन यज्ञोंमें प्रचुर दक्षिणा देनेवाला था॥ ५॥ सत्यकर्णका पुत्र प्रतापी श्वेतकर्ण था, वह धर्मात्मा राजा श्वेतकर्ण पुत्रहीन होनेके कारण तपोवनमें चला गया॥ ६॥ वनमें जानेपर उनसे उनकी पत्नी मानिनीने, जो यदुकुलकी कन्या, सुचारुकी पुत्री, सुन्दर भौंहोंवाली तथा अनेक भ्राताओंकी बहिन थी, गर्भ धारण किया॥ ७॥

स तु जन्मनि गर्भस्य श्वेतकर्णः प्रजेश्वरः।
अन्वगच्छद् गतं पूर्वैर्महाप्रस्थानमच्युतम्॥ ८

सा दृष्ट्वा सम्प्रयातं तं मानिनी पृष्ठतोऽन्वयात्।
पथि सा सुषुवे सुभ्रूर्वने राजीवलोचनम्॥ ९

कुमारं तं परित्यज्य भर्तारं चान्वगच्छत।
पतिव्रता महाभागा द्रौपदीव पुरा पतीन्॥ १०

स तु राजकुमारोऽसौ गिरिकुञ्जे रुरोद ह।
छायार्थं तस्य मेघास्तु प्रादुरासन् समन्ततः॥ ११

श्रविष्ठायाश्च पुत्रौ द्वौ पिप्पलादश्च कौशिकः।
दृष्ट्वा कृपान्वितौ गृह्य तं प्राक्षालयतां जलैः।
निघृष्टौ तस्य तौ पार्श्वौ शिलायां रुधिरप्लुतौ॥ १२

अजश्यामौ तु पार्श्वौ तावुभावपि समाहितौ।
तथैव तु समारूढौ अजपार्श्वस्ततोऽभवत्॥ १३

ततोऽजपार्श्व इति तौ चक्राते तस्य नाम ह।
स तु वेमकशालायां द्विजाभ्यामभिवर्धितः॥ १४

वेमकस्य तु भार्या तमुद्वहत् पुत्रकारणात्।
वेमक्याः स तु पुत्रोऽभूद् ब्राह्मणौ सचिवौ च तौ॥ १५

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत् तुल्यजीविनः।
स एष पौरवो वंशः पाण्डवानां प्रतिष्ठितः॥ १६

श्लोकोऽपि चात्र गीतोऽयं नाहुषेण ययातिना।
जरासंक्रमणे पूर्वं भृशं प्रीतेन धीमता॥ १७

अचन्द्रार्कग्रहा भूमिर्भवेदपि न संशयः।
अपौरवा न तु मही भविष्यति कदाचन॥ १८

उस गर्भके जन्मकालमें राजा श्वेतकर्णने उस अच्युत महाप्रस्थानकी यात्रा की, जहाँ उनके पूर्वज पाण्डव जा चुके थे॥ ८॥ उन्हें जाते देख मानिनी भी गर्भिणी अवस्थामें ही उनके पीछे-पीछे चल दी। उस सुन्दर भौंहोंवाली रानीने मार्गमें ही एक वनके भीतर बालकको जन्म दिया, जिसके नेत्र कमलके समान सुन्दर थे॥ ९॥ जैसे पूर्वकालमें पतिव्रता महाभागा द्रौपदीने सब कुछ छोड़कर महाप्रस्थानके पथपर पाँचों पतियोंका अनुसरण किया था, उसी प्रकार मानिनी उस नवजात शिशुको छोड़कर पतिके पीछे चली गयी॥ १०॥ वह राजकुमार पर्वतके कुञ्जमें पड़ा-पड़ा रोने लगा। उस समय उसपर छाया करनेके लिये चारों ओर मेघ प्रकट हो गये॥ ११॥ श्रविष्ठाके दो पुत्र पिप्पलाद और कौशिकने उसे देखकर दयासे द्रवित हो उठा लिया और जलसे नहलाया। उस समय उस बालकके दोनों पार्श्वभाग पत्थरपर घिस जानेसे लहूलुहान हो रहे थे॥ १२॥ उस बालकके वे दोनों पार्श्व बकरेके समान काले हो गये थे और उसी रूपमें वे हृष्ट-पुष्ट हो गये, इसलिये वह बालक अजपार्श्व नामसे विख्यात हुआ॥ १३॥ इसीलिये पिप्पलाद और कौशिकने उसका नाम अजपार्श्व रखा और वेमकमुनिके घरमें उन दोनों ब्राह्मणोंने उसका पालन-पोषण किया॥ १४॥ वेमककी पत्नी वेमकीने पुत्रके लिये उस बालकका विवाह कर दिया। वह बालक तथा उसके सहायक वे दोनों ब्राह्मण वेमकीके पुत्ररूपमें प्रसिद्ध हुए॥ १५॥ उन तीनोंके पुत्र और पौत्र एक ही कालमें हुए और समान कालतक जीवित रहे, इस प्रकार यह पौरव तथा पाण्डववंश भूतलमें प्रतिष्ठित हुआ॥ १६॥ पूर्वकालमें पुरुके शरीरमें अपनी वृद्धावस्थाका संचार करते समय अत्यन्त प्रसन्न हुए बुद्धिमान् नहुषकुमार ययातिने इस पौरववंशके विषयमें यह श्लोक भी गाया था— ॥ १७॥ 'यह सम्भव है कि कभी भूमि चन्द्रमा, सूर्य और ग्रहोंके प्रकाश एवं प्रभावसे रहित हो जाय, परंतु वह पौरववंशसे शून्य कभी नहीं होगी; इसमें संशय नहीं है'॥ १८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पाण्डववंशप्रतिष्ठाकीर्तने प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पाण्डववंशकी प्रतिष्ठाका कथनविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

द्वितीयोऽध्यायः

राजा जनमेजयका अश्वमेध यज्ञ करनेका विचार, व्यासजीका आगमन और राजाद्वारा उनका सत्कार, आपने पाण्डवोंको राजसूय यज्ञ करनेसे क्यों नहीं रोका—यह जनमेजयका प्रश्न और उसके उत्तरमें व्यासजीद्वारा कालकी प्रबलताका प्रतिपादन

शौनक उवाच

उक्तोऽयं हरिवंशस्ते पर्वाणि निखिलानि च।
यथा पुरोक्तानि तथा व्यासशिष्येण धीमता॥ १

तत् कथ्यमानममितमितिहाससमन्वितम्।
प्रीणात्यस्मानमृतवत् सर्वपापविनाशनम्॥ २

सुखश्राव्यतया धीर मनो ह्लादयतीव नः।
जनमेजयस्तु नृपतिः श्रुत्वा चाख्यानमुत्तमम्।
सौते किमकरोत् पश्चात् सर्पसत्रादनन्तरम्॥ ३

सौतिरुवाच

जनमेजयस्तु स नृपः श्रुत्वा चाख्यानमुत्तमम्।
यदारभत् तदाख्यास्ये सर्पसत्रादनन्तरम्॥ ४
तस्मिन् सत्रे समाप्तेऽथ राजा पारीक्षितस्तदा।
यष्टुं स वाजिमेधेन सम्भारानुपचक्रमे॥ ५
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यानाहूयेदमुवाच ह।
यक्ष्येऽहं वाजिमेधेन हय उत्सृज्यतामिति॥ ६
ततोऽस्य विज्ञाय चिकीर्षितं तदा
कृष्णो महात्मा सहसाऽऽजगाम।
पारीक्षितं द्रष्टुमदीनसत्त्वं
द्वैपायनः सर्वपरावरज्ञः॥ ७
पारीक्षितस्तु नृपतिर्दृष्ट्वा तमृषिमागतम्।
अर्घ्यपाद्यासनं दत्त्वा पूजयामास शास्त्रतः॥ ८
तौ चोपविष्टावभितः सदस्यास्तस्य शौनक।
कथा बहुविधाश्चित्राश्चक्राते वेदसंहिताः॥ ९
ततः कथान्ते नृपतिर्नोदयामास तं मुनिम्।
पितामहं पाण्डवानामात्मनः प्रपितामहम्॥ १०
महाभारतमाख्यानं बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम्।
निमेषमात्रमपि मे सुखश्राव्यतया गतम्॥ ११

शौनकने पूछा—सूतनन्दन! पूर्वकालमें व्यासजीके बुद्धिमान् शिष्य वैशम्पायनजीने जैसा वर्णन किया था, उसके अनुसार आपने यह हरिवंश और इसके सारे पर्व कह सुनाये॥ १॥ आपके मुखसे कहा जाता हुआ यह अनुपम ग्रन्थ, जो इतिहाससे युक्त और समस्त पापोंका नाश करनेवाला है, हमलोगोंको अमृतके समान तृप्ति प्रदान करता है॥ २॥ धीर सूतकुमार! सुखपूर्वक सुनने-सुनानेके योग्य होनेके कारण यह कथा हमारे मनको परम आह्लाद प्रदान करती है। इस उत्तम आख्यानको सुनकर राजा जनमेजयने सर्पसत्रके पश्चात् कौन-सा कार्य किया?॥ ३॥

सूतपुत्र उग्रश्रवाने कहा— शौनकजी! यह उत्तम कथा सुनकर राजा जनमेजयने सर्पसत्रके पश्चात् जो कार्य आरम्भ किया, उसका वर्णन करता हूँ॥ ४॥ सर्पसत्र समाप्त होनेपर राजा जनमेजयने अश्वमेध यज्ञ करनेके लिये आवश्यक सामग्री जुटानी आरम्भ की॥ ५॥ फिर उन्होंने ऋत्विक्, पुरोहित और आचार्यको बुलाकर इस प्रकार कहा—'मैं अश्वमेध यज्ञ करूँगा, आपलोग अश्व छोड़िये'॥ ६॥ जनमेजय क्या करना चाहते हैं, इस बातको जानकर उस समय सबके भूत और भविष्यको जाननेवाले महात्मा श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास, उदारचेता परीक्षित्‌कुमार जनमेजयसे मिलनेके लिये सहसा वहाँ आये॥ ७॥ उन महर्षिको आया देख राजा जनमेजयने अर्घ्य, पाद्य और आसन देकर शास्त्रविधिके अनुसार उनका पूजन किया॥ ८॥ शौनक! फिर वे दोनों यथायोग्य आसनोंपर बैठे। उनके आस-पास राजाके दूसरे सदस्य भी बैठ गये। तत्पश्चात् उन दोनोंने नाना प्रकारकी विचित्र कथाएँ एक-दूसरेके प्रति कहीं, जो वेदोंमें वर्णित हैं॥ ९॥ कथा-वार्ताके अन्तमें राजा जनमेजयने पाण्डवोंके पितामह और अपने प्रपितामह मुनिवर व्याससे कहा— ॥ १०॥ 'महर्षे! महाभारत नामक इतिहास अनेक अर्थोंसे भरा हुआ है; इसमें श्रुतियोंके अर्थका विस्तार है, फिर भी यह सुनने-सुनानेमें इतना सुखद है कि मेरा कई दिनोंका समय एक निमेषके समान बीत गया है॥ ११॥'

विभूतिविस्तारकरं सर्वेषां वै यशस्करम्।
त्वया सुविहितं ब्रह्मन् शङ्खे क्षीरमिवाहितम्॥ १२

अमृतेन न तृप्तिः स्याद् यथा स्वर्गसुखेन च।
तथा तृप्तिं न गच्छामि श्रुत्वेमां भारतीं कथाम्॥ १३

अनुमान्य तु सर्वज्ञं पृच्छामि भगवन्नहम्।
हेतुः कुरूणां नाशस्य राजसूयो मतो मम॥ १४

दुःसहानां यथा ध्वंसो राजन्यानामुपप्लवे।
राजसूयं तथा मन्ये युद्धार्थमुपकल्पितम्॥ १५

राजसूयस्तु सोमेन श्रूयते पूर्वमाहृतः।
तस्यान्ते सुमहद् युद्धमभवत् तारकामयम्॥ १६

आहृतो वरुणेनाथ तस्यान्ते सुमहाक्रतोः।
देवासुरं महायुद्धं सर्वभूतक्षयावहम्॥ १७

हरिश्चन्द्रश्च राजर्षिः क्रतुमेनमुपाहरत्।
तत्राप्याडीबकं नाम युद्धं क्षत्रियनाशनम्॥ १८

ततोऽनन्तरमार्येण पाण्डवेनातिदुस्तरः।
महाभारत आरम्भः सम्भृतोऽग्निरिव क्रतुः॥ १९

तदस्य मूलं युद्धस्य लोकक्षयकरस्य तु।
राजसूयो महायज्ञः किमर्थं न निवारितः॥ २०

राजसूयो ह्यसंहार्यो यज्ञाङ्गैश्च दुरत्ययैः।
मिथ्या प्रणीते यज्ञाङ्गे प्रजानां संक्षयो ध्रुवः॥ २१

भवानपि च सर्वेषां पूर्वेषां नः पितामहः।
अतीतानागतज्ञश्च नाथश्चादिकरश्च नः॥ २२

ते कथं भवता नेत्रा बुद्धिमन्तश्च्युता नयात्।
अनाथा ह्यपराध्यन्ते कुनेतारश्च मानवाः॥ २३

'ब्रह्मन्! यह इतिहास सबके लिये ऐश्वर्यका विस्तार करनेवाला और यशस्कर है, आपने इसकी इतनी सुन्दर रचना की है, मानो क्षीरसमुद्रको शङ्खमें भर दिया हो॥ १२॥ 'जैसे अमृत पीनेसे तृप्ति नहीं होती तथा जैसे स्वर्गीय सुखसे जी नहीं भरता है, उसी प्रकार इस भारती कथाको सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है (अधिकाधिक सुननेकी इच्छा बढ़ रही है)॥ १३॥ भगवन्! आप सर्वज्ञ हैं, मैं आपकी अनुमति लेकर कुछ पूछ रहा हूँ, मुझे ऐसा मालूम होता है कि राजसूय यज्ञ ही कौरवोंके विनाशका कारण हुआ है॥ १४॥ महाभारतयुद्धमें जिस प्रकार दुःसह (अजेय) राजाओंका विनाश हुआ है, उसे देखते हुए मैं यही मानता हूँ, राजसूयकी कल्पना युद्धके लिये ही हुई है॥ १५॥ सुना जाता है कि पूर्वकालमें सोमने राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया था, उनके उस यज्ञके अन्तमें तारकामय नामक महान् युद्ध हुआ था॥ १६॥ तदनन्तर वरुणने वह यज्ञ किया, उनके उस महायज्ञके अन्तमें देवताओं और असुरोंके बीच बड़ा भारी संग्राम हुआ, जो सम्पूर्ण भूतोंका विनाश करनेवाला था॥ १७॥ इसके बाद राजर्षि हरिश्चन्द्रने इस यज्ञका अनुष्ठान किया, उनके यज्ञके अन्तमें आडीबक नामक महान् युद्ध हुआ, जो क्षत्रियोंका विनाश करनेवाला था॥ १८॥ उसके बाद श्रेष्ठ पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरने उस अत्यन्त दुस्तर और अग्निके समान भयंकर यज्ञका आयोजन किया, जिसका आरम्भ महाभारत-युद्धको उपस्थित करनेमें कारण हुआ॥ १९॥ अतः इस लोकविनाशकारी युद्धका जो मूल कारण था, उस राजसूय नामक महायज्ञका अनुष्ठान आपने क्यों नहीं रोक दिया था?॥ २०॥ राजसूय यज्ञको सर्वाङ्गपूर्णरूपसे सम्पन्न करना असम्भव है, क्योंकि उस यज्ञके अङ्गभूत साधन दुर्लभ हैं। यदि यज्ञाङ्गका सम्यक्-रूपसे सम्पादन न होनेके कारण उसमें वैगुण्य आ गया तो प्रजाजनोंका नाश अवश्यम्भावी है॥ २१॥ आप भी हमारे समस्त पूर्वजोंके पितामह हैं, आपको भूत और भविष्यकालका ज्ञान है, आप हमारे कुलके रक्षक और हमारे पूर्वजोंके जन्मदाता हैं॥ २२॥ आप-जैसे नेताके रहते हुए बुद्धिमान् पाण्डव नीतिमार्गसे भ्रष्ट कैसे हो गये? क्योंकि जो मनुष्य अनाथ हैं और जिनके नेता अच्छे नहीं हैं, वे ही अपराध कर बैठते हैं (पाण्डवोंको तो आप-जैसा श्रेष्ठ नेता मिला था और वे आपको पाकर सनाथ थे तो भी उनसे यह भूल क्यों हुई?)'॥ २३॥

व्यास उवाच

कालेन विपरीतास्ते तव पूर्वपितामहाः।
न मां भविष्यं पृच्छन्ति न चापृष्टो ब्रवीम्यहम्॥ २४

सामर्थ्यं च न पश्यामि भविष्यस्य निवर्तने।
परिहर्तुं न शक्या हि कालेन विहिता गतिः॥ २५

त्वया त्विदमहं पृष्टो वक्ष्याम्यागन्तु भावि यत्।
अतश्च बलवान् कालः श्रुत्वापि न करिष्यसि॥ २६

न संरम्भान्न चारम्भान्न वै स्थास्यसि पौरुषे।
लेखा हि काललिखिताः सर्वथा दुरतिक्रमाः॥ २७

अश्वमेधः क्रतुः श्रेष्ठः क्षत्रियाणां परिश्रुतः।
तेन भावेन ते यज्ञं वासवो धर्षयिष्यति॥ २८

यदि तच्छक्यते राजन् परिहर्तुं कथंचन।
दैवं पुरुषकारेण मा यजेथाश्च तं क्रतुम्॥ २९

न चापराधः शक्रस्य नोपाध्यायगणस्य ते।
तव वा यजमानस्य कालोऽत्र दुरतिक्रमः॥ ३०

तस्य संस्थाकृतमिदं कालस्य परमेष्ठिनः।
यथा दृष्टं प्रजासर्गं गमिष्यति युगक्षये॥ ३१

तथा यज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजातयः।
तत्प्रणेयं निबोधस्व त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ३२

जनमेजय उवाच

निवृत्तावश्वमेधस्य किं निमित्तं भविष्यति।
श्रुत्वा परिहरिष्यामि भगवन् यदि मन्यसे॥ ३३

व्यास उवाच

निमित्तं भविता तत्र ब्रह्मकोपकृतं प्रभो।
यतेथाः परिहर्तुं त्वमित्येतद् भद्रमस्तु ते॥ ३४

त्वया वृत्तं क्रतुं चैव वाजिमेधं परंतप।
क्षत्रिया नाहरिष्यन्ति यावद् भूमिर्धरिष्यति॥ ३५

व्यासजी बोले—जनमेजय! तुम्हारे पूर्वपितामह पाण्डव कालकी प्रेरणासे विपरीत अवस्थाको प्राप्त हो गये थे, वे मुझसे भविष्य नहीं पूछते थे और मैं बिना पूछे किसीको कोई बात बताता नहीं हूँ॥ २४॥ भविष्यको पलट देनेकी शक्ति मैं किसीमें नहीं देखता हूँ; क्योंकि कालने जिस गतिका विधान किया है, उसका परिहार असम्भव है॥ २५॥ तुमने इस विषयको मुझसे पूछा है, इसलिये मैं तुम्हारे लिये आनेवाले भविष्यका वर्णन करूँगा, परंतु काल इससे भी बलवान् है, तुम मेरे मुखसे भविष्यके कर्तव्यको सुनकर भी उसका पालन नहीं करोगे॥ २६॥ संरम्भ (उत्तेजना) और आरम्भ (उद्योग)- के कारण तुम पौरुषमें स्थिर नहीं रह सकोगे; क्योंकि कालके लिखे हुए लेखको लाँघ जाना सर्वथा कठिन है॥ २७॥ क्षत्रियोंके लिये अश्वमेध यज्ञ सबसे श्रेष्ठ सुना गया है, उसके इस महत्त्वके कारण इन्द्र द्वेषवश तुम्हारे उस यज्ञको भ्रष्ट कर देंगे॥ २८॥ राजन्! यदि तुम पुरुषार्थसे किसी प्रकार दैवके विधानका निवारण कर सको तो तुम कदापि इस यज्ञका अनुष्ठान न करना॥ २९॥ इसमें न इन्द्रका अपराध है, न तुम्हारे उपाध्यायगणका और न तुम-जैसे यजमानका ही; यहाँ काल ही दुर्लङ्घ्य है॥ ३०॥ यह जो भावी कलंक है, वह कालस्वरूप ब्रह्माजीकी इच्छासे अश्वमेध यज्ञको भविष्यमें बंद करा देनेके लिये संघटित किया जानेवाला है, फिर तो कलियुगमें सारी प्रजा प्रायः असर्ग अर्थात् विनाशको ही प्राप्त होगी (यज्ञ आदिके अनुष्ठानसे प्रजामें जो दीर्घजीवित्व आता था, उसका धीरे-धीरे अभाव हो जायगा)। यह बात ज्ञानदृष्टिसे देखी गयी है॥ ३१॥ इसके सिवा ब्राह्मणलोग यज्ञोंके फल बेचने लगेंगे, अतः तुम यह जान लो कि चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकी कालके ही अधीन है॥ ३२॥

जनमेजयने कहा—भगवन्! अश्वमेध यज्ञकी निवृत्तिमें कौन-सा कारण उपस्थित होगा। यदि आप ठीक समझें तो मैं उसे सुनकर उसका परिहार करूँगा॥ ३३॥

व्यासजीने कहा—प्रभो! ब्राह्मणोंके प्रति तुम्हारे मनमें क्रोध होगा, जिससे उस यज्ञको बंद करनेका निमित्त स्वयं बन जायगा। तुम इसके परिहारके लिये प्रयत्न करना, यही मुझे कहना है, तुम्हारा कल्याण हो॥ ३४॥ शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश! तुम्हारे द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञको जबतक यह पृथ्वी रहेगी, तबतक भावी पीढ़ीके क्षत्रिय नहीं करेंगे॥ ३५॥

जनमेजय उवाच

निवृत्तावश्वमेधस्य ब्रह्मशापाग्नितेजसा।
अहं निमित्तमिति मे भयं तीव्रं तु जायते॥ ३६

कथं ह्यकीर्त्या युज्येत सुकृती मद्विधो जनः।
लोकानुत्सहते गन्तुं खं सपाश इव द्विजः॥ ३७

यथा ह्यनागतमिदं दृष्टमत्र प्रणाशनम्।
यद्यस्ति पुनरावृत्तिर्यज्ञस्याश्वासयस्व माम्॥ ३८

व्यास उवाच

उपात्तयज्ञो देवेषु ब्राह्मणेषूपपत्स्यते।
तेजसा व्याहतं तेजस्तेजस्येवावतिष्ठते॥ ३९

औद्भिज्जो भविता कश्चित् सेनानीः काश्यपो द्विजः।
अश्वमेधं कलियुगे पुनः प्रत्याहरिष्यति॥ ४०

तदन्ते तत्कुलीनश्च राजसूयमपि क्रतुम्।
आहरिष्यति राजेन्द्र श्वेतग्रहमिवान्तकः॥ ४१

यथाबलं मनुष्याणां कर्तॄणां दास्यते फलम्।
युगान्तद्वारमृषिभिः संवृतं विचरिष्यति॥ ४२

तदा प्रभृति हास्यन्ति नृणां प्राणाः पुराकृतीः।
न निवर्तिष्यते लोके वृत्तान्तावर्तनेष्विह॥ ४३

तदा सूक्ष्मो महोदर्को दुस्तरो दानमूलवान्।
चातुराश्रम्यशिथिलो धर्मः प्रविचलिष्यति॥ ४४

तदा ह्यल्पेन तपसा सिद्धिं प्राप्स्यन्ति मानवाः।
धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते जनमेजय॥ ४५

जनमेजय बोले—भगवन्! ब्राह्मणकी शापाग्निके तेजसे अश्वमेध यज्ञकी निवृत्ति होगी और मैं उसमें निमित्त बनूँगा, यह जानकर मुझे बड़ा भारी भय हो रहा है॥ ३६॥ मेरे-जैसा पुण्यात्मा पुरुष कैसे अपयशसे युक्त होगा और जैसे जालमें बँधा हुआ पक्षी आकाशमें नहीं उड़ सकता, उसी प्रकार अपयशसे कलङ्कित हुआ मुझ-जैसा पुरुष लोगोंके सामने जानेका साहस कैसे कर सकेगा?॥ ३७॥ जिस तरह आपने यहाँ इस यज्ञके भावी विनाशको देखा है, उसी प्रकार यदि इसकी पुनरावृत्ति भी सम्भव हो तो उसे बताकर मुझे आश्वासन दीजिये॥ ३८॥

व्यासजीने कहा—राजन्! अश्वमेध यज्ञका उपसंहार हो जानेपर वह देवताओं और ब्राह्मणोंमें ज्ञानरूपसे स्थित रहेगा, क्योंकि तेजसे अभिभूत हुआ तेज तेजमें ही स्थित होता है॥ ३९॥ भूमिको खोदनेसे कोई सेनानी नामक कश्यपवंशी ब्राह्मण प्रकट होगा, जो कलियुगमें पुनः अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करेगा॥ ४०॥ राजेन्द्र! उस यज्ञके अन्तमें उसी कुलमें उत्पन्न हुआ दूसरा पुरुष राजसूय यज्ञका भी अनुष्ठान करेगा; ठीक उसी तरह जैसे प्रलयकाल श्वेतग्रह (उत्पातग्रह)-की सृष्टि करता है॥ ४१॥ यज्ञ करनेवाले मनुष्योंको श्रद्धादि रूप बलके अनुसार ही वह यज्ञ फल देगा, फिर ऋषियोंद्वारा सुरक्षित युगान्तकालके द्वारपर लोग विचरण करेंगे॥ ४२॥ तभीसे मनुष्योंकी इन्द्रियाँ पुरातन कृत्यों शिष्टाचारोंका परित्याग कर देंगी। जगत्के भीतर लोगोंके बर्तावोंमें पहिले-जैसा वृत्तान्त (आचार-विचार) सर्वथा नहीं रहेगा॥ ४३॥ उस समय सूक्ष्म धर्म भी महान् फल देनेवाला होगा, परंतु अधिक विघ्नोंके कारण उस धर्मको पूरा करना कठिन होगा। उस धर्मका मूल दान होगा। उन चारों आश्रमोंके शिथिल हो जानेसे धर्म भी अपने स्वरूपसे विचलित हो जायगा॥ ४४॥ जनमेजय! उस युगान्त अर्थात् कलियुगमें मनुष्य थोड़ी-सी तपस्यासे भी सिद्धि प्राप्त कर लेंगे। उस समय कुछ धन्य पुरुष ही धर्मका आचरण करेंगे॥ ४५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि जनमेजयप्रश्ने द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें जनमेजयका प्रश्नविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तृतीयोऽध्यायः

व्यासजीद्वारा कलियुगकी स्थितिका वर्णन

जनमेजय उवाच

आसन्नं विप्रकृष्टं वा यदि कालं न विद्महे।
तस्माद् द्वापरसंविद्धं युगान्तं स्पृहयाम्यहम्॥ १

प्राप्ता वयं तु तत् कालमनया धर्मतृष्णया।
आदद्यात् परमं धर्मं सुखमल्पेन कर्मणा॥ २

शौनक उवाच

प्रजासमुद्वेगकरं युगान्तं समुपस्थितम्।
प्रणष्टधर्मं धर्मज्ञ निमित्तैर्वक्तुमर्हसि॥ ३

सौतिरुवाच

पृष्ट एवं भविष्यस्य गतिं तत्त्वेन चिन्तयन्।
युगान्ते सर्वभूतानां भगवानब्रवीत् तदा॥ ४

व्यास उवाच

अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः।
युगान्ते प्रभविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः॥ ५

अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगक्षये॥ ६

काण्डे स्पृष्टाः श्रोत्रियाश्च निष्क्रियाणि हवींष्यथ।
एकपङ्क्त्यामशिष्यन्ति युगान्ते जनमेजय॥ ७

शिल्पवन्तोऽनृतपरा नरा मद्यामिषप्रियाः।
मित्रभार्या भविष्यन्ति युगान्ते जनमेजय॥ ८

राजवृत्तिस्थिताश्चौरा राजानश्चौरशीलिनः।
भृत्याश्चानिर्दिष्टभुजो भविष्यन्ति युगक्षये॥ ९

धनानि श्लाघनीयानि सतां वृत्तमपूजितम्।
अकुत्सना च पतिते भविष्यन्ति युगक्षये॥ १०

जनमेजयने कहा—महर्षे! हमारे मोक्षका काल निकट है या दूर, यह हमलोग नहीं जानते; अतः जिसने द्वापरको अधर्मकी अधिकतासे दूषित कर दिया है, उस युगान्त अर्थात् कलियुगका वर्णन मैं सुनना चाहता हूँ॥ १॥ कलियुगमें मनुष्य थोड़े-से आयाससे किये जानेवाले सत्कर्मद्वारा सुखपूर्वक महान् धर्मके फलकी प्राप्ति कर सकता है, इस प्रकार इस धर्मविषयक लोभसे हमलोगोंने उस कलिकालमें जन्म ग्रहण किया है॥ २॥

शौनकजीने कहा—धर्मज्ञ सूतनन्दन! प्रजाको उद्वेगमें डालनेवाला और धर्मको नष्ट कर देनेवाला कलियुग उपस्थित हो गया है, आप इसके भावी लक्षण बताते हुए इसका वर्णन कीजिये॥ ३॥

सौतिने कहा—शौनक! राजा जनमेजयने भी ऐसा ही प्रश्न किया था। उसके उत्तरमें कलियुगमें समस्त प्राणियोंके भविष्यकी गतिका तत्त्वतः विचार करके भगवान् व्यासने उस समय इस प्रकार कहा—॥ ४॥

व्यासजी बोले—राजन्! कलियुगमें प्रजाओंकी रक्षा न करते हुए उनसे कर लेनेवाले राजा उत्पन्न होंगे, जो सदा अपने शरीरमात्रकी रक्षामें संलग्न रहेंगे॥ ५॥ कलियुगमें जो क्षत्रिय नहीं हैं, ऐसे लोग भी राजा होंगे। ब्राह्मणलोग शूद्रोंके आश्रित होकर जीविका चलायेंगे और शूद्र ब्राह्मणोंके-से आचारका पालन करनेवाले होंगे॥ ६॥ जनमेजय! कलियुगमें धनुष-बाण धारण करनेवाले (क्षत्रियवृत्तिसे जीनेवाले) ब्राह्मण और श्रोत्रिय ब्राह्मण दोनों एक पंक्तिमें बैठकर पञ्चयज्ञोंसे रहित हविष्य भोजन करेंगे॥ ७॥ जनमेजय! कलियुगमें मनुष्य शिल्प कर्म करनेवाले, असत्यवादी, मदिरा और मांसके प्रेमी तथा पत्नीको ही मित्र माननेवाले होंगे॥ ८॥ युगान्तकाल (कलियुग)-में चोर राजोचितवृत्तिसे रहेंगे और राजाओंका स्वभाव चोरोंके समान हो जायगा तथा सेवक उन वस्तुओंका भी उपभोग करेंगे, जिन्हें भोगनेके लिये उन्हें स्वामीकी ओरसे आज्ञा नहीं मिली है॥ ९॥ कलियुगमें धन ही सबके लिये स्पृहणीय होंगे, सत्पुरुषोंके आचार-व्यवहारका आदर नहीं होगा और धर्मसे पतित हुए मनुष्यके प्रति निन्दाका भाव रखनेवाले कोई न होंगे॥ १०॥

प्रणष्टचेतना मर्त्या मुक्तकेशा विचूलिनः।
ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजास्यन्ति नराः सदा॥ ११

अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः।
प्रमदाः केशशूलाश्च भविष्यन्ति युगक्षये॥ १२

सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति सर्वे वाजसनेयिनः।
शूद्रा भोवादिनश्चैव भविष्यन्ति युगक्षये॥ १३

तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजातयः।
ऋतवश्च भविष्यन्ति विपरीता युगक्षये॥ १४

शुक्लदन्ताऽञ्जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः।
शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति शाक्यबुद्धोपजीविनः॥ १५

श्वापदप्रचुरत्वं च गवां चैव परिक्षयः।
स्वादूनां विनिवृत्तिश्च विद्यादन्तगते युगे॥ १६

अन्त्या मध्ये निवत्स्यन्ति मध्याश्चान्तनिवासिनः।
तथा निम्नं प्रजाः सर्वा गमिष्यन्ति युगक्षये॥ १७

तथा द्विहायना दम्यास्तथा पल्वलकर्षकाः।
चित्रवर्षी च पर्जन्यो युगे क्षीणे भविष्यति॥ १८

सर्वे चौरकुले जाताश्चोरयानाः परस्परम्।
स्वल्पेनाढ्या भविष्यन्ति यत् किंचित् प्राप्य दुर्गताः॥ १९

न ते धर्मं करिष्यन्ति मानवा निर्गते युगे।
ऊषार्कबहुला भूमिः पन्थानस्तस्करावृताः॥ २०

सर्वे वाणिज्यकाश्चैव भविष्यन्ति कलौ युगे।
पितृदत्तानि देयानि विभजन्ते सुतास्तदा।
हरणाय प्रपत्स्यन्ते लोभानृतविरोधिताः॥ २१

मनुष्य धर्म और अधर्मके विवेकसे रहित होंगे, विधवाएँ तथा संन्यासी परस्पर समागम करके बच्चे पैदा करेंगे। सोलह वर्षसे कम अवस्थावाले मनुष्य भी सदा संतानोत्पादन करेंगे॥ ११॥ कलियुगमें जनपदके लोग अन्न बेचेंगे, चौराहोंपर द्विजलोग वेदोंका विक्रय करेंगे और युवती स्त्रियाँ मूल्य लेकर व्यभिचार करनेवाली होंगी॥ १२॥ उस समय सब लोग ब्रह्मवादी हो जायँगे (ब्रह्मवादकी आड़ लेकर कर्म-भ्रष्ट हो जायँगे), दूसरी शाखाओंका लोप हो जानेके कारण सभी अपनेको वाजसनेयी शाखाका बतलायेंगे और शूद्र अपनेसे बड़ोंके सम्मानमें केवल भो (अजी) कहनेवाले होंगे॥ १३॥ युगान्तकालमें ब्राह्मणलोग तप और यज्ञके फल बेचनेवाले होंगे। उस समय सभी ऋतुएँ विपरीत स्वभावकी हो जायँगी॥ १४॥ शूद्रलोग शाक्यवंशी बुद्धके मतका आश्रय लेकर (अर्थात् वेददूषक नास्तिक बनकर) वेद-विरोधी धर्मका आचरण करेंगे। वे दाँत सफेद किये रहेंगे, आँखोंमें अञ्जन लगायेंगे और मूँड़ मुड़ाकर गेरुए वस्त्र धारण कर लेंगे॥ १५॥ अन्तिम युग अर्थात् कलियुगमें कुत्ते, भेड़िये आदि हिंसक प्राणियोंकी अधिकता होगी; गौओंका ह्रास होता चला जायगा और उत्तम रसोंका अभाव हो जायगा॥ १६॥ कलियुगमें अन्त्यज या म्लेच्छ मध्यदेशमें निवास करेंगे और मध्यदेशके निवासी म्लेच्छ-देशमें रहने लगेंगे तथा सारी प्रजा नीच मार्गका अनुसरण करने लगेगी॥ १७॥ युगकी समाप्तिके समय दो वर्षके बछड़े गाड़ी और हलमें जोते जानेके योग्य समझे जायँगे तथा वे ही गड्ढों और तलैयोंकी भूमि जोतेंगे और मेघ विचित्र वर्षा करनेवाला होगा (अर्थात् ऐसी वर्षा होगी कि हलमें जुते हुए बैलका एक सींग भीगेगा और दूसरा सूखा रह जायगा)॥ १८॥ सभी चोरकुलमें पैदा होंगे और आपसमें एक-दूसरेको लूटेंगे। थोड़े धनसे ही धनी हो जायँगे और थोड़ा-सा ही कष्ट पाकर दुर्गतिमें पड़ जायँगे॥ १९॥ युगकी समाप्तिके समय मनुष्य धर्माचरण नहीं करेंगे, भूमि प्रायः ऊसर हो जायगी और राह-बाट बटमारोंसे घिरे रहेंगे॥ २०॥ कलियुगमें सभी व्यापार करनेवाले होंगे, पिताकी दी हुई देय वस्तुओं (आभूषणादि)-को भी (जो शास्त्रके अनुसार बाँटने योग्य नहीं हैं) पुत्र उस समय आपसमें बाँट लेंगे तथा लोभ और असत्यसे प्रेरित हो विरोधी बनकर लोग दूसरोंकी सम्पत्ति हर लेनेका भी प्रयत्न करेंगे॥ २१॥

सौकुमार्ये तथा रूपे रत्ने चोपक्षयं गते।
भविष्यन्ति युगान्ते च नार्यः केशैरलंकृताः॥ २२

निर्विहारस्य भूतस्य गृहस्थस्य भविष्यति।
युगान्ते समनुप्राप्ते नान्या भार्या समा गतिः॥ २३

कुशीलानार्यभूयिष्ठं वृथारूपसमन्वितम्।
पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं तद् युगान्तस्य लक्षणम्॥ २४

बहुयाचनको लोको न दास्यति परस्परम्।
अविचार्य ग्रहीष्यन्ति दानं वर्णान्तरात् तथा॥ २५

राजचौराग्निदण्डार्तो जनः क्षयमुपैष्यति।
सस्यनिष्पत्तिरफला तरुणा वृद्धशीलिनः।
ईहयासुखिनो लोका भविष्यन्ति युगक्षये॥ २६

वर्षासु वाताः परुषा नीचाः शर्करवर्षिणः।
संदिग्धः परलोकश्च भविष्यति युगक्षये॥ २७

आत्मनश्च दुराचारा ब्रह्मदूषणतत्पराः।
आत्मानं बहु मन्यन्ते मन्युरेवाभ्ययाद् द्विजान्॥ २८

वैश्याचाराश्च राजन्या धनधान्योपजीविनः।
युगापक्रमणे सर्वे भविष्यन्ति द्विजातयः॥ २९

अप्रवृत्ताः प्रपत्स्यन्ते समयाः शपथास्तथा।
ऋणं सविनयभ्रंशं युगे क्षीणे भविष्यति॥ ३०

भविष्यत्यफलो हर्षः क्रोधश्च सफलो नृणाम्।
अजाश्चैवोपरोत्स्यन्ते पयसोऽर्थे युगक्षये॥ ३१

अशास्त्रविदुषां पुंसामेवमेव स्वभावतः।
अप्रमाणं वदिष्यन्ति नीतिं पण्डितमानिनः॥ ३२

शास्त्रोक्तस्याप्रवक्तारो भविष्यन्ति युगक्षये।
सर्वे सर्वं हि जानन्ति वृद्धाननुपसेव्य वै॥ ३३

कलियुगमें सुकुमारता, रूप तथा सुवर्ण आदि रत्नोंके क्षीण हो जानेके कारण नारियाँ भाँति-भाँतिके सँवारे हुए केशोंसे ही अलंकृत होंगी॥ २२॥ युगान्तकाल आनेपर हार, चन्दन, दिव्य आस्तरण आदि भोग-सामग्रीसे रहित हुए गृहस्थके लिये भार्याके समान दूसरी कोई गति नहीं होगी॥ २३॥ जब प्रजावर्गमें नीच दुराचारियोंकी संख्या अधिक हो, सब लोग व्यर्थ रूप बनाने लगें, पुरुष थोड़े हों और स्त्रियोंकी संख्या बहुत अधिक हो जाय, तब वही युगान्तकालका लक्षण है॥ २४॥ उस समय लोकमें याचकोंकी संख्या बढ़ जायगी, सभी लोग आपसमें किसीको कुछ नहीं देंगे और लोग बिना विचारे ही दूसरे वर्णोंसे दान ग्रहण करेंगे॥ २५॥ राजा, चोर और अग्निके दण्डसे पीड़ित हुई प्रजा धीरे-धीरे नष्ट हो जायगी, खेती निष्फल होगी और नौजवानोंका स्वभाव बूढ़ोंके समान हो जायगा (अर्थात् वे उत्साह, बल और पुरुषार्थसे रहित हो जायँगे), कलियुगमें प्रायः सभी लोग तृष्णाके कारण सुखसे वञ्चित रहेंगे॥ २६॥ युगान्तकाल आनेपर वर्षा- ऋतुमें वायु रूखी, नीच (दुःखदायक) तथा रेत एवं कंकड़ बरसानेवाली होगी। परलोकके विषयमें सबको संशय बना रहेगा॥ २७॥ उस समयके दुराचारी मनुष्य आत्मा और ब्रह्मकी निन्दा करनेमें तत्पर होंगे, वे अपने-आपको ही सबसे बढ़कर मानेंगे और ब्राह्मणोंमें क्रोधका ही आवेश होगा॥ २८॥ क्षत्रिय वैश्योंके आचारका पालन करनेवाले तथा धन-धान्यके व्यवसायसे जीविका चलानेवाले होंगे। कलियुगमें धर्ममर्यादाके भङ्ग होनेसे सब लोग द्विज बन जायँगे॥ २९॥ युगान्तकालमें परस्पर की हुई प्रतिज्ञाओं और शपथोंका पालन नहीं होगा, वे यों ही समाप्त हो जायँगी तथा विनयशील सज्जन पुरुष भी ऋण नहीं चुकाना चाहेंगे, फिर दुर्जनोंकी तो बात ही क्या है?॥ ३०॥ कलियुगमें मनुष्योंका हर्ष निष्फल और क्रोध सफल होगा। दूधके लिये घरोंमें गौएँ नहीं, बकरियाँ बाँधी जायँगी॥ ३१॥ शास्त्रोंका ज्ञान न रखनेवाले मूढ़ मनुष्योंका यों ही अपनी इच्छाके अनुसार निर्णय होगा (वे अपनी इच्छासे जो कुछ कहेंगे, उसीको शास्त्रसम्मत बतायेंगे), अपनेको पण्डित माननेवाले वे मूर्ख मानव अप्रामाणिक बात कहेंगे और उसे नीतिके अनुकूल बतायेंगे॥ ३२॥ युगान्तकालमें शास्त्रोक्त बातको बताने-वाले नहीं रहेंगे, बड़े-बूढ़ोंका सेवन किये बिना ही सब लोग सब कुछ जाननेका दावा करेंगे॥ ३३॥

न कश्चिदकविर्नाम युगान्ते समुपस्थिते।
न क्षत्राणि नियोक्ष्यन्ति विकर्मस्था द्विजातयः।
चौरप्रायाश्च राजानो युगान्ते पर्युपस्थिते॥ ३४

युगान्त उपस्थित होनेपर कोई भी ऐसा न होगा जो अपनेको कवि (सर्वज्ञ) न मानता हो। ब्राह्मणलोग शास्त्रविपरीत कर्ममें स्थित होनेके कारण क्षत्रियोंको धर्ममें नहीं नियुक्त करेंगे। उस समयके राजा प्रायः चोर होंगे॥ ३४॥

कुण्डावृषा नैकृतिकाः सुरापा ब्रह्मवादिनः।
अश्वमेधेन यक्ष्यन्ति युगान्ते जनमेजय॥ ३५

जनमेजय! युगान्तकालमें कुण्डा (पतिके जीते-जी जार पुरुषके संयोगसे उत्पन्न की गयी कन्या)-में गर्भाधान करनेवाले, कपटी और शराबी मनुष्य ब्रह्मवादी बनकर अश्वमेध यज्ञ करेंगे॥ ३५॥

अयाज्यान् याजयिष्यन्ति तथाभक्ष्यस्य भक्षिणः।
ब्राह्मणा धनतृष्णार्ता युगान्ते समुपस्थिते॥ ३६

युगान्तकाल उपस्थित होनेपर धनकी तृष्णासे पीड़ित हुए ब्राह्मण यज्ञके अनधिकारियोंसे भी यज्ञ करायेंगे और अभक्ष्य वस्तु (मांस आदि)-का भक्षण करेंगे॥ ३६॥

भोशब्दमभिधास्यन्ति न च कश्चित् पठिष्यति।
एकशङ्खास्तदा नार्यो गवेधुकपिनद्धकाः॥ ३७

सब लोग सबके लिये भो (ऐ! अरे! अजी! इत्यादि)-का ही उच्चारण करेंगे, कोई भी पढ़ेगा नहीं, उस समय स्त्रियोंके पास एकमात्र शङ्खके ही आभूषण होंगे, वे अपनेको गवेधुक नामक तृणविशेषसे अलंकृत करेंगी॥ ३७॥

नक्षत्राणि वियोगीनि विपरीता दिशस्तथा।
संध्यारागोऽथ दिग्दाहो भविष्यत्यवरे युगे॥ ३८

अन्तिम युगमें नक्षत्र शास्त्रोक्त ग्रहसंयोग आदिसे रहित होंगे, दिशाएँ विपरीत प्रतीत होंगी, उनमें संध्याकालके समान लाली छायी रहेगी और वहाँ निरन्तर दाह (जलन या तपन) बना रहेगा॥ ३८॥

पितॄन् पुत्रा नियोक्ष्यन्ति वध्वः श्वश्रूश्च कर्मसु।
वियोनिषु चरिष्यन्ति प्रमदासु नरास्तथा॥ ३९

पुत्र पिताओंको और बहुएँ सासोंको आज्ञा देकर काममें लगायेंगी। मनुष्य पशुयोनि या दूसरे वर्णकी स्त्रियोंके साथ भी समागम करेंगे॥ ३९॥

वाक्छरैस्तर्जयिष्यन्ति गुरूञ्छिष्यास्तथैव च।
मुखेषु च प्रयोक्ष्यन्ति प्रमत्ताश्च नरास्तदा॥ ४०

शिष्य गुरुजनोंको वाग्बाणोंसे छेदते हुए उन्हें डाँट बतायेंगे तथा कामोन्मत्त पुरुष मुखोंमें भी मैथुन करेंगे॥ ४०॥

अकृताग्राणि भोक्ष्यन्ति नराश्चैवाग्निहोत्रिणः।
भिक्षां बलिमदत्त्वा च भोक्ष्यन्ति पुरुषाः स्वयम्॥ ४१

अग्निहोत्री मनुष्य भी अग्रग्रास निकाले बिना ही भोजन करेंगे, यति आदिको भिक्षा और देवता आदिके लिये बलि (भोजनका ग्रास या उपहारसामग्री) दिये बिना ही लोग स्वयं भोजन कर लेंगे॥ ४१॥

पतीन् सुप्तान् वञ्चयित्वा गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यतः।
पुरुषाश्च प्रसुप्तासु भार्यासु च परस्त्रियम्॥ ४२

सोये हुए पतियोंको धोखा देकर स्त्रियाँ दूसरोंके पास चली जायँगी, इसी तरह पुरुष भी अपनी स्त्रियोंके सो जानेपर परायी स्त्रियोंके साथ समागम करेंगे॥ ४२॥

नाव्याधितो नाप्यरुजो जनः सर्वोऽभ्यसूयकः।
न कृतिप्रतिकर्ता च युगे क्षीणे भविष्यति॥ ४३

उस समय कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं होगा, जो शारीरिक रोग और मानसिक पीड़ासे ग्रस्त न हो, सब लोग दूसरोंके दोष देखनेवाले होंगे। युगान्तकालमें कोई भी उपकारका बदला देनेवाला नहीं होगा॥ ४३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कलियुगवर्णने तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें कलियुगका वर्णनविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चतुर्थोऽध्यायः

कलियुगका वर्णन

जनमेजय उवाच

एवं विलुलिते लोके मनुष्याः केन पालिताः।
निवत्स्यन्ति किमाचाराः किमाहारविहारिणः॥ १

किंकर्माणः किमीहन्तः किंप्रमाणाः किमायुषः।
कां च काष्ठां समासाद्य प्रपत्स्यन्ति कृतं युगम्॥ २

व्यास उवाच

अत ऊर्ध्वं च्युते धर्मे गुणहीनाः प्रजास्ततः।
शीलव्यसनमासाद्य प्राप्स्यन्ते ह्रासमायुषः॥ ३

आयुर्हान्या बलग्लानिर्बलग्लान्या विवर्णता।
वैवर्ण्याद् व्याधिसम्पीडा निर्वेदो व्याधिपीडनात्॥ ४

निर्वेदादात्मसम्बोधः सम्बोधाद् धर्मशीलता।
एवं गत्वा परां काष्ठां प्रपत्स्यन्ति कृतं युगम्॥ ५

उद्देशतो धर्मशीलाः केचिन्मध्यस्थतां गताः।
विमर्षशीलाः केचित् तु हेतुवादकुतूहलाः॥ ६

प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणं चेति निश्चिताः।
प्रमाणैकं करिष्यन्ति नेति पण्डितमानिनः॥ ७

अप्रमाणं करिष्यन्ति वेदोक्तमपरे जनाः।
तदा मुखभगाश्चैव भविष्यन्ति स्त्रियोऽपराः॥ ८

नास्तिक्यपरमाश्चापि केचिद् धर्मविलोपकाः।
भविष्यन्ति नरा मूढा मन्दाः पण्डितमानिनः॥ ९

तदात्वमात्रे श्रद्धेयाः शास्त्रज्ञानबहिष्कृताः।
दाम्भिकास्ते भविष्यन्ति वादशीलकुतूहलाः॥ १०

जनमेजयने पूछा—मुने! इस प्रकार अनाचारसे कलङ्कित हुए जगत्‌में मनुष्य किससे सुरक्षित हो निवास करेंगे? उनके आचार तथा आहार-विहार कैसे होंगे?॥ १॥ उनका कर्म क्या होगा? वे कैसी चेष्टा करेंगे? उनके शरीरकी लम्बाई या ऊँचाई कितनी होगी? उनकी आयु कितने वर्षोंकी होगी तथा वे किस सीमातक पहुँचकर सत्ययुग प्राप्त करेंगे?॥ २॥

व्यासजीने कहा—जनमेजय! इसके बाद धर्मके नष्ट हो जानेपर गुणहीन हुई सारी प्रजा अपना शील खोकर अल्पायु हो जायगी॥ ३॥ आयुकी हानि होनेसे उनका बल क्षीण हो जायगा, बलके क्षीण होनेसे उनकी अङ्गकान्ति फीकी पड़ जायगी, कान्तिमें विकार आनेसे उनके शरीरमें रोगजनित पीड़ा होगी तथा रोगजनित पीड़ासे उनके मनमें निर्वेद (वैराग्यपूर्ण खेद) होगा॥ ४॥ निर्वेदसे उन्हें आत्मबोध प्राप्त होगा, उस बोधसे उनमें धर्मशीलता आयेगी और इस प्रकार धर्मशीलताकी चरम सीमाको पहुँचकर वे सत्ययुग प्राप्त कर लेंगे॥ ५॥ (कलियुगमें) कुछ लोग लेशमात्र धर्मका पालन करनेवाले होंगे, कुछ लोग धर्मकी ओरसे तटस्थ या उदासीन रहेंगे और कुछ लोग विवेकशील होनेपर भी धर्मके समर्थनमें अच्छी-अच्छी युक्ति देनेके लिये ही उत्सुक रहेंगे, स्वयं उस धर्मका आचरण नहीं करेंगे॥ ६॥ कुछ लोग दृढ़ निश्चयके साथ केवल प्रत्यक्ष और अनुमानको ही प्रमाण मानेंगे (वेद अथवा शब्दको प्रमाण नहीं मानेंगे), कुछ पण्डितमानी पुरुष एकमात्र प्रत्यक्षको ही प्रमाण मानेंगे, दूसरे किसी प्रमाणको नहीं स्वीकार करेंगे॥ ७॥ दूसरे लोग वेदोक्त मतको प्रामाणिक नहीं मानेंगे। कलियुगमें कितनी ही स्त्रियाँ मुखसे ही भगका काम लेनेवाली होंगी॥ ८॥ कितने ही पण्डितमानी मन्दबुद्धि मूढ़ मानव नास्तिकतामें प्रवृत्त होकर धर्मका लोप करनेवाले होंगे॥ ९॥ वे वर्तमान कालकी प्रत्यक्ष बातोंपर ही श्रद्धा या विश्वास करनेवाले, शास्त्रज्ञानसे रहित और पाखण्डी होंगे, धर्मकी चर्चा और आचरण दोनों ही उनके लिये आश्चर्यकी वस्तु होंगे (अर्थात् वे धर्मकी चर्चा भी नहीं करेंगे, फिर आचरणकी तो बात ही क्या है?)॥ १०॥

तदा विचलिते धर्मे जनाः शेषपुरस्कृताः।
शुभान्येवाचरिष्यन्ति दानसत्यसमन्विताः॥ ११

सर्वभक्षो ह्यसंगुप्तो निर्गुणो निरपत्रपः।
भविष्यति तदा लोकस्तत् कषायस्य लक्षणम्॥ १२

विप्राणां शाश्वतीं वृत्तिं यदा वर्णावरा जनाः।
प्रतिपत्स्यन्ति वृत्त्यर्थं तत् कषायस्य लक्षणम्॥ १३

कषायोपप्लवे लोके ज्ञानविद्याप्रणाशने।
सिद्धिं स्वल्पेन कालेन यास्यन्ति निरुपस्कृताः॥ १४

महायुद्धं महावातं महावर्षं महाभयम्।
भविष्यति युगे क्षीणे तत् कषायस्य लक्षणम्॥ १५

विप्ररूपाणि रक्षांसि राजानः कर्णवेदिनः।
पृथिवीमुपभोक्ष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते॥ १६

निःस्वाध्यायवषट्कारा अनयाश्चाभिमानिनः।
विप्राः क्रव्यादरूपेण सर्वभक्षा वृथाव्रताः॥ १७

मूर्खाः स्वार्थपरा लुब्धाः क्षुद्राः क्षुद्रपरिच्छदाः।
व्यवहारोपवृत्ताश्च च्युता धर्माच्च शाश्वतात्॥ १८

हर्तारः पररत्नानां परदारापहारकाः।
कामात्मानो दुरात्मानः सोपधाः प्रियसाहसाः॥ १९

तेषु प्रभवमाणेषु तुल्यशीलेषु सर्वतः।
अभाविनो भविष्यन्ति मुनयो बहुरूपिणः॥ २०

उत्पन्ना ये कृतयुगे प्रधानपुरुषाश्रयाः।
कथायोगेन तान् सर्वान् पूजयिष्यन्ति मानवाः॥ २१

सस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलापहारिणः।
भक्ष्यभोज्यापहाराश्च करण्डानां च हारिणः॥ २२

उस समय धर्मके विचलित हो जानेपर लोग भगवत्स्मरण आदि अवशिष्ट धर्मको सामने रखते हुए दान और सत्यसे संयुक्त हो दया आदि शुभकर्मोंका ही आचरण करेंगे॥ ११॥ उस समयके लोग सर्वभक्षी, अजितेन्द्रिय, गुणहीन और निर्लज्ज होंगे, यही कलिकालजनित कलुषका लक्षण है॥ १२॥ जब क्षत्रिय आदि वर्णोंके लोग जीविकाके लिये ब्राह्मणोंकी सनातन वृत्तिको अपना लेंगे, तब वही कलिके कालुष्यका सूचक होगा॥ १३॥ संसारमें कलिकालके कलुषका उपद्रव बढ़ जानेपर जब ज्ञान (शास्त्रीय बोध) और विद्या (आत्मदर्शन)-का लोप हो जायगा, तब परिग्रहशून्य हुए मनुष्य केवल त्यागमात्रसे थोड़े ही समयमें सिद्धि (मोक्ष) प्राप्त कर लेंगे॥ १४॥ युगान्तकालमें महान् युद्ध, प्रचण्ड आँधी, बड़ी भारी वर्षा और महान् भय उपस्थित होगा, वह कलिकालके कलुषका लक्षण है॥ १५॥ युगान्तकाल उपस्थित होनेपर यहाँ ब्राह्मणोंके रूपमें राक्षस निवास करेंगे, राजालोग कानोंसे सुनी हुई बातको ही ठीक मानेंगे और चुगलखोरोंके साथ रहकर ही पृथ्वीका उपभोग करेंगे॥ १६॥ ब्राह्मण स्वाध्याय और वषट्कारसे दूर हो नीतिशून्य और अभिमानी होकर राक्षसोंके समान सब कुछ भक्षण करेंगे और व्यर्थ (पाखण्डपूर्ण) व्रतका पालन करनेवाले होंगे॥१७॥ वे मूर्ख, स्वार्थपरायण, लोभी और नीच विचारके होंगे; उनके आश्रित रहनेवाले लोग भी वैसे ही होंगे, वे सनातन धर्मसे भ्रष्ट होकर केवल भोजनाच्छादनादि व्यवहारमें ही तत्पर रहेंगे॥ १८॥ उस समयके मनुष्य पराये रत्नों और परायी स्त्रियोंका अपहरण करनेवाले होंगे, उन सबके चित्त कामसे कलुषित होंगे, वे दुरात्मा, कपटी और दुःसाहसको पसंद करनेवाले होंगे॥ १९॥ एक समान शीलवाले और प्रभुतासे सम्पन्न वे दुष्ट मनुष्य जब सब ओर फैल जायँगे, तब अनेक रूपधारी एवं आत्माके अभावका प्रतिपादन करनेवाले बहुत-से (वैनाशिक मतावलम्बी) मुनि प्रकट हो जायँगे॥ २०॥ सत्ययुगमें ईश्वरका आश्रय लेनेवाले जो भक्त पैदा हो गये हैं, उन सबकी कलियुगके मनुष्य कथावार्ताके प्रसङ्गमें पूजा करेंगे (उनके प्रति आदरका भाव प्रकट करेंगे, परंतु स्वयं उनके-जैसा आचरण नहीं करेंगे)॥ २१॥ कलिकालके मनुष्य खेतोंमें लगी हुई खेतीकी चोरी करेंगे, दूसरोंके वस्त्र चुरा लेंगे, खाने-पीनेकी वस्तुएँ हड़प लेंगे, कंडों अथवा

चौराश्चौरस्य हर्तारो हन्ता हन्तुर्भविष्यति।
चौरैश्चौरक्षये चापि कृते क्षेमं भविष्यति॥ २३

निःसारे क्षुभिते लोके निष्क्रिये व्यन्तरे स्थिते।
नराः श्रयिष्यन्ति वनं करभारप्रपीडिताः॥ २४

पितॄनाज्ञापयिष्यन्ति पुत्राः कर्मणि सर्वशः।
स्नुषा श्वश्रूस्तथा चैव युगान्ते प्रत्युपस्थिते॥ २५

वाक्छरैरर्दयिष्यन्ति गुरूञ्छिष्याः समन्ततः।
यज्ञकर्मण्युपरते रक्षांसि श्वापदानि च।
कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान्॥ २६

क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं सामग्र्यं वापि बन्धुषु।
उद्देशतो नरश्रेष्ठ भविष्यन्ति युगक्षये॥ २७

स्वयंपालाः स्वयंचौरा युगसम्भारसम्भृताः।
मण्डलैः प्रचलिष्यन्ति देशे देशे पृथक्पृथक्॥ २८

स्वदेशेभ्यः परिभ्रष्टा निःसाराः सह बन्धुभिः।
नराः सर्वे भविष्यन्ति तदा कालपरिक्षयात्॥ २९

तदा स्कन्धे समाधाय कुमारान् विद्रुता भयात्।
कौशिकीं प्रतरिष्यन्ति नराः क्षुद्भयपीडिताः॥ ३०

अङ्गान् वङ्गान् कलिङ्गांश्च काश्मीरानथ मेकलान्।
ऋषिकान्तगिरिद्रोणीः संश्रयिष्यन्ति मानवाः॥ ३१

कृत्स्नं वा हिमवत्पार्श्वं कूलं च लवणाम्भसः।
अरण्येषु च वत्स्यन्ति नरा म्लेच्छगणैः सहः॥ ३२

नैव शून्या न चाशून्या भविष्यति वसुंधरा।
गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः प्रभविष्यन्ति शस्त्रिणः॥ ३३

मृगैर्मत्स्यैर्विहंगैश्च श्वापदैः सर्पकीटकैः।
मधुशाकफलैर्मूलैर्वर्तयिष्यन्ति मानवाः॥ ३४

चीरं पर्णं च बहुलं वल्कलान्यजिनानि च।
स्वयंकृतानि वत्स्यन्ति यथा मुनिजनास्तथा॥ ३५

बीजानामाकृतिं निम्नेष्वीहन्तः काष्ठशङ्कुभिः।
अजैडकं खरोष्ट्रं च पालयिष्यन्ति यत्नतः॥ ३६

बाँसकी पिटारियोंको भी उड़ा ले जायँगे॥ २२॥ उस समयके चोर चोरके घरमें भी चोरी करेंगे, हत्यारेकी भी हत्या करनेवाले पैदा हो जायँगे, इस प्रकार जब चोरोंके द्वारा चोरोंको विनाश कर दिया जायगा, तब जगत्का कल्याण होगा॥ २३॥ जब सारा संसार निर्धन, संध्या-वन्दन आदि सत्कर्मोंसे रहित तथा वर्णभेदसे शून्य हो जायगा, उस समय करोंके भारसे अत्यन्त पीड़ित हुए मनुष्य वनका आश्रय लेंगे॥ २४॥ युगान्तकाल उपस्थित होनेपर पुत्र पिताओंको सभी कर्म करनेके लिये आदेश दिया करेंगे; इसी तरह बहुएँ अपनी सासोंपर हुक्म चलाया करेंगी॥ २५॥ सब ओर शिष्य गुरुजनोंको वाग्बाणोंसे पीड़ित करेंगे। यज्ञकर्म बंद हो जानेपर राक्षस, हिंसक जन्तु तथा कीड़े, चूहे और सर्प मनुष्योंपर आक्रमण करेंगे॥ २६॥ नरश्रेष्ठ! कलियुगमें क्षेम, सुभिक्ष, आरोग्य और भाई-बन्धुओंमें मेल-मिलाप या बन्धु-बान्धवोंकी पूर्णता आदि बातें बहुत कम हो जायँगी॥ २७॥ उस समयके लोग स्वयं ही रक्षक और स्वयं ही चोर होंगे तथा युगकी आवश्यकताके अनुरूप उपकरणोंसे सम्पन्न हो पृथक्-पृथक् झुंड बनाकर देश-देशमें घूमते फिरेंगे॥ २८॥ उस समय कालवश अपनी अवनति होनेके कारण सब मनुष्य अपने-अपने देशोंसे निर्वासित होकर बन्धुओं-सहित निःसार (निर्धन) हो जायँगे॥ २९॥ उन दिनों भूखके भयसे पीड़ित हुए मनुष्य बच्चोंको कंधेपर रखकर आतङ्कवश भागकर कोसी नदीको पार कर जायँगे॥ ३०॥ लोग जीविकाके लिये अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, काश्मीर, मेकल तथा ऋषिकआदि देशोंके भीतर चले जायँगे और पर्वतकी घाटियोंका आश्रय लेंगे॥ ३१॥ उस समयके मनुष्य म्लेच्छोंके साथ समूचे हिमालयके पार्श्वभागमें, लवणसमुद्रके तटपर तथा वनोंमें निवास करेंगे॥ ३२॥ पृथ्वी न तो मनुष्योंसे सूनी होगी और न भरी ही रहेगी। हाथमें शस्त्र लेकर रक्षाके कार्यमें नियुक्त हुए पुरुष भी किसीकी रक्षा नहीं कर सकेंगे॥ ३३॥ कलियुगके धर्मभ्रष्ट मनुष्य मृग, मत्स्य, पक्षी, हिंसक जन्तु, सर्प, कीट, मधु, शाक, फल और मूलसे जीवन-निर्वाह करेंगे॥ ३४॥ लोग ऋषि-मुनियोंकी भाँति चिथड़ों, पत्तों, वल्कलों, हिरनके चमड़ों तथा अपने बनाये हुए अन्य वस्त्रोंको धारण करेंगे॥ ३५॥ कितने ही मनुष्य पर्वतकी कन्दरा आदि निम्न स्थानोंमें रहकर ग्रामीण और जङ्गली बीजों (अनाजों)-की प्राप्तिके लिये चेष्टा करते हुए काठके खूटोंमें बकरों और भेड़ोंको तथा काश्मीर आदि अन्य स्थानोंके लोग गधों और ऊँटोंको बाँधकर उनका यत्नपूर्वक पालन करेंगे॥ ३६॥

नदीस्त्रोतांसि रोत्स्यन्ति तोयार्थे कूलमाश्रिताः।
पक्वान्नव्यवहारेण विपणन्तः परस्परम्॥ ३७

तनूरुहैर्यथा जातैः समूलान्तरसंवृतैः।
बह्वपत्याः प्रजाहीनाः कुललक्षणवर्जिताः॥ ३८

एवं भविष्यन्ति तदा मनुष्याः कालकारिताः।
हीनाद्धीनं तदा धर्मं प्रजाः समनुवर्त्स्यति॥ ३९

आयुस्तत्र च मर्त्यानां परं त्रिंशद् भविष्यति।
दुर्बला विषयग्लाना रजसा समभिप्लुताः॥ ४०

भविष्यति तदा तेषां रोगैरिन्द्रियसंक्षयः।
आयुःप्रक्षयसंरोधाद् विषादः प्रभविष्यति॥ ४१

शुश्रूषवो भविष्यन्ति साधूनां दर्शने रताः।
सत्यं च प्रतिपत्स्यन्ति व्यवहारोपसंक्षयात्॥ ४२

भविष्यन्ति च कामानामलाभाद् धर्मशीलिनः।
करिष्यन्ति च संकोचं स्वपक्षक्षयपीडिताः॥ ४३

एवं शुश्रूषणे दाने सत्ये प्राणाभिरक्षणे।
चतुष्पादः प्रवृत्तश्च धर्मः श्रेयोऽभिपत्स्यते॥ ४४

तेषां लब्धानुमानानां गुणेषु परिवर्तताम्।
स्वादु किं न्विति विज्ञाय धर्म एवं वदिष्यति॥ ४५

यथा हानिः क्रमात् प्राप्ता तथा वृद्धिः क्रमाद् गता।
प्रगृहीते यतो धर्मे प्रवर्त्स्यन्ति कृतं युगम्॥ ४६

साधु वृत्तं कृतयुगे कषाये हानिरुच्यते।
एक एव तु कालः स हीनवर्णो यथा शशी॥ ४७

छन्नो हि तमसा सोमो यथा कलियुगे तथा।
पूर्णश्च तमसा हीनो यथा कृतयुगे तथा॥ ४८

कलियुगके मनुष्य जलके लिये तटपर आकर नदीके प्रवाहको रोकेंगे। वे आपसमें पके-पकाये अन्नके लेन-देनका व्यवसाय करेंगे। जैसे अपने शरीरसे उत्पन्न हुई संतानोंके निमित्तसे लोग आपसमें लड़ते हैं, उसी प्रकार मूलधनके सहित सूदको छिपानेके कारण आपसमें विवाद करते हुए लोग परस्पर लेन-देनका व्यवहार करेंगे। उन दिनों कालसे प्रेरित हुए कुछ मनुष्य तो अधिक संतानवाले होंगे और कुछ लोगोंको एक भी संतान नहीं होगी। इसी तरह प्रायः सब लोग कुलोचित शुभ लक्षणोंसे हीन होंगे। उस समयकी प्रजा हीन-से-हीन धर्मका अनुसरण करेगी तथा उन दिनों मनुष्योंकी आयु अधिक-से-अधिक तीस वर्षकी होगी। सब लोग दुर्बल, विषयसेवनके कारण कृश तथा रजोगुणसे अभिव्याप्त होंगे। उस समय रोगोंके कारण उनकी इन्द्रियाँ क्षीण हो जायँगी, आयुके क्षय एवं निरोधसे उनके मनमें विषाद होगा॥ ३७—४१ ॥ फिर वे धर्मोपदेश सुननेकी इच्छा रखकर साधु पुरुषोंके दर्शनमें मन लगानेवाले होंगे; व्यवहार या व्यवसाय क्षीण हो जानेके कारण वे सत्यको अपनायेंगे॥ ४२॥ कामनाओंकी प्राप्ति न होनेसे धर्मशील बनेंगे और अपने पक्षके विनाशसे पीड़ित हो दुराचारको संकुचित कर देंगे॥ ४३॥ इस प्रकार शुश्रूषा, दान, सत्य और प्राणरक्षामें प्रवृत्त हुआ चार चरणोंवाला धर्म श्रेयकी प्राप्ति करायेगा॥ ४४॥ इस प्रकार जो श्रेयको प्राप्त हुए पुरुष अनुमानसे धर्म और अधर्मके फलको जान गये हैं और शब्दादि विषयोंमें रम रहे हैं, उनके लिये कौन-सी वस्तु स्वादिष्ट या सुखद है—विषयोंमें रमण या धर्मके मार्गपर संचरण, यह संदेह उठाकर तत्त्वका निश्चय करके लोग इस प्रकार कहेंगे॥ ४५॥ जैसे क्रमशः धर्मकी हानि प्राप्त हुई थी, उसी प्रकार क्रमशः उसकी वृद्धि होगी; क्योंकि धर्मको पूर्णतः अपना लेनेपर मनुष्य सत्ययुगको प्राप्त कर लेंगे॥ ४६॥ सत्ययुगमें सबका बर्ताव उत्तम होता है और कलियुगमें सदाचारकी हानि बतायी जाती है, जैसे एक ही चन्द्रमा कभी कान्तिसे हीन और कभी कान्तिसे पूर्ण होता है, उसी प्रकार एक ही काल कभी कृतयुग और कभी कलियुगके रूपमें दृष्टिगोचर होता है॥ ४७॥ जैसे चन्द्रमा अमावास्याको अन्धकारसे आच्छन्न होता है, उसी प्रकार कलियुगमें धर्म आच्छादित हो जाता है और जैसे पूर्णिमाको परिपूर्ण चन्द्रमा अन्धकारसे हीन होता है, उसी प्रकार सत्ययुगमें चारों चरणोंसे युक्त परिपूर्ण धर्म सर्वथा प्रकाशित होता है॥ ४८॥

अर्थवादः परं ब्रह्म वेदार्थ इति तं विदुः।
अनिर्णिक्तमविज्ञातं दायाद्यमिव धार्यते॥ ४९

इष्टवादस्तपो नाम तपो हि स्थावरं कृतम्।
गुणैः कर्माभिनिर्वृत्तिर्गुणास्तथ्येन कर्मणा॥ ५०

आशीस्तु पुरुषं दृष्ट्वा देशकालानुवर्तिनी।
युगे युगे यथाकालमृषिभिः समुदाहृता॥ ५१

इह धर्मार्थकामानां देवतानां प्रतिक्रिया।
आशिषश्च शुभाः पुण्यास्तथैवायुर्युगे युगे॥ ५२

यथा युगानां परिवर्तनानि
चिरं प्रवृत्तानि विधिस्वभावात्।
क्षणं न संतिष्ठति जीवलोकः
क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः॥ ५३

जो परब्रह्म परमात्मा है, वह भूतार्थवाद है (परब्रह्मके रूपमें वेदके सत्य अर्थका ही प्रतिपादन हुआ) और विद्वान् पुरुष उसीको वेदका मुख्य अर्थ भी मानते हैं। (यदि ऐसी बात है तो वह सर्वव्यापी नित्यसिद्ध परमात्मा सबको प्राप्त क्यों नहीं होता? इसके उत्तरमें कहते हैं—) जैसे पैतृक सम्पत्तिके रूपमें मिला हुआ मलिन सुवर्णखण्ड जबतक उसका मल दूर न हो, तबतक अज्ञात-दशामें ही धारण किया जाता है और उसे धारण करके भी मनुष्य अपनेको दरिद्र ही मानता है, उसी प्रकार अन्तःकरणके मलिन होनेसे परमात्मा अज्ञात-रूपमें ही धारण किया जाता है; जब अन्तःकरण शुद्ध होता है, तब वह अपने आत्मासे अभिन्नरूपमें प्रकाशित हो उठता है और उसकी अप्राप्तिका भ्रम दूर हो जाता है॥ ४९॥ तप (वर्णाश्रमोचित धर्म) स्वर्गादि अभीष्ट फलोंका प्रतिपादक है, तप स्थावर-अनादि अर्थात् अमोघ फलका साधक है, ऐसा शास्त्रमें निश्चय किया गया है। गुणों (देह-इन्द्रियादि)-से कर्मकी सिद्धि होती है और यथार्थ कर्मसे गुणों (देह-इन्द्रियादि)-की प्राप्ति होती है (अतः इस शरीर और कर्म आदिके बन्धनोंसे छुटकारा पानेके लिये परमात्माका आश्रय लेना चाहिये)॥ ५०॥ ऋषियोंने पुरुषकी योग्यताको सामने रखकर प्रत्येक युगमें यथासमय आशिष (कर्मफलकी प्राप्ति)-का प्रतिपादन किया है, क्योंकि वह देश-कालका अनुसरण करनेवाली होती है॥ ५१॥ इस मर्त्यलोकमें धर्म, अर्थ और कामसम्बन्धी फल, देवाराधनके फल, शुभ एवं पुण्य आशिष तथा आयु प्रत्येक युगमें मनुष्योंकी श्रद्धाके तारतम्यके अनुसार होती हैं॥ ५२॥ जैसे विधाताद्वारा नियत किये हुए स्वभावके अनुसार चिरकालसे युगोंके परिवर्तन होते रहते हैं, उसी प्रकार यह जीव-जगत् ह्रास और वृद्धिके साथ निरन्तर चक्कर लगाता हुआ कभी क्षणभरके लिये भी स्थिर नहीं रहता॥ ५३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कलियुगवर्णने चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें कलियुगका वर्णनविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पञ्चमोऽध्यायः

व्यासजी आदिका गमन, जनमेजयके अश्वमेध यज्ञमें इन्द्रका विघ्न डालना, जनमेजयद्वारा इन्द्रको शाप, ब्राह्मणोंका निर्वासन तथा अपनी पत्नीकी भर्त्सना, विश्वावसुका जनमेजयको समझाना

सूत उवाच

इत्येवमाश्वासयतो राजानं जनमेजयम्।
अतीतानागतं वाक्यमृषेः परिषदा श्रुतम्॥ १

अमृतस्येव संवाहः प्रभा चन्द्रमसो यथा।
अतर्पयत तच्छ्रोत्रं महर्षेर्वाङ्मयो रसः॥ २

धर्मकामार्थसंयुक्तं करुणं वीरहर्षणम्।
रमणीयं तदाख्यानं कृत्स्नं परिषदा श्रुतम्॥ ३

केचिदश्रूणि मुमुचुः श्रुत्वा दध्युस्तथापरे।
इतिहासं तमृषिणा पाणाविव निदर्शितम्॥ ४

सदस्यान् सोऽभ्यनुज्ञाय कृत्वा चापि प्रदक्षिणाम्।
पुनर्द्रक्ष्याम इत्युक्त्वा जगाम भगवानृषिः॥ ५

अनुजग्मुस्तदा सर्वे प्रयान्तमृषिसत्तमम्।
लोके प्रवदतां श्रेष्ठं ये विशिष्टास्तपोधनाः॥ ६

याते भगवति व्यासे तदा ब्रह्मर्षिभिः सह।
ऋत्विजः पार्थिवाश्चैव प्रतिजग्मुर्यथागतम्॥ ७

पन्नगानां सुघोराणां कृत्वा तां वैरयातनाम्।
जगाम रोषमुत्सृज्य राजा विषमिवोरगः॥ ८

होत्राग्निदीप्तशिरसं परित्राय च तक्षकम्।
आस्तीकोऽथाश्रमपदं जगाम स महामुनिः॥ ९

राजापि हास्तिनपुरं जगाम स्वजनावृतः।
अन्वशासच्च मुदितस्तदा प्रमुदिताः प्रजाः॥ १०

कस्यचित् त्वथ कालस्य स राजा जनमेजयः।
दीक्षितो वाजिमेधेन विधिवद् भूरिदक्षिणः॥ ११

संज्ञप्तमश्वं तत्रास्य देवी काश्या वपुष्टमा।
संविवेशोपगम्याथ विधिदृष्टेन कर्मणा॥ १२

तां तु सर्वानवद्याङ्गीं चकमे वासवस्तदा।
संज्ञप्तमश्वमाविश्य तया मिश्रीबभूव सः॥ १३

सूतजी कहते हैं—शौनक! इस प्रकार राजा जनमेजयको आश्वासन देते हुए महर्षि वेदव्यासका वह भूत, भविष्य-सम्बन्धी वचन उस राजसभाके सभी सदस्योंने सुना॥ १॥ महर्षिका वह वाङ्मय रस मानो अमृतका प्रवाह था, चन्द्रमाकी प्रभाके समान मनको आह्लादित करनेवाला था। उसने सबके कानोंको तृप्त कर दिया॥ २॥ धर्म, काम और अर्थसे युक्त, करुणासे भरी हुई तथा वीरोचित हर्षोत्साहको बढ़ानेवाली वह सम्पूर्ण रमणीय वार्ता वहाँ सारी सभाने सुनी॥ ३॥ कुछ लोग आँसू बहाने लगे, कितने ही मनुष्य उस वार्ताको सुनकर ध्यानमग्न हो गये, महर्षि व्यासने उस भावी इतिहासको मानो हाथपर रखकर दिखा दिया था॥ ४॥ तत्पश्चात् वे महर्षि भगवान् व्यास सदस्योंकी अनुमति ले उन सबकी परिक्रमा करके 'हम फिर मिलेंगे' ऐसा कहकर वहाँसे चल लिये॥ ५॥ उस समय वहाँ जो-जो श्रेष्ठ तपोधन मुनि थे, वे सब जगत्के सभी वक्ताओंमें श्रेष्ठ मुनिवर व्यासको जाते देख उनके पीछे हो लिये॥ ६॥ ब्रह्मर्षियोंसहित भगवान् व्यासके चले जानेपर उस समय जो अन्य ऋत्विज और राजा थे, वे भी जैसे आये थे उसी तरह लौट गये॥ ७॥ अत्यन्त भयानक सर्पोंके वैरका वह बदला चुकाकर राजा जनमेजय विषको त्याग कर जानेवाले सर्पकी भाँति रोषको छोड़कर वहाँसे अपने नगरको चले गये॥ ८॥ हवनकी आगसे जिसका सिर तप गया था, उस तक्षकके प्राण बचाकर महामुनि आस्तीक भी अपने आश्रमको चले गये॥ ९॥ राजा जनमेजय भी स्वजनोंसे घिरे हुए वहाँसे हस्तिनापुरको गये और आनन्दपूर्वक रहकर सदा प्रसन्न रहनेवाली प्रजाका शासन एवं संरक्षण करने लगे॥ १०॥ कुछ कालके बाद यज्ञोंमें बहुत-सी दक्षिणा देनेवाले राजा जनमेजयने विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा ली॥ ११॥ उस यज्ञमें जो अश्व मारा गया था, उसके पास जाकर काशिराजकन्या महारानी वपुष्टमाने शास्त्रीय विधिके अनुसार शयन किया॥ १२॥ उन दिनों उन सर्वाङ्गसुन्दरी रानीको देवराज इन्द्र प्राप्त करना चाहते थे। वे उस मारे गये अश्वमें आविष्ट हो रानीके साथ संयुक्त हो गये॥ १३॥

तस्मिन् विकारे जनिते विदित्वा तत्त्वतश्च तत्।
असंज्ञप्तोऽयमश्वस्ते ध्वंसेत्यध्वर्युमब्रवीत्॥ १४

अध्वर्युर्ज्ञानसम्पन्नस्तदिन्द्रस्य विचेष्टितम्।
कथयामास राजर्षेः शशाप स पुरंदरम्॥ १५

जनमेजय उवाच

यद्यस्ति मे यज्ञफलं तपो वा रक्षतः प्रजाः।
फलेनानेन सर्वेण ब्रवीमि श्रूयतामिदम्॥ १६

अद्यप्रभृति देवेन्द्रमजितेन्द्रियमस्थिरम्।
क्षत्रिया वाजिमेधेन न यक्ष्यन्तीति शौनक॥ १७

ऋत्विजश्चाब्रवीत् क्रुद्धः स राजा जनमेजयः।
दौर्बल्यं भवतामेतद् यदयं धर्षितः क्रतुः॥ १८

विषये मे न वस्तव्यं गच्छध्वं सह बान्धवैः।
इत्युक्तास्तत्यजुर्विप्रास्तं नृपं जातमन्यवः॥ १९

अमर्षादन्वशासच्च पत्नीशालागताः स्त्रियः।
राजा परमधर्मज्ञस्तामसौ जनमेजयः॥ २०

असतीं वपुष्टमामेतां निर्यातयत मे गृहात्।
यया मे चरणौ मूर्ध्नि पातितौ रेणुगुण्ठितौ॥ २१

शौण्डीर्यं मेऽनया भग्नं यशो मानश्च दूषितः।
न चैनां द्रष्टुमिच्छामि परिक्लिष्टामिव स्रजम्॥ २२

न स्वादु सोऽश्नाति नरः सुखं स्वपिति वा रहः।
अन्वास्ते यः प्रियां भार्यां परेण मृदितामिह।
पुनर्नैवोपभुञ्जीत श्वावलीढं हविर्यथा॥ २३

एवमुच्चैः प्रभाषन्तं क्रुद्धं पारीक्षितं नृपम्।
गन्धर्वराजः प्रोवाच विश्वावसुरिदं वचः॥ २४

विश्वावसुरुवाच

त्रियज्ञशतयज्वानं वासवस्त्वां न मृष्यते।
अप्सरास्तेन पत्नी ते विहितेयं वपुष्टमा॥ २५

उस अश्वमें विकार उत्पन्न हो जानेपर यथार्थरूपसे इस बातको जानकर राजाने अध्वर्युसे कहा—'अहो! तुम्हारा नाश हो; देखो, तुम्हारा यह अश्व अभी मरा नहीं है'॥ १४॥ अध्वर्यु ज्ञानसे सम्पन्न थे, उन्होंने राजर्षि जनमेजयसे इन्द्रकी वह काली करतूत कह सुनायी, तब राजाने इन्द्रको शाप देते हुए कहा॥ १५॥

जनमेजय बोले—यदि मेरे यज्ञोंका कुछ फल है अथवा प्रजाकी रक्षा करनेसे मुझमें कुछ तपोबल संचित हुआ है तो उन सबके फलसे मेरी कही हुई बात सत्य हो, मैं उस बातको बता रहा हूँ, आपलोग सुनें॥ १६॥ 'आजसे क्षत्रियलोग इस अजितेन्द्रिय और चञ्चल देवराज इन्द्रका अश्वमेध यज्ञके द्वारा यजन नहीं करेंगे' शौनक! इस प्रकार उन्होंने इन्द्रको शाप दे दिया॥ १७॥ तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए राजा जनमेजयने ऋत्विजोंसे कहा—'यह आपलोगोंकी दुर्बलता है, जिससे मेरा यह यज्ञ चौपट कर दिया गया॥ १८॥ अब आपलोग मेरे राज्यमें न रहें, अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ निकल जायँ।' उनके ऐसा कहनेपर वे ब्राह्मण कुपित हो गये और राजाको छोड़कर चल दिये॥ १९॥ यद्यपि वे राजा जनमेजय बड़े धर्मज्ञ थे तो भी अमर्षवश उन्होंने वपुष्टमाके लिये पत्नीशालामें बैठी हुई स्त्रियोंको इस प्रकार आदेश दिया—॥ २०॥ 'यह वपुष्टमा असती (कुलटा) है, इसे मेरे घरसे निकाल दो। इसने इस कुकृत्यद्वारा मेरे मस्तकपर अपने धूलि-धूसर पैर रख दिये॥ २१॥ इस पापिनीने मेरा महत्त्व नष्ट कर दिया, मेरे यश और मानमें धब्बा लगा दिया; मसली हुई फूलकी मालाकी तरह इस अपवित्र हुई नारीको अब मैं देखना भी नहीं चाहता॥ २२॥ जो पर-पुरुषके द्वारा मर्दित हुई अपनी प्यारी भार्याके साथ रहता है, वह न तो स्वादिष्ट अन्न खाता है और न एकान्तमें सुखसे सो ही पाता है। उसे चाहिये कि कुत्तेके चाटे हुए हविष्यकी भाँति पर-पुरुषके समागमसे कलङ्कित हुई भार्याका फिर कभी उपभोग न करे'॥ २३॥ इस प्रकार क्रोधपूर्वक उच्चस्वरसे बोलते हुए राजा जनमेजयसे गन्धर्वराज विश्वावसुने यह बात कही॥ २४॥

विश्वावसु बोले—राजन्! आपने तीन सौ यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया है, इसलिये इन्द्र आपके इस उत्कर्षको सहन नहीं कर पाते हैं। इसीलिये उन्होंने एक अप्सराको आपकी इस पत्नी वपुष्टमाके रूपमें परिणत कर दिया था॥ २५॥

रम्भानामाप्सरा देवी काशिराजसुता मता।
सैषा योषिद्वरा राजन् रत्नभूतानुभूयताम्॥ २६

यज्ञे विवरमासाद्य विघ्नमिन्द्रेण ते कृतम्।
यज्वा ह्यसि कुरुश्रेष्ठ समृद्ध्या वासवोपमः॥ २७

बिभेत्यभिभवाच्छक्रस्तव क्रतुफलैर्नृप।
तस्मादावर्तितश्चैव क्रतुरिन्द्रेण ते विभो॥ २८

मायैषा वासवेनेह प्रयुक्ता विघ्नमिच्छता।
क्रतोर्विवरमासाद्य संज्ञप्तं दृश्य वाजिनम्॥ २९

रतिमिन्द्रेण रम्भायां मन्यसे यां वपुष्टमाम्।
अथ ते गुरवः शप्तास्त्रियज्ञशतयाजिनः॥ ३०

भ्रंशितस्त्वं च विप्राश्च बलादिन्द्रसमादिह।
त्वत्तश्चैव सुदुर्धर्षात् त्रियज्ञशतयाजिनः॥ ३१

बिभेति हि सदा त्वत्तो ब्राह्मणेभ्योऽपि वासवः।
एकेन वै तदुभयं तीर्णं शक्रेण मायया॥ ३२

स एष सुमहातेजा विजिगीषुः पुरंदरः।
कथमन्यैरनाचीर्णं नप्तुर्दारानतिक्रमेत्॥ ३३

यथैव हि परा बुद्धिः परो धर्मः परो दमः।
यथैव परमैश्वर्यं कीर्तितं हरिवाहने।
तथैव त्वयि दुर्धर्षे त्रियज्ञशतयाजिनि॥ ३४

मा वासवं मा च गुरुमात्मानं मा वपुष्टमाम्।
गच्छ दोषेण कालो हि सर्वथा दुरतिक्रमः॥ ३५

ऐश्वर्येणाश्वमाविश्य देवेन्द्रेणासि रोषितः।
आनुकूल्येन देवस्य वर्तितव्यं सुखार्थिना॥ ३६

दुस्तरं प्रतिकूलं हि प्रतिस्त्रोत इवाम्भसः।
स्त्रीरत्नमुपभुङ्क्ष्वेमामपापां विगतज्वरः॥ ३७

जिसे आप काशिराजकी पुत्री रानी वपुष्टमा मानते थे, वह रम्भा नामक अप्सरा थी; अतः राजन्! यह नारियोंमें श्रेष्ठ वपुष्टमा रमणीरत्न है, आप इसका उपभोग करें॥ २६॥ इस यज्ञमें कोई छिद्र पाकर इन्द्रने तुम्हारे लिये यह विघ्न उपस्थित किया था। कुरुश्रेष्ठ! तुम यज्ञकर्ता हो, समृद्धिमें देवराज इन्द्रके समान हो। नरेश्वर! तुम्हारे यज्ञोंके फलोंसे इन्द्रका पराभव न हो जाय, यही सोचकर वे तुमसे डरते हैं। प्रभो! इसीलिये इन्द्रने तुम्हारे इस यज्ञमें विघ्न डाला है॥ २७-२८॥ यज्ञमें कोई त्रुटि अथवा छिद्र मिल जानेसे विघ्न डालनेकी इच्छावाले इन्द्रने यह मायाका प्रयोग किया था। उन्होंने घोड़ेको मारा गया देख उसके भीतर प्रवेश करके रम्भाके साथ रमण किया था, जिसे तुम वपुष्टमा समझने लगे थे। इधर तुमने अपने उन गुरुजनोंको शाप दे दिया, जिन्होंने तुम्हारे तीन सौ यज्ञ कराये थे। तुम और तुम्हारे ब्राह्मण यहाँ इन्द्रके समान बलसे भ्रष्ट कर दिये गये। तुम तीन सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले अत्यन्त दुर्धर्ष वीर थे, तुमसे और उन ब्राह्मणोंसे भी इन्द्र सदा डरते रहते थे; अतः उन्होंने अकेले ही मायाके प्रयोगद्वारा उन दोनों प्रकारके भयोंको पार कर लिया॥ २९—३२॥ विजयकी इच्छा रखनेवाले वे महातेजस्वी इन्द्र जिसे दूसरोंने कभी नहीं किया, वह पापकर्म कैसे कर सकते हैं? अपने पोतेकी पत्नीपर बलात्कार उनके द्वारा कैसे सम्भव हो सकता है?॥ ३३॥ हरिवाहन इन्द्रमें जिस प्रकार उत्तम बुद्धि, उत्कृष्ट धर्म, श्रेष्ठ इन्द्रिय-संयम और परम ऐश्वर्य बतलाया गया है, उसी प्रकार तीन सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले तुझ दुर्धर्ष वीरमें वे सभी बातें हैं॥ ३४॥ अतः तुम इन्द्रमें, गुरु एवं पुरोहितमें, अपनेमें तथा रानी वपुष्टमामें दोषदृष्टि न करो; क्योंकि काल सर्वथा दुर्लङ्घ्य है॥ ३५॥ देवेन्द्रने अपनी ऐश्वर्यशक्तिसे अश्वमें प्रवेश करके तुम्हारे हृदयमें रोष उत्पन्न कर दिया था, अतः सुखार्थी मनुष्यको सदा देवताके अनुकूल बर्ताव करना चाहिये॥ ३६॥ जैसे जलके प्रवाहके प्रतिकूल तैरना कठिन होता है, उसी प्रकार प्रतिकूल देवतासे पार पाना बहुत कठिन है। तुम्हारी रानी निष्पाप हैं, ये रमणियोंमें रत्न हैं, तुम निश्चिन्त होकर इनका उपभोग करो॥ ३७॥

अपापास्त्यज्यमाना वै त्यजेयुरपि योषितः।
अदुष्टास्तु स्त्रियो राजन् दिव्यास्तु सविशेषतः॥ ३८

राजन्! यदि निरपराध स्त्रियोंका त्याग किया जाय तो वे भी निष्पाप पतियोंका परित्याग करने लगेंगी। स्त्रियाँ प्रायः अल्प दोषवाली होती हैं, वे विशेषतः दिव्यभावसे सम्पन्न होती हैं॥ ३८॥

भानोः प्रभा शिखा वह्नेर्वेदी होत्रे तथाहुतिः।
परामृष्टाप्यसंसक्ता नोपदुष्यन्ति योषितः॥ ३९

जैसे सूर्यकी प्रभा, अग्निकी शिखा, यज्ञकी वेदी और होमकी आहुति दूसरेके स्पर्शसे दूषित नहीं होती,उसी प्रकार स्त्रियाँ भी यदि पर-पुरुषोंमें आसक्त न हों तो वे उनके बलपूर्वक किये गये स्पर्शसे कलङ्कित नहीं होती हैं॥ ३९॥

ग्राह्या लालयितव्याश्च पूज्याश्च सततं बुधैः।
शीलवत्यो नमस्कार्याः पूज्याः श्रिय इव स्त्रियः॥ ४०

शीलवती स्त्रियाँ विद्वान् पुरुषोंके लिये लक्ष्मीके समान ग्राह्य, लाड़-प्यारके योग्य, सतत आदरणीया, वन्दनीया तथा पूजनीया होती हैं॥ ४०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि विश्वावसुवाक्ये पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें विश्वावसुका प्रवचनविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

षष्ठोऽध्यायः

जनमेजयका संतुष्ट होकर राज्यशासन करना तथा इस ग्रन्थके पाठ और श्रवणकी महिमा

सौतिरुवाच

एवं स विश्वावसुनानुनीतः
प्रसादमागम्य वपुष्टमायाः।
चकार मिथ्या व्यतिशङ्कितात्मा
शान्तिं परां मानवधर्मदृष्टाम्॥ १
श्रममभिविनिवर्त्य मानसं स
समभिलषज्जनमेजयो यशः स्वम्।
विषयमनुशशास धर्मबुद्धि-
र्मुदितमना रमयन् वपुष्टमां ताम्॥ २
न हि विरमति विप्रपूजना-
न्न च विनिवर्तति यज्ञदानशीलात्।
न विषयपरिरक्षणाच्च्युतोऽभू-
न्न च परिगर्हति तां वपुष्टमां च॥ ३
विधिविहितमशक्यमन्यथा हि यद्-
ऋषिरचिन्त्यतया पुराब्रवीत् सः।
इति स नृपतिरात्मवांस्तदासौ
तदनु विचिन्त्य बभूव वीतमन्युः॥ ४
इदं महाकाव्यमृषेर्महात्मनः
पठन् नृणां पूज्यतमो भवेन्नरः।
प्रकृष्टमायुः समवाप्य दुर्लभं
लभेच्च सर्वज्ञफलं च केशवम्॥ ५

सौति कहते हैं—अकारण ही जिनके मनमें संदेह उत्पन्न हो गया था, उन राजा जनमेजयको जब विश्वावसुने अनुनयपूर्वक समझाया, तब वे रानी वपुष्टमापर प्रसन्न हो गये और उन्होंने मानवधर्मके आचरणसे शान्ति धारण की॥ १॥ वे राजा जनमेजय मानसिक श्रमको दूर करके अपने लिये उत्तम यशकी अभिलाषा रखते हुए धर्मबुद्धिसे राज्यका शासन तथा प्रसन्नचित्त होकर वपुष्टमाके साथ रमण करने लगे॥ २॥ वे ब्राह्मणोंके पूजन, आदर-सत्कारसे कभी विरत नहीं होते थे, यज्ञ और दानरूप शीलसे कभी पीछे नहीं हटते थे, राज्यके रक्षारूप कर्मसे च्युत नहीं होते थे और अपनी रानी वपुष्टमाकी कभी निन्दा नहीं करते थे॥ ३॥ 'विधाताके विधानको उलट देना सर्वथा असम्भव है' यह बात जो अचिन्त्य तपस्वी महर्षि व्यासने पहले कही थी, उनके इस कथनपर उन मनस्वी नरेशने बारम्बार विचार किया, इससे उनका रोष और खेद जाता रहा॥ ४॥ महात्मा महर्षि व्यासजीके इस महाकाव्यका पाठ करनेवाला मानव मनुष्योंमें परम पूजनीय हो जाता है। वह परम उत्तम दुर्लभ आयु पाकर सर्वज्ञतारूप फल और भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त कर लेता है॥ ५॥

शतक्रतोः कल्मषविप्रमोक्षणं
पठन्निदं मुच्यति कल्मषान्नरः।
तथैव कामान् विविधान् समश्नुते
ह्यवाप्तकामश्च चिराय नन्दति॥ ६
यथा हि पुष्पप्रभवं फलं द्रुमाः
फलात् प्रजायन्ति पुनश्च पादपाः।
तथा महर्षिप्रभवा इमा गिरः
प्रवर्धयन्ते तमृषिं प्रवर्धिताः॥ ७
पुत्रानपुत्रो लभते सुवर्चस-
श्च्युतः पुनर्विन्दति चात्मनः स्थितिम्।
व्याधिं न चाप्नोति चिरं स बन्धनं
क्रियां च पुण्यां लभते गुणान्वितः॥ ८
पतिमभिलभते च सत्सु कन्या
श्रवणमुपेत्य शुभा मुनेस्तु वाचः।
जनयति च सुतान् गुणैरुपेतान्
रिपुजनमर्दनवीर्यशालिनश्च ॥ ९
विजयति वसुधां च राजवृत्ति
र्धनमतुलं लभते द्विषज्जयं च।
विपुलमपि धनं लभेच्च वैश्यः
सुगतिमियाच्छ्रवणाच्च शूद्रजातिः॥ १०
पुराणमेतच्चरितं महात्मना-
मधीत्य बुद्धिं लभते च नैष्ठिकीम्।
विहाय दुःखानि विमुक्तसङ्गः
स वीतरागो विचरेद् वसुंधराम्॥ ११
इत्येतदाख्यानमुदाहृतं वै
प्रतिस्मरन्तो द्विजमण्डलेषु।
स्थैर्येण धैर्येण पुनः स्मरन्तः
सुखं भवन्तोऽनुचरन्तु लोकम्॥ १२
इति चरितमिदं महात्मना-
मृषिकृतमद्भुतवीर्यकर्मणाम् ।
कथितमिदं हि समासविस्तरैः
किमपरमिच्छसि किं ब्रवीमि ते॥ १३

इन्द्रके पापको छुड़ानेवाले इस काव्यका पाठ करनेवाला पुरुष स्वयं भी पापसे मुक्त हो जाता है। साथ ही नाना प्रकारकी मनोवाञ्छित कामनाओंका उपभोग करता और आप्तकाम होकर चिरकालतक आनन्दमें मग्न रहता है॥ ६॥ जैसे बढ़े हुए वृक्ष अपने फूलोंसे फलको प्रकट करते हैं और फलसे पुनः वृक्ष उत्पन्न होते एवं बढ़ते हैं, उसी प्रकार महर्षि व्याससे प्रकट हुई उनकी यह वाणी वक्ताओंद्वारा बढ़ायी—प्रचारमें लायी जानेपर उन महर्षिके ही महत्त्वको बढ़ाती है॥ ७॥ इस ग्रन्थका पाठ अथवा श्रवण करनेवाला गुणवान् पुरुष यदि पुत्रहीन है तो उसे परम तेजस्वी पुत्र प्राप्त होते हैं, यदि वह धन, धर्म अथवा महत्त्वसे भ्रष्ट हुआ है तो पुनः अपनी उसी स्थितिको प्राप्त कर लेता है, उसे रोग नहीं होता, वह चिरकालतक बन्धनमें नहीं रहता तथा पुण्यकर्मका फल पाता है॥ ८॥ महर्षि व्यासकी इस मङ्गलमयी वाणीको सुनकर कुमारी कन्या श्रेष्ठ पुरुषोंमेंसे किसी अभीष्ट पतिको पाती है तथा वह उत्तम गुणोंसे सम्पन्न एवं शत्रुओंका मर्दन करनेवाले पराक्रमसे सुशोभित अनेक पुत्रोंको जन्म देती है॥ ९॥ क्षत्रियवृत्तिसे रहनेवाला पुरुष इस ग्रन्थके पाठ और श्रवणसे भूमण्डलपर विजय पाता, अनुपम धनका भागी होता और शत्रुओंको परास्त कर देता है। वैश्य प्रचुर धन प्राप्त करता है और शूद्र-जातिका पुरुष इसके श्रवणसे उत्तम गति पा लेता है॥ १०॥ महात्माओंके चरित्रसे युक्त इस पुराणका अध्ययन करके मनुष्य नैष्ठिकी बुद्धि प्राप्त कर लेता है तथा वह दुःखोंका परित्याग करके आसक्तिशून्य एवं वीतराग होकर भूमण्डलपर विचरता रहता है॥ ११॥ मेरेद्वारा कहे गये इस आख्यानका ब्राह्मणोंके समाजमें चिन्तन एवं प्रवचन करते हुए आपलोग स्थिरता और धीरतापूर्वक इसका बारम्बार स्मरण करें और संसारमें सुखपूर्वक विचरें॥ १२॥ अद्भुत बल-पराक्रमवाले महात्माओंका यह चरित्र, जिसे महर्षि व्यासने ग्रन्थका रूप दिया है, मैंने संक्षेप और विस्तारके साथ कह सुनाया। शौनकजी! अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? मैं आपसे क्या कहूँ?॥ १३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि भविष्यान्तग्रन्थार्थप्रकाशो नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें भविष्यान्तग्रन्थके अर्थका प्रकाशविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सप्तमोऽध्यायः

पुष्कर-प्रादुर्भावके विषयमें जनमेजयका प्रश्न और वैशम्पायनजीका उत्तर—भगवान् नारायणकी महिमाका प्रतिपादन

जनमेजय उवाच

प्रभावं पद्मनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि।
पुष्करे वै यथोद्भूता देवाः सर्षिगणाः पुरा॥ १

एतदाख्याहि निखिलं योगं योगविदां पते।
शृण्वतस्तस्य मे कीर्तिं न तृप्तिरभिजायते॥ २

कियन्तं चैव कालं वै शयिता पुरुषोत्तमः।
किमर्थं च तथा शेते कश्च कालस्य सम्भवः॥ ३

कियता चैव कालेन प्रबुध्यति सुराधिपः।
कथमुत्थाय भगवानसृजन्निखिलं जगत्॥ ४

के प्रजापतयस्तात आसन् पूर्वं महामुने।
कथं निर्मितवांश्चैव चित्रं लोकं सनातनः॥ ५

कथमेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे।
नष्टे देवासुरगणे प्रणष्टोरगराक्षसे॥ ६

नष्टानलानिले लोके नष्टाकाशमहीतले।
केवलं गह्वरीभूते महाभूतविपर्यये॥ ७

प्रभुर्महाभूतपतिर्महातेजा महाकृतिः।
आस्ते सुरगुरुश्रेष्ठो विधिमादाय कं मुने॥ ८

तन्मे त्वमुपपन्नाय ब्रह्मन्नेतदसंशयम्।
वक्तुमर्हसि धर्मिष्ठ यशो नारायणात्मकम्॥ ९

प्रादुर्भावं पुरस्कृत्य भूतं भव्यं महात्मनः।
श्रद्धानामुपविष्टानां भगवन् वक्तुमर्हसि॥ १०

जनमेजयने पूछा—योगवेत्ताओंके स्वामी वैशम्पायनजी! आप समुद्रके जलमें शयन करनेवाले भगवान् पद्मनाभके प्रभावका वर्णन कीजिये। साथ ही यह भी बताइये कि पुष्करमें—भगवान्के नाभिकमलमें पहले देवताओं और ऋषियोंकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई, इस सम्पूर्ण रहस्यपर प्रकाश डालिये; क्योंकि भगवान् श्रीहरिकी कीर्तिका श्रवण करनेसे मुझे तृप्ति नहीं होती है (अधिकाधिक सुननेकी इच्छा बढ़ती है)॥ १-२॥ भगवान् पुरुषोत्तम कितने समयतक और किसलिये एकार्णवके जलमें शयन करते हैं तथा कालकी उत्पत्तिका कारण क्या है?॥ ३॥ सुरेश्वर विष्णु कितने समयमें जागते हैं और उस योगनिद्रासे उठकर वे भगवान् किस प्रकार सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं?॥ ४॥ तात! महामुने! पूर्वकालमें कौन-कौन-से प्रजापति थे और सनातन श्रीहरिने इस विचित्र जगत्की सृष्टि किस प्रकार की थी?॥ ५॥ मुने! उस भयानक एकार्णवमें जब कि समस्त चराचर प्राणी नष्ट हो जाते हैं, देवताओं और असुरोंका भी पता नहीं रहता, नाग और राक्षस भी कालके गालमें चले जाते हैं, अग्नि, वायु, आकाश और भूतलका भी कुछ पता नहीं चलता, महाभूतोंमें भारी उलट-फेर हो जाता है और संसार एक गहन गुफाके समान प्रतीत होता है, महाभूतोंके अधिपति महान् कर्म करनेवाले और महातेजस्वी सुरगुरुश्रेष्ठ भगवान् नारायण कैसे और किस विधिका आश्रय लेकर रहते हैं?॥ ६—८॥ ब्रह्मन्! धर्मिष्ठ महर्षे! मैं शिष्यभावसे आपकी शरणमें आया हूँ, आप मुझसे भगवान् नारायणके यशका इस प्रकार वर्णन कीजिये कि मेरा सारा संशय दूर हो जाय॥ ९॥ भगवन्! हमलोग श्रद्धापूर्वक आपकी बातें सुननेके लिये बैठे हैं, आप हमारे समक्ष महात्मा श्रीहरिके भूत और भविष्य अवतारोंको दृष्टिमें रखकर उनके सुयशका वर्णन कीजिये॥ १०॥

वैशम्पायन उवाच

नारायणयशोज्ञाने या भवेद् भवतः स्पृहा।
त्वद्वंशानघ पूतस्य कार्यं कुरुकुलर्षभ॥ ११

श्रृणुष्वादिपुराणेभ्यो देवताभ्यो यथाश्रुति।
ब्राह्मणानां च वदतां श्रुतोऽस्माभिर्महात्मनाम्॥ १२

यथा च तपसा दृष्टो बृहस्पतिसमद्युतिः।
पाराशर्यस्ततः श्रीमान् गुरुर्द्वैपायनोऽब्रवीत्॥ १३

तत् तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम्।
न विज्ञातुं मया शक्यमृषिमात्रेण भारत॥ १४

कः समुत्सहते ज्ञातुं परं नारायणात्मकम्।
विश्वात्मनो यं ब्रह्मापि न वेदयति तत्त्वतः॥ १५

श्रुतं मे विश्वदेवानां यद् रहस्यं महर्षिणाम्।
तदिदं सर्वदेवानां तत्त्वतस्तत्त्ववादिनाम्॥ १६

तदध्यात्मविदां चिन्त्यं कारणं चैव कर्मिणाम्।
अधिदैवं च यद् दैवं तद् दैवमिति संज्ञितम्॥ १७

यद् भूतमधिभूतं च यत्परं च महर्षिणाम्।
यत् सत्यं वेददृष्टं च यत् तद् वेदविदो विदुः॥ १८

यः कर्ता कारको बुद्धिर्मनः क्षेत्रज्ञ एव च।
प्रधानं पुरुषः शास्ता एकस्तदभिशब्द्यते॥ १९

कालः कालं स्वपयति द्रष्टा स्वाधीन एव च।
प्राणः पञ्चविधश्चैव ध्रुवमक्षरमेव च ॥ २०

उच्यते विविधैर्भावैस्तस्यैवानघ तत्परैः।
स एव भगवान् सर्वं करोति विकरोति च॥ २१

योऽस्मान् कारयते कर्म तेनास्म व्याकुलीकृताः।
यजामहे तमेवेशं तमेवेच्छाम निर्वृताः॥ २२

वैशम्पायनजीने कहा—निष्पाप कुरुकुलश्रेष्ठ जनमेजय! भगवान् नारायणके यशका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये जो तुम्हें स्पृहा हो रही है, वह तुम्हारे कुलके अनुरूप ही है, ऐसी इच्छाका उदय होना पुण्यकर्मका फल है॥ ११॥ हमने पूर्वकालके पुरातन देवताओं तथा प्रवचन करनेवाले महात्मा ब्राह्मणोंके मुखसे श्रुतिके अनुसार भगवान् पद्मनाभके प्रभावका जैसा वर्णन सुना है, उसे बताता हूँ, सुनो॥ १२॥ भारत! जिनका तपस्याके प्रभावसे दर्शन हुआ है, उन बृहस्पतिके समान तेजस्वी श्रीमान् गुरुदेव पराशरनन्दन द्वैपायन व्यासने इस विषयमें जैसा मुझे उपदेश दिया है और जैसा मैंने सुना है, उसका मैं अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन करता हूँ। केवल ऋषि होनेमात्रसे उनकी कही हुई बातोंको उन्हींकी भाँति ठीक-ठीक समझ लेना मेरे लिये भी सम्भव नहीं है॥ १३-१४॥ जिन्हें ब्रह्मा भी ठीक-ठीक नहीं जानते, उन विश्वात्माके नारायणनामक परमतत्त्वको कौन जान सकता है॥ १५॥ जिनकी दृष्टिमें सब कुछ नारायणदेव ही हैं तथा जो स्वभावसे ही परमतत्त्वका प्रतिपादन करनेवाले हैं, उन विश्वेदेवों और महर्षियोंके मुखसे मैंने जो गोपनीय रहस्य सुना है, वह वास्तवमें यह नारायणका यश ही है॥ १६॥ वह नारायण-तत्त्व ही अध्यात्मवेत्ता पुरुषोंके लिये चिन्तनीय वस्तु है, वही कर्मपरायण पुरुषोंका कारणतत्त्व है, वही अधिदैव और दैव है तथा उसीको प्रारब्ध या भाग्य नाम दिया गया है॥ १७॥ जो भूत और अधिभूत है, जो महर्षियोंका परम ज्ञेय तत्त्व है, जो सत्य है तथा जिसे वेदोंद्वारा देखा या जाना गया है, उस परमात्मतत्त्वको जो जानते हैं, वे ही वेदवेत्ता हैं॥ १८॥ जो कर्ता, कारक, बुद्धि, मन, क्षेत्रज्ञ, प्रधान पुरुष और शास्ता है, जो अकेला ही इन शब्दोंद्वारा प्रतिपादित होता है, वह एकमात्र परमात्मा ही जानने योग्य है॥ १९॥ वही काल बनकर कालको भी सुलाता है अर्थात् वही कालका भी काल है, वही सबका द्रष्टा तथा सर्वथा स्वतन्त्र है, पाँच प्रकारका प्राण भी वही है, वही ध्रुव एवं अक्षर ब्रह्म है॥ २०॥ अनघ! उनकी उपासनामें तत्पर रहनेवाले पुरुषोंद्वारा विविध भावोंसे उन्हींका प्रतिपादन किया जाता है। वे ही भगवान् सबको बनाते और बिगाड़ते हैं॥ २१॥ जो हमसे कर्म कराता है, उसीने हमें विधि-निषेधके बन्धनमें बाँधकर व्याकुल कर रखा है। हम उसी ईश्वरका यज्ञोंद्वारा यजन करते हैं और शान्तभावसे उन्हींको पाना चाहते हैं॥ २२॥

योवक्ता यश्च वक्तव्यो यश्चाहं तद् ब्रवीमि वः।
इदं शृणुत यच्छ्रेयो यच्चान्यत् परिजल्पथ॥ २३

याः कथाश्चैव वर्तन्ते श्रुतयो वाथ गह्वराः।
विश्वं विश्वपतिर्देवाः सर्वं नारायणात्मकम्॥ २४

यत् सत्यं यदनृतमादिमक्षरं वै
यद् भूतं भवति मिथश्च यद् भविष्यम्।
यत् किंचिच्चरमचराव्ययं त्रिलोके
तत्सर्वं पुरुषवरः प्रभुर्वरिष्ठः॥ २५

जो वक्ता (वाणीका प्रवर्तक) है, जो वक्तव्य विषय है तथा जो वक्तापनका अभिमान रखनेवाले मुझ जीवात्माके रूपमें भी विद्यमान है, उसके स्वरूपका मैं तुम्हारे समक्ष प्रतिपादन करता हूँ, तुम इसे सुनो। जो मुख्य श्रेय (मोक्ष) है तथा तुमलोग जिस स्वर्ग आदि दूसरे श्रेयकी चर्चा करते हो, जो भाँति-भाँतिकी कथाएँ हैं तथा जो गहन श्रुतियाँ हैं, वह सब भगवान् नारायणका स्वरूप ही है। यह विश्व, इस विश्वके पालक तथा देवता सब-के-सब नारायणरूप ही हैं॥ २३-२४॥ जो लौकिक सत्य और असत्य है, जो कारण और कार्य है, जो भूत है, जो परस्पर एक-दूसरेके जनक बीज-वृक्ष आदि हैं, जो भविष्य है तथा तीनों लोकोंमें जो कुछ भी चर-अचर और कूटस्थ वस्तु है, वह सब कुछ सर्वश्रेष्ठ पुरुषप्रवर भगवान् नारायण ही हैं॥ २५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पुष्करप्रादुर्भावे सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्करप्रादुर्भावविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥

अष्टमोऽध्यायः

सत्ययुग आदिके परिमाणका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा जनमेजय॥ १

तत्र धर्मश्चतुष्पादो ह्यधर्मः पादविग्रहः।
स्वधर्मनिरताः सन्तो यजन्ते चैव मानवाः॥ २

स्थिता धर्मपरा विप्रा राजवृत्तौ स्थिता नृपाः।
कृष्यामभिरता वैश्याः शूद्राः शुश्रूषवस्तथा॥ ३

सदा सत्यं तपश्चैव धर्मश्चैव विवर्धते।
सद्भिराचरितं यच्च क्रियते ख्यायते च यत्॥ ४

एतत् कृतयुगे वृत्तं सर्वेषामेव भारत।
प्राणिनां धर्मबुद्धीनामपि चेन्नीचयोनिनाम्॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! विद्वान् पुरुष सत्ययुगकी आयुका प्रमाण चार हजार दिव्य वर्ष बताते हैं। उससे दूने सौ अर्थात् आठ सौ वर्षोंकी उसकी संध्या होती है॥ १॥ उस युगमें धर्म अपने चारों चरणोंसे[1] सम्पन्न होता है तथा अधर्मका सारा शरीर एक ही पैरपर स्थित होता है। उस समय अपने धर्ममें तत्पर रहनेवाले साधु पुरुष प्रायः यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन किया करते हैं॥ २॥ ब्राह्मण स्वधर्मपालनमें तत्पर रहते हैं, राजालोग राजोचित वृत्तिमें स्थित होते हैं, वैश्य कृषिकर्ममें लगे रहते हैं और शूद्र तीनों वर्णोंकी सेवा करते हैं॥ ३॥ उस युगमें सत्य, तप और धर्मकी सदा ही वृद्धि होती है। साधु पुरुष जिसका आचरण करते हैं, उसीका दूसरोंको उपदेश देते हैं॥ ४॥ भारत! सत्ययुगमें सभी धर्मबुद्धि प्राणियोंका, वे नीच योनि या नीच कुलमें क्यों न उत्पन्न हुए हों, ऐसा ही बर्ताव होता है॥ ५॥

१. तप, शौच, दया और सत्य—ये धर्मके चार चरण हैं।

त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते।
तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा परिकीर्तिता॥ ६

द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यां त्रिभिर्धर्मो व्यवस्थितः।
तत्र सत्यं च सत्त्वं च कृते सर्वं प्रवर्तते॥ ७

त्रेतायां विकृतिं यान्ति वर्णा लौल्येन संयुताः।
चातुर्वर्ण्यस्य वैकृत्याद् यान्ति दौर्बल्यमाश्रिताः॥ ८

एष त्रेतायुगविधिर्विहितो देवनिर्मितः।
द्वापरस्यापि या चेष्टा तामपि श्रोतुमर्हसि॥ ९

द्वापरं द्वे सहस्रे तु वर्षाणां कुरुसत्तम।
तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा परिकीर्तिता॥ १०

तत्राप्यर्थपरा विप्रा ज्ञानिनो रजसाऽऽवृताः।
शठा नैष्कृतिकाः क्षुद्रा जायन्ते कुरुपुङ्गव॥ ११

द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पद्भ्यामधर्मस्त्रिभिरुत्थितः।
विपर्ययं शनैर्यान्ति कृते ये धर्मसेतवः॥ १२

ब्राह्मण्यभावा नश्यन्ति तथास्तिक्यं विशीर्यते।
व्रतोपवासास्त्यज्यन्ते द्वापरे युगपर्यये॥ १३

तथा वर्षसहस्रं तु वर्षाणां द्वे शते तथा।
संध्यया सह संख्यातं क्रूरं कलियुगं स्मृतम्॥ १४

तत्राधर्मश्चतुष्पादः स्याद् धर्मः पादविग्रहः।
कामनिष्ठास्तमश्छन्ना जायन्ते तत्र मानवाः॥ १५

नैवोपवासकृत् कश्चिन्न च साधुर्न सत्यवाक्।
आस्तिको ब्रह्मवक्ता वा नरो भवति वै तदा॥ १६

अहंकारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहबन्धनाः।
विप्राः शूद्रसमाचाराः शूद्रास्त्वाचारलक्षणाः॥ १७

दूषकास्त्वाश्रमाणां च वर्णानां चैव संकराः।
अगम्यास्वभिरंस्यन्ते वर्तन्त्येवं कलौ युगे॥ १८

यहाँ तीन हजार दिव्य वर्षोंका त्रेतायुग बताया जाता है। उसकी संध्या उससे दुगुने सौ (अर्थात् छः सौ) वर्षोंकी बतायी गयी है॥ ६॥ उस युगमें धर्म तीन पैरोंसे और अधर्म दो पैरोंसे स्थित होता है। सत्ययुगमें सत्य और सत्त्वगुण सब अविकलरूपसे विद्यमान रहते हैं॥ ७॥ परंतु त्रेतामें लोलुपता (कर्मफलकी स्पृहा)-से युक्त होनेके कारण सभी वर्ण विकारको प्राप्त होते हैं और चारों वर्णोंमें विकृति आनेसे सब लोग दुर्बल हो जाते हैं॥ ८॥ यह त्रेतायुगकी स्थिति बतायी गयी, जिसका निर्माण साक्षात् भगवान्‌ने ही किया है। अब द्वापरकी जो चेष्टा है, उसको भी तुम्हें सुन लेना चाहिये॥ ९॥ कुरुश्रेष्ठ! द्वापरयुग दो हजार दिव्य वर्षोंका होता है और उसकी संध्या चार सौ वर्षोंकी बतायी गयी है॥ १०॥ कुरुपुङ्गव! उस युगमें भी अर्थपरायण, ज्ञानी, रजोगुणसे आच्छन्न, शठ, दुष्टता करनेवाले और क्षुद्र ब्राह्मण आदि पैदा होते हैं॥ ११॥ उस समय धर्म दो ही पैरोंसे स्थित होता है, किंतु अधर्म तीन पैरोंसे खड़ा होकर क्रमशः उत्थान करने लगता है। सत्ययुगमें जो धर्मकी मर्यादाएँ बँधी होती हैं, वे धीरे-धीरे इस युगमें आकर उलट जाती हैं॥ १२॥ ब्राह्मणत्वके भाव नष्ट हो जाते हैं, आस्तिकताकी दीवार ढह जाती है, द्वापरयुगके अन्तमें कलिधर्मका सम्मिश्रण हो जानेके कारण लोग व्रत और उपवास छोड़ देते हैं॥ १३॥ क्रूर कलियुग अपनी दो सौ वर्षोंकी संध्याके साथ एक हजार दिव्य वर्षोंका बताया गया है॥ १४॥ उस युगमें अधर्म अपने चारों पैरोंसे सम्पन्न होता है, किंतु धर्मका शरीर एक ही पैरसे टिका रहता है। उस युगके मनुष्य प्रायः कामपरायण और तमोगुणसे आच्छन्न होते हैं॥ १५॥ कलिकालमें प्रायः कोई मनुष्य उपवास करनेवाला, साधु, सत्यवादी, आस्तिक तथा ब्रह्मज्ञानका उपदेश करनेवाला नहीं होता है॥ १६॥ कलियुगके ब्राह्मण अहंकारके वशीभूत तथा स्नेहबन्धनसे शून्य हो शूद्रोंके समान आचारवाले हो जायँगे और शूद्र सदाचारका पालन करेंगे॥ १७॥ लोग आश्रमोंको कलङ्कित करेंगे, वर्णसङ्कर उत्पन्न होकर अगम्या

एवं द्वादशसाहस्त्रं तदेकं युगमुच्यते।
तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते॥ १९

त्रय्यां चैव न संदेहो युगान्ते जनमेजय।
दिव्यं द्वादशसाहस्त्रं युगं तु कवयो विदुः।
एतत्सहस्त्रपर्यन्तं तदहो ब्राह्ममुच्यते॥ २०

ततोऽहनि गते तस्मिन् सर्वेषामेव देहिनाम्।
शरीरनिर्वृतिं दृष्ट्वा रुद्रः संहारबुद्धिमान्॥ २१

देवतानां च सर्वेषां ब्राह्मणानां महीपते।
दैत्यानां मानवानां च यक्षगन्धर्वरक्षसाम्॥ २२

देवर्षीणां ब्रह्मर्षीणां तथा राजर्षिणामपि।
किंनराणामप्सरसां भुजङ्गानां तथैव च॥ २३

पर्वतानां नदीनां च पशूनां चैव भारत।
तिर्यग्योनिगतानां च सत्त्वानां मृगपक्षिणाम्॥ २४

महाभूतपतिर्देवः पञ्चभूतानि भूतकृत्।
जगत्संहरणार्थाय कुरुते वैशसं महत्॥ २५

भूत्वा सूर्यश्चक्षुषी चाददानो
भूत्वा वायुः संहरन् प्राणिजातम्।
भूत्वा वह्निर्दह्यते सर्वलोकान्
मेघो भूत्वा भूय एवाभ्यवर्षत्॥ २६

स्त्रियोंके साथ रमण करेंगे, कलियुगमें प्रायः लोगोंका ऐसा ही बर्ताव होता है॥ १८॥ इस प्रकार बारह हजार दिव्य वर्षोंका एक चतुर्युग कहलाता है। यहाँ इकहत्तर चतुर्युगोंका एक मन्वन्तर कहा जाता है (इतने समयके बाद एक मनु नष्ट हो जाते हैं)॥ १९॥ जनमेजय! युगान्त (प्रलय)-कालमें समस्त चराचर जगत्का नाश हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है। तीनों वेदोंमें भी इसका वर्णन मिलता है। ज्ञानी पुरुष बारह हजार दिव्य वर्षोंका एक चतुर्युग मानते हैं। इस चतुर्युगकी जब एक सहस्त्र आवृत्ति हो जाती है, तब उसे ब्रह्माका एक दिन कहते हैं॥ २०॥ पृथ्वीनाथ! तदनन्तर ब्रह्माजीका वह दिन बीतनेपर समस्त देहधारियोंकी शारीरिक सुखमें आसक्ति देखकर संहारकुशल रुद्रदेव समस्त देवताओं, ब्राह्मणों, दैत्यों, मनुष्यों, यक्षों, गन्धर्वों, राक्षसों, देवर्षियों, ब्रह्मर्षियों, राजर्षियों, किन्नरों, अप्सराओं, सर्पों, पर्वतों, नदियों, पशुओं, तिर्यक्योनिमें पड़े हुए जीवों, मृगों तथा पक्षियोंका भी महान् संहार करते हैं, महाभूतोंके पति वे भूतस्रष्टा भगवान् सारे भूतों एवं जगत्का संहार करनेके लिये ही उनकी सृष्टि करते हैं॥ २१—२५॥ अपने दिनके अन्तमें रुद्रस्वरूप भगवान् ब्रह्मा सूर्य होकर समस्त लोकोंके नेत्र छीन लेते हैं, वायु होकर समस्त प्राणियोंके प्राण हर लेते हैं, अग्नि होकर समस्त लोकोंको दग्ध कर देते और मेघ बनकर पुनः बड़ी भारी वर्षा करते हैं (जिससे सब कुछ एकार्णवमें निमग्न हो जाता है)॥ २६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पुष्करप्रादुर्भावे कृतादियुगपरिमाणवर्णने अष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्करप्रादुर्भावके प्रसङ्गमें युग आदिके प्रमाणका वर्णनविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

नवमोऽध्यायः

प्रलयके पश्चात् एकार्णवके जलमें भगवान् नारायणका शयन

वैशम्पायन उवाच

भूत्वा नारायणो योगी सप्तमूर्तिर्विभावसुः।
गभस्तिभिः प्रदीप्ताभिः संशोषयति सागरान्॥ १

पीत्वार्णवांश्च सर्वान् स नदीः कूपांश्च सर्वशः।
पर्वतानां च सलिलं सर्वं पीत्वा च रश्मिभिः॥ २

भित्त्वा सहस्रशश्चैव महीं नीत्वा रसातलम्।
रसातलगतं कृत्स्नं पिबते रसमुत्तमम्॥ ३

अप्सु सृजन् क्लेदमन्यद् ददाति प्राणिनां ध्रुवम्।
तत् सर्वमरविन्दाक्ष आदत्ते पुरुषोत्तमः॥ ४

वायुश्च बलवान् भूत्वा स विधूयाखिलं जगत्।
प्राणोदयं सुराणां च वायुना कुरुते हरिः॥ ५

ततो देवगणानां च सर्वेषामेव देहिनाम्।
ये चेन्द्रियगणाः सर्वे ये चान्ये च यतोद्भवाः।
पूयं घ्राणं शरीरं च पृथिवीमाश्रिता गुणाः॥ ६

जिह्वा रसश्च क्लेदश्च संश्रिताः सलिलं गुणाः।
रूपं चक्षुर्विपाकश्च ज्योतिरेवाश्रिता गुणाः॥ ७

स्पर्शः प्राणश्च चेष्टा च पवनं संश्रिता गुणाः।
परमेष्ठिनं वरेण्यं च हृषीकेशं समाश्रिताः॥ ८

ततो भगवता तत्र रश्मिभिः परिवारिताः।
वायुना कृष्यमाणाश्च रूपान्योन्यसमाश्रयात्॥ ९

तेषां संघर्षजोद्भूतः पावकः शतधा ज्वलन्।
अदहन्निखिलाँल्लोकानुग्रः संवर्तकोऽनलः॥ १०

सपर्वतांस्तरून् गुल्माल्लँतावल्लीस्तृणानि च।
विमानानि च दिव्यानि पुराणि विविधानि च॥ ११

आश्रमांश्च तथा पुण्यान् दिव्यान्यायतनानि च।
यानि चाश्रयणीयानि तानि सर्वाणि सोऽदहत्॥ १२

भस्मीभूतांस्ततः सर्वाँल्लोकाँल्लोकगुरुर्हरिः।
भूयो निर्वापयामास जलयुक्तेन कर्मणा॥ १३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! योगेश्वर भगवान् नारायण सात मूर्ति (शिखा)-वाले अग्निदेवका रूप धारण करके अपनी प्रज्वलित किरणोंद्वारा समुद्रोंका जल सोख लेते हैं॥ १॥ सारे समुद्रों, नदियों, कूपों और पर्वतोंका सम्पूर्ण जल अपनी किरणोंद्वारा पीकर पृथ्वीके सहस्रों टुकड़े करके उसे रसातलमें ले जाकर वे रसातलका भी सारा उत्तम रस पी लेते हैं॥ २-३॥ जलमें क्लेद (गीलापन)-की सृष्टि करते हुए वे प्राणियोंको निश्चितरूपसे और जो कुछ देते हैं, वह सब प्रलयकालमें वे ही कमलनयन पुरुषोत्तम उनसे ले लेते हैं॥ ४॥ वे श्रीहरि बलवान् वायु होकर सम्पूर्ण जगत्को कम्पित करते हुए उस वायुके द्वारा ही देवताओंमें प्राणसंचार करते हैं॥ ५॥ तदनन्तर देवताओं तथा समस्त देहधारियोंकी जो सारी इन्द्रियाँ हैं तथा जो अन्य विषय आदि हैं, उनकी जहाँसे उत्पत्ति हुई है, वे उसी कारणतत्त्वमें लीन हो जाते हैं। गन्ध, घ्राणेन्द्रिय और शरीर—ये तीनों गुण पृथ्वीके आश्रित हैं॥ ६॥ जिह्वा, रस और क्लेद—ये जलके आश्रित रहनेवाले गुण हैं। रूप, नेत्र और पाक—ये अग्निके आश्रित रहनेवाले गुण हैं॥ ७॥ स्पर्श, प्राण और चेष्टा—ये वायुके आश्रित रहनेवाले गुण हैं। (शब्द, श्रवणेन्द्रिय और आकाश—ये शब्दके आश्रित रहनेवाले गुण हैं।) ये सब-के-सब परमेष्ठी एवं वरणीय भगवान् हृषीकेशके आश्रित होते हैं॥ ८॥ फिर भगवान्की प्रेरणासे उनकी किरणोंसे आवेष्टित हो वे देवगण, इन्द्रियसमुदाय आदि वायुसे आकर्षित हो एक-दूसरेके आश्रित होनेसे परस्पर संघर्ष करने लगे॥ ९॥ उनके संघर्षसे प्रकट हुई अग्नि सौ-सौ स्थानोंमें जल उठी और महाभयंकर संवर्तक अग्निके रूपमें उद्भासित होने लगी। उसने सम्पूर्ण लोकोंको जलाकर भस्म कर दिया॥ १०॥ उस संवर्तक अग्निने पर्वत, वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली, तृण, दिव्य विमान, नाना प्रकारके नगर, पुण्य आश्रम, दिव्य शोभासे सम्पन्न मन्दिर तथा अन्य जो-जो आश्रय लेनेयोग्य स्थान थे—उन सबको दग्ध कर डाला॥ ११-१२॥ तत्पश्चात् लोकगुरु श्रीहरिने भस्मीभूत हुए उन समस्त लोकोंको पुनः जलका संयोग करानेवाले उपायसे बुझा दिया॥ १३॥

सहस्रदृङ्महातेजा भूत्वा कृष्णो महाघनः।
दिव्यतोयेन हविषा तर्पयामास मेदिनीम्॥ १४

ततः क्षीरनिकाशेन स्वादुना परमाम्भसा।
शिवेन पुण्येन मही निर्वाणमगमत् परम्॥ १५

ते नगा जलसंछन्नाः पयसः सर्वतोधराः।
एकार्णवजला भूत्वा सर्वसत्त्वविवर्जिताः॥ १६

महाभूतान्यपि च तं प्रविष्टान्यमितौजसम्।
नष्टार्कपवनाकाशे सूक्ष्मे जनविवर्जिते॥ १७

संशोषयित्वा पीत्वा च वसत्येकः सनातनः।
पौराणं रूपमास्थाय किमप्यमितबुद्धिमान्॥ १८

एकार्णवजले ह्यासीद् योगी योगमुपागतः।
अयुतानां सहस्राणि गतान्येकार्णवेऽम्भसि।
न चैनं कश्चिदव्यक्तं व्यक्तं वेदितुमर्हति॥ १९

जनमेजय उवाच

एकार्णवविधिः कोऽयं यश्चैव परिकीर्तितः।
क एष पुरुषो नाम किंयोगः कश्च योगवान्॥ २०

वैशम्पायन उवाच

एतावन्तमसौ कालमेकार्णवविधिं प्रति।
करिष्यतीमं भगवानिति कश्चिन्न बुध्यते॥ २१

न वै माता न च द्रष्टा न ज्ञाता नैव पार्श्वगः।
न स्मावगच्छते कश्चिदृते तं देवमीश्वरम्॥ २२

नभः क्षितिं पवनमथ प्रकाशयन्
प्रजापतिं भुवनचरं सुरेश्वरम्।
पितामहं श्रुतिनिलयं महामुनिं
शशास भूः शयनमरोचयत् प्रभुः॥ २३

सहस्रों नेत्रोंवाले उन महातेजस्वी श्रीकृष्णने महान् मेघ बनकर दिव्य जलरूपी हविष्यसे पृथ्वीको तृप्त किया॥ १४॥ दूधके समान स्वादिष्ट उत्तम कल्याणकारी एवं पवित्र उस जलसे वह जलती हुई पृथ्वी पूर्णतः शान्त हो गयी॥ १५॥ वे पर्वत और वृक्ष आदि जलसे आच्छादित हो सब ओरसे जल-ही-जल धारण किये रहे और एकार्णवके जलमें विलीन होकर सब प्रकारके प्राणियोंसे शून्य हो गये॥ १६॥ पाँचों महाभूत भी उन अमित बलशाली भगवान् विष्णुमें प्रविष्ट हो गये। जब सूर्य, वायु और आकाशका भी सूक्ष्म परमात्मतत्त्वमें लय हो गया, जीव-जन्तुओंका सर्वथा अभाव हो गया, तब वे एकमात्र अमित बुद्धिमान् सनातन पुरुष श्रीहरि अपने किसी अनिर्वचनीय पुरातन रूपका आश्रय ले पहलेके जलका शोषण और पान करके उस दिव्य एकार्णवके जलमें निवास करने लगे॥ १७-१८॥ वे योगी श्रीहरि योगका आश्रय ले एकार्णवके जलमें रहने लगे; वहाँ रहते हुए उनके सहस्रों अयुतवर्ष व्यतीत हो गये। इन अव्यक्त परमेश्वरको कोई भी व्यक्तरूपसे नहीं जान सकता॥ १९॥

जनमेजयने पूछा—जिसका यहाँ वर्णन किया है, इस एकार्णवकी विधि (अवधि) क्या है? अर्थात् भगवान् उसमें कबतक निवास करते हैं? यह पुरुष कौन है? इसके योगका स्वरूप क्या है और योगवान् (योगेश्वर) कौन है?॥ २०॥

वैशम्पायनजीने कहा—वे भगवान् इतने समयतक एकार्णव-विधिका पालन करेंगे अर्थात् इतने समयतक ही एकार्णवके जलमें रहेंगे, यह कोई नहीं जानता॥ २१॥ (यह पुरुष अनिर्वचनीय है) न तो वह प्रमाता है, न द्रष्टा है, न ज्ञाता है और न तटस्थ ही है, इन सबसे सर्वथा विलक्षण है। उसे उस परमेश्वरदेवके सिवा दूसरा कोई नहीं जान सकता (इसलिये उसका योग भी अनिर्वचनीय है)॥ २२॥ जिन्होंने आकाश, पृथ्वी और वायुको प्रकाशित करते हुए समस्त भुवनोंमें विचरनेवाले, सुरेश्वर, प्रजापति वेदनिष्ठ महामुनि पितामह ब्रह्माको भी ज्ञानका उपदेश दिया, वे सबकी उत्पत्तिके कारणभूत भगवान् योगवान् (योगेश्वर) हैं, उन्होंने ही एकार्णवके जलमें शयन करना पसंद किया॥ २३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पुष्करप्रादुर्भावे नवमोऽध्यायः॥ ९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्करप्रादुर्भावविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दशमोऽध्यायः

एकार्णवमें भगवान् और मार्कण्डेयजीका संवाद

वैशम्पायन उवाच

एवमेकार्णवीभूते शेते लोके महाद्युतिः।
प्रच्छाद्य सलिलं सर्वं हरिर्नारायणः प्रभुः॥ १

महतो रजसो मध्ये महार्णवसमस्य वै।
विरजस्को महाबाहुरक्षरं ब्रह्म यं विदुः॥ २

आत्मरूपप्रकाशेन तपसा संवृतः प्रभुः।
त्रिकमास्थाय कालं तु ततः सुष्वाप सोऽव्ययः॥ ३

पुरुषो यज्ञ इत्येवं यत्परं परिकीर्तितम्।
यच्चान्यत् पुरुषाख्यं स्यात् सर्वं तत् पुरुषोत्तमः॥ ४

ये च यज्ञपरा विप्रा ऋत्विजा इति संज्ञिताः।
आत्मदेहात् पुरा भूता यज्ञेभ्यः श्रूयतां तदा॥ ५

ब्रह्माणं परमं वक्त्रादुद्गातारं च सामगम्।
होतारमथ चाध्वर्युं बाहुभ्यामसृजत् प्रभुः॥ ६

ब्राह्मणो ब्राह्मणत्वाच्च सम्प्रस्तारं च सर्वशः।
तन्मित्रं वरुणं सृष्ट्वा प्रतिष्ठातारमेव च॥ ७

उदरात् प्रतिहर्तारं पोतारं चैव भारत।
अच्छावाकं मनोरूभ्यां नेष्टारं चैव भारत॥ ८

पाणिभ्यामथ चाग्नीध्रं सुब्रह्मण्यं च यज्ञियम्।
ग्रावाणमथ बाहुभ्यामुन्नेतारं च यज्ञियम्॥ ९

एवमेवैष भगवान् षोडशैताञ्जगत्पतिः।
प्रवक्तॄन् सर्वयज्ञानामृत्विजोऽसृजदुत्तमान्॥ १०

तदेष वै वेदमयः पुरुषो यज्ञसम्मितः।
वेदाश्च तन्मयाः सर्वे साङ्गोपनिषदक्रियाः॥ ११

स्वपित्येकार्णवे चैव यदाश्चर्यमभूत्तदा।
श्रूयते तद् यथावृत्तं मार्कण्डेयो यदन्वभूत्॥ १२

जीर्णो भगवतस्तस्य कुक्षावेव महामुनिः।
बहुवर्षसहस्रायुस्तस्यैव वरतेजसा॥ १३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! आत्मस्वरूपको प्रकाशित करनेवाले तपसे सम्पन्न, सर्वसमर्थ, रजोगुणरहित महातेजस्वी, महाबाहु, अविनाशी, भगवान् नारायण हरिने इस प्रकार सम्पूर्ण जगत्के एकार्णवमय हो जानेपर सम्पूर्ण जलको आच्छादित करके उसमें शयन किया। ये वे ही भगवान् हैं, जिन्हें विद्वान् पुरुष अविनाशी ब्रह्मके रूपमें जानते हैं। वे भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालका आश्रय लेकर वहाँ सोये थे॥ १—३॥ जिस परम तत्त्वको यज्ञपुरुषके नामसे कहा गया है तथा पुरुष नामसे प्रसिद्ध जो अन्य वस्तुएँ हैं, वे सब पुरुषोत्तम श्रीहरि ही हैं॥ ४॥ यज्ञमें तत्पर रहनेवाले जो ब्राह्मण ऋत्विज् कहलाते हैं, वे उन्हीं परमात्मा श्रीहरिके श्रीविग्रहसे पूर्वकालमें प्रकट हुए थे। उस समय उन्होंने उनको किस तरह प्रकट किया, यह बताता हूँ; सुनो॥ ५॥ उन भगवान्ने सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मा और सामगान करनेवाले उद्गाताको अपने मुखसे उत्पन्न किया, होता और अध्वर्युकी सृष्टि अपनी दोनों भुजाओंसे की॥ ६॥ वेदाध्ययन करनेके कारण ब्राह्मणाच्छंसी नामवाला ब्राह्मण उन्हींसे प्रकट हुआ। उन्होंने प्रस्तोता और मैत्रावरुण नामक प्रशास्ताकी सृष्टि करके प्रतिप्रस्थाताको उत्पन्न किया॥ ७॥ भारत! उन्हीं भगवान्ने उदरसे प्रतिहर्ता और पोताकी सृष्टि की। भरतनन्दन! उन्होंने मन और ऊरुसे अच्छावाक् और नेष्टाको उत्पन्न किया॥ ८॥ दोनों हाथोंसे आग्नीध्र और यज्ञसम्बन्धी सुब्रह्मण्यको उत्पन्न किया। भुजाओंसे ग्रावस्तोता और यज्ञसम्बन्धी उन्नेताकी सृष्टि की॥ ९॥ इस प्रकार इन जगदीश्वर भगवान् श्रीहरिने सम्पूर्ण यज्ञकर्मोंका उपदेश देनेवाले सोलह उत्तम ऋत्विजोंकी सृष्टि की॥ १०॥ ये ही वेदमय और यज्ञसम्मित पुरुष हैं। छहों अङ्गों, उपनिषदों और कर्मकाण्डसहित सम्पूर्ण वेद भी इन्हींके स्वरूप हैं॥ ११॥ जब वे एकार्णवके जलमें शयन करते थे, उस समय जो आश्चर्यजनक घटना घटित हुई थी, उसे मुनिवर मार्कण्डेयजीने ठीक-ठीक अनुभव किया था—ऐसा सुना जाता है॥ १२॥ महामुनि मार्कण्डेय उन भगवान् श्रीहरिके उदरमें ही जवानसे बूढ़े हो गये थे। उन भगवान्के ही उत्तम तेजसे मार्कण्डेयजीको अनेक सहस्र वर्षोंकी आयु प्राप्त हुई थी॥ १३॥

इति तीर्थप्रसङ्गेन पृथिवीतीर्थगोचरः।
आश्रमानपि पुण्यांश्च तीर्थान्यायतनानि च॥ १४

देशान् राष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च।
जपहोमरतः क्षान्तस्तपो घोरं समाश्रितः॥ १५

मार्कण्डेयस्ततस्तस्य शनैर्वक्त्राद् विनिःसृतः।
निष्क्रामन्तं न चात्मानं जानीते देवमायया॥ १६

निष्क्रान्तस्तस्य वदनादेकार्णवमथो गतः।
सर्वतस्तमसाच्छन्नं मार्कण्डेयो निरीक्षते॥ १७

तस्योत्पन्नं भयं तीव्रं संशयश्चात्मजीविते।
देवदर्शनसंहृष्टो विस्मयं चागमत् परम्॥ १८

संचिन्तयति मध्यस्थो मार्कण्डेयोऽतिशङ्कितः।
किंस्विद्ध्वेदियं चिन्ता मोहः स्वप्नोऽनुभूयते॥ १९

व्यक्तमन्यतमो भावो ह्येतेषां भविता मम।
न हीदृशमसंश्लिष्टमयुक्तं सत्यमर्हति॥ २०

नष्टचन्द्रार्कपवने छन्नपर्वतभूतले।
कतमः स्यादयं लोक इति चिन्ताव्यवस्थितः॥ २१

अपश्यच्चापि पुरुषं शयानं पर्वतोपमम्।
तोयाढ्यमिव जीमूतं मध्ये मग्नं महार्णवे॥ २२

तपन्तमिव तेजोभिर्भास्वन्तमिव वर्चसा।
जाग्रन्तमिव गाम्भीर्याच्छ्वसन्तमिव पन्नगम्॥ २३

स देवं प्रष्टुमायाति को भवानिति विस्मयात्।
तथैव च शनैर्भूयो मुनिः कुक्षिं प्रवेशितः॥ २४

स प्रविष्टः पुनः कुक्षौ मार्कण्डेयः सुनिश्चितः।
तथैव चरते भूयो विजानन् स्वप्नदर्शनम्॥ २५

स तथैव यथापूर्वं पृथिवीमटते पुनः।
पुण्यतीर्थानि पूतानि निरैक्षद् दिवि भूतले॥ २६

क्रतुभिर्यजमानांश्च समाप्तवरदक्षिणैः।
पश्यते देवकुक्षिस्थान् यज्ञियाञ्छतशो द्विजान्॥ २७

इस तरह वे तीर्थयात्राके प्रसंगसे भगवान्‌के उदरमें ही भूमण्डलके तीर्थोंमें विचरते रहे। उन्होंने वहाँ पवित्र आश्रमों, तीर्थों, देवालयों, देशों, विचित्र राष्ट्रों और नाना प्रकारके नगरोंका दर्शन किया। तत्पश्चात् वे घोर तपस्याका आश्रय ले जप और होममें संलग्न होकर अत्यन्त दुर्बल हो गये॥ १४-१५॥ इसके बाद एक दिन मार्कण्डेयजी धीरेसे भगवान्‌के मुखसे बाहर निकल आये। देवमायासे मोहित होकर वे अपना निकलना नहीं जान सके॥ १६॥ भगवान्‌के मुखसे निकलकर मार्कण्डेयजी एकार्णवके जलमें आ गये, फिर तो उन्होंने अपने-आपको सब ओरसे अन्धकारसे आच्छन्न देखा॥ १७॥ अब उनके मनमें बड़ा भारी भय हुआ। अपने जीवनके लिये भी संशय उत्पन्न हो गया, परंतु भगवान्‌के दर्शनसे उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। वे बड़े विस्मयमें पड़ गये थे॥ १८॥ वे मार्कण्डेयमुनि अत्यन्त शङ्कित हो मध्यस्थकी भाँति इस प्रकार विचार करने लगे—'मेरी यह चिन्ता क्या है? मुझे मोह हो गया है या स्वप्नका अनुभव हो रहा है?॥ १९॥ निश्चय ही मेरा यह भाव चिन्ता, मोह और स्वप्नमेंसे ही कोई हो सकता है; क्योंकि ऐसी असम्बद्ध और अयुक्त बात कभी सत्य नहीं हो सकती॥ २०॥ जहाँ चन्द्रमा, सूर्य और वायुका दर्शन नहीं होता, पर्वत और भूतल आच्छन्न हो गये हैं, ऐसा यह कौन-सा लोक है?' इसी चिन्तामें डूबे हुए मार्कण्डेयजी खड़े रहे॥ २१॥ वहाँ उन्होंने महासागरके मध्यमें मग्न होकर सोये हुए एक पर्वताकार पुरुषको भी देखा, जो सजल जलधरके समान जान पड़ता था॥ २२॥ वह पुरुष अपने तेजसे तप-सा रहा था। अपनी दीप्तिसे उद्भासित-सा होता था। गम्भीरताके कारण जागता-सा जान पड़ता था और सर्पके समान उच्छ्वास ले रहा था॥ २३॥ वे मुनि आश्चर्यसे चकित होकर ज्यों ही भगवान्‌के पास यह पूछनेके लिये आये कि आप कौन हैं? त्यों ही फिर धीरेसे भगवान्‌के उदरमें पहुँचा दिये गये॥ २४॥ पुनः उनकी कुक्षिमें प्रवेश करनेपर मार्कण्डेयजी सुस्थिर हुए। वे एकार्णवकी घटनाको स्वप्नदर्शन समझते हुए फिर इधर-उधर विचरने लगे॥ २५॥ वे पहलेकी ही भाँति पृथ्वीपर घूमने और भूतल तथा स्वर्गके पवित्र पुण्यतीर्थोंका दर्शन करने लगे॥ २६॥ उन्होंने भगवान्‌के उदरमें स्थित हुए सैकड़ों यज्ञ-सम्बन्धी ब्राह्मणों और उत्तम दक्षिणाके साथ समाप्त होनेवाले यज्ञोंके अनुष्ठानमें लगे हुए यजमानोंको देखा॥ २७॥

सद्वृत्तमाश्रिताः सर्वे वर्णा ब्राह्मणपूर्वकाः।
चत्वारश्चाश्रमाः सम्यग् यथोद्दिष्टपदानुगाः॥ २८

वर्षाणां शतसाहस्रं मार्कण्डेयो महामुनिः।
विचरन् पृथिवीं कृत्स्नां न च कुक्ष्यन्तमैक्षत॥ २९

ततः कदाचिदथ वै पुनर्वक्त्राद् विनिःसृतः।
सुप्तं न्यग्रोधशाखायां बालमेकं निरीक्षते॥ ३०

यथा चैकार्णवजले नीहारेण वृतान्तरे।
अव्यक्तभीषणे लोके सर्वभूतविवर्जिते॥ ३१

स भूयो विस्मयाविष्टः कौतूहलसमन्वितः।
बालमादित्यसंकाशं न शक्तोत्युपसर्पितुम्॥ ३२

सोऽचिन्तयदथैकान्ते स्थित्वा सलिलसंनिधौ।
पूर्वदृष्टमिदं नेति शङ्कितो देवमायया॥ ३३

अगाधे सलिलस्तब्धे मार्कण्डेयः प्लवन् मुनिः।
न शान्तिं लभते तत्र श्रमात् संत्रस्तविक्लवः॥ ३४

तथैव भगवान् हंसो गतो योगेन बालताम्।
बभाषे मेघतुल्येन स्वरेण पुरुषोत्तमः॥ ३५

श्रीभगवानुवाच

मा भैर्वत्स न भेतव्यमिहैवायाहि चान्तिकम्।
मार्कण्डेय मुने धीर बालस्त्वं श्रमपीडितः॥ ३६

मार्कण्डेय उवाच

को मां नाम्ना कीर्तयते तपः परिभवन् मम।
बहुवर्षसहस्रायुर्धर्षयंश्चैव मे वयः॥ ३७

न ह्येष समुदाचारो देवेष्वपि समाहितः।
मां ब्रह्मापि स विश्वेशो दीर्घायुरिति भाषते॥ ३८

कस्तपो घोरशिरसो ममाद्य त्यक्तजीवितः।
मार्कण्डेयेति मां प्रोक्त्वा मृत्युमीक्षितुमिच्छति॥ ३९

वैशम्पायन उवाच

एवमाभाषते क्रोधान्मार्कण्डेयो महामुनिः।
अथैनं भगवान् भूयो बभाषे तत्परायणम्॥ ४०

ब्राह्मण आदि सभी वर्णोंके लोग सदाचारका पालन करते थे। ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रम उत्तम रीतिसे शास्त्रोक्त मर्यादाका अनुसरण करते थे॥ २८॥ महामुनि मार्कण्डेय एक लाख वर्षोंतक सारी पृथ्वीपर विचरते रहे, परंतु कहीं भी उन्हें भगवान्‌के उदरका अन्त नहीं दिखायी दिया॥ २९॥ तदनन्तर किसी दिन वे फिर भगवान्‌के मुखसे बाहर निकल गये। वहाँ अव्यक्त एवं भीषण जगत्‌में जहाँ समस्त प्राणियोंका अभाव था, उन्होंने एकार्णवके जलमें, जिसका भीतरी भाग कुहरेसे घिरा हुआ था, बरगदकी शाखापर एक बालकको सोते देखा॥ ३०-३१॥ फिर वे आश्चर्यचकित और कौतूहलयुक्त होकर खड़े रह गये। उस सूर्यके समान तेजस्वी बालकके पास न जा सके॥ ३२॥ उन्होंने जलके समीप एकान्तमें खड़े होकर सोचा कि मैंने पहले कभी ऐसा आश्चर्य नहीं देखा था, यह विचार आते ही वे देवमायाके प्रभावसे शङ्कित हो गये॥ ३३॥ अगाध एवं सुस्थिर जलवाले एकार्णवमें तैरते हुए मार्कण्डेयमुनि श्रमसे भयभीत हो रहे थे, उन्हें वहाँ तनिक भी शान्ति नहीं मिलती थी॥ ३४॥ इतनेहीमें योगसे बालकरूप हुए हंसस्वरूप भगवान् पुरुषोत्तमने मेघके समान गम्भीर स्वरमें कहा॥ ३५॥

श्रीभगवान् बोले—बेटा! डरो मत! डरनेकी आवश्यकता नहीं है; यहीं मेरे निकट चले आओ! धीर मुनि मार्कण्डेय! तुम बालक हो, अतः श्रमसे पीड़ित हो रहे हो॥ ३६॥

मार्कण्डेयजीने कहा—कौन मेरी तपस्या तथा अनेक सहस्र वर्षोंकी आयुवाली अवस्थाका तिरस्कार करता हुआ मुझे नाम लेकर पुकार रहा है॥ ३७॥ देवताओंके यहाँ भी यह आचार प्रचलित नहीं है, साक्षात् लोकनाथ ब्रह्माजी भी मुझे दीर्घायु कहते हैं (मेरा नाम नहीं लेते हैं)॥ ३८॥ किसने अपने जीवनका मोह त्याग दिया है, जो आज मुझ घोरशिराके तपका तिरस्कार करता हुआ मुझे मार्कण्डेय कहकर अपनी मौत देखना चाहता है॥ ३९॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब महामुनि मार्कण्डेय क्रोधपूर्वक इस प्रकार बोल रहे थे, उस समय भगवान्‌ने पुनः अपने शरणागत भक्त इन महर्षिसे यों कहा॥ ४०॥

श्रीभगवानुवाच

अहं ते जनको वत्स हृषीकेशः पिता गुरुः।
आयुःप्रदाता पौराणः किमर्थं नोपसर्पति॥ ४१

मां पुत्रकामः प्रथमं पिता ते ह्यङ्गिरा मुनिः।
पूर्वमाराधयामास तपस्तीव्रमुपाश्रितः॥ ४२

ततस्त्वां घोरशिरसं दहनोपमतेजसम्।
दत्तवानहमात्मेष्टं महर्षिममितायुषम्॥ ४३

तत्र नोत्सहते चान्यो यो न भूतो ममात्मकः।
द्रष्टुमेकार्णवगतं क्रीडन्तं योगधर्मिणम्॥ ४४

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रसन्नवदनो विस्मयोत्फुल्ललोचनः।
मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटो मार्कण्डेयो महातपाः॥ ४५

नामगोत्रं ततः श्रुत्वा दीर्घायुर्लोकपूजितः।
अथाकरोन्नमस्कारं प्रणतः शिरसा प्रभुम्॥ ४६

मार्कण्डेय उवाच

इच्छेऽहं तत्त्वतो मायामिमां ज्ञातुं तवानघ।
यदेकार्णवमध्यस्थः शेषे त्वं बालरूपवान्॥ ४७

किंसंज्ञः कश्च भगवाँल्लोके विज्ञायसेऽनघ।
तर्कये त्वां महाभूतं न भूतमिह तिष्ठति॥ ४८

श्रीभगवानुवाच

अहं नारायणो ब्रह्मा सम्भवः सर्वदेहिनाम्।
सर्वभूतोद्भवकरः सर्वभूतविनाशनः॥ ४९

अहमैन्द्रे पदे शक्र ऋतूनामपि वत्सरः।
अहं युगे युगाक्षश्च युगस्यावर्त एव च॥ ५०

अहं सर्वाणि सत्त्वानि दैवतान्यखिलानि च।
भुजगानामहं शेषस्तार्क्ष्योऽहं सर्वपक्षिणाम्॥ ५१

अहं सहस्रशीर्षा द्यौर्यः पदैरभिसंवृतः।
आदित्यो यज्ञपुरुषो देवो यज्ञमयो मखः।
अहमग्निर्हव्यवाहे यादसां पतिरव्ययः॥ ५२

श्रीभगवान् बोले—वत्स! मैं तुम्हें जन्म देनेवाला तुम्हारा पिता और गुरु हृषीकेश हूँ। तुम्हें दीर्घायु प्रदान करनेवाला पुरातन पुरुष मैं ही हूँ। तुम मेरे पास क्यों नहीं आते हो॥ ४१॥ पूर्वकालमें पुत्रकी इच्छावाले तुम्हारे पिता अङ्गिरामुनिने तीव्र तपस्याका आश्रय लेकर सर्वप्रथम मेरी ही आराधना की थी॥ ४२॥ तब मैंने अग्नितुल्य तेजस्वी अपरिमित आयुवाले, अपने परम प्रिय, महर्षि तुझ घोरशिराको उन्हें पुत्ररूपमें प्रदान किया॥ ४३॥ ऐसी स्थितिमें जो मुझसे अभिन्न नहीं हुआ है, वह दूसरा कोई भूत अचेतन होनेके कारण एकार्णवमें रहकर क्रीडा करनेवाले मुझ योगधर्मी परमात्माका दर्शन करनेका साहस नहीं कर सकता॥ ४४॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यह सुनकर महातपस्वी मार्कण्डेयके मुखपर प्रसन्नता छा गयी, उनके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे, उन्होंने मस्तकपर दोनों हाथ जोड़ लिये॥ ४५॥ उन लोकपूजित दीर्घायु महर्षिने भगवान्‌के मुखसे अपने नाम और गोत्रको सुनकर उनके चरणोंमें सिर झुका दिया और प्रणतभावसे नमस्कार किया॥ ४६॥

मार्कण्डेय बोले—अनघ! आप इस एकार्णवके मध्यमें जो बालकरूप धारण करके शयन कर रहे हैं, आपकी इस मायाको मैं ठीक-ठीक जानना चाहता हूँ॥ ४७॥ निष्पाप परमेश्वर! सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश और श्रीसे सम्पन्न आप कौन हैं? और किस नामसे लोकमें जाने जाते हैं? मैं अनुमान करता हूँ कि आप कोई महान् भूत हैं, क्योंकि कोई साधारण भूत यहाँ नहीं ठहर सकता॥ ४८॥

श्रीभगवान् बोले—मुने! मैं नारायण, समस्त देहधारियोंकी उत्पत्तिका कारणभूत ब्रह्मा, सम्पूर्ण भूतोंका उद्भव करनेवाला तथा समस्त भूतोंका संहार करनेमें समर्थ (रुद्र) हूँ॥ ४९॥ मैं ही शक्र नामसे प्रसिद्ध होकर इन्द्रपदपर प्रतिष्ठित हुआ हूँ। मैं ही ऋतुओंका स्वामी संवत्सर हूँ। मैं ही प्रत्येक युगमें युगाक्ष और युगावर्त कहलाता हूँ॥ ५०॥ मैं ही सम्पूर्ण प्राणी और समस्त देवता, सर्पोंमें शेष तथा सारे पक्षियोंमें गरुड भी मैं ही हूँ॥ ५१॥ मैं सहस्रों मस्तकोंसे युक्त विराट् पुरुष हूँ। मैं ही वह आकाश वा स्वर्ग हूँ, जो मेरे चरणचिह्नोंसे व्याप्त है। मैं ही सूर्यदेव, यज्ञपुरुष तथा तपोयज्ञ, योगयज्ञ आदि अनेक प्रकारके यज्ञोंसे सम्पन्न होनेवाला मख (महायज्ञ) भी मैं ही हूँ। मैं ही देवताओंको हविष्य पहुँचानेवाला अग्निदेव हूँ। जल-जन्तुओंका पालक अविनाशी वरुण भी मैं ही हूँ॥ ५२॥

यत्पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मनाम्।
बहुजन्मनिरुद्धात्मा ब्राह्मणो यतिरुच्यते॥ ५३

ज्ञानवान् दृष्टविश्वात्मा योगिनां योगवित्तमः।
कृतान्तः सर्वभूतानां विश्वेषां कालसंज्ञितः॥ ५४

अहं कर्म क्रिया जीवः सर्वेषां धर्मदर्शनः।
निष्क्रियः सर्वभूतेषु स्वात्मज्योतिः सनातनः॥ ५५

प्रधानं पुरुषो देवोऽहमाद्यस्त्वक्षयोऽव्ययः।
अहं धर्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम्॥ ५६

अहं हयशिरो देवः क्षीरोदे यो महार्णवे।
ऋतं सत्यं च परममहमेकः प्रजापतिः॥ ५७

अहं सांख्यमहं योगमहं तत्परमं पदम्।
अहमिज्यो भवश्चाहमहं विद्याधिपः स्मृतः॥ ५८

अहं ज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं नभः।
अहमापः समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशो दश।
अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योऽहमहं रविः॥ ५९

क्षीरोदः सागरश्चाहं समुद्रो वडवामुखः।
वह्निः संवर्तको भूत्वा पिबंस्तोयमयं हविः॥ ६०

अहं पुराणं परमं तथैवेह परायणम्।
अहं भूतस्य भव्यस्य वर्तमानस्य सम्भवः॥ ६१

यत्किंचित् पश्यसे चैव यच्छृणोषि च किंचन।
यच्चानुभवसे लोके तत् सर्वं मामकं स्मृतम्॥ ६२

विश्वं सृष्टं मया पूर्वं सृजेयं चाद्य पश्य माम्।
युगे युगे च स्रक्ष्यामि मार्कण्डेयाखिलं जगत्॥ ६३

तदेतदखिलं सर्वं मार्कण्डेयावधारय।
शुश्रूषुर्मम धर्मेप्सुः कुक्षौ चर सुखी भव॥ ६४

भूमण्डलमें स्वधर्मानुष्ठानरूप तपसे विशुद्ध अन्तःकरण-वाले पुरुषोंमेंसे जो अनेक जन्मोंतक चित्तवृत्तियोंका निरोधरूप योग साधनेवाला ब्रह्मवेत्ता संन्यासी है, वह जिस ब्रह्मका स्वरूप बताया जाता है, वह ब्रह्म मैं ही हूँ॥ ५३॥ जिसने विश्वात्माका साक्षात्कार कर लिया है, वह ज्ञानी मैं ही हूँ। मैं ही योगियोंमें परम योगवेत्ता हूँ। मैं ही समस्त प्राणियोंका अन्त करनेवाला कृतान्त एवं समस्त लोकोंका काल हूँ॥ ५४॥ मैं ही कर्म, क्रिया, जीव और सबको धर्मके स्वरूप या फलका दर्शन करानेवाला हूँ। मैं ही समस्त प्राणियोंमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित, निष्क्रिय (साक्षी) आत्मज्योतिसे प्रकाशित सनातन परमात्मा हूँ॥ ५५॥ मैं ही प्रकृति, पुरुष और देवता हूँ। मैं ही सबका आदिकारण, अक्षय एवं अव्यय परमेश्वर हूँ। मैं ही सम्पूर्ण आश्रमोंमें निवास करनेवाले पुरुषोंका धर्म और तप हूँ॥ ५६॥ मैं ही भगवान् हयग्रीव हूँ। जिन्होंने महान् क्षीरसागरमें प्रकट हो वेदोंकी रक्षा की थी। ऋत और परम सत्य भी मैं ही हूँ। एकमात्र मैं ही प्रजापति हूँ॥ ५७॥ मैं ही सांख्य, मैं ही योग और मैं ही परमपद हूँ। मैं ही पूजनीय, मैं ही भव (शिव) और मैं ही विद्याओंका अधिपति हूँ॥ ५८॥ मैं ही अग्नि, मैं ही वायु, मैं ही भूमि और मैं ही आकाश हूँ। जल, समुद्र, नक्षत्र और दसों दिशाएँ भी मैं ही हूँ। मैं ही वर्षा, मैं ही सोम, मैं ही मेघ और मैं ही सूर्य हूँ॥ ५९॥ मैं ही क्षीरसागर समुद्र और बड़वामुख अग्नि हूँ। मैं ही संवर्तक अग्नि होकर जगत्के जलरूपी हविष्यको पी लेता हूँ॥ ६०॥ मैं ही परम पुरातन ब्रह्म हूँ। मैं ही यहाँ सबका परम आश्रय हूँ। मैं ही भूत, भविष्य और वर्तमान जगत्की उत्पत्तिका कारण हूँ॥ ६१॥ तुम इस लोकमें जो कुछ देखते, जो कुछ सुनते और जो कुछ अनुभव करते हो, वह सब मेरा ही स्वरूप माना गया है॥ ६२॥ पूर्वकालमें मैंने ही विश्वकी सृष्टि की थी और आज भी मैं ही सृष्टि करूँगा। तुम मुझे देखो। मार्कण्डेय! प्रत्येक युग (कल्प)-में सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि मैं ही करूँगा॥ ६३॥ मार्कण्डेय! यह सारा जगत् सम्पूर्णरूपसे मेरा ही स्वरूप है—ऐसा समझो। अब तुम धर्मोपदेश सुननेकी इच्छा रखकर मेरे धर्मकी प्राप्तिके लिये उत्सुक हो मेरे उदरमें विचरण करो और सुखी हो जाओ॥ ६४॥

मम ब्रह्मा शरीरस्थो देवाश्च ऋषिभिः सह।
व्यक्तमव्यक्तयोगं मामवगच्छापराजितम्॥ ६५

ब्रह्माजी मेरे ही शरीरमें स्थित हैं। ऋषियों-सहित देवता भी मेरी देहमें ही हैं। तुम मुझे व्यक्त जगत्स्वरूप, अव्यक्त योगरूप परमात्मा तथा किसीसे भी पराजित न होनेवाला विष्णु समझो॥ ६५॥ मैं एकाक्षर मन्त्र अकार, त्र्यक्षर मन्त्र प्रणव तथा त्रिपद मन्त्र गायत्री हूँ और मैं ही धर्म, अर्थ एवं कामरूप त्रिवर्गकी प्राप्ति करानेवाला (और मोक्षकी भी प्राप्ति करानेवाला) परमात्मा हूँ॥ ६६॥

अहमेकाक्षरो मन्त्रस्त्र्यक्षरश्चैव सर्वशः।
त्रिपदश्चैव परमस्त्रिवर्गार्थनिदर्शनः॥ ६६

वैशम्पायन उवाच

एवमेतत् पुराणेषु वेदान्ते च महामुनिः।
वक्त्रे व्याहृतवानाशु मार्कण्डेयं महामुनिम्।
प्रवेशयामास ततो जठरं विश्वरूपधृक्॥ ६७

ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो मुनिसत्तमः।
रराम सुखमासाद्य शुश्रूषुर्हंसमव्ययम्॥ ६८

तदक्षरं विविधमथाश्रितो वपु-
र्महार्णवे व्यपगतचन्द्रभास्करे।
शनैश्चरन्प्रभुरपि हंससंज्ञितो-
ऽसृजज्जगद्विसृजति कालपर्यये॥ ६९

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार महामुनि व्यासने इस वेदान्तप्रसिद्ध परमतत्त्वका पुराणोंमें वर्णन किया है। विश्वरूपधारी भगवान् बालमुकुन्दने महामुनि मार्कण्डेयको अपने मुखमें डालनेके लिये उन्हें शीघ्र ही अपने पास बुलाया और उन्हें अपने उदरमें घुसा दिया॥ ६७॥ तत्पश्चात् भगवान्के उदरमें प्रविष्ट हुए मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय हंसस्वरूप अविनाशी परमात्माकी आराधनाके लिये उत्सुक हो सुखपूर्वक विचरने लगे॥ ६८॥ चन्द्रमा और सूर्यसे रहित उस एकार्णवमें अनेक प्रकारके स्वरूपका आश्रय लेनेवाले हंस-नामधारी भगवान्, जो अक्षरब्रह्मरूप हैं, धीरे-धीरे विचरने लगे। फिर सृष्टिकाल आनेपर उन्होंने ही जगत्की सृष्टि की तथा सदा ही विविध भौतिक वस्तुओंकी वे सृष्टि करते रहते हैं॥ ६९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे मार्कण्डेयकर्तृकभगवद्दर्शने दशमोऽध्यायः॥ १०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्करप्रादुर्भावके प्रसंगमें मार्कण्डेयजीको भगवान्का दर्शनविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥

एकादशोऽध्यायः

परमात्माके द्वारा भूतोंकी सृष्टि तथा ब्रह्माजीको प्रकट करनेके लिये उनकी नाभिसे एक महान् पद्मका प्रादुर्भाव

वैशम्पायन उवाच

आपवः स विभुर्भूत्वा कारयामास वै तपः।
छादयित्वाऽऽत्मनो देहमात्मना कुम्भसम्भवः॥ १

ततो महात्मातिबलो मतिं लोकस्य सर्जने।
महतां पञ्चभूतानां विश्वभूतो व्यचिन्तयत्॥ २

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वे हंस-संज्ञक परमात्मा कुम्भयोनि ब्रह्मर्षि वसिष्ठ होकर अपनी कुम्भजनित देहको अपने आत्मा (समष्टिके अभिमानी चेतन)-से आच्छादित करके तपस्या करने लगे॥ १॥ उस समय उन अत्यन्त शक्तिशाली विश्वरूप महात्माने भौतिक जगत् तथा उसके उपादानभूत पञ्चमहाभूतोंकी सृष्टिका विचार किया॥ २॥

तस्य चिन्तयतस्तत्र तपसा भावितात्मनः।
निराकाशे तोयमये सूक्ष्मे जगति गह्वरे॥ ३

ईषत्संक्षोभयामास सोऽर्णवं सलिले स्थितः।
सोऽनन्तरोर्मिणा सूक्ष्ममथ छिद्रमभूत् तदा॥ ४

तत्र शब्दगतिर्भूत्वा मारुतद्रवसम्भवः।
स लब्ध्वाऽऽन्तरमक्षोभ्यो व्यवर्धत समीरणः॥ ५

विवर्धता बलवता तेन संक्षोभितोऽर्णवः।
अन्योन्यवेगाभिहता ममन्थुश्चोर्मयो भृशम्॥ ६

महार्णवस्य क्षुब्धस्य तस्मिन्नम्भसि मथ्यति।
कृष्णवर्त्मा समभवत् प्रभुर्वैश्वानरोऽर्चिमान्॥ ७

तत्र संशोषयामास पावकः सलिलं बहु।
क्षयाज्जलनिधेश्छिद्रमभवन्निःसृतं नभः॥ ८

आत्मतेजोद्भवाः पुण्या आपोऽमृतरसोपमाः।
आकाशं छिद्रसम्भूतं वायुराकाशसम्भवः॥ ९

आज्यसंघर्षणोद्भूतं पावकं चाज्यसम्भवम्।
दृष्ट्वा प्रीतियुतो देवो महाभूतादिभावनः॥ १०

दृष्ट्वा भूतानि भगवाँल्लोकसृष्ट्यर्थतत्त्ववित्।
ब्रह्मणो जन्म स हितं बहुरूपो विचिन्वति॥ ११

आकाशरहित जलस्वरूप सूक्ष्म गुफामें जगत्के लीन हो जानेपर वहाँ उस समय तपस्यासे भावित अन्तःकरणवाले वे परमेश्वर जब इस प्रकार चिन्तन कर रहे थे, तब सलिलराशिमें स्थित हुए उन्होंने उस एकार्णवमें कुछ क्षोभ (हलचल) उत्पन्न कर दिया। तदनन्तर उनके मनमें जो सृष्टिविषयक संकल्पकी दूसरी तरंग उठी, उससे उस जलमें सूक्ष्म छिद्र (आकाश या अवकाश) प्रकट हो गया॥ ३-४॥ तदनन्तर जो संकल्पकी पुनः तीसरी तरंग उठी, उससे उस आकाशमें शब्दकी गति हुई अर्थात् वे ईश्वर ही वहाँ शब्दरूपसे गतिशील हुए। उनके इस प्रकार गतिशील होनेमें वायुका वेग ही कारण था। यदि कहें उस समय वहाँ वायु कहाँ थी तो इसका उत्तर सुनो—वे ईश्वर वह छिद्र या अवकाश पाते ही अक्षोभ्य होकर भी स्वयं वायुरूपमें प्रकट हो वहाँ बढ़ने लगे (तात्पर्य यह है कि आकाशके अनन्तर उत्पन्न हुई वायु शब्द और गतिकी अभिव्यक्तिमें कारण हुई)॥ ५॥ उस बढ़ती हुई प्रबल वायुसे वह एकार्णवका जल सब ओरसे क्षुब्ध हो उठा। उसमें बहुत-सी तरंगें उठकर परस्पर वेगसे टकराती हुई उस महासागरको मथने लगीं॥ ६॥ उस क्षुब्ध महासागरका जल जब इस प्रकार मथा जाने लगा, तब उससे ज्वालामालाओंसे युक्त शक्तिशाली कृष्णवर्त्मा अग्निका प्रादुर्भाव हुआ॥ ७॥ उस अग्निने वहाँ फैली हुई अगाध जलराशिको सोख लिया। उस जलराशिके क्षीण हो जानेसे वहाँका स्थान खाली हो गया और आकाश निकल आया॥ ८॥ अमृतरसके समान मधुर एवं पवित्र जल परमात्माके तेजसे प्रकट हुआ है। उस जलमें जो छिद्र प्रकट हुआ, उससे आकाशका आविर्भाव हुआ और आकाशसे वायुकी उत्पत्ति हुई॥ ९॥ घीके समान द्रवस्वरूप जो जल है, उसके पारस्परिक संघर्षसे पृथ्वीका प्रादुर्भाव हुआ। उस पृथ्वी या पार्थिव शरीरमें जठरानलका प्राकट्य हुआ, जो परम्परया जलसे ही उत्पन्न है। उसे देखकर महाभूतोंके आदिस्रष्टा परमात्मदेव बहुत प्रसन्न हुए॥ १०॥ लोकसृष्टिके प्रयोजन और तत्त्वको जाननेवाले अनेक रूपधारी वे भगवान् प्रत्येक कल्पमें इस प्रकार भूतोंका प्राकट्य देखकर सृष्टि-विस्तारके लिये हितकर ब्रह्माजीके जन्मका चिन्तन करते हैं (अर्थात् मानसिक संकल्पसे ब्रह्माजीको उत्पन्न करते हैं)॥ ११॥

चतुर्युगादिसंख्यान्ते सहस्रयुगपर्यये।
यत्पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मनाम्॥ १२

बहुजन्मनिरुद्धात्मा ब्राह्मणो यतिरुत्तमः।
ज्ञानवान् दृष्टविश्वात्मा योगिनां योगवित्तमः॥ १३

एक सहस्र चतुर्युग बीतनेपर ब्रह्माजीका एक दिन होता है (और इसी दिनसे वे सौ वर्षोंतक जीवित रहते हैं)। वे ब्रह्मा पूर्वकल्पमें इस पृथ्वीपर तपस्यासे शुद्ध अन्तःकरणवाले द्विजराजोंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मके उपासक, यत्नशील, अनेक जन्मोंतक चित्तवृत्तियोंका निरोध करनेवाले, ज्ञानवान्, विश्वात्माका साक्षात्कार करनेवाले और योगियोंमें सर्वश्रेष्ठ योगवेत्ता रहे होते हैं॥ १२-१३॥

तं योगवन्तं विज्ञेयं सम्पूर्णैश्वर्यविक्रमम्।
देवो ब्रह्मणि विश्वे च नियोजयति योगवित्॥ १४

योगवेत्ता विश्वेश्वरदेव उन योगवान्, सबके लिये उपास्य तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्य और विक्रमसे सम्पन्न ब्रह्माजीको वेद और जगत्की परम्परा बनाये रखनेके कार्यमें नियुक्त करते हैं॥ १४॥

ततस्तस्मिन् महातोये हविषो हरिरच्युतः।
स्वपन् क्रीडंश्च विविधं मोदते चैष पावकिः॥ १५

ब्रह्माजीको नियुक्त करनेके अनन्तर भगवान् श्रीहरि अपने स्वरूपभूत उस महान् जलमें अच्युतरूपसे स्थित होते हैं और ये नियुक्त हुए तैजस ब्रह्मा प्राणियोंके कर्मवश उनके कर्मोंसे उपरत होनेपर सोते तथा सबके कर्मोंके उद्भव होनेपर नाना प्रकारसे क्रीडाएँ करते हुए आनन्दमग्न होते हैं॥ १५॥

पद्मं नाभ्युद्भवं चैकं समुत्पादितवांस्तदा।
सहस्रपत्रं विरजो भास्कराभं हिरणमयम्॥ १६

उस समय जब कि ब्रह्माके जन्मका समय उपस्थित हुआ था, भगवान् श्रीहरिने अपनी नाभिसे एक सहस्रदल कमल प्रकट किया, जो रजोगुण या रजसे रहित सूर्यके समान तेजस्वी तथा सुवर्णमय था॥ १६॥

हुताशनज्वलितशिखोज्ज्वलप्रभं
सुगन्धिनं शरदमलार्कतेजसम्।
विराजते कमलमुदारवर्चसं
महात्मनस्तनुरुहचारुदर्शनम्॥ १७

महात्मा श्रीहरिके शरीरसे प्रकट हो अत्यन्त मनोहर दिखायी देनेवाला वह अतिशय कान्तिमान् सुगन्धित कमल बड़ी शोभा पा रहा था। वह आगकी प्रज्वलित शिखाके समान अपनी उज्ज्वल प्रभासे प्रकाशित हो रहा था। उसका तेज शरत्कालके निर्मल सूर्यकी भाँति उद्भासित होता था॥ १७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे महापद्मोत्पत्तौ एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्करप्रादुर्भावके प्रसङ्गमें महापद्मकी उत्पत्तिविषयक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥



द्वादशोऽध्यायः

नारायणके नाभिकमलके दलोंमें समस्त लोकोंकी कल्पना

वैशम्पायन उवाच

अथ योगविदां श्रेष्ठं सर्वभूतमनोमयम्।
स्रष्टारं सर्वभूतानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम्॥ १
तस्मिन् हिरणमये पद्मे बहुयोजनविस्तृते।
सर्वतेजोगुणमये पार्थिवैर्लक्षणैर्युते॥ २
तच्च पद्मं पुराणज्ञाः पृथिवीरुहमुत्तमम्।
नारायणाङ्गसम्भूतं प्रवदन्ति महर्षयः॥ ३
या तु पद्मासना देवी पृथिवीं तां प्रचक्षते।
ये गर्भसाराङ्कुरतस्तान् दिव्यान् पर्वतान् विदुः॥ ४
हिमवन्तं च मेरुं च नीलं निषधमेव च।
कैलासं मुञ्जवन्तं च तथाद्रिं गन्धमादनम्॥ ५
पुण्यं त्रिशिखरं चैव कान्तं मन्दरमेव च।
उदयं कन्दरं चैव विन्ध्यमस्तं च पर्वतम्॥ ६
एते देवगणानां च सिद्धानां च महात्मनाम्।
आश्रमाः पुण्यशीलानां सर्वकामयुताद्रयः॥ ७
एतेषामन्तरो देशो जम्बूद्वीप इति स्मृतः।
जम्बूद्वीपस्य संख्यानं याज्ञिया यत्र चक्रिरे॥ ८
गर्भाद् यत् स्रवते तोयं देवामृतरसोपमम्।
दिव्यतीर्थशतापाङ्ग्यस्ता दिव्याः सरितः स्मृताः॥ ९
यान्येतानि तु पद्मस्य केसराणि समन्ततः।
असंख्याताः पृथिव्यां तु विश्वे ते धातुपर्वताः॥ १०
यानि पद्मस्य पत्राणि भूरीण्यूर्ध्वं नराधिप।
ते दुर्गमाः शैलचिता म्लेच्छदेशा विकल्पिताः॥ ११
यान्यधः पद्मपत्राणि वासार्थं तानि भागशः।
दैत्यानामुरगाणां च पातालं तन्महात्मनाम्॥ १२
तेषामधोगतं यत्तदुदकेत्यभिसंज्ञितम्।
महापातककर्माणो मज्जन्ते यत्र मानवाः॥ १३
पद्मस्यान्ते कुशं यत्तदेकार्णवजलं महत्।
प्रोक्तास्ते दिक्षु संघाताश्चत्वारो जलसागराः॥ १४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर आपवस्वरूप परमात्माने अनेक योजन विस्तृत, सम्पूर्ण तेजोमय गुणोंसे सम्पन्न और पार्थिव लक्षणोंसे युक्त उस हिरण्मय कमलमें योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, सम्पूर्ण भूतोंके मनमें स्थित, सब ओर मुखवाले तथा समस्त प्राणियोंके स्रष्टा ब्रह्माजीको स्थापित कर दिया॥ १-२॥ पुराणोंके ज्ञाता महर्षिगण पृथ्वी (शरीर)-से उत्पन्न होनेवाले उस उत्तम कमलको नारायणके अङ्गसे प्रकट हुआ बताते हैं॥ ३॥ वह पद्म जिस देवीका आसन है, उसे पृथ्वी कहते हैं तथा उस कमलके भीतरी भागमें जो पाषाणमय होनेके कारण सुदृढ़ और अङ्कुरकी भाँति ऊँचे उठे हुए भाग हैं, उन्हें दिव्य पर्वत माना गया है॥ ४॥ उनके नाम इस प्रकार हैं—हिमवान्, मेरु, नील, निषध, कैलास, मुञ्जवान्, गन्धमादन, पवित्र त्रिकूट, कमनीय मन्दराचल, उदयाचल, कन्दराचल, विन्ध्याचल और अस्ताचल॥ ५-६॥ ये सम्पूर्ण मनोवाञ्छित भोगोंसे सम्पन्न पर्वत, देवताओं, सिद्धों और पुण्यशील महात्माओंके आश्रम हैं॥ ७॥ इनके बीचका देश जम्बूद्वीप माना गया है। जहाँ याज्ञिकोंने यज्ञ किया है, उसी प्रदेशको जम्बूद्वीपकी संज्ञा वा ख्याति प्राप्त हुई है॥ ८॥ उस कमलके गर्भसे जो देवताओंके अमृतरसके समान जल झरता है, उस जलको बहानेवाली दिव्य सरिताएँ मानी गयी हैं। सैकड़ों दिव्य तीर्थ उनके अपाङ्ग हैं॥ ९॥ उस पद्मके चारों ओर जो ये केसर हैं, वे ही भूमण्डलके सारे धातुपर्वत हैं, जिनकी गणना असम्भव है॥ १०॥ नरेश्वर! उस कमलके जो बहुत-से ऊपरी दल हैं, वे ही पर्वतोंसे भरे हुए दुर्गम म्लेच्छ देश कहे गये हैं॥ ११॥ उक्त कमलके जो नीचेके पत्र हैं, वे पृथक्-पृथक् निवासके लिये चुन लिये गये हैं। उन्हींको महामना दैत्यों और सर्पोंका वासस्थान पाताल कहा गया है॥ १२॥ उन पद्मपत्रोंके नीचे जो उदक* नामक स्थान है, उसमें महापातकयुक्त कर्म करनेवाले मनुष्य डूबते हैं॥ १३॥ उस कमलके अन्तमें चारों ओर जो कुश अर्थात् जल है, वही एकार्णवकी अनन्त जलराशि है। उसके चार भाग चारों दिशाओंमें संचित हैं, जो जलके समुद्र कहे गये हैं॥ १४॥

* उत् उत्कृष्टं अकं दुःखं यत्र तत् उदकम् (जहाँ उत्कृष्ट अर्थात् महान् अक—दुःख हैं, वह स्थान उदक है)—इस व्युत्पत्तिके अनुसार नरकको ही यहाँ उदक कहा गया है।

ऋषेर्नारायणस्यायं महापुष्करसम्भवः।
प्रादुर्भावोऽप्ययं तस्मान्नाम्ना पुष्करसम्भवः॥ १५

एतस्मात् कारणात् तज्ज्ञैः पुराणैः परमर्षिभिः।
यज्ञियैर्वेददृष्टार्थैर्यज्ञे पद्मचिती कृतः॥ १६

एवं भगवता पद्मे विश्वस्य परमो विधिः।
पर्वतानां नदीनां च देशानां च विनिर्मितः॥ १७

विभुस्तथैवाप्रतिमप्रभावः
प्रभाकरो वै भगवान् महात्मा।
स्वयं स्वयम्भूः शयनेऽसृजत् तदा
जगन्मयं पद्मनिधिं महार्णवे॥ १८

नारायण ऋषिकी नाभिसे यह महान् पद्मका प्राकट्य हुआ है, इसीलिये उसके इस प्रादुर्भावको पुष्करसम्भव (पुष्करप्रादुर्भाव) नामसे कहा गया है॥ १५॥ इसी कारणसे उस पद्मको जाननेवाले पुरातन महर्षियोंने, जो यज्ञपरायण तथा वेदार्थके ज्ञाता हैं, यज्ञमें कमलके आकारका कुण्ड निर्माण किया है॥ १६॥ इस प्रकार भगवान्ने उस कमलमें ही विश्वकी व्यावहारिक सृष्टि की है, पर्वतों, नदियों तथा विभिन्न देशोंकी भी रचना की है॥ १७॥ अप्रतिम प्रभावशाली, सर्वव्यापी, प्रभापुञ्ज, ऐश्वर्यसम्पन्न, महामना, स्वयम्भू भगवान् नारायणने उस महार्णवके भीतर शयन करते समय स्वयं ही उस जगन्मय पद्मनिधिकी सृष्टि की थी॥ १८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे सर्वभूतोत्पत्तौ द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पौष्करप्रादुर्भावके प्रसंगमें सम्पूर्ण भूतोंका उत्पत्तिविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

मधु और कैटभका ब्रह्माजीके साथ संवाद तथा भगवान् विष्णुके द्वारा वध

वैशम्पायन उवाच

चतुर्युगादिसम्भूतौ सहस्रयुगपर्यये।
विघ्नस्तमसि सम्भूतो मधुर्नाम महासुरः॥ १

तस्यैव च सहायोऽन्यो भूतो रजसि कैटभः।
तौ रजस्तमसाविष्टौ सम्भूतौ कामरूपिणौ॥ २

एकार्णवजलं सर्वं क्षोभयन्तौ महासुरौ।
कृष्णरक्ताम्बरधरौ श्वेतदीप्तोग्रदंष्ट्रिणौ॥ ३

उभौ मदकटोदग्रौ केयूरवलयोज्ज्वलौ।
महाविकृतताम्राक्षौ पीनोरस्कौ महाभुजौ॥ ४

महच्छिरःसंहननौ जङ्गमाविव पर्वतौ।
नीलमेघाभ्रसंकाशावादित्यप्रतिमाननौ॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सहस्र युगोंकी ब्रह्माजीकी रात्रि व्यतीत होनेपर चारों युगोंमें जो आदि सत्ययुग आया, उसमें आरम्भ होनेवाली सृष्टिके कार्यमें विघ्नस्वरूप एक महान् असुर उत्पन्न हुआ, जिसका नाम मधु था। वह तमोगुणसे प्रकट हुआ था॥ १॥ उसीका सहायक एक दूसरा असुर उत्पन्न हुआ था, जो रजोगुणसे प्रकट हुआ था; उसका नाम कैटभ था। वे दोनों इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले थे और रजोगुण तथा तमोगुणसे आविष्ट रहते थे॥ २॥ सम्पूर्ण एकार्णवके जलमें क्षोभ उत्पन्न करते हुए वे दोनों महान् असुर क्रमशः काले और लाल रंगके वस्त्र धारण करते थे। उनकी भयंकर दाढ़ें सफेद और चमकीली थीं॥ ३॥ वे दोनों उत्कट मदसे उद्दण्ड हो रहे थे। बाजूबंद और कड़े धारण करके उनकी दीप्तिसे दमक रहे थे। उनकी लाल-लाल आँखें बड़ी विकराल थीं। वक्षःस्थल मांससे भरे हुए थे और भुजाएँ लम्बी थीं॥ ४॥ उनके सिर और शरीर विशाल थे। वे दोनों दो चलते-फिरते पर्वतोंके समान प्रतीत होते थे। मेघोंकी काली घटाके समान काले दिखायी देते थे। उनके मुख सूर्यके समान तेजस्वी थे॥ ५॥

विद्युदम्भोदताम्राभ्यां कराभ्यामतिभीषणौ।
पादसंचारवेगाभ्यामुत्क्षिपन्ताविवार्णवम्॥ ६

कम्पयन्ताविव हरिं शयानमरिसूदनम्।
तौ तत्र विहरन्तौ स्म पुष्करे विश्वतोमुखम्॥ ७

पश्यतां दीप्तवपुषं योगिनां श्रेष्ठमुत्तमम्।
नारायणसमाज्ञप्तं सृजन्तमखिलाः प्रजाः।
दैवतानि च विश्वानि मानसांश्च सुतानृषीन्॥ ८

ततस्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणमसुरोत्तमौ।
दृप्तौ युयुत्सुकौ क्रुद्धौ रोषसंरक्तलोचनौ॥ ९

कस्त्वं पुष्करमध्यस्थः सितोष्णीषश्चतुर्मुखः।
आवामगणयन् मोहादास्से त्वं विगतज्वरः॥ १०

एह्यावयोर्बाहुयुद्धं प्रयच्छ कमलोद्भव।
आवाभ्यामतिवीराभ्यां न शक्यं स्थातुमाहवे॥ ११

कस्त्वं कश्चोद्भवस्तुभ्यं केन वासीह चोदितः।
कः स्रष्टा कश्च वै गोप्ता केन नाम्नाभिधीयसे॥ १२

ब्रह्मोवाच

यः क इत्युच्यते लोके ह्यविज्ञातः सहस्रशः।
तत्सम्भवं योगवन्तं किं मां नाभ्यवगच्छथः॥ १३

मधुकैटभावूचतुः

नावयोः परमं लोके किंचिदस्ति महामते।
आवाभ्यां छाद्यते विश्वं तमसा रजसा तथा॥ १४

रजस्तमोमयावावां यतीनां दुःखलक्षणौ।
छलकौ धर्मशीलानां दुस्तरौ सर्वदेहिनाम्॥ १५

आवाभ्यां मुह्यते लोक उच्छ्रिताभ्यां युगे युगे।
आवामर्थश्च कामश्च यज्ञाः सर्वपरिग्रहाः॥ १६

सुखं यत्र मुदो यत्र यत्र श्रीः सन्नतिर्नयः।
एषां यत्काङ्क्षितं चैव तत्तदावां विचिन्तय॥ १७

बिजलीसहित मेघोंके समान ताम्रवर्णवाले दोनों हाथोंसे वे अत्यन्त भीषण दिखायी देते थे। अपने पैरोंके चलनेके वेगसे उस महासागरको उछालते हुए-से जान पड़ते थे॥ ६॥ जलमें सोते हुए शत्रुसूदन श्रीहरिको कम्पित करते हुए-से वे दोनों असुर वहाँ विचर रहे थे। उन्होंने पूर्वोक्त कमलपर सब ओर मुखवाले, तेजस्वी शरीरसे युक्त और योगियोंमें श्रेष्ठ सर्वोत्तम ब्रह्माजीको देखा, जो भगवान् नारायणकी आज्ञासे समस्त प्रजाओंकी, सम्पूर्ण देवताओंकी तथा अपने मानस पुत्र महर्षियोंकी सृष्टि कर रहे थे॥ ७-८॥ तदनन्तर वे दोनों असुरशिरोमणि बलके घमंडमें भरकर युद्धके लिये उत्सुक हो रोषसे लाल आँखें किये वहाँ ब्रह्माजीसे क्रोधपूर्वक बोले— ॥ ९॥ 'अरे! तू कौन है, जो मोहवश हम दोनोंको कुछ भी न गिनता हुआ श्वेत पगड़ी और चार मुँह धारण किये इस कमलके मध्यभागमें निश्चिन्त होकर बैठा है?॥ १०॥ कमलोद्भव पुरुष! आ। हमें बाहुयुद्धका अवसर दे। हम दोनों अत्यन्त वीर हैं। हमारे साथ तू युद्धमें नहीं टिक सकता है॥ ११॥ बता! तू कौन है? तुझे उत्पन्न करनेवाला कौन है? किसने तुझे यहाँ सृष्टिके कार्यमें लगाया है? तेरा स्रष्टा और संरक्षक कौन है? तू किस नामसे पुकारा जाता है'?॥ १२॥

ब्रह्माजीने कहा—जो लोकमें 'क' नामसे कहे जाते हैं। जिन्हें सहस्रों प्रयत्न करके भी किसीने पूर्णरूपसे नहीं जाना है। मैं उन्हीं परमात्मासे उत्पन्न और योगशक्तिसे सम्पन्न हूँ। क्या तुम दोनों मुझे नहीं जानते?॥ १३॥

मधु और कैटभ बोले—महामते! संसारमें हम दोनोंसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। (इस विश्वको आच्छादित करनेवाले रजोगुण और तमोगुणसे हम दोनों प्रकट हुए हैं; अतः) हम दोनों अपने स्वरूपभूत तमोगुण और रजोगुणके द्वारा इस विश्वको आच्छादित करते हैं॥ १४॥ हम दोनों क्रमशः रजोमय और तमोमय हैं। यत्नशील साधकोंको दुःख देना हमारा काम है। हम धर्मशील पुरुषोंको छलते हैं। हमें लाँघ जाना सभी देहधारियोंके लिये अत्यन्त कठिन है॥ १५॥ हम प्रत्येक युगमें उन्नत हो सारे संसारको मोहमें डाल देते हैं। अर्थ, काम, यज्ञ और समस्त परिग्रह हम दोनों ही हैं॥ १६॥ जहाँ सुख है, जहाँ आनन्द है। जहाँ श्री, सन्नति और नय है तथा इन सबके द्वारा जो-जो अभिलषित वस्तु है, वह-वह हम दोनों ही हैं। ऐसा चिन्तन कर॥ १७॥

ब्रह्मोवाच

यत् तद् योगवतां श्रेष्ठं यच्च पूर्वं मयार्चितम्।
तत् समाधाय गुणवान् सत्त्वे चास्मि प्रतिष्ठितः॥ १८

यत्परं योगयुक्तानामक्षरं सत्त्वमेव च।
रजसस्तमसश्चैव यत्स्रष्टा जीवसम्भवः॥ १९

यतो भूतानि जायन्ते सात्त्विकानीतराणि च।
स एव युद्ध्वा समरे वशी वां शमयिष्यति॥ २०

वैशम्पायन उवाच

ततः शयानं श्रीमन्तं बहुयोजनविस्तृतम्।
पद्मनाभं हृषीकेशं प्रणम्यावोचतामुभौ॥ २१

जानीवस्त्वां विश्वयोनिमेकं पुरुषसत्तमम्।
तवोपासनहेत्वर्थमिदं नौ विद्धि कारणम्॥ २२

अमोघदर्शनं सत्यं यतस्त्वां विदुरीश्वरम्।
ततस्त्वामभितो देव काङ्क्षावः प्रतिवीक्षितुम्॥ २३

तदिच्छावो वरं दत्तं त्वया ह्यावामरिंदम।
अमोघं दर्शनं देव नमस्तेऽस्त्वजितंजय॥ २४

श्रीभगवानुवाच

तानिच्छथो द्रुतं ब्रूतं वरानसुरसत्तमौ।
दत्तायुषौ मया भूयस्त्वहो जीवितुमिच्छथः॥ २५

तस्माद् यदेष वां यत्नस्तत् प्राप्नुतं महाबलौ।
वध्यौ भवन्तौ तु स्यातां तावित्येवाब्रवीद्धरिः।
उभावपि महात्मानावूर्जितौ क्षतवर्जितौ॥ २६

मधुकैटभावूचतुः

यस्मिन् न कश्चिन्मृतवांस्तस्मिन् देशे विभो वधम्।
इच्छावः पुत्रतां यातुं तव चैव सुराधिप॥ २७

ब्रह्माजी बोले—जो योगयुक्त पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं और जिनकी पहले मैंने आराधना की है, उन्हीं परमात्माको हृदयमें धारण करके मैं सत्त्वमें प्रतिष्ठित हूँ। गुणवान् हूँ—सृष्टिके साधनभूत त्रिगुणात्मक वस्तुओंका मेरे पास संग्रह है॥ १८॥ जो योगियोंके परम तत्त्व हैं, अविनाशी सत्त्व हैं, रजोगुण और तमोगुणके स्रष्टा हैं तथा जीवोंकी उत्पत्तिके कारण हैं, जिनसे सात्त्विक और असात्त्विक सभी भूत उत्पन्न होते हैं, सबको वशमें रखनेवाले वे ही परमात्मा समरभूमिमें युद्ध करके तुम दोनोंको शान्त कर देंगे॥ १९-२०॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर वहाँ अनेक योजन विस्तृत शरीर धारण करके सोये हुए सबकी इन्द्रियोंके प्रेरक श्रीमान् भगवान् पद्मनाभको प्रणाम करके वे दोनों मधु और कैटभ उनसे इस प्रकार बोले—॥ २१॥ 'प्रभो! हम आपको जानते हैं, आप समस्त विश्वकी उत्पत्तिके एकमात्र स्थान और पुरुषोत्तम हैं। हम दोनोंकी जो यह सृष्टि हुई है, इसे आप अपनी उपासनाके लिये ही समझें॥ २२॥ देव! ज्ञानी पुरुष आपका दर्शन अमोघ बताते हैं, आपको सत्यस्वरूप ईश्वर समझते हैं, इसलिये हम दोनों समीप आकर आपका दर्शन करना चाहते हैं॥ २३॥ शत्रुदमन! हम दोनों आपके दिये हुए वरकी अभिलाषा रखते हैं। जो किसीसे भी हारा नहीं है, उसपर भी विजय पानेवाले देव! आपका दर्शन अमोघ है, आपको नमस्कार है'॥ २४॥

श्रीभगवान् बोले—असुरशिरोमणियो! जल्दी बोलो, तुम कौन-कौनसे वर लेना चाहते हो? अहो! मैंने तुम्हें जितनी आयु दी थी, उससे भी अधिक कालतक जीवित रहना चाहते हो? आश्चर्य है!॥ २५॥ अतः तुमलोगोंने जो यह प्रयत्न किया है, तुम दोनों महाबली असुर इसका फल प्राप्त करो। तुम दोनों मेरे वध्य हो जाओ। इस प्रकार श्रीहरिने उन दोनोंसे कहा। तब वे दोनों आघातरहित महान् बलशाली महाकाय असुर उनसे यों बोले॥ २६॥

मधु और कैटभने कहा—प्रभो! सुरेश्वर! जिस देशमें अबतक कोई मरा न हो, उसीमें आप हमारा वध करें, यह हम दोनोंकी इच्छा है। साथ ही हम आपका पुत्र होना चाहते हैं॥ २७॥

श्रीभगवानुवाच

बाढं सुतौ मे प्रवरौ भविष्ये कल्पसम्भवे।
भविष्यथो न संदेहः सत्यमेतद् ब्रवीमि वाम्॥ २८

श्रीभगवान् बोले—बहुत अच्छा, तुम दोनों भविष्य कल्पमें मेरे श्रेष्ठ पुत्र होओगे, इसमें संदेह नहीं है। यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ॥ २८॥

वैशम्पायन उवाच

वरं प्रदायाथ महासुराभ्यां
सनातनो विश्ववरोत्तमो विभुः।
रजस्तमोभ्यां भवभावनोपमौ
ममन्थ तावूरुतले सुरारिहा॥ २९

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! देवद्रोहियोंका दमन करनेवाले एवं विश्वमें सबसे श्रेष्ठ सर्वव्यापी सनातन पुरुष नारायणदेवने रजोगुण और तमोगुणके मूर्तिमान् स्वरूप उन दोनों महान् असुरोंको ऐसा वर देनेके अनन्तर उन्हें अपनी जाँघोंपर रखकर मथ डाला। वे दोनों विश्वविधाता ब्रह्माजीके समान ही शक्तिशाली थे॥ २९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि मधुकैटभवरप्रदाने त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें मधु और कैटभको वरदानविषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

ब्रह्माजीके तीन पुत्रोंको परम पदकी प्राप्ति, फिर उनके द्वारा मैथुनी सृष्टिका विस्तार, दक्ष-कन्याओंकी संततिका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

स्थित्वा तस्मिंस्तु कमले ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।
ऊर्ध्वबाहुर्महाबाहुस्तपो घोरं समाश्रितः॥ १

ज्वलन्निव च तेजस्वी भाभिः स्वाभिस्तमोनुदः।
बभासे सर्वधर्मज्ञः सहस्रांशुरिवांशुमान्॥ २

अथान्यद्रूपमास्थाय शम्भुर्नारायणोऽव्ययः।
द्विधा कृत्वाऽऽत्मनाऽऽत्मानमचिन्त्यात्मा सनातनः॥ ३

आजगाम महातेजा योगाचार्यो महायशाः।
सांख्याचार्यश्च मतिमान् कपिलो ब्राह्मणो वरः॥ ४

देवर्षिभिस्तु तावेतौ ब्रह्म ब्रह्मविदां वरौ।
उभावपि महात्मानावूर्जितौ क्षेत्रतत्परौ॥ ५

तौ प्राप्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणममितौजसम्।
परावरविशेषज्ञौ पूजितौ परमर्षिभिः॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—उस समय ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महाबाहु ब्रह्माजी उस कमलपर खड़े हो दोनों बाँहें ऊपर उठाकर घोर तपस्यामें लग गये॥ १॥ वे तेजसे प्रज्वलित-से हो रहे थे और अपनी प्रभाओंसे अन्धकारका निवारण करते थे। सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता ब्रह्माजी उस समय सहस्र किरणोंवाले अंशुमाली सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ २॥ तदनन्तर कल्याणकारी एवं अविनाशी अचिन्त्यस्वरूप सनातनदेव भगवान् नारायण दूसरा रूप धारण कर अपने-आपको ही दो स्वरूपोंमें व्यक्त करके महातेजस्वी, महायशस्वी योगाचार्य नारायण तथा परम बुद्धिमान् श्रेष्ठ ब्राह्मण सांख्याचार्य कपिलके रूपमें वहाँ पधारे। ये दोनों महात्मा ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, शक्तिशाली तथा क्षेत्र (शरीर या अध्यात्मतत्त्व)-के चिन्तनमें तत्पर थे। देवर्षियोंद्वारा इनकी स्तुति की जा रही थी। वहाँ आकर उन दोनोंने अमित तेजस्वी ब्रह्माजीको ब्रह्मका उपदेश दिया। वे दोनों ही पर और अवर, पुरुष और प्रकृति अथवा कारण तथा कार्यकी विशेषता (अन्तर)-को जाननेवाले थे। बड़े-बड़े ऋषियोंने उनका वहाँ पूजन किया॥ ३—६॥

बहुत्वाद् दृढपादश्च विश्वात्मा जगतः स्थितिः।
ग्रामणीः सर्वलोकानां ब्रह्मा लोकगुरुर्वरः॥ ७

तयोस्तद् वचनं श्रुत्वा तिस्रो व्याहृतयो जपन्।
त्रीनिमान् कृतवाँल्लोकान् यथाह ब्राह्मणी श्रुतिः॥ ८

पुत्रं भूसंज्ञकं चैव समुत्पादितवान् प्रभुः।
ततोऽग्रे तद्गतस्नेहो ब्रह्मा मानसमव्ययम्॥ ९

सोत्पन्नस्त्वग्रे ब्रह्माणमुवाच मानसः सुतः।
करोमि किं ते साहाय्यं ब्रवीतु भगवानिति॥ १०

ब्रह्मोवाच

य एष कपिलो नाम ब्रह्मा नारायणस्तथा।
वदते वरदस्त्वां तु तत्कुरुष्व महामते॥ ११

वैशम्पायन उवाच

ब्रह्मणोक्तस्तदा भूयः संशयं समुपस्थितः।
शुश्रूषुरस्मि युवयोः किं कुर्मीति कृताञ्जलिः॥ १२

परमेश्वरावूचतुः

यत् सत्यमक्षरं ब्रह्म ह्यष्टादशनिधं स्मृतम्।
यत् सत्यममृतं चैव परं तत् समनुस्मर॥ १३

वैशम्पायन उवाच

एतद् वचो निशम्याथ स ययौ दिशमुत्तराम्।
गत्वा च तत्र ब्रह्मत्वमगमज्ज्ञानचक्षुषा॥ १४

ततो ब्रह्मा भुवर्नाम द्वितीयमसृजत् प्रभुः।
संकल्पयित्वा च पुनर्मनसैव महामनाः॥ १५

ततः सोऽप्यब्रवीद् वाक्यं किं कुर्मीति पितामहम्।
पितामहसमाज्ञप्तो ब्रह्माणौ समुपस्थितः॥ १६

उन्होंने इस प्रकार कहा—लोक बहुत हैं, अतः उन समस्त लोकोंके नेता और गुरु ब्रह्माजी सबसे श्रेष्ठ हैं। वे ही सम्पूर्ण विश्वके आत्मा तथा जगत्‌की प्रतिष्ठा हैं। उनके विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय नामक पाद सुदृढ़ हैं॥ ७॥ उन दोनोंकी यह बात सुनकर भूः, भुवः, स्वः —इन तीनों व्याहृतियोंका जप करते हुए ब्रह्माजीने इन तीनों लोकोंकी सृष्टि की, जैसा कि ब्रह्मका प्रतिपादन करनेवाली श्रुति कहती है॥ ८॥ तत्पश्चात् भगवान् ब्रह्माने पहले भूनामक मानस पुत्रको उत्पन्न किया, जो अव्यय (विकाररहित) था। उनके मनमें उस पुत्रके प्रति बड़ा स्नेह था॥ ९॥ पहले उत्पन्न हुए उस मानसिक पुत्रने ब्रह्माजीसे पूछा—'भगवन्! बताइये! मैं आपकी क्या सहायता करूँ'॥ १०॥

ब्रह्माजीने कहा—महामते! ये जो कपिल नामक ब्रह्मा तथा वरदायक नारायण हैं, ये तुमसे जो कुछ कहें, वही करो॥ ११॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उस समय ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर भूनामक पुत्रको यह संशय हुआ कि मेरे पिताजीसे भी बढ़कर कौन है? तथापि उन दोनोंके पास गया और हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला—'मैं आप दोनोंका सेवक हूँ, कहिये! क्या सेवा करूँ?'॥ १२॥

वे दोनों परमेश्वर बोले—जो सत्य एवं अविनाशी ब्रह्म है, उसके अठारह* पाश माने गये हैं। (इन पाशोंसे मुक्त होनेके लिये) जो सत् एवं अमृत परम तत्त्व है, उसका तुम निरन्तर चिन्तन करते रहो॥ १३॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उनकी यह बात सुनकर वह ब्रह्माजीका भूनामक मानस पुत्र उत्तर दिशाको चला गया, वहाँ जाकर वह ज्ञानदृष्टिसे विचार करके ब्रह्मभावको प्राप्त हो गया॥ १४॥ तब महामनस्वी भगवान् ब्रह्माने पुनः मनसे ही संकल्प करके भुवर् नामक दूसरे पुत्रकी सृष्टि की॥ १५॥ तब उसने भी पितामह ब्रह्माजीसे वही बात कही कि 'मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' फिर ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर वह पूर्वोक्त दोनों ब्रह्माओं (कपिल और नारायण)-की सेवामें उपस्थित हुआ॥ १६॥

* यहाँ सांख्य और योगमतके आचार्योंने अपने-अपने मतमें माने गये आठ और दस पाशोंको एकत्र करके उनकी अठारह संख्या बतायी है। सांख्यमतमें आठ प्रकारके पाश यों हैं—१. पाँच कर्मेन्द्रियाँ, २. पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, ३. अन्तःकरणचतुष्टय, ४. पञ्चविध प्राण, ५. आकाश आदि पञ्च महाभूत, ६. काम, ७. कर्म और ८ वीं अविद्या। ये पुर्यष्टक कहलाते हैं। इनमेंसे अविद्याको छोड़कर और प्रकृति, पुरुष तथा ईश्वरको जोड़कर दस पाश योगमतमें स्वीकार किये गये हैं।

ब्रह्मभ्यां सहितः सोऽथ भूयो भागवतीं गतः।
प्राप्तश्च परमं स्थानं स तयोः पार्श्वमागतः॥ १७

तस्मिन्नपि गते पुत्रं तृतीयमसृजत् प्रभुः।
मोक्षोपायेति कुशलं भूर्भुवर्नाम तं विभुः॥ १८

आससाद स तद्धर्मं तयोरेवागमद् गतिम्।
एवं पुत्रास्त्रयोऽप्येते उक्ताः शम्भोर्महात्मनः॥ १९

तान् गृहीत्वा सुतांस्तस्य प्रययौ स्वां गतिं तथा।
नारायणोऽथ भगवान् कपिलश्च यतीश्वरः॥ २०

यं कालं तौ गतौ मुक्तौ ब्रह्मा तत्कालमेव तु।
तेपे घोरतरं भूयः स तपः संशितव्रतः॥ २१

न रराम ततो ब्रह्मा प्रभुरेकस्तपश्चरन्।
शरीरार्द्धमथो भार्यां समुत्पादितवाञ्छुभाम्॥ २२

तपसा तेजसा चैव वर्चसा नियमेन च।
सदृशीमात्मनो भार्यां समर्थां लोकसर्जने॥ २३

तया सह ततस्तत्र रेमे ब्रह्मा तपोमयः।
सृजन् प्रजापतीन् सर्वान् सागरान् सरितस्तथा॥ २४

ततोऽसृजद् वै त्रिपदां गायत्रीं वेदमातरम्।
अकरोच्चैव चत्वारो वेदान् गायत्रिसम्भवान्॥ २५

आत्मार्थे चासृजत् पुत्राँल्लोककर्तॄन् पितामहः।
विश्वे प्रजानां पतयो येभ्यो लोका विनिःसृताः॥ २६

विश्वेशं प्रथमं नाम महातपसमात्मजम्।
सर्वाश्रमतमं पुण्यं नाम्ना धर्मं स सृष्टवान्॥ २७

दक्षं मरीचिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
वसिष्ठं गौतमं चैव भृगुमङ्गिरसं मनुम्॥ २८

अथर्वभूता इत्येते ख्याता ब्रह्ममहर्षयः।
त्रयोदशसुतानां तु ये वंशा वै महर्षिणाम्॥ २९

अदितिर्दितिर्दनुःकाला दनायुः सिंहिका मुनिः।
प्रबोधा सुरसा क्रोधा विनता कद्रुरेव च॥ ३०

दक्षस्यैता दुहितरः कन्या द्वादश भारत।
नक्षत्राणि च भद्रं ते सप्तविंशतिरूर्जिताः॥ ३१

उन दोनोंके पास आकर वह पुनः उनके साथ ही भागवती गति परम पदको प्राप्त हो गया॥ १७॥ उसके भी चले जानेपर वैभवशाली भगवान् ब्रह्माने 'भूर्भुवर्' नामक तीसरे पुत्रको उत्पन्न किया, जो मोक्षसाधनमें अत्यन्त कुशल था॥ १८॥ वह भी अपने पूर्वजोंके ही धर्मको प्राप्त हुआ और उसने भी उन्हींकी गति प्राप्त की। इस प्रकार ब्रह्माजीके इन तीनों पुत्रोंको उन कल्याणकारी महात्मा कपिल एवं नारायणने उपदेश दिया (और मुक्त किया) था॥ १९॥ ब्रह्माजीके उन तीनों मानस पुत्रोंको साथ लेकर वे भगवान् नारायण और यतीश्वर कपिल अपने स्वरूपको प्राप्त हुए॥ २०॥ जिस समय वे कपिल और नारायण अपने स्वरूपको प्राप्त एवं मुक्त हुए, उसी समय कठोर व्रतका पालन करनेवाले ब्रह्माजीने पुनः घोरतर तपस्या प्रारम्भ की॥ २१॥ उस समय अकेले तपस्या करते हुए भगवान् ब्रह्माजी जब उसमें रम न सके, तब उन्होंने एक शुभलक्षणा भार्या उत्पन्न की, जो उनके शरीरका आधा भाग थी॥ २२॥ तप, तेज, कान्ति और नियमकी दृष्टिसे उन्होंने सर्वथा अपने अनुरूप भार्याकी सृष्टि की थी, जो लोकोंकी सृष्टि करनेमें समर्थ थी॥ २३॥ तब तपोमय जीवन व्यतीत करनेवाले ब्रह्माजी वहाँ उसके साथ रमण करने लगे। उस समय उन्होंने समस्त प्रजापतियों, सागरों और सरिताओंकी सृष्टि की थी॥ २४॥ तत्पश्चात् ब्रह्माजीने वेदमाता त्रिपदा गायत्रीकी सृष्टि की, फिर गायत्रीसे प्रकट हुए चारों वेदोंका संकलन किया॥ २५॥ इसके बाद पितामह ब्रह्माने अपने लिये भी अनेक लोकस्रष्टा पुत्र उत्पन्न किये। वे सब-के-सब प्रजापति थे, जिनसे समस्त लोकोंका प्रादुर्भाव हुआ है॥ २६॥ उनके प्रथम पुत्रका नाम विश्वेश था, वह महातपस्वी हुआ। फिर उन्होंने धर्म नामक दूसरे पुत्रकी सृष्टि की, जो सभी आश्रमोंमें श्रेष्ठ और पवित्र माना गया है॥ २७॥ तत्पश्चात् ब्रह्माजीने दक्ष, मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, गौतम, भृगु, अङ्गिरा और मनुको उत्पन्न किया॥ २८॥ ये विख्यात ब्रह्मर्षि अथर्वस्वरूप कहे गये हैं। ब्रह्माजीके ये तेरह पुत्र महर्षि हैं। इनके जो वंश हैं (उनका वर्णन किया जाता है)॥ २९॥ भारत! तुम्हारा कल्याण हो। अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, मुनि, प्रबोधा, सुरसा, क्रोधा, विनता और कद्रू—ये दक्षप्रजापतिकी बारह कन्याएँ हैं। जो सत्ताईस तेजस्वी नक्षत्र हैं, वे भी दक्षकी ही कन्याएँ हैं॥ ३०-३१॥

मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तपसा निर्मितः प्रभुः।
तस्मै कन्या द्वादशेमा दक्षस्ता अन्वमन्यत॥ ३२

नक्षत्राख्यानि सोमाय वसवे दत्तवानृषिः।
रोहिण्यादीनि सर्वाणि पुण्यानि जनमेजय॥ ३३

लक्ष्मीः कीर्तिस्तथा साध्या विश्वा कामानुगा शुभा।
देवी मरुत्वती चैव ब्रह्मणा निर्मिता पुरा॥ ३४

एताः पञ्च वरिष्ठा वै सुरश्रेष्ठाय भारत।
दत्ता धर्माय भद्रं ते ब्रह्मणा दृष्टधर्मणा॥ ३५

या रूपार्द्धमयी पत्नी ब्रह्मणः कामरूपिणी।
सुरभिः सा तु गौर्भूत्वा ब्रह्माणं समुपस्थिता॥ ३६

ततस्तामगमद् ब्रह्मा मैथुने लोकपूजितः।
लोकसर्जनहेतुज्ञो गवामर्थाय भारत॥ ३७

जज्ञे चैकादश सुतान् विपुलान् धर्मसंहितान्।
रक्तसंध्याभ्रसदृशान् दहनोपमतेजसः॥ ३८

ते रुदन्तो द्रवन्तश्च भगवन्तं पितामहम्।
रोदनाद्द्रावणाच्चैव ततो रुद्रा इति स्मृताः॥ ३९

निर्ऋतिश्चैव सर्पश्च तृतीयो ह्यज एकपात्।
मृगव्याधः पिनाकी च दहनोऽथेश्वरश्च वै॥ ४०

अहिर्बुध्न्यश्च भगवान् कपाली चापराजितः।
सेनानीश्च महातेजा रुद्रा एकादश स्मृताः॥ ४१

तस्यामेव सुरभ्यां तु यज्ञे गोवृषभस्तथा।
अकृष्टाश्च तथा माषाः सिकताः प्रश्रयोऽक्षताः॥ ४२

अजाश्चैव तु वत्साश्च तथैवामृतमुत्तमम्।
ओषध्यः प्रवरा याश्च सुरभ्यां ताः समुत्थिताः॥ ४३

धर्माल्लक्ष्म्युद्भवः कामः साध्या साध्यान् व्यजायत।
भवं च प्रभवं चैवमीशानं सुरभी तथा॥ ४४

अरुन्धत्यारुणी चैव विश्वावसुबलध्रुवौ।
महिषश्च तनूजश्च विज्ञातमनसावपि॥ ४५

मत्सरश्च विभूतिश्च सर्वाः सुरभिसूनवः।
सुपर्वतं विषं नागं साध्या लोकनमस्कृता॥ ४६

मरीचिके पुत्र प्रभावशाली कश्यप हुए, जिनकी तपस्याद्वारा सृष्टि की गयी थी। दक्षने अपनी ये बारह कन्याएँ उन्हींको व्याह दीं॥ ३२॥ जनमेजय! रोहिणी आदि जो सारी पुण्य नक्षत्रस्वरूपा कन्याएँ थीं, उन्हें महर्षि दक्षने सोम नामक वसुको व्याह दिया॥ ३३॥ लक्ष्मी, कीर्ति, साध्या, इच्छानुसार विचरनेवाली शुभ लक्षणा विश्वा और देवी मरुत्वती—इन पाँच कन्याओंको पूर्वकालमें ब्रह्माजी (दक्ष प्रजापति)-ने उत्पन्न किया था॥ ३४॥ भारत! तुम्हारा कल्याण हो, धर्मदर्शी ब्रह्मा (दक्ष)-ने ये पाँच श्रेष्ठ कन्याएँ सुरश्रेष्ठ धर्मको दे दीं॥ ३५॥ ब्रह्माजीकी जो इच्छाके अनुसार रूप धारण करनेवाली अर्द्धाङ्गस्वरूपा पत्नी थी, उसका नाम सुरभि था। वह गायका रूप धारण करके ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हुई॥ ३६॥ भारत! तब लोकसृष्टिके हेतुको जाननेवाले लोकपूजित ब्रह्माजीने गौओंकी उत्पत्तिके लिये सुरभिके साथ मैथुन किया॥ ३७॥ उसके गर्भसे उन्होंने ग्यारह पुत्र उत्पन्न किये, जो हृष्ट-पुष्ट, धर्मपरायण, संध्याकालके लाल बादलोंके समान कान्तिमान् तथा अग्निके तुल्य तेजस्वी थे॥ ३८॥ वे रोते और दौड़ते हुए भगवान् ब्रह्माजीके पास गये। रोदन करने और दौड़नेके कारण वे रुद्र कहलाये॥ ३९॥ उनके नाम इस प्रकार हैं—निर्ऋति, सर्प, तीसरे अजैकपात्, मृगव्याध, पिनाकी, दहन, ईश्वर, अहिर्बुध्न्य, भगवान् कपाली, अपराजित तथा महातेजस्वी सेनानी—ये ग्यारह रुद्र माने गये हैं॥ ४०-४१॥ उसी सुरभिके गर्भसे साँड़का जन्म हुआ। बिना जोते-बोये होनेवाले अनाज, उड़द, सिकता (लोणी शाक), प्रश्रि, अक्षत (धान, जौ आदि); बकरे, बछड़े, उत्तम अमृत तथा श्रेष्ठ ओषधियाँ—इन सबका प्राकट्य सुरभिसे ही हुआ है॥ ४२-४३॥ धर्मसे लक्ष्मीके गर्भसे कामकी उत्पत्ति हुई। साध्याने साध्य देवताओंको जन्म दिया। ब्रह्माजीकी पत्नी सुरभीने भव, प्रभव और ईशानको उत्पन्न किया। अरुन्धती, आरुणी, विश्वावसु, बलध्रुव, विज्ञात हृदयवाले, महिष और तनूज, मत्सर और विभूति—ये सब सुरभिकी संतानें हैं॥ ४४-४५ १/२॥ विश्ववन्दिता देवी साध्याने इन्द्रका अनुसरण करके सुपर्वत, विष और नाग नामक पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ ४६॥

वासवानुगता देवी जनयामास वै सुतान्।
धरं वै प्रथमं देवं द्वितीयं ध्रुवमव्ययम्॥ ४७
विश्वावसुं तृतीयं च चतुर्थं सोममीश्वरम्।
पञ्चमं पर्वतं चैव योगेन्द्रं तदनन्तरम्॥ ४८
सप्तमं च ततो वायुमष्टमं निर्ऋतिं वसुम्।
धर्मस्यापत्यमित्येवं सुरभ्यां समजायत॥ ४९
विश्वेदेवास्तु विश्वायां धर्माज्जाता इति श्रुतिः।
सुधर्मा च महाबाहुः शङ्खपाच्च महाबलः॥ ५०
दक्षश्चैव महाबाहुर्वपुष्मांश्च तथैव च।
चाक्षुषस्य मनोरेते तथानन्तमहीरणौ॥ ५१
विश्वावसुसुपर्वाणौ विष्टरश्च महायशाः।
रुरुश्च ऋषिपुत्रो वै भास्करप्रतिमद्युतिः॥ ५२
विश्वेदेवान् देवमाता विश्वेशाञ्जनयत् सुतान्।
मरुत्वती मरुत्वत्तो देवानजनयच्छुभान्॥ ५३
अग्निं चक्षुर्हविर्ज्योतिः सावित्रं मित्रमेव च।
अमरं शरवृष्टिं च संक्षयं च महाभुजम्॥ ५४
विरजं चैव शुक्रं च विश्वावसुविभावसू।
अश्मन्तं चित्ररश्मिं च तथा निष्कुपितं नृपम्॥ ५५
हूयमानं च हूतिं च चारित्रं बहुपन्नगम्।
बृहन्तं च बृहद्रूपं तथैव परतापनम्॥ ५६
मरुत्वत्यां पुरा धर्माज्जज्ञे पुत्रद्वयं शुभम्।
अदित्यां जज्ञिरे राजन्नादित्याः कश्यपादथ।
इन्द्रो विष्णुर्भगस्त्वष्टा वरुणोंऽशोऽर्यमा रविः॥ ५७
पूषा मित्रश्च वरदो मनुः पर्जन्य एव च।
इत्येते द्वादशादित्या वरिष्ठास्त्रिदिवौकसः॥ ५८
आदित्यस्य सरस्वत्यां जज्ञे पुत्रद्वयं शुभम्।
रूपश्रेष्ठं बलश्रेष्ठं त्रिदिवे रूपिणां वरम्॥ ५९
दनुस्तु दानवाञ्जज्ञे दितिर्दैत्यान् व्यजायत।
काला नु कालकेयांश्च ह्यसुरान् राक्षसांस्तथा॥ ६०
दनायुषायास्तनया व्याधयश्चाधयस्तथा।
सिंहिका ग्रहमाता च गन्धर्वजननी मुनिः॥ ६१
प्रबोधाप्सरसां माता सुरसायां सरीसृपाः।
क्रोधायाः सर्वभूतानि पिशाचाश्चैव भारत॥ ६२
तथा यक्षगणाश्चैव गुह्यकाश्च विशाम्पते।
चतुष्पदानि सर्वाणि ऋते गावस्तु सौरभाः॥ ६३

(धर्मकी एक पत्नीका नाम सुरभि भी था।) उस सुरभिने प्रथम धर, द्वितीय अविनाशी ध्रुव, तृतीय विश्वावसु, चतुर्थ सोमेश्वर, पञ्चम पर्वत, छठे योगेन्द्र, सातवें वायु और आठवें निर्ऋति नामक वसुको उत्पन्न किया। इस प्रकार सुरभीसे धर्मकी संतानें उत्पन्न हुईं॥ ४७—४९॥ सुना जाता है कि धर्मसे विश्वाके गर्भसे विश्वेदेवोंकी उत्पत्ति हुई है। महाबाहु सुधर्मा, महाबली शङ्खपात्, महाबाहु दक्ष, वपुष्मान्, अनन्त तथा महीरण—ये चाक्षुष मनुके पुत्र हैं (जो विश्वेदेव बनकर उत्पन्न हुए थे) ॥५०-५१॥ इनके सिवा विश्वावसु, सुपर्वा, महायशस्वी विष्टर तथा सूर्यके समान तेजस्वी ऋषिपुत्र रुरु भी (विश्वेदेव हुए थे)॥५२॥ इन सामर्थ्यशाली विश्वेदेवोंको देवमाता विश्वाने पुत्ररूपमें उत्पन्न किया था। मरुत्वतीने मरुत्वान् नामवाले शुभलक्षण देवताओंको जन्म दिया॥५३॥ उनके नाम इस प्रकार हैं—अग्नि, चक्षु, हवि, ज्योति, सावित्र, मित्र, अमर, शरवृष्टि, महाबाहु संक्षय, विरज, शुक्र, विश्वावसु, विभावसु, अश्मन्त, चित्ररश्मि, राजा निष्कुपित, हूयमान, हूति, चारित्र, बहुपन्नग, बृहन्त, बृहद्रूप तथा परतापन॥ ५४—५६॥ पूर्वकालमें धर्मसे मरुत्वतीके गर्भसे दो शुभलक्षण पुत्र और उत्पन्न हुए थे। राजन्! कश्यपसे अदितिके गर्भसे बारह आदित्य उत्पन्न हुए, जिनके नाम यों हैं—इन्द्र, विष्णु, भग, त्वष्टा, वरुण, अंश, अर्यमा, रवि, पूषा, मित्र, वरदायक मनु और पर्जन्य—ये बारह आदित्य श्रेष्ठ देवता हैं॥ ५७-५८॥ आदित्यके सरस्वतीके गर्भसे दो शुभलक्षण पुत्र उत्पन्न हुए, जो रूप और बलमें श्रेष्ठ थे। वे स्वर्गके रूपवान् पुरुषोंमें सबसे उत्तम थे॥५९॥ दनुने दानवोंको जन्म दिया। दितिने दैत्योंको उत्पन्न किया। कालाने कालकेयों, असुरों तथा राक्षसोंको पैदा किया॥ ६०॥ दनायुषाके पुत्र आधि और व्याधि हुए; सिंहिका राहुग्रहकी माता और मुनि गन्धर्वोंकी जननी हुई॥ ६१॥ भारत! प्रबोधा अप्सराओंकी माता हुई। सुरसाके गर्भसे सर्प हुए। क्रोधासे सम्पूर्ण भूतों और पिशाचोंका जन्म हुआ॥ ६२॥ प्रजानाथ! यक्षगण, गुह्यक तथा समस्त चौपाये भी क्रोधाके ही पुत्र हैं। परंतु सुरभिकी संतानभूत गौओंको क्रोधाके पुत्रोंमें नहीं गिनना चाहिये॥ ६३॥

अरुणो गरुडश्चैव विनतायां व्यजायत।
महीधरान् सर्पनागान् देवी कद्रूर्व्यजायत॥ ६४

एवं विवृद्धिमगमन् विश्वेलोकाः परस्परम्।
तदा पौष्करके राजन् प्रादुर्भावे महात्मनः॥ ६५

पुराणे पौष्करं चैव मया द्वैपायनाच्छ्रुतम्।
कथितं तेन पूर्वेण यत् कृतं परमर्षिभिः॥ ६६

यश्चेदमग्र्यं प्रथमं पुराणं
सदाप्रमत्तः पठते महात्मा।
अवाप्य कामानिह वीतशोकः
परत्र स स्वर्गफलानि भुङ्क्ते॥ ६७

अरुण और गरुड़ विनताके गर्भसे उत्पन्न हुए। देवी कद्रूने पृथ्वीको धारण करनेवाले सर्पों और नागोंको जन्म दिया॥ ६४॥ राजन्! महात्मा श्रीहरिके उस पुष्कर-प्रादुर्भावके समय इस प्रकार समस्त लोक एक-दूसरेके सहयोगसे वृद्धिको प्राप्त हुए॥ ६५॥ मैंने गुरुदेव द्वैपायनके मुखसे पुराणमें यह पुष्कर-प्रादुर्भावका प्रसंग सुना है। पहले महर्षियोंने जो कुछ किया था, वह सब उन्होंने मुझसे कहा था॥ ६६॥ जो महात्मा पुरुष सावधान होकर इस श्रेष्ठ एवं प्रथम पुराणका सदा पाठ करता है, वह इस जगत्‌में सम्पूर्ण मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त करके शोकरहित हो परलोकमें स्वर्गीय फलोंका उपभोग करता है॥ ६७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे सर्वभूतोत्पत्तौ चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्कर-प्रादुर्भावके प्रसंगमें सम्पूर्ण भूतोंका उत्पत्तिविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

जनमेजयके द्वारा महाभारत-वर्णित चरित्रकी प्रशंसा

जनमेजय उवाच

श्रुतं नः परमं ब्रह्मन् स्ववंशचरितं महत्।
दिव्यमन्योन्यसम्भूतं मानितं बहुभिर्गुणैः॥ १

छन्दोभिर्वृत्तसंजातैः समासैश्च सविस्तरैः।
लघुभिर्मधुराभाषैर्ग्रथितं पदविग्रहैः॥ २

त्रिवर्गेणाभिसम्पन्नं धर्मेणार्थेन भोगिनाम्।
कामेन बहुरूपेण शरीरान्तर्गतेन च॥ ३

ब्राह्मणानां प्रभावैश्च योधानां च पराक्रमैः।
वैरनिर्यातनैश्चैव प्रतिज्ञानां च पारगैः॥ ४

रिपुस्तवसुसम्पन्नैर्नानुबन्धः प्रचोदितः।
वंशयोर्निर्विनाशाय नृपेण द्विज विग्रहात्॥ ५

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन्! मैंने अपने वंशके उत्तम, महान् एवं दिव्य चरित्रका वर्णन सुना, जो हमारे पूर्वजोंके परस्पर सहयोगसे सम्भव हुआ था। वह चरित्र अनेक गुणोंसे सम्मानित है॥ १॥ वह छन्दःशास्त्रोक्त छन्दों, संक्षेप और विस्तारयुक्त छोटे-छोटे पदों तथा मधुर भाषामें ग्रथित किया गया है॥ २॥ उसमें धर्म, अर्थ और भोगी पुरुषोंके शरीरके भीतर अनेक रूपसे निवास करनेवाले काम नामक त्रिवर्गका भी वर्णन है॥ ३॥ इस चरित्रमें ब्राह्मणोंके प्रभावों, योद्धाओंके पराक्रमों, वैरका बदला लेनेकी घटनाओं तथा प्रतिज्ञाके पारगामी पुरुषोंके तदनुरूप प्रयत्नोंका भी उल्लेख है॥ ४॥ ब्रह्मन्! जिन लोगोंकी शत्रु भी स्तुति करते थे ऐसे वीर पुरुषोंके चरित्रोंका भी इसमें वर्णन है। राजा (दुर्योधन)-ने पाण्डवोंके साथ जो विग्रह छोड़कर प्रेमपूर्ण सम्बन्ध नहीं स्थापित होने दिया, वही दोनों कुलोंके विनाशका कारण हुआ॥ ५॥

ये च तस्मिन् महारौद्रे संग्रामे निहता नृपाः।
तेषां सर्वाणि राष्ट्राणि पुत्राः सर्वे प्रपेदिरे॥ ६

कौरवः प्रथितो राजा भगवच्छासनानुगः।
धर्मश्च बहुधा प्रोक्तस्त्रयाणां वर्णसम्पदाम्।
शूराणामपि विख्यातः स्वर्गहेतुर्द्विजर्षभ॥ ७

अनुग्रहार्थं भूतानां नोत्सेकाय कथंचन।
चतुर्णां वर्णसंज्ञानां पृथक्पृथगनेकधा॥ ८

गर्भवासं पतन्तश्च भूतानां सम्प्रबोधिताः।
पृच्छन्तो देवसञ्चारं क्षीणे पुण्ये च कर्मणि॥ ९

दाने यश्चापि संयोगः स चापि बहुधा कृतः।
द्वयोः संयोगविहितं मधु वाग्वचनं तयोः॥ १०

न तच्छक्यं मयाऽऽख्यातुं भारताध्ययनं महत्।
एकाहेन महान् ब्रह्मन्नपि दिव्येन चक्षुषा॥ ११

ब्रह्मणोऽह्नस्तु विस्तारं संक्षेपं च सुसंग्रहम्।
श्रोतुमिच्छामि भगवन् महत् कौतूहलं हि मे॥ १२

उस महाभयंकर संग्राममें जो-जो राजा मारे गये थे, उनके समस्त राष्ट्रोंको उन्हींके सभी पुत्रोंने प्राप्त किया॥ ६॥ द्विजश्रेष्ठ! कुरुवंशके सुविख्यात राजा युधिष्ठिर भगवान्‌की आज्ञाके अनुकूल चलते थे। उन्होंने तीनों वर्णोंके लिये धर्मका बारम्बार वर्णन किया है। वे शूरवीरोंको स्वर्गकी प्राप्ति करानेके प्रधान हेतुके रूपमें विख्यात हैं॥ ७॥ उन्होंने किसी तरह अहंकार प्रकट करनेके लिये नहीं, समस्त प्राणियोंपर कृपा करनेके लिये ही चारों वर्णोंके पृथक्-पृथक् अनेक धर्म बताये हैं॥ ८॥ प्राणियोंमेंसे जो लोग गर्भवासमें गिर रहे थे और पुण्यकर्मके क्षीण हो जानेपर पुनः देवलोकमें प्रवेशका उपाय पूछते थे (उन सबके लिये वे पृथक्-पृथक् धर्मका उपदेश देते थे)॥ ९॥ दानमें जो स्वयं लगने और दूसरे लोगोंको भी लगानेका कार्य है, वह भी उन्होंने बहुत बार किया है। जब पाण्डव और श्रीकृष्ण दोनोंका संयोग प्राप्त होता था, तब उनमें बड़ा मधुर वार्तालाप (सत्संग) आरम्भ हो जाता था॥ १०॥ महान् ब्राह्मणदेव! महाभारतका जो विशाल अध्ययन है, उसका एक दिनमें दिव्य दृष्टिसे भी महत्त्व बताना मेरे लिये असम्भव है॥ ११॥ भगवन्! मैं ब्रह्माजीके दिन (या यज्ञ)-का विस्तार, संक्षेप और उत्तम संग्रह सुनना चाहता हूँ। इसके लिये मेरे हृदयमें बड़ा कौतूहल है॥ १२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे जनमेजयवाक्ये पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्कर-प्रादुर्भावके प्रसंगमें जनमेजयका वाक्यविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५॥

षोडशोऽध्यायः

सृष्टिविषयक वर्णनके प्रसंगमें ज्ञान और योगका विचार

वैशम्पायन उवाच

शृणुष्वैकमना राजन् पञ्चेन्द्रियसमाहितः।
कथां कथयतो राजन् निर्विकारेण चेतसा॥ १

ब्रह्मसम्बन्धसम्बद्धमबद्धं कर्मभिर्नृप।
पुरस्ताद् ब्रह्म सम्पन्नं ब्रह्मणो यददक्षिणम्॥ २

अव्यक्तं कारणं यत् तन्नित्यं सदसदात्मकम्।
निष्कलः पुरुषस्तस्मात् सम्बभूवात्मयोनिजः॥ ३

दिव्यो दिव्येन वपुषा सर्वभूतपतिर्विभुः।
अचिन्त्यश्चाव्ययश्चैव युगानां प्रभवोऽव्ययः॥ ४

अभूतश्चाप्यजातश्च सर्वत्र समतां गतः।
अव्यक्तात् परमं यत् तन्नारायणविदो विदुः॥ ५

सर्वतःपाणिपादं तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ ६

असतश्च सतश्चैव विज्ञेयं तत्र कारणम्।
अव्यक्तो व्यक्तरूपस्थश्चरन्नपि न दृश्यते॥ ७

विकारपुरुषोऽव्यक्तो ह्यरूपी रूपमाश्रितः।
चरत्यचिन्त्यः सर्वेषु गूढोऽग्निरिव दारुषु॥ ८

भूतभव्योद्भवो नाथः परमेष्ठी प्रजापतिः।
प्रभुः सर्वस्य लोकस्य नाम चास्येति तत्त्वतः॥ ९

अपदात्तु पदो जातस्तस्मान्नारायणोऽभवत्।
अव्यक्तो व्यक्तिमापन्नो ब्रह्मयोगेन कामतः॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तुम पाँचों इन्द्रियों तथा मनको एकाग्र करके निर्विकार चित्तसे मेरी कही हुई कथा सुनो॥ १॥ नरेश्वर! जो वेदके सम्बन्धसे अर्थात् वेदमूलक होनेके कारण सबसे सम्बन्ध रखता है, तथापि जो किसीके कर्मोंसे बँधा हुआ नहीं है, ब्रह्मा या ब्रह्मवेत्तासे पहलेसे ही जो सबमें अनुगत, नित्यसिद्ध है, दक्षिणाप्रधान यज्ञ आदिसे ऊपर उठा हुआ है और जो अव्यक्त, सबका कारण, नित्य तथा सदसत्स्वरूप है, वह परब्रह्म परमात्मा ही निष्कल पुरुष है, उसीसे स्वयम्भू ब्रह्माजी प्रकट हुए॥ २-३॥ वे ब्रह्माजी स्वयं तो दिव्य हैं ही, दिव्य शरीरसे भी संयुक्त हैं। वे समस्त प्राणियोंके पालक, प्रभु, अचिन्त्य, निर्विकार, युगोंकी उत्पत्तिके कारण और अविनाशी हैं॥ ४॥ वे अभूत अर्थात् स्वयम्भू हैं, उनका किसी दूसरेसे जन्म नहीं हुआ है—इसलिये अजन्मा हैं, उनका सर्वत्र समानभाव है। जो अव्यक्तसे परे परमात्मतत्त्व है, उसे नारायणके स्वरूपको जाननेवाले उनके उपासक ही जानते हैं॥ ५॥ उसके सब ओर हाथ और पैर हैं, सब ओर नेत्र, मस्तक और मुख हैं तथा उसके सब ओर कान हैं, वह लोकमें सबको व्याप्त करके स्थित है॥ ६॥ उसीको असत् और सत्का कारण जानना चाहिये, वह अव्यक्त है; व्यक्त रूपोंमें स्थित होकर विचर रहा है तो भी किसीको दिखायी नहीं देता है॥ ७॥ विकारयुक्त अर्थात् क्षर पुरुष रूपवान् है, जिसका अव्यक्त एवं रूपहीन चिन्मय पुरुष परमात्माने आश्रय ले रखा है। जैसे लकड़ियोंमें आग गूढ़रूपसे छिपी हुई है, उसी प्रकार वे अचिन्त्य परमात्मा समस्त भूतोंमें गूढ़रूपसे स्थित होकर विचरते हैं॥ ८॥ वे ही भूत, भविष्य और वर्तमानकी उत्पत्तिके कारण हैं, सबके स्वामी एवं संरक्षक हैं, परमेष्ठी प्रजापति तथा सर्वलोकप्रभु आदि इनके यथार्थ नाम हैं॥ ९॥ अपद अर्थात् निर्गुण निराकारसे पद अर्थात् सगुण साकार रूपमें प्रकट हुए वे परमात्मा नार अर्थात् जलको अयन अर्थात् निवासस्थान बनानेके कारण नारायण नामसे प्रसिद्ध हुए। वे पहले अव्यक्त थे, फिर ब्रह्मयोगसे इच्छानुसार संकल्प करके व्यक्तभावको प्राप्त हुए॥ १०॥

ब्रह्मभावे च तं विद्धि स शब्दं लब्धवान् प्रभुः।
प्रभुः सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्येतरस्य च॥ ११

अहं त्विति स होवाच प्रजाः स्त्रक्ष्यामि भारत।
प्रभवः सर्वभूतानां यस्य तन्तुरिमाः प्रजाः॥ १२

स्वभावाज्जायते सर्वं स्वभावाच्च तथाभवत्।
अहंकारः स्वभावाच्च तथा सर्वमिदं जगत्॥ १३

सर्वव्यापी निरालम्बो ह्यग्राह्योऽथ जयो ध्रुवः।
एष ब्रह्ममयो ज्योतिर्ब्रह्मशब्देन शब्दितः॥ १४

अव्यक्तो व्यक्तिमापन्नः पञ्चभिः क्रतुलक्षणैः।
धारयन् ब्रह्मणो व्यक्तं विविधं चिन्तितं त्वरन्॥ १५

अथ मूर्तिं समाधाय स्वभावाद् ब्रह्मचोदितः।
ससर्ज सलिलं ब्रह्म येन सर्वमिदं ततम्॥ १६

वायुं पूर्वमथो दृष्ट्वा यो धातुर्धातृसत्तमः।
धरणाद् धातृशब्दं च लभते लोकसंज्ञितम्॥ १७

तदेतद् वायुसम्भूतं कृत्स्नं जगदभूत् पुरा।
एतद् देवैरतिक्रान्तं पूर्वमेव सरस्वति॥ १८

पृथक्त्वं गमितं तोयं पृथिवीशब्दमिच्छता।
घनत्वाच्च द्रवत्वाच्च निखिलेनोपलभ्यते॥ १९

फलत्वात् सीदमाना च सलिले सलिलोद्भवा।
व्याजहार शुभां वाणीं समन्तात् पूरयन्निव॥ २०

ऊर्ध्वेऽहं स्थातुमिच्छामि संसीदाम्युद्धरस्व माम्।
गम्भीरे तोयविवरे मूर्तिविक्षोभितान्तरम्॥ २१

उन्हींको ब्रह्मारूपमें स्थित हुआ समझो। उन्हीं प्रभुने ब्रह्मा नाम प्राप्त किया। वे स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं॥ ११॥ भारत! उन्होंने पहले-पहल यह संकल्प प्रकट करते हुए कहा कि मैं प्रजाकी सृष्टि करूँगा, अतः वे ही सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्तिके कारण हैं। यह सारी प्रजा उन्हींकी संतान है॥ १२॥ स्वभावसे ही सबकी उत्पत्ति होती है, स्वभावसे ही परमात्मा पूर्वोक्तरूपमें प्रकट हुआ, स्वभावसे ही अहंकार तथा यह सारा जगत् प्रकट हुआ है॥ १३॥ यह सर्वव्यापी, आश्रयरहित, इन्द्रियातीत, जयस्वरूप, अविनाशी ज्योतिर्मय ब्रह्मरूप परमात्मा ही ब्रह्मा नामसे प्रतिपादित होता है॥ १४॥ वह स्वरूपसे अव्यक्त होनेपर भी संकल्पसे प्रकट हुए पाँच सूक्ष्मभूतरूप उपाधियोंसे व्यक्तभाव (पुरुषशरीर)-को प्राप्त हुआ और वेदसे ज्ञात हुए विविध संकल्पित जगत्को हृदयमें धारण करके उसकी सृष्टिके लिये उतावला हो उठा॥ १५॥ जिसने इस सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रखा है, उस ब्रह्म तथा स्वभावसे प्रेरित हो शरीर धारण करके ब्रह्माने जलकी सृष्टि की॥ १६॥ जलकी सृष्टिसे पहले वायुको स्थित देख जगद्धाता परमेश्वरके अधीन रहनेवाले जो मरीचि आदि धाता हैं, उनमें सबसे श्रेष्ठ ब्रह्माने सबको धारण करनेके कारण लोकप्रसिद्ध धाता नाम प्राप्त किया॥ १७॥ इस प्रकार यह सारा जगत् पहले वायुसे ही प्रकट हुआ और पहलेसे ही समुद्रमें स्थित है, देवता इसे लाँघकर ऊपरको उठ चुके हैं॥ १८॥ पृथ्वी शब्दके वाच्यार्थ भूमिकी (उसपर सम्पूर्ण जगत्की स्थितिके लिये) अभिलाषा करनेवाले ब्रह्माजीने जलको उससे भिन्न अवस्थामें पहुँचा दिया। एक (जल)-के द्रव पदार्थ होनेसे और दूसरी (पृथ्वी)-के घनीभूत होनेसे दोनोंका भेद स्पष्ट है। पृथ्वी और जलके इस अन्तरको प्रत्यक्ष देखते हैं॥ १९॥ जलसे प्रकट हुई पृथ्वी उसका फल या कार्यरूप होनेके कारण अपने कारणभूत जलमें जब डूबने और गलने लगी, तब उसकी अधिष्ठात्री देवीने सब ओरके आकाशको गुँजाते हुए-से यह शुभ वाणी कही— ॥ २०॥ 'अहो! जलकी इस गहरी गुफामें मैं डूबती और गलती जा रही हूँ। अपने शरीरकी कठोरता या घनीभूततासे मेरा अन्तःकरण अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा है, अतः मैं जलके ऊपर स्थित होना चाहती हूँ, कोई आकर मेरा उद्धार करो'॥ २१॥

ततो मूर्तिधरा देवी सर्वभूतप्ररोहिणी।
यथायोगेन सम्भूता सर्वत्र विषयैषिणी॥ २२

श्रुत्वा च गदितं तस्या गिरं तां च सुभाषिताम्।
वराहरूपमास्थाय निपपात महार्णवे॥ २३

उद्धृत्य सोऽवनिं तोयात् कृत्वा कर्म सुदुष्करम्।
समाधौ प्रलयं गत्वा प्रलीनो न च दृश्यते॥ २४

यत्तद् ब्रह्ममयं ज्योतिराकाशमिति संज्ञितम्।
तत्र ब्रह्मा समुद्भूतः सर्वभूतपितामहः॥ २५

अद्यापि मनसा धात्रा धार्यते सर्वयोनिना।
ज्ञानयोगेन सूक्ष्मेण प्रजानां हितकाम्यया॥ २६

भित्त्वा तु पृथिवीमध्यमुपयाति समुद्भवम्।
तपनस्तूर्ध्वमातिष्ठन् रश्मिभिः स हसन्निव॥ २७

तस्य मण्डलमध्यात् तु निःसृतं सोममण्डलम्।
स सनातनजो ब्रह्मा सौम्यं सोमत्वमन्वगात्॥ २८

सोममण्डलपर्यन्तात् पवनः समजायत।
तदक्षरमयं ज्योतिस्तेजोभिरभिवर्द्धयन्॥ २९

स तु योगमयाज्ज्ञानात् स्वभावाद् ब्रह्मसम्भवात्।
सृजते पुरुषं दिव्यं ब्रह्मयोनिं सनातनम्॥ ३०

द्रवं यत् सलिलं तस्य घनं यत् पृथिवी भवत्।
छिद्रं यच्च तदाकाशं ज्योतिर्यच्चक्षुरेव तत्॥ ३१

वायुना स्पन्दते चैनं संघाताज्ज्योतिसम्भवः।
पुरुषात् पुरुषो भावः पञ्चभूतमयो महान्॥ ३२

भूतात्मा वै समे तस्मिंस्तस्मिन् देहे सनातनः।
गुहायां निहितं ज्ञानं योगाद् यज्ज्ञः सनातनः॥ ३३

तदनन्तर समस्त भूतोंको अङ्कुरित करनेवाली पृथ्वीदेवी मूर्तिमती होकर प्रकट हुई और अपने ठहरनेके लिये स्थान चाहती हुई पूर्वोक्त कारणसे सब ओर मुँह करके अपनी रक्षाके लिये पुकारने लगी॥ २२॥ उसके मुखसे निकली हुई उस सुभाषित वाणीको सुनकर भगवान् श्रीहरि वाराहरूप धारण करके उस महासागरमें कूद पड़े॥ २३॥ जलसे पृथ्वीको ऊपर उठाकर वह अत्यन्त दुष्कर कर्म करके वे भगवान् समाधिमें लयको प्राप्त अथवा लीन हो अदृश्य हो गये, अपने मूलस्वरूपमें प्रतिष्ठित हो गये॥ २४॥ श्रीहरिका वह स्वरूप परब्रह्म एवं चिन्मय प्रकाशरूप है, श्रुतिमें उसे आकाश नाम दिया गया है, उसीसे सम्पूर्ण भूतोंके पितामह ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ है॥ २५॥ आज भी सबकी उत्पत्तिके स्थानभूत वे जगदाधार परमेश्वर प्रजाजनोंके हितकी कामनासे सूक्ष्म ज्ञानयोगद्वारा मनसे (शेष, कूर्म आदि रूपसे) इस पृथ्वीको धारण करते हैं॥ २६॥ ऊपर रहकर सबको ताप देनेवाले सूर्यदेव अपनी सब ओर फैली हुई किरणोंद्वारा हँसते हुए-से पृथ्वीके मध्यभागका भेदन करके उसके उत्पादक जलके पासतक पहुँच जाते हैं॥ २७॥ इस प्रकार अत्यन्त तापके कारण सूर्यमण्डलके मध्य भागसे सोममण्डलका प्रादुर्भाव हुआ। सनातन परमात्मासे प्रकट हुआ वह सोममण्डलका अभिमानी चेतन ब्राह्मण है और सौम्यभाव एवं सोमत्वको प्राप्त है॥ २८॥ उक्त सोममण्डलके मुखसे जो निःश्वास वायु प्रकट हुई वही अक्षरमय वेदरूप ज्योति है, जो अपने ज्ञानमय प्रकाशसे समस्त जगत्‌की वृद्धि अथवा विस्तार करता हुआ सब अर्थोंका प्रकाशक है॥ २९॥ वह स्रष्टा पुरुष योगमय ज्ञान एवं ब्रह्मजनित स्वभावसे सनातन ब्रह्मयोनिरूप दिव्य पुरुषकी सृष्टि करता है॥ ३०॥ उस पुरुषका जो द्रव है, वही जल है। उसका घनीभाव ही पृथ्वीरूपमें परिणत होता है। उसका जो छिद्र है, वही आकाश है तथा जो नेत्र है; वही तेज है॥ ३१॥ पुरुष अर्थात् ईश्वरसे प्राप्त हुआ जो पुरुषभाव (चैतन्य) है, वही वायुके सहयोगसे इस शरीरको चेष्टाशील बनाता है। इस प्रकार पाँच भूतोंके संघातरूप शरीरको प्राप्त होकर जब चेतन उसमें निवास करता है, तब वहाँ इन्द्रियरूपी ज्योतियों और जठरानलका प्राकट्य होता है। पाँचों भूतोंसे निर्मित जो विराट् शरीर है, उसमें भी वही अन्तर्यामी भूतात्मा निवास करता है। विभिन्न प्रकारके जो शरीर हैं, वे सभी उसके लिये सम हैं, अतः वह सनातन परमात्मा उन सबमें अनादि कालसे विराजमान है। वह ज्ञानस्वरूप ब्रह्म सबकी बुद्धिरूप गुहामें स्थित है तथा वह सनातन परमेश्वर ही योगबलसे अपने स्वरूपभूत उस ज्ञानका साक्षात्कार करनेवाला है॥ ३२-३३॥

तपनस्यैव तद्रूपं योऽग्निर्वसति देहिनाम्।
शरीरे नित्यशो युक्तं धातुभिः सह संगतः॥ ३४

स्वभावात् क्षयमायाति स्वभावाद् भयमेति च।
स्वभावाद् विन्दते शान्तिं स्वभावाच्च न विन्दति॥ ३५

इन्द्रियैरतिमूढात्मा मोहितो ब्रह्मणः पदे।
सम्भवं निधनं चैव कर्मभिः प्रतिपद्यते॥ ३६

यावत् तद् ब्रह्मविषयं नोपयाति ह तत्त्वतः।
तावत् संसारमाप्नोति सम्भवांश्च पुनः पुनः॥ ३७

इन्द्रियैर्व्यतिरिक्तो वै यदा भवति योगवित्।
तदा ब्रह्मत्वमापन्नः प्रलयाग्रे प्रतिष्ठति॥ ३८

प्रतिषिद्धममुं लोकं ब्रह्मवान् स भवत्युत।
न च रागव्ययैर्याति न च सज्जति कर्हिचित्॥ ३९

आगतिं च गतिं चैव निधनं सम्भवं तथा।
भूतेभ्यो वेत्ति सर्वज्ञः परां सिद्धिमुपागतः॥ ४०

आत्मनो गतयश्चैव तथा विषयगोचरम्।
पुरस्तात् कर्मनिर्वृत्तेः पदे ब्रह्मा प्रतिष्ठितः॥ ४१

चित्तग्रन्थींश्च मनसा रुन्ध्यात् पूर्वाश्च यातनाः।
भिद्यमानाः प्रलोभेन वायुभिन्नमिवार्णवम्॥ ४२

देहधारियोंके शरीरमें जो अग्निका वास है, वह अग्नि सूर्यका ही स्वरूप है। इसी प्रकार पाँचों भूतोंसे सदा संयुक्त रहनेवाले शरीरमें उन भूतोंसे मिला हुआ जो जीवात्मा है, वह उस सनातन परमात्माका ही अंश है॥ ३४॥ वह जीवात्मा क्षयशील धातुओंके साथ संगत है, अतः अपने स्वरूपको भूलकर उस मोहयुक्त स्वभावसे ही क्षयको प्राप्त होता है (वह नित्य अक्षय होनेपर भी अज्ञानवश देहके क्षयसे अपनेको क्षयशील मानता है)। उस स्वभावसे ही उसे अपने स्वरूप और ऐश्वर्यके नाशका भय प्राप्त होता है। स्वभावसे ही वह शरीरकी स्वस्थतासे शान्तिका अनुभव करता है और उसके अस्वस्थ हो जानेपर स्वभावतः उसे शान्ति नहीं मिलती है॥ ३५॥ इन्द्रियोंके वेगसे अत्यन्त मूढचित्त हुआ मानव ब्रह्मपद (परमात्माके स्वरूप)-की ओरसे मोहित (ज्ञानशून्य) हो जाता है और कर्मोंसे बँधा रहकर जन्म-मरणको प्राप्त होता रहता है॥ ३६॥ जबतक तत्त्वज्ञानके द्वारा वह ब्रह्मानन्दके साम्राज्यमें नहीं पहुँच जाता, तबतक उसे संसार तथा उसमें बारम्बार जन्म-मरणकी प्राप्ति होती रहती है॥ ३७॥ जब योगवेत्ता पुरुष योगबलसे अपनेको इन्द्रियोंसे पृथक् उनका नियन्ता समझ लेता है, तब वह ब्रह्मभावको प्राप्त होकर अपने स्वरूपभूत आनन्दमें प्रतिष्ठित हो जाता है॥ ३८॥ वह पुरुष परलोकके भी सुखका परित्याग करके ब्रह्मानन्दसे सम्पन्न होता है, फिर तो वह राग-द्वेषादिके कारण हीनावस्थाको नहीं प्राप्त होता और न कहीं उसकी आसक्ति ही होती है॥ ३९॥ वह सर्वज्ञ एवं परम सिद्धिको प्राप्त होकर समस्त प्राणियोंको प्राप्त होनेवाले आवागमन और जन्म-मरणको जानता है, परंतु स्वयं उनके चक्करमें नहीं पड़ता है॥ ४०॥ ब्रह्मवेत्ता पुरुष अपनी गतियों (मुक्तिके उपायों)-को तथा भूत, वर्तमान और भविष्यके विषयोंको भी जानता है और कर्मोंके भावी फलभोगोंकी निवृत्ति हो जानेसे परमपदमें प्रतिष्ठित हो जाता है॥ ४१॥ अतः विवेकी पुरुषको चाहिये कि वह चित्तको बाँधनेवाले काम आदि दोषों तथा प्रबल लोभसे अनेक शाखाओंमें विभक्त होनेवाली उन पूर्ववासनाओंका भी निरोध करे, जो वायुसे विक्षुब्ध होनेवाले समुद्रकी भाँति मनुष्यको क्षोभमें डाल देती हैं॥ ४२॥

पच्यते हृदयं नीलं परेभ्यो ज्ञानचक्षुषा।
ब्रह्मप्रोक्तमिवात्मा वै विमुक्तो देहबन्धनात्॥ ४३

इस प्रकार वासनाओंका निरोध करनेवाले पुरुषकी काम आदि दोषोंसे मलिन हुई बुद्धि ज्ञानाग्निसे तपकर शुद्ध हो जाती है। वह ज्ञान वेदोंमें बताया गया है। जिससे जीवात्मा इस शरीरमें रहते हुए ही उसके बन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ ४३॥

सृजेदपि परं लोकं संहरेदपि विद्यया।
तेजोमूर्तिरिवाविद्धमिह लोकं च संसृजेत्॥ ४४

तेजोमूर्ति योगी स्वाभिमानी पुरुषकी भाँति योगविद्याके प्रभावसे दूसरे लोककी सृष्टि और संहार भी कर सकता है। वह विश्वामित्र आदिकी भाँति इस लोकका भी पूर्णरूपसे निर्माण कर सकता है॥ ४४॥

तिर्यग्योनौ गतांश्चैव कर्मभिर्नियमोपमैः।
तान्यपि प्रतिमुच्येत ब्रह्मयुक्तेन चेतसा॥ ४५

वह योगी बेड़ीके समान बाँधनेवाले कर्मोंके कारण पशु-पक्षी आदिकी योनियोंमें पड़े हुए जीवोंको भी ब्रह्ममें लगाये हुए अपने चित्तके संकल्पमात्रसे मुक्त कर सकता है तथा उन कर्मोंका बन्धन भी खोल सकता है॥ ४५॥

अक्षरं च क्षरं चैव योगकर्माभिविद्यते।
न क्षरं विद्यते तत्र यद् ब्रह्म कर्मभिर्ध्रुवम्॥ ४६

योग नामक साधना क्षर और अक्षर (भोग और मोक्ष) दोनोंको व्याप्त करके स्थित होती है अर्थात् योगीको भोग और मोक्ष दोनों सुलभ होते हैं। परंतु जो अविनाशी ब्रह्म है, उसमें कर्मोंद्वारा उपलक्षित क्षर (क्षणभङ्गुर जगत् एवं उसके भोग)-की सत्ता नहीं है॥ ४६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्कर-प्रादुर्भावविषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६॥

सप्तदशोऽध्यायः

मैनाककी स्थिति, मेरुपृष्ठपर परमात्मासे ब्रह्माजीका प्राकट्य, मेरुकी विशालता, ब्रह्माजीके द्वारा सृष्टि, ब्रह्म और ब्रह्माके स्वरूपका वर्णन, गङ्गाका प्रादुर्भाव, सोमकी उत्पत्ति, धर्मके पाद, योग-साधना, ऐश्वर्यसे हानि, वेदोंका प्राकट्य, यज्ञपुरुषका वर्णन, योगवेत्ताकी महिमा, चित्तकी उपलब्धिमें कारण, मोक्षसम्बन्धी कर्म करनेका विधान और कर्मफलके त्यागसे मुक्ति

वैशम्पायन उवाच

पृथिव्यां यत् कृतं छिद्रं तपनेन विवर्धता।
तस्मिन् न्यस्तोऽथ मैनाकः स्वभावविहितोऽचलः॥ १

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! बढ़ते हुए सूर्यने पृथ्वीमें जो छिद्र कर दिया था, उसमें स्वभावतः रचे गये मैनाकपर्वतको स्थापित किया गया॥ १॥

पर्वभिः पर्वतत्वं च लभते नाम संज्ञितम्।
अचलादचलत्वं च स्वभावान्मेरुरेव सः॥ २

उसपर बहुत-से पर्व (कामनापूरक चिन्तामणि, कल्पवृक्ष और कामधेनु आदि) हैं, इसलिये उसे 'पर्वत' संज्ञा प्राप्त हुई है। वह अविचल होनेके कारण 'अचल' कहलाता है तथा स्वभावसे ही मेरुके समान स्थित है॥ २॥

तस्य पृष्ठे सुविस्तीर्णे नगस्य सुमहर्द्धिमान्।
तस्मिंस्तु पुरुषो व्यक्तो वसति ज्योतिसम्भवः।
विहितश्च स्वभावेन तेनैव परमात्मना॥ ३

उस पर्वतके सुविस्तृत पृष्ठभागपर एक महान् समृद्धिशाली, व्यक्तरूपधारी पुरुष निवास करता है, जो ज्योतिर्मय परमेश्वरसे प्रकट हुआ है। उस परमात्माने स्वभावसे ही इस पुरुषकी सृष्टि की है॥ ३॥

यत् तद् ब्रह्ममयं तेजो निहितं शिरसोऽन्तरे।
तस्य ज्योतिर्मयं रूपं दीप्तं पुरुषविग्रहम्॥ ४

वदनादभिनिष्क्रान्तं ज्वलन्तमिव तेजसा।
चतुर्भिर्वदनैर्युक्तं चतुर्भिश्च द्विजोत्तमैः॥ ५

वक्त्रं ब्रह्म समुद्भूतं ब्रह्मा ब्राह्मणपुङ्गवः।
तदेवं तन्महद्भूतं पुनर्भावत्वमागतम्॥ ६

उद्धृता पृथिवी देवी पुरस्तात् सलिलाशयात्।
ब्रह्मत्वं ब्रह्मणः स्थानादलोको लोकतां गतः॥ ७

पदसंघौ ब्रह्मलोकं शृङ्गं मेरोस्तदाभवत्।
उच्छ्रितं योजनशतं सहस्त्रशतमेव च॥ ८

एवमेव च विस्तारं चतुर्भिर्गुणितं गुणैः।
अथवा नैव संख्यातुं शक्यं भूतेन केनचित्।
समाः सहस्त्रैर्बहुभिरपि दिव्येन तेजसा॥ ९

चतुर्भिः पार्श्वविस्तारैः शिलाभिरभिसंवृतैः।
नगस्य यस्य राजेन्द्र विस्तारैः शतयोजनैः॥ १०

कोटिकोटीशतगुणैर्गुणितं ब्रह्मवादिभिः।
योगयुक्तैः सदा सिद्धैर्नित्यं ब्रह्मपरायणैः॥ ११

मरुद्भिः सह देवेन्द्रै रुद्रैर्वसुभिरेव च।
आदित्यैर्विश्वसहितै ररक्ष वसुधाधिपान्॥ १२

ररक्ष पृथिवीं चैव भगवान् विष्णुना सह।
विवस्वद्वरुणाभ्यां च संघातं गमितं नृप॥ १३

तेन ब्राह्मेण वपुषा ब्रह्मप्राप्तेन भारत।
यत्तद् विष्णुमयं तेजः सर्वत्र समतां गतम्॥ १४

यत्तद् ब्रह्मेति वै प्रोक्तं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
नियमैर्बहुभिः प्राप्तैः सत्यव्रतपरायणैः॥ १५

एवमेते त्रयो लोका ब्राह्मेऽहनि समाहिताः।
अहनि ब्रह्म चाव्यक्तं व्यक्तं प्राणे प्रतिष्ठितम्॥ १६

मस्तकवर्ती सहस्रारचक्रमें जो ब्रह्ममय तेज विराजमान है अथवा वेदान्तमें जिस ब्रह्ममय तेजका प्रतिपादन हुआ है, उसीका ज्योतिर्मयस्वरूप इस पुरुषके रूपमें प्रकट होकर प्रकाशित होता है॥ ४॥ उसी पुरुषके मुखसे चार मुखों और चार श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ ब्रह्माजीका प्राकट्य हुआ, जो अपने तेजसे प्रज्वलितसे हो रहे थे॥ ५॥ उनका मुख वेद है, जो परमात्माके निःश्वासरूपसे प्रकट हुआ है। ब्रह्माजी उस वेदके धारण करनेवाले ब्राह्मण शिरोमणि हैं। इस प्रकार वह महान् भूत पुनः पूज्यतमभावको प्राप्त हुआ॥ ६॥ जिसने पहले महासागरके भीतरसे पृथ्वीदेवीका उद्धार किया था, वही वह महान् भूत है, वही ब्रह्माजीके स्थान मेरुपृष्ठपर जाकर चतुर्मुख ब्रह्माके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ, जो वाराहरूपसे पृथ्वीका उद्धार करके अदृश्य हो गये थे, वे ही भगवान् फिर ब्रह्माजीके रूपमें दृष्टिगोचर होने लगे॥ ७॥ उस समय उन भगवान्‌के दोनों चरणोंकी संधिमें जो मेरुपर्वतका शिखर था, वही ब्रह्मलोक हुआ। उसकी ऊँचाई एक लाख एक सौ योजनकी है। इसी प्रकार उसका विस्तार भी इससे चौगुना है। अथवा कोई भी प्राणी कई सहस्र वर्षोंमें दिव्य ज्ञानके द्वारा भी उसके विस्तारकी गणना नहीं कर सकता॥ ८-९॥ राजेन्द्र! उसके चारों किनारोंमें चार बड़ी-बड़ी शिलाएँ हैं, जिनसे उसके विस्तृत पार्श्वभाग घिरे हुए हैं। उन सबके विस्तार सौ-सौ योजन हैं। मेरुपर्वतका विस्तार उन सबसे कोटि-कोटि शतगुना अधिक है—ऐसा नित्यसिद्ध, नित्यब्रह्मपरायण, योगयुक्त ब्रह्मवादी पुरुषोंने निश्चय किया है॥ १०-११॥ नरेश्वर! भरतनन्दन! श्रीविष्णु तथा मरुद्गणों, देवेन्द्रों, रुद्रों, वसुओं, आदित्यों, विश्वेदेवों एवं विवस्वान् और वरुणके साथ रहकर भगवान् ब्रह्मा उसी ब्रह्म-प्राप्त ब्राह्म शरीरसे भूमि और भूमिपालोंकी रक्षा करते हैं। ब्रह्माजी जिस ब्रह्मको प्राप्त थे, वह ब्रह्म सर्वत्र समभावसे स्थित है, विष्णुमय तेजके रूपमें प्रकाशमान है। बहुत-से नियमोंने जिन्हें अपना अनुगत बना लिया है तथा जो सत्यभाषण एवं ब्रह्मचर्यव्रतके पालनमें तत्पर रहते हैं, उन वेदके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मणोंने जिसे ब्रह्मके नामसे बताया और जाना है, वही वह ब्रह्म है। इस प्रकार ये तीनों लोक ब्रह्माके दिनमें स्थित रहते हैं। अव्यक्त ब्रह्म भी ब्रह्माके उस दिनमें प्राणयुक्त शरीरके भीतर जीवात्मारूपसे व्यक्त एवं प्रतिष्ठित होता है॥ १२—१६॥

ब्रह्मणो नियतं कर्म प्रभावेण प्रचोदितम्।
प्रवर्तमानं भावेन शश्वदच्छलवादिनाम्॥ १७

एतद्धितमिति प्रोक्तं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
यदेकं ब्रह्मणः पादं दिष्टत्वं गमितं पदम्॥ १८

बहुत्वाद् विप्रभावानां विश्वशब्दः प्रयुज्यते।
ब्राह्मणैर्ब्रह्म भूतात्मा सत्यव्रतपरायणैः॥ १९

विश्वरूपं मनोरूपं बुद्धिरूपं च मानयन्।
एवं द्वन्द्वं स भगवान् प्रथमं मिथुनं सृजत्॥ २०

स एव भगवान् विश्वो देव्या सह सनातनः।
विधाय विपुलान् भोगान् ब्रह्मा चरति सानुगः॥ २१

स एष भगवान् ब्रह्मा नित्यं ब्रह्मविदां वरः।
निर्वाणपदगन्तॄणामकिंचनपथैषिणाम् ॥ २२

सोमात् सोमः समुत्पन्नो धारासलिलविग्रहात्।
ययाभिषिक्तो भूतानामाधिपत्ये महेश्वरः॥ २३

अभिषिच्य च भूतेशं कृत्वा कर्म स्वभावतः।
नदति स्म तदा नादं तेन सा ह्युच्यते नदी॥ २४

परब्रह्म परमात्माके प्रभाव (निःश्वासरूप वेद)-से प्रतिपादित जो नियत (नित्य) कर्म है, वह जिनकी वाणीमें भी कपट नहीं है, ऐसे पुरुषोंद्वारा यदि निरन्तर शुद्धभावसे किया जाय तो हितकारक होता है॥ १७॥ वेदोंके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मणोंने इस तरह निष्कामभावसे किये गये कर्मको ही हितकारक बताया है। जिस पदको दिष्ट—प्रारब्ध या पूर्वकृत कर्मका फल बताया गया है, वह विश्व ब्रह्म (परमात्मा)-का एक पाद (लेशमात्र अंश) है*॥ १८॥ विश्वको जिसका एक पाद बताया गया है, वह ब्रह्म सम्पूर्ण भूतोंका नित्यसिद्ध आत्मा है (उसे सकाम कर्मोंद्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता) तो भी वेदाभ्यासी विप्रोंके भावोंकी विविधताके कारण सत्यव्रतमें तत्पर रहनेवाले ब्राह्मण इन्द्र, मित्र, वरुण आदि सारे शब्द जिसमें वाचकरूपसे प्रतिष्ठित हैं, उस विश्व शब्दका यज्ञोंमें विनियोग करते हैं। (उन सकाम यज्ञोंद्वारा इन्द्रादि देवोंके ही लोकोंकी प्राप्ति होती है, जो मोक्ष या भगवत्प्राप्तिके सामने नितान्त तुच्छ है। अतः मुमुक्षु पुरुषोंको निष्काम कर्मोंद्वारा ही परमात्माकी आराधना करनी चाहिये।)॥ १९॥ विश्वरूप (स्थूल) और मनोरूप (सूक्ष्म)—ये दोनों केवल बुद्धिमात्ररूप हैं। ऐसा जानते हुए उन भगवान् ब्रह्माने पहले स्त्री-पुरुषरूप जोड़ेकी सृष्टि की॥ २०॥ वे ही विश्वरूप सनातन भगवान् ब्रह्मा अपनी शक्तिस्वरूपा देवीके साथ विपुल भोगोंकी रचना करके अपने अनुगामी कश्यप आदिके साथ उन्हें आचरण (उपयोग)-में लाते हैं॥ २१॥ अकिंचनपथ (संन्यासमार्ग)-पर जानेकी इच्छावाले जो मोक्षरूपी गन्तव्यपदके यात्री हैं, उन ब्रह्मवेत्ताओंके लिये जो सदा वरणीय परमात्मा हैं, वे यह भगवान् ब्रह्मा ही हैं॥ २२॥ अलुप्त ज्ञानशक्तिसे सम्पन्न परमेश्वरसे ओषधियोंके स्वामी सोम उत्पन्न हुए। उस समय इस सोमके उत्पादक उस परमेश्वरका स्वरूप ऊर्ध्वलोकसे गिरती हुई जलधारा ही थी, जिसने भगवान् महेश्वरको भूतनाथके पदपर अभिषिक्त किया॥ २३॥ वह जलधारा उस समय स्वाभाविकरूपसे भूतनाथ महेश्वरका अभिषेक करके इस महान् कर्मका सम्पादन करनेके पश्चात् कलकलनाद करने लगी। उसके कारण वह नदी कहलाती है॥ २४॥

* श्रुति भी कहती है कि 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' इत्यादि। अर्थात् सम्पूर्ण भूत या समस्त भौतिक जगत् इस परमात्माका एक पाद (लघुतम अंश) हैं।

सा ब्रह्मलोकं सम्भाव्य अभिभूय सहस्रधा।
गां गता गगनाद् देवी सप्तधा प्रससार च॥ २५

सहस्रधा च राजेन्द्र बहुधा च पुनः पुनः।
इमं लोकममुं चैव भावयन् क्षरसम्भवम्॥ २६

ततो भूतानि रोहन्ति महाभूतफलानि च।
ततः सर्वे क्रियारम्भाः प्रवर्तन्ते मनीषिणाम्॥ २७

चतुर्भिर्वदनैस्तस्य मुखपद्माद् विनिःसृता।
तदाक्षरमयी सिद्धिर्दिशत्वं समुपागता॥ २८

तस्य ज्ञानमयं पुण्यं चतुष्पादं सनातनम्।
पतित्वेनाभवद् देवो ब्रह्मा चात्र पितामहः॥ २९

पादा धर्मस्य चत्वारो यैरिदं धार्यते जगत्।
ब्रह्मचर्येण व्यक्तेन गृहस्थेन च पावने॥ ३०

गुरुभावेन वाक्येन गुह्यगामिनगामिना।
इत्येते धर्मपादाः स्युः स्वर्गहेतोः प्रचोदिताः॥ ३१

न्यायाद् धर्मेण गुह्येन सोमो वर्धति मण्डले।
ब्रह्मणो ब्रह्मचरणाद् वेदा वर्तन्ति शाश्वताः॥ ३२

ब्रह्मलोकका महत्त्व बढ़ाकर मार्ग रोकनेवाले पर्वतोंके सहस्रों टुकड़े करके वे देवी गगनसे भूतलपर अवतीर्ण हुईं। अतः '**गां गता**'[1] इस व्युत्पत्तिके अनुसार उनका नाम गङ्गा हुआ। वे सात धाराओंमें विभक्त होकर सब ओर फैलीं॥ २५॥ राजेन्द्र! वे भगवती गङ्गा अनेकानेक नदियों और तीर्थोंके रूपमें सहस्रोंकी संख्यामें विभक्त हुई हैं और बारम्बार विभूतिभेदसे अनेकानेक रूप धारण करती हैं। उन गङ्गाजीसे प्रकट हुए सोमदेव अन्न आदिके पौधोंको बढ़ाकर इस भौतिक लोककी और अपनी सुधामयी किरणोंसे परलोककी भी पुष्टि एवं रक्षा करते हैं॥ २६॥ इस लोककी वृद्धि होनेसे जरायुज आदि प्राणी बढ़ते हैं। पृथ्वी, जल और तेज—इन तीनों महाभूतोंके जो व्रीहि आदि फल हैं, उनकी भी वृद्धि होती है। फिर उन व्रीहि आदि फलों और मनुष्य आदि प्राणियोंसे मनीषी पुरुषोंकी समस्त क्रियाओंका यथायोग्य आरम्भ होता है॥ २७॥ उन परमेश्वरके मुखारविन्दसे जो चारों वेदोंके रूपोंमें अक्षर ब्रह्ममयी सिद्धि प्रकट हुई, वही उपदेशभावको प्राप्त हुई है॥ २८॥ उन परमात्माका जो चिन्मय, पुण्यजनक, (ब्रह्मा, उद्गाता, होता और अध्वर्यु—इन) चार पादोंसे युक्त तथा सनातन (अनादि)-रूप यज्ञ है, उसके अधिपतिरूपसे यहाँ पितामह ब्रह्माजी ही प्रतिष्ठित हुए हैं॥ २९॥ चारों आश्रम धर्मके चार पाद हैं, जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है। स्वाध्यायरूपसे व्यक्त हुए ब्रह्मचर्याश्रमके द्वारा धर्मका एक पैर पुष्ट होता है। पवित्र गृहका आश्रय लेकर पालित होनेवाले गृहस्थाश्रमके द्वारा धर्मका दूसरा चरण परिपुष्ट होता है॥ ३०॥ तपस्याके भारसे गौरवान्वित हुए वानप्रस्थाश्रमके द्वारा धर्मके तीसरे चरणकी पुष्टि होती है तथा आत्मतत्त्वके प्रतिपादक और कूटस्थ ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाले '**तत्त्वमसि**' आदि महावाक्यके विचारसे युक्त संन्यास आश्रमके द्वारा धर्मका चौथा पाद सुदृढ़ होता है। ये ही धर्मके चार चरण हैं, जो स्वर्ग (दिव्य सुख एवं मोक्ष)-की प्राप्तिके लिये शास्त्रोंद्वारा प्रतिपादित हुए हैं॥ ३१॥ न्यायपूर्वक गुह्यधर्मके पालनसे सोम (सोमाधिष्ठित मन) ब्रह्माण्डमण्डलमें वृद्धिको प्राप्त होता है (अर्थात् व्यष्टिके अभिमानको छोड़कर समष्टिके अभिमानसे सम्पन्न होता है)। वेदके अनुसार ब्रह्मचर्यव्रतके पालन और स्वाध्यायसे सनातन वेद सदा बने रहते हैं॥ ३२॥

१. गङ्गा, यमुना, सरस्वती, रथस्था, सरयू, गोमती और गण्डकी—ये ही उनकी सात धाराएँ हैं। (वन० ८५। ८८)

गृहस्थानभि वाक्येन तृप्यन्ति पितरस्तथा।
ऋषयोऽपि च धर्मेण नगस्य शिरसि स्थिताः॥ ३३

वेदोक्त धर्मसे युक्त गृहस्थोंको भी देखकर मेरुपर्वतके शिखरपर स्थित हुए पितर तथा ऋषि भी उनके धर्मसे तृप्त होते हैं॥ ३३॥

नगस्य तस्य सम्पश्य मेरोः शिखरमुत्तमम्।
पद्भ्यां सम्पीड्य वृषणावृषिभिस्तैर्विचार्यते॥ ३४

उस मेरुपर्वतके उत्तम शिखरको (जिसे ब्रह्मलोक कहा गया है) देखो—उसकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करो। (किस तरह सो बताते हैं) ऋषिगण दोनों पैरोंसे अण्डकोषोंको दबाकर सिद्धासनसे* स्थित हो उसका विचार (चिन्तन) करते हैं॥ ३४॥

ग्रीवां निगृह्य पृष्ठं च विनाम्य प्रहसन्निव।
नाभिदेशे करौ न्यस्य सर्वशोऽङ्गानि संक्षिपन्॥ ३५

ग्रीवाको मोड़कर दोनों हँसलियोंकी सन्धिमें अपनी ठोढ़ीको सटा दे और पीठको इस तरह भीतरकी ओर झुका दे कि छातीका भाग कुछ ऊँचा हो जाय। फिर हँसते हुए पुरुषके समान मुद्रामें स्थित हो दाँतोंको परस्पर सटने न दे। दोनों हाथोंको नाभिदेशमें रखकर अञ्जलिकी मुद्रामें कर दे अर्थात् बायें हाथके ऊपर दाहिना हाथ रख ले। फिर सब ओरसे अपने अङ्गोंको काबूमें रखता हुआ ध्यान लगावे॥ ३५॥

मूर्ध्नि ब्रह्म समुत्क्षिप्य मनसापि पितामहः।
असृजन्मनसा विष्णुं योगाद् योगेश्वरस्य च॥ ३६

इस प्रकार ध्यान लगाते हुए अधिकारी पितामहने मन:प्रधान प्राणके द्वारा ब्रह्म अर्थात् अपने जीवात्माको मूर्धा (भौंहों और नासिकाके मध्यभाग)-में ले जाकर मानसिक संकल्पके द्वारा विष्णु अर्थात् विश्वरूपकी सृष्टि की। ऐसा उन्होंने योगेश्वरके योगसे किया (चित्तवृत्तियोंके निरोधको योग कहते हैं। वह प्राणरोध या प्राणायामके अधीन है। अत: वही योगेश्वर है)। उसी प्राणायामके योग अर्थात् अभ्याससे उन्होंने पूर्वोक्त रीतिसे जीवको मूर्धामें स्थापित करके ऐश्वर्य प्राप्त किया। जिससे वे सम्पूर्ण जगत्‌की रचनामें सफल हुए॥ ३६॥

व्यतिरिक्तेन्द्रियो विष्णुर्बिम्बाद् बिम्बमिवोद्धृतः।
तेजोमूर्तिधरो देवो नभसीन्दुरिवोदितः॥ ३७

प्रत्याहारकी साधनासे जिनकी इन्द्रियाँ विषयोंसे पृथक् हो गयी थीं, वे योगी पितामह परिच्छिन्नताके घेरेसे मुक्त एवं व्यापक विष्णुरूप हो बिम्बसे प्रकट हुए बिम्बकी भाँति अपने स्वरूपसे ही तेजोमूर्तिधारी नारायणदेवके रूपमें प्रकट हो गये और आकाशमें उदित हुए चन्द्रमाकी भाँति प्रकाशित होने लगे॥ ३७॥

रराज ब्रह्मयोगेन सहस्रांशुरिवापरः।
विराजन्नभसो मध्ये प्रभाभिरतुलं प्रभुः॥ ३८

वे आकाशके मध्यभागमें अपनी प्रभाओंसे अनुपम शोभा पानेवाले दूसरे भगवान् सूर्यकी भाँति ब्रह्मयोग (चैतन्यज्योतिके संयोग)-से उद्भासित होने लगे॥ ३८॥

नोपलभ्यति मूढात्मा प्रत्यक्षं ब्रह्म शाश्वतम्।
ललाटमध्ये तिष्ठन्तं द्विधाभूतं क्रियां प्रति॥ ३९

मूढ़चित्त पुरुष प्रत्येक क्रियाके प्रति नियम्य और नियामकरूपसे दो स्वरूपोंमें स्थित हुए और ललाटके मध्यभाग (भौंहों और नासिकाके संधिस्थान)-में विराजमान सनातन ब्रह्म (विष्णु)-का साक्षात्कार नहीं कर पाता है॥ ३९॥

---

* अन्यत्र सिद्धासनका लक्षण इस प्रकार मिलता है—

मेढ्रादुपरि विन्यस्य सव्यं गुल्फं तथोपरि। गुल्फान्तरं च विन्यस्य सिद्धासनमिदं भवेत्॥

अर्थात् बायें गुल्फको लिङ्गके ऊपरी भागमें रखकर उसके ऊपर दूसरा गुल्फ रखकर बैठे। यह सिद्धासन है।

ज्योतिश्चक्षुषि सम्बद्धं विम्बं भास्करसोमयोः।
बुद्ध्या पूर्वं तु पश्यन्ति अध्यात्मविषये रताः॥ ४०

ब्राह्मणा वेदविद्वांसः सत्यव्रतपरायणाः।
नेतरे जातु पश्यन्ति अध्यात्मं नावबुध्यते॥ ४१

सूर्य और चन्द्रमा जिनके देवता हैं, उन इडा और पिङ्गला नामक नाड़ियोंमें बिम्बभूत जो चैतन्य ज्योति है, उसीकी धारणा करनी चाहिये। वह नेत्रेन्द्रियमें प्रतिबिम्बित होती है (उसीके द्वारा नेत्रमें रूपको प्रकाशित करनेकी शक्ति प्राप्त हुई है)। पहलेसे अध्यात्मविषयके चिन्तनमें तत्पर रहनेवाले सत्यव्रत-परायण वेदवेत्ता ब्राह्मण विशुद्ध बुद्धिके द्वारा उसका साक्षात्कार करते हैं। दूसरे लोग कदापि उसका दर्शन नहीं कर पाते हैं। दूसरोंको तो अध्यात्म-शास्त्रका भी ज्ञान नहीं होता, स्वरूपबोध तो दूरकी बात है॥ ४०-४१॥

हिंसायोगैरयोगात्मा सर्वप्राणचरैर्नृप।
भूतयो भुवि भूतेशो मोहप्राप्तेन चेतसा॥ ४२

नरेश्वर! जो भूतलपर योगजनित ऐश्वर्यसे समस्त प्राणियोंका निग्रह और अनुग्रह करनेमें समर्थ है, वह योगी यदि अपने चित्तको मोहवश योगमें लगाये न रहे तो वे ऐश्वर्य उसे समस्त प्राणियोंका संहार करनेवाले हिंसायोगमें लगाकर उसका पराभव कर देते हैं॥ ४२॥

कर्मभिः कुत्सितैरन्यैः सर्वप्राणिवधैषिणाम्।
नराणां योगमाधाय स्वेषु मात्रेषु भारत॥ ४३

भरतनन्दन! वे विभूतियाँ समस्त प्राणियोंके वधकी इच्छावाले मनुष्योंको अपने भोग्य विषयोंके लिये अन्य कुत्सित कर्मोंमें लगाकर उन्हें विनाशके गर्तमें गिरा देती हैं॥ ४३॥

समाहितमना ब्रह्मन् मोक्षप्राप्तेन हेतुना।
चन्द्रमण्डलसंस्थानाज्ज्योतिश्चान्द्रं महत् तदा॥ ४४

प्रविश्य हृदयं क्षिप्रं गायत्र्या नयनान्तरे।
गर्भस्य सम्भवो यश्च चतुर्धा पुरुषात्मकः॥ ४५

इसलिये मोक्षकी प्राप्तिके हेतु परब्रह्म परमात्माके चिन्तनमें चित्तको पूर्णरूपसे लगा दे। चन्द्रमण्डल अर्थात् मनके संस्थान (ईशादिरूप)-का परित्याग करके महान् चान्द्र-ज्योति (चैतन्यमय तेज)-में, जिसका स्थान हृदय है, प्रवेश करे। शीघ्र विघ्न आनेकी आशङ्कासे गायत्री अर्थात् सगुण ब्रह्मके नेत्रकी भाँति प्रकाशक विशुद्ध तेजके भीतर स्थित हो जाय, जो कि अव्यक्तकी उत्पत्तिका स्थान है। वह अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रारूपसे अथवा विश्व, तैजस, प्राज्ञ एवं तुरीयरूपसे चार भेदोंमें विभक्त पुरुषरूप है॥ ४४-४५॥

ब्रह्मतेजोमयोऽव्यक्तः शाश्वतोऽथ ध्रुवोऽव्ययः।
न चेन्द्रियगुणैर्युक्तो युक्तस्तेजोगुणेन च॥ ४६

चन्द्रांशुविमलप्रख्यो भ्राजिष्णुर्वर्णसंस्थितः।
नेत्राभ्यां जनयद् देवो ऋग्वेदं यजुषा सह॥ ४७

वह पुरुष ब्रह्मचैतन्यमय है। अव्यक्त अर्थात् इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिका अविषय है। नित्य, कूटस्थ और अव्यय (विकाररहित) है। इन्द्रियोंद्वारा गृहीत होनेवाले रूप आदि गुणोंसे रहित तथा तेजोगुणसे युक्त है। उसकी कान्ति चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल है। वह सदा सत्स्वरूपसे प्रकाशमान है तथा शरीरके आकारमें परिणत हुए लोहित-शुक्ल आदि वर्णोंमें आविर्भूत होकर स्थित है। उस प्रकाशमान देवताने अपने नेत्रोंसे ऋग्वेद और यजुर्वेदको प्रकट किया॥ ४६-४७॥

सामवेदं च जिह्वाग्रादथर्वाणं च मूर्धतः।
जातमात्रास्तु ते वेदाः क्षेत्रं विन्दन्ति तत्त्वतः॥ ४८

तेन वेदत्वमापन्ना यस्माद् विन्दन्ति तत्पदम्।
ते सृजन्ति तदा वेदा ब्रह्म पूर्वं सनातनम्॥ ४९

पुरुषं दिव्यरूपाभं स्वैः स्वैर्भावैर्मनोभवैः।
अथर्वणस्तु यो योगः शीर्षं यज्ञस्य तत् स्मृतम्॥ ५०

ग्रीवाबाह्वन्तरं चैव ऋग्भागः स भवेत् ततः।
हृदयं चैव पार्श्वं च सामभागस्तु निर्मितः॥ ५१

बस्तिशीर्षं कटीदेशं जङ्घोरुचरणैः सह।
एवमेष यजुर्भागः संघातो यज्ञकल्पितः।
पुरुषो दिव्यरूपाभः सम्भूतो ह्यमरात् पदात्॥ ५२

स हि वेदमयो यज्ञः सर्वभूतसुखावहः।
उभयोर्लोकयोस्तात हिंसावर्ज्यः सनातनः॥ ५३

योगारम्भं कर्मसाध्यं ब्रह्मचर्यं सनातनम्।
प्रभवः सर्वभूतानां यो विन्दति स वेदवित्॥ ५४

स सिद्धः प्रोच्यते लोके सिद्धिरेव न संशयः।
निर्मुक्तैः सर्वकर्मभ्यो मुनिभिर्वेदपारगैः॥ ५५

वैष्णवं यज्ञमित्येवं ब्रुवते वेदपारगाः।
ब्राह्मणा नियमश्रान्ता वेदोपनिषदे पदे॥ ५६

जनमेजय उवाच

चेतसस्तूपलम्भे हि मनोग्राह्यस्य कामतः।
कारणं श्रोतुमिच्छामि यथा त्वं मन्यसे मुने॥ ५७

वैशम्पायन उवाच

न ह्यस्य कारणं किंचिद् बाह्यं भवति भारत।
अन्तर्गतं कारणं तु शारीरं मानसं नृप॥ ५८

जिह्वाके अग्रभागसे सामवेदको और मूर्धा (ललाटप्रान्त)-से अथर्ववेदको प्रकट किया है। वे वेद प्रकट होते ही अपने-अपने क्षेत्रका तत्त्वतः वेदन (उपलब्धि) करते हैं, इसलिये उन्हें 'वेद' संज्ञा प्राप्त हुई है। वे उस ब्रह्मपदका वेदन (लाभ) करते हैं, इसलिये भी 'वेद' कहलाते हैं। उस समय वे वेद पहले उस सनातन ब्रह्मको ही अपने-अपने मानसिक भावोंके अनुसार दिव्य रूप और आभासे युक्त विश्व, तैजस, प्राज्ञ एवं तुरीय पुरुष अथवा यज्ञपुरुषके रूपमें प्रकट करते हैं। अथर्ववेदका जो योग है, वह यज्ञपुरुषका सिर माना गया है। जो ऋग्वेदका भाग है, वह उसकी ग्रीवा और भुजाओंके बीचका अङ्ग है। सामवेदके भागसे उस यज्ञपुरुषके हृदय और पार्श्वभागका निर्माण हुआ है। इसी तरह जो यह यजुर्वेदका भाग है, उसके द्वारा यज्ञपुरुषके पेड़ू और उसके ऊपरके भाग, कटिप्रदेश, ऊरु, जंघा और चरणोंके साथ शेष शरीरकी कल्पना हुई है। वह दिव्य रूप और मायासे युक्त पुरुष अमर—अविनाशी तुरीय पदसे प्रकट हुआ है॥ ४८—५२॥ तात! वह हिंसारहित सनातन वेदमय यज्ञ इहलोक और परलोकमें समस्त प्राणियोंके लिये सुखदायक होता है॥ ५३॥ योगका आरम्भ मनःसंयमरूपी कर्मसे सिद्ध होनेवाला है। यही सनातन ब्रह्मचर्य है। जो इसे जानता है, वह समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिका कारण एवं वेदवेत्ता है॥ ५४॥ समस्त कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हुए वेदपारङ्गत मुनियोंने लोकमें उसे सिद्ध बताया है। उसको सिद्धि ही प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है॥ ५५॥ वेदोंके पारङ्गत ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण, जो मनोनिग्रहका अभ्यास करते-करते थक गये हैं, वेदोपनिषद् (ब्रह्मविद्या)-द्वारा अधिगत होनेवाले स्वाराज्य पदकी प्राप्तिके लिये इस प्रकार वैष्णव यज्ञ (योग)-की आवश्यकता बताते हैं॥ ५६॥

जनमेजयने कहा—मुने! जो इच्छानुसार मनके द्वारा ग्राह्य है अर्थात् ईंधन जल जानेपर आगकी तरह जो स्वयं अपने-आप ही शान्त हो जानेके योग्य है, उस चित्तकी उपलब्धिमें क्या कारण है, यह मैं सुनना चाहता हूँ; इस विषयमें आपकी जैसी मान्यता हो, वैसा बताइये॥ ५७॥

वैशम्पायनजीने कहा—भारत! नरेश्वर! इसका कोई बाह्य कारण नहीं है। अपने भीतर ही इसका कारण मौजूद है। शरीरके द्वारा किया गया जो कर्म है, वही मनमें संस्काररूपसे स्थित हो उसका उद्बोधक होता है (उस चित्तकी उपलब्धिमें कारण बनता है)॥ ५८॥

येन वेद्यं विदुर्मर्त्या ब्राह्मणाः संशितव्रताः।
अवेद्यमपि वेद्यं च शक्यं वेत्तुं न कर्मणा॥ ५९

ब्राह्मणेन विनीतेन सदा ब्रह्मनिषेविणा।
सदा विदिततत्त्वेन सिद्धिहेतोर्महीपते॥ ६०

सदा चैव शुचिर्भूत्वा नियतो ब्रह्मकर्मणा।
उपतिष्ठेत स गुरुं बद्धाञ्जलिपुटो द्विजः॥ ६१

सायं प्रातश्च तत्त्वज्ञो मोक्षकर्माणि कारयेत्।
विनीतो ब्रह्मभावेन समाहितमतिर्मुनिः॥ ६२

सम्प्रपद्येत मनसा वैष्णवं पदमुत्तमम्।
ध्यायन्नेव प्रसीदेत समाहितमतिर्द्विजः॥ ६३

गच्छते परमं ब्रह्म निर्विकारेण चेतसा।
अपुनर्भवभावज्ञो निर्ममो भावबन्धनात्॥ ६४

तदेवाक्षरमित्याहुर्यत् तद् ब्रह्म सनातनम्।
तर्हि तत्कर्मयोगेन विद्यायोगेन दर्शितम्॥ ६५

ब्राह्मणानां विनीतानां वैष्णवे पदसंचये।
सर्वद्रव्यातिरिक्तानां कामयोगविगर्हिणाम्॥ ६६

अपुनर्भाविनां लोकाः कर्मयोगप्रतिष्ठिताः।
अनादानेन मनसा राजन् कर्मणि कर्मणि॥ ६७

आदानाद् बध्यते जन्तुर्निरादानात् प्रमुच्यते।
ब्राह्मणेभ्यः क्रियावाप्तिर्जन्तोः पूर्वाजनाधिप॥ ६८

मुक्तश्चेन्द्रियबन्धेन प्राप्तश्च परमं पदम्।
न भूयः पुनरायाति मानुषं देहविग्रहम्॥ ६९

कठोर व्रतका पालन करनेवाले ब्रह्मवेत्ता मनुष्य जिस चैतन्यसे समस्त ज्ञेय वस्तुओंको जानते हैं, वह आत्मा होनेके कारण अवेद्य है तो भी शास्त्र और आचार्यके उपदेशके पश्चात् लक्षणाद्वारा उसका ज्ञान होता है; परंतु कर्मसे तो उसको किसी तरह नहीं जाना जा सकता॥ ५९॥ पृथ्वीनाथ! वेदोंका अध्ययन करनेवाले ब्राह्मण आदिको चाहिये कि वह मोक्षकी प्राप्तिके लिये विद्याके अहङ्कारका त्याग करके विनीतभावसे रहे, सदा ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय)-का सेवन करे, प्रतिदिन शास्त्र और आचार्यके उपदेशसे आत्मा और अनात्माके तत्त्वको जाननेका प्रयत्न करे॥ ६०॥ सदा पवित्र रहकर ब्रह्मार्पणभावसे कर्म करते हुए नियमपूर्वक शम आदिके साधनमें लगा रहे। इस प्रकार द्विज दोनों हाथ जोड़कर गुरुकी सेवामें उपस्थित होवे॥ ६१॥ गुरुतत्त्वका ज्ञाता होकर प्रतिदिन सायं और प्रातःकाल मोक्षसम्बन्धी कर्म (आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान और धारणा) करे, मनमें योगप्राप्तिके कारण गर्व न आने देकर विनयशील रहे, निरन्तर ब्रह्मकी भावना करते हुए मनको एकाग्र रखे और मौन रहे॥ ६२॥ वह मनसे उत्तम वैष्णवपद (शुद्ध ब्रह्म)-का चिन्तन करे। इस तरह एकाग्रचित्त हुआ द्विज ध्यानपरायण होकर ही प्रसन्न रहे॥ ६३॥ मोक्षके स्वरूपको जाननेवाला ममतारहित वह पुरुष चित्तवृत्तियोंका निरोध करके विकाररहित चित्तसे परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है॥ ६४॥ वह जो सनातन ब्रह्म है, उसीको अक्षर कहते हैं। उसीका शास्त्रोंमें निष्काम कर्मयोग और ज्ञानयोगके द्वारा साक्षात्कार कराया गया है॥ ६५॥ जो वैष्णवपदकी प्राप्तिके लिये सर्वस्वका परित्याग करके कामयोग (स्त्री-पुत्र आदिके सङ्ग)-की निन्दा करते हैं, उन विनयशील ब्राह्मणोंको उस अक्षर ब्रह्मका ज्ञान होता है॥ ६६॥ राजन्! जो प्रत्येक कर्ममें मनसे उसके फलको ग्रहण न करके पुनर्जन्मके बन्धनसे ऊपर उठ गये हैं, उनके लोक निष्काम कर्मयोगमें प्रतिष्ठित हैं॥ ६७॥ नरेश्वर! फलको ग्रहण करनेसे जीव बँधता है और उसका त्याग करनेसे मुक्त होता है। जीवको पूर्वजन्मके संस्कारवश ब्राह्मणादि श्रेष्ठ पुरुषोंसे क्रियाओंकी प्राप्ति होती है॥ ६८॥ फलका परित्याग करनेवाला पुरुष इन्द्रियोंके बन्धनसे मुक्त हो परमपदको प्राप्त होता है। वह पुनः इस मानव-शरीरमें नहीं आता है॥ ६९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्कर-प्रादुर्भावविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७॥

अष्टादशोऽध्यायः

योगके उपसर्ग (विघ्न), योगीकी विष्णुरूपसे स्थिति, कर्मलयसे मुक्ति, सकाम कर्मियोंकी धूममार्गसे गति और पुनरावृत्ति, ज्ञानी एवं योगीको तत्त्वका साक्षात्कार तथा ब्रह्मयुगका वर्णन

जनमेजय उवाच

उपसर्गं च योगं च ध्यातव्यं चैव यत्पदम्।
न भूयः पुनरायाति मानुषं देहविग्रहम्।
सिद्धिं सिद्धिगुणांश्चैव श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन्! योगके विघ्न कौन-कौनसे हैं? योगका स्वरूप क्या है? उसमें ध्येय वस्तु क्या है? किस तरह योग साधन करनेसे मनुष्यको फिर शरीर धारण करना नहीं पड़ता? सिद्धि क्या है? और उसके गुण कौन-कौनसे हैं? मैं इन सब बातोंको यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ॥ १॥

वैशम्पायन उवाच

शृणु विस्तरतः सर्वं यथा पृच्छसि मेधया।
उपपन्नेन मनसा ब्रह्मादीनामनेकधा॥ २

पञ्चसिद्धिगुणांस्त्यक्त्वा पश्यतो ब्रह्मणो नृप ।
योगयुक्तेन मनसा पञ्चेन्द्रियनिवासिनः॥ ३

ब्रह्मणश्चिन्तयानस्य ब्रह्मयज्ञं सनातनम्।
बहुरूपमनैश्वर्यात् प्रवर्तति निरोधनम्॥ ४

पञ्चेन्द्रियस्य ग्रामस्य नवद्वारस्य भारत।
कामक्रोधस्य लोभस्य संनिरुद्धस्य मेधया॥ ५

तेजसा मूर्ध्नि चाधाय धूमो दोधूयते महान्।
नीललोहितवर्णाभैः पीतैः श्वेतैश्च धातुभिः॥ ६

माञ्जिष्ठरागवर्णाभैः कपोतसदृशैस्तथा।
शुद्धवैदूर्यवर्णाभैः पद्मरागसमप्रभैः॥ ७

स्फाटिकैर्मणिवर्णाभैर्नागेन्द्रसदृशैस्तथा ।
इन्द्रगोपकवर्णाभैश्चन्द्रांशुसलिलप्रभैः ॥ ८

बहुवर्णैः सुधूमौघैरिन्द्रायुधसमप्रभैः।
सम्पतद्भिश्च युगपन्मेघैरिव समागतः।
निरुध्यत इवाकाशं पक्षवद्भिरिवाद्रिभिः॥ ९

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! ब्रह्मा आदि योगियोंको अनेक बार जिनका सामना करना पड़ता है, योगके उन विघ्नों तथा स्वरूप आदिके विषयमें तुम जैसा पूछते हो, वह सब बुद्धियुक्त मनसे विस्तारपूर्वक सुनो॥ २॥ नरेश्वर! दूरश्रवण आदि जो पाँच सिद्धियाँ हैं, उनके जो पाँचों इन्द्रियोंमें निवास करनेवाले शब्द आदि विषय हैं, उनका परित्याग करके ब्रह्मदर्शी ब्राह्मण जब योगयुक्त मनसे सनातन ब्रह्मरूप यज्ञका चिन्तन करने लगता है, उस समय उसके भीतर पर-वैराग्यके बलका अभाव होनेसे उसके समक्ष अनेक रूपोंमें विघ्न उपस्थित होने लगते हैं॥ ३-४॥ भरतनन्दन! जिसमें पाँचों इन्द्रियोंकी प्रधानता है, उस नौ द्वारवाले देहेन्द्रियप्राण-सङ्घातरूपी ग्रामका तथा काम, क्रोध और लोभका बुद्धिके द्वारा निरोध हो जानेपर भी जब योगी भौंहों और नासिकाके मध्य भागमें स्थापित हुए तेज अर्थात् नेत्रप्रणिधानके द्वारा चित्तको किसी आधारसे संयुक्त करके स्थित होता है, उस समय उसके समक्ष बड़ा भारी धुआँ उठने लगता है। नीले, लाल, पीले, सफेद धातुओंके समान रंगवाले, मजीठके रंगकी-सी कान्तिवाले, कबूतरोंके समान वर्णवाले, शुद्ध वैदूर्यमणिकी-सी प्रभावाले, पद्मराग मणिके समान आभावाले, स्फटिकमणिके तुल्य उज्ज्वल, गजराजके सदृश काले, वीरबहूटियोंके समान लाल, चन्द्रमाकी किरणों और जलके समान श्वेतवर्णवाले, बहुरंगे धूमसमूह, जो इन्द्रधनुषके समान प्रतीत होते हैं, एक ही समय बादलोंके समान एकत्र होकर सब ओर उड़ने लगते हैं, उस समय सारा आकाश पङ्खधारी पर्वतोंके समान उन धूमसमूहोंसे अवरुद्ध-सा हो जाता है॥ ५—९॥

ते धूमवर्णाः संघाता घनाः सलिलधारिणः।
निर्वेमुश्चैव तोयौघान् विविशुर्वसुधातले॥ १०

मूर्ध्नि चैव महानग्निर्मानसो धूयते प्रभुः।
युक्तः परमयोगेन शतशोऽर्चिभिरावृतः॥ ११

तस्यार्चेर्विस्फुलिङ्गानां सहस्राणि शतानि च।
विसस्रुः सर्वगात्रेभ्यो ज्वलन्निव युगाग्नयः॥ १२

यावत्यो वर्षधारास्तु तावत्योऽर्च्योऽनलस्य च।
समेयुर्वारिधाराभिर्विपुले वसुधातले॥ १३

वर्णाभ्यां युज्यमानस्य वायुर्दोधूयते महान्।
दिव्यसिद्धगुणोद्भूतः सूक्ष्मप्राणविवर्धनः॥ १४

वेगवान् भीमनिर्घोषो बलवान् प्राणगोचरः।
तैरेव चाग्निसंघातैर्धातुभिः सह संगतः॥ १५

सहस्रशोऽथ शतशो मूर्तिं कृत्वा पृथग्विधाम्।
अग्निर्वायुर्जलं भूमिर्धातवो ब्रह्मचोदिताः॥ १६

समवायत्वमापन्ना बीजभूता महीपते।
संघातं ब्रह्मवेगेन धातवो गमिता नृप॥ १७

यद् ब्रह्म चक्षुषोर्मध्ये स सूक्ष्मः पुरुषो विराट्।
तयोरन्यान् बहून् सूक्ष्मान् ससृजे पुरुषोत्तमः॥ १८

स एव भगवान् विष्णुर्व्यक्ताव्यक्तः सनातनः।
आधारः सर्वविद्यानां प्रलये प्रलयान्तकृत्॥ १९

तदनन्तर वे धुएँके समान वर्णवाले समुदाय जल धारण करनेवाले मेघोंके रूपमें परिणत हो जलकी धाराएँ बरसाने लगते हैं और वसुधातल (योगीके शरीर)-में ही विलीन हो जाते हैं॥ १०॥ उसके मस्तकपर भी मनसे प्रकट हुई बड़ी भारी आग धू-धू करके जलने लगती है, वह जलानेमें समर्थ, उत्तम योगशक्तिसे सम्पन्न तथा सैकड़ों लपटोंसे घिरी हुई होती है॥ ११॥ उसकी लपटसे सैकड़ों, हजारों चिनगारियाँ निकलती रहती हैं। उस योगीके सभी अङ्गोंसे प्रलयाग्नियोंके समान जलती हुई-सी अग्नियाँ प्रकट होती हैं॥ १२॥ वर्षा होते समय जलकी जितनी धाराएँ गिरती प्रतीत होती हैं, उस आगकी लपटें भी उतनी ही होती हैं। वे विस्तृत भूतलपर उन जलकी धाराओंके साथ मिल जाती हैं॥ १३॥ जल और अग्निके वर्ण श्वेत और लोहित रंगोंसे संयुक्त हुए चित्तमें जब सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है, तब उसमें रूपरहित वायुरूप आकाश प्रकट होता है। वह दिव्य एवं अनादि गुणों—शब्दतन्मात्रा आदिसे उत्पन्न हुई विशाल वायु (जो स्थूल वायुसे भिन्न है) बहने लगती है, वह सूक्ष्म प्राण (सूत्रात्मा)-को प्रकाशित करनेवाली है॥ १४॥ अग्निसे मिले हुए उन पृथ्वी और जल नामक धातुओंसे संयुक्त होकर वह वायु प्राणगोचर (प्राणशब्दवाच्य) सूत्रात्मा हो जाती है। वह प्राण या सूत्रात्मा बड़ा ही वेगवान् है; क्योंकि वह मनको भी उत्पन्न करनेवाला है। उससे बड़ी भयंकर ध्वनि प्रकट होती है; क्योंकि वह स्थूल आकाशका भी जनक है तथा वह अत्यन्त बलवान् है; क्योंकि उसमें ब्रह्माण्डका भी भेदन करनेकी शक्ति है॥ १५॥ तदनन्तर ब्रह्म (योगी)-से प्रेरित हो अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी नामक धातु पृथक्-पृथक् सैकड़ों और हजारों मूर्तियोंका निर्माण करके स्थित होते हैं॥ १६॥ पृथ्वीनाथ! नरेश्वर! ब्रह्मके वेगसे अर्थात् चैतन्यशक्तिके अनुप्रवेशसे संघात (मूर्तिभाव)-को प्राप्त हुए पृथ्वी-जल आदि धातु एक-दूसरेसे मिलकर बीजभूत हो जाते हैं अर्थात् भावी सृष्टिरूप कार्यके कारण बनते हैं॥ १७॥ दोनों नेत्रोंके मध्यभागमें धारणाका विषयभूत जो ब्रह्म है, वही सूक्ष्म और वही विराट् पुरुष है। वह ब्रह्मीभूत हुआ पुरुषोत्तम योगी उन सूक्ष्म और विराट्से भिन्न एवं उन्हींके समान बहुत-से सूक्ष्म पुरुषोंकी सृष्टि करता है॥ १८॥ वही ब्रह्मीभूत हुआ योगी भगवान् विष्णुके रूपमें प्रतिष्ठित होता है। वे विष्णु ही व्यक्ताव्यक्तस्वरूप सनातन पुरुष हैं। वे ही समस्त विद्याओंके आधार हैं। प्रलयकालमें उन्हींके द्वारा सबका प्रलय एवं विनाशकार्य सम्पन्न होता है॥ १९॥

तं मूर्ध्नि धातुभिर्नद्धं विशन्ति ब्रह्मचोदिताः।
तेऽन्तराः पुरुषाः सर्वे ज्ञातारः सुखदुःखयोः॥ २०

अथ चेष्टितुमारब्धा मूर्तयो ब्रह्मसम्मिताः।
भित्त्वा च धरणीं देवीं प्रापद्यन्त दिशो दश॥ २१

इत्येते पार्थिवाः सर्वे ऋषयो ब्रह्मनिर्मिताः।
तत्रैव प्रलयं याता भूमित्वमुपयान्ति च॥ २२

कर्मक्षयाद् विमुच्यन्ते धातुभिः कर्मबन्धनैः।
कर्मक्षयाद् विमुक्तत्वादिन्द्रियाणां च बन्धनात्॥ २३

तामेव प्रकृतिं यान्ति अज्ञातां कर्मगोचरैः।
क्षराद् धूमक्षयं चैव अग्निगर्भास्तपोमयाः॥ २४

येन तन्तुरिवाच्छन्नो भावाभावः प्रवर्तते।
धूमादभ्रास्तु सम्भूता अभ्रात् तोयं सुनिर्मलम्॥ २५

जगती जलात् तु सम्भूता जगत्येव च यत्फलम्।
फलाद् रसस्तु संजज्ञे रसात् प्राणस्तु देहिनाम्॥ २६

रसश्च तन्मयो जज्ञे यत् तद् ब्रह्म सनातनम्।
प्रधानं ब्रह्म चोद्दिष्टं बहुभिः कारणान्तरैः।
ब्राह्मणैस्तपसि श्रान्तैः सत्यव्रतपरायणैः॥ २७

मस्तक अर्थात् भौंहों और नासिकाके मध्यभागमें सूत्रात्मारूपसे स्थित हुए उस योगीमें परमेश्वरकी प्रेरणासे सुख और दुःखका अनुभव करनेवाले अन्य सब जीव प्रवेश करते हैं॥ २०॥ तदनन्तर स्थूल देहका त्याग करके परमेश्वरकी समताको प्राप्त हुई वे मूर्तियाँ जब चेष्टा करना आरम्भ करती हैं, तब वे दसों दिशाओंको प्राप्त होती हैं॥ २१॥ इस प्रकार स्थूल भूतोंसे उत्पन्न हुए समस्त ऋषि (व्यावहारिक पदार्थ) जिनका निर्माण उस योगीके द्वारा ही हुआ होता है, उसीमें लीन होकर अपने उपादानकारणमें स्थित हो जाते हैं, ठीक उसी तरह जैसे मिट्टीका घड़ा फूटनेपर अपने उपादानकारण मिट्टीमें ही मिल जाता है॥ २२॥ कर्मोंका क्षय होनेसे जीव कर्मबन्धनरूप धातुओंसे मुक्त हो जाते हैं। कर्मोंके क्षयसे धातुबन्धनसे मुक्ति मिल जानेके कारण वे इन्द्रियोंके बन्धनसे भी छूट जाते हैं॥ २३॥ कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हुए जीव अपनी उसी प्रकृति (मूलस्थान परब्रह्मभाव)-को प्राप्त होते हैं, जो कर्मबन्धनमें बँधे पुरुषोंके अनुभवसे परेकी वस्तु है। जो सकाम कर्मोंमें तत्पर रहते हैं, वे नाशवान् कर्म करनेके कारण धूमादि मार्गसे गन्तव्यस्थानको प्राप्त होते हैं (जहाँसे पुनरावृत्ति अवश्यम्भावी है)। उन सकामकर्मियोंमें भी वे ही उस धूममार्गको प्राप्त होते हैं, जिन्होंने प्रधानतः अग्निहोत्र तथा कृच्छ्रचान्द्रायण आदि तपका अनुष्ठान किया है॥ २४॥ जिस कर्मसे अविच्छिन्न तन्तुकी भाँति सदसद्रूप संसारकी प्राप्ति होती है, उस सकाम कर्मका अनुष्ठान करनेवाले लोग धूममार्गको ही प्राप्त होते हैं। धूमादि मार्गसे पितृलोकको गये हुए जीव कर्मक्षयके पश्चात् वहाँसे भ्रष्ट होनेपर आकाश आदिके क्रमसे धूमभावको प्राप्त होकर, धूमसे मेघ होते हैं और मेघसे अत्यन्त निर्मल जलधाराके रूपमें पृथ्वीपर आकर अन्न एवं वीर्यके रूपमें परिणत हो पुनर्जन्म धारण करते हैं॥ २५॥ पृथ्वी जलको पाकर फलसे संयुक्त होती है, उसका व्रीहि आदि फल पृथ्वीरूप ही है। फलसे रस उत्पन्न होता है और रससे देहधारियोंके प्राणकी पुष्टि होती है॥ २६॥ रस रेतःस्वरूप है, जो चैतन्ययुक्त प्रकट हुआ है, जिसे सनातन ब्रह्म कहते हैं, वही वह चैतन्य है। तपस्यामें संलग्न होकर कष्ट सहन करनेवाले सत्यव्रतपरायण ब्राह्मणोंने बहुतेरे अन्य कारणों (युक्तियों)-से एकमात्र ब्रह्मको ही प्रधान बताया है (ब्रह्मद्वारा ही देहादिमें चैतन्यभाव आता है)॥ २७॥

अव्यक्ताद् व्यक्तिमापन्नं स्वेन भावेन भारत।
अन्तःस्थं सर्वभूतेषु चरन्तं विद्यया सह॥ २८

कर्म कर्तेति राजेन्द्र विषयस्थमनेकधा।
नोपलभ्येत चक्षुर्भ्यां तपसा दग्धकिल्बिषैः॥ २९

उपलभ्येत चक्षुर्भ्यां ज्ञानिभिर्ब्रह्मवादिभिः।
निःसृतस्तु भ्रुवोर्मध्यान्मेघमुक्त इवांशुमान्॥ ३०

चरद्भिः पक्षिवल्लोके निर्द्वन्द्वैर्निष्परिग्रहैः।
योगधर्मेण कौरव्य ध्रुवमासाद्यते फलम्॥ ३१

प्रादुर्भावं क्षयं चैव भूतस्य निधनं तथा।
विधत्ते शतशो ब्रह्मा संक्षये च भवेत् तदा॥ ३२

कर्मणः कर्म योगज्ञो भूतेभ्यो नात्र संशयः।
अविनाशाय लोकस्य धर्मस्याप्यायनेन च॥ ३३

युगं द्वादशसाहस्रं सहस्रयुगसंहितम्।
एतद् ब्रह्मयुगं नाम युगानां प्रथमं युगम्॥ ३४

सहस्रयुगयोरन्ते संहारः प्रलयान्तकृत्।
सूक्ष्मं भवति लोकानां निर्विकारमचेतनम्॥ ३५

तथा प्रलयमापन्नं जगत् सर्वं सनातनम्।
ब्रह्म सम्पद्यते सूक्ष्मं निर्मितं कारणैर्गुणैः॥ ३६

भारत! वह ब्रह्म अपने सत्स्वरूपसे ही अव्यक्तसे व्यक्तभावको प्राप्त होता है। वही समस्त प्राणियोंके भीतर अन्तर्यामीरूपसे विद्यमान है और विद्याके द्वारा प्रकाशित होता है, ऐसा जाने॥ २८॥ राजेन्द्र! कर्म (दृश्य) और कर्ता (साभास अहङ्कार)—ये दोनों विषयकोटिमें ही हैं (विषयातीत चिदात्मामें नहीं)। दृश्य अनेक रूपोंमें भासमान होनेपर भी मायानगरकी भाँति वास्तवमें नेत्रोंद्वारा उपलब्ध नहीं होता, तपस्याद्वारा जिनके पाप दग्ध हो गये हैं, उन ब्रह्मवादी ज्ञानी पुरुषोंको उसके वास्तविक स्वरूपकी उपलब्धि होती है (वे यह जान लेते हैं कि जैसे सुवर्ण ही कुण्डल आदिके रूपमें प्रतीत होता है, उसी प्रकार ब्रह्म ही कर्ता-कर्म आदि विविध रूपोंमें प्रकाशित होता है), जैसे मेघोंके आवरणसे मुक्त हुआ सूर्य प्रकाशित होता है, उसी प्रकार नेत्रोंको भौंहोंके मध्यभागमें संयोजित करके ध्यान लगानेपर वह ब्रह्म वहाँ आविर्भूत हुआ दिखायी देता है॥ २९-३०॥ कुरुनन्दन! जो लोग जगत्‌में पक्षीकी भाँति असङ्ग, निर्द्वन्द्व एवं परिग्रहशून्य होकर विचरते हैं, वे ही योगधर्मके द्वारा (ब्रह्मदर्शनरूप) अविनाशी फलको प्राप्त करते हैं॥ ३१॥ वह ब्रह्मवेत्ता पुरुष सृष्टि और संहारके समय सैकड़ों बार समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति, उन्हें ऐश्वर्य प्रदान तथा उनका संहार करता है॥ ३२॥ योगवेत्ता पुरुष प्राणियोंको योगादि कर्मका फल (सुख) वितरण करता है, इसमें संदेह नहीं है। वह धर्मका पोषण करके जगत्‌की रक्षाके लिये ही ऐसा करता है (तात्पर्य यह है कि उस ब्रह्मीभूत योगीकी प्रीतिके लिये ही धर्म किया जाता है और वही प्रसन्न होकर जगत्‌की रक्षा करता है)॥ ३३॥ बारह हजार दिव्य वर्षोंका एक चतुर्युग होता है। सहस्र चतुर्युगका जो समय है, इसीका नाम ब्रह्मयुग है, जो युगोंमें प्रधान युग (कल्प) कहा गया है॥ ३४॥ एक सहस्रयुगके अन्तमें ब्रह्माके दिनकी समाप्ति होती है, जिसमें संहार (कल्पका अन्त) होता है और दूसरे सहस्रयुगके अन्तमें उनकी रात्रिका अवसान होता है, जो प्रलयका अन्त अर्थात् कल्पका आरम्भ करनेवाला है। संहारकालमें लोकोंका स्वरूप सूक्ष्म, निर्विकार एवं अचेतन होता है॥ ३५॥ कारणभूत सत्त्वादि गुणोंसे निर्मित हुआ यह जगत् प्रलयको प्राप्त होनेपर सूक्ष्मरूप होकर ब्रह्ममें स्थित हो जाता है॥ ३६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे अष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्कर-प्रादुर्भावविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

योगीकी स्थिति तथा उसके समक्ष आनेवाले विघ्नरूप ऐश्वर्योंका वर्णन

जनमेजय उवाच

प्राग्वंशं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण महामुने।
आद्ययोर्युगयोर्ब्रह्मन् ब्रह्मप्राप्तस्य सर्वशः॥ १

वैशम्पायन उवाच

शृणु विस्तरशः सर्वं यन्मां पृच्छसि मेधया।
उपपन्नेन मनसा दैवप्रत्ययसाधिना॥ २

ऋद्धिं प्राप्तस्तु भगवान् योगात्मा ब्रह्मसम्भवः।
भूतानां बहुलत्वं च चकारेहेश्वरः प्रभुः॥ ३

स्थितो ब्रह्मासने ब्रह्मा विक्षिप्तः सहसा प्रभुः।
अचलेनैव भावेन स्थाणुभूतेन भारत॥ ४

रक्तश्च मोक्षविषये स च ज्ञानमये पदे।
यस्मात् पदसहस्राणि प्रभवन्ति भवन्ति च॥ ५

ब्रह्मयज्ञं तु यजते योगाद् वेदात्मकं सदा।
ब्रह्मणो विपुलं ज्ञानमैश्वर्यं च प्रवर्तते॥ ६

ततः प्रथममैश्वर्यं युञ्जानेन प्रवर्तितम्।
ब्रह्मणा ब्रह्मभूतेन भूतानां हितमिच्छता॥ ७

तदा त्वाकाशमैश्वर्यं युञ्जानस्य प्रवर्तते।
ब्रह्मणो ब्रह्मभूतस्य निर्विकारेण कर्मणा॥ ८

तदान्तरिक्षं सम्प्राप्तं निर्मलं ब्रह्म चाव्ययम्।
संहारः सर्वभूतानां नराणां ब्रह्मवादिनाम्।
ध्रुवमैश्वर्ययोगानां प्रतिपद्यन्ति देहिनः॥ ९

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन्! महामुने! दोनों आदि युगोंमें ब्रह्मभावको प्राप्त हुए योगी ब्रह्माकी पहले जो कार्य-संतति रही है, उसका मैं पूर्णतः विस्तारके साथ वर्णन सुनना चाहता हूँ॥ १॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! तुम बुद्धिके द्वारा मुझसे जो कुछ पूछ रहे हो, वह सब दिव्य ज्ञानकी प्राप्तिके साधनमें लगे हुए अपने योगयुक्त मनके द्वारा विस्तारपूर्वक सुनो॥ २॥ भारत! जिनका मन योगमें लगा हुआ था, जो साक्षात् परब्रह्म परमात्मासे उत्पन्न हुए थे, जिनमें करने, न करने और अन्यथा करनेकी शक्ति है तथा जो अत्यन्त प्रभावशाली हैं, वे भगवान् ब्रह्मा जब समृद्धिको प्राप्त होकर ठूँठकी भाँति अविचल भावसे ब्रह्मासनपर विराजमान हुए, उस समय सहसा रजोगुणने उन्हें विक्षिप्त कर दिया। अतः उन्होंने सृष्टि-रचनाद्वारा यहाँ भूतोंका बाहुल्य (विस्तार) किया॥ ३-४॥ वे मोक्ष ही जिसका लक्ष्य है, उस ज्ञानमय पदमें अनुरक्त थे, जिससे सहस्रों सामर्थ्यशाली पद प्रकट होते हैं (जैसे सौभरि अथवा कर्दम ऋषिने अपनी योगशक्तिके प्रभावसे अनेकानेक वस्तुओंकी रचना की थी।)॥ ५॥ ब्रह्माजी योगयुक्त हो सदा वेदात्मक ब्रह्मयज्ञका अनुष्ठान करते हैं (अथवा वेदप्रतिपाद्य ब्रह्मरूप यज्ञ—विष्णुका यजन करते हैं), इसलिये उस योग एवं यजनके प्रभावसे उन्हें विपुल ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है॥ ६॥ फिर योगयुक्त एवं ब्रह्मभूत हुए ब्रह्माने समस्त प्राणियोंके हितकी इच्छा रखकर उस प्रथम प्राप्त हुए ऐश्वर्यका उन्हींकी भलाईके लिये उपयोग किया॥ ७॥ उस निर्विकार (परम शुद्ध) कर्मद्वारा योगपरायण ब्रह्मीभूत ब्रह्माको उस समय आकाशस्वरूप (अव्याकृत) ऐश्वर्य प्राप्त हुआ॥ ८॥ उस समय उनकी दृष्टिमें सारा आकाश निर्मल एवं अविनाशी ब्रह्मभावको प्राप्त हो गया। उस अवस्थामें समस्त ज्ञानवान् मनुष्य यह जान लेते हैं कि समस्त प्राणियों, मनुष्यों तथा ऐश्वर्ययुक्त ब्रह्मवादी योगियोंका भी लयस्थान कूटस्थ ब्रह्म ही है॥ ९॥

आकाशैश्वर्यभूतेन संयुगे ब्रह्मवादिना।
प्रवर्तमानमैश्वर्यं वायुभूतं करोति च।
विकारैर्बहुभिः प्राप्तैः सम्पतद्भिर्महाबलैः॥ १०

एतैर्विकारैः संवृत्तैर्निरुद्धैश्च समन्ततः।
ध्रुवमैश्वर्यमापन्नः सिद्धो भवति ब्राह्मणः॥ ११

शरीरादभिनिष्क्रम्य आकाशेन प्रधावति।
निरालम्बो निरालम्बान्नालम्ब्य मनसा ततः॥ १२

ऐश्वर्यभूतो भूतात्मा चरन् दिवि न दृश्यते।
चक्षुर्भिर्बहुभिर्लोकैः पुरंदरसमैरपि॥ १३

ओंकारं ये त्वधीयन्ते मनसा ब्रह्मसत्तमाः।
विमुक्ताः सर्वकर्मभ्यस्ते तं पश्यन्ति साधवः॥ १४

एतद्धि परमं ब्रह्म ब्राह्मणानां मनीषिणाम्।
अन्तश्चरति भूतानां विद्धि चेतनया सह॥ १५

एष शब्दो महानादः पुराणो ब्रह्मसम्भवः।
वायुभूतोऽक्षरं प्राप्तो वदन्त्येवं द्विजातयः॥ १६

अरूपी रूपसम्पन्नो धातुभिः सह संगतः।
अन्तश्चरति भूतेषु कामकारकरो वशी॥ १७

एतत् पूर्वमनुध्याय मनसाऽऽपूरयन्निव।
वेदात्मकं तदा यज्ञं चिन्तयन्तो मनीषिणः॥ १८

उस योगयज्ञमें संलग्न हो आकाशरूप अथवा अव्याकृत ऐश्वर्यको प्राप्त हुए ब्रह्मवादी ब्रह्माके रूपमें प्रवृत्तिपरायण हुआ ब्रह्म सब ओरसे आकर प्राप्त होनेवाले बहुसंख्यक महाबली विकारोंके साथ वायुरूप अथवा व्याकृत ऐश्वर्यको प्रकट करता है॥ १०॥ इन प्राप्त होनेवाले समस्त विकारोंके सब ओरसे अवरुद्ध हो जानेपर सिद्ध हुआ ब्रह्मवेत्ता योगी ध्रुव ऐश्वर्य (कूटस्थ-ब्रह्म)-को प्राप्त हो जाता है॥ ११॥ वह सिद्ध योगी शरीरसे निकलकर बिना किसी अवलम्बके आकाशमें दौड़ता है, स्वप्नसदृश मनःकल्पित निरालम्ब भावोंका आश्रय लेकर वहाँ विचरता है। ब्रह्मैश्वर्यसे सम्पन्न हुए उस भूतात्मा योगीको आकाशमें विचरते समय इन्द्र-जैसे लोग भी अपने बहुसंख्यक नेत्रोंद्वारा भी नहीं देख पाते हैं॥ १२-१३॥ जो ब्राह्मणशिरोमणि साधु मनके द्वारा ॐकारका चिन्तन करते हैं, वे ही समस्त कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो उस (ब्रह्मीभूत आकाशचारी) योगीका दर्शन कर पाते हैं॥ १४॥ राजन्! यह ॐकार प्रणवसंज्ञक परब्रह्म है, जो मनीषी ब्राह्मणोंके चिन्तनका विषय है। वह प्रणववाच्य परब्रह्म परमात्मा समस्त प्राणियोंके भीतर उनकी चेतनाके साथ विचरता है, ऐसा जानो॥ १५॥ यह ॐकार समस्त वर्णोंका अभिव्यञ्जक होनेसे महानाद है, पुराण अर्थात् नित्य है, इसका अवलम्बन करनेसे साधककी ब्रह्मके साथ एकता हो जाती है। यह वायुभूत होकर अक्षरभावको प्राप्त हुआ है—ऐसा द्विजाति (ब्राह्मण) कहते हैं॥ १६॥ यह प्रणव रूपरहित होकर भी तेज, जल और अन्न—इन तीन धातुओंसे संयुक्त हो* रूपसे सम्पन्न (अर्थात् वैखरी वाणीके रूपमें प्रकट) होता है। यही जीवात्मारूपसे समस्त प्राणियोंके भीतर विचरता, इच्छानुसार काम करता और समस्त इन्द्रियोंको अपने वशमें रखता है॥ १७॥ पूर्वकालमें इस प्रणवका शास्त्र और आचार्यसे उपदेश पाकर इसके निरन्तर चिन्तनपूर्वक वेदात्मक यज्ञ (योग)-की भावना करते हुए मनीषी पुरुषोंने अपने मनके द्वारा सबको व्याप्त कर लिया था॥ १८॥

* श्रुति कहती है—अन्नमयं हि सोम्य मनः, आपोमयः प्राणः, तेजोमयी वाक् (मन अन्नमय, प्राण जलमय तथा वाक् तेजोमयी है)। इसके सिवा 'मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्' इत्यादि शिक्षाके वचनसे शब्दकी उत्पत्तिमें मन और प्राणका भी सहयोग अपेक्षित है। अतः तेज, जल और अन्न—इन तीन धातुओंके सहयोगसे ही शब्द प्रकट होता है।

ब्राह्मणाः शुचयो दान्ता यशोयुञ्जस्तदन्वयाः।
ब्रह्मलोकं काङ्क्षमाणा वैष्णवं पदमुत्तमम्॥ १९

पदहेतोः क्रियाः सर्वाः कुर्वन्ति विगतज्वराः।
न ह्येते प्रसवादाने भवमिच्छन्ति भारत॥ २०

त्रिभिर्माल्योपहारैश्च प्रतिभावैश्च वै द्विजाः।
यजन्ति परमात्मानं विष्णुं सत्यपराक्रमम्॥ २१

यजनं विक्रमं चैव ब्रह्मपूर्वाः प्रचक्रिरे।
ब्रह्मापि वैष्णवं तेजो वेदोक्तैर्वचनैर्नृप॥ २२

ब्राह्मणैर्ब्रह्मविद्भिश्च ब्रह्मज्ञैर्ब्रह्मवादिभिः।
शुचिभिः कर्मनिर्मुक्तैः सत्यव्रतपरायणैः॥ २३

धातुभिर्मोक्षकाले च महात्मा सम्प्रदृश्यते।
तदेव परमं ब्रह्म वैष्णवं परमाद्भुतम्॥ २४

रसात्मकं तदैश्वर्यं विकारान्ते प्रदृश्यते।
घोररूपा विकारास्ते व्यथयन्ति महात्मनः॥ २५

संछाद्यातीव तोयेन क्षुभ्यमाणो विचेतनः।
ऊर्मिभिश्छाद्यते चैव शीतोष्णाभिर्विकारतः॥ २६

महार्णवगतश्चैव दह्यते न च मज्जते।
मग्नश्चैव महानद्याः सलिले नैव सीदति॥ २७

सीदमानश्च सलिले स शीते पात्यते बलात्।
आसनाच्छादनाच्चैव मुच्यमानो विचेतनः॥ २८

श्वभ्रे प्रपद्यमानश्च तोयेन परिषिच्यते।
शुक्लवर्णेन बहुना स्रोतसा मूर्ध्नि सर्वशः॥ २९

यशःस्वरूप ब्रह्मसे युक्त तथा उस ब्रह्मसे ही प्रकट हुए पवित्र जितेन्द्रिय ब्राह्मण ब्रह्मलोक एवं उत्तम वैष्णवपदकी इच्छा रखकर उस पदकी प्राप्तिके लिये ही निश्चिन्तभावसे सारी क्रियाएँ करते हैं। भारत! ये पुनर्जन्म ग्रहण करनेके लिये नहीं संसारमें आना चाहते हैं, अपितु ज्ञानकी प्राप्तिके लिये ही यहाँ जन्म पानेकी इच्छा करते हैं॥ १९-२०॥ वे द्विजगण (प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें) तीन बार माल्योपहार समर्पण तथा प्रतिभाव (ध्यान)-के द्वारा उन सत्यपराक्रमी परमात्मा श्रीविष्णुका यजन करते हैं॥ २१॥ नरेश्वर! वेदको ही प्रमुख प्रमाण मानते हुए उन ब्रह्मवेत्ता योगियोंने यजन (योगाभ्यास) और विक्रम (योगैश्वर्यलाभ) किया। वेदोक्त* वचनोंके अनुसार ब्रह्मवेत्ता योगी भी वैष्णवतेज (ब्रह्म) ही है॥ २२॥ जो ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मज्ञ, ब्रह्मवादी, कर्मोंके बन्धनसे मुक्त, पवित्र एवं सत्यव्रतपरायण ब्राह्मण हैं, वे ही तेज, जल और अन्नरूप धातुओंसे मोक्षकालमें उस परमात्मस्वरूप महात्माका दर्शन करते हैं। वह परमात्मा ही परब्रह्म है, वही परम अद्भुत वैष्णव तेज है तथा वही रसात्मक (परमानन्दस्वरूप) ऐश्वर्य है। पूर्वोक्त विकारोंका विलय हो जानेपर ही उसका दर्शन होता है। भयंकर रूपवाले जो तामस विकार हैं, वे उस महात्मा योगीको व्यथित करते हैं। वे विकार उसे अत्यन्त जलसे आच्छादित करके घबराहटमें डाल देते हैं। वह क्षुब्ध एवं अचेत हो जाता है। बहुत-सी लहरें उसे आच्छादित कर लेती हैं, उनमेंसे कुछ तो शीतल होती हैं और कुछ उष्ण; इस प्रकार वह विकारग्रस्त हो जाता है॥ २३—२६॥ वह महासागरमें पड़कर दग्ध होने लगता है, किंतु उसमें डूबता नहीं है। कभी-कभी महानदीके जलमें डूब जाता है, परंतु जलके भीतर वह अधिक कष्ट नहीं पाता है और कभी-कभी जब वह जलमें कष्ट पाता है, तब उसे बलपूर्वक अधिक शीतल जलमें गिरा दिया जाता है। आसन और आच्छादनसे भी वञ्चित होकर वह अचेत-सा हो जाता है॥ २७-२८॥ कभी गड्ढेमें गिरकर जलसे भीग जाता है। उसके मस्तकपर चारों ओरसे जलके बहुत-से श्वेत प्रवाह गिरने लगते हैं॥ २९॥

* 'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति (ब्रह्मवेत्ता योगी ब्रह्म होता हुआ ही ब्रह्मको प्राप्त होता है।)' इत्यादि वचन ही ब्रह्मवेत्ताके ब्रह्मरूप होनेमें प्रमाण हैं।

ऊर्ध्वं ज्योतिरवेक्षंश्च शुक्लैः पीतैश्च बाध्यते।
वारिपूर्णैः सुगम्भीरैर्विद्युद्भिरिव भासितैः॥ ३०

एतैर्विकारैः संवृत्तैर्निरुद्धैश्चैव सर्वशः।
ध्रुवमैश्वर्यमासाद्य सिद्धो भवति ब्राह्मणः॥ ३१

रसात्मकं तदैश्वर्यं जिह्वाग्रादभिनिःसृतम्।
सहस्रधारं विततं मेघत्वं समुपागतम्॥ ३२

रसांश्च विविधान् योगात् संसिद्धः सृजते प्रभुः।
धात्वर्थं सर्वभूतानां योगप्राप्तेन हेतुना॥ ३३

तेजसो रूपमैश्वर्यं विकारैः सह वर्धते।
आत्मनो विघ्नजननं स्वस्थो ब्राह्मणकारणे॥ ३४

उग्ररूपैर्विरूपैश्च हन्यते दण्डपाणिभिः।
घोररूपैः सुगम्भीरैः पिङ्गाक्षैर्नरविग्रहैः॥ ३५

नेत्रं समुद्धरन् भीमो जिह्वाग्रं चास्य विन्दति।
नदन्ति युगपन्नादं जृम्भमाणाः पुनः पुनः॥ ३६

पुनरेव तदा भूत्वा बहुरूपास्तदाभवन्।
नृत्यमानाः प्रगायन्ति तर्षयन्तो विशेषतः॥ ३७

स्त्रीभूताश्च ततः सर्वे युञ्जानाश्चावलम्बिरे।
कण्ठेऽस्य बहुरूपत्वाद् विघ्नैश्चैव प्रलोभयन्॥ ३८

मधुरैरभिधानैश्च व्याहरन्ति न भीतवत्।
पतन्ति युगपत् सर्वे पादयोर्मूर्धभिर्युताः॥ ३९

प्रसादं काङ्क्षमाणाश्च योगस्यान्तरविघ्नतः।
बहुप्रकारं कथयन् नृत्यन्ति च तरन्ति च॥ ४०

एतैर्विकारैः संवृत्तैर्निरुद्धैश्चैव सर्वशः।
ध्रुवमैश्वर्यमासाद्य सिद्धो भवति ब्राह्मणः॥ ४१

तदर्चिष इवाग्नेया आदित्यस्येव रश्मयः।
तेजोरूपकमैश्वर्यं जनितास्तेजबिन्दवः॥ ४२

वह ऊपर ज्योतिका दर्शन करता है और जलसे भरे हुए अत्यन्त गम्भीर श्वेत और पीत रंगके बादल जो बिजलियोंसे उद्भासित-से होते रहते हैं, उसे पग-पगपर बाधा देने लगते हैं॥ ३०॥ इन विकारोंके प्राप्त होने और सब प्रकारसे इनका निरोध हो जानेपर अटल ब्रह्मैश्वर्यको पाकर वह ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता योगी) सिद्ध हो जाता है॥ ३१॥ उसके रसास्वादसे अनेक प्रकारका रसात्मक ऐश्वर्य प्रकट होता है, जो सहस्र धाराओंमें फैलकर मेघरूपमें परिणत हो जाता है॥ ३२॥ वह सामर्थ्यशाली सिद्ध योगी योगसे नाना प्रकारके रसोंकी सृष्टि करता है तथा योगप्राप्त-हेतुसे समस्त प्राणियोंके शरीरके उपयोगके लिये विविध ऐश्वर्यको प्रकट करता है॥ ३३॥ ब्रह्मवेत्ता योगीके मोक्षसाधन योगमें उसके स्वस्थ आत्माके समक्ष विघ्न उपस्थित करनेके लिये तैजस रूपैश्वर्य प्रकट होकर अपने विकारोंके साथ वृद्धिको प्राप्त होता है॥ ३४॥ उग्र, घोर एवं विकराल रूपवाले, गम्भीर एवं पिङ्गल-नेत्रोंसे युक्त नराकार प्राणी हाथमें डंडे लेकर उस योगीको पीटने लगते हैं॥ ३५॥ कोई भयानक पुरुष उसके नेत्र उखाड़ने लगता है, कोई उसकी जिह्वाके टुकड़े-टुकड़े कर डालता है तथा बहुत-से विघ्नकारी पुरुष बारम्बार जँभाई लेते हुए एक साथ जोर-जोरसे कोलाहल करने लगते हैं॥ ३६॥ फिर वे तत्काल ही बहुत-से रूप धारण कर लेते हैं और उस योगी पुरुषको विशेष संतुष्ट करनेके लिये नाचने-गाने लगते हैं॥ ३७॥ तत्पश्चात् वे सब-के-सब स्त्रियोंके रूप धारणकर योगीसे संयुक्त हो जाते और उसके गलेमें लिपटने या लटकने लगते हैं। वे अनेक रूप धारण करनेके कारण उसे नाना विघ्नोंद्वारा ही प्रलोभनमें डालते हैं॥ ३८॥ वे स्त्रीरूपधारी विघ्न निडर-से होकर मधुरवाणीमें नाम ले-लेकर उसे पुकारते हैं और सभी एक साथ योगीके चरणोंमें मस्तक रखकर उसे प्रणाम करते हैं॥ ३९॥ वे योगमें विघ्न उपस्थित करनेके लिये ही उस योगीका कृपाप्रसाद चाहते हैं। उससे अनेक प्रकारकी बातें करते और नाचते हैं। ऐसा करके वे कभी-कभी योगीको जीत भी लेते हैं॥ ४०॥ इन विकारोंके प्राप्त होने और इन सबका पूर्णरूपसे निरोध हो जानेपर अटल ऐश्वर्यको पाकर वह ब्रह्मवेत्ता योगी सिद्ध हो जाता है॥ ४१॥ तदनन्तर अग्निकी लपटों और सूर्यकी किरणोंके समान उसे तेजोरूप ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। फिर तो उसके शरीरसे तेजोबिन्दु प्रकट होने लगती हैं॥ ४२॥

ज्योतींषि चैव संवृत्ता आकाशे गुणसंवृताः।
चरन्ति लोके सततं सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम्॥ ४३

चन्द्रसूर्यात्मकं दिव्यं ज्योतिः सघनमुत्तमम्।
एतद् विभ्राजते लोके कालचक्रं ध्रुवं वरम्॥ ४४

अर्धमासाश्च मासाश्च ऋतुसंवत्सराण्यथ।
क्षणा लवा मुहूर्ताश्च कलाः काष्ठास्तथैव च॥ ४५

अहोरात्रप्रमाणं च निमिषोन्मेषणं तथा।
ताराणां गतयश्चैव ग्रहाणां च विशेषतः॥ ४६

अथ पार्थिवमैश्वर्यं विकारग्रहसम्भवम्।
योगयुक्तास्त्वभिग्रस्ताः पात्यन्ते ह्यचलासनात्॥ ४७

अलोभाच्छिद्यते सद्यो वेपमानोऽनुकीर्त्यते।
सीदते वसुधामध्ये भिद्यमानः पुनः पुनः॥ ४८

भूतानां बहुरूपैश्च अन्यैश्च तलवासिभिः।
विषयैर्युज्यते क्षिप्रं संक्षेपात् समवरुद्ध्यते॥ ४९

ततः पार्थिवमैश्वर्यं सेवमानश्च सर्वतः।
मूर्तिमद्भिश्च बहुधा धातुभिः स च हन्यते॥ ५०

शक्तितोमरनिस्त्रिंशैर्गदाभिश्चाप्यनेकधा।
असिभिः पात्यते चैव क्षुरधारैः सहस्रशः॥ ५१

भिद्यते चैव बाणाग्रैः सुतीक्ष्णैर्मर्मभेदिभिः।
एभिर्विकारैर्निर्वृत्तैर्निरुद्धैश्चैव सर्वशः॥ ५२

ध्रुवमैश्वर्यमापन्नः सिद्धो भवति ब्राह्मणः।
ततः पार्थिवमैश्वर्यं निर्मुक्तस्य विकारतः॥ ५३

प्रादुर्भवति संजाते समाधौ प्रलयं गते।
दिव्यं गन्धं समाघ्राय दिव्यार्थांस्ताञ्छृणोति च॥ ५४

दिव्यरूपैश्च पुरुषैश्छिद्यते न च भिद्यते।
गच्छन् सुकृतिनां चान्तः प्रधानात्मा क्षरन्निव॥ ५५

सत्त्वादि गुणोंसे घिरे हुए वे योगी आकाशमें ज्योतिः-स्वरूप होकर लोकमें सदा ही चन्द्रमा और सूर्यके मार्गपर विचरते हैं॥ ४३॥ चन्द्र-सूर्यस्वरूप होकर मेघमण्डलसहित उत्तम दिव्य ज्योति कालचक्र एवं श्रेष्ठ ध्रुवस्थानमें विचरता हुआ वह वही-वही रूप धारण करके इस लोकमें प्रकाशित होता है॥ ४४॥ यह योगी ही पक्ष, मास, ऋतु, संवत्सर, क्षण, लव, मुहूर्त, कला, काष्ठा, दिन-रात्रिका प्रमाण, निमेष, उन्मेष, ताराओं तथा विशेषतः ग्रहोंकी गति इत्यादि सब कुछ हो जाता है॥ ४५-४६॥ तदनन्तर विकारोंको स्वीकार करनेके कारण योगीको पार्थिव ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है, उससे ग्रस्त हुए योगी सिद्धिके अविचल सिंहासनसे नीचे गिरा दिये जाते हैं॥ ४७॥ लोभका त्याग करनेसे वह विघ्नस्वरूप ऐश्वर्य तत्काल छिन्न-भिन्न हो जाता है; विघ्नसे काँपने और डरनेवाला योगी जगत्में निन्दनीय होता है। वह भूमण्डलमें बारम्बार विघ्नोंसे आहत होकर कष्ट पाता रहता है॥ ४८॥ प्राणियोंके बहुत-से रूपों तथा भूतलवासी अन्य विषयोंसे वह शीघ्र ही सम्बन्ध स्थापित कर लेता है तथा उनके द्वारा विक्षेपमें पड़कर उसकी प्रगति रुक जाती है॥ ४९॥ तदनन्तर पार्थिव ऐश्वर्यका सेवन करता हुआ वह योगी पुरुष सब ओरसे मूर्तिमान् पार्थिव धातुओंद्वारा बारम्बार मारा जाता है॥ ५०॥ शक्ति, तोमर, तलवार, गदा तथा छुरेकी-सी धारवाले सहस्रों खड्गोंद्वारा वह अनेकों बार धराशायी किया जाता है॥ ५१॥ अत्यन्त तीखे मर्मभेदी बाणोंके अग्रभागसे विदीर्ण होनेका भी उसे अवसर प्राप्त होता है। इन विकारोंके प्राप्त होने तथा उनका पूर्णतः निरोध हो जानेपर अटल ऐश्वर्य (ब्रह्मभाव)-को प्राप्त हुआ योगी सिद्ध हो जाता है। तत्पश्चात् विकारसे मुक्त हुए योगीके समक्ष पार्थिव ऐश्वर्य प्रकट होता है, जब समाधि लग जाती है और विकार लीन हो जाते हैं, तब वह दिव्य गन्धको सूँघकर दिव्य लोकोंकी बातें भी सुनता है॥ ५२—५४॥ वह शरीर रहनेतक दिव्य पुरुषोंसे भिन्न रहता है और देहपात होनेपर सर्वात्मभावको प्राप्त हो जानेसे वह उन सबसे अभिन्न हो जाता है। अन्तर्जगत्में जाता हुआ वह योगी परिणामको प्राप्त होनेवाले प्रधानकी भाँति पुण्यात्माओंके अन्तःकरणमें भी प्रवेश करता है॥ ५५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्कर-प्रादुर्भावविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

विंशोऽध्यायः

ब्रह्माजीके द्वारा योगधारणपूर्वक की गयी मानसिक सृष्टिका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

ततोऽन्यां धारणां गत्वा मनसा स पितामहः।
ब्रह्मकर्मसमारम्भं निर्मुक्तेनान्तरात्मना॥ १

सर्वाङ्गधारणां कृत्वा मनसा प्रहसन्निव।
ब्रह्मयोगेन च ब्रह्मा सृजते मनसा प्रजाः॥ २

चक्षुषो रूपसम्पन्ना ह्यप्सराः सृजते प्रभुः।
नासिकाग्राच्च गन्धर्वान् सुचित्राम्बरवाससः॥ ३

तुम्बुरुप्रमुखान् सर्वाञ्छतशोऽथ सहस्रशः।
नृत्यवादित्रकुशलान् कुशलान् सामगीतिषु॥ ४

ब्रह्मयोगेन योगज्ञः स्वयम्भूर्भगवान् प्रभुः।
चारुनेत्रां सुकेशान्तां सुभ्रूं चारुनिभाननाम्॥ ५

पद्मेन शतपत्रेण चारुणा सुविराजिताम्।
स्वक्षां शुचिगिरं सेव्यां ब्राह्मीं मूर्तिमतीं श्रियम्॥ ६

ससृजे मनसा ब्रह्मा सम्यक्प्रोक्तेन चेतसा।
भावयोगेन भूतात्मा सर्वप्राणभृतां नृप॥ ७

चक्षुषो रूपसम्पन्नाः सृजन् सोऽप्सरसः प्रभुः।
नासिकाग्राच्च गन्धर्वान् सुवासः सुप्रवादितान्॥ ८

गानप्रभाषं संचक्रे गन्धर्वाणामशेषतः।
अन्येषां चैव विप्राणां गानं ब्रह्मप्रभाषितम्॥ ९

पद्भ्यां सृजति भूतानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च।
नरकिन्नरयक्षांश्च पिशाचोरगराक्षसान्॥ १०

गजान् सिंहांश्च व्याघ्रांश्च मृगांश्चैव सहस्रशः।
तृणजातीश्च बहुधा भावहेतोश्चतुष्पदान्॥ ११

ये तु हस्तान्निखादन्ति कर्मप्राप्तेन हेतुना।
हस्तेभ्यः कर्म ससृजे मन्तव्यं मनसा तथा॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर योगयुक्त पितामह ब्रह्माने मनके द्वारा दूसरी धारणाको प्राप्त होकर विकारमुक्त अन्तःकरणके द्वारा ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाले कर्मका आरम्भ किया॥ १॥ ब्रह्माजीने मनसे सर्वाङ्ग-धारणा करके हँसते हुए-से ब्रह्मयोगसे युक्त हो मानसिक संकल्पके द्वारा प्रजाओंकी सृष्टि की॥ २॥ उन भगवान्ने नेत्रसे रूपवती अप्सराओंको उत्पन्न किया और नासिकाके अग्रभागसे विचित्र वस्त्रधारी गन्धर्वोंकी सृष्टि की॥ ३॥ वे सैकड़ों और सहस्रों गन्धर्व, जिनमें तुम्बुरु आदि प्रधान थे, सब-के-सब नृत्य और वाद्यमें निपुण तथा सामगानमें कुशल थे॥ ४॥ तदनन्तर योगके ज्ञाता एवं सर्वसमर्थ स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माने ब्रह्मयोगके द्वारा दिव्य नेत्रवाली, पवित्र, (द्विजोंके द्वारा) सेवनीय, मूर्तिमती, वेदवाणीस्वरूपा लक्ष्मीको प्रकट किया, जिनके नेत्र बड़े मनोहर थे, केशान्त भाग बहुत ही सुन्दर था, भौंहें भी मनोहर थीं, मुखकी प्रभा कमनीय कान्तिसे प्रकाशित हो रही थी और वे हाथमें परम सुन्दर शतदल कमल लेकर उससे बड़ी शोभा पा रही थीं॥ ५-६॥ नरेश्वर! भूतात्मा ब्रह्माने समस्त प्राणियोंके भावयोग (अन्तःकरणकी वासना)-के अनुसार ईश्वरप्रेरित चित्तके द्वारा मानसिक संकल्पसे ही उनकी रचना की॥ ७॥ उन प्रभुने नेत्रसे सौन्दर्यशालिनी अप्सराओंकी तथा नासिकाके अग्रभागसे सुन्दर वस्त्रधारी एवं वाद्यकुशल गन्धर्वोंकी सृष्टि की॥ ८॥ उन्होंने समस्त गन्धर्वोंके लिये गान्धर्वशास्त्र और अन्यान्य ब्राह्मणोंके लिये सामगानके विधानकी रचना की॥ ९॥ स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंको उन्होंने अपने पैरोंसे उत्पन्न किया, जिनके नाम इस प्रकार हैं—मनुष्य, किन्नर, यक्ष, पिशाच, नाग, राक्षस, हाथी, सिंह, व्याघ्र, सहस्रों प्रकारके मृग (पशु), नाना प्रकारकी तृण-जाति तथा बहुत-से चौपाये—इन सबको उन्होंने उनके पूर्वजन्मकी आन्तरिक वासनाओंके अनुसार उत्पन्न किया॥ १०-११॥ प्राणियोंके पूर्वजन्मके कर्मानुसार प्राप्त हुए कारण (अदृष्ट)-को विचार करके ब्रह्माने पूर्वोक्त चराचर जीवोंकी सृष्टि की तथा ऐसे जीवोंको भी उत्पन्न किया, जो हाथमें लेकर खाते हैं; विधाताने हाथोंसे कर्मकी और मनसे मन्तव्यकी सृष्टि की॥ १२॥

वायुना स विसर्गं च भूतानां सुखमिच्छता।
उपतस्थे तदानन्दं पञ्चेन्द्रियसमाधिना॥ १३

हृदयादसृजद् गावो बाहुभ्यां पक्षिणस्तथा।
अन्यानि चैव सत्त्वानि तैस्तैर्वेषैः पृथग्विधैः॥ १४

ऋषिं त्वङ्गिरसं चैव मुनिं ज्वलिततेजसम्।
ब्रह्मवंशकरं दिव्यं व्यतिषिक्तषडिन्द्रियम्॥ १५

भ्रुवोऽन्तरादजनयद् योगाद् योगेश्वरः प्रभुः।
ब्रह्मवंशकरं दिव्यं भृगुं परमधार्मिकम्॥ १६

ललाटमध्यादसृजन्नारदं प्रियविग्रहम्।
सनत्कुमारं मूर्ध्नश्च महायोगी पितामहः॥ १७

अभिषिक्तं तु सोमं च यौवराज्ये पितामहः।
ब्राह्मणानां च राजानं शाश्वतं रजनीश्वरम्॥ १८

तपसा महता युक्तो ग्रहैः सह निशाकरः।
चचार नभसो मध्ये प्रभाभिर्भासयञ्जगत्॥ १९

स गात्रैर्भगवान् योगान्मनसा सिद्धिमागतः।
ससृजे सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥ २०

तत्र स्थानानि भूतानां योगांश्चैव पृथग्विधान्।
व्यधत्त शतशो ब्रह्मा सर्वभूतपितामहः॥ २१

एष ब्रह्ममयो यज्ञो योगः सांख्यश्च तत्त्वतः।
विज्ञानं च स्वभावश्च क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च॥ २२

एकत्वं च पृथक्त्वं च सम्भवो निधनं तथा।
कालः कालक्षयश्चैव ज्ञेयो विज्ञानमेव च॥ २३

प्राणियोंका सुख चाहते हुए ब्रह्माजीने प्राण आदि रूपसे उनके लिये प्राणन आदि विविध कार्यकी सृष्टि की तथा पाँचों इन्द्रियोंके निरोधद्वारा परमानन्दमय परमेश्वरका साक्षात्कार करके उनका सामीप्य प्राप्त किया॥ १३॥ उन्होंने हृदयसे गौओंकी, भुजाओंसे पक्षियोंकी तथा भिन्न-भिन्न वेशोंसे दूसरे-दूसरे जन्तुओंकी रचना की॥ १४॥ प्रज्वलित तेजवाले मनसहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंको अपने अधीन रखनेवाले, ब्रह्मवंश-प्रवर्तक, दिव्य ऋषि-मुनिवर अङ्गिराको योगेश्वर भगवान् ब्रह्माने योगबलके द्वारा अपनी दोनों भौंहोंके बीचसे प्रकट किया। ब्राह्मणवंशको चलानेवाले परम धर्मात्मा दिव्य ऋषि भृगुको ललाटके मध्यभागसे प्रकट किया तथा उन महायोगी पितामहने कलहप्रिय नारद एवं सुन्दर शरीरवाले सनत्कुमारको अपने मस्तकसे प्रकट किया॥ १५—१७॥ पितामहने उन सोमकी भी सृष्टि की, जो युवराज-पदपर अभिषिक्त हुए। वे रजनीपति चन्द्रमा ब्राह्मणोंके सनातन राजा हैं॥ १८॥ महान् तपसे युक्त चन्द्रमा अपनी प्रभाओंसे जगत्को प्रकाशित करते हुए दूसरे ग्रहोंके साथ आकाशमण्डलमें विचरते हैं॥ १९॥ योगसे सिद्धिको प्राप्त हुए भगवान् ब्रह्माने मानसिक संकल्पपूर्वक अपने भिन्न-भिन्न अङ्गोंद्वारा समस्त चराचर प्राणियोंकी सृष्टि की॥ २०॥ समस्त भूतोंके पितामह ब्रह्माजीने उन भूतोंके लिये बहुत-से स्थानों तथा उनके योगक्षेमके लिये विभिन्न प्रकारके सैकड़ों उपायोंका निर्माण किया है॥ २१॥ यह ब्रह्ममय यज्ञ (ज्ञानयज्ञ) कहा गया; यही योग और वास्तविक सांख्य है। विज्ञान, स्वभाव, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, एकत्व, नानात्व, जन्म और मृत्यु, काल, जहाँ कालका भी क्षय हो जाता है वह ज्ञान तथा विज्ञान (आत्मानुभव) भी यही जानने योग्य है॥ २२-२३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे विंशोऽध्यायः॥ २०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्कर-प्रादुर्भावविषयक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

एकविंशोऽध्यायः

क्षत्रयुगके प्रसंगमें ज्ञानसिद्ध ब्राह्मणोंका वर्णन, प्रजापति दक्षद्वारा प्राणियों एवं चारों वर्णोंकी सृष्टि तथा उनका अपने पुत्रोंको धात्रीका अन्त जाननेके लिये आदेश

जनमेजय उवाच

श्रुतं ब्रह्मयुगं ब्रह्मन् युगानां प्रथमं युगम्।
क्षत्रस्यापि युगं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो॥ १
ससंक्षेपं सविस्तारं नियमैर्बहुभिश्चितम्।
उपायज्ञैश्च कथितं क्रतुभिश्चैव शोभितम्॥ २

वैशम्पायन उवाच

एतत्ते कथयिष्यामि यज्ञकर्मभिरर्चितम्।
दानधर्मैश्च विविधैः प्रजाभिरुपशोभितम्॥ ३

तेऽङ्गुष्ठमात्रा मुनय आदत्ताः सूर्यरश्मिभिः।
मोक्षप्राप्तेन विधिना निराबाधेन कर्मणा॥ ४

प्रवृत्ते चाप्रवृत्ते च नित्यं ब्रह्मपरायणाः।
परायणस्य संगम्य ब्रह्मणस्तु महीपते॥ ५

श्रीवृताः पावनाश्चैव ब्राह्मणाश्च महीपते।
चरितब्रह्मचर्याश्च ब्रह्मज्ञानावबोधिताः॥ ६

पूर्णे युगसहस्रान्ते प्रभावे प्रलयं गताः।
ब्राह्मणा वृतसम्पन्ना ज्ञानसिद्धाः समाहिताः॥ ७

व्यतिरिक्तेन्द्रियो विष्णुर्योगात्मा ब्रह्मसम्भवः।
दक्षः प्रजापतिर्भूत्वा सृजते विपुलाः प्रजाः॥ ८

अक्षराद् ब्राह्मणाः सौम्याः क्षरात् क्षत्रियबान्धवाः।
वैश्या विकारतश्चैव शूद्रा धूमविकारतः॥ ९

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन्! मैंने युगोंमें प्रथम युगका, जिसे ब्रह्मयुग (या ब्राह्मणयुग) कहते हैं, वर्णन सुन लिया। प्रभो! अब मैं उपाय जाननेवाले पुरुषोंद्वारा कथित, यज्ञोंसे सुशोभित तथा बहुसंख्यक नियमोंसे सम्पन्न क्षत्रयुगका वर्णन संक्षेप और विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ॥ १-२॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! इस क्षत्रिय-युगका मैं तुमसे वर्णन करूँगा। यह युग यज्ञकर्मोंसे पूजित, भाँति-भाँतिके दानधर्मोंसे सम्मानित तथा बहुसंख्यक प्रजाओंसे सुशोभित होता है॥ ३॥ जो अङ्गुष्ठमात्र मुनि हैं अर्थात् जिनका कद बहुत छोटा है, जो मोक्षके निकट पहुँचानेवाली विधि एवं निर्विघ्न कर्मके प्रभावसे सूर्यकी किरणोंद्वारा गृहीत हुए हैं अर्थात् सूर्यमण्डलका भेदन करके ब्रह्मलोकमें पहुँच गये हैं। यज्ञ आदि प्रवृत्ति एवं शम आदि निवृत्ति कर्ममें तत्पर रहते हुए नित्य ब्रह्म-परायण रहे हैं तथा पृथ्वीनाथ! जो सबके परम आश्रयभूत ब्रह्मसे मिलकर—परमात्माकी प्रसन्नताका उद्देश्य लेकर वेदोक्त कर्ममें सदा तत्पर रहते आये हैं, जिन्होंने ब्रह्मचर्यका पालन किया है, जो ब्रह्मज्ञानमयी ज्योतिसे प्रकाशित हो श्रीसम्पन्न और पवित्र हो गये हैं तथा जो पूर्वकल्पमें सहस्र चतुर्युग पूर्ण होनेतक ब्रह्मलोकमें रहकर उसके अन्तमें वहाँ प्रलयको प्राप्त हुए होते हैं, वे ही भावी कल्पमें एकाग्रचित्त, सदाचारसम्पन्न तथा ज्ञानसिद्ध ब्राह्मण होते हैं॥ ४—७॥ उन्हीं ब्राह्मणोंमेंसे एक ब्रह्मपुत्र प्रजापति दक्ष हुए, जो इन्द्रियों और उनके विषयोंसे असङ्ग रहकर योगयुक्त चित्तसे बहुसंख्यक प्रजाओंकी सृष्टि करने लगे। भगवान् विष्णुको अपना आत्मा माननेके कारण वे विष्णुस्वरूप कहे गये हैं॥ ८॥ अक्षर (शुद्ध सत्त्वमय निष्काम धर्म, जिसका वर्ण सुधाके समान श्वेत है)-से सौम्य स्वभाववाले ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति हुई। क्षर (सत्त्व-रजोमय-मिश्र धर्म, जिसका वर्ण लाल है)-से क्षत्रिय बन्धु प्रकट हुए। विकार (रजोमय सकाम धर्म, जिसका वर्ण हल्दीके समान पीला है)-से वैश्य उत्पन्न हुए तथा धूमविकार (तमोमय धर्म, जो धूमके समान काला है)-से शूद्रोंका जन्म हुआ॥ ९॥

श्वेतलोहितकैर्वर्णैः पीतैर्नीलैश्च ब्राह्मणाः।
अभिनिर्वर्तिता वर्णाश्चिन्तयानेन विष्णुना॥ १०

ततो वर्णत्वमापन्नाः प्रजा लोके चतुर्विधाः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव महीपते॥ ११

एकलिङ्गाः पृथग्धर्मा द्विपदाः परमाद्भुताः।
यातनायाभिसम्पन्ना गतिज्ञाः सर्वकर्मसु॥ १२

त्रयाणां वर्णजातानां वेदप्रोक्ताः क्रियाः स्मृताः।
तेन वो ब्रह्मयोगेन वैष्णवेन महीपते॥ १३

प्रज्ञया तेजसा योगात् तस्मात् प्राचेतसः प्रभुः।
विष्णुरेव महायोगी कर्मणामन्तरं गतः॥ १४

ततो निर्माणसम्भूताः शूद्राः कर्मविवर्जिताः।
तस्मान्नार्हन्ति संस्कारं न ह्यत्र ब्रह्म विद्यते॥ १५

यथाग्नौ धूमसंघातो ह्यरण्या मथ्यमानया।
प्रादुर्भूतो विसर्पन् वै नोपयुञ्जन्ति कर्मणि॥ १६

एवं शूद्रा विसर्पन्तो भुवि कार्त्स्न्येन जन्मना।
नासंस्कृतेन धर्मेण वेदप्रोक्तेन कर्मणा॥ १७

ततोऽन्ये दक्षपुत्राश्च सम्भूता ब्रह्मयोनयः।
बलवन्तो महोत्साहा महावीर्या महौजसः॥ १८

पित्रा प्रोक्ता महात्मानो दक्षिणा यज्ञकर्मणा।
अन्तमिच्छाम्यहं श्रोतुं धात्र्याः पुत्रा बलो ह्यहम्॥ १९

ततो विधास्ये तत्त्वज्ञाः प्रजानां विपुलं बलम्।
विपुलत्वाद्धि क्षेत्राणां ममापि विपुलाः प्रजाः॥ २०

इस प्रकार सृष्टिके विषयोंमें विचार करनेवाले विष्णुस्वरूप प्रजापतिने श्वेत, लाल, पीले और नील वर्णवाले विभिन्न धर्मोंसे ब्राह्मण आदि वर्णोंकी सृष्टि की॥ १०॥ इस तरह विभिन्न वर्णको प्राप्त हुई प्रजा इस लोकमें चार भागोंमें विभक्त हो गयी। पृथ्वीनाथ! वे चार वर्णोंके लोग क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहलाये॥ ११॥ इन सबकी आकृति तो एक-सी है, परंतु धर्म पृथक्-पृथक् हैं। ये दो पैरवाले जीव (मनुष्य) बड़े ही अद्भुत हैं। कर्मफलके भोगके लिये ये पृथक्-पृथक् वर्णसे सम्पन्न हुए हैं। इन्हें समस्त कर्मोंकी गतिका ज्ञान (उनके शुभाशुभ फलोंपर विश्वास) होता है॥ १२॥ राजन्! ब्राह्मण आदि तीन वर्णोंमें उत्पन्न हुए लोगोंकी ही सारी क्रियाएँ वेदोक्त विधिसे सम्पन्न होने योग्य बतायी गयी हैं। इस कारण तुम्हारे जो तीन वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं, उन्हींको भगवान् विष्णुकी कृपासे वेदाध्ययनका अधिकार सुलभ है॥ १३॥ प्रज्ञा और तेजके योगसे युक्त हुए वे सामर्थ्यशाली महायोगी प्राचेतस दक्ष नामक विष्णु ही 'प्रजापति' का अधिकार देनेवाले कर्मों (सृष्टि आदि)-में तत्पर रहते हैं॥ १४॥ अतः शिल्पकर्म एवं त्रैवर्णिकोंकी सेवाके लिये उत्पन्न शूद्र वैदिक कर्मके अधिकारसे रहित हैं। इसीलिये वे उपनयन आदिके संस्कारोंके योग्य नहीं हैं; क्योंकि उन्हें वेदाध्ययनका अधिकार नहीं है॥ १५॥ जैसे अरणीका मन्थन करनेसे प्रकट हुई अग्निमें धूमका समुदाय उत्पन्न होकर बहुत दूरतक फैल जाता है तो भी अग्निहोत्री (यज्ञ करनेवाले) द्विज यज्ञकर्ममें उस धूमका उपयोग नहीं करते हैं, इसी प्रकार पृथ्वीपर जन्म लेकर पूर्णतः सब ओर फैले हुए शूद्र संस्कारहीन होनेके कारण वेदोक्त धर्म-कर्मके उपयोगमें आने योग्य नहीं हैं॥ १६-१७॥ तदनन्तर दक्षके और भी बहुत-से पुत्र, जो वेदके स्थान-भूत ब्राह्मण थे, वे बलवान्, महान् उत्साहसे सम्पन्न, महान् पराक्रमी तथा महान् तेजस्वी थे॥ १८॥ उन सामर्थ्यशाली महात्मा पुत्रोंसे यज्ञकर्मपरायण पिता दक्षने कहा—'पुत्रो! मैं तुम्हारे मुखसे धात्री (पृथ्वी)-का अन्त सुनना चाहता हूँ; क्योंकि मैं बलवान् हूँ (अतः धात्रीका अन्त जानता हूँ)॥ १९॥ तत्त्वज्ञ पुत्रो! तुमसे धात्रीका अन्त सुनकर तुम्हारे बलका ज्ञान हो जानेके पश्चात् मैं प्रजाओंके लिये विपुल बलकी सृष्टि करूँगा, क्योंकि क्षेत्रों (शरीरों)-की विशालतासे ही मेरी प्रजा भी अधिक बलशालिनी हो सकती है'॥ २०॥

न तेषां दर्शयद् देवी चक्षुषा रूपमात्मनः।
प्रजापतिसुतानां वै विपुलासारमिच्छताम्॥ २१

विशाल पृथ्वीका अन्त जाननेकी इच्छावाले उन प्रजापति-पुत्रोंको पृथ्वीदेवीने अपने आधिदैविक रूपका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कराया॥ २१॥

आत्मनो भावनिर्वृत्ते भावे कृतयुगे तदा।
जनित्री सर्वभूतानामण्डजानुद्भिजांस्तथा॥ २२

संवेदजननी धात्री चेति मात्रा प्रचोदिता।
अणुतां तनुजां चैव जन्तूनां कर्मभोगिनाम्॥ २३

तदनन्तर जब स्वभावसिद्ध कृतयुग (विशुद्ध सत्त्वमय भाव) आया, तब (उन प्रजापति-पुत्रोंके अपने अभिप्रायकी सिद्धि हो जानेपर) प्रमाता चेतन (परमात्मा विष्णु)-से प्रेरित हो धात्री, जो अपने सच्चिदानन्दस्वरूपसे सम्यग् ज्ञानकी जननी है, समस्त प्राणियोंकी जन्मदायिनी हुई। उसीने अण्डजों और स्वेदजोंको भी उत्पन्न किया तथा उसीने कर्मफल-भोग करनेवाले प्राणियोंके शरीरोंको लघु, सूक्ष्म एवं विशाल रूप प्रदान किया॥ २२-२३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्कर-प्रादुर्भावविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

दक्षका अपने आधे अङ्गसे स्त्रीरूप होकर बहुत-सी कन्याओंको उत्पन्न करना और उनका धर्म, कश्यप एवं सोमको दान कर देना, कश्यप और दक्षकन्याओंकी संतानोंका वर्णन तथा देवलोकमें उत्पन्न होनेवालोंकी योग्यता

जनमेजय उवाच

साध्वहं श्रोतुमिच्छामि त्रेतायां ब्राह्मणोत्तम।
यज्ज्ञात्वा सर्वविद्यानां परं पश्येयमव्ययम्॥ १

जनमेजय बोले—ब्राह्मणशिरोमणे! त्रेतायुगके प्रवृत्ति-रूप (यज्ञादि) धर्ममें जो समीचीन तत्त्व है, उसे मैं सुनना चाहता हूँ, जिसे जानकर (आचरणमें लाकर) मैं समस्त विद्याओंके परम लक्ष्य अविनाशी ब्रह्मका साक्षात्कार कर सकूँ॥ १॥

वैशम्पायन उवाच

दक्षस्तु पुनरालम्ब्य स्त्रीभावं पुरुषोत्तमः।
योगाद् योगेश्वरात्मानं निषण्णो गिरिमूर्धनि॥ २

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! पुरुषोत्तम दक्ष योगबलसे स्त्रीशरीरको प्राप्त हो गये। वह स्त्रीशरीर उन योगेश्वर दक्षका अपना ही स्वरूप था। उस स्वरूपका अवलम्बन करके वे एक पर्वतके शिखरपर बैठे थे॥ २॥

सुजानुः पीनजघना सुभ्रूः पद्मनिभानना।
रक्तान्तनयना कान्ता सर्वभूतमनोरमा॥ ३

उस स्त्रीके घुटने सुन्दर, जघनप्रदेश स्थूल, भौंहें मनोहर, मुख प्रफुल्ल कमलके समान कान्तिमान् तथा दोनों नेत्रोंके कोये लाल थे। वह समस्त भूतोंके मनको मोहनेवाली नारी कमनीय कान्तिसे युक्त थी॥ ३॥

दक्षः प्राचेतसस्तस्यां कन्यायां जनयत् प्रभुः।
देहार्धयोगविधिना कन्याः पद्मनिभाननाः॥ ४

भगवान् प्राचेतस दक्षने देहार्ध-संयोगकी विधिसे उस अर्धाङ्गजनित नारीके गर्भसे प्रफुल्ल कमलके समान मनोहर मुखवाली बहुत-सी कन्याओंको उत्पन्न किया॥ ४॥

दक्षः पुरुषरूपेण स्त्रीरूपमपहाय वै।
दर्शने सर्वभूतानां कान्तः कान्ततरोऽभवत्॥ ५

ताः कन्याः प्रददौ दक्षः स्वयं प्राचेतसः प्रभुः।
ब्रह्मदेयेन विधिना ब्रह्मप्राप्तेन भारत॥ ६

प्रददौ दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
सप्तविंशति सोमाय पत्नीहेतोः समाहितः॥ ७

दक्षो दत्त्वाथ ताः कन्या ब्रह्मक्षेत्रं प्रपद्य च।
ब्रह्मणाध्युषितं पुण्यं समाहितमना मुनिः॥ ८

तप्यमानो मृगैः सार्धं चचार वसुधां नृप।
तृणमूलफलैर्वृद्धो वृद्धश्च तपसासकृत्॥ ९

मृगास्तु तस्य मोदन्ति फलं मोदन्ति ब्राह्मणाः।
दीक्षिताः पुण्यकर्माणस्तपसा दग्धकिल्बिषाः॥ १०

संग्रामकाले कालज्ञः शरीरादिपतिर्मुनिः।
कर्मयज्ञकृतां तात सिद्धिं पश्यति लक्षणात्॥ ११

दानमानप्रवीराश्च निरुद्वेगा निरामिषाः।
मृगैः सह जरां यान्ति सपत्नीकाः सुपुत्रिणः॥ १२

ब्राह्मणाः स्तोत्रसंसिद्धा जनित्रे प्रथमे पदे।
ब्रह्मणाध्युषितत्वाच्च ब्रह्मक्षेत्रमिहोच्यते॥ १३

तत्पश्चात् उस स्त्रीरूपका परित्याग करके दक्ष पुनः पुरुषरूपसे स्थित हो गये। उस समय वे समस्त प्राणियोंकी दृष्टिमें परम कान्तिमान् एवं कमनीय प्रतीत होते थे॥ ५॥ भारत! इसके बाद स्वयं प्राचेतस भगवान् दक्षने उन कन्याओंका वेदोक्त ब्राह्मविधिसे विवाह कर दिया॥ ६॥ उन्होंने एकाग्रचित होकर धर्मको दस, कश्यपको तेरह और सोमको सत्ताईस कन्याएँ इसलिये दीं कि वे इन्हें अपनी धर्मपत्नी बना लें॥ ७॥ उन कन्याओंका दान करनेके पश्चात् दक्ष मुनि ब्रह्माजीके क्षेत्र प्रयागमें आये, जहाँ ब्रह्माजी पहले निवास करते थे और इसीलिये जो परम पुण्यदायक तीर्थ हो गया था। वहाँ आकर वे मनको एकाग्र करके परमात्माका चिन्तन करने लगे॥ ८॥ नरेश्वर! तदनन्तर दक्ष तपस्यामें संलग्न हो मृगोंके साथ इस वसुधापर विचरने लगे। वे तृण और फल-मूलसे ही अपने शरीरका पोषण करते थे। उनके तपकी निरन्तर वृद्धि हो रही थी॥ ९॥ उनकी तपस्याके प्रभावसे मृग बड़े प्रसन्न थे (क्योंकि उस तपसे सर्वत्र अहिंसाभावका प्रसार हो रहा था)। यज्ञमें दीक्षित हो पुण्य कर्म करनेवाले तथा तपस्यासे अपने पापोंको दग्ध कर देनेवाले ब्राह्मण दक्षके उस अहिंसाप्रधान तपका वैर-त्यागरूप फल प्रत्यक्ष देखकर आनन्दमग्न रहते थे॥ १०॥ योगीको अपने चित्तपर विजय प्राप्त करनेके लिये जो संग्राम (तत्परतापूर्ण साधन) करना पड़ता है, उसका अवसर आनेपर कालगतिके ज्ञाता तथा शरीर, इन्द्रिय आदिपर शासन करनेवाले मुनिवर दक्षको कर्मयज्ञजनित सिद्धि निकट दिखायी देने लगी; क्योंकि उस सिद्धिका सूचक लक्षण प्रकट हो रहा था॥ ११॥ जो दूसरोंको दान और मान देनेमें प्रमुख वीर हैं, जिनका उद्वेग सर्वथा शान्त हो गया है, जो आमिष आदि भोगोंका परित्याग कर चुके हैं तथा जो श्रेष्ठ पुत्रोंके पिता हैं, ऐसे गृहस्थ द्विज अपनी पत्नीके साथ उस वनमें जाकर मृगोंके साथ वृद्धावस्थाको प्राप्त होते थे॥ १२॥ वेदाध्ययनसे सिद्ध हुए ब्राह्मण वहाँ सबके उत्पादक प्रथम पद—परब्रह्म परमात्मामें प्रतिष्ठित होते थे और ब्रह्माजी भी उस स्थानमें निवास कर चुके थे; इसीलिये यहाँ प्रयागको ब्रह्मक्षेत्र कहते हैं (आध्यात्मिक दृष्टिसे ब्रह्मकी उपलब्धिका स्थान होनेके कारण यह शरीर ही ब्रह्मक्षेत्र है)॥ १३॥

यतिभिः कर्मभिर्मुक्तैर्जितक्रोधैर्जितेन्द्रियैः।
चरद्भिर्वसुधां विप्रैरकिंचनपथैषिभिः॥ १४

या प्रजा सर्वमारूढा मानसी ब्रह्मचारिणी।
सैवैषा व्यक्तिमापन्ना स्वभावदुरतिक्रमा॥ १५

अव्यक्ता व्यक्तमापन्ना स्वभावाद् दुरतिक्रमा।
व्यक्ताव्यक्तगतिश्चैषा कालधर्मान्महीपते॥ १६

स्थावरा जङ्गमाश्चैव स्थूलसूक्ष्माश्च भारत।
कालयोगेन योगज्ञा भवन्ति न भवन्ति च॥ १७

एताश्चैताः प्रजाः सर्वा दक्षकन्यासु जज्ञिरे।
कश्यपेनाव्ययेनेह संयुक्ताः कालधर्मणा॥ १८

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः।
नागाश्चानेकशिरसः साध्या वै पन्नगास्तथा॥ १९

गन्धर्वाः किन्नरा यक्षाः सुपर्णाश्च तथापरे।
गरुत्मान् सह यक्षैश्च किन्नराश्च सुवाससः॥ २०

गावः पशुगणैः सार्धं नराश्च वसुधाधिप।
चराचराश्च वसुधाधर्तारश्च धराधराः॥ २१

गजाः सिंहाश्च व्याघ्राश्च हयाः पक्षधरास्तथा।
खड्गा विषाणिनश्चैव वृषभाश्च मृगास्तथा॥ २२

चतुर्विषाणा नागेन्द्राः पद्माभा वर्णतः शुभाः।
सर्वलक्षणसम्पन्नाः प्राणिनः कामरूपिणः॥ २३

तेषां रूपैस्तथा गात्रैस्तैः शीलैस्तैः पराक्रमैः।
मुनयः पुनरुद्भूता धर्मक्षेत्रे सनातने॥ २४

क्षेत्रज्ञा मानसे लोके धर्मिणो वेदगोचराः।
यत्रोद्भूताः सुराः सर्वे दिवि लोके प्रतिष्ठिताः॥ २५

जो कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हैं, क्रोधपर विजय पा चुके हैं और इन्द्रियोंको वशमें कर चुके हैं, वे अकिंचन (परिग्रहशून्य) पथपर चलनेकी इच्छा-वाले और भूतलपर विचरते रहनेवाले संन्यासी ब्राह्मण इस क्षेत्र (प्रयाग अथवा शरीर)-को ब्रह्मक्षेत्र कहते हैं॥ १४॥ जो प्रजा हृदयाकाशमें स्थित सर्वस्वरूप ब्रह्ममें आरूढ़ थी, ब्रह्ममें ही विचरनेके कारण ब्रह्मचारिणी कहलाती थी और मानसिक संकल्पमें स्थित होनेसे मानसी कही जाती थी, वही यह स्वभाव (संस्कार या प्रारब्ध)-से दुर्लङ्घ्य होकर अव्यक्तावस्थासे व्यक्तावस्थाको प्राप्त हुई है॥ १५॥ जो अव्यक्त थी, वही स्वभावसे दुर्लङ्घ्य होकर व्यक्तावस्थाको प्राप्त हो गयी। राजन्! कालधर्मसे यह सारी प्रजा व्यक्त और अव्यक्तरूपमें परिणत होती रहती है॥ १६॥ भारत! कालयोगसे स्थावर-जंगम, स्थूल और सूक्ष्म सभी प्राणी योगज्ञ होते हैं और नहीं भी होते हैं॥ १७॥ ये सारी प्रजाएँ महर्षि कश्यपके द्वारा दक्षकन्याओंके गर्भसे उत्पन्न हुई हैं। ये सब-की-सब कालरूप धर्मवाले अक्षय स्वभावसे संयुक्त हैं॥ १८॥ राजन्! आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, अनेक सिरवाले नाग, साध्य, सर्प, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, सुपर्ण, गरुड़, सुन्दर वस्त्रधारी किन्नर, अन्यान्य पशुगणोंके साथ गौएँ, मनुष्य, चराचर प्राणी, पृथ्वीको धारण करनेवाले पर्वत, हाथी, सिंह, व्याघ्र, पंखधारी घोड़े, गैंडे, सींगवाले बैल और मृग, चार दाँतवाले तथा कमलकी-सी कान्तिवाले शुभलक्षण गजराज, समस्त लक्षणोंसे सम्पन्न और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले अन्यान्य प्राणी—इन सबकी उत्पत्ति महर्षि कश्यप और उनकी पत्नी दक्षकन्याओंसे हुई है॥ १९—२३॥ धर्मकी सनातन प्रसवभूमि भारतवर्षमें जो मुनि पुनः उत्पन्न हुए, वे पूर्व-कल्पके ऋषि-मुनियोंके रूप, शरीर, शील और पराक्रमसे सम्पन्न हुए॥ २४॥ वेदोक्त मार्गपर चलनेवाले धर्मात्मा क्षेत्रज्ञ (आत्मनिष्ठ)पुरुष मानस लोक (मनः-कल्पित बाह्य या आभ्यन्तर जगत्)-में देवतारूपसे प्रकट हुए होते हैं और वे सब-के-सब दिव्य-लोकमें प्रतिष्ठित हो जाते हैं॥ २५॥

ये चान्ये तपसा सिद्धा गृहस्था मनुजाधिप।
ब्रह्मचर्येण संसिद्धाः परिचर्यां गता गुरोः॥ २६

ये च योगगतिं प्राप्ताः सिद्धिहेतोर्महीपते।
क्लेशाधिकैः कर्मजन्यैर्वृत्तिं लप्स्यन्ति वै द्विजाः॥ २७

शिलोञ्छवृत्तयः ख्याताः सपत्नीका दृढव्रताः।
सर्वे त्वेते दिविचरा भवन्ति चरितव्रताः॥ २८

नरेश्वर! जो दूसरे गृहस्थ तपस्यासे सिद्ध होते हैं अथवा जो ब्रह्मचारी गुरुकी सेवा करके ब्रह्मचर्य-पालनके द्वारा सिद्धिलाभ करते हैं और पृथ्वीनाथ! जो सिद्धिके लिये योगमार्गको अपनाये हुए हैं, जो द्विज सत्कर्मके लिये अधिक क्लेश सहन करके जीविका पाते हैं, जो खेतोंमें बाल बीनकर या बाजार उठ जानेपर वहाँ गिरे हुए अन्नके दाने चुनकर जीवन-निर्वाह करनेके लिये विख्यात हैं और पत्नीके साथ रहकर दृढ़तापूर्वक धर्मके पालनमें लगे रहते हैं; इन सबने उत्तम व्रतका पालन किया है; अतः ये सब-के-सब आकाशचारी देवता होते हैं॥ २६—२८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्कर-प्रादुर्भावविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

ब्रह्माजीके महायज्ञका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

पितामहं पुरस्कृत्य मेरुपृष्ठे समाहिताः।
जटाजिनधरा विप्रास्त्यक्तक्रोधा जितेन्द्रियाः॥ १

पर्वतान्तरसंसिद्धे बहुपादपसंवृते।
धातुसंरञ्जितशिले समे निस्तृणकण्टके॥ २

त्रयाणां ब्रह्मवेदानां पञ्चस्वरविराजिते।
मन्त्रयज्ञपरा नित्यं नित्यं व्रतहिते रताः॥ ३

एकमेवाग्निमाधाय सर्वे ब्राह्मणपुङ्गवाः।
बिभिदुर्मन्त्रविषयैः सुसमाहितमानसाः॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! मेरुपर्वतकी घाटीपर पितामह ब्रह्माजीको आगे करके कुछ एकाग्रचित्त ब्राह्मण विराजमान हुए, जो जटा और मृगचर्म धारण किये हुए थे। उन्होंने क्रोधको त्याग दिया था और इन्द्रियोंपर विजय पा ली थी॥ १॥ पर्वतकी वह घाटी दूसरे पर्वतोंसे घिरी हुई थी। वहाँ बहुत-से वृक्ष शोभा दे रहे थे। वहाँकी शिलाएँ अनेक प्रकारकी धातुओंसे रँगी हुई थीं। उस समतल प्रदेशमें तृण और कण्टकोंका सर्वथा अभाव था। ब्रह्मका ज्ञान करानेवाले तीनों वेदोंके पाँच स्वरों* से उस पर्वतशिखरकी बड़ी शोभा हो रही थी। वहाँ बैठे हुए वे ब्राह्मण मन्त्रजपरूपी यज्ञमें सदा तत्पर रहनेवाले थे। व्रतके पालन और परहितके साधनमें उनकी सदा ही प्रवृत्ति थी॥ २-३॥ वे समस्त ब्राह्मणशिरोमणि वहाँ एक ही अग्निकी स्थापना करके एकाग्रचित्त हो उसकी उपासना करते थे। उन्होंने मन्त्रप्रतिपाद्य विषयोंकी दृष्टिसे उस अग्निके अनेक भेद किये॥ ४॥

* वेदमन्त्रोंके उच्चारणकी विधिमें स्वरप्रदर्शनके पाँच प्रकार ही यहाँ पाँच स्वर कहे गये हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, एकश्रुति और प्रचय।

त्रिधा प्रणीतो ज्वलनो मुनिभिर्वेदपारगैः।
अतस्ते तत्त्वमापन्ना यदेकस्त्रिविधः कृतः॥ ५

एक एव महानग्निर्हविषा सम्प्रवर्तते।
स्वधाकारेण धर्मज्ञ मन्त्राणां कार्यसिद्धये॥ ६

स्वयं च दक्षः सम्प्राप्तो भगवान् भूतसत्कृतः।
ब्रह्मा ब्राह्मणनिर्माता सर्वभूतपितामहः॥ ७

दण्डी चर्मी शरी खड्गी शिखी पद्मनिभाननः।
अभवन्यस्तसंतापो जितक्रोधो जितेन्द्रियः॥ ८

यजते पुष्करे ब्रह्मा मेधया सह संगतः।
इन्द्रप्रोक्तानि सामानि गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः॥ ९

घृतं क्षीरं यवो व्रीहिः सर्वं परमकं हविः।
वेदप्रोक्तं मखे न्यस्तं कल्पितं ब्रह्मणः पदे॥ १०

निर्मथ्यारणिमाग्नेयीं शमीगर्भसमुत्थिताम्।
स ब्रह्मा प्रथमं तस्मिन्नग्निमयं प्रवर्तयत्॥ ११

न ह्यल्पं विहितं द्रव्यं यथाग्निर्यज्ञकर्मणि।
प्रवर्तयेद् विभागैर्वा हुतद्रव्यमयं बलम्॥ १२

फलानि तैः प्रयुक्तानि हवींषि विततेऽध्वरे।
प्रयुञ्जते प्रयोगज्ञा मुनयो ब्रह्मवादिनः॥ १३

षण्मासांश्चतुरो वेदान् सम्बभाषे बृहस्पतिः।
ब्रह्मणो वितते यज्ञे परया ब्रह्मसम्पदा॥ १४

शिक्षाक्षरसमेताया मधुरायाः समन्ततः।
सानुस्वरितरामायाः सरस्वत्याः प्रभाषते॥ १५

तेन ब्राह्मणशब्देन ब्रह्मप्रोक्तेन भारत।
विभाति स मखो व्यक्तं ब्रह्मलोक इवापरः॥ १६

वेदोंके पारङ्गत विद्वान् मुनियोंने उस अग्निको तीन भागोंमें विभक्त करके स्थापित किया (उन तीनों अग्नियोंके नाम ये हैं—आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि)। उनके द्वारा एक ही अग्निकी तीन स्वरूपोंमें अभिव्यक्ति हुई, इसलिये उन्हें तत्त्वका बोध प्राप्त हुआ॥ ५॥ धर्मज्ञ जनमेजय! एक ही अग्नि मन्त्रोक्त कार्योंकी सिद्धिके लिये स्वधारूप हविष्यके सेवनसे महान् होकर सम्यक्-रूपसे प्रज्वलित होता है॥ ६॥ वहाँ समस्त प्राणियोंद्वारा सम्मानित स्वयं भगवान् दक्ष पधारे, जो ब्रह्मा अर्थात् ब्राह्मण हैं। उन्होंने ब्राह्मणोंकी सृष्टि की है तथा वे सम्पूर्ण भूतोंके पितामह हैं॥ ७॥ उनके हाथोंमें दण्ड, बाण, ढाल और तलवार—ये आयुध शोभा पाते थे। उन्होंने शिखा धारण कर रखी थी। उनका मुख कमलके समान कान्तिमान् था। वे संतापरहित, क्रोधको जीतनेवाले तथा जितेन्द्रिय थे॥ ८॥ वहाँ पुष्करतीर्थमें ब्रह्माजी मेधाके साथ बैठकर यज्ञ करने लगे और बहुत-से ब्रह्मवादी मुनि इन्द्रकथित साममन्त्रोंका गान करने लगे॥ ९॥ उस यज्ञमें घृत, खीर, जौ, चावल आदि सब उत्तमोत्तम हविष्य, जिसका वेदमें वर्णन किया गया है, ब्रह्माजीके निकट सजाकर रखा गया था॥ १०॥ शमीके गर्भसे उत्पन्न हुई अग्निसम्बन्धिनी अरणीका मन्थन करके ब्रह्माजीने उस यज्ञमें एक दूसरे ही प्रधान अग्निको प्रकट किया॥ ११॥ जैसे यज्ञकर्ममें मन्थनसे प्रकट हुए अग्निदेवको स्थापित करके उन्हें ही हवनीय पदार्थकी आहुति देनेका विधान है, उसी प्रकार वहाँ अल्प द्रव्य देनेकी विधि नहीं है। यज्ञ करनेवाले पुरुषको चाहिये कि वह हुत द्रव्यमय बलको विभागपूर्वक प्रकट करे॥ १२॥ उस विशाल यज्ञमें जिन-जिन विहित हविष्योंका उपयोग किया गया, उनके द्वारा उनके यथायोग्य फल भी प्रकट हुए। प्रयोगके ज्ञाता ब्रह्मवादी मुनि ही उन हविष्योंका प्रयोग करते थे॥ १३॥ उत्तम ब्रह्म-सम्पत्तिसे युक्त ब्रह्माजीके उस विस्तृत यज्ञमें देवगुरु बृहस्पतिने छः मासतक चारों वेदोंका प्रवचन किया॥ १४॥ वे उपनिषद् और कर्मकाण्डके द्वारा अत्यन्त रमणीय तथा शिक्षाके अक्षरोंसे युक्त मधुर वेदवाणीका सब ओर प्रवचन करते थे॥ १५॥ भारत! ब्राह्मण-मन्त्रोंके पाठ और वेदोंके उस प्रवचनसे वह विशाल यज्ञमण्डप निश्चय ही दूसरे ब्रह्मलोकके समान शोभा पाता था॥ १६॥

मखो ब्रह्ममुखोत्तीर्णो ब्रह्मशब्दैरनामयैः।
प्रयोगैः सम्प्रयुक्तः स जल्पन्निव विवर्धते॥ १७

समिद्भिः सोमकलशैः पात्रैश्चैव बहिश्चरैः।
यवैर्व्रीहिभिराज्यैश्च पूर्णैश्च जलभाजनैः॥ १८

कर्म प्राप्तैश्च वसुभिः कर्मभिश्च परान्वितैः।
गोभिः पयस्विनीभिश्च परिवत्सैश्च कोमलैः॥ १९

ब्रह्मवृद्धो वयोवृद्धस्तपोवृद्धश्च भारत।
ब्रह्मज्ञानमयो देवो विद्यया सह संगतः॥ २०

मानसैश्च क्रियामूर्तिर्ये च भूताः स्वयं नृप।
ब्रह्मा जुहोति तांस्तस्मान्मरुद्भिः सहितस्तदा॥ २१

तेजोमूर्तिधरै रूपैर्न च तत्कर्मणास्पृशत्।
वेदप्रोक्तेन विधिना सर्वप्राणभृतां नृप॥ २२

निर्मथ्यारणिमाग्नेयीं शमीगर्भसमुत्थिताम्।
क्रतुना यजते पूर्णमग्निष्टोमेन स प्रभुः॥ २३

सदस्यैस्तत्सदो व्यक्तं शुशुभे यज्ञकर्मणि।
जल्पन्ति मधुरा वाचः सानुसाराः क्रियास्तथा॥ २४

कर्मभिश्च तपोयुक्तैर्वेदवेदाङ्गपारगैः।
सूर्येन्दुसदृशै राजन् विरराज महाक्रतुः॥ २५

ब्रह्मघोषेण महता ब्रह्मावास इवापरः।
वसुधामिव सम्प्राप्तैः सर्वैरेव दिवौकसैः॥ २६

ब्रह्माजीके मुखसे प्रकट (अथवा ब्रह्माजीकी प्रधानतामें सम्पादित) हुआ वह यज्ञ अनामय (अप्रामाणिकताकी आशङ्कासे रहित) वेदके शब्दों और श्रुतिके अनुसार विनियुक्त (प्रयुक्त) हुए मन्त्रोंद्वारा सम्यक्-रूपसे अनुष्ठानमें लाया जाकर बोलता हुआ-सा उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त हो रहा था॥ १७॥ उस यज्ञमें समिधाएँ, सोमरस रखनेके लिये कलश, स्रुक्, स्रुवा आदि यज्ञपात्र, बाह्यपात्र, जौ, व्रीहि, घृत तथा जलसे भरे हुए पात्र रखे हुए थे, जिनसे उस यज्ञकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ १८॥ सब ओरसे प्राप्त हुए सुवर्ण आदि रत्नों, परमात्माको समर्पित करके किये गये इष्टि आदि कर्मों, दूधके लिये लायी गयी दुधारू गौओं और उनके कोमल बछड़ोंसे सुशोभित हुए उस यज्ञकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी॥ १९॥ भारत! वेदमन्त्रोंकी ध्वनिसे, दक्षिणारूपी वयसे तथा तपस्या (ज्ञान)-से बढ़े हुए वे ब्रह्मज्ञानमय यज्ञदेव विद्या (यज्ञकर्मकी अङ्गभूत उद्गीथ आदिकी उपासना)-से संयुक्त हो उत्तरोत्तर बढ़ रहे थे॥ २०॥ नरेश्वर! उस समय यज्ञात्मा ब्रह्मा मरुद्गणोंके साथ रहकर मनःकल्पित समिधा आदि उपकरणोंसे युक्त जो स्वयं उनसे प्रकट हुए घृत आदि हवनीय पदार्थ थे, उनकी अग्निमें आहुति देने लगे॥ २१॥ जनमेजय! वेदोक्त विधिसे किया गया और तेजोमय (चिन्मय) मूर्ति धारण करनेवाले द्रव्य-देवता आदि याग-सम्बन्धी रूपोंसे युक्त हुआ ब्रह्माजीका वह यज्ञ समस्त प्राणियोंके कर्मसे अछूता रह गया (अर्थात् उनका यज्ञकर्म सबसे उत्कृष्ट था)॥ २२॥ वे भगवान् ब्रह्मा शमीगर्भ (अश्वत्थ)-से उत्पन्न हुई अग्निसम्बन्धिनी अरणिका मन्थन करके (प्रकट की हुई अग्निमें ही) अग्निष्टोम यागद्वारा पूर्ण विधिके साथ यजन कर रहे थे॥ २३॥ उस यज्ञकर्मके सम्पादनकालमें सदस्योंसे भरा हुआ वह यज्ञसभाका मण्डप बड़ी शोभा पा रहा था। वहाँ सब लोग बड़ी मधुर वाणी बोलते थे तथा सहायकोंसहित सारी क्रियाएँ सम्पन्न हो रही थीं॥ २४॥ राजन्! वह महायज्ञ वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् तथा सूर्य और चन्द्रमाके समान तेजस्वी ब्राह्मणोंद्वारा किये गये तपोयुक्त कर्मोंद्वारा बड़ी शोभा पा रहा था॥ २५॥ वेदों-के महान् घोषसे वह यज्ञशाला दूसरे ब्रह्मलोककी भाँति जान पड़ती थी। उस समय सारे देवता भूतलपर आये प्रतीत होते थे॥ २६॥

वेदवेदाङ्गविद्भिश्च विनीतैर्ब्रह्मवादिभिः।
गतागतैस्तपःश्रान्तैः स्वर्गलोके महीयते॥ २७

ज्वलद्भिरिव विप्रैस्तैस्त्रिभिरेवाध्वरेऽग्निभिः।
ब्रह्मलोक इवाभाति ब्रह्मणः स महाक्रतुः॥ २८

इन्द्रप्रोक्तानि सामानि गायन्ति ब्रह्मवादिनः।
वचनानि प्रयुक्तानि यजूंषि विततेऽध्वरे॥ २९

तपः शान्ता ब्रह्मपराः सत्यव्रतसमाहिताः।
आययुर्मुनयः सर्वे मनोभिः श्रोत्रवादिभिः॥ ३०

होता चैवाभवद् राजन् ब्रह्मत्वे च बृहस्पतिः।
सर्वधर्मविदां श्रेष्ठः पुराणो ब्रह्मसम्भवः॥ ३१

यजमानश्च यज्ञान्ते विष्णोः पूजां प्रयुज्य च।
अदित्याः पश्चिमे गर्भे तपसा सम्भृते नृप॥ ३२

पदं विष्णुरजो ब्रह्मा निर्द्वन्द्वं निष्परिग्रहम्।
यतः पदसहस्राणि भविष्यन्त्युद्भवन्ति च॥ ३३

अवन्ध्यं चाप्रमेयं च व्यतिरिक्तं च कर्मभिः।
आत्मापि यस्य मुनयो भवन्ति निष्परिग्रहाः॥ ३४

परिग्रहाश्च विषया दोषप्राप्ता महीपते।
दोषाश्च युगपत् सर्वे छादयन्ति मनो बलात्॥ ३५

इन्द्रियग्रामविषये चरन्तो निष्परिग्रहाः।
परिग्रहं शुभं धर्ममविद्यालक्षणं विदुः॥ ३६

विद्यालक्षणसंयोगान्न मनश्छाद्यते नृप।
यदि चेन्मुनिशब्देन गृह्यते ब्रह्मवादिभिः॥ ३७

वेदवेदाङ्गोंके ज्ञाता, विनयशील एवं ब्रह्मवादी ऋषि, जो तपस्या करते-करते दुर्बल हो गये थे, उस यज्ञमें आते-जाते दिखायी देते थे। उनके कारण वह यज्ञ ऐसी शोभा पाता था मानो स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित हुआ हो॥ २७॥ ब्रह्माका वह महान् यज्ञ तेजस्वी ब्राह्मणों और यज्ञस्थलमें प्रज्वलित होनेवाली त्रिविध अग्नियोंसे ब्रह्मलोककी भाँति प्रकाशित हो रहा था॥ २८॥ उस विस्तृत यज्ञमें ब्रह्मवादी मुनि इन्द्रकथित साममन्त्रोंका गान और यजुर्वेदके वाक्योंका पाठ कर रहे थे॥ २९॥ वहाँ तपस्यासे शान्त, ब्रह्मपरायण तथा सत्यव्रतके पालनमें तत्पर रहनेवाले समस्त मुनि सुनी हुई बातोंका अनुसरण करनेवाले मानसिक संकल्पके द्वारा आ पहुँचे थे॥ ३०॥ राजन्! उस यज्ञमें सम्पूर्ण धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ तथा ब्रह्मपुत्र अङ्गिराके आत्मज पुरातन ऋषि बृहस्पति होता थे और वे ही ब्रह्माके पदपर भी प्रतिष्ठित थे॥ ३१॥ नरेश्वर! यज्ञके अन्तमें भगवान् विष्णुकी पूजा करके यजमान ब्रह्मा तपस्यासे पुष्ट हुए अदितिदेवीके पिछले गर्भमें अवतीर्ण हुए॥ ३२॥ परम पद विष्णु हैं। अजन्मा ब्रह्मा उस विष्णुसंज्ञक निर्द्वन्द्व एवं परिग्रहशून्य पदको प्राप्त होते हैं, जहाँसे सहस्रों इन्द्रादि पद प्रकट होते हैं और होते रहेंगे॥ ३३॥ वह विष्णुपद अवन्ध्य है अर्थात् उसकी प्राप्तिसे समस्त कर्मोंका फल मिल जाता है। वह अप्रमेय (अनन्त) तथा कर्मोंसे असङ्ग है। परिग्रहशून्य मुनि उस विष्णुपदके आत्मा ही होते हैं॥ ३४॥ पृथ्वीनाथ! सब ओरसे बाँधनेवाले रूप आदि विषय राग आदि दोषोंसे ही प्राप्त होते हैं। समस्त दोष पूर्व संस्कारके बलसे मनको आच्छादित कर लेते हैं॥ ३५॥ मुनिगण इन्द्रिय-समूहोंके विषयोंमें विचरते हुए भी परिग्रहशून्य ही होते हैं (वे उनमें कभी आसक्त नहीं होते)। ज्ञानी पुरुष वेदबोधित धर्मको शुभ मानते हैं, किंतु परिग्रहको अविद्या (अज्ञान)-का लक्षण समझते हैं॥ ३६॥ नरेश्वर! यदि ब्रह्मवादी पुरुष मुनित्वकी प्राप्ति करानेवाले शब्द (तत्त्वमसि आदि वाक्य अथवा प्रणवके उपदेश)-से साधकको अनुगृहीत कर लेते हैं तो (वह उसके मननसे तत्त्वज्ञानी हो जाता है, उस दशामें) विद्याके लक्षणसे संयुक्त होनेके कारण उसके मनको राग आदि दोष नहीं आच्छादित करते हैं॥ ३७॥

वेदविद्याव्रतस्नातैर्नियतैः कुरुसत्तम।
दिवि लोकाः सतां स्थानं लोकानां लोक उच्यते॥ ३८

यत्र देवा हव्यपुष्टा न क्षयं यान्ति भारत।
यजमानश्च भोगैः स्वैः कर्मप्राप्तोदिते पदे।
मोदते सह पत्नीभिर्विज्वरो वसुधाधिप॥ ३९

यज्ञावसाने शैलेन्द्रं द्विजेभ्यः प्रददौ प्रभुः।
दयया सर्वभूतानां निर्मलेनान्तरात्मना॥ ४०

तं शैलं सर्वगात्राणि परस्परविशेषिणः।
न शेकुः प्रविभागार्थं भेत्तुं सर्वोद्यमैरपि॥ ४१

ततस्ते ब्राह्मणगणा निषेदुर्वसुधातले।
श्रमेणाभिहताः सर्वे विवर्णवदना नृप॥ ४२

सुपाश्र्वो गिरिमुख्यस्तु वाग्भिर्मधुरभाषिता।
अब्रवीत् प्रणतः सर्वाञ्छिरसा तान् द्विजोत्तमान्॥ ४३

न हि शक्यो बलाद् भेत्तुं युष्माभिरसुसङ्गिभिः।
अपि वर्षशतैर्दिव्यैः परस्परविरोधिभिः॥ ४४

एकीभूता यदा सर्वे भविष्यथ समाहिताः।
अविरोधेन युगपद् विभजिष्यथ निर्वृताः॥ ४५

बलं न रागद्वेषाभ्यां वर्धते ब्रह्मसत्तमाः।
विमुक्तं रागदोषाभ्यां ब्रह्म वर्धति शाश्वतम्॥ ४६

कुरुश्रेष्ठ! जो वेदविद्या एवं ब्रह्मचर्यव्रतको पूर्ण करके उसमें निष्णात हो चुके हैं तथा शौच-संतोष आदि नियमोंके पालनमें तत्पर रहते हैं, वे कर्मठ पुरुष स्वर्गमें सत्पुरुषोंके रहनेके लिये जो लोक या स्थान हैं, उन्हींको लोक कहते हैं॥ ३८॥ भारत! उनकी दृष्टिमें लोक वही है, जहाँ हविष्यसे पुष्ट हुए देवता कभी नष्ट नहीं होते हैं। पृथ्वीनाथ! यज्ञ करनेवाला यजमान भी वहाँ कर्मानुसार प्राप्त और वहाँके अधिकारियोंद्वारा अनुमोदित पदपर प्रतिष्ठित हो अपने लिये नियत भोगों एवं पत्नियोंके साथ निश्चिन्त होकर सुख भोगता एवं आनन्दमग्न रहता है॥ ३९॥ यज्ञके अन्तमें सामर्थ्यशाली भगवान् ब्रह्माने अपने निर्मल अन्तःकरणसे समस्त प्राणियोंपर दया करके वह श्रेष्ठ पर्वत द्विजोंको दे दिया॥ ४०॥ एक-दूसरेकी अपेक्षा विशिष्ट योग्यतावाले वे ब्राह्मण आपसमें बाँटनेके लिये उस पर्वतके सभी अङ्गोंका भेदन करनेको उद्यत हुए; परंतु सब प्रकारसे उद्योग करके भी उसे तोड़नेमें समर्थ न हो सके॥ ४१॥ नरेश्वर! तब परिश्रमके मारे हुए वे समस्त ब्राह्मण थककर पृथ्वीपर बैठ गये। उस समय उनके मुख कान्तिहीन (उदास) हो गये थे॥ ४२॥ तब पर्वतोंमें श्रेष्ठ सुपार्श्व, जो मीठे वचन बोलनेवाला था, उन समस्त ब्राह्मणशिरोमणियोंको मस्तक नवाकर प्रणाम करके बोला— ॥ ४३॥ ब्राह्मणो! आपलोग प्राणों (इन्द्रियों)-में आसक्त हैं, अतएव एक-दूसरेके विरोधी हो रहे हैं। आप-जैसे लोग सौ दिव्य वर्षोंतक प्रयत्न करते रहें तो भी इस पर्वतका बलपूर्वक भेदन नहीं कर सकते॥ ४४॥ जब सब लोग एकीभूत एवं एकाग्रचित्त हो जायँगे और पारस्परिक विरोधको हटाकर एक साथ प्रयत्न करेंगे, तब सुखपूर्वक इस पर्वतका विभाजन कर सकेंगे॥ ४५॥ ब्राह्मणशिरोमणियो! राग और द्वेषसे बलका नाश होता है, परंतु यदि अपना चित्त राग और द्वेषसे मुक्त हो तो सनातन ब्रह्मके प्रति साधककी निष्ठा बढ़ती है॥ ४६॥

यदाहं भेदयिष्यामि स्वर्गभिन्नैः शिलाशतैः।
धातुभिश्च विसर्पद्भिः शिखरैश्चानुपातिभिः॥ ४७

विशीर्णैः पार्श्वविवरैर्नागैश्च गलितैर्भुवि।
बहुभिर्व्यालरूपैश्च चोद्यमानो गुहाशयैः॥ ४८

जब मैं इस पर्वतकी गुफामें शयन करनेवाले बहुसंख्यक हिंसक जन्तुओं—बाघ, सिंह और सर्प आदिसे प्रेरित होकर आपलोगोंको इस पर्वतके भेदनमें लगाऊँगा, तभी आपलोग इसके भेदनमें समर्थ हो सकेंगे। उस समय स्वर्गसे भिन्न इसकी सैकड़ों शिलाएँ विखर जायँगी। लगातार गिरते हुए शिखरोंके साथ सरकती हुई धातुएँ भी छिन्न-भिन्न हो जायँगी। जीर्ण-शीर्ण हुए पार्श्ववर्ती विवरोंके साथ उनमें रहनेवाले नाग भी पृथ्वीपर गिरते दिखायी देंगे। (आध्यात्मिक दृष्टिसे यहाँ सुपार्श्व पर्वत सद्गुरु है; जिसका भेदन करना है, वह पर्वत अभिमान है। वे ब्राह्मण ज्ञानयोगी साधक हैं तथा पर्वतकी गुफामें शयन करनेवाले हिंसक जन्तु अन्तःकरणमें संचित हुए नाना प्रकारके संस्कार हैं)॥ ४७-४८॥

प्रतिगृह्य च तद् वाक्यं शैलेन्द्रस्य सुभाषितम्।
तूष्णीं बभूवुस्ते सर्वे तदा ब्राह्मणसत्तमाः॥ ४९

शैलराज सुपार्श्वका कहा हुआ वह उत्तम वचन ग्रहण करके वे समस्त ब्राह्मणशिरोमणि उस समय चुप हो गये॥ ४९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्कर-प्रादुर्भावविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

चारों आश्रमोंमें स्थित हुए ब्राह्मणोंकी ब्रह्माजीके यज्ञस्थलके पुण्य-प्रदेशमें निवासकी इच्छा

वैशम्पायन उवाच

बलिर्होमाश्च वर्धन्ते अहन्यहनि भारत।
द्विजानां तपसाढ्यानां गृहधर्मेषु तिष्ठताम्॥ १

देवतार्चाश्च पूज्यन्ते तदा प्रभृति भारत।
तेषां ब्रह्मविदां राजन् पृथिव्यां ब्रह्मवादिभिः॥ २

तत्रैव ब्रह्मसदने समे निस्तृणकण्टके।
प्राज्येन्धनतृणे देशे पुण्ये पर्वतरोधसि॥ ३

वासं यत्र प्रकुर्वन्ति दृष्ट्वा भगवतः क्रियाम्।
तपोऽर्थिनो महाभागा ब्रह्मचर्यव्रते स्थिताः॥ ४

गृहस्थधर्मनिरता दानप्राप्तेन चेतसा।
यतयश्चापि काङ्क्षन्ति धर्मेणेह विकाङ्क्षिणः॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतनन्दन! तभीसे वे तपोधन ब्रह्मवेत्ता द्विज गृहस्थधर्ममें स्थित हो गये। उनके घरमें प्रतिदिन बलिवैश्वदेव और होम आदि कर्मोंका विस्तार होने लगा। राजन्! तभीसे उन ब्रह्मवादियोंद्वारा भूतलपर देवप्रतिमाओंकी पूजा भी की जाने लगी॥ १-२॥ ब्रह्माजीके निवासस्थानभूत उस पुण्य प्रदेशमें ही पूर्वोक्त पर्वतके समतल तटपर, जहाँ काँटेदार तृणोंका अभाव है तथा ईंधन और घास आदि प्रचुर मात्रामें उपलब्ध होते हैं; भगवान् ब्रह्माका वह यज्ञकर्म देखकर वे तपस्याकी कामनावाले महाभाग ब्राह्मण ब्रह्मचर्य-व्रतके पालनमें तत्पर रहकर निवास करने लगे। कुछ ब्राह्मण शुद्ध चित्तसे गृहस्थधर्मके अनुष्ठानमें संलग्न हो वहाँ वास करने लगे तथा आकाङ्क्षाका परित्याग करनेवाले यतियोंके मनमें भी वहाँ धर्मपूर्वक निवास करनेकी अभिलाषा जाग्रत् हो गयी॥ ३—५॥

वन्यैः कर्मफलैश्चैव रता ब्राह्मणपुङ्गवाः।
अग्निहोत्रव्रतस्नाता जितक्रोधाः समाहिताः॥ ६

दैवयुक्तेन वा युक्ताः कर्मणा ब्रह्मसत्तमाः।
चीरवल्कलसंवीता नियता नियतेन्द्रियाः॥ ७

चरन्तो ब्रह्मचर्यं च व्रतमास्थाय दारुणम्।
अनेन विधिना राजन् कर्मप्राप्तेन सर्वशः॥ ८

क्रमाद्ये वेदसंस्कारं पुण्यं प्राप्ताः सनातनम्।
पूर्वैराचरितं राजन् मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः॥ ९

नावेदविद्वानागच्छेन्नापि रौद्रं व्रतं चरेत्।
न च त्यागेन गच्छेत गृहधर्मं न च त्यजेत्॥ १०

नैव गच्छेत दुःस्थानमप्राप्तो वेदसंचयम्।
ऋचश्च संचयः पूर्वः सामगानां च भारत॥ ११

ये चापि पुत्रिणो न स्युः श्रुत्वापि प्राप्नुयुः फलम्।
ब्राह्मणास्तपसा श्रान्ता गुरोश्च परिचर्यया॥ १२

यस्य नैव श्रुतं ब्रह्म न गृहीतं विशाम्पते।
कामं तं धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत्॥ १३

अथवा नैव विद्येत यद् ब्रह्म नाद्रियेद् द्विजः।
द्वाभ्यां तु श्रोत्रविषये मनः पूर्वं समाहितम्॥ १४

जो जंगली फल-मूलोंसे जीवन-निर्वाह करते हुए वानप्रस्थोचित कर्म करते थे, अग्निहोत्रके नियममें निष्णात थे, क्रोधको जीतकर चित्तको एकाग्र रखनेवाले थे, वे ब्राह्मणशिरोमणि भी वहीं रहनेकी इच्छा करने लगे॥ ६॥ जो दैवात् प्राप्त हुए (बिना माँगे मिले हुए) अथवा याचनाकर्मसे उपलब्ध हुए अन्नसे जीवन-निर्वाह करते थे, चीर और वल्कल पहनते थे तथा नियमपरायण होकर इन्द्रियोंको संयममें रखते थे, वे श्रेष्ठ ब्राह्मण भी वहीं रहनेकी इच्छा करने लगे। जो कठोर व्रतका आश्रय ले ब्रह्मचर्यका पालन करते थे, उन्हें भी वहीं रहनेकी इच्छा हुई। राजन्! इस विधिसे क्रमशः प्राप्त आश्रमधर्मका पूर्णतः पालन करते हुए जिन लोगोंने प्राचीन ब्रह्मवादी मुनियोंद्वारा आचरणमें लाये हुए पवित्र सनातन वेद-संस्कारको क्रमसे उपलब्ध किया था, वे भी वहीं रहनेकी इच्छा करने लगे॥ ७—९॥ सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान प्राप्त किये बिना मनुष्यको (ब्रह्मचर्याश्रमसे) गृहस्थाश्रममें नहीं आना चाहिये। वह कठोर व्रत (वानप्रस्थोचित तप) भी न करे। संन्यास-मार्गका भी अवलम्बन न करे और न गृहस्थधर्मका परित्याग ही करे (वेदोंका ज्ञान प्राप्त करके विवेकपूर्वक ही उसे एक आश्रमका त्याग और दूसरेका ग्रहण करना चाहिये)॥ १०॥ भारत! वैदिक ज्ञानराशिको उपलब्ध किये बिना किसीको, जिसमें स्थिर रहना कठिन है, उस चतुर्थ आश्रममें भी नहीं जाना चाहिये। बह्वृचों, सामगों और यजुर्वेदियोंको भी पहले ऋचाओंके ही ज्ञानका संचय करना चाहिये॥ ११॥ जो लोग पुत्रवान् नहीं हुए हैं अर्थात् जिन्होंने गृहस्थाश्रममें प्रवेश नहीं किया है, वे लोग वेदान्त-श्रवण करके भी उसके फलस्वरूप ज्ञानको प्राप्त कर सकते हैं। तपस्या तथा गुरुकी सेवाका श्रम स्वीकार करनेवाले ब्राह्मण भी वेदान्त-श्रवण करके उसके फलस्वरूप ज्ञानको पा सकते हैं॥ १२॥ प्रजानाथ! जिसने गुरुके मुखसे वेदका श्रवण और उसके ज्ञानको ग्रहण नहीं किया, उस ब्राह्मणसे धर्मात्मा राजा अपनी इच्छाके अनुसार शूद्रोचित कर्म कराये॥ १३॥ अथवा यदि द्विज ब्राह्मण होकर भी वेदका आदर न करे तो उसमें ब्राह्मणत्व है ही नहीं। जिसने ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्य दोनों अवस्थाओंमें श्रवण करने योग्य धर्म एवं ब्रह्ममें पहलेसे ही (अध्ययनाध्यापनके समयसे ही) मन एकाग्र किया है, वही ब्राह्मण है (अतः राजाको उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये)॥ १४॥

एवं सर्वेन्द्रियारम्भान् वेदपूर्वान् समाचरेत्।
ब्राह्मणो भूतिसम्पन्नो य इच्छेद् भूतिमात्मनः॥ १५

अतः जो वैभवसम्पन्न ब्राह्मण अपना कल्याण चाहता हो, वह इस प्रकार सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे आरम्भ होनेवाले कार्योंको वेदाध्ययनपूर्वक ही करे॥ १५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्कर-प्रादुर्भावविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

नारद आदिके द्वारा ब्राह्मणों तथा ब्रह्माजीका सत्कार, ब्रह्माजीके द्वारा कश्यपको यज्ञका आदेश, देवता-दानव-युद्ध तथा विष्णुके द्वारा मधुकी पराजय

वैशम्पायन उवाच

ते तु गोब्राह्मणा नागाश्चन्द्रादित्यपुरस्कृताः।
ब्राह्मणान् पूजयन् देवान् वसुभिर्ब्रह्मसम्भवैः॥ १

नारदप्रमुखाश्चैव गन्धर्वा ऋषयो नृप।
कुर्वन्ति सततं यज्ञे क्रमप्राप्तं पितामहम्॥ २

वचोभिर्मधुराभाषैः पञ्चेन्द्रियनिवासिभिः।
सर्वभूतप्रियकरैः सर्वभूतहितैषिभिः॥ ३

स्तूयमानश्च यज्ञान्ते पञ्चेन्द्रियसमाहितैः।
प्रोवाच भगवान् ब्रह्मा दिष्ट्या दिष्ट्येति भारत॥ ४

ततः कश्यपमाभाष्य प्रोवाच भगवान् प्रभुः।
भवानपि सुतैः सार्धं यक्ष्यते वसुधातले॥ ५

क्रतुभिः परमप्राप्तैः सम्पूर्णवरदक्षिणैः।
यक्षाः सुराश्च ते सर्वे यथा प्रतिगुणैः प्रभो॥ ६

वयं यक्ष्यामहे पूर्वं पूर्वं यक्ष्यामहे वयम्।
एवमन्योन्यसंरम्भाद् विद्यन्ते बलदर्पिताः॥ ७

दैतेयाश्चाप्यदैतेयाः परस्परजयैषिणः।
युद्धायैव प्रतिष्ठन्ति प्रगृह्य विपुलौ भुजौ॥ ८

निवार्यमाणा ऋषिभिस्तपसा दग्धकिल्बिषैः।
अन्यैश्च विविधैर्विप्रैर्वेदवेदाङ्गपारगैः॥ ९

निवार्यमाणा युध्यन्ते वृषभा इव गोकुले।
प्रयुद्धा युद्धसंक्रान्ताः सर्वे प्राणजयैषिणः॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! चन्द्रमा और सूर्यको आगे करके उपस्थित हुए नागों, गौओं और ब्राह्मणोंने ब्रह्मसम्पत्तिके द्वारा देवताओं तथा ब्राह्मणोंका पूजन किया॥ १॥ नरेश्वर! उस यज्ञमें नारद आदि गन्धर्व एवं ऋषि सदा ब्राह्मणपूजाके क्रममें आये हुए ब्रह्माजीकी भी पूजा करते थे॥ २॥ भारत! यज्ञके अन्तमें पाँचों इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले, समस्त प्राणियोंका प्रिय करनेवाले, सब भूतोंका हित चाहनेवाले तथा पाँचों इन्द्रियोंको एकाग्र करके योगयुक्त होनेवाले मधुरभाषी ब्राह्मणोंके वचनोंसे प्रशंसित हुए भगवान् ब्रह्मा कहने लगे—'अहो भाग्य! अहो भाग्य!'॥ ३-४॥ तदनन्तर सामर्थ्यशाली भगवान् ब्रह्माने कश्यपजीको सम्बोधित करके कहा—'तुम भी अपने पुत्रोंके साथ भूतलपर पूर्ण एवं उत्तम दक्षिणावाले श्रेष्ठ यज्ञोंका अनुष्ठान करोगे'। प्रभो! उस समय यक्ष और समस्त देवता परस्पर विरोधी गुणोंद्वारा प्रेरित हो इस प्रकार कहने लगे, 'पहले हम यज्ञ करेंगे, पहले हम यज्ञ करेंगे।' इस तरह एक-दूसरेके प्रति रोषमें भरकर वे बलके घमंडसे उन्मत्त हो गये थे॥ ५—७॥ दैत्य और देवता एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छासे अपनी विशाल भुजाओंको उठाकर युद्धके लिये ही प्रस्थान करने लगे॥ ८॥ तपस्यासे जिनके पाप दग्ध हो गये थे, उन ऋषियों तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारगामी विद्वान् अन्यान्य अनेक ब्राह्मणोंके मना करनेपर भी वे गोशालामें परस्पर भिड़नेवाले साँड़ोंके समान एक-दूसरेसे युद्ध करने लगे। धीरे-धीरे उनके युद्धने जोर पकड़ लिया। वे सब-के-सब युद्धकी ज्वालासे आक्रान्त हो परस्पर प्राण लेनेके लिये उतारू हो गये॥ ९-१०॥

पश्यतां सर्वभूतानां मृत्योर्विषयमागताः।
ततः शब्देन महता परं कृत्वा महाबलाः॥ ११

रुन्धन्ति बाहुभिः क्रुद्धाः सपक्षा इव पक्षिणः।
चचाल वसुधा चैव पादाक्रान्ता च रोषिभिः॥ १२

नौर्यथा पुरुषाक्रान्ता निषीदति महाजले।
पर्वताश्च विशीर्यन्ते नर्दमाना गजा इव॥ १३

चुक्षुभुश्च महानद्यस्ताडिता मातरिश्वना।
ततः समभवद् युद्धं मधोर्विष्णोश्च भारत॥ १४

युगान्तकरणं घोरं सर्वप्राणिभयंकरम्।
प्रममाथ मधोर्विष्णुः समग्रं बलपौरुषम्॥ १५

वह्नेरिव बलं दीप्तं शमयत्यम्बुना यथा।
तथा प्रशमितं तेन प्रभुणा ह्युपकारिणा॥ १६

सब प्राणियोंके देखते-देखते वे मृत्युके राज्यमें आ गये। फिर तो महान् सिंहनाद करके वे महाबली देवता, दानव परस्पर कुपित हो पंखधारी पक्षियोंके समान अपनी भुजाओंद्वारा एक-दूसरेको रोकने लगे। रोषमें भरे हुए उन योद्धाओंके पैरोंसे आक्रान्त हो सारी पृथ्वी विचलित हो उठी। जैसे बहुसंख्यक पुरुषोंके भारसे दबी हुई नौका गहरे जलमें डगमगाने लगती है, वही दशा पृथ्वीकी हुई। चिग्घाड़ते हुए हाथियोंके समान भारी आवाजके साथ बड़े-बड़े पर्वत विदीर्ण होकर ढहने लगे। वायुके झोंके खाकर बड़ी-बड़ी नदियाँ विक्षुब्ध हो उठीं। भारत! तब मधु और विष्णुका युगान्तकारी घोर युद्ध होने लगा, जो समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर था। भगवान् विष्णुने मधुके समस्त बल-पौरुषको मथ डाला। जैसे अग्निका प्रज्वलित हुआ तेजरूपी बल जलसे बुझ जाता है, उसी प्रकार सबका उपकार करनेवाले भगवान् विष्णुने मधुके बल-पराक्रमको शान्त कर दिया॥ ११—१६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्कर-प्रादुर्भावविषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २५॥

षड्विंशोऽध्यायः

मधु और विष्णुका घोर युद्ध, देवताओं और ऋषियोंद्वारा श्रीविष्णुकी स्तुति, हयग्रीवरूपधारी विष्णुद्वारा मधुका वध और पृथ्वीको मेदिनी नामकी प्राप्ति

वैशम्पायन उवाच

बलवान् स तु दैतेयो मधुर्भीमपराक्रमः।
बबन्ध पाशैर्निशितैर्महेन्द्रं पर्वतान्तरे॥ १

तं वै प्रह्लादवचनाल्लक्षणज्ञश्च भारत।
ऐश्वर्यमैन्द्रमाकाङ्क्षन् भविष्यं बुद्धिसंक्षयात्॥ २

बद्ध्वेन्द्रं सहसा मध्ये पाशैर्मर्मविवर्जितैः।
आयसैर्बहुभिश्चित्रैर्बलवद्भिर्विदारणैः॥ ३

विष्णुमेवाग्रणी रुद्रमाह्वयद् युद्धकोविदः।
मध्ये गणानां सर्वेषां कालस्य वशमागतः॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भयंकर पराक्रमी बलवान् मधु दैत्यने प्रह्लादके कहनेसे देवराज इन्द्रको पर्वतके भीतर तीखे पाशोंसे बाँध लिया। भारत! वह लक्षणोंका ज्ञाता था, परंतु उसकी बुद्धि मारी गयी थी; इसलिये उसने भविष्यमें इन्द्रके ऐश्वर्यकी अभिलाषा रखकर उन्हें बाँधा था॥ १-२॥ लोहेके बने हुए बहुसंख्यक विचित्र प्रबल और विदीर्ण करनेवाले मर्मरहित पाशोंसे इन्द्रकी कमरको सहसा बाँधकर दैत्योंके अगुआ युद्धकुशल मधुने, जो कालके वशीभूत हो गया था, समस्त गणोंके बीच रुद्रस्वरूप भगवान् विष्णुको ही ललकारा॥ ३-४॥

द्वैधीभूतः काश्यपेया मधोर्वशमुपागताः।
युद्धार्थमभ्यधावन्त प्रगृह्य विपुला गदाः॥ ५

गन्धर्वाः किंनराश्चैव वाद्ये गीते च कोविदाः।
प्रनृत्यन्ति प्रगायन्ति प्रहसन्ति च सर्वशः॥ ६

तन्त्रीभिः सुप्रयुक्ताभिर्मधुराभिः स्वभावतः।
मनो मधोर्विधुन्वन्ति युध्यमानस्य रागिणः॥ ७

मधोर्बलार्थं मधुनो नियोगात् पद्मयोनिनः।
एतान् विकारान् कुर्वन्ति गन्धर्वाः सत्यवादिनः॥ ८

तत्र सक्तो हि गान्धर्वे तस्मिञ्छब्दे मधुर्मनः।
दानवाश्चासुराश्चैव प्रत्यक्षं यान्ति प्राणदन्॥ ९

मधोश्च मन आक्षिप्य पश्यन् योगेन चक्षुषा।
मन्दरं प्रयते विष्णुर्गूढोऽग्निरिव दारुषु॥ १०

ऋषयो दीप्तमनसं किंचिद् व्यथितमानसाः।
पितामहं पुरस्कृत्य क्षणेनान्तरधीयत॥ ११

विष्णुं सोऽभ्यहनत् क्रुद्धो मधुर्मधुनिभेक्षणः।
भुजेन शङ्खदेशान्ते न चकम्पे पदात्पदम्॥ १२

विष्णुश्चाभ्यहनद् दैत्यं कराग्रेण स्तनान्तरे।
स पपात महीं तूर्णं जानुभ्यां रुधिरं वमन्॥ १३

न चैनं पतितं हन्ति विष्णुर्युद्धविशारदः।
बाहुयुद्धे हि समयं मत्वाचिन्त्यपराक्रमः॥ १४

इन्द्रध्वज इवोत्तिष्ठञ्जानुभ्यां स महीतलात्।
मधू रोषपरीतात्मा निर्दहन्निव चक्षुषा॥ १५

परुषाभिस्ततो वाग्भिरन्योन्यमभिगर्जतुः।
समीयतुर्बाहुयुद्धे परस्परवधैषिणौ॥ १६

उभौ तौ बाहुबलिनावुभौ युद्धविशारदौ।
उभौ च तपसा शान्तावुभौ सत्यपराक्रमौ॥ १७

दृढप्रहारिणौ वीरावन्योन्यं विचकर्षतुः।
शैलेन्द्राविव युद्ध्यन्तौ पक्षैः पाषाणसंनिभैः॥ १८

विकर्षन्तौ वमन्तौ च अन्योन्यं वसुधातले।
गजाविव विषाणाग्रैर्नखाग्रैश्च विचेरतुः॥ १९

कश्यपके पुत्र दो भागोंमें विभक्त हो मधुके वशमें आकर बड़ी-बड़ी गदाएँ हाथमें लिये देवताओंके साथ युद्ध करनेके लिये दौड़े॥ ५॥ वाद्य और गीतमें कुशल गन्धर्व और किन्नर सब प्रकारसे नाचते, गाते तथा हँसते थे॥ ६॥ स्वभावतः मधुर एवं सुन्दर ढंगसे बजायी गयी वीणाके तारोंसे मोहक ध्वनि उत्पन्न करके वे युद्धमें लगे हुए रागी मधुके मनको विचलित कर देते थे॥ ७॥ तमःप्रधान मधुका बल क्षीण करनेके लिये पद्मयोनि ब्रह्माजीकी आज्ञासे सत्यवादी गन्धर्व ये विकार प्रकट करते थे॥ ८॥ शक्तिशाली मधुने उस संगीतके शब्दमें मन लगाया। दानव और असुर उसके सामने जाते और गर्जना करते थे॥ ९॥ इस प्रकार मधुके मनको विषयोंमें विक्षिप्त करके योग-दृष्टिसे देखनेवाले भगवान् विष्णु सहसा मन्दराचलकी ओर चल दिये, मानो अग्नि काष्ठोंमें छिप गयी हो॥ १०॥ उस समय ऋषियोंके मनमें कुछ व्यथा हुई। वे संतप्तचित्त पितामहको आगे करके क्षणभरमें वहाँसे अन्तर्धान हो गये॥ ११॥ इधर क्रोधमें भरे हुए मधु-जैसे पिङ्गल नेत्रवाले मधुने भगवान् विष्णुके पास पहुँचकर अपने हाथसे उनकी कनपटीपर प्रहार किया; परंतु वे एक पग भी विचलित नहीं हुए॥ १२॥ तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने भी अपने हाथके अग्रभागसे उस दैत्यकी छातीमें चोट की; फिर तो वह रक्त वमन करता हुआ घुटनोंके बल तुरंत पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ १३॥ अचिन्त्य पराक्रमी युद्धविशारद भगवान् विष्णुने बाहुयुद्धका अवसर उपस्थित जानकर पृथ्वीपर गिरे हुए उस दैत्यको नहीं मारा॥ १४॥ तदनन्तर मधुका हृदय रोषसे भर गया। वह घुटनोंके सहारे पृथ्वीतलसे उठकर खड़ा हो गया, मानो किसीने इन्द्रध्वज फहरा दिया हो। उस समय वह विष्णुकी ओर इस तरह देख रहा था, मानो अपने नेत्रसे उन्हें जला देगा॥ १५॥ तत्पश्चात् वे दोनों कठोर बातें कहते हुए एक-दूसरेके सामने गर्जने लगे; फिर दोनों दोनोंके वधकी इच्छासे बाहुयुद्धमें परस्पर गुँथ गये। वे दोनों ही बाहुबलसे युक्त और युद्धकलाके विशेषज्ञ थे। दोनों तपस्याके प्रभावसे शान्तचित्त हो गये थे और दोनों ही यथार्थरूपसे पराक्रम प्रकट कर रहे थे॥ १६-१७॥ दृढ़तापूर्वक प्रहार करनेवाले वे दोनों वीर एक-दूसरेको खींचने लगे, मानो पाषाण-सदृश पंखोंसे युक्त दो पर्वतराज परस्पर युद्ध कर रहे हों॥ १८॥ जैसे दो हाथी अपने दाँतों और नखोंके अग्रभागसे परस्पर प्रहार करते हुए युद्धस्थलमें विचरते हैं, उसी प्रकार वे दोनों वीर मधु और श्रीविष्णु एक-दूसरेको खींचते और रक्त-वमन करते हुए भूतलपर विचर रहे थे॥ १९॥

ततो व्रणमुखैश्चैव सुस्राव रुधिरं बहु।
ग्रीष्मान्ते धातुसंसृष्टं शैलेभ्य इव काञ्चनम्॥ २०

संसिक्तौ रुधिरौघैश्च स्त्रवद्भिः समरंजितौ।
अथाद्यतैः पदाग्रैश्च तौ व्यदारयतां महीम्॥ २१

अभिहत्य तु तौ वीरौ परस्परमनेकधा।
पतङ्गाविव युध्येतां पक्षाभ्यां मांसगृद्धिनौ॥ २२

शुश्रुवुश्चान्तरिक्षेऽथ सर्वभूतानि पुष्करे।
सिद्धानां वदनोन्मुक्ताः परया वर्णसम्पदा॥ २३

स्तुतयो विष्णुसंयुक्ताः सत्याः सत्यपराक्रमे।
शरीरं धातुसंयुक्तं संयुक्तं चेतनेन च॥ २४

तद् ब्रह्म इन्द्रियैर्युक्तं तेजोभूतं सनातनम्।
ध्रुवं तिष्ठन्ति भूतास्ते सूक्ष्मे प्रलयतां गते॥ २५

पुनश्चोद्भवते सूक्ष्मं बहुरूपमनेकधा।
प्रबोध्य भावं भूतानां त्रिषु लोकेषु कामदः॥ २६

सुरूपो बहुरूपांस्ताँल्लोकान् संचरते वशी।
मानसीं तनुमास्थाय बहुभिः कारणान्तरैः॥ २७

योगात्मा धारयन्नुर्वीं नागात्मानं दिवंधरः।
ब्रह्म भूतं परं चैव सूक्ष्मेणात्मानमीश्वरः॥ २८

ब्राह्मेण विप्रान् वसति युद्धेनैव च क्षत्रियान्।
प्रदानकर्मणा वैश्याञ्छूद्रान् परिचरेण च॥ २९

तदनन्तर एक-दूसरेके प्रहारसे जो घाव हो गये थे, उनके छिद्रोंसे बहुत रक्त बहने लगा। ठीक उसी तरह, जैसे वर्षा-ऋतुमें पर्वतोंसे गैरिक धातुमिश्रित काञ्चन-रस झरता हो॥ २०॥ वे दोनों झरते हुए रक्तके प्रवाहोंसे भीगकर समानरूपसे रक्तरञ्जित हो गये। फिर उठते-गिरते हुए पैरोंके अग्रभागोंसे उन दोनोंने वहाँकी भूमि विदीर्ण कर डाली॥ २१॥ एक-दूसरेपर बारम्बार चोट करके वे दोनों वीर पंखोंसे लड़नेवाले दो मांस-लोलुप पक्षियोंकी भाँति युद्ध करने लगे॥ २२॥ इसी समय पुष्करके आकाशमें सम्पूर्ण भूतोंने भगवान् विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाली स्तुतियाँ सुनीं, जो उन सत्यपराक्रमी भगवान्‌में यथार्थरूपसे घटित हो रही थीं। वे स्तुतियाँ सिद्धोंके मुखोंसे निकली थीं और उत्तमोत्तम वर्ण-सम्पत्तिसे सुशोभित थीं। यह शरीर तेज, जल और अन्न—इन तीन धातुओंका अथवा रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र—इन सात धातुओंका संयोगरूप है। यह चेतनसे संयुक्त है। वह चेतन तेजोभूत सनातन ब्रह्म ही है। जो इन्द्रियोंसे युक्त होकर जीव कहलाता है। शरीरका आरम्भ करनेवाले वे स्थूलभूत प्रलयके अधिष्ठानभावको प्राप्त हुए सूक्ष्म-कारणमें निश्चय ही स्थित होते हैं। फिर सूक्ष्म ही अनेक रूप धारण करके बारम्बार प्रकट होता है। सबकी कामनाओंको देनेवाले तथा सबको वशमें रखनेवाले असङ्ग परमात्मा तीनों लोकोंमें भूतोंको उनके स्वरूपका बोध कराकर स्वयं सुन्दर रूप धारण करके उन अनेक रूपवाले लोकोंमें विचरते रहते हैं। योगात्मा ईश्वर, जो देवलोकको धारण करनेवाले हैं, सूक्ष्मरूपसे अपने-आपको शेषनागके रूपसे प्रकट करके पृथ्वीको धारण करते हुए विचरते हैं। वे दुष्टनिग्रह और साधु-संरक्षण आदि अनेक कारणोंसे मानसशरीर—शेष, कूर्म आदि रूप धारण करके जगत्‌की रक्षा करते हैं। वे ही वेद, जरायुज आदि चार प्रकारके प्राणिसमुदाय तथा दूसरे जडभूतोंको धारण करते हैं॥ २३—२८॥ वे भगवान् वेदमयरूपसे ब्राह्मणोंका आश्रय लेकर रहते हैं। युद्धरूपसे क्षत्रियोंमें स्थित होते हैं। दानकर्म अथवा वस्तुओंके आदान-प्रदानवाले वाणिज्य कर्मके रूपमें वैश्योंमें निवास करते हैं तथा त्रैवर्णिकोंकी सेवाके रूपमें वे शूद्रोंका आश्रय लेकर रहते हैं॥ २९॥

गावः क्षीरप्रदानेन अश्वान् यज्ञेषु प्रोक्षणैः।
पितरश्चोष्मणैवेह हविर्भागेन देवताः॥ ३०

चतुर्भिर्व्यतिरिक्ताङ्गैस्त्रिभिरन्यैश्च धातुभिः।
सप्तभिः पितृभिर्नित्यैस्त्रीँल्लोकान् परिरक्षति॥ ३१

चन्द्रसूर्यात्मकं नित्यं यथात्मनिहतात्मकम्।
प्रकाशं चाप्रकाशं च निगूढं स्वेन तेजसा॥ ३२

त्रयस्तु पितरो नित्यं वर्धयन्ति दिवाकरम्।
चतुर्भिः पितृभिश्चैव चन्द्रो वर्धति मण्डले॥ ३३

त्रयः पितृगणा नित्यं पिण्डान् पश्चाददन्ति ते।
चत्वारोऽन्ये पितृगणाः सिद्धाः पञ्चक आददे॥ ३४

त्वमेव पञ्च तान् धर्मांस्त्वमेवापञ्च तान् विभो।
सनातनमयो दिव्यः शाश्वतो ब्रह्मसम्भवः॥ ३५

यस्मात्त्वत्तेज आदत्ते अग्निर्वायुश्च सर्वशः।
अतस्त्वं कर्मणा तेन आदित्यः समपद्यत॥ ३६

यदादत्सि जगत् सर्वं रश्मिभिः प्रदहन्निव।
युगान्तकाले सम्प्राप्ते परां सिद्धिमुपागतः॥ ३७

पक्षसंधावमावास्यां लोकं चरसि मानुषम्।
ऋषिभिः सह गूढात्मा सूर्येन्दुवसुसम्भवैः॥ ३८

वे गौओंका आश्रय लेकर दुग्ध प्रदानके द्वारा तुम सबकी रक्षा करते हैं। यज्ञोंमें अश्वों (यज्ञसम्बन्धी उपकरणों)-का आश्रय लेकर प्रोक्षण (फलरूप अमृतके अभिषेक)-द्वारा तुमलोगोंकी रक्षा करते हैं। पकाये जाने-वाले हविष्यके गर्म-गर्म भापसे पितरोंको तथा यज्ञोंमें हविष्यका भाग अर्पित करके देवताओंको तृप्त करते हैं॥ ३०॥ पृथक्-पृथक् अङ्गवाले चार धातुओं (दर्श, पौर्णमास, पितृयज्ञ तथा साधारण चार प्रकारके अन्नों)-से तथा दूसरे तीन धातुओं (मन, वाक् और प्राण) से—इस तरह सात प्रकारके नित्य अर्पण करने योग्य अन्नोंद्वारा वे भगवान् विष्णु पितरोंसहित तीनों लोकोंकी रक्षा करते हैं (अथवा उक्त अन्नों तथा कव्यवाट् अनल, यम, सोम, अर्यमा, अग्निष्वात्त, सोमप तथा बर्हिषद्—इन सात प्रकारके नित्य तर्पणीय पितरोंद्वारा वे तीनों लोकोंकी रक्षा करते हैं)॥ ३१॥ इन सातोंका समुदाय चन्द्रसूर्यात्मक है अर्थात् उनमेंसे तीन सूर्यस्वरूप और चार चन्द्रस्वरूप हैं। ये यथायोग्य प्रकाश (शुक्लमार्ग) तथा अप्रकाश (धूम या कृष्णमार्ग) रूप हैं, ये कष्ट-साध्य होनेके कारण शरीरको संकटमें डाले रहते हैं, ये सभी अपने तेज (चिन्मय प्रकाश)-से व्याप्त हैं॥ ३२॥ तीन पितर सदा सूर्यदेवकी वृद्धि करते हैं और चार पितरोंके साथ चन्द्रमा अपने मण्डलमें बढ़ते हैं॥ ३३॥ तीन पितृगण सदा फलभोगके पश्चात् पिण्डों (स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीरों)-का संहार करते हैं और चार अन्य पितृगण सिद्धरूप हो पञ्चविषय आदि हो जाते हैं, जिन्हें यजमान प्रजापतिने स्वीकार किया है॥ ३४॥ प्रभो! आप ही उन पाँच धर्मों (पञ्चीकृत भूतों)-को और आप ही अपञ्चीकृत भूतोंको प्रकट करते हैं। आप सनातनमय, दिव्य, शाश्वत एवं वेदोंके आविर्भावके स्थान हैं॥ ३५॥ अग्नि और वायु भी सब प्रकारसे आपके ही तेजका आदान (ग्रहण) करते हैं। इसलिये उस आदानरूप कर्मसे आप 'आदित्य' कहलाते हैं (आप ही सबके प्रकाशक स्वयं प्रकाशरूप हैं)॥ ३६॥ आप युगान्तकाल आनेपर अपनी किरणोंसे सम्पूर्ण जगत्को दग्ध करते हुए-से उसका आदान (ग्रहण) करते हैं, इसलिये भी 'आदित्य' कहलाते हैं। आप सदा परम सिद्धिको प्राप्त हैं॥ ३७॥ आप अपने स्वरूपको छिपाकर सूर्य, चन्द्रमा और वसुओंसे उत्पन्न हुए ऋषियोंके साथ पूर्णिमा और अमावास्याको (पूर्णमास और दर्श नामक यागोंको ग्रहण करनेके लिये) मनुष्यलोकमें विचरते हैं॥ ३८॥

सकलं कर्म कर्तॄणां यजतां पुष्टिवर्धनः।
हेतूनामविकाराय मा भूत् कर्मविपर्ययः॥ ३९

वनस्पत्यौषधीश्चैव युगपत् प्रतिपद्यसे।
बालभावाय वसुधां पक्षे पक्षे जनिस्तव॥ ४०

भूतानां भुवि भूतेश भाव्यर्थं वसुधातले।
वसु यद् भुवि किंचिच्च सर्वं तत्त्वन्मयं विभो॥ ४१

त्वमेव विविधं धर्मं शाश्वतं वसुधातले।
देवयज्ञं मन्त्रवाक्यमात्मयज्ञं समानुषम्॥ ४२

द्विविधः स्वर्गमार्गश्च सूर्यश्चन्द्रश्च निर्मलः।
चन्द्रमाः पितृयानश्च देवयानश्च भास्करः॥ ४३

त्वमेव वसुधायुक्तो विश्वं चरसि सीमया।
एकीकृत्य गणान् सर्वान् संक्षिप्यामुत्र सम्भवः॥ ४४

एकस्त्वमसि सम्भूतः पुराणपुरुषो विराट्।
अक्षयश्चाप्रमेयश्च कर्मकारकरो वशी॥ ४५

मूर्तस्तेजसि सम्भूतो वायुः पर्येति खेचरः।
सप्तभी रूपसंस्थानैर्नित्यमावृत्य तिष्ठति॥ ४६

साधने चापि निर्वाणे संहारे प्रलये तथा।
धाता धारणकाले च दिशश्चक्षुषि धारिणि॥ ४७

आप सकल कर्म करनेवाले यजमानोंकी पुष्टि (सुख-समृद्धि)-को बढ़ानेवाले हैं। स्वर्ग आदिके साधनभूत जो कर्म हैं उनमें विकृति न हो—वे व्यर्थ न होने पायें और काललोपसे धर्मसम्बन्धी कृत्योंका लोप न हो जाय, इसकी देख-भालके लिये भी आप मनुष्यलोकमें विचरते हैं॥ ३९॥ आप ही अमावास्याको चन्द्रमारूपसे एक ही साथ वनस्पतियों, ओषधियों और वसुधामें वास करते हैं। पुनः बालरूपसे उत्पन्न होनेके लिये ही आप ऐसा करते हैं। प्रत्येक शुक्लपक्षमें आपका नूतन जन्म होता है॥ ४०॥ भूतेश्वर! विभो! इस भूतलपर भूत और भविष्य प्राणियोंकी पुष्टिके लिये जो कुछ भी धन संचित है, वह सब आपका ही स्वरूप है॥ ४१॥ आप ही भूतलपर नाना प्रकारके सनातनधर्म-सम्बन्धी कर्म हैं और आप ही देवयज्ञ, मन्त्रवाक्य, आत्मयज्ञ तथा उसके अधिकारी मनुष्य हैं॥ ४२॥ आप ही स्वर्गलोकके द्विविध मार्ग निर्मल सूर्य और चन्द्रमा हैं। इनमें चन्द्रमा पितृयान (धूममार्ग) हैं और सूर्य देवयान (शुक्लमार्ग) हैं॥ ४३॥ आप ही इन्द्रिय आदि गणोंको एक करके—देहमात्ररूपसे संक्षिप्त करके भूमिवासी प्राणियोंके रूपमें वसुधासे संयुक्त होकर विश्वमें विचरते और मर्यादापूर्वक यहाँके विषयोंका सेवन करते हैं। परलोकमें भी आप ही विविध रूपोंमें प्रकट हैं॥ ४४॥ एकमात्र आप पुराणपुरुष ही विराट्रूपमें प्रकट हैं। आप अविनाशी, अप्रमेय, सबको वशमें रखनेवाले और नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले हैं॥ ४५॥ आप ही तेजस्तत्त्वमें 'रूप' होकर प्रकट हुए हैं, (इसीलिये तैजस नेत्रके द्वारा रूपका ग्रहण होता है), आप ही वायु बनकर आकाशमें सब ओर विचरण करते हैं। महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्च तन्मात्रा—इन सात रूपसंस्थानोंके द्वारा आप सदा सबको व्याप्त करके स्थित हैं॥ ४६॥ साधनकालमें जीवरूपसे, निर्वाण (कैवल्य मोक्ष)-की अवस्थामें शुद्धरूपसे, दैनिक और ब्राह्म प्रलयमें रुद्ररूपसे तथा धारण (पोषण) कालमें धाता (पालक) विष्णुरूपसे आप ही स्थित हैं। दिशाएँ—वर्णाश्रम-धर्मकी मर्यादाएँ आप ही विषयोंको धारण करनेवाली नेत्र आदि इन्द्रियोंमें इनके अधिष्ठाता चेतनके रूपमें विराजमान हैं॥ ४७॥

सेव्यमानो मुनिगणैर्नित्यं विगतकिल्बिषैः।
कर्मभिः सत्यमापन्नैः समरागैर्जितेन्द्रियैः॥ ४८

स्तूयमानश्च विबुधैः सिद्धैर्मुनिवरैस्तथा।
सस्मार विपुलं देहं हरिर्हयशिरो महान्॥ ४९

कृत्वा वेदमयं रूपं सर्वदेवमयं वपुः।
शिरोमध्ये महादेवो ब्रह्मा तु हृदये स्थिताः॥ ५०

आदित्यरश्मयो बालाश्चक्षुषी शशिभास्करौ।
जङ्घे तु वसवः साध्याः सर्वसंधिषु देवताः॥ ५१

जिह्वा वैश्वानरो देवः सत्या देवी सरस्वती।
मरुतो वरुणश्चैव जानुदेशे व्यवस्थिताः॥ ५२

एवं कृत्वा तथा रूपं सुराणामद्भुतं महत्।
असुरं पीडयामास क्रोधाद् रक्तान्तलोचनः॥ ५३

मधोर्मेदोऽम्बुपूर्णा च पृथिवी समदृश्यत।
प्रमदेव घना चैव शुक्लांशुकनिवासिनी॥ ५४

मेदिनीत्येव शब्दश्च लब्धः पृथ्व्या नरोत्तम।
नामासुरसहस्रेण धरण्यां सम्प्रतिष्ठितम्॥ ५५

इस प्रकार नित्य पापरहित, जितेन्द्रिय, शत्रु और मित्रमें समानभावसे स्नेह रखनेवाले तथा सत्कर्मोंद्वारा सत्यको प्राप्त हुए मुनिगण जब श्रीहरिकी सेवा कर रहे थे और देवता तथा सिद्ध महर्षि उनकी स्तुति कर रहे थे, उस समय महान् देव श्रीहरिने अपने हयग्रीव नामक विशाल शरीरका स्मरण किया॥ ४८-४९॥ सर्वदेवमय वेदमय रूप धारण करके भगवान् श्रीहरि वहाँ शोभा पाने लगे। उनके मस्तकमें महादेव शिव और हृदयमें ब्रह्मा विराजमान थे॥ ५०॥ सूर्यकी किरणें उनकी रोमावलियाँ थीं। चन्द्रमा और सूर्य उनके नेत्रके स्थानमें प्रकाशित हो रहे थे। उनकी दोनों पिण्डलियोंकी जगह वसु और साध्यगण विराज रहे थे तथा समस्त संधि-स्थानोंमें देवताओंका वास था॥ ५१॥ जिह्वाके स्थानमें अग्निदेव थे। सत्या (वेदवाणीस्वरूपा) देवी सरस्वती उनकी वाणी थी। मरुद्गण और वरुण देवता उनके जानुदेश (घुटनों)-में स्थित थे॥ ५२॥ इस प्रकार सर्वदेवमय महान् एवं अद्भुत रूप धारण करके, जिनके नेत्रोंके कोये लाल थे, उन भगवान् हयग्रीवने क्रोधपूर्वक उस असुरको दबाया (इससे मधुका मेदा बाहर निकल आया)॥ ५३॥ उस समय मधुके मेदरूपी जलसे आच्छादित हुई यह सारी पृथ्वी ऐसी दिखायी देती थी, मानो श्वेत रंगकी साड़ी पहने हुए कोई हृष्ट-पुष्ट युवती शोभा पा रही हो॥ ५४॥ नरश्रेष्ठ! उस मेदके कारण ही पृथ्वीको 'मेदिनी' नाम प्राप्त हुआ। सहस्रों असुरोंके द्वारा यह नाम भूतलपर प्रतिष्ठित एवं प्रचारित हो गया॥ ५५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्कर-प्रादुर्भावविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

मधुके पतनसे समस्त प्राणियोंको हर्ष, वहाँ एकत्र हुए पर्वतों और वसन्त-ऋतुका वर्णन, मधुवाहिनी नदीका प्राकट्य और गौरीसिद्धाका माहात्म्य

वैशम्पायन उवाच

मधोर्निपतनं दृष्ट्वा सर्वभूतानि पुष्करे।
प्रहृष्टानि प्रगायन्ति प्रनृत्यन्ति च सर्वशः॥ १

सुपार्श्वो गिरिमुख्यस्तु काञ्चनैः शिखरोत्तमैः।
बहुधातुविचित्रैश्च खं लिखन्निव चाबभौ॥ २

गिरयश्चाभिशोभन्ते धातुभिः समरञ्जिताः।
प्रांशुभिः शिखराग्रैश्च सविद्युत इवाम्बुदाः॥ ३

पक्षवातोद्धतो रेणुश्चूर्णैः साञ्जनवालुकैः।
छादयन् पर्वताग्राणि महामेघ इवाबभौ॥ ४

मेघसंश्लिष्टशिखराः पक्षविक्षिप्तपादपाः।
काञ्चनोद्भेदबहुलाः खे तिष्ठन्तीव पर्वताः॥ ५

पक्षवन्तः सशिखरा हेमधातुभिरञ्जिताः।
पवनेन समुद्धूतास्त्रासयन्ति विहङ्गमान्॥ ६

काञ्चनाः पर्वताः सर्वे स्फाटिकैर्मणिभिश्चिताः।
सूर्यकान्तैश्च बहुभिश्चन्द्रकान्तैश्च निर्मलाः॥ ७

हिमवांश्च महाशैलः श्वेतैर्धातुभिराचितः।
काञ्चनैः शिखराग्रैश्च सूर्यपादप्रकाशितैः॥ ८

मणिभिश्च प्रकाशद्भिः पक्षान्तरविनिःसृतैः।
ताम्रपुष्पैश्च शिखरैर्दीप्यमानैः स्वतेजसा॥ ९

मन्दरश्चोग्रशिखरः स्फाटिकैर्मणिभिश्चितः।
वज्रगर्भो निरालम्बैः स्वर्गोपम इवाबभौ॥ १०

सहस्रशृङ्गः कैलासः शिलाधातुविभूषितः।
तोरणैश्चैव निबिडैः प्रांशुभिश्चैव पादपैः॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! मधुका पतन हुआ देख पुष्करमें समस्त प्राणी अत्यन्त प्रसन्न हो उच्चस्वरसे गाने और नृत्य करने लगे॥ १॥ पर्वतोंमें प्रधान सुपार्श्व अपने सुवर्णमय श्रेष्ठ शिखरोंसे आकाशमें रेखा खींचता-सा प्रतीत होता था। उसके वे शिखर अनेक धातुओंके कारण बड़े विचित्र दिखायी देते थे॥ २॥ अन्य पर्वत भी नाना प्रकारकी धातुओंसे रञ्जित हो अपने ऊँचे शिखरोंसे बिजलियोंसहित मेघोंके समान शोभा पा रहे थे॥ ३॥ पंखोंकी हवासे ऊपरको उठी हुई धूल अञ्जन (कोयले) और बालुकासहित चूर्णोंके साथ पर्वतोंके शिखरोंको ढकती हुई महान् मेघोंकी घटाके समान जान पड़ती थी॥ ४॥ उनके शिखर मेघोंसे आलिङ्गित हो रहे थे। वे अपने पंखोंकी वायुसे वृक्षोंको बिखेर रहे थे और उनमें सोनेकी बहुत-सी खानें प्रकट हुई थीं। इस प्रकार वे पर्वत आकाशमें खड़े हुए-से प्रतीत होते थे॥ ५॥ पंखों और शिखरोंसे सुशोभित, सुवर्णमय धातुओंसे अभिरञ्जित और वायुके वेगसे प्रताड़ित हुए वे पर्वत आकाशचारी पक्षियोंको भी भयभीत कर देते थे॥ ६॥ वहाँ सभी पर्वत सुवर्णमय थे। सबपर स्फटिकमणियोंकी राशि संचित थी और वे सभी बहुसंख्यक सूर्यकान्त तथा चन्द्रकान्तमणियोंके कारण निर्मल प्रभासे उद्भासित हो रहे थे॥ ७॥ महापर्वत हिमवान् श्वेत धातुओंसे व्याप्त था। उसके शिखरोंके अग्रभाग सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित हो सुवर्णमय दिखायी देते थे। उसके पंखोंके भीतरसे प्रकट हुई प्रकाशमान मणियाँ उसके शिखरोंको प्रकाशित कर रही थीं। लाल रंगके फूलोंसे सुशोभित तथा अपने तेजसे देदीप्यमान शिखर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ ८-९॥ भयङ्कर शिखरोंवाला मन्दराचल स्फटिकमणियोंकी राशिसे सम्पन्न था। उसके भीतर वज्रमणि (हीरा) छिपी हुई थी। वह अपने निरवलम्ब शिखरोंसे स्वर्गके समान सुशोभित होता था॥ १०॥ शिलाओं और धातुओंसे विभूषित सहस्र शिखरोंवाला कैलासपर्वत फाटकोंके समान ऊँचे और घने वृक्षोंसे सुशोभित हो रहा था॥ ११॥

प्रवादयद्भिर्गन्धर्वैः किन्नरैश्च प्रगायिभिः।
देवकन्याङ्गरागैश्च प्रक्रीडाद्रिरिवाबभौ॥ १२

मधुरैर्वाद्यगीतैश्च नृत्यैश्चाभिनयोद्गतैः।
शृङ्गारैः साङ्गहारैश्च कैलासो मदनायते॥ १३

आदित्याभासिभिः शृङ्गैर्भिन्नाञ्जनचयोपमैः।
विन्ध्यो नीलाम्बुदश्यामो विभिन्न इव तोयदः॥ १४

धात्वर्थं सर्वभूतानां मेरुपृष्ठे महाबले।
निर्वेमुर्विमलं तोयं मेघजालैरिवोत्तमैः॥ १५

शिलाभिर्बहुचित्राभिर्धातुभिर्बहुरूपिभिः।
प्रस्रवद्भिर्गुहाद्वारैः सलिलं स्फटिकप्रभम्॥ १६

ग्रीष्मान्ते वायुसंगूढा घना इव सविद्युतः।
चित्रैः पुष्पैस्तरुगणाः शोभन्त इव भूषिताः॥ १७

नागाः कनकसम्भूतैर्विचित्रैरिव भूषिताः।
विहंगमाभिलीनाश्च लतास्तरुसमाश्रिताः॥ १८

विलम्बन्त्यः सपुष्पाश्च नृत्यन्ते वायुघट्टिताः।
पवनेन समुद्धूता महता माधवेऽहनि॥ १९

मुमुचुः पुष्पसंघातं तोयं वेलेव वर्षति।
फलवद्भिश्च विपुलैः शाखास्कन्धावरोहिभिः।
पादपैर्वर्णबहुलैर्ध्रियेत च वसुंधरा॥ २०

मधुप्रिया मधुकरा मधुमत्ता विहंगमाः।
घोषयन्तीव गायन्तः कामस्यागमसम्भवम्॥ २१

विष्णुर्मधोर्निहन्ता च चकार मधुवाहिनीम्।
नदीं प्रस्रवनिर्भेदां सुतीर्थां बहुलोदकाम्॥ २२

अंगारवर्णसिकतां मधुतीर्थां मनोरमाम्।
विमलैरम्बुभिः पूर्णां पुष्पसंचयवाहिनीम्॥ २३

भाँति-भाँतिके बाजे बजानेवाले गन्धर्वों, मधुर गीत गानेवाले किन्नरों तथा देवकन्याओंके अङ्गरागोंसे शोभा पानेवाला कैलास क्रीडापर्वतके समान प्रतीत होता था॥ १२॥ मधुर वाद्ययुक्त गीतों, अभिनयपूर्ण नृत्यों, शृङ्गारमयी क्रीड़ाओं तथा नृत्यकालमें किये गये अङ्गविक्षेपों (चटकने-मटकने आदि)-से कैलासपर्वत मूर्तिमान् कामदेवके समान रसका उद्दीपक हो रहा था॥ १३॥ कटे हुए कोयलोंकी राशिके समान काले और सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित शिखरोंसे युक्त विन्ध्यपर्वत नील मेघके समान श्याम कान्ति धारण किये खण्डित हुए मेघके समान प्रतीत होता था॥ १४॥ समस्त प्राणियोंके जीवन-धारणके लिये उन सभी पर्वतोंने महान् शक्तिशाली मेरुपृष्ठपर उत्तम मेघसमूहोंके समान निर्मल जलकी वर्षा की॥ १५॥ बहुत-सी विचित्र शिलाओं, अनेक रूपवाली धातुओं तथा स्फटिकके समान निर्मल जलका स्रोत बहानेवाले गुफाद्वारोंसे उस पर्वतकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ १६॥ विचित्र पुष्पोंसे विभूषित हुए वृक्षगण वर्षा-ऋतुमें वायुसे आच्छादित हुए बिजलीसहित मेघोंके समान शोभा पाते थे अथवा सोनेके विचित्र अलंकारोंसे अलंकृत हुए हाथियोंके समान सुशोभित होते थे। जिनमें पक्षी छिपे हुए थे, वे वृक्षोंके सहारे फैली और लटकी हुई पुष्पित लताएँ वायुके झोंके खाकर नृत्य-सा कर रही थीं। वैशाखके दिनोंमें महान् वायुसे कम्पित हुई वे लताएँ उसी प्रकार पुष्प-समूहोंकी वर्षा कर रही थीं, जैसे लहरोंसे टकरायी हुई समुद्रकी तटभूमि जलकी बूँदें बिखेरती है। जिसमें बहुत-सी शाखाएँ, तने और बरोहें (जटाएँ) शोभा पाती हैं, ऐसे अनेक रंगवाले विशाल एवं फले हुए वृक्ष, मानो वसुधाको सहारा दे रहे थे॥ १७—२०॥ जिन्हें मकरन्द प्रिय है, वे मधुमत्त मधुकर (भ्रमर) और कोकिल आदि पक्षी कलगान करते हुए कामदेवके आगमनकी घोषणा-सी कर रहे थे॥ २१॥ मधु दैत्यका नाश करनेवाले भगवान् विष्णुने वहाँ मधुवाहिनी नामक नदी प्रकट की, जिसका स्रोत फूटकर बह रहा था। वह उत्तम तीर्थवाली नदी प्रचुर जलसे भरी हुई थी। उसकी बालुका अङ्गारके समान वर्णवाली थी। वह मधुतीर्थस्वरूपा नदी मनको मोहे लेती थी। उसमें निर्मल जल भरा हुआ था और वह ढेर-के-ढेर फूलोंको बहाये लिये जाती थी॥ २२-२३॥

विवेश पुष्करं सा तु ब्रह्मणो वाक्यनोदिता।
ऋषिभिश्चानुचरिता ब्रह्मतन्त्रनिषेविभिः॥ २४

धात्री कपिलरूपेण गौर्भूत्वा क्षरते पयः।
मधुरं वितते यज्ञे ब्रह्मणो वाक्यचोदिता॥ २५

सरश्च पृथिवीभूतं संधातुं प्राप्तवान्महीम्।
शुद्धं च भजते लोके शाश्वतं परमाद्भुतम्॥ २६

सरस्वत्याः समुद्भूतं ब्रह्मक्षेत्रे तमोनुदम्।
मरुतीर्थमतिक्रम्य पुष्करेषु विसर्पति॥ २७

सुचारुरूपा धर्मज्ञा अजा रूपेण छादयन्।
रूपं कनकवर्णाभं तपोयुक्तेन चेतसा॥ २८

अजगन्धकृतोन्मुक्तः सम्भूतः पर्वतो महान्।
गुरुद्वारगुणप्राणः शाश्वतः सिद्धसेवितः॥ २९

वेदिकाभिः सुचित्राभिः काञ्चनाभिर्विराजितः।
पुष्कराणि परीतानि त्वष्ट्रा विपुलदक्षिण॥ ३०

महामेरोर्यथा रूपं पञ्चभिर्धातुभिर्वृतः।
चेतनायाभिसम्पन्नो रूपेणाद्भुतदर्शनः॥ ३१

करिष्याम्यहमप्येतन्मनसा धर्मचारिणम्।
रूपं बहुविधं लोके पार्थिवीं चेतनां तथा॥ ३२

त्रींश्च लोकान् प्रपद्येयं पञ्चभिर्धातुलक्षणैः।
षष्ठेन च ससर्जेयं मनसा धर्मचारिणीम्॥ ३३

ब्रह्माजीके वाक्यसे प्रेरित हो उसने पुष्करमें प्रवेश किया। ब्रह्मतन्त्रसेवी ऋषि भी उसके पीछे-पीछे गये॥ २४॥ तदनन्तर विशाल यज्ञ चालू होनेपर ब्रह्माजीके कहनेसे पृथ्वी गायका रूप धारण करके वहाँ मधुर दूधकी धारा बहाने लगी॥ २५॥ उस दूधसे जो सरोवर परिपूर्ण हुआ, वह पृथिवीस्वरूप है। वही प्राणिसमुदायको धारण करनेके लिये भूतलपर आकर प्रतिष्ठित हुआ। वह अपने परम अद्भुत शुद्ध शाश्वतस्वरूपको भी धारण करता है॥ २६॥ सरस्वतीसे प्रकट हुआ वह दुःख एवं अन्धकारका नाश करनेवाला पुण्यतीर्थ मरुतीर्थको लाँघकर ब्रह्माजीके क्षेत्रभूत पुष्करतीर्थमें फैला हुआ है॥ २७॥ परम मनोहर रूपवाली धर्मज्ञा अजन्मा सरस्वती माया-रूपसे उस तीर्थके सुवर्णोपम दिव्यरूपको ढके रहती है। आलोचनायुक्त चित्तसे ही उसके यथार्थस्वरूप चिन्मय ब्रह्मका साक्षात्कार होता है॥ २८॥ वहाँ एक महान् पर्वत प्रकट हुआ, जो स्वाभाविक सुगन्धसे युक्त एवं उन्मुक्त है। उसका द्वार बहुत विशाल है तथा गुण ही उसके प्राण हैं। (अथवा गुरु ही उस अहंकाररूपी पर्वतपर चढ़नेके लिये द्वार है। गुरुके उपदेशसे ही उसके तत्त्वका ज्ञान होता है। तीनों गुण ही उसके जीवन हैं।) वह अनादि होनेके कारण सनातन कहा गया है। सिद्ध पुरुष भी उसका सेवन करते हैं। फिर मूढ़ोंकी तो बात ही क्या है॥ २९॥ प्रचुर दक्षिणा देनेवाले जनमेजय! सुवर्णमयी विचित्र वेदिकाओंसे वह पर्वत सुशोभित होता है। पुष्करतीर्थ विचित्र जगत्का निर्माण करनेवाले शिल्पी ब्रह्माजी (अथवा परमेश्वर)-से व्याप्त है॥ ३०॥ जैसे महामेरुगिरिका स्वरूप पाँच धातुओंसे युक्त होता है, उसी प्रकार वह पर्वत पाँच धातुओं (भूतों)-से घिरा हुआ है। रूपसे वह अद्भुत दिखायी देता है तथा जो सुप्रसिद्ध चेतना है उससे वह सम्पन्न जान पड़ता है॥ ३१॥ (अब अपनेको परमात्मासे अभिन्न मानकर 'मैं ही सब कुछ करता हूँ' इस भावसे तत्त्वका निरूपण कर रहे हैं।) मैं ही धर्माचरण करनेवाले इस शरीरका मानसिक संकल्पसे निर्माण करता हूँ। लोकमें जो नाना प्रकारका रूप दिखायी देता है, उसकी भी मैं ही अपने मनसे सृष्टि करता हूँ। इस पार्थिव शरीरमें जो चेतना है, उसको भी मैं ही अभिव्यक्त करता हूँ॥ ३२॥ मैं पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंसे तीनों लोकोंकी बातें जान सकता हूँ। छठी इन्द्रिय मनके द्वारा धर्मचारिणी वृत्तिकी रचना कर सकता हूँ॥ ३३॥

सङ्गेषु भावमोहाभ्यां पश्यन्ति च समृद्धयः।
विमुक्ताः सर्वसङ्गेभ्यो धारयन्ति परिग्रहान्॥ ३४

न च विन्देत मां कश्चिन्मनसा कामरूपिणम्।
पञ्चधातुनिबद्धश्च नानाभाषितचोदनः॥ ३५

ये च विष्णुमधीयन्ते बहुधा कामविग्रहैः।
ते मां पश्येयुरव्यक्तं तपसा दग्धकिल्बिषाः॥ ३६

ये च मामभिरोहेयुर्नरा धर्मपथे स्थिताः।
तेऽपि स्वर्गजितः सन्तः पश्येयुर्मां गतक्लमाः॥ ३७

यश्चैव पर्वतः प्रांशुर्मेरुपृष्ठे व्यवस्थितः।
एतमारुह्य युध्येयुः प्राणत्यागे सुनिर्मलाः॥ ३८

अप्सरोभिः समागम्य विचरेयुर्मनोजवाः।
नन्दनं वनमारुह्य काम्यकं च महद्वनम्॥ ३९

इमां विद्यां समास्थाय मद्भक्ताः पुष्करेष्विह।
शरीरं क्षपयिष्यन्ति व्रतैर्बहुविधैः कृतैः॥ ४०

सिद्धिं प्राप्य क्रमेयुस्ते कामैर्बहुविधैर्नराः।
इमं लोकममुं चैव सम्पतेयुर्यथासुखम्॥ ४१

गौरी सिद्धेतिव्याख्याता त्रिषु लोकेषु विद्यया।
प्रभावं तपसा वृत्तं दर्शयन्ती समाहिताः॥ ४२

षण्णां ज्ञानाभिसंधीनामभिज्ञानात् ससंग्रहाः।
भवेयुस्ते निरारम्भा धातुनिर्मुक्तबन्धनाः॥ ४३

जो समृद्धिशाली पुरुष समृद्धियोंका सङ्ग प्राप्त होनेपर भाव और मोहसे (संकल्पमात्र और भ्रमरूपसे) उन्हें देखते हैं तथा सब प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त हो विषय-संग्रह करनेवाले मन, बुद्धि, इन्द्रिय और प्राणोंको काबूमें करते हैं, वे ही तत्त्वज्ञानके अधिकारी हैं॥ ३४॥ प्रायः सब लोग पाञ्चभौतिक शरीरमें बँधे रहकर नाना प्रकारके फलोंकी चर्चा करनेवाली वेदवाणीसे प्रेरित हो सकाम कर्मोंमें लगे रहते हैं, अतः कोई भी मनसे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले मुझ परमात्माको नहीं उपलब्ध कर पाते॥ ३५॥ जो इच्छानुसार ग्रहण किये गये श्रीराम-कृष्ण आदि विग्रहोंसे उपलक्षित भगवान् विष्णुका नाम-जप-कीर्तन आदिके द्वारा बारम्बार स्मरण करते हैं, वे तपस्यासे अपने पापोंको दग्ध कर देनेवाले उपासक मुझ अव्यक्त परमात्माका साक्षात्कार कर सकते हैं॥ ३६॥ जो मनुष्य धर्मके मार्गपर स्थित हो उक्त साधनसोपानके द्वारा मुझ निर्गुण ब्रह्मरूपी प्रासादपर आरोहण करते हैं, वे साधुपुरुष भी पाप-तापसे रहित हो स्वर्गपर विजय पा जाते और मेरा साक्षात्कार कर लेते हैं॥ ३७॥ मेरुपृष्ठपर जो ऊँचा पर्वत खड़ा है, उसपर आरूढ़ होकर निर्मल अन्तःकरणवाले पुरुष प्राणों (इन्द्रियों)-की आसक्तिका त्याग करनेके लिये युद्ध—संघर्ष (उग्र साधना) करते हैं॥ ३८॥ सिद्धिके पथपर बढ़नेवाले साधक मनके समान वेगशाली हो नन्दनवन और विशाल काम्यकवनमें पहुँचकर अप्सराओंसे मिलते और उनके साथ विहार करते हैं॥ ३९॥ मेरे भक्त इस विद्याको पाकर पुष्करतीर्थमें नाना प्रकारके व्रतोंका अनुष्ठान करके अपने शरीरको क्षीण कर देंगे॥ ४०॥ वे मनुष्य सिद्धि पाकर नाना प्रकारकी कामनाओंसे सम्पन्न हो क्रमशः ऊपर उठते और आनन्दपूर्वक इहलोक तथा परलोकमें घूमते-फिरते हैं॥ ४१॥ जब एकाग्रचित्त योगी तपस्यासे प्राप्त हुए पूर्वोक्त प्रभावको दिखाते हैं, तब विद्या (शास्त्र और आचार्यके उपदेशसे प्राप्त हुए ज्ञान)-से सिद्ध हुई गौरीदेवी दर्शन देती हैं, जो तीनों लोकोंमें सिद्धाके नामसे विख्यात हैं॥ ४२॥ कर्माङ्ग, बाह्य और आभ्यन्तर-भेदसे भगवन्मूर्तिके दो प्रतीक, विराट, सूत्रात्मा और अन्तर्यामी—ये सब मिलकर छः ज्ञानाभिसंधियाँ (संयमके स्थान) हैं। इनका जो सम्पूर्ण रूपसे अनुभव है, उससे कामनाका अभाव हो जानेके कारण साधकोंको अक्षीण योगैश्वर्य प्राप्त होते हैं। वे किसी भी कार्यका आरम्भ नहीं करते और पाञ्चभौतिक बन्धनोंसे मुक्त हो जाते हैं॥ ४३॥

सहस्रगुणमप्यत्र दत्त्वा दानफलादिव।
अविमानेन विप्राणां मनःशुद्धेन कर्मणा॥ ४४

सर्वत्रैवाप्रमेयेण अत्यन्तं फलमाप्नुयुः।
अमुष्मिल्ँलोके धर्मज्ञाः सह सर्वकुलोद्भवैः॥ ४५

येषामिह च सांनिध्यं यज्ञे ब्राह्मणसंकुले।
ते भूयो यजमानाद्या अभिषिच्य पुनः पुनः॥ ४६

तथा तां मन्यसे गौरीं मनसा धर्मचारिणीम्।
अनुग्रहाय भूतानां तन्ममाग्रे तपोधने॥ ४७

सत्य एष परोऽविद्ये भविता नात्र संशयः।
नाफलो विद्यते धर्मश्चरितो धर्मचारिणा॥ ४८

जैसे यहाँ कोई अपराधी राजाको सहस्रगुना कर देकर उस करदानके फलसे राजाकी प्रसन्नता पाकर उस अपराधसे मुक्त हो जाता है, उसी प्रकार धर्मज्ञ पुरुष सर्वत्र ही असंकुचित भावसे ब्राह्मणोंका सम्मान और शुद्धभावसे निष्कामकर्मका अनुष्ठान एवं दान करके अपने समस्त पूर्वजोंके साथ ब्रह्मलोकमें जाकर आत्यन्तिक दुःखका निवारण करनेवाले अक्षय फलको प्राप्त कर लेते हैं॥ ४४-४५॥ जिन यजमानों और ऋत्विजोंका ब्राह्मणोंसे भरे हुए यज्ञमें सांनिध्य है (यज्ञाङ्ग देवता आदिमें चित्तकी एकाग्रता है), वे यजमान आदि बारम्बार बहुत-से यज्ञोंमें अवभृथस्नान करके पुनः पूर्वोक्त फल प्राप्त कर लेते हैं॥ ४६॥ राजन्! तुम दान और यज्ञकी सम्पत्तिको जैसे मेरे सामने स्थित समझते हो, उसी प्रकार पूर्वोक्त गौरी (ब्रह्मविद्या)-को भी यदि तुम मुझ तपोधनके समीप—मेरे सम्मुख उपस्थित मानते हो तो अबसे ऐसा न मानना; क्योंकि वे गौरीदेवी सम्पूर्ण प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये मनसे निरन्तर धर्मका आचरण करती हैं (यह बाह्य सम्पत्ति तो परिमित है, परंतु वे आन्तरिक ज्ञान-सम्पत्ति होनेके कारण अनन्त हैं।) ॥ ४७॥ यह आत्मा अबाधित सत्य है; परंतु विद्यारहित पुरुषसे बहुत दूर हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। निष्काम धर्मका आचरण करनेवाले पुरुषके द्वारा आचरित हुआ धर्म कभी निष्फल नहीं होता (अतः धर्मसे भी चित्तशुद्धिके द्वारा आत्मतत्त्वका साक्षात्कार हो सकता है)॥ ४८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्कर-प्रादुर्भावविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

पुष्करमें श्रीविष्णु आदिकी तपस्या और उसके प्रभावका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

दिशं जिगमिषुर्दिव्यामुत्तरां सत्यसाधनः।
तथा स धातुनिचये पुण्ये पर्वतरोधसि॥ १

विष्णुः परमधर्मात्मा एकपादेन तिष्ठति।
दशवर्षसहस्राणि पुष्करे पुष्करेक्षणः॥ २

आत्मन्यात्मानमाधाय तपसा ब्रह्मसम्भवः।
घटते कर्मणोग्रेण लोकमुत्थानकारणात्॥ ३

भासुरो भस्मनाऽऽच्छाद्य गात्राणि स्वयमात्मनः।
अष्टौ वर्षसहस्राणि सहस्रं च तपोधनः॥ ४

तेजसा तेन ज्योतींषि विभाव्य ब्राह्मणर्षभः।
तिष्ठते नभसो मध्ये योगात्मा भावयञ्जगत्॥ ५

सोमो विषयमाक्षिप्य मनसा धारयन्मनः।
युक्तः परमधर्मात्मा ब्राह्मीं सिद्धिमुपागतः॥ ६

सम्प्रदृश्यत सर्वत्र दिवि भुव्यन्तरे तथा।
ज्योतिष्णु कर्म कुर्वाणो बहुरूपः स सम्पदा॥ ७

महेश्वरोऽतिगूढात्मा वृषरूपेण तिष्ठति।
उद्धृत्य दक्षिणं पादं वायुभक्षः समाहितः॥ ८

अष्टौ वर्षसहस्राणि सहस्रं शतमेव च।
महायोगी महादेवो नियमाद् ब्रह्मसम्भवः॥ ९

अथ वायुर्घनीभूतो अन्ते चरति गोपतेः।
फेनीभूतं समुद्गारैः पवनं निर्गिरन्मुखात्॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सत्य ही जिनका साधन है, उन परम धर्मात्मा भगवान् विष्णुने उत्तर दिशा (सिद्धिकी पराकाष्ठा मोक्ष)-को जानेकी इच्छा की। वे कमलनयन श्रीहरि पुष्करतीर्थमें धातुओंकी राशिसे परिपूर्ण एक पर्वतके पवित्र तटपर एक ही पैरसे दस हजार वर्षोंतक खड़े रहे॥ १-२॥ ब्रह्माको भी जन्म देनेवाले वे भगवान् विष्णु अपने चित्तको विशुद्ध आत्मामें विचारद्वारा विलीन करके उत्थान (मोक्ष)-के लिये उग्रकर्म (घोर तपस्या) करने लगे। साक्षात् परमेश्वर होकर भी उन्होंने जगत्को शिक्षा देनेके लिये ऐसा किया॥ ३॥ इसी प्रकार प्रकाशमान सोम भी स्वयं ही अपने अङ्गोंको भस्मसे आच्छादित करके नौ हजार वर्षोंतक तपस्यारूपी धनके संचयमें लगे रहे॥ ४॥ तपस्याद्वारा प्राप्त हुए उस प्रसिद्ध तेजसे समस्त ग्रह-नक्षत्रोंको तिरस्कृत करके योगात्मा ब्राह्मणशिरोमणि सोम सम्पूर्ण जगत्को आह्लाद प्रदान करते हुए आकाशके मध्यभागमें प्रकाशित होते हैं॥ ५॥ परम धर्मात्मा सोमने बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके विषयोंपर अधिकार कर लिया और योगयुक्त होकर वे ब्राह्मी सिद्धिको प्राप्त हुए॥ ६॥ वे प्रकाश फैलानेका कार्य करते हुए स्वर्ग, पृथ्वी और दोनोंके मध्यभाग अन्तरिक्षमें सर्वत्र दिखायी देते हैं तथा अपनी योग-सम्पत्तिसे नाना प्रकारके रसरूप बहुत-से स्वरूप धारण कर लेते हैं॥ ७॥ अपने स्वरूपको अत्यन्त गुप्त रखनेवाले भगवान् महेश्वर वृषभरूपसे तपस्याके लिये अपना दाहिना पैर उठाकर नौ हजार एक सौ वर्षोंतक खड़े रहे। उन दिनों केवल वायु ही उनका आहार था। वे मनको ध्येय वस्तुमें निरन्तर एकाग्र रखते थे। ब्रह्माजीके उत्पत्तिस्थान महायोगी महादेवजी नियमपूर्वक तपस्यामें लगे रहे॥ ८-९॥ तदनन्तर एक दिन इन्द्रियोंका निग्रह करनेवाले भगवान् महेश्वरके निकट घनीभूत वायु विचरण करने लगी। उस समय वृषभरूपधारी महादेवजीने अपने उद्गारों (लार आदि)-के द्वारा फेनके रूपमें परिणत हुई उस वायुको भीतर खींचकर फिर मुखसे बाहर निकाला॥ १०॥

स निष्क्रान्तस्ततो वक्त्रात् प्राणेन परमाप्तवान्।
निर्यासभूतः पतितो नैवार्द्रो नैव पार्थिवः॥ ११

स फेनो वारिणाऽऽविश्य चचार वसुधातले।
नैवार्द्रो नैव शुष्काङ्गो वायुसंघातमागतः॥ १२

तत्काले फेनमुत्क्षिप्य पवनः सह वारिणा।
निरालम्बे निरालम्बस्त्वभ्राणि समपद्यत॥ १३

ते क्षिपन्ति पयो भूमावात्मानं स्वेन घट्टिताः।
नीलमेघारुणप्रख्या नैवार्द्रा नैव पार्थिवाः॥ १४

ब्राह्मीं मूर्तिं समाधाय वायुः सर्वत्रगो वशी।
समाः सहस्रं सम्पूर्णं चचार विपुलं तपः॥ १५

वह्निर्बहुजटी भूत्वा चीरवल्कलवासभृत्।
तपस्तप्यदनाहारो मौनमास्थाय पौष्करे॥ १६

वर्षाणां च सहस्राणि त्रीणि चैकं च यत्नतः।
तस्याग्नेस्तेजः सम्भूतो महानग्निः प्रवर्तते॥ १७

स्वर्गप्रकाशं कृत्वा च स्वर्गवासी तमोनुदः।
दिवि भूतप्रकाशाख्यस्तपसा ब्रह्मसम्भवः॥ १८

तत्तमो भुवि राजेन्द्र मानुषेषु प्रतिष्ठितम्।
भास्करस्तेजसंहारस्ततो भवति सत्तमः॥ १९

मर्त्यानां सर्वभूतानां तेज आक्षिप्य वर्तते।
न तु योगबले राजन् ब्राह्मणस्य विशेषतः।
तत् तमो नाशयेद् रात्रौ नाप्यहो भविताद्वयम्॥ २०

उद्गारवायुके साथ उनके मुखसे निकली हुई वह वायु रूपान्तरको प्राप्त हो वृक्षोंकी गोंदके समान नीचे गिर पड़ी। उस समय वह न तो गीली थी और न पार्थिव—पाषाण आदिके समान सूखी ही॥ ११॥ वायुका वह रूप फेनके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह फेन जलसे आविष्ट हो भूतलके समीपवर्ती अन्तरिक्षमें विचरने लगा। वह न गीला था न सूखा। वायुके ही घनीभूत स्वरूपको प्राप्त हो गया था॥ १२॥ उस समय जलसहित फेनको ऊपर उछालकर निराधार आकाशमें निराधार रुकी हुई वह वायु मेघोंके रूपमें परिणत हो गयी॥ १३॥ वे ओलोंके समान अपने ही स्वरूपसे घनीभावको प्राप्त हो नील मेघ बनकर अपने आत्मा जलको ही इधर-उधर बरसाते थे। सूर्यसारथि अरुणकी कान्ति पड़नेसे वे लाल रंगके भी दिखायी देते थे। वे भी न तो गीले थे और न मिट्टीके ढेलोंके समान सूखे ही॥ १४॥ तदनन्तर सर्वत्र विचरनेवाले वायुदेवने ब्राह्मणका शरीर धारण करके मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए पूरे एक सहस्र वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की॥ १५॥ अग्निदेव भी बहुत-सी जटाएँ बढ़ाये चीर और वल्कल वस्त्र धारण किये बिना कुछ खाये-पीये मौन हो पुष्करतीर्थमें चार हजार वर्षोंतक यत्नपूर्वक तपस्यामें लगे रहे। उस अग्निके तेजसे एक महान् अग्निका प्रादुर्भाव हुआ, जो स्वर्गमें प्रकाश फैलाकर वहीं रहने और वहाँके अन्धकारको दूर करने लगी। (वही सूर्य आदिके रूपमें प्रसिद्ध है।) वह ब्राह्मण अग्नि अपनी तपस्याके प्रभावसे स्वर्गमें 'भूतप्रकाश' नामसे प्रसिद्ध हुई॥ १६—१८॥ राजेन्द्र! वह अन्धकार भूतलपर मनुष्योंमें प्रतिष्ठित हुआ। (यहाँ अन्धकारका अर्थ धूम तथा उससे उपलक्षित धूममार्ग है, जो वर्णाश्रमाभिमानी मनुष्योंमें प्रतिष्ठित है।) तेजःपुञ्ज सूर्य उस पूर्व अग्निकी अपेक्षा अत्यन्त उत्कृष्ट हैं॥ १९॥ राजन्! योगबलके होनेपर सूर्यदेव मर्त्यलोकके अन्य समस्त प्राणियोंके तेजको तिरस्कृत कर देते या छीन लेते हैं। परंतु ब्राह्मणके तेजका वे संहार नहीं करते हैं। उसपर विशेष ध्यान रखते हैं। जो सूर्यदेवका उपासक है, उसके तम (धूममार्ग)-का वे रातमें भी नाश कर देते हैं (अर्थात् सूर्योपासककी रातमें मृत्यु हो तो भी उसे अर्चि आदि मार्ग ही मिलता है)। परंतु जो सकाम कर्मोंमें लगा हुआ है, उसकी दिनमें मृत्यु हो तो भी वह दिन उसे अद्वय (मोक्ष) पदकी प्राप्ति करानेवाला नहीं होता॥ २०॥

पुष्पमित्रो महातेजा यक्षः सर्वत्रगो वशी।
तपश्चरति धर्मात्मा पुष्करेषु समाहितः॥ २१

महेन्द्रशिखराद्धारा यावन्त्यो यान्ति मेदिनीम्।
तावत्स्वरूपमास्थाय तिष्ठते निखिलाः समाः॥ २२

जानुभ्यां पतितो भूमौ ज्योतिर्नभसि पश्यति।
समाः सहस्रं निखिलं नेत्रैरनिमिषैर्जगत्॥ २३

नेत्राणि बहुधा तस्य नेत्रान्तैरभिनिःसृताः।
मध्यन्दिनकरे प्राप्ते रश्मिवान् सपरिग्रहे॥ २४

ते रश्मयः प्रभानेत्रैः शतशोऽथ सहस्रशः।
रराज तेजःसंयोगाद् विद्वद्भिरिव पावकः॥ २५

स विस्फुलिङ्गैर्नेत्रान्तैरादित्यमनुवर्तते।
कर्मणोऽन्ते युगान्ते वा जगतो बहुरूपिणः॥ २६

बहुतापः पुनर्भूत्वा निषण्णो वसुधातले।
समाः सहस्रं सम्पूर्णं तपस्तेपे सुदारुणम्॥ २७

निगृहीतेन्द्रियो भूत्वा अप्सरोभिर्ललाम ह।
मेरोः शिखरमासाद्य कामं कामेन निर्वमन्॥ २८

तपःकामः स यक्षस्तु कुबेरो नरवाहनः।
विष्णुरेव तपोऽध्यक्षस्तेजसोऽन्ते विजृम्भति॥ २९

न हि कश्चित् पुमानस्ति य एवं तप आचरेत्।
त्रिषु लोकेषु राजेन्द्र ऋते विष्णुं सनातनम्॥ ३०

वासुकिर्बहुशीर्षस्तु नागेन्द्रो मौनमास्थितः।
तप आचरते सम्यङ् निधाय मनसा मनः॥ ३१

सर्वत्र जानेमें समर्थ और जितेन्द्रिय यक्ष महातेजस्वी धर्मात्मा पुष्पमित्र एकाग्रचित्त हो पुष्करमें तपस्या करते हैं॥ २१॥ महेन्द्रपर्वतके शिखरसे जलकी जितनी धाराएँ पृथ्वीपर जाती हैं, उतने स्वरूप धारण करके वे सारे वर्षोंतक तपस्यामें ही लगे रहते हैं॥ २२॥ वे पृथ्वीपर घुटने टेककर पड़ जाते हैं (अर्थात् सूर्यदेवको नमस्कार करते हैं)। इसका फल यह होता है कि सूर्यमण्डलके मध्यभागमें जो आकाश-सा प्रकाशित होता है, उसमें एकटक आँखें लगाकर वे सहस्रों वर्षोंतक सम्पूर्ण जगत्को देखते रहते हैं॥ २३॥ सूर्यमण्डलके मध्यभागमें दृष्टि डालनेपर अंशुमाली सूर्य परिवेष (घेरे)-की भाँति प्रतीत होते हैं और मध्यभागमें गोल दर्पणके समान दिखायी देते हैं। जब पुष्पमित्रके नेत्र-प्रान्त सूर्यमण्डलमें पहुँचते, तब सूर्यकी प्रभासे मिले हुए नेत्रोंके साथ वे सुप्रसिद्ध सूर्यरश्मियाँ वहाँसे निकलकर ऊपर-नीचे इधर-उधर सब ओर फैल जातीं और सूर्यकी धारणा करनेवाले उन यक्षराजके लिये बहुसंख्यक—सैकड़ों और हजारों नेत्र बन जाती थीं। वे उन अनेक नेत्रोंके तेजसे संयुक्त होकर ऐसी शोभा पाते थे, जैसे विद्वान् ऋत्विजोंसे घिरे हुए अग्निदेव सुशोभित होते हैं॥ २४-२५॥ जब देहारम्भके कर्मोंका क्षय हो जाता है अथवा अनेक रूपवाले जगत्का प्रलयकाल उपस्थित होता है, उस समय वे पुष्पमित्र अथवा भावी कुबेर आगकी चिनगारियोंके समान प्रकाशित होनेवाले अपने नेत्रकोणोंके द्वारा सूर्यदेवका अनुवर्तन करते हैं॥ २६॥ अपनी तपस्याका प्रभाव बहुत अधिक बढ़ जानेपर वे पृथ्वीतलपर बैठ गये और इन्द्रियोंको काबूमें करके पूरे एक सहस्र वर्षोंतक पुनः अत्यन्त दारुण तपस्या करते रहे। तत्पश्चात् मेरुपर्वतके शिखरपर जाकर भोगके द्वारा ही कामका परित्याग करते हुए उन्होंने अप्सराओंके साथ रमण किया॥ २७-२८॥ तपस्याकी कामनावाला जो पुष्पमित्र नामक यक्ष था, वही नरवाहन कुबेर हुआ। उसके रूपमें तपस्याके अध्यक्ष भगवान् विष्णु ही थे, जो तपके अन्तमें तेजोवृद्धिको प्राप्त हुए॥ २९॥ राजेन्द्र! तीनों लोकोंमें सनातन भगवान् विष्णुको छोड़कर दूसरा कोई पुरुष ऐसा नहीं है, जो ऐसी कठोर तपस्या कर सके॥ ३०॥ अनेक सिरवाले नागराज वासुकि भी मौन हो बुद्धिके द्वारा मनको सम्यक्-रूपसे ब्रह्ममें लगाकर तपस्या करते थे॥ ३१॥

शेषः सत्यधृतिर्नागो बलवान् ब्रह्मसम्भवः।
वृक्षमारुह्य धर्मात्मा अवाक्छीर्षोऽवलम्बते॥ ३२

जिह्वाभिर्लेलिहानाभिर्गात्रजं विषमुत्सृजन्।
समाः सहस्रं सम्पूर्णं निराहारस्तपोधनः॥ ३३

कालकूटं विषं तद्धि सुमहत् समपद्यत।
येन लोको ह्यभिग्रस्तो न सुखं विन्दते नृप॥ ३४

सर्वत्रानुगतं तीक्ष्णं भुजङ्गेषु महीपते।
जङ्गमं स्थावरं चैव सर्वत्रानुगतं विषम्॥ ३५

परस्परविवृद्धेन हिंसायुक्तेन भारत।
नाशयत्यात्मनोऽङ्गानि तेन तीक्ष्णेन भारत॥ ३६

अथ ब्रह्मा महाभागो भूतानां हितकाम्यया।
मन्त्रं विसृजते राजन् ब्रह्माक्षरमहिंसकम्॥ ३७

गरुत्मान् विततैः पक्षैर्नखाग्रैः सलिलं महीम्।
समाः सहस्त्रं सम्पूर्णं चूलाग्रेणावलम्बिना॥ ३८

सत्यको धारण करनेवाले ब्राह्मणपुत्र कश्यपनन्दन बलवान् नाग धर्मात्मा शेष एक वृक्षपर चढ़कर नीचेको सिर किये लटक रहे थे तथा लपलपाती हुई जिह्वाओंसे अपने शरीरका विष त्याग रहे थे। तपस्याके धनी शेषने पूरे एक सहस्र वर्ष निराहार रहकर बिताये॥ ३२-३३॥ उनका छोड़ा हुआ वह विष ही महान् कालकूट नामक विष हो गया। नरेश्वर! उस विषसे ग्रस्त हुआ लोक कभी सुख नहीं पाता है॥ ३४॥ पृथ्वीनाथ! वह तीक्ष्ण विष सर्पोंमें सर्वत्र व्याप्त है। स्थावर और जंगम सभी प्राणियोंमें अनुगत है॥ ३५॥ भारत! एक-दूसरेके प्रति बढ़े हुए हिंसाभावसे युक्त तीव्र क्रोधके रूपमें परिणत हुआ तप तामस होकर साधकके अपने ही अङ्गोंका नाश कर डालता है॥ ३६॥ राजन्! हिंसक विषकी उत्पत्तिके अनन्तर महाभाग ब्रह्माने सम्पूर्ण भूतोंके हितकी कामनासे हिंसाका निवारण करनेवाले—विषनाशक मन्त्रकी सृष्टि की, जो ब्रह्माक्षरमय (वेदाक्षरमय) है॥ ३७॥ गरुड़ अपने फैले हुए पंखों, नखाग्रों (पञ्चाङ्गों) तथा लटकती हुई शिखाके अग्रभागसे जल (जीवन) और पृथ्वी (शरीर)-की पूरे सहस्र वर्षोंतक रक्षा करें*॥ ३८॥

* यहाँ मूलमें मन्त्रका विशेषण 'ब्रह्माक्षरमहिंसकम्' आया है। इसमें ब्रह्मसे प्रणव लिया गया है। 'अहिंसक अक्षर' से अमृत बीज 'व' को ग्रहण किया गया है। इस बीजको विततपक्ष अर्थात् दीर्घस्वरसे युक्त कहा गया है। इसके बाद 'गरुत्मान्' पद आता है। इसका उपयोग पञ्चाङ्गन्यासमें किया जाता है। यथा—'ॐ वाँ गरुत्मान् हृदयाय नमः अङ्गुष्ठयोः' (ऐसा कहकर दोनों हाथोंकी तर्जनी अङ्गुलियोंसे दोनों अंगूठोंका स्पर्श करे।) 'ॐ वीं गरुत्मान् शिरसे स्वाहा तर्जन्योः' (ऐसा कहकर दोनों हाथोंके अङ्गुष्ठोंसे दोनों तर्जनी अङ्गुलियोंका स्पर्श करे।) 'ॐ वूं गरुत्मान् शिखायै वषट् मध्यमयोः' (ऐसा कहकर दोनों हाथोंके अङ्गुष्ठोंसे दोनों मध्यमा अङ्गुलियोंका स्पर्श करे।) 'ॐ वै गरुत्मान् कवचाय हुम् अनामिकयोः' (पूर्ववत् अङ्गुष्ठोंसे अनामिका अङ्गुलियोंका स्पर्श करे।) 'ॐ वौं गरुत्मान् नेत्रत्रयाय वौषट् कनिष्ठयोः' (अङ्गुष्ठोंसे कनिष्ठिका अङ्गुलियोंका स्पर्श।) 'ॐ वः गरुत्मान् अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठयोः' (ऐसा कहकर हथेलीका और उसके पृष्ठभागसे पृष्ठभागका स्पर्श करे।) यह करन्यास हुआ। अङ्गन्यास भी इन्हीं मन्त्रोंसे करना चाहिये। यहाँ करन्यास वाक्योंमेंसे अङ्गुलियोंके नाम हटा देनेपर वे ही अङ्गन्यास वाक्य हो जायँगे। अङ्गन्यासमें क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, कवच तथा नेत्रत्रय—इन पाँच अङ्गोंमें न्यास किया जाता है। इसीमें छठा अस्त्रन्यास है। अंगूठेको अलग करके सीधी अङ्गुलियोंसे हृदय और सिरमें न्यास करना चाहिये। अंगूठेको अंदर करके मुट्ठी बाँधकर शिखाका स्पर्श करना चाहिये। कोई-कोई केवल अंगूठेसे शिखाका स्पर्श बताते हैं। कवचन्यासमें दायें हाथकी सभी अङ्गुलियोंसे बायीं भुजाका और बायें हाथकी सभी अङ्गुलियोंसे दाहिनी भुजाका स्पर्श करना चाहिये। दो नेत्रोंके अतिरिक्त तीसरा नेत्र ललाटमें होता है। इसका न्यास करते समय तर्जनी और अनामिकासे दोनों नेत्रोंका और मध्यमासे ललाटका एक साथ स्पर्श करना चाहिये। अस्त्रन्यासमें दाहिने हाथको बायीं ओरसे सिरके ऊपरसे ले आकर बायीं हथेलीपर ताली बजायी जाती है। कुछ लोगोंका मत है कि नाराचमुद्रासे दोनों हाथोंको ऊपर उठाकर अंगूठे और तर्जनीके द्वारा मस्तकके चारों ओर करतलध्वनि करनी चाहिये।

३८वें श्लोकके 'सलिलं मही'-से लेकर..........'वलम्विना' तक तान्त्रिक पद्धतिसे मूलमन्त्रका वर्णन है। आचार्य नीलकण्ठने उसका उद्धार करके इस पञ्चाक्षर मन्त्रका स्वरूप यों निश्चित किया है— 'वं ह्स्रः लं वषट्' इस मन्त्रका विनियोग इस प्रकार है— ॐ अस्य श्रीगरुत्मन्मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दः गरुत्मान् देवता वं बीजं ह्स्रः शक्तिः लं कीलकं विघ्ननाशने विनियोगः। विनियोगके पश्चात् गरुडका निम्नाङ्कित रूपसे ध्यान करना चाहिये—

पर्णभारैश्च विकचैर्विस्तीर्णैर्वसुधातले।
रराज वसुधा चैव पर्णैर्बहुविचित्रितैः॥ ३९

वे अपने फैले हुए विकसित पंखोंके भारसे पृथ्वी और आकाशको व्याप्त करके स्थित हैं, इस वसुधापर (तथा शरीरमें भी अन्तर्यामीरूपसे) विराजमान हैं तथा उनके बहुसंख्यक एवं विचित्र पंखोंसे पृथ्वीतलकी बड़ी शोभा होती है। (यह गरुडजीका ध्यान है)॥ ३९॥

येन वृत्तेन जीवेयुः सर्वभूतानि भारत।
इह लोके मनुष्येन्द्र देवलोके च भारत।
द्यौरिवाचितनक्षत्रा मही तलविसर्पिभिः॥ ४०

(अब मन्त्रका माहात्म्य बताते हैं—) भरतनन्दन! नरेन्द्र! गरुडमन्त्रके जपसे इहलोक तथा देवलोकके भी सभी प्राणी जीवित हो सकते हैं। नीचेकी ओर जानेवाले प्राणियों (तथा इन्द्रिय आदि)-के साथ यह पृथ्वी (एवं देह) विषरहित हो नक्षत्रोंसे व्याप्त हुए आकाशकी भाँति शोभा पाती है॥ ४०॥

हिमवान् हिमसम्पाते भवत्येकचरो वशी।
पुष्कराम्भसि धर्मात्मा मत्स्योल्लिखितमूर्धजः॥ ४१

धर्मात्मा हिमवान् भी हेमन्त और शिशिर-ऋतुमें पुष्करके जलमें खड़े हो तपस्या करते थे, उस समय उस सरोवरके मत्स्य उनके सिरके बालोंमें उलझ जाते थे। वे मन और इन्द्रियोंको वशमें करके अकेले ही वहाँ विचरते और तप करते थे॥ ४१॥

अथ स्वबलमाक्रम्य पृथिवीं प्रांशुदेहिनीम्।
तपश्चरति धर्मात्मा बाहुमुद्यम्य दक्षिणम्॥ ४२

वे धर्मात्मा हिमवान् अपने बलसे ऊँचे शरीरवाली पृथ्वीको दबाकर दाहिनी बाँह ऊपर उठाये तपस्यामें संलग्न रहते थे॥ ४२॥

साग्रं वर्षसहस्रं च शतमेकं च सुव्रत।
तपश्चरति संयोगाद् वायुभक्षः समाहितः॥ ४३

सुव्रत! वायुका ही आहार करते हुए एकाग्रचित्त हो उत्तम योगका आश्रय ले हिमवान्ने ग्यारह सौ वर्षोंतक तपस्या की॥ ४३॥

समाधियोगात् सङ्गाद् वा ब्रह्मयोगस्य भारत।
येनेयं पृथ्वी राजन् धार्यते ब्रह्मयोनिना॥ ४४

अनाद्यन्तेन नित्येन सर्वत्र विषयैषिणा।
योऽसौ विष्णुरगाधात्मा परमात्मा निराकृतिः॥ ४५

भरतनन्दन! राजन्! जो ब्रह्माजीके उत्पत्तिस्थान हैं, अनादि, अनन्त और नित्य हैं तथा जीवरूपसे सर्वत्र विषयका अनुसंधान करनेवाले हैं, जो समाधियोग अथवा प्रणवके जप एवं चिन्तनसे विशिष्ट हो यह सारी पृथ्वी धारण करते हैं, वे साक्षात् परमात्मा विष्णु हैं (वे ही कूर्म आदिरूपसे इस वसुधाको धारण करते हैं)। उनका स्वरूप अगाध है तथा वे निराकार ब्रह्म हैं॥ ४४-४५॥

दिने निषण्णो भवति रात्रौ भवति वै स्थिरः।
सत्यसंधः स धर्मात्मा कामकारकरो भवेत्॥ ४६

वे दिनमें बैठे होते हैं (अर्थात् विद्याके द्वारा प्राप्य हैं) और रातमें खड़े रहते हैं (अर्थात् अविद्यासे ऊपर उठे हुए हैं)। वे सत्य-प्रतिज्ञ धर्मात्मा श्रीहरि इच्छानुसार (लीलापूर्वक) कार्य करते हैं॥ ४६॥

पर्णभारैश्च विकचैर्विस्तीर्णैर्वसुधातले। रराज वसुधा चैव पर्णैर्बहुविचित्रितैः॥

जो विस्तृत एवं विकसित पंखोंके भारसे सारी पृथ्वी और आकाशको व्याप्त करके स्थित हैं, जो भूतलपर (और शरीरके भीतर भी अन्तर्यामीरूपसे) विराजमान हैं तथा जिनके बहुत विचित्र पंखोंसे पृथ्वीकी बड़ी शोभा हो रही है (उन गरुडदेवका मैं चिन्तन करता हूँ)।

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रका ५ लाख जप करनेसे यह सिद्ध हो जाता है।

तस्य यः सोद्यतः पाणिः पृथिव्यां पृथिवीसमः।
रात्रौ स तपनो भवति मण्डलं विपुलं नभः॥ ४७

स चन्द्रविषयं राजञ्छमयामास रुन्धति।
ग्रहाणां गतयश्चैव ताराणां च विशेषतः॥ ४८

तां छायामाक्षिपन् सोमात् स्रवद्भिर्मण्डलेन वै।
पृथिव्यां दक्षिणो हस्तो महायोगी महामनाः॥ ४९

सैषा छाया शशीभूता शशिमण्डलमाविशत्।
अलिङ्गा पृथिवीलिङ्गादद्भुतादक्षया दिवि॥ ५०

अङ्गाङ्गान्युपगृह्यैव तपश्चरति निश्चयात्।
प्रोक्ष्य पादौ तु सतलौ पृथिवी तपसि स्थिता॥ ५१

सूर्यार्चिभिः पीयमानादाक्षिप्यत महीतले।
महीमिवाम्बुवसनां युगान्ते विष्णुतेजसा॥ ५२

रराज सूर्यरश्मिभिर्व्यतिषिक्ता महानदी।
स्फाटिकेव शुभा सैषा काञ्चनैर्धातुभिर्वृता॥ ५३

आदित्येन समादत्ता रश्मितेजोऽभिसम्भवैः।
मण्डलान्तर्गता देवी चक्षुषा नोपलभ्यते॥ ५४

रश्मिभिः पुनरुत्तीर्णा ततो योगेन धावति।
आकाशगङ्गा संवृत्ता विपुलैरम्बुविग्रहैः॥ ५५

उन भगवान् विष्णुका जो हाथ भक्तोंका उद्धार करनेके लिये उठा हुआ है, वह इस भूतलपर धर्म कहा गया है। पृथ्वीकी भाँति वही सबको धारण करनेवाला है। वह रात्रि (अविद्या)-में प्रकाश या विवेक प्रदान करनेवाला है तथा वही विशाल आकाशमण्डलमें व्याप्त ब्रह्म है॥ ४७॥ राजन्! वह धर्म चन्द्रमा अर्थात् मनको बाँधनेवाले राग आदि दोषोंको शान्त करता है तथा क्षुद्र ग्रहों एवं ताराओंके तुल्य जो नेत्र आदि इन्द्रियाँ हैं, उन्हें विषयोंकी ओर जानेसे रोकता है॥ ४८॥ पृथ्वीपर जो भगवान्का दाहिना हाथ धर्म है, वह चन्द्रमासे झरनेवाली गङ्गाकी धाराओं और चन्द्रमण्डलके द्वारा अविद्याका नाश करता हुआ साधकको महायोगी एवं महामना बना देता है। (तात्पर्य यह कि गङ्गाजीके सेवन और चन्द्रमामें की हुई धारणासे अविद्याका निवारण होता है तथा धर्मका आश्रय लेनेसे ज्ञान और योगकी प्राप्तिके साथ-साथ मोक्ष सुलभ हो जाता है।) ॥ ४९ ॥ यह अविद्यामयी रात्रिरूपा छाया लिङ्गरहित (प्रमाणशून्य—मिथ्या) है। यह अद्भुत पृथ्वीरूप शरीर धारण करके वृत्तिकी एकाग्रतासे चन्द्रस्वरूप हो आकाशस्थ चन्द्रमण्डलमें प्रवेश कर जाती है। मिथ्या होनेके कारण ही यह अक्षय (मृगतृष्णाके सरोवरकी भाँति क्षयरहित) है॥ ५० ॥ यह पृथ्वी तलुओंसहित दोनों पैरोंको धोकर (विविध तीर्थोंमें स्नान करके) सारे अङ्गोंको समेटकर (विषयोंकी ओरसे हटाकर) दृढ़ निश्चयके साथ तपस्या करने लगी और दीर्घकालतक उसमें स्थिर रही (इसी तपस्याके प्रभावसे जलके घनीभावरूप चन्द्रमाके आकारमें परिणत हुई पृथ्वी चन्द्रमण्डलमें प्रविष्ट हुई) ॥ ५१ ॥ फिर सूर्यकी किरणोंद्वारा पिये जाते हुए जलके साथ पृथ्वी भी उनके समीप खींच ली गयी, जैसे युगान्तकालमें रसातलके भीतर डूबी हुई सलिलवसना पृथ्वीको वराहरूपधारी भगवान् विष्णुने अपने तेजसे ऊपरको खींच लिया था॥ ५२॥ सूर्यकी किरणोंसे मिश्रित हुई पृथ्वी एक महानदीके रूपमें परिणत हो गयी। उस समय वह सुवर्णमय धातुओंसे घिरी हुई सुन्दर स्फटिकशिलाकी भाँति सुशोभित हो रही थी॥ ५३ ॥ सूर्यके द्वारा गृहीत होनेपर किरणोंके तेजसे एकीभावको प्राप्त हो सूर्यमण्डलके भीतर स्थित हुई पृथ्वीदेवी नेत्रोंसे अदृश्य हो गयीं॥ ५४॥ सूर्यकिरणोंसे उत्तीर्ण हो अगाध जलमय विग्रह धारण करके वे आकाशगङ्गा बन गयीं और वहाँसे वेगपूर्वक दौड़ीं॥ ५५ ॥

शीतच्छायैश्च तरुभिर्लताभिश्च सुगन्धिभिः।
पद्मखण्डैश्च विविधैः शुशुभे दिव्यगन्धिभिः॥ ५६

काञ्चनापीडजघना स्फाटिकान्तरमेखला।
पद्मरेणुसिता पीता चक्रवाकावतंसिका॥ ५७

नीलगर्भसुकेशान्ता पुष्पसंचयसंकुला।
शोभते विप्रसर्पन्ति प्रमदेव विभूषिता॥ ५८

सैषा गङ्गा फलं लेभे पुष्करेण समाहिता।
सुतपा चन्द्रविहिता लोकानां धारणे रता॥ ५९

सरस्वती स्वैर्व्यक्तैरधीते ब्रह्मवादिनी।
पृष्ठात् प्रयाता शैलेन्द्रे मन्दरे मन्दगामिनी॥ ६०

ऋङ्मयांश्चतुरो वेदान् पादैश्चतुर्भिरावृतान्।
यजुर्भिः सामभिश्चैव ग्रथिताञ्छिक्षया तदा॥ ६१

ऋषिभिर्ज्वलनप्रख्यैस्तपसा दग्धकिल्बिषैः।
सुपार्श्वस्य गिरेः पादे परिदायैः सुपारणैः॥ ६२

निःस्वनं सर्वभूतानि नियमैश्च न शृण्वते।
मन्दराग्रे विसर्पन्तं जगत् कृत्स्नमतीन्द्रियम्॥ ६३

विरामनियमे प्राप्ते तूष्णीम्भूता बभूव ह।
न वाचमीरयेद् देवी नियमात् सत्यवादिनी॥ ६४

अथ भूतानि सर्वाणि तूष्णीम्भूतानि सर्वशः।
न शेकुरभिधानार्थं व्याहर्तुं वदनैर्बलात्॥ ६५

मार्गमें शीतल छायावाले वृक्षों, लताओं, सुगन्धित कुसुमों तथा भाँति-भाँतिके दिव्य गन्धवाले पद्मसमूहोंसे उसकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ ५६॥ वह महानदी आगे बढ़ती हुई वस्त्राभूषणोंसे विभूषित युवती स्त्रीकी भाँति शोभा पा रही थी। सुवर्णमय कमल मानो उसके कटिप्रदेशके आभूषण थे। स्फटिकमणिकी शिलाएँ मेखलाकी भाँति शोभा दे रही थीं। कमलोंके परागका अङ्गराग धारण करनेके कारण उसकी कान्ति श्वेत और पीत दिखायी देती थी। चक्रवाक उसके कानोंके आभूषण-से प्रतीत होते थे। जलके भीतर उगे हुए नीलकमल उसके सुन्दर केशकलापका भ्रम उत्पन्न कर देते थे। वह ढेर-के-ढेर पुष्पोंसे व्याप्त हो रही थी॥ ५७-५८॥ वही यह सम्पूर्ण लोकोंको धारण करनेवाली पृथ्वी सुन्दर तपस्या करके पहले चन्द्रमारूपमें परिणत हुई, फिर गङ्गाभावको प्राप्त हुई। उसने पुष्करतीर्थके सम्पर्कसे परमात्माके ध्यानमें एकाग्रचित्त हो उत्कृष्ट तपस्याका फल प्राप्त किया॥ ५९॥ लोकधात्री पृथ्वी गङ्गाभावको प्राप्त हो पुष्करमें सरस्वती होकर व्यक्त स्वरोंमें वेदका पाठ करती हुई स्वाध्यायमें तत्पर रहती है। वह सरस्वती मेरुपृष्ठसे मन्दगतिसे चलती हुई गिरिराज मन्दराचलपर जा पहुँची॥ ६०॥ उस समय वह ऋषियोंके साथ शिक्षासे ग्रथित, चार पादोंसे युक्त, ऋक्प्रधान एवं यजुष् तथा साममन्त्रोंसे युक्त चारों वेदोंका स्पष्ट स्वरोंमें पाठ करने लगीं॥ ६१॥ जिन ऋषियोंके साथ सरस्वती वेदपाठ करती थीं, वे अग्निके समान तेजस्वी थे। तपस्यासे उनके सारे पाप भस्म हो गये थे। वे सुपार्श्वगिरिके चरणप्रान्तमें बैठकर शिष्योंको ब्रह्मका उपदेश देते थे और दूसरोंका उद्धार करनेमें समर्थ थे॥ ६२॥ सरस्वतीका यह ब्रह्मघोष समस्त प्राणी नियमपूर्वक (अथवा नियमोंद्वारा भी) नहीं सुन पाते, क्योंकि वह इन्द्रियोंसे अतीत है। मन्दराचलके आगे फैलता हुआ वह शब्द सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त हो रहा है (वह वैखरी शब्द ही है, किंतु सूक्ष्म होनेके कारण दुर्ग्राह्य है)॥ ६३॥ विरामका नियम प्राप्त होनेपर वाग्देवी चुप हो गयीं। उस अवस्थामें वे सत्यवादिनी देवी नियमतः वाणीका उच्चारण नहीं कर सकतीं (तुरीय ब्रह्मपदका निरूपण करते समय '**यतो वाचो निवर्तन्ते**' इत्यादि श्रुतिके अनुसार वाग्देवीका मौन होना उचित ही है)॥ ६४॥ तदनन्तर सभी प्राणी सर्वथा चुप हो गये। वे अपने मुखोंसे बलपूर्वक कुछ कहनेके लिये बोल न सके॥ ६५॥

विभज्य योगं मनसा सर्वभूतेष्वनुग्रहम्।
सरस्वती तीरयुता व्याजहार महास्वनम्॥ ६६

सरस्वत्या समायुक्तां शिक्षां गृह्णन्ति देहिनः।
तस्मिन्नेवाथ ते सर्वे गानं गायन्ति शिक्षया॥ ६७

आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विभिः सह।
जटिलाश्चीरवसना मुञ्जमेखलधारिणः॥ ६८

गन्धर्वाः किन्नराश्चैव सनागाः सह चाम्भसः।
तपश्चरन्ति सहिताः पुष्करेषु मनीषिणः॥ ६९

अपि कीटपतङ्गैश्च सह सर्वैः सरीसृपैः।
शोषयन्ति शरीराणि तपसोग्रेण यत्नतः॥ ७०

विष्णुर्विष्णुत्वमापन्नो देहान्तरविसृष्टवान्।
संरक्षति महायोगी सर्वांस्तान् सहचारिणः॥ ७१

पुष्करे रमते विष्णुर्विष्णुरेव द्विधा कृतः।
दीप्यमानः स्वतेजोभिर्विधूम इव पावकः॥ ७२

सोऽग्निर्मनःसमुद्भूतः पृथिवीं तापयन्निव।
प्रधावति समं तेन मण्डलं दशयोजनम्॥ ७३

विरराजार्चिभिर्दीप्तैः पृष्ठतश्चावलम्बिभिः।
विशीर्णपार्थिविभवैर्मयूखैरिव दीपितः॥ ७४

तस्याग्नेर्विस्फुलिङ्गानां न शेकुर्लङ्घने रताः।
विप्रकीर्णस्य वसुधामर्यादामिव भास्करम्॥ ७५

समस्त प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये मनके द्वारा योगका विभाजन करके तटपर खड़ी हुई सरस्वती-देवीने पुनः महान् शब्दका उच्चारण किया (तात्पर्य यह कि ब्रह्मका साक्षात् प्रतिपादन करनेमें असमर्थ होनेपर भी वाग्देवी तटस्थ लक्षणद्वारा उनके तत्त्वका निरूपण कर सकती हैं)॥ ६६॥ सरस्वतीद्वारा दी हुई शिक्षाको दूसरे देहधारी भी ग्रहण करते हैं। वे सब उसी पदमें स्थित होकर शिक्षाके अनुसार मन्त्रोंका गान करते हैं॥ ६७॥ आदित्य, वसु, रुद्र, मरुद्गण और अश्विनीकुमार—ये सब जटा रखाये, चीरवस्त्र पहने और मूँजकी मेखला धारण किये उसी शिक्षाके अनुसार मन्त्रोंका गान करते हैं॥ ६८॥ गन्धर्व, किन्नर, नाग और वरुण भी उसी शिक्षाके अनुसार गाते हैं। ये सभी मनीषी पुरुष एक साथ होकर पुष्करमें तपस्या करते हैं॥ ६९॥ और उस उग्र तपस्याके द्वारा यत्नपूर्वक कीट-पतंगों तथा समस्त साँप-बिच्छुओंके साथ अपने शरीरोंको सुखाते हैं॥ ७०॥ परमात्मा विष्णु व्यापक स्वरूपको प्राप्त होकर भी दूसरे चिन्मय विग्रह (चतुर्भुज स्वरूप)-से युक्त होते हैं। उसी स्वरूपसे वे महायोगी विष्णु उन समस्त सहचारियों (आदित्य आदि देवों)-का संरक्षण करते हैं॥ ७१॥ पुष्कर अर्थात् सम्पूर्ण कार्यात्मक जगत्में व्याप्त हुए भगवान् विष्णु ही नर-नारायण आदिके रूपमें एक-से दो हो गये हैं और धूमरहित अग्निकी भाँति अपने तेजसे देदीप्यमान होकर तप आदिकी लीला करते हैं॥ ७२॥ वे विष्णु ही मनःकल्पित गार्हपत्यादि अग्निरूप होकर पृथ्वीके अभिमानी देवताको ताप देते (तपाकर सुवर्णके समान शुद्ध करते) हुए उसके साथ दस योजन ब्रह्माण्ड-मण्डलमें दौड़ते हैं (अर्थात् उसके कर्मोंका फल देनेके लिये उसके साथ-साथ रहते हैं)॥ ७३॥ जिन्होंने देहात्मवादीकी सामर्थ्यको नष्ट कर दिया है, उन आगे-पीछे सब ओर फैली हुई उद्दीप्त लपटों अथवा किरणोंसे प्रकाशित हुए अग्निदेव बड़ी ही शोभा पाते हैं॥ ७४॥ जैसे विषयासक्त मनुष्य पृथ्वीकी मर्यादा बने हुए—उसका परिच्छेद करनेवाले सूर्यदेवको लाँघ नहीं सकते, उसी प्रकार वे सब ओर फैले हुए अग्निस्वरूप विष्णुकी चिनगारियोंके समान जो ब्रह्मा आदि हैं, उनका भी लङ्घन नहीं कर सकते॥ ७५॥

सोऽग्निर्दीप्य विभज्यांशून् विधूम इव पावकः।
ऋत्विग्भिर्ज्वलनप्रख्यैर्विक्रीयत इवाध्वरे॥ ७६

सोऽग्निर्धूमगतस्तत्र तिष्ठते विपुलं तदा।
यावद् विष्णुक्रमः प्राप्तो नियमस्य समापनात्॥ ७७

रक्षां कृत्वा स्थितं विद्याद् विष्णुर्विष्णुपराक्रमः।
भूत्वा शतशरीरो वै नागो बालाहकोऽभवत्॥ ७८

तमग्निमात्मसंसृष्टं लेलिहानं महामतिम्।
प्रतिप्रवृत्तं तेजोभिर्भूतानां हितकाम्यया॥ ७९

वारिणा सुखशीतेन प्राणिनां प्राणवर्धनः।
न्यषिञ्चद् दहनं तत्र नागो बालाहकस्तदा॥ ८०

ततः सिद्धगणैर्जुष्टः पुष्करे तप्यते तपः।
संहृत्य मनसाऽऽत्मानं महायोगी महाबलः॥ ८१

पादगात्राणि संहृत्य मनो मूर्ध्नि विधारयन्।
अचलं स्थानमासाद्य तूष्णीम्भूतो बभूव ह॥ ८२

एष धर्मो हि धर्माणां नोपधानविकल्पितः।
हितः सर्वेषु भूतेषु इह चामुत्र चोभयोः॥ ८३

अथ दैत्या हतास्तत्र समागम्योद्यतायुधाः।
मायाप्राप्तैर्बहुविधैर्नगरैरभिसंवृताः॥ ८४

अग्निं दैत्याः पर्वताग्रैरभिघ्नन्ति परंतप।
ज्वलन्तं ज्वलनप्रख्या महाकाया महाबलाः॥ ८५

मेघीभूताश्च मायाभिर्वर्षन्ति बलदर्पिताः।
तस्मिन्नेवाभिसंघाते ससंघातं महाबलम्॥ ८६

वे अग्निदेव उद्दीप्त हो अपनी किरणोंको अनेक रूपोंमें विभक्त करके धूमरहित पावकके समान स्थित होकर अग्नितुल्य तेजस्वी ऋत्विजोंद्वारा यज्ञमें विविध रूपोंमें खरीदे जाते हैं (सोमरस खरीदनेवाले सोमके रूपमें उन्हींकी खरीद करते हैं)॥ ७६॥ वे विष्णुरूप निर्धूम अग्निदेव उस यज्ञमें, जबतक उसकी समाप्ति नहीं हो जाती तबतक द्रव्य-देवता आदि विपुल रूपोंमें प्रकाशित होते हैं। फिर वे ही अग्नि देवता फलरूपसे वहाँतक पहुँचते हैं, जहाँतक (वामनसे विराट्-रूप धारण करनेवाले) भगवान् विष्णुके तीनों पग पहुँचे थे॥ ७७॥ सबकी रक्षा करके स्थित हुए उन भगवान् विष्णुको जानना चाहिये। वे व्यापक पराक्रमी भगवान् विष्णु (ऐश्वर्ययोगसे) सैकड़ों शरीरोंमें प्रकट हो बालाहक नाग (मेघोंका भेदन करनेवाला ऐरावत हाथी) हुए॥ ७८॥ शरीरके भीतर जठरानलरूपसे स्थित हुए उन विष्णु-स्वरूप अग्निदेवको, जो अपनी लपलपाती हुई लपटोंसे सबको चाट लेनेमें समर्थ, महामति (दिव्य ज्ञान देनेवाले) तथा समस्त भूतोंके हितकी कामनासे तेजस्वी रूप धारण करके कर्ममें प्रवृत्त हुए थे; प्राणियोंके प्राणोंकी पुष्टि करनेवाले बालाहक नागने उस समय वहाँ सुखद शीतलजलसे अभिषिक्त किया॥ ७९-८०॥ तदनन्तर सिद्धगणोंसे सेवित वे महायोगी, महावैराग्यवान् अग्निदेव मन (बुद्धि)-के द्वारा मनको अपनेमें विलीन करके पुष्करमें तपस्या करने लगे॥ ८१॥ वे नीचेके अङ्गोंका ऊपरके अङ्गोंमें लय करते हुए मनको मूर्धा (सहस्रारचक्र)-में स्थापित करके अविचल स्थान (ब्रह्मपद)- को पाकर मौन हो गये॥ ८२॥ यही सब धर्मोंका धर्म है। इसमें उपाधिजनित विकल्प नहीं है। यह इहलोक और परलोक—दोनोंमें सभी प्राणियोंके लिये हितकर है॥ ८३॥ तदनन्तर वे दैत्य जो पहले मार खाकर पराजित हो गये थे, पुनः हाथोंमें आयुध लिये वहाँ आ गये। वे नाना प्रकारके मायामय नगरोंसे घिरे हुए थे॥ ८४॥ शत्रुओंको संताप देनेवाले जनमेजय! वे अग्निके समान तेजस्वी महाकाय एवं महाबली दैत्य तेजसे प्रज्वलित होनेवाले अग्निदेवको पर्वतशिखरोंसे चोट पहुँचाने लगे॥ ८५॥ वे उस संघर्षमें बलके घमंडमें भरकर मेघरूप धारण करके मायाद्वारा सेवकसमूह-सहित महाबली अग्निपर प्रस्तरोंकी वर्षा करने लगे॥ ८६॥

ते शैलास्त्वर्चिषा दग्धाः शतशोऽथ सहस्रशः।
युगान्ते प्रभुरादित्यः प्रजा इव दिधक्षति॥ ८७

न शेकुरग्निं दैत्यास्ते मायाभिर्मुखमुद्यतम्।
आदित्यमिव दीप्यन्तं नभः सूर्योदये यथा॥ ८८

विहितैरुद्यमैः सर्वैर्दैत्या भग्नपराक्रमाः।
गन्धमादनमासाद्य निषण्णा नगमूर्धनि॥ ८९

स चाग्निर्वैष्णवैर्लोकैर्विद्युद्भिः सह संगतः।
अन्तरिक्षचरान् दैत्यान् निर्दहन् व्यचरद् दिवि॥ ९०

नागो बालाहकश्चैव मेघैः संघातमागतः।
मुमोच सलिलं भूमौ पर्जन्य इव वृष्टिमान्॥ ९१

मन्त्रैः संचोदितो नागो द्विजेभ्यो वदनोद्गतैः।
मुमोच तोयसंघातं मानयन् विप्रजं जनम्॥ ९२

परंतु जैसे भगवान् सूर्य प्रलयकालमें समस्त प्रजाओंको दग्ध कर देना चाहते हैं, उसी प्रकार उन अग्निदेवके तेजसे उस समय दैत्योंद्वारा गिराये हुए वे सैकड़ों-हजारों पर्वत-खण्ड जलकर भस्म हो गये॥ ८७॥ देवताओंके मुखस्वरूप उद्दीप्त हुए अग्निदेवको वे दैत्य अपनी मायाओंद्वारा पराजित न कर सके। ठीक उसी तरह, जैसे मंदेह नामक राक्षस सूर्योदयकालमें आकाशको प्रकाशित करते हुए सूर्यदेवको दबा नहीं पाते हैं॥ ८८॥ सारे उद्यम करके भी दैत्योंका पराक्रम भंग हो गया। वे हताश हो गन्धमादन पर्वतके शिखरपर जा बैठे॥ ८९॥ वे अग्निदेव वैष्णवजनों तथा बिजलियोंसे मिलकर अन्तरिक्षचारी दैत्योंको दग्ध करते हुए आकाशमें विचरने लगे॥ ९०॥ उस समय मेघोंके साथ संघभावको प्राप्त हुए बालाहक नाग (ऐरावत)-ने वर्षा करनेवाले मेघकी भाँति भूमिपर पानी बरसाया॥ ९१॥ ब्राह्मणोंके मुखोंसे उच्चारित हुए मन्त्रोंद्वारा प्रेरित हुए उस नागने ब्राह्मण-संततिका समादर करते हुए वहाँ जलसमूहकी वर्षा की॥ ९२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे अष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्करप्रादुर्भावविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

तपस्याके प्रभावसे देवताओंका उत्कर्ष

जनमेजय उवाच

संयुज्य तपसा देवाः किमकुर्वंस्ततः परम्।
न हि तद् विद्यते लोके तपसा यन्न लभ्यते॥ १

वैशम्पायन उवाच

अथ दीक्षां समास्थाय सर्वे विष्णुमया गणाः।
पुष्करादग्निमुद्धृत्य प्रणीय च यथाविधि॥ २

जुहुवुर्मन्त्रविधिना ब्राह्मणा मन्त्रचोदिताः।
हविषा मन्त्रपूतेन यथा वै विधिरेव च॥ ३

स चाग्निर्विधिवत्तत्र वर्धते ब्रह्मतेजसा।
तेजोभिर्बहुलीभूतः प्रभुः पुरुषविग्रहः॥ ४

जनमेजयने पूछा—मुने! तदनन्तर देवताओंने तपस्यासे संयुक्त होकर क्या किया? संसारमें ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो तपस्यासे सुलभ न हो॥ १॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! तदनन्तर सभी विष्णुस्वरूप ब्राह्मणगणोंने यज्ञकी दीक्षा ले पुष्करसे अग्निको उद्धृत करके उनकी विधिवत् स्थापना करनेके पश्चात् वेदाज्ञासे प्रेरित हो मन्त्रोक्त विधिसे मन्त्रपूत हविष्यद्वारा जैसा विधान है, उसी प्रकार हवन किया॥ २-३॥ वे अग्निदेव वहाँ ब्रह्मतेजसे सम्पन्न हो विधिवत् बढ़ने लगे। महान् तेजकी राशिसे युक्त होकर वे प्रभु अग्निदेव पुरुषरूपमें प्रकट हो गये॥ ४॥

ब्रह्मदण्ड इति ख्यातो वपुषा निर्दहन्निव।
दिव्यरूपप्रहरणो ह्यसिचर्मधनुर्धरः॥ ५

सगदो लाङ्गली चक्री शरी चर्मी परश्वधी।
शूली वज्री खड्गपाणिः शक्तिमान् वरकार्मुकः॥ ६

विष्णुश्चक्रधरः खड्गी मुसली लाङ्गलायुधः।
नरो लाङ्गलमालम्ब्य मुसलं च महाबलः॥ ७

वज्रमिन्द्रस्तपोयोगाच्छतपर्वाणमक्षिपत्।
रुद्रः शूलं पिनाकं च मनसाधारयद् भुवि॥ ८

मृत्युर्दण्डं पाशमापः कालः शक्तिमगृह्णत।
जग्राह परशुं त्वष्टा कुबेरश्च परश्वधम्॥ ९

निर्विकारैः समायुक्ताः शतशोऽथ सहस्रशः।
विश्वकर्मा च त्वष्टा च चक्राते ह्यायुधं बहु॥ १०

इन्द्रायाग्निरथं प्रादात् सूर्याय च प्रतापिने।
परमात्मा ददौ कृष्णो रुद्राय च महात्मने॥ ११

छन्दोभिरेव त्वष्टा च स चकाराथ वाहिनीम्।
विश्वकर्मा विमानानि चकार बहुभिः क्रमैः॥ १२

शरीरांशं समुद्धृत्य विष्णुः सत्यपराक्रमः।
पुष्करात् पर्वणि वनात् पृतनार्थं प्रवर्तयन्॥ १३

द्यां चैव सूर्यनक्षत्राणां वाचा वै समकल्पयत्।
यथा स पूज्यः संग्रामे शत्रून् निर्विभिदे रणे॥ १४

स तं दण्डं समुचितं निर्विकारं समाहितम्।
ब्रह्मा जग्राह विधिना अन्तर्धानगतः प्रभुः॥ १५

स्वैः प्रभावैश्च विधिना सोऽस्त्रग्रामं चतुर्विधम्।
ऐन्द्रमाग्नेयवायव्ये रौद्रं रौद्रेण वर्चसा॥ १६

एभिर्विकारैः संयुक्ता दितेः पुत्रा महाबलाः।
तपसा शिक्षया चैव स्वास्त्रैः प्रहरणैरपि॥ १७

बलेन चतुरङ्गेण वीर्येण सुसमाहिताः।
अप्रधृष्या रणे सर्वे समपद्यन्त वै तदा॥ १८

ते विहाय गुहामध्यं सभाण्डोपस्करे रथे।
मन्दरस्य गिरेः पादे विचेरुर्वसुधातले॥ १९

उस समय उनका नाम 'ब्रह्मदण्ड' रखा गया। वे अपने तेजस्वी शरीरसे दूसरोंको दग्ध करते हुए-से जान पड़ते थे। उनका स्वरूप और आयुध सभी दिव्य थे। वे ढाल, तलवार, धनुष तथा खड्ग और खेटक लिये हुए थे॥ ५॥ गदा, हल, चक्र, बाण, चर्म, फरसा, शूल, वज्र, खड्ग, शक्ति, श्रेष्ठ धनुष, मुसल और लाङ्गल— इन सब अस्त्रोंको नारायणने धारण किया था। महाबली नर हल और मुसल लिये हुए थे॥ ६-७॥ देवराज इन्द्रने तपस्याके प्रभावसे शतपर्वा वज्र प्राप्त किया था, जिसका वे प्रयोग किया करते हैं। रुद्रदेवने भूतलपर केवल शूल तथा पिनाक धारण कर रखा था॥ ८॥ मृत्युने दण्ड, वरुणने पाश तथा कालने शक्ति ले रखी थी। त्वष्टाने परशु और कुबेरने फरसा ग्रहण किया था॥ ९॥ इस प्रकार सब देवता सैकड़ों और हजारों निर्विकार (निर्दोष) अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न थे। विश्वकर्मा तथा त्वष्टा— ये दोनों उनके लिये बहुत-से आयुधोंका निर्माण करते थे॥ १०॥ परमात्मा भगवान् विष्णुने इन्द्रको, प्रतापी सूर्यको तथा महात्मा रुद्रको अग्निमय रथ प्रदान किया॥ ११॥ त्वष्टाने वेदोक्त सरणिसे ही वाहिनीका निर्माण किया। विश्वकर्माने अनेक क्रमोंद्वारा बहुत-से विमान बनाये॥ १२॥ सत्यपराक्रमी भगवान् विष्णुने पर्वके दिन पुष्कर वनसे अपने शरीरका ही अंश निकालकर दिया और उसे सेना बनानेके लिये प्रेरणा दी॥ १३॥ सूर्य तथा ग्रह-नक्षत्रोंकी स्थितिके लिये भगवान्ने वाणीद्वारा द्युलोककी रचना की। जिससे उस द्युलोकमें रहकर देवपूज्य इन्द्रने संग्राममें अपने शत्रुओंको विदीर्ण किया था॥ १४॥ 'ब्रह्मा' रूपमें प्रकट हुए भगवान् विष्णुने इन्द्रद्वारा असुरोंपर गिराये गये उस दण्डको उचित और निर्विकार-अवस्थामें पाकर उसे विधिपूर्वक ग्रहण किया और उन सबकी दृष्टिसे वे अदृश्य हो गये॥ १५॥ उन्होंने अपने प्रभावसे चार प्रकारके अस्त्रसमुदाय—ऐन्द्र, आग्नेय, वायव्य तथा भयंकर तेजसे युक्त रौद्रकी रचना की॥ १६॥ दितिके महाबली पुत्र भी तपस्या, शिक्षा और अपने आयुधोंसे युक्त होनेपर भी इन काम आदि विकारोंके वशीभूत हो गये॥ १७॥ वे सब-के-सब उस समय चतुरङ्गिणी सेना और पराक्रमसे संयुक्त हो युद्धभूमिमें दुर्जय हो गये थे॥ १८॥ वे गुहाओंके मध्यभागको त्यागकर सामानोंसे भरे हुए रथपर बैठकर मन्दराचलकी उपत्यकामें पृथ्वीपर ही विचरने लगे॥ १९॥

चतुरङ्गं बलं सर्वं संहृत्य तमसः प्रभुः।
विष्णुरेव महायोगांश्चचार वसुधातले॥ २०

भूयोऽन्यत्तप आसेदुश्चरन्तो ब्राह्मणैः सह।
तैश्च सर्वैः सुरगणैर्धर्मचीरनिवासिभिः॥ २१

तब तमोगुणके कार्यभूत असुरोंकी उस सारी चतुरङ्गिणी सेनाका संहार करके प्रभावशाली भगवान् विष्णुने ही भूतलपर बड़े-बड़े योगोंका आचरण किया॥ २०॥ फिर धर्ममय और चीरमय वस्त्र धारण करनेवाले ब्राह्मणों और समस्त देवताओंके साथ विचरते हुए असुर दूसरी तपस्या करने लगे॥ २१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्करप्रादुर्भावविषयक उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २९॥

त्रिंशोऽध्यायः

पृथुका राज्याभिषेक तथा दैत्यों और देवताओंद्वारा मन्दराचलके मन्थनदण्डद्वारा समुद्रका मन्थन, समुद्रसे अन्य रत्नोंके साथ अमृतका प्राकट्य और राहुके सिरका छेदन

जनमेजय उवाच

ब्रह्मन् खिले वर्तमाने निर्मर्यादे महाग्रहे।
अविनाशे च भूतानां कथमासन् प्रजास्तदा॥ १

वैशम्पायन उवाच

अभ्यषिञ्चत्पृथुं वैन्यं पुरा राज्ये प्रजापतिः।
राज्याय ऋषिभिः सार्धं प्रजाधर्मपरायणः॥ २

एष नः परमो राजा सानुरागो व्यजायत।
त्रेतायां सम्प्रवृत्तायामन्योन्यमनुजल्पिरे॥ ३

एष नो वृत्तिदाता च शिल्पानां च प्रवर्तिता।
निर्माता सर्वभूतानां सत्यप्राप्तेन कर्मणा॥ ४

एतस्मिन्नन्तरे देवा गन्धमादनसानुषु।
बहुभिर्नियमैः श्रान्ता निषण्णा गिरिसानुषु॥ ५

अथ गन्धं समासाद्य समन्ताद् देवदानवाः।
माधवे समये प्राप्ते तेन गन्धेन दर्पिताः॥ ६

पुष्पमात्रस्य यद् वीर्यं मारुतेन विसर्पितम्।
मनोग्राहि सुखं सर्वं पार्थिवं गन्धमुत्तमम्॥ ७

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! जब लोहेकी कीलके समान हृदयमें कसक पैदा करनेवाला, मर्यादाशून्य महान् ग्रह (अज्ञान) विद्यमान था और प्राणियोंके मोक्षकी कोई सम्भावना नहीं रह गयी थी, उस समय सारी प्रजाएँ कैसे रहती थीं?॥ १॥

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! पूर्वकालमें प्रजापालन-रूप धर्ममें तत्पर रहनेवाले प्रजापतिने ऋषियोंको साथ लेकर वेनकुमार पृथुका प्रजाजनोंके राज्यपर राजोचित कर्म करनेके लिये अभिषेक कर दिया॥ २॥ उस समय सत्ययुग समाप्त होकर त्रेताका आरम्भ हुआ था। ऐसे समयमें पृथुको अपना संरक्षक पाकर सारी प्रजा आपसमें कहने लगी—'ये हमारे सर्वोत्तम राजा हैं। हमपर अनुराग होनेसे ही ये हमलोगोंके राजा हुए हैं। हमें जीविकावृत्ति देनेवाले ये ही हैं। ये अनेक प्रकारके शिल्पकर्मोंके प्रवर्तक होंगे। अपने सत्यप्राप्त (भगवदर्पित) कर्मसे ये समस्त प्राणियोंके जीवन-निर्माता होंगे॥ ३-४॥ इसी समय अनेक प्रकारके नियमोंके पालनसे थके हुए देवता गन्धमादन पर्वतके शिखरोंपर बैठे थे॥ ५॥ वैशाखमास एवं वसन्त-ऋतुका समय प्राप्त था, वहाँ बैठे हुए देवताओं और दैत्योंको सब ओरसे एक दिव्य सुगन्धका अनुभव हुआ। वे उस गन्धसे मदमत्त हो गये॥ ६॥ वह किसी फूलमात्रकी प्रबल गन्ध थी, जो हवाने फैलायी थी। वह मनको बरबस खींचे लेती थी। पूर्णतः सुखदायिनी थी। पृथ्वीतलकी वह सबसे उत्कृष्ट गन्ध थी॥ ७॥

ते दैत्यास्तेन गन्धेन किंचिद् विस्मयमागताः।
प्रसन्नमनसो भूत्वा परं सौख्यमुपागताः॥ ८

ऊचुश्च सहिताः सर्वे तेन गन्धेन दर्पिताः।
पुष्पमात्रस्य यद् वीर्यं किं तस्य फलतो भवेत्॥ ९

अनुमानेन विज्ञेया विविधाः कर्मबुद्धयः।
शुभाश्चैवाशुभाश्चैव बुद्धिप्राणेन देहिनाम्॥ १०

तस्माद् वयं पयोमध्ये ओषध्यो निर्मथामहे।
मन्दरेण विशालेन बलिना कामरूपिणा॥ ११

समुद्रमभिसंरम्भान् मथ्नीमः सोमजं जलम्।
पीत्वा च सहिताः सर्वे प्रस्थिताः कामरूपिणः॥ १२

विष्णुरेवाग्रणीस्तेषां भविष्यति महाबलः।
दिवं च वसुधां चैव भोक्ष्यामः सह शत्रुभिः॥ १३

समूलपत्रशाखाश्च सपुष्पाः फलशालिनः।
सर्वे ग्रहांश्च गृह्णीमः सुधां च वसुधातले॥ १४

उद्धृत्य गिरिपादेभ्यो गन्धमादनसानुजान्।
प्रभाष्य वचनं दैत्या मन्दरस्य प्रकम्पने॥ १५

समुद्धर्तुं प्रधावन्तः कम्पयन्ति स्म मेदिनीम्।
निश्चयेन महावीर्या बाहुभिः परिणाहिभिः॥ १६

न शक्नुस्ते समुद्धर्तुं शैलेन्द्रं दनुवंशजाः।
निपेतुर्जानुभिर्घृष्टा विपुले पर्वतान्तरे॥ १७

समाधायात्मनाऽऽत्मानं तपसा दग्धकिल्बिषाः।
पितामहं प्रपद्यन्ते शिरोभिः कामरूपिभिः॥ १८

तेषां मनोऽभिलषितं ब्रह्मा सर्वत्रगो वशी।
ज्ञात्वा बहुविधैर्वाक्यैर्व्याजहार सरस्वतीम्॥ १९

अशरीरां शरीरस्थः परया वर्णसम्पदा।
सर्वलोकमतिर्ब्रह्मा लोकानां हितकाम्यया॥ २०

उस सुगन्धसे दैत्योंको कुछ विस्मय हुआ। उनका मन प्रसन्न हो गया और उन्हें बड़ा सुख मिला॥ ८॥ उस गन्धसे उन्मत्त हो वे सब एक साथ होकर बोले—'जिसके फूलमात्रमें ऐसी शक्ति है, उसके फलसे न जाने क्या होगा?॥ ९॥ कर्मविषयक बुद्धियाँ नाना प्रकारकी होती हैं। उन्हें अनुमानसे जानना चाहिये। उनमेंसे कुछ तो शुभ (मोक्षसाधक) होती हैं और कुछ अशुभ (भोगसाधक)। देहधारियोंको बुद्धिके बलसे उनको समझना चाहिये॥ १०॥ अतः हमलोग समुद्रके जलके भीतर ओषधियोंको डालकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले विशाल एवं बलवान् मन्दराचलके द्वारा उसका मन्थन करें॥ ११॥ 'हम सब एक साथ अमृतकी प्राप्तिके लिये उद्यमशील हों और उत्साहपूर्वक समुद्रका मन्थन करें। इससे हमें सोमज जल अर्थात् अमृत प्राप्त होगा, जिसे पीकर हम इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ (एवं अमर) हो जायँगे॥ १२॥ 'महाबली विष्णु ही उन देवताओंकी ओरसे अगुआ होंगे। हम (अमृत पान करके अमर हो) अपने शत्रुओं (देवताओं)-के साथ स्वर्ग तथा भूतलका सुख भोगेंगे॥ १३॥ 'मूल (पिता), पत्र (भार्या), शाखा (भाई) तथा पुष्प (संतान) आदि समस्त परिवारके साथ हम सब लोग अभीष्ट फलके भागी होंगे। इस वसुधापर ही हम सुधा पान करेंगे और ग्रहों (अपने भागों)-को ग्रहण करेंगे'॥ १४॥ इस प्रकार वे महापराक्रमी दैत्य मन्दराचलको हिलाने या उखाड़नेकी बातें करके पार्श्ववर्ती पर्वतोंसे तथा गन्धमादनके शिखरोंपर पैदा हुए वृक्षोंको उखाड़कर अपनी विशाल भुजाओंद्वारा मन्दर पर्वतको निश्चितरूपसे उठानेके लिये दौड़े और पृथ्वीको कम्पित करने लगे॥ १५-१६॥ परंतु वे दानव गिरिराज मन्दरको किसी तरह भी उखाड़ न सके। उनके घुटने घिस गये और वे उस विशाल पर्वतके भीतर गिर पड़े॥ १७॥ तपस्याके द्वारा उनके पाप दग्ध हो गये थे। वे आप ही अपने मनको धीरज दे अपने दिव्य मस्तक ब्रह्माजीके चरणोंमें झुकाकर उनकी शरणमें गये॥ १८॥ ब्रह्माजी सर्वत्र गमन करनेवाले तथा सबको वशमें रखनेवाले हैं। उनकी बुद्धि सदा समस्त लोकोंके हितचिन्तनमें ही लगी रहती है। वे उन दैत्योंका मनोरथ जानकर लोकहितकी कामनासे नाना प्रकारके वाक्यों तथा उत्तम वर्ण-सम्पत्तिसे युक्त वाणी बोले। सशरीर होकर भी उन्होंने अशरीर वाणीका प्रयोग किया॥ १९-२०॥

आदित्यैर्वसुभिश्चैव रुद्रैश्च समरुद्गणैः।
देवैर्यक्षैः सगन्धर्वैः किन्नरैश्च प्रगायिभिः॥ २१

समेत्य सहितैः सर्वैः शक्य उद्धरितुं गिरिः।
अमृतार्थे महातेजा धातुभिः समरञ्जितः॥ २२

सुरासुरगणाः सर्वे समुत्पाट्य महागिरिम्।
हस्तारूढाः प्रपश्यन्ति वीरुधो हिमवद्रसम्॥ २३

एतच्छ्रुत्वा च वचनं सर्वेषामन्तिके तदा।
दैतेया बाहुबलिनो मनोभिर्वाग्भिरेव च॥ २४

विक्रीडभूता बहुधा बभूवुर्लवणाम्भसः।
यत्र पुष्करविन्यस्तः सहितैर्देवदानवैः॥ २५

सुरासुरगणाः सर्वे सहिता लवणाम्भसः।
मन्दरं पुष्करं कृत्वा नेत्रं वासुकिमेव च॥ २६

समाः सहस्रं मथितं जलमोषधिभिः सह।
क्षीरभूतं समायोगादमृतं समपद्यत॥ २७

तज्जह्रुरसुराः पूर्वमाक्रान्ता लोभमन्युना।
धन्वन्तरिस्तथा मद्यं श्रीर्देवी कौस्तुभो मणिः॥ २८

शशाङ्को विमलश्चापि समुत्तस्थुः समन्ततः।
उच्चैःश्रवा हयो रम्यः पीयूषं तदनन्तरम्॥ २९

पश्चाद् देवास्तदादातुमुद्यता राहुमब्रुवन्।
न तु केचित् पिबन्ति स्म दैत्या नैव च दानवाः॥ ३०

चिच्छेदाथ हरिः संख्ये राहोश्चक्रेण कं तदा।
अनिर्मुक्तं पितृगणैर्मुनिभिश्च सनातनैः॥ ३१

तदिन्द्रहस्तादमृतं जहार पृथिवी स्वयम्।
जगामाङ्कगता देवी ब्रह्मवाक्यप्रचोदिता॥ ३२

(उन्होंने कहा—) 'आदित्य, वसु, रुद्र, मरुद्गण, देवता, यक्ष, गन्धर्व और गानपरायण किन्नर—ये सब एक साथ मिलकर अमृतके लिये प्रयत्न करें तो विविध धातुओंसे रञ्जित इस महातेजस्वी पर्वतको उठा सकते हैं। समस्त देवता और असुर उस महापर्वतको उखाड़कर हिमवान् पर्वतके सारभूत रसको लता-वेलोंके रूपमें अपने हाथमें आया हुआ देखेंगे'॥ २१—२३॥ उस समय सबके निकट खड़े हुए बाहुबलशाली दैत्य ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर मन और वाणी आदिके द्वारा उस कार्यके साधनमें प्रवृत्त हुए। जहाँ एक साथ हुए देवताओं और दानवोंद्वारा वह मन्थनदण्ड डाला गया था, उस लवण-समुद्रके वे खिलौने बन गये। उसके जलसे बारम्बार इधर-उधर आन्दोलित होने लगे॥ २४-२५॥ समस्त देवता और असुरोंने एक साथ लवणसमुद्रके जलमें मन्दराचलको मथानीके रूपमें डालकर वासुकि नागको मथानी बनाया और ओषधियोंसहित समुद्रजलका एक सहस्र वर्षोंतक मन्थन किया। ओषधियोंके योगसे वहाँका जल दूधरूप होकर अमृत बन गया॥ २६-२७॥ (कलशमें सञ्चित हुए) उस अमृतको पहले असुरोंने हर लिया, क्योंकि वे लोभ और क्रोधके वशीभूत हो रहे थे। पहले तो सब ओरसे उस समुद्रके जलसे धन्वन्तरि, मद्य, श्रीदेवी, कौस्तुभमणि तथा निर्मल चन्द्रमा प्रकट हुए। इसके बाद परम सुन्दर उच्चैःश्रवा नामक अश्व निकला। तत्पश्चात् 'अमृत' का प्रादुर्भाव हुआ॥ २८-२९॥ (जब दैत्योंने उसे अपने अधिकारमें कर लिया) तब देवता उसे लेनेके लिये राहुके विषयमें इस प्रकार कहने लगे—'कोई भी दैत्य और दानव अभी अमृतका पान नहीं करते हैं (किंतु यह राहु उसे पीनेकी चेष्टा कर रहा है)॥ ३०॥ तब श्रीहरिने युद्धमें अपने चक्रसे तत्काल राहुका सिर काट लिया। सनातन मुनियों और पितृगणोंने उस अमृतको नहीं छोड़ा था। इसी बीचमें स्वयं पृथ्वीदेवीने ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर इन्द्रके हाथसे वह अमृत ले लिया। वे ब्रह्माजीके शिष्यभावको प्राप्त हुई थीं। अमृत लेनेके पश्चात् वे चली गयीं॥ ३१-३२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्करप्रादुर्भावविषयक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

बलिके यज्ञमें वामनद्वारा त्रिलोकीके राज्यका अपहरण तथा कालान्तरमें देवताओंद्वारा बलिका राज्याभिषेक

जनमेजय उवाच

निहते दैत्यसंघाते विष्णोश्चातिपराक्रमे।
दैतेया दानवेयाश्च किमिच्छन्ति पराक्रमात्॥ १

वैशम्पायन उवाच

दानवा राज्यमिच्छन्ति पराक्रम्य महाबलाः।
तप इच्छन्ति सहिता देवाः सत्यपराक्रमाः॥ २

जनमेजय उवाच

कथं कालस्य महतो हिरण्यकशिपुस्तदा।
यजते ब्रह्मणः क्षेत्रे प्राप्तैश्वर्यः स कामदः॥ ३

वैशम्पायन उवाच

ईजे बहुसुवर्णेन राजसूयेन पार्थिवः।
क्रतुना दानवश्रेष्ठो वसुधायां महाबलः॥ ४

गङ्गायमुनयोर्मध्ये यदभूद् विपुलं तपः।
समेयुस्तत्र सहिता यजमाने महासुरे॥ ५

ब्राह्मणा वेदविद्वांसो महाव्रतपरायणाः।
यतयश्चापरे सिद्धा योगधर्मेण भारत॥ ६

मुनयो बालखिल्याश्च धन्या धर्मेण शोभिताः।
बहवो हि द्विजा मुख्या नित्यधर्मपरायणाः॥ ७

ऋषयश्च महाभागा विप्रैः पूज्याः सहस्रशः।
विपुलैरत्र विभवैर्ह्रियमाणैस्ततस्ततः॥ ८

शुक्रस्तु सह पुत्रेण दैत्यं याजयते प्रभुः।
हिरण्यकशिपुं मध्ये गणानां ज्वलनप्रभः॥ ९

हिरण्यकशिपुश्चैव व्याजहार सरस्वतीम्।
कामाद् वरं ददातीति तद् वै सम्प्रतिपद्यताम्॥ १०

विष्णुर्वामनरूपेण भिक्षां तां प्रतिगृह्णति।
हिरण्यकशिपोर्हस्ताद् द्वे पदे पदमेव च॥ ११

जनमेजयने पूछा—मुने! जब दैत्योंका समूह मारा गया (अपने प्रयासमें निष्फल हो गया) और भगवान् विष्णुका अतिशय पराक्रम विजयी (सफल) हो गया, तब दैत्य और दानव अब पराक्रमसे क्या पाना चाहते हैं?॥ १॥

वैशम्पायनजीने कहा—महाबली दानव पराक्रम करके (तीनों लोकोंका) राज्य पाना चाहते हैं और सत्यपराक्रमी देवता एक साथ होकर तप करना चाहते हैं॥ २॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! उस समय हिरण्यकशिपु (वंशी राजा बलि)-को तो महान् ऐश्वर्य प्राप्त था, वह दूसरोंको अभीष्ट वस्तुएँ देनेकी शक्ति रखता था। ऐसी दशामें उसने ब्रह्माजीके क्षेत्र (प्रयाग)-में दीर्घ कालतक यज्ञ कैसे किया?॥ ३॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! महाबलशाली दानवश्रेष्ठ राजा बलिने पृथ्वीपर बहुत-सी सुवर्णराशिमयी दक्षिणासे युक्त राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया॥ ४॥ भारत! गङ्गा और यमुनाके मध्यभाग प्रयागमें, जहाँ की हुई तपस्या कई गुनी बढ़ जाती है, जब महान् असुर बलि यज्ञ करने लगा, उस समय वहाँ बहुत-से वेदवेत्ता ब्राह्मण, महान् व्रतमें तत्पर रहनेवाले यति तथा योगधर्मसे सिद्ध हुए अन्य महात्मा एक साथ पधारे॥ ५-६॥ धर्मसे सुशोभित होनेवाले धन्य बालखिल्य मुनि, सदा धर्मपरायण बहुत-से श्रेष्ठ द्विज तथा ब्राह्मणोंद्वारा पूजनीय सहस्रों महाभाग ऋषि भी उस यज्ञमें पधारे थे। वहाँ जहाँ-तहाँसे भेंटमें आया हुआ महान् वैभव एकत्र किया जा रहा था॥ ७-८॥ पुत्रसहित प्रभावशाली महात्मा शुक्राचार्य, जो अग्निके समान तेजस्वी थे, नरेशगणोंके बीचमें उस दैत्यराज बलिका यज्ञ करा रहे थे॥ ९॥ उस समय बलिने याचकसे यह बात कही—'यह यजमान आपको इच्छानुसार वर दे रहा है, आप इसे ग्रहण करें'॥ १०॥ तब साक्षात् भगवान् विष्णुने वामनरूपसे उपस्थित होकर राजा बलिके हाथसे वह तीन पग भूमिकी भिक्षा ग्रहण की॥ ११॥

ततः क्रमितुमारेभे विष्णुः सत्यपराक्रमः।
त्रीँल्लोकान् मुनिभिः क्रान्तैर्दिव्यं वपुरधारयत्॥ १२
हृतराज्याश्च दैतेयाः पातालविवरं ययुः।
ससैन्यगणसम्बद्धाः सप्रासाः सासितोमराः॥ १३
सयन्त्रलगुडाश्चैव सपताकारथध्वजाः।
सचर्मवर्मकोशाश्च सायुधाः सपरश्वधाः॥ १४
तथेन्द्रविष्णुसहिताः सद्यस्तेऽभ्युत्थिता गणाः।
अभ्यषिञ्चन् प्रमुदिता लोकानामधिपे सुराः॥ १५
स तान् स्वधामृतेनाशु पितृत्वे समतर्पयत्।
ब्रह्मा तदमृतं दिव्यं महेन्द्राय प्रयच्छति।
अक्षयं चाव्ययं चैव संवृतस्तेन कर्मणा॥ १६
ततः शङ्खमुपाध्मासीद् द्विषतां लोमहर्षणम्।
पितामहकरोद्भूतं जनितृ प्रथमे पदे॥ १७
तं श्रुत्वा शङ्खशब्दं तु त्रयो लोकाः समाहिताः।
निर्वृतिं परमां प्राप्ता इन्द्रं नाथमवाप्य च॥ १८
सर्वैः प्रहरणैश्चैव संयुक्ता वह्निसम्भवैः।
मन्दराग्रेषु विहितैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः॥ १९

तब सत्यपराक्रमी भगवान् विष्णुने अपने विक्रमणों (डगों)-से मुनियोंद्वारा प्रार्थनीय तीनों लोकोंको आक्रान्त करना (मापना) आरम्भ किया। उस समय उन्होंने दिव्य विराट् रूप धारण कर लिया था॥ १२॥

राज्यका अपहरण हो जानेपर दैत्य अपनी सेना, प्रास, खड्ग, तोमर, यन्त्र, लगुड, पताका, रथ, ध्वज, ढाल, कवच, कोश, आयुध और फरसे सब कुछ साथ लेकर पाताल-गुफाको लौट गये॥ १३-१४॥ तदनन्तर (कुछ कालके बाद) इन्द्र तथा विष्णुके साथ दैत्यगण पुनः वहाँसे शीघ्र ही उठे। उस समय देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक बलिको त्रिलोकेश्वरके पदपर अभिषिक्त कर दिया॥ १५॥ बलिने उन देवताओंको पितृपदपर प्रतिष्ठित करके उन्हें शीघ्र ही स्वधामय अमृतसे तृप्त किया। ब्रह्माजीने वह अक्षय एवं अविकारी अमृत महेन्द्रको दिया। बलिके उस कर्मसे देवेन्द्र सुरक्षित हो गये॥ १६॥ तदनन्तर इन्द्रने ब्रह्माजीके हाथसे प्रकट हुए दिव्य शङ्खको, जो प्रमुख पदपर प्रतिष्ठित करनेवाला था, बजाया, वह शत्रुओंके रोंगटे खड़े कर देनेवाला था॥ १७॥ उस शङ्ख-ध्वनिको सुनकर तीनों लोकोंके प्राणियोंका मन एकाग्र हो गया। वे इन्द्रको अपना रक्षक पाकर परमानन्दमें निमग्न हो गये। अग्निसे प्रकट हुए और प्रज्वलित पावकके समान प्रकाशित होनेवाले जो समस्त आयुध मन्दराचलके शिखरोंपर विद्यमान थे, उनसे संयुक्त हुए तीनों लोक बहुत ही संतुष्ट हुए॥ १८-१९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे एकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्करप्रादुर्भावविषयक एकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

दक्षयज्ञ-विध्वंस

वैशम्पायन उवाच

ततो महति वृत्तान्ते स्थिते राज्ये महोदये।
देवतानां मनुष्याणां सहवासोऽभवत् तदा॥ १
एकतः समधीयन्ति सहिताः प्ररुदन्ति च।
स्वयं च भागं गृह्णन्ति यज्ञकर्मणि भारत॥ २
प्राचेतसं ततो दक्षं दीक्षित्वा वै बृहस्पतिः।
वाजिमेधाय भगवानृषिभिः परिवारितः॥ ३
तस्मिन् मातामहे यज्ञे दक्षस्य विदितात्मनः।
शामित्रमकरोद् रुद्रो भागार्थे सह नन्दिना॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर पूर्वोक्त महान् वृत्तान्त घटित होनेपर जब परम अभ्युदयकारी राज्यकी प्रतिष्ठा हो गयी, तब देवता और मनुष्य परस्पर साथ-साथ रहने लगे॥ १॥ भारत! वे देवता और मनुष्य एक साथ स्वाध्याय करते, परस्पर प्रेमवश एक साथ रोते और यज्ञकर्ममें मनुष्योंद्वारा दिये गये भागको देवता स्वयं आकर ग्रहण करते थे॥ २॥ उन्हीं दिनों प्राचेतस दक्षको अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा देकर भगवान् बृहस्पति ऋषियोंसे घिरे हुए वहाँ बैठे॥ ३॥ आत्मज्ञान शून्य मातामह दक्षके उस यज्ञमें नन्दीसहित भगवान् रुद्रने अपने भागके लिये शामित्र कर्म किया॥ ४॥

रुद्रस्यैव हि तद् रूपं द्विधाभूतं तदीप्सया।
जातः परमधर्मात्मा नन्दी पुरुषविग्रहः॥ ५

तेन योगेन राजेन्द्र यत्तद् ब्रह्म सनातनम्।
विहितं सत्यवचनैस्तेनैव परमात्मना॥ ६

सरूपैश्चाप्यरूपैश्च विरूपाक्षैर्घटोदरैः।
ऊर्ध्वनेत्रैर्महाकायैर्विकटैर्वामनैस्तथा ॥ ७

शिखिभिर्जटिभिश्चैव त्र्यक्षैश्च शङ्कुकर्णिभिः।
चीरिभिश्चर्मिभिश्चैव कूटमुद्गरपाणिभिः॥ ८

सघण्टाधारिभिश्चैव मुञ्जमेखलधारिभिः।
सहस्तकटकैश्चैव स्वर्णकुण्डलधारिभिः॥ ९

सडिण्डिमैः सभेरीयैः समृदङ्गैः सवेणुभिः।
एतैः परिवृतो देवो मखं तं समुपारुजत्॥ १०

सशङ्खमुरजैश्चापि सतालफलपाणिभिः।
उग्रायुधधरो देवः सपिनाक इवान्तकः॥ ११

विरराजार्चिभिर्दीप्तैर्मखे मखवतां वरः।
कालाग्निरिव दीप्तार्चिर्जगद्दग्धुमिवोद्यतः॥ १२

नन्दी पिनाकपाणिश्च जघ्नतुर्मखमुत्तमम्।
युगान्त इव कालाग्निः क्षिप्रं दग्धुमिवोद्यतः॥ १३

यूपमुत्क्षिप्य धावन्ति निशाचरगणास्तथा।
त्रासयन् मुनिसंघांश्च चीरचर्मनिवासिनः॥ १४

हवींष्यन्ये पिबन्त्येव जिह्वाभिस्ताम्रलोचनाः।
भक्षयन्ति पशूनन्ये रसनान्तावलम्बिभिः॥ १५

मुमुचुश्चापरे यूपान् पशवः प्रहरन्ति च।
वह्निमध्ये प्रसिञ्चन्ति वारिभिः प्रशमाय च॥ १६

नन्दी भगवान् रुद्रके ही दूसरे रूप हैं, जो उन्हींकी इच्छासे परम धर्मात्मा पुरुष-शरीरसे प्रकट हुए हैं॥ ५॥ राजेन्द्र! पूर्वोक्त योगके प्रभावसे वह जो प्रसिद्ध सनातन ब्रह्म है, उसीको उन परमात्मा रुद्रने ही वेदवाक्योंद्वारा उस रूपमें प्रकाशित किया था॥ ६॥ भगवान् रुद्रके गणोंमेंसे कुछ रूपवान् थे, कुछ रूपहीन। कितनोंके नेत्र विकराल रूपवाले थे। कितने ही घटोदर (घड़े-जैसे पेटवाले) थे। कितने ही गणोंके नेत्र ऊपर (सिरपर) थे। कोई विशालकाय थे तो कोई वामन। बहुतेरे बड़े विकट दिखायी देते थे। कितनोंके सिरपर बड़ी-बड़ी चोटियाँ थीं और बहुत-से जटाएँ रखाये हुए थे। किन्हींके तीन आँखें थीं तो किन्हींके खूँटे-जैसे कान थे। कोई चीर (फटे-पुराने वस्त्र) पहने हुए थे तो कोई चमड़े लपेटे रहते थे। कितनोंके हाथोंमें कूट, मुद्गर शोभा पाते थे। कोई घण्टा धारण करते थे तो कोई मूँजकी मेखला पहने हुए थे। कितनोंके हाथोंमें कड़े और कानोंमें सोनेके कुण्डल शोभा पाते थे। कोई डिण्डिम (डंका) पीटते थे तो कोई भेरी (ढाक); कोई मृदङ्ग बजाते थे तो कोई वेणु। ऐसे गणोंसे घिरे हुए महादेवजीने दक्षके उस यज्ञका विध्वंस किया था॥ ७—१०॥ कितने ही गण शङ्ख और मुरज बजाते थे। कितनोंके हाथोंमें ताड़के फल थे। उस समय भयंकर आयुध एवं पिनाक धारण करनेवाले महादेवजी यमराजके समान जान पड़ते थे॥ ११॥ आगकी लपटोंसे उद्दीप्त हुए उस यज्ञमण्डपमें यज्ञवानोंमें श्रेष्ठ भगवान् रुद्र सारे जगत्को जला डालनेके लिये उद्यत हुई प्रज्वलित शिखावाली प्रलयाग्निके समान शोभा पाते थे॥ १२॥ नन्दी और पिनाकधारी महादेवजी दोनों ही उस उत्तम यज्ञका नाश कर रहे थे। भगवान् रुद्र प्रलयकालमें समस्त संसारको भस्म करनेके लिये उद्यत हुए अग्निदेवके समान जान पड़ते थे॥ १३॥ चीर और चर्म धारण करनेवाले निशाचरगण मुनियोंके समुदायको त्रास देते और यूप उछालते हुए दौड़ रहे थे॥ १४॥ ताँबे-जैसे नेत्रवाले कितने ही रुद्रगण अपनी जिह्वाओंसे हविष्योंका पान कर रहे थे। कितने वहाँ पशुओंको चबा रहे थे और वे पशु उनकी जिह्वाके अग्रभागपर लटक रहे थे॥ १५॥ दूसरे रुद्रगण यूपोंको ऊपर फेंकते और पशुओंको पीटते थे। कितने ही यज्ञकुण्डमें पानी डालते थे, जिससे वहाँ प्रज्वलित हुई आग बुझ जाय॥ १६॥

सोममन्ये जहुः केचिन्नेत्रैस्ताम्रजपोपमैः।
दर्भान् केचिद् विलुम्पन्ति हस्तैः पद्मदलप्रभैः॥ १७

बभञ्जिरे च यूपाग्रान् कलशांश्चापि चिक्षिपुः।
चिच्छिदुः काञ्चनान् वृक्षाञ्छोभार्थमुपकल्पितान्॥ १८

बिभिदुश्चैव बाणैस्ते मुमुचुश्च हिरण्मयान्।
लुलुपुश्चैव पात्राणि ममन्थुश्चारणीमपि॥ १९

अरुजंश्चैव प्राग्वंशं लुलुपुश्च समाहिताः।
चखादिरे पुरोडाशान् नखाग्रैश्च चकर्तिरे॥ २०

एवं दिवा च रात्रौ च भिद्यमानो महामखः।
चुक्रोश च महानादान् भिद्यमान इवार्णवः॥ २१

धनुः सशरमादाय पूर्वदत्तं स्वयंभुवा।
कृतं कीचकवेणुभ्यां समरे सुमहारथः॥ २२

प्रतिगृह्य महादेवः स शरैः समयोजयत्।
धनुर्विगृह्य जानुभ्यां जघान स महाक्रतुम्॥ २३

स विद्धस्तेन बाणेन खं समुत्पतितः क्रतुः।
मृगो भूत्वा नर्दमानो ब्रह्माणमुपधावति॥ २४

शरेणाभिहतस्त्राणं न लेभे प्रशमं भुवि।
शरणार्थी ह्ययं प्राप्तः शरेणान्तर्गतेन च॥ २५

तमुवाच मृगं ब्रह्मा शुभं सानुनयं वचः।
स्वरेणोत्तमवीर्येण गम्भीरेण सुभाषिणा॥ २६

एवंरूपो नभसि त्वं भविष्यसि महामृगः।
विजितश्च त्रिपर्वेण शरेणानतपर्वणा॥ २७

तिष्ठन् नक्षत्रशिरसि सह रुद्रेण नित्यशः।
सोमेन सह संयुक्तो ह्यक्षयेणाव्ययेन च॥ २८

दिवि संचारभूतो वै ताराभिः सह संगतः।
ज्योतिर्भूतो ज्योतिषां त्वं ध्रुवश्चैव महाध्रुवः॥ २९

कोई ताँबे और जपा-कुसुमके समान लाल नेत्रोंसे देखते हुए सोमरसको नष्ट करने लगे। कोई प्रफुल्ल कमलदलके समान कान्तिवाले हाथोंसे वहाँ बिछे हुए कुशोंको चौपट करने लगे॥ १७॥ किन्हींने यूप तोड़ डाले, किन्हींने कलश उठाकर फेंक दिये तथा कुछ गणोंने वहाँ शोभाके लिये बनाये गये सुवर्णमय वृक्षोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ १८॥ कुछ गणोंने बाणोंद्वारा सुवर्णमय वृक्षोंको विदीर्ण कर दिया तथा उनपर सुनहरे बाण छोड़े। कितनोंने यज्ञपात्र तोड़ डाले और अरणीको भी मथ डाला॥ १९॥ कुछ गणोंने पत्नी-शाला उजाड़ दी और वहाँके सब सामान लूट लिये। यह सब कार्य वे बड़ी सावधानीसे कर रहे थे। उन्होंने पुरोडाश खा लिये और उनके रक्षकोंको अपने नखोंके अग्रभागसे बकोट लिया॥ २०॥ इस प्रकार जब दिनमें और रातमें भी पीड़ा दी गयी, तब वह महान् यज्ञ मूर्तिमान् होकर मथे जाते हुए समुद्रके समान बड़े जोर-जोरसे आर्तनाद करने लगा॥ २१॥ तब महारथी महादेवजी दोनों घुटनोंके बलपर खड़े हो गये और साक्षात् ब्रह्माजीने जिसे बाणसहित पहलेसे दे रखा था तथा जो 'कीचक और वेणु' नामक बाँसोंसे बनाया गया था, उस धनुषको हाथमें ले उसे झुकाकर उन्होंने उसपर बाण रखा तथा उस महायज्ञको उसका निशाना बनाया॥ २२-२३॥ उस बाणसे घायल होकर वह यज्ञ आकाशमें उछला और मृग होकर आर्तनाद करता हुआ ब्रह्माजीके पास दौड़ा गया॥ २४॥ बाणसे आहत हो जानेके कारण उसे भूतलपर न तो कहीं रक्षाका आश्वासन मिला और न चित्तमें शान्ति ही प्राप्त हुई। अतः वह शरणार्थी होकर शरीरमें धँसे हुए बाणके साथ ही ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हुआ॥ २५॥ ब्रह्माजीने उस मृगसे उत्तम बलसे युक्त, गम्भीर एवं सुन्दर भाषण करनेवाले स्वरसे यह शुभ एवं अनुनयपूर्ण बात कही— ॥ २६॥ महायज्ञ! तुम झुकी हुई गाँठ और तीन पर्ववाले बाणसे पराजित हो इसी तरह महान् मृगके रूपमें आकाशमें स्थित रहोगे॥ २७॥ 'तुम नक्षत्रके सिरपर स्थित हो 'मृगशिरा' कहलाओगे और रुद्र (आर्द्रा)-के साथ तुम्हारा सदा सांनिध्य बना रहेगा। तुम अक्षय अव्यय सोमके साथ संयुक्त रहोगे (सोम ही तुम्हारे देवता होंगे)॥ २८॥ 'आकाशमें तुम्हें संचार प्राप्त होगा। तुम ताराओंके साथ मिले रहोगे। तुम ज्योतियोंके बीच ज्योतिर्मय होकर प्रकाशित होओगे तथा 'ध्रुव' एवं 'महाध्रुव' बने रहोगे॥ २९॥

यच्चैतद् रुधिरं दिव्यं क्षतजादभिनि:सृतम्।
नभस्युत्पतितं चैव प्रवेगेन प्रधावत:॥ ३०

क्षतजं बहुवर्णं च क्षेत्रं मण्डलसंज्ञितम्।
निमित्तभूतं भूतानां वर्षे वर्षप्रदं तथा॥ ३१

सुखं दु:खं च भूतानां दर्शने सम्प्रवर्तते।
इन्द्रियश्रवणाच्चैव नभसीन्द्रायुधोऽभवत्॥ ३२

चक्षुषी मानुषे राजन् विस्मयात् समवैक्षत।
अद्भुतं बहुचित्रं च मनसा सम्प्रकल्पितम्॥ ३३

न तु रात्रौ प्रदृश्येत खे सब्रह्मणि संज्ञितम्।
दिनस्यैव सदा त्वग्रे महत्कार्यं प्रदृश्यते॥ ३४

भूमावेव समुत्तिष्ठेदाकाशे तु विलीयते।
शतशश्च समं सर्वे प्रधावन्ति प्रचेतस:।
भयाद् रुद्रस्य महतो धन्विनो बाणपाणय:॥ ३५

नन्दी रुद्रगणै: सार्द्धं पिनाकी समतिष्ठत।
युगान्तकाले ज्वलितो ब्रह्मदण्ड इवोद्यत:॥ ३६

विष्णु: शृङ्गसमुद्भूतं प्रगृह्य विपुलं धनु:।
प्रातिष्ठत महाबाहु: पाणिना चक्रमादधत्॥ ३७

गदां सघण्टामन्येन खड्गमन्येन पाणिना।
प्रगृह्य सोऽग्रतोऽतिष्ठद् रुद्रायोद्यतपाणये॥ ३८

तत: शृङ्गाग्रसम्भूतं प्रगृह्य विपुलं धनु:।
शङ्खं चाप्रतिमं लोके शरांश्चानतपर्वण:॥ ३९

विष्णुरग्रस्थितो भाति सबल: संहताङ्गुलि:।
बद्धगोधाङ्गुलित्राण: सचन्द्र इव तोयद:॥ ४०

आदित्या वसवश्चैव दिव्यै: प्रहरणै: सह।
विष्णुमेवाभित: सर्वे तिष्ठन्ति ज्वलनप्रभा:॥ ४१

मरुतश्चैव विश्वे च रुद्रमेवाभिपेदिरे।
गन्धर्वा: किन्नराश्चैव नागा यक्षा: सपन्नगा:॥ ४२

ऋषयो न्यस्तदण्डाश्च उभयो: पक्षयोर्हिता:।
जपन्ति शान्तये नित्यं लोकानां हितकाम्यया॥ ४३

'तुम्हारे शरीरमें जो बाणके आघातसे घाव हो गया है और इससे जो यह दिव्य रुधिर निकला है, तुम्हारे वेगपूर्वक दौड़नेसे आकाशमें भी उछला है और अनेक रंगोंमें परिणत हो गया है; अत: यह मण्डल नामसे प्रसिद्ध क्षेत्र होगा और वर्षा-ऋतुमें प्राणियोंके लिये निमित्त (वर्षासूचक लक्षण) बनकर वृष्टि प्रदान करनेवाला होगा॥ ३०-३१॥ इसके दर्शनसे प्राणियोंको सुख और दु:ख होता है। यह नेत्रेन्द्रियका विषय सुना गया है। अत: लोकमें इन्द्रायुध (अथवा इन्द्रधनुष)-के नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ३२॥ राजन्! पहले-पहल जब यह प्रकट हुआ, तब मनुष्योंकी आँखोंने बड़े विस्मयसे इसकी ओर देखा। यह अद्भुत, विचित्र तथा ब्रह्माजीके मनसे कल्पित है॥ ३३॥ यह रातमें नहीं दिखायी देता। आकाशमें जबतक सूर्यकी ज्योति रहती है, तभीतक इसका भान होता है। यह महान् कार्य सदा दिनके आगे ही दृष्टिगोचर होता है। यह भूतलपर ही उठता है और आकाशमें विलीन होता है। उस यज्ञमण्डपमें जो परम उत्साही तथा बाणधारी वीर पुरुष सैकड़ोंकी संख्यामें मौजूद थे, वे सब-के-सब महाधनुर्धर रुद्रके भयसे सब ओर भागने लगे॥ ३४-३५॥ प्रलयकालमें प्रज्वलित ब्रह्मदण्डके समान उद्यत हुए पिनाकधारी नन्दी वहाँ रुद्रगणोंको साथ लेकर विपक्षियोंसे युद्ध करनेके लिये खड़े हो गये॥ ३६॥ उधर महाबाहु भगवान् विष्णु शृङ्गसे निर्मित हुए विशाल शार्ङ्गधनुष और चक्र हाथमें लेकर युद्धके लिये प्रस्थित हुए॥ ३७॥ वे एक हाथमें घण्टायुक्त गदा और दूसरे हाथमें नन्दक खड्ग लेकर उठे हुए हाथवाले रुद्रका सामना करनेके लिये युद्धके मुहानेपर खड़े थे॥ ३८॥ उस समय विशाल शार्ङ्गधनुष, जगत्की अनुपम वस्तु पाञ्चजन्य शङ्ख और झुकी हुई गाँठवाले बाण लेकर सटी हुई अङ्गुलियोंवाले शक्तिशाली भगवान् विष्णु हाथोंमें गोहके चर्मके बने हुए दस्ताने बाँधे संग्रामभूमिमें आगे खड़े होकर चन्द्रमासहित मेघके समान सुशोभित हो रहे थे॥ ३९-४०॥ अग्निके समान तेजस्वी आदित्य और वसुगण सभी अपने दिव्य आयुधोंके साथ भगवान् विष्णुके ही आस-पास दोनों ओर खड़े हो गये॥ ४१॥ मरुद्गणों और विश्वेदेवोंने रुद्रदेवका ही साथ दिया। गन्धर्व, किन्नर, नाग, यक्ष, पन्नग तथा दण्डका त्याग करनेवाले ऋषि—दोनों पक्षोंके हितैषी थे। वे प्रतिदिन शान्ति एवं लोकहितकी कामनासे मन्त्र-जप करते थे॥ ४२-४३॥

रुद्रः शरेणाभ्यहनद् विष्णुमेवाग्रणी रणे।
हृदि सर्वाङ्गसन्धीषु तीक्ष्णाग्रेण सुयन्त्रिणा॥ ४४

न चकम्पे तदा विष्णुः सर्वात्मा ब्रह्मसम्भवः।
न च रोषमना नित्यं वृतः सर्वैः षडिन्द्रियैः॥ ४५

विष्णुश्च धनुरानम्य शरेण समयोजयत्।
जत्रुदेशे मुमोचाशु ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम्॥ ४६

स विद्धस्तेन बाणेन महादेवो न कम्पते।
वज्रेण च महासन्धिर्मन्दरस्य न चाल्यते॥ ४७

ततः प्रसभमाप्लुत्य रुद्रं विष्णुः सनातनम्।
कण्ठे जग्राह भगवान् नीलकण्ठस्ततोऽभवत्॥ ४८

अनादिनिधनो देवो क्षमतां हि भवान्मम।
सर्वभूतागमाचार्यमचलत्वाच्च कर्मणाम्॥ ४९

कर्मणां चैव कर्ता च विकर्ता चैव भारत।
अशेषत्वाच्च भूतानां सर्वभूतेषु चोत्तमः॥ ५०

स्वयमेव हि यत् कर्म विधत्ते कर्मयोनिषु।
तयोः शुभतमो राजन् स्वयमेव तथाकरोत्॥ ५१

अन्तरिक्षाच्छुभा वाचः श्रूयन्ते परमाद्भुताः।
सिद्धानां वदनोन्मुक्ताः सनातन नमोऽस्तु ते॥ ५२

नन्दी पिनाकमुद्यम्य बलवान् रुद्रसम्भवः।
मुर्द्धन्यभिजघानाजौ विष्णुं क्रोधेन मूर्च्छितः॥ ५३

ततः प्रहसितो विष्णुर्नन्दीं दृष्ट्वा सुरोत्तमः।
स्तम्भयामास भगवान् सर्वभूतपतिर्हरिः॥ ५४

अग्रगामी रुद्रने रणभूमिमें अपने बाणसे पहले भगवान् विष्णुके ही वक्षःस्थल तथा समस्त अङ्गोंकी सन्धियोंमें आघात किया। उस बाणका अग्रभाग बहुत तीखा तथा उत्तम यन्त्रसे युक्त था॥ ४४॥ परंतु ब्रह्माजीके उत्पादक तथा सबके आत्मा भगवान् विष्णु न तो उस आघातसे कम्पित हुए और न मनमें उन्होंने तनिक भी रोष ही आने दिया। छहों इन्द्रियोंने उनका पतिरूपसे वरण किया है (अर्थात् सभी इन्द्रियाँ उनके वशमें रहती हैं)॥ ४५॥ तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने अपने धनुषको नवाकर उसपर बाणका संधान किया और उद्यत हुए ब्रह्मदण्डके समान उस बाणको भगवान् शिवके गलेकी हँसलीपर शीघ्रतापूर्वक छोड़ दिया॥ ४६॥ उस बाणसे बिंध जानेपर भी महादेवजी विचलित नहीं हुए। ठीक उसी तरह, जैसे वज्रके प्रहारसे मन्दराचलकी महासन्धि नहीं हिलती है॥ ४७॥ तब नीलवर्ण भगवान् विष्णु हठात् उछलकर सनातनदेव रुद्रके गलेसे जा लगे, इससे महादेवजी 'नीलकण्ठ' नामसे प्रसिद्ध हुए। फिर विष्णु बोले—'अनादि अनन्त देवता रुद्र मेरा अपराध क्षमा करें; क्योंकि मैं यह जान गया कि आप सम्पूर्ण भूतों और आगमोंके आचार्य हैं। कर्म जड हैं, अतः वे आप चिन्मय परमात्माको प्रकाशित नहीं कर सकते'॥ ४८-४९॥ भारत! भगवान् शिव ही सर्वात्मा होनेके कारण कर्मोंके कर्ता और विकर्ता हैं। वे भूतोंके शेष (अङ्ग) नहीं शेषी (अङ्गी) हैं, इसलिये समस्त प्राणियोंमें उत्तम हैं॥ ५०॥ राजन्! जिन्हें कर्मोंद्वारा नाना प्रकारके शरीर प्राप्त हुए हैं, उनमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित होकर वे स्वयं ही कर्म करते हैं (उसके लिये प्रेरणा देते हैं)। कर्ता और प्रयोजक दोनोंसे भिन्न जो शुभतम (विशुद्ध) परमात्मा हैं, उन्होंने ही वैसा नियम बनाया है॥ ५१॥ तदनन्तर अन्तरिक्षसे सिद्धोंके मुखसे निकली हुई परम अद्भुत एवं शुभ वाणी सुनायी देने लगी—'सनातन परमेश्वर! आपको नमस्कार है'॥ ५२॥ इतनेहीमें क्रोधसे मूर्च्छित हुए रुद्रजनित बलवान् नन्दीने पिनाक उठाकर युद्धमें भगवान् विष्णुके मस्तकपर प्रहार किया॥ ५३॥ तब सम्पूर्ण भूतोंके प्रतिपालक सुरश्रेष्ठ भगवान् विष्णु हरि नन्दीकी ओर देखकर जोर-जोरसे हँसने लगे। फिर उन्होंने नन्दीको स्तम्भित कर दिया— वे हिल-डुल भी न सके॥ ५४॥

विष्णुर्ब्रह्मसमो भूत्वा तेजसा प्रज्वलन्निव।
क्षमया च समायुक्तः स्थितः स्थाणुरिवाचलः॥ ५५

अचिन्त्यश्चाप्रमेयश्च ह्यजेयश्चाप्यरिंदमः।
युगान्ताग्निसमो भूत्वा शान्तात्मा हरिरव्ययः॥ ५६

प्रसन्नः कल्पयामास भागं रुद्राय धीमते।
विष्णुर्धर्मपरो नित्यं त्यक्तकामः सुरोत्तमः॥ ५७

विष्णुना चैव राजेन्द्र स यज्ञः संधितः पुनः।
यथापक्षं च ते सर्वे गणास्त्वासन् महीपते।
तस्मिन् युद्धे महाघोरे विष्णू रुद्रस्य चैव ह॥ ५८

यथापक्षं भवेद् युद्धं दक्षयज्ञविनाशने।
विनाशश्चैव यज्ञस्य तदा लोके प्रतिष्ठितः॥ ५९

सर्वभूतेषु राजेन्द्र हितो यज्ञः सनातनः।
दक्षो यज्ञफलं चैव प्राप्तवान् स प्रजापतिः॥ ६०

इमां चोदाहृतां दिव्यां कथामिति स बुद्धिमान्।
श्रावयेद् यस्तु विप्रेभ्यः शुचिः प्रयतमानसः॥ ६१

अधीत्य सर्वमध्यात्मं देवलोके महीयते।
एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः॥ ६२

पुराणे पौष्करे चैव मया द्वैपायनेरितः।
यथावदनुपूर्वेण संस्कृतः परमर्षिभिः॥ ६३

यश्चैनमग्र्यं पुरुषः पुराणं
सदाप्रमत्तः शृणुयाद् यथोक्तम्।
अवाप्य कामानिह वीतशोकः
परत्र च स्वर्गफलानि भुङ्क्ते॥ ६४

भगवान् विष्णु ब्रह्म-समान होकर तेजसे प्रज्वलित-से होने लगे। वे क्षमाभावसे युक्त हो ठूँठे काठकी भाँति अविचल भावसे खड़े रहे॥ ५५॥ अचिन्त्य, अप्रमेय, अजेय, शत्रुका दमन करनेमें समर्थ और प्रलयाग्निके समान महातेजस्वी होकर भी अविनाशी श्रीहरिने उस समय अपने चित्तको शान्त कर लिया॥ ५६॥ सदा ही कामनाओंका परित्याग करनेवाले धर्मपरायण सुरश्रेष्ठ भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर उस यज्ञमें बुद्धिमान् रुद्रदेवके लिये भागकी कल्पना (व्यवस्था) की॥ ५७॥ राजेन्द्र! जिसे रुद्रने भंग कर दिया था, उस यज्ञको भगवान् विष्णुने फिरसे जोड़ा—उसे विधिपूर्वक सम्पन्न किया। पृथ्वीनाथ! उस समय भगवान् विष्णु और रुद्रके घोर युद्धमें सभी गण यथायोग्य पक्षमें सम्मिलित हो गये थे॥ ५८॥ दक्षयज्ञके विध्वंसके समय जिसका जो पक्ष था, उसीका आश्रय लेकर उसने युद्ध किया। उस समय लोकमें यज्ञका नाश ही प्रतिष्ठित हुआ॥ ५९॥ परंतु राजेन्द्र! यज्ञ समस्त प्राणियोंके लिये हितकर एवं सनातन है। प्रजापति दक्षने यज्ञका पूरा-पूरा फल पाया॥ ६०॥ जो पवित्र, संयतचित्त एवं बुद्धिमान् पुरुष यहाँ कही गयी इस दिव्य कथाका ब्राह्मणोंको श्रवण कराता है, वह समस्त अध्यात्मशास्त्रका अध्ययन करके देवलोकमें पूजित होता है। परमात्माका यह पुष्कर नामक प्रादुर्भाव, जिसे द्वैपायन व्यासजीने कहा था, मैंने इस पुराणमें पुष्कर-प्रादुर्भावके प्रसङ्गमें क्रमशः यथावत्‌रूपसे सुनाया है। महर्षियोंने इसका संस्कार किया है॥ ६१—६३॥ जो पुरुष सदा सावधान रहकर इस श्रेष्ठ पुराणका यथावत्-रूपसे श्रवण करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको पाकर वीतशोक हो परलोकमें भी स्वर्गीय फलोंका उपभोग करता है॥ ६४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौष्करे द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पुष्करप्रादुर्भावविषयक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

वाराहावतारका उपक्रम

जनमेजय उवाच

प्रादुर्भावः पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः।
सतां कथयतां विप्र वाराह इति नः श्रुतः॥ १

न जानतेऽस्य चरितं न विधिं नैव विस्तरम्।
न कर्म गुणवद्भावं न हेतुं न मनीषितम्॥ २

किमात्मको वराहोऽसौ का मूर्तिः कास्य देवता।
किमाचारः किंप्रभावः किं वा तेन पुरा कृतम्॥ ३

एतन्मे संशयत्वेन वाराहं श्रुतिविस्तरम्।
यज्ञार्थं च समेतानां द्विजातीनां महात्मनाम्॥ ४

वैशम्पायन उवाच

एतत् ते कथयिष्यामि पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
नानाश्रुतिसमायुक्तं कृष्णद्वैपायनेरितम्।
महावराहचरितं कृष्णस्याद्भुतकर्मणः॥ ५
यथा नारायणो राजन् वाराहं वपुरास्थितः।
दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिसूदनः॥ ६
छान्दसीभिरुदाराभिः श्रुतिभिः समलङ्कृतः।
शुचिः प्रयत्नवान् भूत्वा निबोध जनमेजय॥ ७
इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्।
नानाश्रुतिसमायुक्तं नास्तिकाय न कीर्तयेत्॥ ८
पुराणमेतदखिलं सांख्यं योगं तथैव च।
कार्त्स्न्येन विधिना प्रोक्तं योऽस्यार्थं ज्ञास्यते पुमान्॥ ९
विश्वेदेवास्तथा साध्या रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ।
प्रजानां पतयश्चैव सप्त चैव महर्षयः॥ १०
मनःसंकल्पजाश्चैव पूर्वजाश्च महर्षयः।
वसवोऽप्सरसश्चैव गन्धर्वा यक्षराक्षसाः॥ ११
दैत्याः पिशाचा नागाश्च भूतानि विविधानि च।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा म्लेच्छादयो भुवि॥ १२
चतुष्पदानि सर्वाणि तिर्यग्योनिगतानि च।
जङ्गमानि च सत्त्वानि यच्चान्यजीवसंज्ञितम्॥ १३

जनमेजयने पूछा—विप्रवर! मैंने सत्पुरुषोंके मुखसे पुराणोंमें अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुके 'वाराह' नामक अवतारकी चर्चा सुनी है॥ १॥ प्रायः लोग भगवान् वाराहका चरित्र नहीं जानते हैं। उसकी विधि और विस्तारसे भी अपरिचित हैं। भगवान् वाराहके कर्म, उनकी गुणवत्ता, उनके उस अवतारका हेतु तथा उनके मनोगत विचार क्या हैं? यह भी लोगोंको ज्ञात नहीं है॥ २॥ उस वाराहका स्वरूप क्या है? उसकी मूर्ति कैसी है? उसके देवता कौन हैं? उसका आचार और प्रभाव क्या है? अथवा उसने पूर्वकालमें कौन-सा कार्य किया था?॥ ३॥ यह मेरा संशयरूपसे प्रश्न है। यज्ञके लिये एकत्र हुए इन महात्मा ब्राह्मणोंके लिये भी वाराह-अवतारसम्बन्धी कथाका श्रवण विस्तारपूर्वक अपेक्षित है। (अतः आप इसका वर्णन करें)॥ ४॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! अद्भुतकर्मा भगवान् विष्णुका यह महावराह-चरित पुराणकथित एवं वेदके तुल्य आदरणीय है, नाना श्रुतियोंसे युक्त (अनुमोदित) तथा साक्षात् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीके द्वारा प्रतिपादित है। मैं इसका तुम्हारे समक्ष वर्णन आरम्भ करता हूँ॥ ५॥ राजा जनमेजय! शत्रुसूदन भगवान् नारायणने वराहरूप धारणकर उदार वैदिक श्रुतियोंसे अलंकृत, पवित्र एवं प्रयत्नशील हो जिस प्रकार एकार्णवके जलमें डूबी हुई पृथ्वीका अपनी एक दाढ़के द्वारा उद्धार किया, वह सब चरित्र सुनो॥ ६-७॥ इस परम पवित्र, पुरातन वेदोंके तुल्य प्रामाणिक तथा नाना श्रुतियोंसे अनुमोदित चरित्रका वर्णन किसी नास्तिकके सामने नहीं करना चाहिये॥ ८॥ यह सारा पुराण सांख्य-योगमय है। जो विद्वान् पुरुष इसके अर्थको ठीक-ठीक समझेगा, उसके लिये इसमें पूर्णतया विधिपूर्वक सांख्य-योगका वर्णन है॥ ९॥ विश्वेदेव, साध्य, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, प्रजापति, सात महर्षि, ब्रह्माजीके मनःसंकल्पसे उत्पन्न हुए पूर्वज महर्षि, वसु, अप्सरा, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य, पिशाच, नाग, नाना प्रकारके भूत, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, भूतलवासी म्लेच्छ आदि, समस्त चौपाये, तिर्यग् योनिके जीव, जङ्गममात्र जीव तथा दूसरे भी जीव नामधारी भूत—ये सभी भगवान् वराह (विष्णु)-के स्वरूप हैं॥ १०—१३॥

पूर्णे युगसहस्रान्ते ब्राह्मेऽहनि तथागते।
निर्वाणे सर्वभूतानां सर्वोत्पातसमुद्भवे॥ १४

हिरण्यरेतास्त्रिशिखस्ततो भूत्वा वृषाकपिः।
शिखाभिर्विविधाल्ँलोकान् संशोषयति देहिनः॥ १५

दह्यमानास्ततस्तस्य तेजोराशिभिरग्रतः।
विवर्णवर्णा दग्धाङ्गा हतार्चिष्मद्भिराननैः॥ १६

साङ्गोपनिषदा वेदा इतिहासपुरोगमाः।
सर्वविद्याश्रयाश्चैव सत्यधर्मपरायणाः॥ १७

ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा छन्दतो विश्वतोमुखम्।
सर्वे देवगणाश्चैव त्रयस्त्रिंशच्च कोटयः॥ १८

तस्मिन्नहनि सम्प्राप्ते तं हंसं महदक्षरम्।
प्रविशन्ति महायोगं हरिं नारायणं प्रभुम्॥ १९

तेषां भूयः प्रविष्टानां निधनोत्पत्तिरुच्यते।
यथा सूर्यस्य सततमुदयास्तमयाविह॥ २०

पूर्णे युगसहस्रान्ते कल्पो निःशेष उच्यते।
तस्मिञ्जीवकृतं सर्वं निःशेषमवतिष्ठते॥ २१

संहृत्य लोकान् सर्वान् स सदेवासुरपन्नगान्।
कृत्वाऽऽत्मगर्भे भगवानास्त एको जगद्गुरुः॥ २२

यः स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः।
अव्यक्तः शाश्वतो देवस्तस्य सर्वमिदं जगत्॥ २३

एक सहस्र चतुर्युग पूर्ण होनेपर अन्तमें जब ब्रह्माजीका दिन समाप्त हो जाता है और सब प्रकारके उत्पातोंसे सभी प्राणियोंका संहार होने लगता है, उस समय अग्नि, वायु और सूर्यरूप तीन शिखावाले प्रलयंकर अग्निदेव प्रकट होते हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप हैं। वे अपनी शिखाओंद्वारा विविध लोकों तथा समस्त देहधारियोंका शोषण कर लेते हैं॥ १४-१५॥ उस अग्निके ज्वालामय मुखों तथा तेजकी राशियोंसे अङ्ग दग्ध होनेके कारण श्रीहीन हुए छहों अङ्गोंसहित वेद, उपनिषद् और इतिहास आदि, जो सभी विद्याओंके आश्रय तथा सत्यधर्मपरायण हैं, ब्रह्माजीको आगे करके ईश्वरकी इच्छासे सब ओर मुखवाले परमात्मामें प्रविष्ट हो गये। वह दिन आनेपर तैंतीस कोटि संख्यावाले समस्त देवता भी महान्, अविनाशी, हंसस्वरूप, महायोगी, प्रभु श्रीनारायण हरिमें प्रवेश कर जाते हैं॥ १६—१९॥ जैसे इस जगत्में सदा ही सूर्यदेवके उदय और अस्त बने रहते हैं अर्थात् एक देशमें विद्यमान सूर्य जब दूसरे देशमें नहीं दिखायी देता, तब उस देशके लोग उसे अस्त हुआ कहते हैं और जब वह दिखायी देने लगता है, तब उसका उदय हुआ मानते हैं, उसी प्रकार भगवान् नारायणमें बारम्बार प्रविष्ट होनेवाले जीवोंके संहार और प्रलय सदा ही होते रहते हैं। तात्पर्य यह कि ब्रह्माजीके दिनके अन्तमें जब सारा जगत् नारायणमें प्रविष्ट हो जाता है, तब उसका प्रलय हुआ कहा जाता है; क्योंकि प्रलयावस्थामें मार्कण्डेयजीको नारायणके उदरमें पूर्ववत् जगत्का दर्शन हुआ था॥ २०॥ सहस्र चतुर्युग पूर्ण हो जानेपर एक कल्पका संहार हो जाता है। फिर उसमेंसे कुछ भी शेष नहीं रह जाता। उस अवस्थामें जीवका किया हुआ सब कुछ नष्ट हो जाता है॥ २१॥ देवता, असुर और नागोंसहित सम्पूर्ण लोकोंका संहार करके उन्हें अपने उदरमें स्थापित कर एकमात्र जगद्गुरु भगवान् श्रीहरि ही शेष रह जाते हैं॥ २२॥ जो कल्पान्तमें बारम्बार समस्त प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले अव्यक्त सनातनदेव श्रीहरि हैं, उन्हींका यह सम्पूर्ण जगत् है॥ २३॥

नष्टार्ककिरणे लोके चन्द्ररश्मिविवर्जिते।
त्यक्तभूताग्निपवने क्षीणयज्ञवषट्क्रिये॥ २४

अपक्षिगणसंघाते सर्वप्राण्यचरे पथि।
अमर्यादाकुले रौद्रे सर्वतस्तमसावृते॥ २५

अदृश्ये सर्वलोकेऽस्मिन्नभावे सर्वकर्मणाम्।
प्रशान्ते सर्वसम्पाते नष्टे वैरपरिग्रहे॥ २६

गते स्वभावसंस्थानं लोके नारायणात्मके।
परमेष्ठी हृषीकेशः शयनायोपचक्रमे॥ २७

पीतवासा लोहिताक्षः कृष्णो जीमूतसंनिभः।
शिखासहस्रविकचं जटाभारं समुद्वहन्॥ २८

श्रीवत्सकलिलं पुण्यं रक्तचन्दनभूषितम्।
वक्षो बिभ्रन्महाबाहुः सविद्युदिव तोयदः॥ २९

पुण्डरीकसहस्रस्य मालास्य शुशुभे तदा।
पत्नी चैव स्वयं लक्ष्मीर्देहमावृत्य तिष्ठति॥ ३०

ततः स्वपिति धर्मात्मा सर्वलोकपितामहः।
किमप्यमितविक्रान्तो निद्रायोगमुपागतः॥ ३१

ततो वर्षसहस्रे तु पूर्णे स पुरुषोत्तमः।
स्वयमेव विभुर्भूत्वा बुध्यते विबुधाधिपः॥ ३२

ततश्चिन्तयते भूयः सृष्टिं लोकस्य लोककृत्।
पितृदेवासुरनरान् पारमेष्ठ्येन कर्मणा॥ ३३

ततश्चिन्तयते कार्यं देवेषु समितिंजयः।
सम्भवं सर्वलोकस्य विदधाति स वाक्पतिः॥ ३४

कर्ता चैव विकर्ता च संहर्ता च प्रजापतिः।
धाता विधाता च तथा संयमो नियमो यमः॥ ३५

नारायणपरा देवा नारायणपराः क्रियाः।
नारायणपरो यज्ञो नारायणपरा श्रुतिः॥ ३६

नारायणपरो मोक्षो नारायणपरा गतिः।
नारायणपरो धर्मो नारायणपरः क्रतुः॥ ३७

जब जगत्से सूर्यकी किरणोंका लोप हो गया है, चन्द्रमाकी रश्मियाँ भी नहीं रह गयीं, अग्नि और पवन भी परित्यक्त हो गये, यज्ञ और वषट्कारकी क्रियाएँ सर्वथा क्षीण हो गयीं, पक्षियोंका समूह नहीं रह गया, मार्गोंपर समस्त प्राणियोंका चलना-फिरना बंद हो गया, जब यह जगत् मर्यादारहित, भयंकर और सब ओरसे अन्धकारसे आच्छन्न हो गया, जब इसमें सभी लोक अदृश्य हो गये, सब कर्मोंका अभाव हो गया, सब ओरसे शान्ति छा गयी, सबका अन्त हो गया, वैर-विरोध नष्ट हो गये, सब लोग अपनी स्वाभाविक स्थितिको पहुँच गये और सारा विश्व नारायणस्वरूप हो गया, उस समय परमेष्ठी भगवान् हृषीकेश शयनकी तैयारी करने लगे॥ २४—२७॥ उनके श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। नेत्र कुछ-कुछ लाल थे। अङ्गकान्ति मेघके समान श्याम थी। सिरपर सहस्रों शिखाओंसे विकसित जटाका भार वे वहन करते थे॥ २८॥ उनका रक्त-चन्दनसे विभूषित पवित्र वक्षःस्थल श्रीवत्सकी शोभासे संयुक्त था। उसे धारण किये महाबाहु श्रीहरि बिजलीसहित मेघके समान सुशोभित होते थे॥ २९॥ उस समय उनके गलेमें सहस्र कमलोंकी माला शोभा पा रही थी। उनकी पत्नी साक्षात् लक्ष्मी उनके सम्पूर्ण शरीरको घेरकर खड़ी थीं॥ ३०॥ समस्त लोकोंके पितामह तथा अमितपराक्रमी वे धर्मात्मा नारायण निद्रायोगका आश्रय ले किसी अनिर्वचनीय ढंगसे सो गये॥ ३१॥ तदनन्तर सहस्रों वर्ष पूर्ण होनेपर वे सर्वव्यापी देवेश्वर पुरुषोत्तम स्वयं ही जाग्रत् हुए (प्रत्येक कल्पके अन्तमें वे इसी तरह सोते और जागते हैं)॥ ३२॥ तत्पश्चात् वे लोककर्ता भगवान् विष्णु पुनः लोकसृष्टिके विषयमें विचार करते हैं। ब्रह्मोचित कर्मद्वारा पितरों, देवताओं, असुरों और मनुष्योंकी उत्पत्तिके विषयमें सोचते हैं॥ ३३॥ इसके बाद वे युद्धविजयी तथा वाणीके अधिपति भगवान् नारायण देवताओंके प्रयोजनका विचार करते हैं और सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करने लगते हैं॥ ३४॥ वे ही भूतोंके स्रष्टा तथा भौतिक वस्तुओंको विविध रूपोंमें उत्पन्न करनेवाले हैं। वे ही संहार करनेवाले और प्रजाके पालक हैं। धाता, विधाता, संयम, नियम और यम वे ही हैं॥ ३५॥ सब देवता नारायणके ही उपासक हैं। सम्पूर्ण क्रियाएँ नारायणको ही प्राप्त होती हैं। यज्ञके परम आश्रय नारायण ही हैं तथा श्रुतियोंके परम प्रतिपाद्य तत्त्व भी वे ही हैं॥ ३६॥ मोक्षकी पराकाष्ठा नारायण ही हैं। सर्वोत्तम गति श्रीनारायण ही हैं। धर्मके परम लक्ष्य नारायण ही हैं और यज्ञ भी नारायणकी ही प्रसन्नताके लिये किया जाता है॥ ३७॥

नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरं तपः।
नारायणपरं सत्यं नारायणपरं पदम्।
नारायणपरो देवो न भूतो न भविष्यति॥ ३८

स्वयम्भूरिति विज्ञेयः स ब्रह्मा भुवनाधिपः।
स वायुरिति विज्ञेय एष यज्ञः सनातनः॥ ३९

सदसच्च स विज्ञेयः स यज्ञः स प्रजाकरः।
यद् वेदितव्यं त्रिदशैस्तदेष परिविन्दति॥ ४०

यच्च वेद्यं भगवतो देवा अपि न तद् विदुः।
प्रजानां पतयः सप्त ऋषयश्च सहामरैः॥ ४१

नास्यान्तमधिगच्छन्ति ततोऽनन्त इति श्रुतिः।
यदस्य परमं रूपं तत्र पश्यन्ति देवताः॥ ४२

प्रादुर्भावेषु सम्भूतं यत् तदर्चन्ति देवताः।
यन्न दर्शितवान् देवः कस्तदन्वेष्टुमर्हति॥ ४३

ग्रामणीः सर्वभूतानामग्निमारुतयोर्गतिः।
तेजसस्तपसश्चैव निधानममृतस्य च॥ ४४

चतुराश्रमवर्णेषु चातुर्होत्रफलाशनः।
चतुःसागरपर्यन्तश्चतुर्युगविवर्तकः॥ ४५

तदेष संहृत्य जगत् कृत्वा गर्भस्थमात्मनः।
मुमोचाण्डं महायोगी धृतं वर्षसहस्त्रिकम्॥ ४६

सुरासुरद्विजभुजगाप्सरोगणै-
र्महौषधिक्षितिधरयक्षगुह्यकैः।
प्रजापतिः श्रुतिधर रक्षसां कुलं
तदासृजज्जगदिदमात्मना प्रभुः॥ ४७

ज्ञानके उत्कृष्ट रूप नारायण ही हैं, तपस्याद्वारा परम प्राप्य वस्तु नारायण ही हैं, सत्य भी नारायणकी ही प्राप्तिका साधन है तथा परमपद भी नारायण ही हैं। नारायणसे बढ़कर न तो कोई दूसरा देवता हुआ है न होगा॥ ३८॥ उन्हींको सम्पूर्ण भुवनोंके अधिपति स्वयम्भू ब्रह्मा समझना चाहिये। वे ही वायुके नामसे भी जाननेयोग्य हैं तथा ये ही सनातन यज्ञ हैं॥ ३९॥ उन्हींको सत् और असत् जानना चाहिये। वे ही यज्ञ और वे ही प्रजावर्गके स्रष्टा हैं। देवताओंद्वारा जो कुछ प्राप्तव्य वस्तु है, उसकी प्राप्ति ये ही कराते हैं॥ ४०॥ भगवान्‌का जो वेद्य तत्त्व है, उसे देवता भी नहीं जानते। देवताओंसहित प्रजापति और सप्तर्षि भी उनका अन्त नहीं जानते, इसलिये 'अनन्त' नामसे उनकी प्रसिद्धि है। इनका जो परम उत्कृष्ट रूप है, उसका देवलोकमें देवता दर्शन करते हैं। अवतारोंमें उनका जो स्वरूप प्रकट होता है, उसकी भी देवता पूजा करते हैं। जिसे भगवान्‌ने स्वयं नहीं दिखा दिया, उसका अन्वेषण कौन कर सकता है॥ ४१—४३॥ वे समस्त प्राणियोंके नेता, जठरानल और प्राणकी गति तथा तप, तेज और अमृतकी निधि हैं॥ ४४॥ चारों आश्रमों और वर्णोंमें चातुर्होत्र यज्ञका फल भोगनेवाले तथा उस फलकी प्राप्ति करानेवाले वे ही हैं। वे चारों समुद्रोंतक व्याप्त हैं तथा चारों युगोंकी आवृत्ति करानेवाले हैं॥ ४५॥ इन महायोगी श्रीहरिने सम्पूर्ण जगत्‌का संहार करके उसे अपने गर्भमें स्थापित कर सहस्रों वर्षोंतक धारण करनेके पश्चात् अण्ड (ब्रह्माण्ड)-के रूपमें प्रकट किया॥ ४६॥ वेदोंका धारण और पालन करनेवाले जनमेजय! उस समय इन भगवान् प्रजापतिने देवता, असुर, द्विज, नाग, अप्सरागण, महौषधि, पर्वत, यक्ष और गुह्यकोंसहित राक्षसकुलकी भी अपने ही स्वरूपसे सृष्टि की॥ ४७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वाराहे प्रादुर्भावे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वाराहावतारविषयक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

भगवान् यज्ञवराहके द्वारा पृथ्वीका उद्धार

वैशम्पायन उवाच

जगदण्डमिदं पूर्वमासीत् सर्वं हिरणमयम्।
प्रजापतेर्मूर्तिमयमित्येवं वैदिकी श्रुतिः॥ १

ततो वर्षसहस्रान्ते बिभेदोर्ध्वमुखं विभुः।
लोकसंजननार्थाय बिभेदाण्डं पुनः पुनः॥ २

भूयोऽष्टधा बिभेदाण्डं प्रभुर्वै लोकयोनिकृत्।
चकार जगतश्चात्र विभागं सर्वभागवित्॥ ३

यच्छिद्रमूर्ध्वमाकाशं परा सुकृतिनां गतिः।
विहितं विश्वयोगेन यदधस्तद् रसातलम्॥ ४

यदण्डमकरोत् पूर्वं देवलोकसिसृक्षया।
समन्तादष्टधा यानि च्छिद्राणि कृतवांस्तु सः॥ ५

विदिशस्ता दिशः सर्वा मनसैवाकरोद् द्विधा।
नानारागविरागाणि यान्यण्डशकलानि वै॥ ६

बहुवर्णधराश्चित्रा बभूवुस्ते बलाहकाः।
यदण्डमध्ये स्कन्नं तदृतमासीत् समाहितम्॥ ७

जातरूपं तदभवत् तत् सर्वं पृथिवीतले।
तस्य क्लेदार्णवौघेन प्राच्छाद्यत समन्ततः॥ ८

पृथिवी निखिला राजन् युगान्ते सागरैरिव॥ ९

यच्चाण्डमकरोत् पूर्वं देवलोकचिकीर्षया।
तत्र तत् सलिलं स्कन्नं सोऽभवत् काञ्चनो गिरिः॥ १०

तेनाम्भसा प्लुताः सर्वा दिशश्चोपदिशस्तथा।
अन्तरिक्षं च नाकं च यच्चान्यत् किंचिदन्तरम्॥ ११

यत्र यत्र जलं स्कन्नं तत्र तत्र स्थितो गिरिः।
शैलैः समस्तैर्गहना विषमा मेदिनी भवत्॥ १२

तैः सपर्वतजालौघैर्बहुयोजनविस्तृतैः।
पीडिता गुरुभिर्देवी पृथिवी व्यथिताभवत्॥ १३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वैदिकी श्रुतिका कथन है कि प्रजापतिका स्वरूपभूत यह सारा जगत् पहले सुवर्णमय अण्डके रूपमें उत्पन्न हुआ था॥ १॥ उन सर्वव्यापी भगवान्ने सहस्र वर्षके बाद उक्त अण्डको ऊपरकी ओरसे फोड़ दिया। फिर समस्त लोकोंकी उत्पत्तिके लिये उन्होंने उस अण्डमें (नीचेकी ओरसे) दूसरा छेद भी किया॥ २॥ तत्पश्चात् समस्त लोकोंको जन्म देनेवाले सामर्थ्यशाली भगवान्ने फिर उस अण्डमें आठ छिद्र किये। समस्त भागोंके ज्ञाता श्रीहरिने यहाँ जगत्का विभाग किया॥ ३॥ उस अण्डमें जो ऊपर छेद किया गया था, वही आकाश हुआ, जो पुण्यात्मा पुरुषोंकी परम गति है। फिर यह सम्पूर्ण विश्व जिनका योग है, उन परमात्माने जो इस ब्रह्माण्डमें नीचेकी ओर छेद किया, वही रसातल है॥ ४॥ देवलोककी सृष्टिकी इच्छासे भगवान्ने पहले जो अण्ड उत्पन्न किया और उसमें सब ओर जो उन्होंने आठ छिद्र किये, वे ही सम्पूर्ण दिशाएँ और विदिशाएँ हैं। उन्होंने मनसे ही उन सबके दो भाग किये। उस अण्डके जो रंग-बिरंगे टुकड़े थे, वे ही अनेक वर्ण धारण करनेवाले बहुत-से विचित्र मेघ हुए। उस अण्डके मध्यभागमें जो स्खलित हुआ द्रवपदार्थ, जिसे ऋत कहते हैं, जगह-जगह स्थापित हो गया, वह सब इस पृथ्वीपर जातरूप (सुवर्ण) हो गया। राजन्! जैसे प्रलयकालमें सारी पृथ्वी समुद्रोंद्वारा सब ओरसे आच्छादित हो जाती है, उसी प्रकार उस क्लेदरूप जलके प्रवाहने भूतलको सब ओरसे आच्छादित कर लिया॥ ५—९॥ भगवान्ने देवलोककी सृष्टिकी इच्छासे पहले जो अण्ड उत्पन्न किया था, उसमें जहाँ-जहाँ वह जल स्खलित होकर गिरा, वही सुवर्णमय पर्वत हो गया॥ १०॥ उस जलने सारी दिशाओं और उपदिशाओंको आप्लावित कर दिया। अन्तरिक्ष, स्वर्ग तथा इनके बीचका और जो कुछ स्थान है, उसमें जहाँ-जहाँ वह जल गिरा, वहाँ-वहाँ एक पर्वत खड़ा हो गया। उन समस्त पर्वतोंसे अवरुद्ध हुई यह पृथ्वी गहन एवं विषम हो गयी। अनेक योजनोंतक फैले हुए उन भारी पर्वत समूहोंसे दबी हुई पृथ्वीदेवी पीड़ासे व्यथित हो गयी॥ ११—१३॥

महीतले भूरि जलं दिव्यं नारायणात्मकम्।
हिरण्मयं समुद्दिष्टं तेजो विमलरूपितम्॥ १४
अशक्ता वै धारयितुमधः सा प्रविवेश ह।
पीड्यमाना भगवतस्तेजसा तेन सा क्षितिः॥ १५
पृथिवीं विशतीं दृष्ट्वा तामधो मधुसूदनः।
उद्धारार्थं मनश्चक्रे लोकानां हितकाम्यया॥ १६

श्रीभगवानुवाच

मत्तेज एव बलवत् समासाद्य तपस्विनी।
रसातलं विशेद् देवी पङ्के गौरिव दुर्बला॥ १७

धरण्युवाच

त्रिविक्रमायामितविक्रमाय
महानृसिंहाय चतुर्भुजाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय
नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय॥ १८

त्वयाऽऽत्मना धार्यते वै त्वया संह्रियते जगत्।
त्वं धारयसि भूतानां भुवनं त्वं बिभर्षि च॥ १९

यत् त्वया धार्यते किंचित् तेजसा च बलेन च।
ततस्तव प्रसादेन मया पश्चात् तु धार्यते॥ २०

त्वया धृतं धारयामि नाधृतं धारयाम्यहम्।
न हि तद् विद्यते रूपं यत् त्वया न तु धार्यते॥ २१

त्वमेव कुरुषे वीर नारायण युगे युगे।
मम भारावतरणं जगतो हितकाम्यया॥ २२

तवैव तेजसाऽऽक्रान्तां रसातलतलं गताम्।
त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताम्॥ २३

दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः।
त्वामेव शरणं नित्यमुपयामि सनातनम्॥ २४

तावन्मेऽस्ति भयं भूयो यावन्न त्वां ककुद्मिनम्।
शरणं यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्षये॥ २५

श्रीभगवानुवाच

मा भैर्धरणि कल्याणि शान्तिं व्रज समाहिता।
एष त्वामुचितं स्थानमानयामि मनीषितम्॥ २६

पृथ्वीपर निर्मल तेजस्वरूप सुवर्णमय जो नारायणात्मक दिव्य जल अधिक मात्रामें गिरा, उसे धारण करनेमें असमर्थ होकर वह नीचे रसातलसे भी नीचेके भागमें प्रवेश करने लगी, क्योंकि भगवान्‌के उस तेजसे वह पृथ्वी अत्यन्त पीड़ित हो रही थी॥ १४-१५॥ पृथ्वीको नीचे जाती देख भगवान् मधुसूदनने समस्त लोकोंके हितकी कामनासे उसका उद्धार करनेका विचार किया॥ १६॥

श्रीभगवान् मन-ही-मन बोले—यह तपस्विनी देवी पृथ्वी मेरे प्रबल तेजका भार पाकर कीचड़में फँसी हुई दुबली गायकी भाँति रसातलके नीचे धँस जायगी, ऐसा जान पड़ता है॥ १७॥

उस समय पृथ्वी भगवान्‌की स्तुति करती हुई बोली—जो तीनों लोकोंको अपने चरणोंसे आक्रान्त कर लेनेके कारण त्रिविक्रम कहलाते हैं, जिनके पराक्रमका कोई माप नहीं है तथा जो अपने हाथोंमें शार्ङ्ग धनुष, सुदर्शन चक्र, नन्दक खड्ग और कौमोदकी गदा धारण करते हैं, उन महानृसिंह, चार भुजाधारी पुरुषोत्तमको मेरा नमस्कार है॥ १८॥ भगवन्! आप ही अपनी शक्तिसे इस जगत्‌को धारण करते हैं और आपके द्वारा ही इसका संहार होता है। आप समस्त प्राणियोंके भुवनका धारण और पोषण करते हैं॥ १९॥ आप अपने तेज और बलसे जो कुछ धारण करते हैं, उसीको मैं पीछेसे आपकी ही कृपासे धारण करती हूँ॥ २०॥ आपके धारण किये हुएको ही मैं धारण करती हूँ। जिसे आपने धारण न किया हो, ऐसी किसी वस्तुको मैं धारण नहीं करती। ऐसा कोई रूप नहीं है, जो आपके द्वारा धारण न किया जाता हो॥ २१॥ वीर! नारायण! आप ही जगत्‌के हितकी कामनासे युग-युगमें (अवतार ग्रहण करके) मेरा भार उतारा करते हैं॥ २२॥ सुरश्रेष्ठ! मैं आपके ही तेजसे (प्रकट हुए पर्वतोंद्वारा) आक्रान्त हो रसातलसे भी नीचे चली आयी हूँ और आपकी ही शरण ले रही हूँ। आप मेरी रक्षा करें॥ २३॥ दुरात्मा दानवों और राक्षसोंसे पीड़ित होकर मैं सदा आप सनातन परमेश्वरकी ही शरणमें आती हूँ॥ २४॥ मैं सैकड़ों बार यह देख चुकी हूँ कि जबतक मैं विशाल वृषभके समान पुष्ट कंधोंवाले आप भगवान्‌की शरण नहीं लेती हूँ, तभीतक मुझे अधिक भय प्राप्त होता रहता है॥ २५॥

श्रीभगवान् बोले—धरणि! भयभीत न हो। कल्याणि! मनको एकाग्र करके शान्ति धारण कर। यह मैं तुझे अभी उचित एवं मनोवाञ्छित स्थानपर ले आता हूँ॥ २६॥

वैशम्पायन उवाच

ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत्।
किं नु रूपमहं कृत्वा उद्धरामि वसुन्धराम्॥ २७

जले निमग्नां धरणीं येनाहं वै समुद्धरे।
इत्येवं चिन्तयित्वा तु देवस्तत्करणे मतिम्॥ २८

जलक्रीडारुचिस्तस्माद् वाराहं रूपमस्मरत्।
हरिरुद्धरणे युक्तस्तदाभूदस्य भूमिभृत्॥ २९

अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसम्मितम्।
दशयोजनविस्तारमुच्छ्रितं शतयोजनम्॥ ३०

नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिःस्वनम्।
महागिरेः संहननं श्वेतदीप्तोग्रदंष्ट्रिणम्॥ ३१

विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम्।
पीनवृत्तायतस्कन्धं दृप्तशार्दूलगामिनम्॥ ३२

पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम्।
रूपमास्थाय विपुलं वाराहममितं हरिः॥ ३३

पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम्।
वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः॥ ३४

अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः।
अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः॥ ३५

आज्यनासः स्रुवातुण्डः सामघोषस्वरो महान्।
सत्यधर्ममयः श्रीमान् क्रमविक्रमसत्कृतः॥ ३६

क्रियासत्रमहाघोणः पशुजानुर्मखाकृतिः।
उद्गात्रान्त्रो होमलिङ्गो बीजौषधिमहाफलः॥ ३७

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर महात्मा श्रीहरिने मन-ही-मन किसी दिव्यरूपके विषयमें चिन्तन किया। वे सोचने लगे, कौन-सा रूप धारण करके मैं इस पृथ्वीका उद्धार करूँ। वह रूप ऐसा होना चाहिये, जिसके द्वारा मैं जलमें डूबी हुई पृथ्वीको ऊपर उठा सकूँ। ऐसा सोचते हुए भगवान्ने उस रूपको धारण करनेका विचार किया। उस समय जलमें क्रीड़ा करनेके लिये उनकी रुचि हुई; अतः उन्होंने वाराह रूपका स्मरण किया। पृथ्वीको धारण करनेवाले श्रीहरि उसका उद्धार करनेके लिये उद्यत हो गये। उस समय उनका रूप दस योजन विस्तृत और सौ योजन ऊँचा हो गया। वह वेदतुल्य सम्मानित भगवान्का वाङ्मयस्वरूप समस्त प्राणियोंके लिये अजेय था॥ २७—३०॥ उसकी अङ्गकान्ति नील मेघके समान श्याम थी। उसका शब्द मेघकी गम्भीर गर्जनाको तिरस्कृत किये देता था। भगवान्का वह विग्रह महान् पर्वतकी आकृतिके समान प्रतीत होता था। उनकी दाढ़ें श्वेत, चमकीली और भयङ्कर थीं॥ ३१॥ उसका तेज बिजली और अग्निके समान था। उसकी प्रभा सूर्यके सदृश थी। उसके कंधे मोटे, गोलाकार और चौड़े थे। वह बलके घमंडमें भरे हुए सिंहके समान चलता था। उसका कटिप्रदेश ऊँचा और मांसल था। वह वृषभके लक्षणोंसे सम्मानित था। ऐसे अमित और विशाल वाराहरूपको धारण कर श्रीहरिने पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये रसातलमें प्रवेश किया। उन भगवान् यज्ञवाराहके चारों पैर चारों वेद ही थे। यूप उनकी दाढ़ थे। क्रतु (यज्ञ) ही दाँत और चिति ही (इष्टिका चयन) मुख थे। अग्नि उनकी जिह्वा, कुश उनके रोम तथा ब्रह्म (प्रणव) उनका मस्तक था। वे महान् तपसे सम्पन्न थे। दिन और रातको ही वे दोनों नेत्रोंके रूपमें धारण करते थे। वेदके छहों अङ्ग उनके कानोंके कुण्डल थे॥ ३२—३५॥ घी उनकी नासिका, स्रुवा उनकी थूथुन और सामवेदका स्वर ही उनकी भीषण गर्जना थी। उनका शरीर बहुत बड़ा था। उनका विग्रह सत्य-धर्ममय था। वे अलौकिक शोभासे सम्पन्न थे। वे क्रम (गति) और विक्रम (पराक्रम) दोनोंसे सम्मानित थे (अथवा वेदके क्रम-पाठ और व्युत्क्रम-पाठ ही यहाँ क्रम-विक्रम हैं, जिनसे भगवान् यज्ञवाराह सत्कृत थे)॥ ३६॥ क्रियामय सत्र उनके बड़े-बड़े नथुने थे। पशु घुटने और यज्ञ ही उनकी आकृति थे। उद्गाता ही उनका आँत था। होमरूप कर्म उनका लिङ्ग था। बीज और ओषधियाँ उनसे प्राप्त होनेवाले महान् फल थीं॥ ३७॥

वाय्वन्तरात्मा मन्त्रस्फृग् विक्रमः सोमशोणितः।
वेदीस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान्॥ ३८

प्राग्वंशकायो द्युतिमान् नानादीक्षाभिरर्चितः।
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान्॥ ३९

उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः।
नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः॥ ४०

छायापत्नीसहायो वै मणिशृङ्ग इवोच्छ्रितः।
भूत्वा यज्ञवराहोऽसौ युगपत् प्राविशद् गुरुः॥ ४१

अद्भिः संछादितामुर्वी स तामार्च्छत् प्रजापतिः।
रसातलतले मग्नां पातालान्तरसंश्रयाम्॥ ४२

प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहार गाम्।
ततः स्वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीधरः॥ ४३

मुमोच पूर्वं सहसा धारयित्वा धराधरः।
ततो जगाम निर्वाणं मेदिनी तस्य धारणात्॥ ४४

चकार च नमस्कारं तस्मै देवाय शम्भवे।
एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना॥ ४५

उद्धृता पृथिवी देवी लोकानां हितकाम्यया।
अथोद्धृत्य क्षितिं देवो जगतः स्थापनेच्छया॥ ४६

पृथिवीप्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः।
रसातलगतामेवं विचिन्त्य स सुरोत्तमः॥ ४७

ततो विभुः प्रवरवराहरूपधृग्
वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया।
समुद्धरद् धरणिमतुल्यविक्रमो
महायशाः सकलहितार्थमच्युतः॥ ४८

वायु उनकी अन्तरात्मा थी। मन्त्र नितम्ब था। वे विक्रमस्वरूप थे। सोमरस उनका रक्त था। यज्ञकी वेदी उनके कंधे, हविष्य सुगन्ध और हव्य-कव्य ही उनके अतिशय वेग थे॥ ३८॥ प्राग्वंश (पत्नीशाला या यजमान-गृह) उनका शरीर कहा गया है। वे तेजस्वी तथा नाना प्रकारकी दीक्षाओंसे पूजित थे। दक्षिणा उनके हृदयके स्थानमें थी। वे महान् योगी और महासत्रमय थे॥ ३९॥ उपाकर्म उनके ओष्ठका भूषण था और प्रवर्ग्यकर्म ही उनकी नाभिको विभूषित करनेवाले थे। नाना प्रकारके छन्द उनके चलनेके मार्ग थे और गूढ़ उपनिषद् उनके आसन थे॥ ४०॥ जलमें पड़नेवाली छाया (परछाईं) ही पत्नीकी भाँति उनकी सहायिका थी। वे मणिमय पर्वतशिखरके समान ऊँचे थे। इस प्रकार यज्ञमय वाराहरूप धारण करके उन जगद्गुरु भगवान्ने पृथ्वीके रसातलमें जानेके साथ ही स्वयं भी वहाँ प्रवेश किया॥ ४१॥ जलमें छिपी हुई तथा रसातलमें डूबकर दूसरे पातालमें पहुँची हुई उस पृथ्वीके पास वे भगवान् प्रजापति स्वयं भी जा पहुँचे॥ ४२॥ पृथ्वीको धारण करनेवाले उन प्रभुने लोकहितके लिये अपनी दाढ़के अग्रभागसे पृथ्वीको ऊपर उठाया और अपनी जगहपर लाकर रख दिया॥ ४३॥ धराको धारण करनेवाले भगवान् वाराहने पहले स्वयं पृथ्वीको धारण करके उसे सहसा जलके ऊपर छोड़ दिया। उनके धारण करनेसे पृथ्वीको बड़ी शान्ति मिली। उसने उन कल्याणकारी देवता यज्ञवाराहको नमस्कार किया। इस प्रकार सम्पूर्ण भूतोंका हित चाहनेवाले भगवान्ने यज्ञवाराह होकर लोकहितकी कामनासे पृथ्वीदेवीका उद्धार किया। तदनन्तर कमलनयन सुरश्रेष्ठदेव श्रीहरिने इस तरह रसातल गयी हुई पृथ्वीके विषयमें विचार करके जगत्को स्थापित करनेकी इच्छासे उसे ऊपरको उठाया और उसके विभाग करनेके लिये मनमें विचार किया॥ ४४—४७॥ राजन्! इस तरह उस समय श्रेष्ठ वराहरूप धारण करके सर्वव्यापी हरिहररूप अनुपम पराक्रमी महायशस्वी अच्युतने सबके हितके लिये पृथ्वीको बलपूर्वक एक दाँतसे ऊपरको उठाया था॥ ४८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वाराहे पृथिव्युद्धरणे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वाराहावतारके प्रसङ्गमें पृथ्वीका उद्धारविषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

भगवान् वाराहके द्वारा विभिन्न दिशाओंमें पर्वतों और नदियोंका निर्माण

वैशम्पायन उवाच

तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता।
विततत्वात्तु देहस्य न ययौ सम्प्लवं मही॥ १

ततः स चिन्तयामास प्रविभागं क्षितेर्विभुः।
समुच्छ्रयं च सर्वेषां पर्वतानां नदीषु च॥ २

विलेखनं प्रमाणं च गतिं प्रस्रवमेव च।
माहात्म्यं च विशेषं च नदीनामन्वचिन्तयत्॥ ३

चतुरन्तां धरां कृत्वा तथा चैव महार्णवम्।
मध्ये पृथिव्याः सौवर्णमकरोन्मेरुपर्वतम्॥ ४

प्राचीं दिशमथो गत्वा चकारोदयपर्वतम्।
शतयोजनविस्तारं सहस्रं च समुच्छ्रयम्॥ ५

जातरूपमयैः शृङ्गैस्तरुणादित्यसंनिभैः।
आत्मतेजोगुणमयैर्वेदिकाभोगकल्पितम्॥ ६

विविधांश्च महास्कन्धान् काञ्चनान् पुष्करेक्षणः।
नित्यपुष्पफलान् वृक्षान् कृतवांस्तत्र पर्वते॥ ७

शतयोजनविस्तारं ततस्त्रिगुणमायतम्।
चकार स महादेवः पुनः सौमनसं गिरिम्॥ ८

नानारत्नसहस्राणां कृत्वा तत्र सुसंचयम्।
वेदिकां बहुवर्णां च संध्याभ्राभामकल्पयत्॥ ९

सहस्रशृङ्गं च गिरिं नानामणिशिलातलम्।
कृतवान् वृक्षगहनं षष्टियोजनमुच्छ्रितम्॥ १०

आसनं तत्र परमं सर्वभूतनमस्कृतम्।
कृतवानात्मनः स्थानं विश्वकर्मा प्रजापतिः॥ ११

शिशिरं च महाशैलं तुषारचयसंनिभम्।
चकार दुर्गगहनं कन्दरान्तरमण्डितम्॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! उस जलराशिके ऊपर विशाल नौकाके समान पृथ्वी स्थित हो गयी। इसका आकार बहुत बड़ा है, इसलिये यह जलमें डूब न सकी॥ १॥ तदनन्तर भगवान्‌ने पृथ्वीके विभागका चिन्तन किया। समस्त पर्वतोंकी ऊँचाई, नदियोंके मार्गको सूचित करनेवाली रेखा, वे कितने योजन दूरतक बहेंगी—इसके प्रमाण, उनकी गति पूर्वकी ओर होगी या दक्षिणकी ओर, इसके निश्चय, उनके प्रवाह तथा विशेषतः उन नदियोंके माहात्म्यके विषयमें उन्होंने बारम्बार विचार किया॥ २-३॥ चार समुद्र जिसके अन्तमें हैं (अथवा जो चतुर्दलपद्मके आकारवाली है), उस पृथ्वीकी इस रूपमें स्थापना करके उन्होंने महासागरका भी निर्माण किया, फिर पृथ्वीके मध्यभागमें सुवर्णमय मेरुपर्वतकी स्थापना की॥ ४॥ इसके बाद पूर्व-दिशामें जाकर उन्होंने उदयाचलकी सृष्टि की, जिसका विस्तार सौ योजन और ऊँचाई सहस्र योजन है॥ ५॥ वह सुवर्णमय शिखरोंसे सुशोभित है। उसके वे शिखर प्रातःकालके सूर्यके समान तेजस्वी हैं। वे अपने ही तेजोमय गुणोंसे उद्भासित होते हैं। उस पर्वतका निर्माण इस प्रकार हुआ है, मानो कोई विशाल वेदी हो॥ ६॥ कमलनयन श्रीहरिने उस पर्वतपर बड़े-बड़े तनेवाले नाना प्रकारके सुवर्णमय वृक्ष भी बनाये हैं, जो सदा फूल और फलोंसे सम्पन्न रहते हैं॥ ७॥ इसके बाद उन महान् देवता श्रीहरिने सौमनस गिरिका निर्माण किया, जिसकी चौड़ाई सौ योजन और लम्बाई तीन सौ योजन है॥ ८॥ वहाँ नाना प्रकारके सहस्रों रत्नोंका संचय करके अनेक रंगकी वेदिका बनायी, जो संध्याकालके बादलोंकी भाँति प्रकाशित होती थी॥ ९॥ तत्पश्चात् भगवान्‌ने सहस्रशृङ्ग नामक पर्वतका निर्माण किया, जो नाना प्रकारकी मणिमयी शिलाओंसे अलंकृत था। घने वृक्षोंका वन उसकी शोभा बढ़ाता था। वह पर्वत साठ योजन ऊँचा था॥ १०॥ सम्पूर्ण विश्व जिनका कर्म है, उन प्रजापालक श्रीहरिने वहाँ अपने लिये एक स्थान बनाया; जो उनका सम्पूर्ण भूतोंसे सम्मानित उत्तम आसन है॥ ११॥ तदनन्तर भगवान्‌ने हिमराशि-सदृश महापर्वत हिमालयका निर्माण किया, जो दुर्गम एवं गहन है। वह बहुत-सी कन्दराओंसे अलंकृत होता है॥ १२॥

शिशिरप्रभवां चैव नदीं द्विजगणैर्युताम्।
चकार पुलिनोपेतां वसुधारामिति श्रुतिः॥ १३

सा नदी निखिलां प्राचीं पुण्यां मुखशतैश्चिताम्।
शोभयत्यमृतप्रख्यैर्मुक्ताशङ्खविभूषितैः ॥ १४

नित्यपुष्पफलोपेतैश्छादयद्भिः सुसंवृतैः।
भूषिताभ्यधिकैः कान्तैः सा नदी तीरजैर्द्रुमैः॥ १५

कृत्वा प्राचीविभागं च दक्षिणायामथो दिशि।
चकार पर्वतं दिव्यं सर्वकाञ्चनराजतम्॥ १६

एकतः सूर्यसंकाशमेकतः शशिसंनिभम्।
स बिभ्रच्छुशुभेऽतीव द्वौ वर्णौ पर्वतोत्तमः॥ १७

तेजसा युगपद् व्याप्तं सूर्याचन्द्रमसाविव।
वपुष्मन्तमथो तत्र भानुमन्तं महागिरिम्॥ १८

सर्वकामफलैर्वृक्षैर्वृतं रम्यैर्मनोरमैः।
चकार कुञ्जरं चैव कुञ्जरप्रतिमाकृतिम्॥ १९

सर्वतः काञ्चनगुहं बहुयोजनविस्तृतम्।
ऋषभप्रतिमं चैव ऋषभं नाम पर्वतम्॥ २०

हेमकाञ्चनवृक्षाढ्यं पुष्पहासं स सृष्टवान्।
महेन्द्रमथ शैलेन्द्रं शतयोजनमुच्छ्रितम्॥ २१

जातरूपमयैः शृङ्गैः सपुष्पितमहाद्रुमम्।
मेदिन्यां कृतवान् देवः प्रतिक्षोभमिवाचलम्॥ २२

नानारत्नसमाकीर्णं सूर्येन्दुसदृशप्रभम्।
चकार मलयं चाद्रिं चित्रपुष्पितपादपम्॥ २३

मैनाकं च महाशैलं शिलाजालसमावृतम्।
दक्षिणस्यां दिशि शुभं चकाराचलमायतम्॥ २४

सहस्रशिरसं विन्ध्यं नानाद्रुमलताकुलम्।
नदीं च विपुलावर्तां पुलिनश्रोणिभूषिताम्॥ २५

उन्होंने हिमालयसे प्रकट होनेवाली एक दिव्य नदीकी भी सृष्टि की, जिसका नाम वसुधारा (गङ्गा) है। असंख्य द्विज उसका सेवन करते हैं। उसके तट विशाल हैं॥ १३॥ वह नदी सारी पुण्यमयी पूर्व दिशाको अपने सैकड़ों स्रोतोंसे व्याप्त करके उसकी शोभा बढ़ाती है। उसके वे स्रोत मोती और शङ्खके समान उज्ज्वल आभासे अलंकृत एवं अमृतके तुल्य मधुर जलसे परिपूर्ण हैं॥ १४॥ वही नदी अपने तटपर उत्पन्न हुए अधिक कमनीय वृक्षोंसे विभूषित है। वे वृक्ष सदा फूल और फलोंसे सम्पन्न, सघन तथा दूरतक छाया करनेवाले हैं॥ १५॥ इस प्रकार पूर्व दिशाका विभाग करके उन्होंने दक्षिण दिशामें एक दिव्य पर्वतकी सृष्टि की, जो सारा-का-सारा सुवर्णमय एवं रजतमय प्रतीत होता है॥ १६॥ वह एक ओरसे सूर्यके समान सुनहरी प्रभासे प्रकाशित होता है और दूसरी ओरसे चन्द्रमाके सदृश चाँदी-जैसी कान्तिसे सुशोभित होता है। इस प्रकार दो तरहके रंग धारण करनेवाले उस श्रेष्ठ पर्वतकी बड़ी शोभा होती है॥ १७॥ वह एक ही साथ द्विविध तेजसे व्याप्त होकर एकत्र हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान जान पड़ता है। वह महान् पर्वत मूर्तिमान् सूर्य-सा प्रतीत होता है। सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंसे सम्पन्न, रमणीय एवं मनोरम वृक्ष उसे सब ओरसे घेरे हुए हैं। इसके बाद भगवान्ने हाथीके समान आकारवाले एक पर्वतका निर्माण किया, जिसका विस्तार अनेक योजनका था। उसमें सब ओर सुवर्णमयी गुफाएँ शोभा पाती थीं। तत्पश्चात् उन्होंने वृषभके समान आकृतिवाले ऋषभ नामक पर्वतकी सृष्टि की, जो सुवर्ण एवं काञ्चनमय वृक्षोंसे सम्पन्न था। अपने फूलोंके कारण वह पर्वत हँसता हुआ-सा जान पड़ता था। तदनन्तर भगवान्ने गिरिराज महेन्द्रका निर्माण किया, जो सौ योजन ऊँचा और सुवर्णमय शिखरोंसे सुशोभित था। उसके विशाल वृक्ष सुन्दर फूलोंसे भरे रहते थे। वह पर्वत पृथ्वीपर मूर्तिमान् प्रतिक्षोभ-सा प्रतीत होता था॥ १८—२२॥ तदनन्तर श्रीहरिने नाना प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त और सूर्य-चन्द्रमाके समान कान्तिमान् मलय नामक पर्वतकी सृष्टि की, जहाँ विचित्र फूलोंसे भरे हुए वृक्ष लहलहा रहे थे॥ २३॥ इसके बाद उन्होंने दक्षिण दिशामें एक सुन्दर और विस्तृत पर्वत महाशैल मैनाककी रचना की, जो शिलासमूहोंसे व्याप्त था॥ २४॥ तत्पश्चात् नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त सहस्र शिखरवाले विन्ध्यगिरिकी सृष्टि की, साथ ही वहाँसे प्रकट होनेवाली एक नदीका भी निर्माण किया, जो तटरूपी नितम्ब भागसे विभूषित थी।

क्षीरसंकाशसलिलां पयोधारामिति श्रुतिः।
सुरम्यां तोयकलिलां विहितां दक्षिणां दिशम्॥ २६

दिव्यां तीर्थशतोपेतां प्लावयन्तीं शुभाम्भसा।
दिशं याम्यां प्रतिष्ठाप्य प्रतीचीं दिशमागमत्॥ २७

अकरोत् तत्र शैलेन्द्रं शतयोजनमुच्छ्रितम्।
शोभितं शिखरैश्चित्रैः सुप्रवृद्धैर्हिरण्मयैः॥ २८

काञ्चनीभिः शिलाभिश्च गुहाभिश्च विभूषितम्।
समाकुलं सूर्यनिभैः शालैस्तालैश्च भास्वरैः॥ २९

शुशुभे जातरूपैश्च श्रीमद्भिश्चित्रवेदिकैः।
षष्टिं गिरिसहस्राणि तत्रासौ संन्यवेशयत्॥ ३०

मेरुप्रतिमरूपाणि वपुषा प्रभया सह।
सहस्रजलधारं च पर्वतं मेरुसंनिभम्॥ ३१

पुण्यतीर्थगुणोपेतं भगवान् संन्यवेशयत्।
षष्टियोजनविस्तारं तावदेव समुच्छ्रितम्॥ ३२

आत्मरूपोपमं तत्र वाराहं नाम नामतः।
निवेशयामास गिरिं दिव्यं वैदूर्यपर्वतम्॥ ३३

राजताः काञ्चनाश्चैव यत्र दिव्याः शिलोच्चयाः।
तत्रैव चक्रसदृशं चक्रवन्तं महाबलम्॥ ३४

सहस्रकूटं विपुलं भगवान् संन्यवेशयत्।
शङ्खप्रतिमरूपं च राजतं पर्वतोत्तमम्॥ ३५

सितद्रुमसमाकीर्णं शङ्खं नाम न्यवेशयत्।
सुवर्णं रत्नसम्भूतं पारिजातं महाद्रुमम्॥ ३६

महतः पर्वतस्याग्रे पुष्पहासं न्यवेशयत्।
शुभामतिरसां चैव घृतधारामिति श्रुतिः॥ ३७

वराहः सरितं पुण्यां प्रतीच्यामकरोत् प्रभुः।
प्रतीच्यां संविधिं कृत्वा पर्वतान् काञ्चनोज्ज्वलान्॥ ३८

उसमें बड़ी भँवरें उठ रही थीं। उसका जल दूधके समान स्वच्छ था। वह पयोधारा (नर्मदा)-के नामसे विख्यात हुई। जलसे भरी हुई वह दिव्य एवं रमणीय नदी सैकड़ों तीर्थोंसे सुशोभित थी और अपने मङ्गलकारी जलसे दक्षिण दिशाको पवित्र एवं आप्लावित कर रही थी। इस प्रकार दक्षिण दिशाको प्रतिष्ठित करके भगवान् पश्चिम दिशामें चले आये। वहाँ उन्होंने सौ योजन ऊँचे शैलराज अस्ताचलका निर्माण किया, जो बहुत बढ़े हुए विचित्र एवं सुवर्णमय शिखरोंसे सुशोभित था॥ २५—२८॥ सोनेकी शिलाएँ और गुफाएँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले साखू और ताड़के वृक्ष वहाँ सब ओर फैले हुए थे॥ २९॥ शोभाशाली विचित्र वेदिकाओंसे युक्त सुवर्णमय शिखर उसकी श्रीवृद्धि कर रहे थे। वहाँ भगवान्‌ने साठ हजार पर्वत बसाये थे, जो अपने शरीर और कान्तिसे मेरुपर्वतकी समानता करते थे। तदनन्तर भगवान्‌ने जलकी सहस्रों धाराएँ बहानेवाले एक मेरु-सदृश पर्वतको स्थापित किया, जो पुण्यतीर्थके गुणोंसे सम्पन्न था, जिसका विस्तार साठ योजन था, उसकी ऊँचाई भी उतनी ही थी॥ ३०—३२॥ वहीं उन्होंने अपने रूपके समान वाराह नामक दिव्य पर्वतको बसाया, जो वैदूर्यमणिसे सम्पन्न था॥ ३३॥ उस पर्वतपर सोने और चाँदीके दिव्य शिलाखण्ड हैं, वहीं भगवान्‌ने चक्रसदृश महाबली चक्रवान् गिरिकी स्थापना की, जो सहस्रों शिखरोंसे सम्पन्न एवं विशाल था। इसके सिवा उन्होंने वहाँ एक रजतमय श्रेष्ठ पर्वतको स्थापित किया, जिसका स्वरूप शङ्खके समान उज्ज्वल था; इसीलिये उसका नाम शङ्ख रखा गया। वह श्वेतवर्णके वृक्षोंसे व्याप्त था। उस महान् पर्वतके अग्रभागमें उन्होंने रत्नसम्भूत सुवर्ण तथा पुष्पमय हाससे सुशोभित पारिजात नामक विशाल वृक्षको स्थापित किया। पश्चिम दिशामें भगवान् वाराहने अत्यन्त जलसे भरी हुई एक शुभ एवं पुण्य नदीकी भी सृष्टि की, जो घृतधाराके नामसे विख्यात है। इस प्रकार पश्चिम दिशामें पर्वतोंके विभाग करके उन्होंने उत्तर दिशामें सुवर्णके समान कान्तिमान् पर्वत बसाये,

गुणोत्तरानुत्तरस्यां संन्यवेशयदग्रतः।
तत सौम्यगिरिं सौम्यमन्तरिक्षप्रमाणतः॥ ३९

रुक्मधातुप्रतिच्छन्नमकरोद् भास्करोपमम्।
स तु देशो विसूर्योऽपि तस्य भासा प्रकाशते॥ ४०

तस्य लक्ष्म्यधिकं भाति तपसा रविणा यथा।
सूक्ष्मलक्षणविज्ञेयस्तपतीव दिवाकरः॥ ४१

जो गुणोंमें उत्कृष्ट थे। तत्पश्चात् उन्होंने सूर्यके समान तेजस्वी तथा सुवर्णमय धातुओंसे ढँके हुए सौम्यगिरिकी सृष्टि की, जो आकाशके बराबर ऊँचा और सौम्य था। वह देश सूर्यके प्रकाशित न रहनेपर भी उस पर्वतकी प्रभासे ही प्रकाशित होता रहता है। उस पर्वतकी शोभा तपते हुए सूर्यके द्वारा और अधिक उद्दीप्त हो उठती है। जैसे मध्याह्न-कालिक सूर्यके समीप श्रीहीन हुए चन्द्रमा सूक्ष्म दिखायी देते हैं, उसी प्रकार उस पर्वतके सामने तपते हुए सूर्य भी फीके पड़कर सूक्ष्म लक्षणोंसे लक्षित होते हैं, ऐसा जानना चाहिये॥ ३४—४१॥

सहस्रशिखरं चैव नानातीर्थसमाकुलम्।
चकार रत्नसंकीर्णं भूयोऽस्तं नाम पर्वतम्॥ ४२

मनोहरगुणोपेतं मन्दरं चाचलोत्तमम्।
उद्दामपुष्पगन्धं च पर्वतं गन्धमादनम्॥ ४३

चकार तस्य शृङ्गेषु सुवर्णरससम्भवम्।
जम्बूं जाम्बूनदमयीमनन्ताद्भुतदर्शनाम्॥ ४४

गिरिं त्रिशिखरं चैव तथा पुष्करपर्वतम्।
शुभ्रं पाण्डुरमेघाभं कैलासं च नगोत्तमम्॥ ४५

हिमवन्तं च शैलेन्द्रं दिव्यधातुविभूषितम्।
निवेशयामास हरिर्वाराहीं तनुमास्थितः॥ ४६

नदीं सर्वगुणोपेतामुत्तरस्यां दिशि प्रभुः।
मधुधारां स कृतवान् दिव्यामृषिशताकुलाम्॥ ४७

सर्वे चैव क्षितिधराः सपक्षाः कामरूपिणः।
तदा कृता भगवता विचित्राः परमेष्ठिना॥ ४८

स कृत्वा प्रविभागं तु पृथिव्या लोकभावनः।
देवासुराणामुत्पत्तौ कृतवान् बुद्धिमक्षयाम्॥ ४९

सर्वासु दिक्षु क्षतजोपमाक्ष-
श्चकार शैलान् विविधाभिधानान्।
हिताय लोकस्य स लोकनाथः
पुण्याश्च नद्यः सलिलोपगूढाः॥ ५०

इसके बाद उन्होंने सहस्रों शिखरोंसे सुशोभित तथा नाना प्रकारके तीर्थोंसे व्याप्त रत्नपूर्ण अस्तगिरिका पुनः निर्माण किया॥ ४२॥ तदनन्तर मनोहर गुणोंसे सम्पन्न श्रेष्ठ मन्दराचलका तथा उद्दाम पुष्पगन्धसे भरे हुए गन्धमादन पर्वतका निर्माण किया॥ ४३॥ गन्धमादनके शिखरोंपर सुवर्णरसको प्रकट करनेवाले जम्बूवृक्षका निर्माण किया, जो जाम्बूनदमय (सुवर्णमय), अनन्त और अद्भुत दिखायी देता है॥ ४४॥ इसके बाद तीन शिखरवाले त्रिकूटगिरि, पुष्कर पर्वत तथा श्वेत बादलोंके समान उज्ज्वल कान्तिवाले गिरिश्रेष्ठ कैलासका निर्माण किया॥ ४५॥ तदनन्तर वाराहरूप धारण करनेवाले श्रीहरिने दिव्य धातुओंसे विभूषित गिरिराज हिमवान्‌को स्थापित किया॥ ४६॥ इसके सिवा उन भगवान्‌ने उत्तर दिशामें सर्वगुणसम्पन्न दिव्य नदी मधुधाराकी सृष्टि की, जो सैकड़ों ऋषियोंसे सेवित है॥ ४७॥ उस समय परमेष्ठी भगवान् श्रीहरिने सभी पर्वतोंको पंखयुक्त, इच्छानुसार रूप धारण करनेकी शक्तिसे सम्पन्न तथा विचित्र बनाया था॥ ४८॥ इस तरह लोकभावन भगवान्‌ने पृथ्वीका विभाग करके देवताओं और असुरोंकी उत्पत्तिके लिये अपनी अक्षय बुद्धिका प्रयोग किया॥ ४९॥ रक्तके समान लाल नेत्रवाले उन लोकनाथ भगवान् नारायणने समस्त जगत्‌के हितके लिये सम्पूर्ण दिशाओंमें भाँति-भाँतिके नामवाले पर्वतों और जलसे भरी हुई पवित्र नदियोंकी सृष्टि की॥ ५०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वाराहे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वाराहावतारविषयक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

जगत्‌की सृष्टिका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

जगत्स्त्रष्टुमना देवश्चिन्तयामास पूर्वजः।
तस्य चिन्तयतो वक्त्रान्निःसृतः पुरुषः किल॥ १

ततः स पुरुषो देवं किं करोमीत्युपस्थितः।
प्रत्युवाच स्मितं कृत्वा देवदेवो जगत्पतिः॥ २

विभजात्मानमित्युक्त्वा गतोऽन्तर्धानमीश्वरः।
अन्तर्हितस्य देवस्य सशरीरस्य भारत॥ ३

प्रशान्तस्येव दीपस्य गतिस्तस्य न विद्यते।
ततस्तेनेरितां वाणीं सोऽन्वचिन्तयत प्रभुः॥ ४

हिरण्यगर्भो भगवान् य एष छन्दसि श्रुतः।
एष प्रजापतिः पूर्वमभवद् भुवनाधिपः॥ ५
तदा प्रभृति तस्याद्यो यज्ञभागो विधीयते।

प्रजापतिरुवाच

विभजात्मानमित्युक्तस्तेनास्मि सुमहात्मना॥ ६

कथमात्मा विभज्यः स्यात् संशयो ह्यत्र मे महान्।
इति चिन्तयतस्तस्य ओमित्येवोत्थितः स्वरः॥ ७

स भूमावन्तरिक्षे च नाके च कृतवांस्ततः।
तं चैवाभ्यसतस्तस्य मनःसारमयः पुनः॥ ८

हृदयाद् देवदेवस्य वषट्कारः समुत्थितः।
भूम्यन्तरिक्षकानां च भूर्भुवःसुवरात्मिकाः।
महास्मृतिमयाः पुण्या महाव्याहृतयोऽभवन्॥ ९

छन्दसां प्रवरा देवी चतुर्विंशाक्षराभवत्।
तत्पदं संस्मरन् दिव्यां सावित्रीमकरोत् प्रभुः॥ १०

ऋक्सामाथर्वयजुषश्चतुरो भगवान् प्रभुः।
चकार निखिलान् वेदान् ब्रह्मयुक्तेन कर्मणा॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर सबके पूर्वज भगवान् नारायण जगत्‌की सृष्टिकी इच्छासे मन-ही-मन कुछ विचार करने लगे। कहते हैं—उसी समय उनके मुखसे एक पुरुष प्रकट हुआ। उस पुरुषने भगवान्‌के निकट खड़े होकर पूछा—'प्रभो! मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' तब देवाधिदेव जगदीश्वरने मुसकराकर उसे इस प्रकार उत्तर दिया-॥ १-२॥ 'तुम अपने स्वरूपका विभाग करो।' ऐसा कहकर वे भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये। भारत! जैसे दीपक बुझ जाय उसी प्रकार शरीरसहित अन्तर्हित हुए उन भगवान्‌की कहीं कोई गति नहीं है। तदनन्तर भगवान्‌के मुखसे प्रकट हुए प्रभावशाली पुरुष भगवान् हिरण्यगर्भ, जिनका नाम वेदमन्त्रोंमें सुना गया है, भगवान्‌की कही हुई पूर्वोक्त वाणीपर बारम्बार विचार करने लगे। ये ही सम्पूर्ण भुवनोंके अधिपति प्रजापति सबसे पहले उत्पन्न हुए थे। अतः तभीसे यज्ञका प्रथम भाग उन्हींको दिया जाता है॥ ३—५ ॥

प्रजापति मन-ही-मन बोले—उन परमात्माने मुझसे कहा है कि तुम अपने स्वरूपका विभाग करो; परंतु मुझे अपने स्वरूपका विभाग कैसे करना होगा, इस विषयमें मुझे महान् संदेह है। ऐसा सोचते हुए उन भगवान्‌के मुखसे 'ॐ' इस स्वरका उच्चारण हुआ। उन्होंने उस शब्दका पृथ्वी, आन्तरिक्ष और स्वर्ग—तीनों लोकोंमें उच्चारण किया। इस प्रकार 'ॐ' का जप करते हुए उन देवाधिदेव प्रजापतिके हृदयसे पुनः उनके मनका सारभूत वषट्कार प्रकट हुआ। इसके बाद भूमि, अन्तरिक्ष एवं स्वर्गकी सारभूता 'भूः, भुवः, स्वः'—ये तीन पवित्र महाव्याहृतियाँ प्रकट हुईं, जो महास्मृतिमयी हैं। तदनन्तर वेदोंमें श्रेष्ठ देवी गायत्री प्रकट हुईं, जो चौबीस अक्षरोंसे युक्त होती हैं। भगवान् ब्रह्माने उस पदका स्मरण करके दिव्य सावित्री-मन्त्रको प्रकट किया॥ ६—१०॥ फिर प्रभावशाली भगवान् प्रजापतिने ब्रह्मयुक्त कर्मके द्वारा ऋक्, साम, अथर्व और यजु नामक चारों वेदोंका पूर्णतः प्रादुर्भाव किया॥ ११॥

ततस्तस्यैव मनसः सनः सनक एव च।
सनातनश्च भगवान् वरदश्च सनन्दनः॥ १२
सनत्कुमारश्च विभुस्तत्र जज्ञे सनातनः।
मानसाश्चैव पूर्वाद्या इत्येते षण्महर्षयः॥ १३
ब्रह्माणं कपिलं चैव षडेतांश्चैव योगिनः।
यतयो योगतन्त्रेषु यान् स्तुवन्ति द्विजातयः॥ १४
ततो मरीचिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
भृगुमङ्गिरसं चैव मनुं चैव प्रजापतिम्॥ १५
पितॄंश्च सर्वभूतानां देवतासुररक्षसाम्।
महर्षीनसृजच्छम्भुरष्टावेतांश्च मानसान्॥ १६
एते युगसहस्रान्ते याश्चैषामभवन् प्रजाः।
कल्पे निःशेषमुक्ते तु ततो गच्छन्ति निर्वृतिम्॥ १७
भूयो वर्षसहस्रान्ते उत्पत्तिस्तु विधीयते।
एतेषामेव देवानां प्रजाकर्तृषु वै तदा॥ १८
किं तु कर्मविशेषेण देवतानां युगे युगे।
नामजन्मविशेषाश्च तथैव युगपर्यये॥ १९
अङ्गुष्ठाद् दक्षिणाद् दक्ष उत्पन्नो भगवानृषिः।
तस्यैव तु पुनर्भार्या वामाङ्गुष्ठादजायत॥ २०
तस्य तत्राभवन् कन्या विश्रुता लोकमातरः।
याभिर्व्याप्तास्त्रयो लोकाः प्रजाभिर्मनुजाधिप॥ २१
अदितिं च दितिं कालां दनायुं सिंहिकां मुनिम्।
प्राधां क्रोधां च सुरभिं विनतां सुरसां तथा॥ २२
दनुं कद्रूं च दुहितॄः प्रददौ कश्यपाय तु।
प्रजां संचिन्त्य मनसा गतिज्ञेनान्तरात्मना॥ २३
अरुन्धतीं वसुं यामीं लम्बां भानुं मरुत्वतीम्।
संकल्पां च मुहूर्तां च साध्यां विश्वां च भारत॥ २४
मनवे ब्रह्मपुत्राय कन्या दक्षो ददौ दश।
ततः सर्वानवद्याङ्ग्यः कन्याः कमललोचनाः॥ २५
पूर्णचन्द्रानना दिव्या गन्धवत्यो मनोरमाः।
कीर्तिं लक्ष्मीं धृतिं पुष्टिं बुद्धिं मेधां क्षमां तथा॥ २६
मतिं लज्जां वसुं चैव दक्षो धर्माय वै ददौ।
अत्रेस्तु तनयो जातस्तस्य तोयात्मकः शशी॥ २७
पुत्रो ग्रहाणामधिपः सहस्रांशुस्तमिस्रहा।
तस्मै नक्षत्रयोगिन्यः सप्तविंशतिरुत्तमाः॥ २८

तदनन्तर उन्हींके मनसे सन, सनक, सनातन, वरदायक भगवान् सनन्दन, ऐश्वर्यशाली सनत्कुमार तथा सनातन (द्वितीय) प्रकट हुए। ये छः महर्षि सबसे पहले उत्पन्न हुए ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं॥ १२-१३॥ योगी और यति ब्राह्मण योगतन्त्रोंमें ब्रह्मा और कपिलके साथ इन छः सन-सनक आदिकी स्तुति करते हैं॥ १४॥ तत्पश्चात् कल्याणकारी भगवान् ब्रह्माने मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, अङ्गिरा तथा प्रजापति मनु—इन आठ मानसपुत्र महर्षियोंकी सृष्टि की, जो सम्पूर्ण भूतों तथा देवताओं, असुरों और राक्षसोंके भी पिता थे॥ १५-१६॥ सहस्र युग व्यतीत होनेपर ये तथा इनकी जो प्रजाएँ होती हैं, वे सारा-का-सारा कल्प पूर्णतः समाप्त हो जानेपर निर्वृति (परमानन्दमय मोक्ष)-को प्राप्त हो जाती हैं॥ १७॥ फिर सहस्र वर्षके पश्चात् इन्हींकी देवसंतानोंकी सृष्टिके लिये उत्पत्ति होती है॥ १८॥ किंतु प्रत्येक कल्पमें युगका परिवर्तन होनेपर कर्म विशेषसे इन देवताओंके नाम और जन्ममें कुछ अन्तर आ जाता है॥ १९॥ ब्रह्माजीके दाहिने अङ्गुष्ठसे भगवान् दक्ष ऋषि उत्पन्न हुए और बायेंसे फिर उन्हींकी पत्नीका प्रादुर्भाव हुआ॥ २०॥ नरेश्वर! दक्षके उस धर्मपत्नीके गर्भसे बहुत-सी विख्यात कन्याएँ उत्पन्न हुईं, जो सम्पूर्ण लोकोंकी जननी हैं। उनकी प्रजाओंसे तीनों लोक भरे हुए हैं॥ २१॥ दक्षने अपनी पुत्री अदिति, दिति, काला; दनायु, सिंहिका, मुनि, प्राधा, क्रोधा, सुरभि, विनता, सुरसा, दनु तथा कद्रू—इन तेरह कन्याओंका विवाह महर्षि कश्यपजीके साथ कर दिया। भारत! कालकी भावी गतिको जाननेवाली अपनी अन्तरात्मा एवं मनके द्वारा प्रजावर्गका चिन्तन करके दक्षने अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा—ये दस कन्याएँ ब्रह्मपुत्र मनुको अर्पित कर दीं। तदनन्तर जिनके सारे अङ्ग निर्दोष, नेत्र कमलके समान प्रफुल्ल तथा मुख पूर्णचन्द्रके समान आह्लादजनक थे, वे दिव्य, मनोरम तथा उत्तम गन्धवाली कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, बुद्धि, मेधा, क्षमा, मति, लज्जा और वसु—ये दस कन्याएँ दक्षने धर्मको दे दीं। अत्रिके एक पुत्र हुआ, जिसका स्वरूप

रोहिणीप्रमुखाः कन्या दक्षः प्राचेतसो ददौ।
एतासां पुत्रपौत्रं च प्रोच्यमानं मया शृणु॥ २९
कश्यपस्य मनोश्चैव धर्मस्य शशिनस्तथा।
अर्यमा वरुणो मित्रः पूषा धाता पुरंदरः॥ ३०
त्वष्टा भगोंऽशुः सविता पर्जन्यश्चेति विश्रुताः।
अदित्यां जज्ञिरे देवाः कश्यपाल्लोकभावनाः॥ ३१
दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम्।
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान्।
द्वावप्यमितविक्रान्तौ तपसा कश्यपोपमौ॥ ३२
हिरण्यकशिपोः पुत्राः पञ्चैव सुमहाबलाः।
प्रह्लादश्चैव संह्लादस्तथानुह्लाद एव च॥ ३३
ह्रदश्चैव तु विक्रान्तः पञ्चमोऽनुह्रदस्तथा।
प्रह्लादः पूर्वजस्तेषामनुह्लादस्तथा परः॥ ३४
प्रह्लादस्य त्रयः पुत्रा विक्रान्ताः सुमहाबलाः।
विरोचनश्च जम्भश्च सुजम्भश्चेति विश्रुताः॥ ३५
बलिर्विरोचनसुतो बाण एको बलेः सुतः।
बाणस्य चेन्द्रदमनः पुत्रः परपुरंजयः॥ ३६
दनोः पुत्रास्तु बहवो वंशे ख्याता महासुराः।
विप्रचित्तिः प्रथमजस्तेषां राजा बभूव ह॥ ३७
गणः प्रजज्ञे क्रोधायाः पुत्रपौत्रमनन्तकम्।
रौद्राः क्रोधवशा नाम क्रूरकर्माण एव च॥ ३८
सिंहिका सुषुवे राहुं ग्रहं चन्द्रार्कमर्दनम्।
ग्रस्तारं चैव चन्द्रस्य सूर्यस्य च विनाशनम्॥ ३९
कालायाः कालकल्पस्तु गणः परमदारुणः।
अभवद् दीप्तसूर्याक्षो नीलमेघसमप्रभः॥ ४०
सहस्रशीर्षा शेषश्च वासुकिस्तक्षकस्तथा।
बहूनां कद्रुपुत्राणामेते प्राधान्यमागताः॥ ४१
धर्मात्मानो वेदविदः सदा प्राणिहिते रताः।
लोकतन्त्रधराश्चैव वरदाः कामरूपिणः॥ ४२
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुडश्च महाबलः।
अरुणश्चारुणिश्चैव विनतायाः सुताः स्मृताः॥ ४३

जलमय था। वही चन्द्रमा हुआ। चन्द्रमा ग्रहोंके स्वामी, सहस्रों किरणोंसे सुशोभित तथा अन्धकारका नाश करनेवाले हैं। प्राचेतस दक्षने उन्हें अश्विनी, रोहिणी आदि उत्तम सत्ताईस कन्याएँ ब्याह दीं, जो सब-की-सब नक्षत्रवाचक नामोंसे युक्त थीं। इनके गर्भसे कश्यप, मनु, धर्म और चन्द्रमाद्वारा होनेवाले पुत्र-पौत्रोंका मेरेद्वारा वर्णन किया जाता है, उसे सुनो। अर्यमा, वरुण, मित्र, पूषा, धाता, इन्द्र त्वष्टा, भग, अंशु, सविता और पर्जन्य—ये बारह लोकभावन देवता कश्यपके अंश और अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए (ये ही बारह आदित्य कहलाते हैं)॥ २२—३१॥ हमारे सुननेमें आया है कि पहले कश्यपद्वारा दितिके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए थे—हिरण्यकशिपु तथा पराक्रमी हिरण्याक्ष। ये दोनों ही अनन्त पराक्रमी थे और तपस्याद्वारा कश्यपजीकी समानता करते थे॥ ३२॥ हिरण्यकशिपुके पाँच ही महाबली पुत्र थे, जिनके नाम इस प्रकार हैं—प्रह्लाद, संह्लाद, अनुह्लाद, पराक्रमी ह्रद और पाँचवाँ अनुह्रद। इनमें प्रह्लाद बड़े थे और उनसे छोटे अनुह्लाद थे॥ ३३-३४॥ प्रह्लादके विरोचन, जम्भ और सुजम्भ—ये तीन परम पराक्रमी, महाबली और सुविख्यात पुत्र हुए॥ ३५॥ विरोचनके पुत्र बलि हुए और बलिका एकमात्र पुत्र बाणासुर हुआ। बाणके भी एक ही पुत्र हुआ, जिसका नाम था इन्द्रदमन। वह शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेवाला था॥ ३६॥ दनुके बहुत-से पुत्र हुए, जो अपने वंशके विख्यात महासुर थे। उन सबमें विप्रचित्ति बड़ा था; अतः वही उनका राजा हुआ॥ ३७॥ क्रोधासे एक समुदाय प्रकट हुआ, जिसके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या अनन्त है। वह समुदाय या गण क्रोधवश नामसे प्रसिद्ध है। क्रोधवश नामवाले भयङ्कर असुर क्रूर कर्म करनेवाले होते हैं॥ ३८॥ सिंहिकाने राहु नामक ग्रहको जन्म दिया, जो चन्द्रमा और सूर्यका मर्दन करनेवाला है। वही ग्रहणके द्वारा चन्द्रमाको ग्रस लेनेवाला और सूर्यको भी अदृश्य कर देनेवाला है॥ ३९॥ कालासे काल-सदृश अत्यन्त भयंकर गण प्रकट हुआ, जिसे कालेय कहते हैं। इस समुदायके नेत्र सूर्यके समान तेजस्वी होते हैं। इनकी अङ्गकान्ति नील मेघके समान काली है॥ ४०॥ कद्रूके बहुत-से पुत्र हुए, जिनमें सहस्र फनवाले शेषनाग, वासुकि और तक्षक—ये प्रधान माने गये हैं॥ ४१॥ ये धर्मात्मा, वेदवेत्ता तथा सदा ही प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं। लोकतन्त्रको धारण करनेवाले वरदायक तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ हैं॥ ४२॥ तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, महाबली गरुड, अरुण और आरुणि—ये विनताके पुत्र माने गये हैं॥ ४३॥

इमाश्चाप्सरसः पुण्या विविधाः पुण्यलक्षणाः।
सुषुवेऽष्टौ महाभागा प्राधा देवर्षिपूजिता॥ ४४

अनवद्यां मनुं वंशामनूनामरुणप्रियाम्।
अनुगां सुभगां भासीं स्त्रियः प्राधा व्यजायत॥ ४५

अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीका तिलोत्तमा।
सुरूपा लक्षणा क्षेमा तथा रम्भा मनोरमा॥ ४६

असिता च सुबाहुश्च सुवृत्ता सुमुखी तथा।
सुप्रिया च सुगन्धा च सुरसा च प्रमाथिनी॥ ४७

काश्या शारद्वती चैव मौनेयाप्सरसः स्मृताः।
विश्वा वसुर्भरण्यश्च गन्धर्वाश्चैव विश्रुताः॥ ४८

मेनका सहजन्या च पर्णिका पुञ्जिकस्थला।
घृतस्थला घृताची च विश्वाची चोर्वशी तथा॥ ४९

अनुम्लोचेत्यभिख्याता प्रम्लोचेति च ता दश।
मनोवती चापि तथा वैदिक्योऽप्सरसस्तथा॥ ५०

प्रजापतेस्तु संकल्पात् सम्भूता भुवनप्रियाः।
अमृतं ब्राह्मणा गावो रुद्राश्चेति चतुष्टयम्॥ ५१

सुरभ्यपत्यमित्येतत् पुराणे निश्चयो महान्।
एतद् वै कश्यपापत्यं मनोर्वंशं निबोध मे॥ ५२

संक्षेपेणैव तत् सर्वं कीर्तयिष्यामि तेऽनघ।
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान् व्यजायत॥ ५३

मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवः स्मृताः।
भानोस्तु भानवस्तात मुहूर्तांश्च मुहूर्तजाः॥ ५४

लम्बा घोषं विजज्ञेऽथ नागवीथी च जामिजा।
पृथिव्यां विषमं सर्वं मरुत्वत्यामजायत॥ ५५

संकल्पायास्तु कौरव्य जज्ञे संकल्प एव च।
धर्मस्य पुत्रो लक्ष्म्यास्तु कामो जज्ञे जगत्प्रभुः॥ ५६

यशो हर्षश्च कामस्य रत्यां पुत्रद्वयं स्मृतम्।
सोमस्य पुत्रो रोहिण्यां जज्ञे वर्चा महाप्रभः॥ ५७

उदयन्नेव भगवान् वर्चस्वी येन जायते।
पुरूरवाश्च भगवानुर्वशी येन युज्यते॥ ५८

देवर्षियोंद्वारा सम्मानित महाभागा प्राधाने पवित्र, नाना प्रकारके रूप-रंगवाली तथा पुण्यमय लक्षणोंसे युक्त निम्नाङ्कित आठ अप्सराओंको उत्पन्न किया॥ ४४॥ अनवद्या, मनु, वंशा, अनूना, अरुणप्रिया, अनुगा, सुभगा और भासी—इन आठ कन्याओंको प्राधाने जन्म दिया॥ ४५॥ अलम्बुषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीका, तिलोत्तमा, सुरूपा, लक्षणा, क्षेमा, रम्भा, मनोरमा, असिता, सुबाहु, सुवृत्ता, सुमुखी, सुप्रिया, सुगन्धा, सुरसा प्रमाथिनी, काश्या और शारद्वती—ये अप्सराएँ मुनिकी संतानें बतायी गयी हैं। विश्वा, वसु, भरणी नामवाली कन्याएँ तथा सुविख्यात गन्धर्व भी मुनिकी ही संतति हैं॥ ४६—४८॥ मेनका, सहजन्या, पर्णिका, पुञ्जिकस्थला, घृतस्थला, घृताची, विश्वाची, उर्वशी, अनुम्लोचा तथा प्रम्लोचा—ये दस अप्सराएँ मनोवती तथा अन्य वेदवर्णित अप्सराएँ प्रजापतिके संकल्पसे उत्पन्न हुई हैं। ये समस्त भुवनोंमें प्रिय मानी गयी हैं। अमृत, ब्राह्मण, गौएँ तथा रुद्र—ये चार सुरभिकी संतानें हैं, यह पुराणका महत्त्वपूर्ण निश्चय है। यहाँतक कश्यपकी संतानोंका वर्णन किया गया है, अब मुझसे मनुके वंशका वर्णन सुनो॥ ४९—५२॥ निष्पाप नरेश! वह सब मैं संक्षेपसे ही कहूँगा। विश्वेदेव विश्वाकी संतान हैं, साध्यादेवीने साध्य नामक देवोंको जन्म दिया॥ ५३॥ मरुत्वतीके गर्भसे मरुत्वान् उत्पन्न हुए, वसुके पुत्र वसुके नामसे ही प्रसिद्ध हैं। तात! भानुके पुत्र भानु और मुहूर्ताके पुत्र मुर्हूत हैं॥ ५४॥ लम्बाने घोषको जन्म दिया, जामिसे नागवीथी उत्पन्न हुई, पृथ्वीमें जो कुछ विषम है, वह सब मरुत्वतीसे उत्पन्न हुआ॥ ५५॥ कुरुनन्दन! संकल्पाके गर्भसे संकल्प नामवाला ही पुत्र हुआ। धर्म और उनकी पत्नी लक्ष्मीसे काम नामक पुत्रका जन्म हुआ, जो सम्पूर्ण जगत्पर अपनी प्रभुता स्थापित किये हुए है॥ ५६॥ काम और उसकी पत्नी रतिसे दो पुत्र उत्पन्न हुए—यश और हर्ष। सोमके रोहिणीके गर्भसे महान् कान्तिमान् वर्चा नामक पुत्रका जन्म हुआ॥ ५७॥ यह वर्चा वही है, जिससे उदय लेते ही भगवान् सोम वर्चस्वी (तेजःपुञ्जसे परिपूर्ण) हो जाते हैं। उस वर्चा या बुधसे ऐश्वर्यशाली पुरूरवाका जन्म हुआ, जिनके साथ उर्वशीने प्रेमसम्बन्ध स्थापित किया था॥ ५८॥

एवं पुत्रसहस्राणि स्त्रीणां चैव परस्परम्।
एतावत् तु जगन्मूलं यत्र लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ५९

इस प्रकार स्त्रियों और पुरुषोंके परस्पर संयोगसे सहस्रों पुत्र और कन्याएँ उत्पन्न हुईं। इतना ही जगत्का मूल है, जिसपर सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित है ॥ ५९ ॥

प्रजापतिस्तु भगवान् गुणतः प्रेक्ष्य देहिनः।
आधिपत्येषु युक्तेषु नियोजयति योगवित्॥ ६०

योगवेत्ता भगवान् प्रजापतिने गुणकी दृष्टिसे समस्त देहधारियोंपर दृष्टिपात करके उन सबको यथायोग्य प्रभुत्वपर प्रतिष्ठित किया ॥ ६० ॥

दिशो दश क्षितिमृषयोऽर्णवान् नगान्
द्रुमौषधीरुरगसरित्सुरासुरान्।
प्रजापतिर्भुवनसृजो नभो भुवः
क्रियां मखानथ कृतवान् गिरींश्च सः ॥ ६१

उन प्रजापतिने दसों दिशा, पृथ्वी, ऋषि, समुद्र, पर्वत, वृक्ष, ओषधि, सर्प, नदी, देवता, असुर, लोकस्रष्टा मरीचि आदि, आकाश, भूर्लोक, क्रिया, यज्ञ तथा पर्वतमाला—इन सबकी सृष्टि की है ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वाराहे जगत्सर्गे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वाराहावतारके प्रसंगमें जगत्का सृष्टिविषयक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्माजीद्वारा विभिन्न वर्गके अधिपतियोंकी नियुक्ति

वैशम्पायन उवाच

त्रयाणामपि लोकानामादित्यानां च भारत।
चकार शक्रं राजानमादित्यसमतेजसम्॥ १

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतनन्दन! ब्रह्माजीने इन्द्रको तीनों लोकों और आदित्योंका राजा बनाया, जो सूर्यके तुल्य तेजस्वी हैं ॥ १ ॥

स वज्री कवची जिष्णुरदित्यामभिजज्ञिवान्।
स्मृतेः सहायो द्युतिमान् यथा सोऽध्वर्युभिःस्तुतः ॥ २

वे विजयशील इन्द्र अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए। वे अपने हाथमें वज्र और अङ्गोंमें कवच धारण करते हैं। वे स्मृतिके सहायक और कान्तिमान् हैं, अध्वर्यु (यजुर्वेदका स्वाध्याय करनेवाले) ब्राह्मण उनकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

जातमात्रोऽथ भगवान् स कुशैर्ब्राह्मणैर्धृतः।
तदाप्रभृति देवेशः कौशिकत्वमुपागतः ॥ ३

वे भगवान् इन्द्र ज्यों ही उत्पन्न हुए, त्यों ही ब्राह्मणोंने उन्हें कुशोंद्वारा धारण किया था, तभीसे देवेश्वर इन्द्र 'कौशिक' कहलाने लगे ॥ ३ ॥

अभिषिच्याधिराज्ये तु सहस्राक्षं पुरंदरम्।
ब्रह्मा क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे॥ ४

सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्रको त्रिलोकीके सम्राट्-पदपर अभिषिक्त करके ब्रह्माजीने क्रमशः विभिन्न वर्गके राज्योंका विभाजन आरम्भ किया ॥ ४ ॥

यज्ञानां तपसां चैव ग्रहनक्षत्रयोस्तथा।
द्विजानामौषधीनां तु सोमं राज्येऽभ्यषेचयत्॥ ५

उन्होंने यज्ञ, तप, ग्रह, नक्षत्र, द्विज और ओषधियोंके राज्यपर सोमका अभिषेक किया ॥ ५ ॥

दक्षं प्रजापतीनां तु अम्भसां वरुणं पतिम्।
पितॄणां सर्वनिधनं कालं वैश्वानरप्रभम्॥ ६

दक्षको प्रजापतियोंका, वरुणको जलका तथा सबका अन्त करनेवाले अग्निके समान तेजस्वी काल (यमराज)-को पितरोंका अधिपति बनाया ॥ ६ ॥

गन्धानां चैव सर्वेषां भूतानां च शरीरिणाम्।
शब्दाकाशबलानां च वायुरीशस्तदा कृतः ॥ ७

उन दिनों सम्पूर्ण गन्ध, देहधारी भूत, शब्द, आकाश और बलके स्वामी वायुदेव बनाये गये ॥ ७ ॥

सर्वभूतपिशाचानां मृत्यूनां च गवां तथा।
उत्पातग्रहरोगाणां व्याधीनामीतिनां तथा।
व्रतानां चैव सर्वेषां महादेवः कृतः प्रभुः॥ ८
यक्षाणां राक्षसानां च गुह्यकानां धनस्य च।
रत्नानां चैव सर्वेषां कृतो वैश्रवणः प्रभुः॥ ९
सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषो नागानामथ वासुकिः।
सरीसृपाणां सर्वेषां प्रभुर्वै तक्षकः कृतः॥ १०
सागराणां नदीनां च मेघानां वर्षणस्य च।
आदित्यानामवरजः पर्जन्योऽधिपतिः कृतः॥ ११
गन्धर्वाणामधिपतिस्तथा चित्ररथः कृतः।
सर्वाप्सरोगणानां च कामदेवः प्रभुः कृतः॥ १२
चतुष्पदानां सर्वेषां वाहनानां च सर्वशः।
महेश्वरध्वजः श्रीमान् गोवृषोऽधिपतिः कृतः॥ १३
दैत्यानां च महातेजा हिरण्याक्षः प्रभुः कृतः।
हिरण्यकशिपुश्चैव यौवराज्येऽभिषेचितः॥ १४
गणानां कालकेयानां महाकालः प्रभुः कृतः।
दनायुषायाः पुत्राणां वृत्रो राजा तदा कृतः॥ १५
सिंहिकातनयो यस्तु राहुर्नाम महासुरः।
उत्पातानामनेकानामशुभानां प्रभुः कृतः॥ १६
ऋतूनामथ सर्वेषां युगानां चैव भारत।
पक्षाणां चैव मासानां तथैव तिथिपर्वणाम्॥ १७
कलाकाष्ठामुहूर्तानां गतेरयनयोस्तथा।
कृतः संवत्सरो राजा योगस्य गणितस्य च॥ १८
पक्षिणां चैव सर्वेषां चक्षुषां च महाबलः।
सुपर्णो भोगिनां चैव गरुडोऽधिपतिः कृतः॥ १९
अरुणो गरुडभ्राता जपापुष्पचयप्रभः।
योगानां चैव सर्वेषां साध्यानामधिपः कृतः॥ २०
पुत्रोऽस्य विरथो नाम कश्यपस्य प्रजापतेः।
राजा प्राच्यां दिशि तथा वासवेनाधिपः कृतः॥ २१
आदित्यस्य विभोः पुत्रो धर्मराजो महायशाः।
दक्षिणस्यां दिशि यमो महेन्द्रेणैव सत्कृतः॥ २२
कश्यपस्यौरसः पुत्रः सलिलान्तर्गतः सदा।
अम्बुराज इति ख्यातः प्रतीच्यां दिशि पार्थिवः॥ २३
पुलस्त्यपुत्रो द्युतिमान् महेन्द्रप्रतिमः प्रभुः।
एकाक्षः पिङ्गलो नाम सौम्यायां दिशि पार्थिवः॥ २४

समस्त भूतों, पिशाचों, मृत्युओं, गौओं, उत्पातों, ग्रहों, रोगों, व्याधियों, ईतियों तथा सारे व्रतोंके अधिपति महादेवजी बनाये गये॥ ८॥ यक्षों, राक्षसों, गुह्यकों और धन तथा सम्पूर्ण रत्नोंका आधिपत्य विश्रवाके पुत्र कुबेरको दिया गया॥ ९॥ बड़ी-बड़ी दाढ़वाले सर्पोंके शेष, नागोंके वासुकि और समस्त सरीसृपोंके तक्षक राजा बनाये गये॥ १०॥ आदित्योंमें सबसे छोटे जो पर्जन्य हैं, उन्हें सागरों, नदियों और मेघोंका तथा वर्षाका भी अधिपति बनाया गया॥ ११॥ ब्रह्माजीने चित्ररथको गन्धर्वोंका तथा कामदेवको सम्पूर्ण अप्सराओंका स्वामी बनाया॥ १२॥ महादेवजीके ध्वजस्वरूप जो वृषभरूपधारी श्रीमान् नन्दी हैं, उन्हें समस्त चौपायों और वाहनोंका अधिपति नियत किया॥ १३॥ महातेजस्वी हिरण्याक्षको दैत्योंका राजा बनाया और हिरण्यकशिपुका युवराजके पदपर अभिषेक किया॥ १४॥ महाकालको कालकेय नामक गणोंका स्वामी बनाया, उसमें जो दनायुषाके पुत्र थे, उनका राजा उन्होंने वृत्रासुरको बनाया॥ १५॥ सिंहिकाका पुत्र जो राहु नामक महान् असुर है, उसे अनेकानेक उत्पातों और अशुभोंका स्वामी बनाया॥ १६॥ भरतनन्दन! समस्त ऋतुओं, युगों, पक्षों, मासों, तिथियों, पर्वों, कला, काष्ठा और मुहूर्तों तथा उत्तरायण-दक्षिणायनकी गतिका राजा संवत्सर बनाया गया, वही योग और गणितका भी स्वामी हुआ॥ १७-१८॥ सुन्दर पंखोंवाले महाबली गरुड़ समस्त पक्षियों, दूरतक दृष्टिपात करनेमें समर्थ प्राणियों तथा विशालकाय सर्पोंके अधिपति बनाये गये॥ १९॥ जपाकुसुमकी राशिके समान लाल रंगवाले, गरुड़के भाई अरुण समस्त योगों तथा साध्योंके स्वामी बनाये गये॥ २०॥ प्रजापति कश्यपका जो विरथ नामक पुत्र था, उसे देवराज इन्द्रने पूर्व दिशाका राजा एवं अधिपति बना दिया॥ २१॥ भगवान् आदित्यके पुत्र महायशस्वी धर्मराज यमको दक्षिण दिशामें यमलोकका राजा बनाकर रखा गया और महेन्द्रने ही उनका सत्कार किया॥ २२॥ कश्यपके औरस पुत्र वरुण, जो सदा जलके ही भीतर रहते थे और अम्बुराज नामसे विख्यात थे, पश्चिम दिशाके राजा बनाये गये॥ २३॥ पुलस्त्यमुनिके तेजस्वी पुत्र पिंगल, जो देवराज इन्द्रके समान प्रभावशाली और एक आँखवाले थे, उत्तर दिशाके स्वामी बनाये गये॥ २४॥

एवं विभज्य राज्यानि स्वयम्भूर्लोकभावनः।
लोकांश्च त्रिदिवे दिव्यानददत् स पृथक् पृथक् ॥ २५

कस्यचित् सूर्यसंकाशान् कस्यचिद् वह्निसंनिभान्।
कस्यचित् सुष्ठुविद्योतान् कस्यचिच्चन्द्रनिर्मलान्॥ २६

नानावर्णान् कामगमाननेकशतशोजनान्।
स तान् सुकृतिनां लोकान् पापदुष्कृतिदुर्लभान्॥ २७

येषां भासो विभान्त्यग्रे सौम्यास्तारागणा इव।
एते सुकृतिनां लोका ये जाताः पुण्यकर्मिणः॥ २८

ये यजन्ति मखैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः।
स्वदारनिरताः शान्ता ऋजवः सत्यवादिनः॥ २९

दीनानुग्रहकर्तारो ब्रह्मण्या लोभवर्जिताः।
संत्यक्तरजसः सन्तो यान्ति तत्र तपोऽमलाः॥ ३०

एवं नियुज्य तनयान् स्वयं लोकपितामहः।
पुष्करं ब्रह्मसदनमारुरोह प्रजापतिः॥ ३१

सर्वे स्वयम्भुदत्तेषु पालनेषु दिवौकसः।
रेमिरे स्वेषु लोकेषु महेन्द्रेणाभिपालिताः॥ ३२

स्वयम्भुवा शक्रपुरःसराः सुराः
कृता यथार्हं प्रतिपालनेषु ते।
यशो दिवं च प्रतिपेदिरे शुभं
मुदं च जग्मुर्मखभागभोजिनः॥ ३३

इस प्रकार लोकस्रष्टा स्वयम्भू ब्रह्माने विभिन्न राज्योंका विभाजन करके उन राजाओंके लिये स्वर्गमें भी पृथक्-पृथक् दिव्य लोक दिया॥ २५॥ किसीको सूर्यके समान और किसीको अग्निके तुल्य तेजस्वी लोक दिये। किसीको विद्युत्के समान भलीभाँति प्रकाशित होनेवाले और किसीको चन्द्रमाके समान निर्मल कान्तिमान् लोक प्रदान किये॥ २६॥ वे सब लोक नाना प्रकारके वर्णवाले और इच्छानुसार चलनेवाले थे, वहाँ सैकड़ों लोग निवास करते थे, वे सब-के-सब सत्कर्म करनेवाले पुण्यात्माओंके लोक थे। पापियों और दुष्कर्मियोंके लिये वे अत्यन्त दुर्लभ थे॥ २७॥ ये सामने जो तारागणोंके समान सौम्यप्रकाश दिखायी देते हैं, सब-के-सब पुण्यात्माओंके ही लोक हैं। पुण्यकर्मी पुरुषोंके लिये ही इनकी सृष्टि हुई है॥ २८॥ जो लोग पर्याप्त उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त पवित्र (निष्काम) यज्ञोंद्वारा भगवान्‌की आराधना करते हैं, अपनी ही स्त्रीमें अनुराग रखते हैं तथा जो शान्त, सरल, सत्यवादी, दीन-दुःखियोंपर अनुग्रह करनेवाले, ब्राह्मणभक्त, लोभहीन, रजोगुणरहित और निर्मल तपस्यासे युक्त हैं, वे साधुपुरुष ही उन लोकोंमें जाते हैं॥ २९-३०॥ साक्षात् लोकपितामह प्रजापति ब्रह्मा इस प्रकार अपने पुत्रोंको विभिन्न राज्योंमें नियुक्त करके पुष्कर नामक ब्रह्मधाममें चले गये॥ ३१॥ स्वयम्भू ब्रह्माजीके दिये हुए अपने-अपने पालनीय लोकोंमें स्थित रहकर देवेन्द्रसे सुरक्षित हुए समस्त देवता वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे॥ ३२॥ यज्ञभागका भोजन करनेवाले इन्द्र आदि सब देवता स्वयम्भू ब्रह्माद्वारा यथायोग्य पालनकर्ममें नियुक्त किये जानेपर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने कर्तव्यका पालन करते हुए शुभ यश और स्वर्गलोक प्राप्त किया॥ ३३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वाराहेऽधिपतिस्थापने सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वाराहावतारके प्रसङ्गमें अधिपतियोंकी स्थापनाविषयक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३७॥

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

देवासुर-संग्राम तथा हिरण्याक्षद्वारा देवराज इन्द्रका स्तम्भन

वैशम्पायन उवाच

कदाचित् तु सपक्षास्ते पर्वता धरणीधराः।
प्रस्थिता धरणीं त्यक्त्वा नूनं तस्यैव मायया॥ १

तदासुराणां निलयं हिरण्याक्षेण पालितम्।
दिशं प्रतीचीमागत्य ह्रदेऽमज्जन् यथा गजाः॥ २

तत्रासुरेभ्यः शंसन्त आधिपत्यं सुराश्रयम्।
तच्छ्रुत्वाथासुराः सर्वे चक्रुरुद्योगमुत्तमम्॥ ३

क्रूरां च बुद्धिमतुलां पृथिवीहरणे रताः।
आयुधानि च सर्वाणि जगृहुर्भीमविक्रमाः॥ ४

चक्राशनींस्तथा खड्गान् भुशुण्डीश्च धनूंषि च।
प्रासान् पाशांश्च शक्तीश्च मुसलानि गदास्तथा॥ ५

केचित् कवचिनः सज्जा मत्तनागांस्तथापरे।
केचिदश्वरथान् युक्ता अपरेऽश्वान् महासुराः॥ ६

केचिदुष्ट्रांस्तथा खड्गान् महिषान् गर्दभानपि।
स्वबाहुबलमास्थाय केचिच्चापि पदातयः॥ ७

परिवार्य हिरण्याक्षं तलबद्धाः कलापिनः।
इतश्चेतश्च निश्चेरुर्हृष्टाः सर्वे युयुत्सवः॥ ८

ततो देवगणाः पश्चात् पुरंदरपुरोगमाः।
दैत्यानां विदितोद्योगाश्चक्रुरुद्योगमुत्तमम्॥ ९

महता चतुरङ्गेण बलेन सुसमाहिताः।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणास्तूणवन्तः समार्गणाः॥ १०

उग्रायुधधरा देवाः स्वेष्वनीकेष्ववस्थिताः।
ऐरावतगतं शक्रमन्वगच्छन्त पृष्ठतः॥ ११

ततस्तूर्यनिनादेन भेरीणां च महास्वनैः।
अभ्यद्रवद्धिरण्याक्षो देवराजं पुरंदरम्॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! एक समयकी बात है, पृथ्वीको धारण करनेवाले वे पंखधारी पर्वत इस पृथ्वीको छोड़कर अन्यत्र चले गये। निश्चय ही भगवान्‌की मायासे ही उन्होंने ऐसा किया था॥ १॥ उस समय हिरण्याक्षद्वारा पालित असुरोंके निवासस्थान पश्चिम दिशामें जाकर वहाँके विशाल सरोवरमें वे सभी पर्वत हाथियोंके समान गोते लगाने तथा नहाने लगे॥ २॥ वहाँ उन पर्वतोंने असुरोंसे कहा—देवताओंको तीनों लोकोंका आधिपत्य प्राप्त हुआ है, (वे छोटे होकर राज्यके भागी हो गये और दैत्य बड़े होकर भी उसे न पा सके) यह सुनकर उन सभी असुरोंने युद्धके लिये बड़ा भारी उद्योग किया॥ ३॥ वे अपनी अनुपम क्रूर बुद्धिका सहारा ले पृथ्वीको हड़प लेनेके लिये प्रयत्नमें लग गये। उन भयंकर पराक्रमी असुरोंने सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका संग्रह किया॥ ४॥ चक्र, अशनि, खड्ग, भुशुण्डि, धनुष, प्रास, पाश, शक्ति, मूसल और गदा आदि आयुध ले लिये॥ ५॥ कोई कवच धारण करके युद्धके लिये तैयार हो गये। कोई मतवाले हाथियोंपर जा बैठे। कोई युद्धके लिये उद्यत हो घोड़े जुते रथोंपर आरूढ़ हुए। दूसरे महान् असुर घोड़ोंपर सवार हो गये॥ ६॥ कितने ही असुर ऊँटों, गेंडों, भैंसों और गदहोंपर बैठे थे। कितने ही अपने बाहुबलका भरोसा करके पैदल ही युद्धके लिये उद्यत थे॥ ७॥ वे सब-के-सब हाथोंमें दस्ताने बाँधे, कवच पहने हर्षमें भरकर युद्धके लिये उत्सुक हो इधर-उधरसे निकले और हिरण्याक्षको सब ओरसे घेरकर चलने लगे॥ ८॥ तत्पश्चात् दैत्योंके उस युद्धविषयक उद्योगका पता पाकर इन्द्र आदि देवता भी युद्धके लिये बड़ी भारी तैयारी करने लगे॥ ९॥ वे देवता पूरी सावधानी रखकर विशाल चतुरङ्गिणी सेनाके साथ गोधाचर्मके बने हुए दस्ताने पहने, बाणोंसे भरे तरकस बाँधे, भयंकर आयुध धारण किये अपने-अपने दलमें खड़े हो गये और ऐरावतपर आरूढ हुए देवराज इन्द्रके पीछे-पीछे चलने लगे॥ १०-११॥ तदनन्तर वाद्योंके महान् शब्द और भेरियोंके गम्भीर घोषके साथ हिरण्याक्षने देवराज इन्द्रपर धावा किया॥ १२॥

तीक्ष्णैः परशुनिस्त्रिंशैर्गदातोमरशक्तिभिः।
मुसलैः पट्टिशैश्चैव छादयामास वासवम्॥ १३

ततोऽस्त्रबलवेगेन सार्चिष्मत्यः सुदारुणाः।
घोररूपा महावेगा निपेतुर्बाणवृष्टयः॥ १४

शिष्टाश्च दैत्या बलिनः सितधारैः परश्वधैः।
परिघैरायसैः खड्गैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः॥ १५

गण्डशैलैश्च विविधै रश्मिभिश्चाद्रिसंनिभैः।
घातनीभिश्च गुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च॥ १६

युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैरर्गलैश्च विदारणैः।
सर्वान् देवगणान् दैत्याः संनिजघ्नुः सवासवान्॥ १७

धूम्रकेशं हरिश्मश्रुं नानाप्रहरणायुधम्।
रक्तसंध्याभ्रसंकाशं किरीटोत्तमधारिणम्॥ १८

नीलपीताम्बरधरं शितदंष्ट्रोर्ध्वधारिणम्।
आजानुबाहुं हर्यक्षं वैडूर्याभरणोज्ज्वलम्॥ १९

समुद्यतायुधं दृष्ट्वा सर्वे देवगणास्तदा।
ते हिरण्याक्षमसुरं दैत्यानामग्रतः स्थितम्॥ २०

युगान्तसमये भीमं स्थितं मृत्युमिवाग्रतः।
प्रविव्यथुः सुराः सर्वे तदा शक्रपुरोगमाः॥ २१

दृष्ट्वाऽऽयान्तं हिरण्याक्षं महाद्रिमिव जङ्गमम्।
देवाः संविग्नमनसः प्रगृहीतशरासनाः।
सहस्राक्षं पुरस्कृत्य तस्थुः संग्राममूर्धनि॥ २२

सा च दैत्यचमू रेजे हिरण्यकवचोज्ज्वला।
प्रवृद्धनक्षत्रगणा शारदी द्यौरिवामला॥ २३

तेऽन्योन्यमपि सम्पेतुः पातयन्तः परस्परम्।
बभञ्जुर्बाहुभिर्बाहुद्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः॥ २४

गदानिपातैर्भग्नाङ्गा बाणैश्च व्यथितोरसः।
विनिपेतुः पृथक् केचित् तथान्येऽपि विजघ्निरे॥ २५

बभञ्जिरे रथान् केचित् केचित् सम्मर्दितारथैः।
सम्बाधमन्ये सम्प्राप्ता न शेकुश्चलितुं रथात्॥ २६

उसने तीखे फरसों, तलवारों, गदाओं, तोमरों, शक्तियों, मुसलों और पट्टिशोंसे देवराज इन्द्रको आच्छादित कर दिया॥ १३॥ तत्पश्चात् उसके अस्त्रके बल और वेगसे आगकी लपटोंसे युक्त, अत्यन्त दारुण, घोर और महान् वेगवाली बाण-वर्षाएँ इन्द्रके ऊपर पड़ने लगीं॥ १४॥ शेष बलवान् दैत्य सफेद धारवाले फरसों, लोहेके परिघों, तलवारों, क्षेपणीयों[1], मुद्गरों, तेजोयुक्त एवं पर्वत-सदृश चट्टानों, महान् घात करनेवाली भारी शतघ्नियों (तोपों), जूएके समान आकारवाले अस्त्रों, निर्मुक्त यन्त्रों तथा विदीर्ण करनेवाले अर्गलोंसे इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंको मारने और घायल करने लगे॥ १५—१७॥ दैत्यराज हिरण्याक्षके केश धूम्रवर्णके थे। मूँछ-दाढ़ीका रंग हरा था। वह नाना प्रकारके प्रहरणशील आयुधोंसे युक्त था। उसकी अङ्गकान्ति संध्याकालके बादलोंके समान लाल थी। उसने अपने मस्तकपर उत्तम किरीट धारण कर रख था। उसके शरीरपर नीले और पीले रंगके वस्त्र थे, मुखमें ऊपरको उठी हुई तीखी दाढ़ें थीं और भुजाएँ घुटनोंतक लम्बी थीं। वह वैदूर्यमणिके बने हुए आभूषणोंसे उद्भासित हो रहा था। ऐसे हिरण्याक्षको हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्धके लिये उद्यत हुआ देख सब देवता तत्काल आतङ्कित हो गये। दैत्योंके आगे खड़ा हुआ असुर हिरण्याक्ष प्रलयकालमें सामने स्थित हुए भयंकर मृत्युदेवताके समान प्रतीत होता था। वे इन्द्रादि सब देवता उस समय उसको देखकर अत्यन्त व्यथित हो उठे॥ १८—२१॥ चलते-फिरते महान् पर्वतके समान दैत्यराज हिरण्याक्षको आते देख सब देवताओंका चित्त उद्विग्न हो गया, वे हाथमें धनुष ले सहस्रलोचन इन्द्रको आगे करके युद्धके मुहानेपर खड़े हो गये॥ २२॥ सोनेके कवचसे प्रकाशित होती हुई दैत्योंकी वह सेना नक्षत्रोंसे भरे हुए शरद्-ऋतुके निर्मल आकाशकी भाँति शोभा पाती थी॥ २३॥ वे देवता और दैत्य एक-दूसरेको गिराते हुए टूट पड़े। युद्धकी इच्छावाले अन्य वीरोंने अपनी भुजाओंद्वारा शत्रुपक्षके सैनिकोंकी दोनों बाहें तोड़ डालीं॥ २४॥ कितनोंके अङ्ग गदाओंकी चोटसे भंग हो गये, बाणोंके प्रहारसे उनके वक्षःस्थलमें अत्यन्त पीड़ा होने लगी, कितने ही योद्धा युद्धस्थलसे पृथक् जा गिरते थे तथा दूसरे सैनिक भी मारे जाते थे॥ २५॥ किन्हींने रथ तोड़ डाले, कितने ही शत्रु-पक्षके रथोंसे स्वयं ही कुचल गये, दूसरे योद्धा चारों ओरसे इस तरह घिर गये कि रथसे हिल ही न सके॥ २६॥

१. गोफन नामक यन्त्रविशेष, जिसके द्वारा गोली या कंकड़ आदिको दूरतक फेंका जाता है।

दानवेन्द्रबलं तत्र देवानां च महद् बलम्।
अन्योन्यबाणवर्षेण युद्धदुर्दिनमाबभौ॥ २७

हिरण्याक्षस्तु बलवान् क्रुद्धः स दितिनन्दनः।
व्यवर्धत महातेजाः समुद्र इव पर्वणि॥ २८

तस्य क्रुद्धस्य सहसा मुखान्निश्चेरुरर्चिषः।
साग्निधूमश्च पवनो ययौ तस्य समीपतः॥ २९

शस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुर्भिः परिघैरपि।
सर्वमाकाशमावव्रे पर्वतैरुत्थितैरिव॥ ३०

बहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरसः।
न शेकुश्चलितुं देवा हिरण्याक्षार्दिता युधि॥ ३१

सर्वे वित्रासिता देवा हिरण्याक्षेण संयुगे।
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि यत्नं कर्तुं विचेतसः॥ ३२

तेन शक्रः सहस्राक्षः स्तम्भितोऽस्त्रेण धीमता।
ऐरावतगतः संख्ये नाशकच्चलितुं भयात्॥ ३३

सर्वांश्च देवानखिलान् स पराजित्य दानवः।
स्तम्भयित्वा च देवेशमात्मस्थं मन्यते जगत्॥ ३४

सतोयमेघप्रतिमोग्रनिःस्वनं
प्रभिन्नमातङ्गविलासविग्रहम्।
धनुर्विधुन्वन्तमुदारवर्चसं
तदासुरेन्द्रं ददृशुः सुराः स्थिताः॥ ३५

वहाँ एक ओर दानवराज हिरण्याक्षकी सेना थी तो दूसरी ओर देवताओंकी विशाल वाहिनी खड़ी थी। दोनों ओरसे परस्पर बाणोंकी वर्षा हो रही थी। उस समय युद्धके बादल छाये हुए जान पड़ते थे॥ २७॥ दितिनन्दन हिरण्याक्ष महातेजस्वी और बलवान् था। वह कुपित होकर उसी तरह आगे बढ़ रहा था जैसे पूर्णिमाके दिन समुद्र बढ़ता है॥ २८॥ क्रोधसे भरे हुए हिरण्याक्षके मुखसे सहसा आगकी लपटें निकलने लगीं। उसके निकटसे आग और धूम लिये हुए प्रचण्ड वायु चलने लगी॥ २९॥ उसने नाना प्रकारके शस्त्र-समूहों, धनुषों और परिघोंसे सारे आकाशको ढक लिया, मानो उठे हुए पर्वतोंसे आकाश अवरुद्ध हो गया हो॥ ३०॥ युद्धमें बहुत-से शस्त्रों और तलवारोंसे देवताओंके सिर और वक्षःस्थल छिन्न-भिन्न हो गये थे। वे हिरण्याक्षसे इतने पीड़ित किये गये थे कि उनमें चलने-फिरनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी॥ ३१॥ उस युद्धस्थलमें हिरण्याक्षने समस्त देवताओंको इतना भयभीत कर दिया कि वे अचेत-से हो गये और यत्नशील होनेपर भी कोई यत्न न कर सके॥ ३२॥ उस बुद्धिमान् दैत्यने अपने अस्त्रद्वारा युद्धस्थलमें ऐरावतकी पीठपर बैठे हुए सहस्रलोचन इन्द्रको स्तम्भित कर दिया, जिससे वे भयके कारण भागनेमें भी असमर्थ हो गये॥ ३३॥ समस्त देवताओंको पूर्णरूपसे पराजित करके देवेश्वर इन्द्रको भी हिलने-डुलनेमें असमर्थ बना देनेके कारण वह दानव सारे जगत्को अपने अधीन मानने लगा॥ ३४॥ वह सजल जलधरके समान भयानक गर्जना करता था, उसका शरीर मदकी धारा बहानेवाले मतवाले हाथीके समान विलासयुक्त जान पड़ता था, उस समय वहाँ खड़े हुए देवताओंने उदार तेजस्वी असुरराज हिरण्याक्षको बारम्बार धनुषको हिलाते और उसकी टंकार फैलाते देखा॥ ३५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वाराहे शक्रस्तम्भने अष्टात्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वाराहावतारके प्रसङ्गमें इन्द्रका स्तम्भनविषयक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३८॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् वाराहद्वारा हिरण्याक्षका वध

वैशम्पायन उवाच

निष्प्रयत्ने सुरपतौ धर्षितेषु सुरेषु च।
हिरण्याक्षवधे बुद्धिं चक्रे चक्रगदाधरः॥ १

वाराहः पर्वतो नाम यः पूर्वं समुदाहृतः।
स एष भूत्वा भगवानाजगामासुरान्तकृत्॥ २

ततश्चन्द्रप्रतीकाशमगृह्णाच्छङ्खमुत्तमम्।
सहस्रारं च तच्चक्रं चक्रपर्वतसंनिभम्॥ ३

महादेवो महाबुद्धिर्महायोगी महेश्वरः।
पठ्यते योऽमरैः सर्वैर्गुह्यैर्नामभिरव्ययः॥ ४

सदसच्चात्मनि श्रेष्ठः सद्भिर्यः सेव्यते सदा।
इज्यते यः पुराणश्च त्रिलोके लोकभावनः॥ ५

यो वैकुण्ठः सुरेन्द्राणामनन्तो भोगिनामपि।
विष्णुर्यो योगविदुषां यो यज्ञो यज्ञकर्मणाम्॥ ६

मखे यस्य प्रसादेन भुवनस्था दिवौकसः।
आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति त्रिधा हुतम्॥ ७

यो गतिर्देवदैत्यानां यः सुराणां परा गतिः।
यः पवित्रं पवित्राणां स्वयम्भूरव्ययो विभुः॥ ८

यस्य चक्रप्रविष्टानि दानवानां युगे युगे।
कुलान्याकुलतां यान्ति यानि दृप्तानि वीर्यतः॥ ९

ततो दैत्यद्रवकरं पौराणं शङ्खमुत्तमम्।
धमन् वक्त्रेण बलवानाक्षिपद् दैत्यजीवितम्॥ १०

श्रुत्वा शङ्खस्वनं घोरमसुराणां भयावहम्।
क्षुभिता दानवाः सर्वे दिशो दश व्यलोकयन्॥ ११

ततः संरक्तनयनो हिरण्याक्षो महासुरः।
कोऽयमित्यब्रवीद् रोषान्नारायणमुदैक्षत॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब देवराज इन्द्र निश्चेष्ट और समस्त देवता पराजित हो गये, तब चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णुने स्वयं ही हिरण्याक्षके वधका विचार किया॥ १॥ पहले जिन पर्वताकार यज्ञवाराहका वर्णन किया गया है, वे ही असुरोंका विनाश करनेवाले भगवान् श्रीहरि इस वाराहरूपमें प्रकट हो वहाँ आये॥ २॥ तदनन्तर उन्होंने चन्द्रमाके समान उज्ज्वल एवं उत्तम शङ्ख हाथमें ले लिया। फिर दूसरे हाथमें चक्र-पर्वतके सदृश विशाल तथा सहस्र अरोंसे युक्त सुप्रसिद्ध सुदर्शन चक्र धारण किया॥ ३॥ उन्हीं अविनाशी श्रीहरिका महादेव, महाबुद्धि, महायोगी और महेश्वर आदि गुह्य नामोंसे समस्त देवता कीर्तन करते हैं॥ ४॥ साधु पुरुष सदा अपने हृदयमें जिन सदसत्स्वरूप श्रेष्ठ परमात्माका सेवन करते हैं, तीनों लोकोंमें जिन लोकभावन पुराण-पुरुषका पूजन किया जाता है॥ ५॥ जो देवेश्वरोंके वैकुण्ठ, सर्पोंके अनन्त, योगवेत्ताओंके विष्णु तथा यज्ञकर्मियोंके यज्ञ हैं॥ ६॥ जिनके कृपा-प्रसादसे अपने-अपने भुवनोंमें बैठे हुए देवता यज्ञमें महर्षियोंद्वारा दिये गये तथा हुत, हूयमान और प्रहुत नामक तीन प्रकारोंसे होमे गये घृतको भोजन करते हैं॥ ७॥ जो देवताओं तथा दैत्योंके भी आश्रय हैं, देवगणोंके लिये परम गति हैं, जो पवित्रोंको भी पवित्र करनेवाले, स्वयम्भू, अविनाशी तथा व्यापक हैं॥ ८॥ प्रत्येक युगमें अपने बलपर घमंड करनेवाले दानवोंके कितने ही कुल जिनकी चक्राग्निमें प्रविष्ट हो वहीं विलीन हो गये हैं (वे ही भगवान् वहाँ पधारे थे)॥ ९॥ तदनन्तर बलवान् भगवान् वाराहने दैत्योंको भयभीत करनेवाले अपने उत्तम एवं पुरातन शङ्खको मुखसे बजाते हुए बहुत-से दैत्योंके प्राण हर लिये॥ १०॥ असुरोंको भय देनेवाले उस घोर शङ्खध्वनिको सुनकर समस्त दानव क्षुब्ध हो गये और दसों दिशाओंकी ओर देखने लगे॥ ११॥ तब क्रोधसे लाल आँखें किये महान् असुर हिरण्याक्षने पूछा 'यह कौन है?' साथ ही उसने रोषपूर्वक नारायणकी ओर देखा॥ १२॥

वाराहरूपिणं देवं संस्थितं पुरुषोत्तमम्।
शङ्खचक्रोद्यतकरं देवानामार्तिनाशनम्॥ १३

रराज शङ्खचक्राभ्यां ताभ्यामसुरसूदनः।
सूर्याचन्द्रमसोर्मध्ये यथा नीलपयोधरः॥ १४

ततोऽसुरगणाः सर्वे हिरण्याक्षपुरोगमाः।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा दृप्ता देवमुपाद्रवन्॥ १५

पीड्यमानोऽतिबलिभिर्दैत्यैः सर्वायुधोद्यतैः।
न चचाल हरिर्युद्धेऽकम्प्यमान इवाचलः॥ १६

ततः प्रज्वलितां शक्तिं वाराहोरसि दानवः।
हिरण्याक्षो महातेजाः पातयामास वीर्यवान्॥ १७

तस्याः शक्त्याः प्रभावेण ब्रह्मा विस्मयमागतः।
समीपमागतां दृष्ट्वा महाशक्तिं महाबलः॥ १८

हुंकारेणैव निर्भर्त्स्य पातयामास भूतले।
तस्यां प्रतिहतायां तु ब्रह्मा साध्विति चाब्रवीत्॥ १९

यः प्रभुः सर्वभूतानां वाराहस्तेन ताडितः।
ततो भगवता चक्रमाविध्यादित्यसंनिभम्॥ २०

पातितं दानवेन्द्रस्य शिरस्युत्तमकर्मणा।
ततः स्थितस्यैव शिरस्तस्य भूमौ पपात ह।
हिरण्मयं वज्रहतं मेरुशृङ्गमिवोत्तमम्॥ २१

हिरण्याक्षे हते दैत्ये शेषा ये तत्र दानवाः।
सर्वे तस्य भयत्रस्ता जग्मुराशु दिशो दश॥ २२

स सर्वलोकाप्रतिचक्रचक्रो
महाहवेष्वप्रतिमोग्रचक्रः ।
बभौ वराहो युधि चक्रपाणिः
कालो युगान्तेष्विव दण्डपाणिः॥ २३

वे वाराहरूपधारी भगवान् पुरुषोत्तम देवताओंकी पीड़ाका नाश करनेवाले थे, अतः हाथोंमें शङ्ख और चक्र लिये वहाँ खड़े हुए॥ १३॥ असुरसूदन श्रीहरि उन शङ्ख-चक्रोंसे ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो नील मेघ सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें सुशोभित हो रहा हो ॥ १४॥ उस समय हिरण्याक्ष आदि सभी असुरोंने जो बलके घमंडमें भरे हुए थे, नाना प्रकारके आयुध और खड्ग लिये वहाँ भगवान् वाराहपर धावा किया॥ १५॥ सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे उद्यत हुए अत्यन्त बलशाली दैत्योंद्वारा पीड़ा दी जानेपर भी भगवान् श्रीहरि उस युद्धमें विचलित नहीं हुए, वे पर्वतके समान अविचलभावसे खड़े रहे॥ १६॥ इतनेहीमें महातेजस्वी और पराक्रमी दानव हिरण्याक्षने भगवान् वाराहकी छातीपर एक अत्यन्त प्रज्वलित शक्तिका प्रहार किया॥ १७॥ उस शक्तिके प्रभावसे ब्रह्माजीको बड़ा विस्मय हुआ। उस महाशक्तिको पास आयी देख महाबली भगवान् वाराहने हुंकारसे ही उसे तिरस्कृत करके भूमिपर गिरा दिया। उस शक्तिके प्रतिहत हो जानेपर ब्रह्माजीने भगवान्‌को साधुवाद दिया॥ १८-१९॥ जो समस्त प्राणियोंके प्रभु हैं, उन भगवान् वाराहको जब उस दैत्यने ताड़ित किया, तब उत्तम कर्म करनेवाले भगवान्‌ने भी अपना सूर्यके समान तेजस्वी चक्र घुमाकर दानवराज हिरण्याक्षके सिरपर दे मारा। तब वहाँ खड़े-खड़े ही उस दैत्यका सिर पृथ्वीपर गिर पड़ा, मानो मेरु पर्वतका सुन्दर एवं सुनहरा शिखर वज्रसे आहत हो धराशायी हो गया हो॥ २०-२१॥ दैत्य हिरण्याक्षके मारे जानेपर जो दानव वहाँ शेष रह गये थे, वे सभी भगवान्‌के भयसे संत्रस्त हो तात्कालिक दसों दिशाओंमें भाग गये॥ २२॥ जिनके चक्रकी आज्ञा सम्पूर्ण लोकोंमें कहीं भी प्रतिहत नहीं होती थी, जिनका भयंकर चक्र बड़े-बड़े युद्धके अवसरपर अपना सानी नहीं रखता था, वे चक्रपाणि भगवान् वाराह उस युद्धस्थलमें हाथमें दण्ड लिये प्रलयकालके यमराजकी भाँति शोभा पाते थे॥ २३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वाराहे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वाराहावतारविषयक उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३९॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

देवताओंको अपने प्रभुत्वकी प्राप्ति, देवराज इन्द्रकी सम्पूर्ण लोकोंके आधिपत्यपर प्रतिष्ठा, सत्-असत् पुरुषोंकी यथोचित गतिके लिये आदेश देकर भगवान्‌का अन्तर्धान होना तथा देवेन्द्रद्वारा पर्वतोंके पंखका छेदन

वैशम्पायन उवाच

विद्राव्य तु रणे सर्वानसुरान् पुरुषोत्तमः।
मुमोच तत्र बद्धांस्तान् पुरंदरमुखान् सुरान्॥ १
ततः प्रकृतिमापन्नाः सर्वे देवगणास्तथा।
पुरंदरं पुरस्कृत्य नारायणमुपस्थिताः॥ २

देवा ऊचुः

त्वत्प्रसादेन भगवंस्तव बाहुबलेन च।
जीवामोऽद्य महाबाहो निष्क्रान्ताश्चान्तकाननात्॥ ३
त्वच्छासनाद्धि भगवन् किं कुर्वन्त्वदितेः सुताः।
इच्छामः पादशुश्रूषां तव कर्तुं सनातन॥ ४

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां पुण्डरीकनिभेक्षणः।
उवाच वचनं देवान् मुदायुक्तो हतद्विषः॥ ५

श्रीभगवानुवाच

यो यस्य भावतो लोको मयैव विहितः पुरा।
पाल्यतां स तु यत्नेन नियोगश्च क्वचित् क्वचित्॥ ६

ऐश्वर्यं प्रतिपन्नाः स्वं क्रतुभागपुरस्कृतम्।
मयैव पूर्वं निर्दिष्टो नियोगः प्रतिपाल्यताम्॥ ७

शक्रं चोवाच भगवान् वचनं दुन्दुभिस्वनः।
इदं यथावत् कर्तव्यं सत्सु चासत्सु च त्वया॥ ८

गच्छन्तु तपसा स्वर्गं मुनयः शंसितव्रताः।
तव लोकं सुरश्रेष्ठ सर्वकामदुघं सदा॥ ९

यायजूकाश्च ये केचिद् ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः।
तेषां कामदुघा लोकाः स्वर्गमादिमनोहराः।
यज्ञैरिष्ट्वा यायजूकाः फलं ते प्राप्नुवन्तु च॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! रणभूमिमें उन समस्त असुरोंको भगाकर भगवान् पुरुषोत्तमने वहाँ बँधे हुए इन्द्र आदि देवताओंको उस बन्धनसे मुक्त किया। तदनन्तर स्वस्थ हुए समस्त देवता देवराज इन्द्रको आगे करके भगवान् नारायणके निकट गये॥ १-२॥

देवता बोले—भगवन्! महाबाहो! आपकी कृपा और बाहुबलसे आज हम मौतके मुखसे निकले हैं और जीवित बचे हैं॥ ३॥ भगवन्! आपकी आज्ञासे ये अदितिके पुत्र क्या करें? सनातनदेव! हमलोग आपके चरणोंकी सेवा करना चाहते हैं॥ ४॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! देवताओंकी वह बात सुनकर भगवान् कमलनयन श्रीहरिने जिनका शत्रु मारा गया था, उन देवताओंसे प्रसन्नतापूर्वक कहा॥ ५॥

श्रीभगवान् बोले—पूर्वकालमें मैंने ही भावके अनुसार जिसके लिये जो लोक नियत कर दिया है, वह उसीका पालन करे और कभी-कभी वेदकी आज्ञाके पालनपर भी ध्यान देना आवश्यक है॥ ६॥ अब तुम्हें यज्ञभागके साथ ही अपना ऐश्वर्य भी प्राप्त हो गया है; अतः अब तुम्हें उस वेदाज्ञाका भी पालन करना चाहिये, जिसका पूर्वकालमें मैंने ही निर्देश किया है॥ ७॥ देवताओंसे ऐसा कहकर भगवान्‌ने दुन्दुभिके समान गम्भीर वाणीमें इन्द्रसे यह बात कही—'देवेन्द्र! तुम्हें सज्जनों और असज्जनोंके प्रति यह आगे बताया जानेवाला बर्ताव अवश्य करना चाहिये॥ ८॥ सुरश्रेष्ठ! उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षि तपस्यासे तुम्हारे उस स्वर्ग-लोकमें जायँ, जो सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है॥ ९॥ जो कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यज्ञ करनेवाले हों, उन्हें मनोवाञ्छित कामनाओंको देनेवाले स्वर्गादि मनोहर लोक प्राप्त हों, यज्ञपरायण पुरुष यज्ञानुष्ठान करके तुम्हारे द्वारा स्वर्गादि फल प्राप्त करें॥ १०॥

भावः सद्धर्मशीलानामभावः पापकर्मणाम्।
सन्तः स्वर्गजितः सन्तु सर्वाश्रमनिवासिनः ॥ ११

सत्यशूरा रणे शूरा दानशूराश्च ये नराः।
ते नराः स्वर्गमश्नन्तु सदा ये चानसूयवः ॥ १२

अश्रद्दधानाः पुरुषाः कामिनोऽर्थपराः शठाः।
अब्रह्मण्या नास्तिकाश्च नरकं यान्तु मानवाः ॥ १३

एतावत् क्रियतां वाक्यं मयोक्तं त्रिदशेश्वराः।
ततो मयि स्थिते सर्वान् बाधिष्यन्ते न चारयः ॥ १४

इत्युक्त्वान्तर्हितो देवः शङ्खचक्रगदाधरः।
देवतानां च सर्वेषामभवद् विस्मयो महान् ॥ १५

एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा वाराहचरितं सुराः।
नमस्कृत्य वराहाय नाकपृष्ठमितो गताः ॥ १६

ततः स्वान्याधिपत्यानि प्रतिपन्नानि दैवतैः।
सर्वलोकाधिपत्ये च प्रतिष्ठां वासवो गतः ॥ १७

विमुक्ता दानवगणैः प्रकृतिं धरणी गता।
स्थैर्यहेतोर्धरण्यास्तु ज्ञात्वा चागस्कृतान् गिरीन् ॥ १८

स्वेषु स्थानेषु संस्थाप्य पर्वतानां पुरंदरः।
चिच्छेद भगवान् पक्षान् वज्रेण शतपर्वणा ॥ १९

सर्वेषामेव पक्षा वै छिन्नाः शक्रेण धीमता।
एकः सपक्षो मैनाकः सुरैस्तत्समयः कृतः ॥ २०

एष नारायणस्यायं प्रादुर्भावो महात्मनः।
वाराह इति विप्रेन्द्रैः पुराणे परिकीर्तितः ॥ २१

कृष्णद्वैपायनमतं नानाश्रुतिसमाहितम्।
नाशुचेर्न कृतघ्नाय न नृशंसाय कीर्तयेत् ॥ २२

न क्षुद्राय न नीचाय न गुरुद्वेषकारिणे।
नाशिष्याय तथा राजन् न कृतघ्नाय चैव हि ॥ २३

आयुष्कामैर्यशःकामैर्महीकामैश्च मानवैः।
जयैषिभिश्च श्रोतव्यो देवानामेष वै जयः ॥ २४

पुराणवेदसम्बद्धः शिवः स्वस्त्ययनो महान्।
पावनः सर्वसत्त्वानां तत्कालविजयप्रदः ॥ २५

'सद्धर्मका आचरण जिनका स्वभाव बन गया है, ऐसे पुरुषोंकी संसारमें वृद्धि हो और पापकर्मियोंका अभाव हो जाय। सभी आश्रमोंमें निवास करनेवाले साधुपुरुष स्वर्गलोकपर विजय प्राप्त करनेवाले हों ॥ ११ ॥ जो सत्यको बोलने और निभानेमें शूरवीर हों, युद्धमें भी वीरता दिखाते हों, दानमें भी शौर्यका परिचय देते हों तथा दूसरोंके दोष कभी न देखते हों, ऐसे मनुष्य स्वर्गका सुख भोगें ॥ १२ ॥ जो मनुष्य श्रद्धाहीन, कामी, स्वार्थपरायण, शठ, ब्राह्मणद्रोही और नास्तिक हों, वे नरकमें जायँ ॥ १३ ॥ देवेश्वरो! मेरी कही हुई इस बातका पालन करो, तब मेरे रहते हुए तुम सब लोगोंको शत्रुगण बाधा न दे सकेंगे' ॥ १४ ॥ ऐसा कहकर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् नारायणदेव अन्तर्धान हो गये। भगवान् वाराहका यह अद्भुत चरित्र देखकर सम्पूर्ण देवताओंको महान् विस्मय हुआ, वे भगवान् वाराहको नमस्कार करके वहाँसे स्वर्गलोकको चले गये ॥ १५-१६ ॥ तदनन्तर देवताओंको अपना प्रभुत्व प्राप्त हुआ और सम्पूर्ण लोकोंके आधिपत्यपर देवराज इन्द्र प्रतिष्ठित हुए ॥ १७ ॥ दानवगणोंसे छुटकारा पाकर पृथ्वी प्रकृतावस्थाको प्राप्त (स्वस्थ) हुई। पृथ्वीको स्थिर रखनेके विषयमें पर्वतोंको अपराधी जानकर भगवान् देवराज इन्द्रने उन्हें अपनी जगहपर स्थापित करके सौ पर्ववाले वज्रसे उन सबकी पाँखें काट दीं ॥ १८-१९ ॥ बुद्धिमान् इन्द्रने उस समय सभी पर्वतोंके पंख काट दिये, एकमात्र मैनाक पर्वत ही पंखधारी रह गया। देवताओंने उसके साथ यह शर्त कर ली थी कि समुद्रमें स्थित रहनेपर तुम्हारे पंख नहीं काटे जायँगे ॥ २० ॥ महात्मा नारायणका यह वाराह नामक प्रादुर्भाव (अवतार) श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा पुराणमें वर्णित है ॥ २१ ॥ नाना श्रुतियोंसे अनुमोदित श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासके इस मतका उपदेश अपवित्र, कृतघ्न और नृशंस पुरुषको नहीं देना चाहिये ॥ २२ ॥ राजन्! जो क्षुद्र हो, नीच हो, गुरुद्रोही हो, शिष्य न हो तथा कृतघ्न हो, ऐसे पुरुषको भी इसका उपदेश नहीं देना चाहिये ॥ २३ ॥ यह देवताओंकी विजयका प्रसंग है, जिन मनुष्योंको आयु, यश, भूमि और विजय पानेकी इच्छा हो, उन्हें इसको अवश्य सुनना चाहिये ॥ २४ ॥ यह प्रसंग पुराणों और वेदोंसे सम्बन्ध रखता है। यह कल्याणप्रद तथा महान् मङ्गलकारी है, समस्त प्राणियोंको पवित्र करनेवाला तथा तत्काल विजय प्रदान करनेवाला है ॥ २५ ॥

एष कौरव्य तत्त्वेन कथितस्त्वनुपूर्वशः।
वाराहस्य नृपश्रेष्ठ प्रादुर्भावो महात्मनः॥ २६
ये यजन्ति मखैः पुण्यैर्दैवतानि पितॄनपि।
आत्मानमात्मना नित्यं विष्णुमेव यजन्ति ते॥ २७
लोकायनाय त्रिदशायनाय
ब्रह्मायनायात्मभवायनाय।
नारायणायात्महितायनाय
महावराहाय नमस्कुरुष्व॥ २८

नृपश्रेष्ठ! कुरुनन्दन! महात्मा वाराहके प्रादुर्भावकी यह कथा मैंने क्रमानुसार तथा यथार्थरूपसे कही है॥ २६॥ जो लोग पवित्र यज्ञोंद्वारा देवताओं और पितरोंका यजन करते हैं तथा प्रतिदिन अपने मनसे आत्माका चिन्तन करते हैं, वे भगवान् विष्णुकी ही आराधना करते हैं॥ २७॥ राजन्! जो सम्पूर्ण लोकोंकी गति, देवताओंके सहारे, वेदोंके प्रादुर्भाव-स्थान, आत्मयोनि ब्रह्माके भी आश्रय तथा अपने हितके स्थान हैं, उन महावाराहरूपधारी भगवान्‌को तुम नमस्कार करो॥ २८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वाराहप्रादुर्भावे चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वाराहावतारविषयक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४०॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

हिरण्यकशिपुकी तपस्या, वरप्राप्ति, अत्याचार, देवताओंको ब्रह्माजीका आश्वासन, भगवान् विष्णुका नरसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपुकी सभामें जाना तथा उस सभाका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

वाराह एष कथितो नारसिंहमतः शृणु।
यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः॥ १
पुरा कृतयुगे राजन् हिरण्यकशिपुः प्रभुः।
दैत्यानामादिपुरुषश्चकार सुमहत् तपः॥ २
दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च।
जलवासी समभवत् स्थानमौनव्रतस्थितः॥ ३
ततः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चैव हि।
ब्रह्मा प्रीतोऽभवत् तस्य तपसा नियमेन च॥ ४
ततः स्वयम्भूर्भगवान् स्वयमागत्य तत्र ह।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता॥ ५
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैः सह।
रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिंनरैः॥ ६
दिग्भिश्चाथ विदिग्भिश्च नदीभिः सागरैस्तथा।
नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः॥ ७
देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्धं सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः॥ ८
चराचरगुरुः श्रीमान् वृतो देवगणैः सह।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत्॥ ९

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यह मैंने वाराह-अवतारकी कथा कही है, अब नरसिंह-अवतारका चरित्र सुनो, जिसमें भगवान्‌ने (नर और) सिंहका रूप धारण करके हिरण्यकशिपुका वध किया था॥ १॥ राजन्! पूर्वकालके सत्ययुगकी बात है, दैत्योंके आदिपुरुष प्रभावशाली हिरण्यकशिपुने बड़ी भारी तपस्या की॥ २॥ उसने काष्ठमौनव्रतमें स्थित होकर ग्यारह हजार पाँच सौ वर्षोंतक जलमें निवास किया॥ ३॥ तदनन्तर उसके शम (मनोनिग्रह), दम (इन्द्रिय-संयम), ब्रह्मचर्य, तप और नियमसे ब्रह्माजीको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ४॥ समस्त चराचर प्राणियोंके गुरु, ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ एवं श्रीसम्पन्न, स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी सूर्यके समान वर्णवाले हंसयुक्त तेजस्वी विमानद्वारा आदित्यों, वसुओं, साध्यों, मरुद्गणों, देवताओं, विश्वसहायक रुद्रों, यक्षों, राक्षसों, किन्नरों तथा दिशा, विदिशा, नदी, समुद्र, नक्षत्र एवं मुहूर्तके अधिष्ठाता देवगणों, आकाशचारी महाग्रहों, देवों, ब्रह्मर्षियों, सिद्धों, सप्तर्षियों, पुण्यकर्मा राजर्षियों, गन्धर्वों, अप्सराओं तथा अन्यान्य देवसमूहोंके साथ उनसे घिरे हुए वहाँ पधारे। पधारकर वे उस दैत्यसे इस प्रकार बोले—॥ ५—९॥

ब्रह्मोवाच

प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसानेन सुव्रत।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि॥ १०

ततो हिरण्यकशिपुः प्रीतात्मा दानवोत्तमः।
कृताञ्जलिपुटः श्रीमान् वचनं चेदमब्रवीत्॥ ११

हिरण्यकशिपुरुवाच

न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः।
न मानुषाः पिशाचाश्च निहन्युर्मां कथंचन॥ १२
ऋषयो नैव मां क्रुद्धाः सर्वलोकपितामह।
शपेयुस्तपसा युक्ता वर एष वृतो मया॥ १३
न शस्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा पादपेन च।
न शुष्केण न चार्द्रेण स्यान्न चान्येन मे वधः॥ १४
न स्वर्गेऽप्यथ पाताले नाकाशे नावनिस्थले।
न चाभ्यन्तररात्र्यह्नोर्न चाप्यन्येन मे वधः॥ १५
पाणिप्रहारेणैकेन सभृत्यबलवाहनम्।
यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति॥ १६
भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः।
सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश॥ १७
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः।
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किम्पुरुषाधिपः॥ १८
मूर्तिमन्ति च दिव्यानि ममास्त्राणि महाहवे।
उपतिष्ठन्तु देवेश सर्वलोकपितामह॥ १९

पितामह उवाच

एते दिव्या वरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः।
सर्वकामप्रदा वत्स दुर्लभास्त्वतिमानुषाः।
सर्वान् कामानल्पभावात् प्राप्स्यसि त्वं न संशयः॥ २०

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा स भगवाञ्जगामाकाशमेव च।
वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम्॥ २१
ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनिभिः सह।
वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिताः॥ २२

ब्रह्माजीने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले दैत्यराज! तुम मेरे भक्त हो, तुम्हारी इस तपस्यासे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारा भला हो, तुम कोई वर माँगो और मनोवाञ्छित पदार्थ प्राप्त करो॥ १०॥ यह सुनकर दानवराज श्रीमान् हिरण्यकशिपुके दिलमें बड़ी प्रसन्नता हुई, उसने हाथ जोड़कर यह बात कही॥ ११॥

हिरण्यकशिपु बोला—भगवन्! देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग, राक्षस, मनुष्य तथा पिशाच—ये कोई भी मुझे किसी तरह मार न सकें॥ १२॥ सर्वलोकपितामह! तपस्वी ऋषि कुपित होकर मुझे कभी शाप न दें, यही वर मैंने माँगा है॥ १३॥ न अस्त्रसे न शस्त्रसे, न पर्वतसे न वृक्षसे, न सूखेसे न गीलेसे और न दूसरे ही किसी आयुधसे मेरा वध हो॥ १४॥ न स्वर्गमें न पातालमें, न आकाशमें न भूमिपर, न रात में न दिनमें और न किसी दूसरे निमित्तसे मेरा वध हो॥ १५॥ जो भृत्यों, सेनाओं और वाहनोंसहित मुझे एक ही थप्पड़से मारकर नष्ट कर देनेकी शक्ति रखता हो, वही मेरे लिये मृत्युरूप हो॥ १६॥ मैं ही सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, आकाश, नक्षत्र और दसों दिशाएँ हो जाऊँ॥ १७॥ मैं ही काम, क्रोध, वरुण, यम, इन्द्र, धनाध्यक्ष कुबेर, यक्ष और किम्पुरुषोंका स्वामी हो जाऊँ॥ १८॥ सम्पूर्ण लोकोंके पितामह! देवेश्वर! महासमरमें दिव्य अस्त्र मूर्तिमान् होकर मेरे पास स्वयं आ जायँ॥ १९॥

ब्रह्माजीने कहा—तात! ये दिव्य और अद्भुत वर मैंने तुमको दे दिये। वत्स! सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाले ये दुर्लभ वर मानवलोकके लिये अलभ्य हैं (किंतु तुम्हें तपोबलसे प्राप्त हो गये)। थोड़ी-सी इच्छा होते ही तुम सब कामनाओंको प्राप्त कर लोगे, इसमें संशय नहीं है॥ २०॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! ऐसा कहकर भगवान् ब्रह्मा आकाशमें ही उस वैराज नामक ब्रह्मधामको चले गये, जो ब्रह्मर्षियोंद्वारा सेवित है॥ २१॥ हिरण्यकशिपुको वरदान मिलनेका समाचार सुनते ही देवता, नाग, गन्धर्व और मुनि ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हुए॥ २२॥

देवा ऊचुः

वरेणानेन भगवन् वधिष्यति स नोऽसुरः।
तत्प्रसीदस्व भगवन् वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम्॥ २३
भवान् हि सर्वभूतानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः।
स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिर्ध्रुवः॥ २४

वैशम्पायन उवाच

सर्वलोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः।
आश्वासयामास सुरान् सुशीतैर्वचनाम्बुभिः॥ २५
अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम्।
तपसोऽन्तेऽस्य भगवान् वधं विष्णुः करिष्यति॥ २६
एतच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे वाक्यं पङ्कजजन्मनः।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि प्रतिजग्मुर्मुदान्विताः॥ २७
लब्धमात्रे वरे तस्मिन् सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः॥ २८
आश्रमेषु मुनीन् सर्वान् ब्राह्मणान् संशितव्रतान्।
सत्यधर्मरतान् दान्तान् धर्षयामास वीर्यवान्॥ २९
देवांस्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः।
त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः॥ ३०
यदा वरमदोन्मत्तश्चोदितः कालधर्मणा।
यज्ञियानकरोद् दैत्यान् दैवतानप्ययज्ञियान्॥ ३१
तदादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा।
रुद्रा देवगणा यक्षा देवद्विजमहर्षयः॥ ३२
शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम्।
देवं वेदमयं यज्ञं ब्रह्मदेवं सनातनम्॥ ३३
भूतं भव्यं भविष्यं च प्रजालोकनमस्कृतम्।

देवा ऊचुः

नारायण महाभाग देव त्वां शरणं गताः॥ ३४
त्वं हि नः परमो धाता त्वं हि नः परमो गुरुः।
त्वं हि नः परमो देवो ब्रह्मादीनां सुरोत्तम॥ ३५

देवता बोले—भगवन्! इस वरके प्रभावसे उन्मत्त हुआ असुर हमलोगोंको बहुत कष्ट देगा, अतः हमारे ऊपर प्रसन्न होइये और उसके वधका भी कोई उपाय सोचिये; क्योंकि आप ही सम्पूर्ण भूतोंके आदिस्रष्टा, स्वयं प्रभावशाली, हव्य-कव्यके निर्माता तथा अव्यक्त प्रकृति और ध्रुवस्वरूप हैं॥ २३-२४॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! देवताओंका वह लोकहितकारी वचन सुनकर भगवान् प्रजापतिने अपने सुशीतल अमृतवचनोंद्वारा उन सब देवताओंको आश्वासन देते हुए कहा—॥ २५॥ 'देवताओ! उस असुरको अपनी तपस्याका फल अवश्य प्राप्त होगा। फलभोगके द्वारा जब तपस्याकी समाप्ति हो जायगी, तब साक्षात् भगवान् विष्णु इस दैत्यका वध करेंगे'॥ २६॥ भगवान् नारायणके नाभिकमलसे जन्म-ग्रहण करनेवाले ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर समस्त देवता प्रसन्न हो अपने-अपने दिव्य स्थानोंको लौट गये॥ २७॥ उस वरके प्राप्त होते ही दैत्य हिरण्यकशिपु सारी प्रजाको सताने लगा। ब्रह्माजीके वरदानसे उसका घमंड बहुत बढ़ गया॥ २८॥ उस पराक्रमी दैत्यने विभिन्न आश्रमोंमें जाकर कठोर व्रतका पालन करनेवाले जितेन्द्रिय एवं सत्य-धर्मपरायण समस्त ऋषियों और ब्राह्मणोंका घोर तिरस्कार किया॥ २९॥ तीनों लोकोंमें निवास करनेवाले समस्त देवताओंको पराजित करके त्रिलोकीके राज्यको अपने अधिकारमें लाकर वह महान् असुर दानवराज हिरण्यकशिपु स्वर्गलोकमें निवास करने लगा॥ ३०॥ जब वरके मदसे उन्मत्त हो कालधर्मसे प्रेरित हुए उस असुरने दैत्योंको यज्ञभागका अधिकारी बना दिया और देवताओंको उस अधिकारसे वञ्चित कर दिया, तब आदित्य, साध्य, विश्वदेव, वसु, रुद्र, देवगण, यक्ष, देवता, द्विज और महर्षि शरणागतवत्सल उन महाबली भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। जो देव (प्रकाशमान दिव्य विग्रहधारी), सर्ववेदस्वरूप, यज्ञपुरुष, सनातन ब्रह्मदेव, भूत, वर्तमान और भविष्यरूप तथा प्रजाजनोंसे अभिवन्दित हैं॥ ३१—३३ १/२ ॥

देवता बोले—महाभाग नारायणदेव! हम आपकी शरणमें आये हैं। आप ही हमारे लिये सबसे उत्कृष्ट धाता (धारण-पोषण करनेवाले) हैं और आप ही हमारे परम गुरु हैं। सुरश्रेष्ठ! आप ही हम ब्रह्मादि देवताओंके भी परम देवता हैं॥ ३४-३५॥

त्वं पद्मामलपत्राक्ष शत्रुपक्षभयावह।
क्षयाय दितिवंशस्याक्षयाय भव नः प्रभो॥ ३६
त्रायस्व जहि दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं प्रभो।

विष्णुरुवाच

भयं त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम्॥ ३७
तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिपत्स्यथ मा चिरम्।
एष तं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम्॥ ३८
अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्म्यहम्।

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा स भगवान् विसृज्य त्रिदिवौकसः॥ ३९
वधं संकल्पयित्वा तु हिरण्यकशिपोः प्रभुः।
सोऽचिरेणैव कालेन हिमवत्पार्श्वमागतः॥ ४०

किं नु रूपं समास्थाय निहन्म्येनं महासुरम्।
यत् सिद्धिकरमाशु स्याद् वधाय विबुधद्विषः॥ ४१

अनुत्पन्नं ततश्चक्रे सोऽत्यन्तं रूपमास्थितः।
नारसिंहमनाधृष्यं दैत्यदानवरक्षसाम्॥ ४२

सहायं तु महाबाहुर्जग्राहोङ्कारमेव च।
अथोङ्कारसहायोऽसौ भगवान् विष्णुरव्ययः॥ ४३

हिरण्यकशिपोः स्थानं जगाम प्रभुरीश्वरः।
तेजसा भास्कराकारः कान्त्या चन्द्र इवापरः॥ ४४

नरस्य कृत्वार्धतनुं सिंहस्यार्धतनुं विभुः।
नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना॥ ४५

ततोऽपश्यत विस्तीर्णां दिव्यां रम्यां मनोरमाम्।
सर्वकामयुतां शुभ्रां हिरण्यकशिपोः सभाम्॥ ४६

विस्तीर्णां योजनशतं शतमध्यर्धमायताम्।
वैहायसीं कामगमां पञ्चयोजनमुच्छ्रिताम्॥ ४७

जराशोकक्लमत्यक्तां निष्प्रकम्पां शिवां शुभाम्।
शुभासनवतीं रम्यां ज्वलन्तीमिव तेजसा॥ ४८

निर्मल कमलदलके समान नेत्रवाले नारायण! आप शत्रुपक्षको भय देनेवाले हैं। प्रभो! आप दैत्यवंशके विनाश और हमारी रक्षाके लिये सदा उद्यत रहें। भगवन्! आप दैत्यराज हिरण्यकशिपुको मार डालिये और उसके अत्याचारसे हमारी रक्षा कीजिये॥ ३६ $\frac{1}{2}$॥

भगवान् विष्णु बोले—अमरो! भय छोड़ो, मैं तुम्हें अभयदान देता हूँ। देवताओ! तुम पुनः शीघ्र ही पहलेकी भाँति स्वर्गलोकपर अधिकार प्राप्त कर लोगे। मैं अभी वरदानसे घमंडमें भरे हुए इस दानवराज दितिकुमार हिरण्यकशिपुको, जो देवेश्वरोंके लिये अवध्य बना हुआ है, इसके सहायक गणोंसहित मार डालता हूँ॥ ३७-३८ $\frac{1}{2}$॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! ऐसा कहकर भगवान् विष्णुने देवताओंको तो विदा कर दिया और स्वयं हिरण्यकशिपुके वधका संकल्प लेकर वे थोड़े ही समयमें हिमालय पर्वतके पास आ गये॥ ३९-४०॥ वहाँ आकर उन्होंने सोचा कि मैं कौन-सा रूप धारण करके इस महान् असुरका वध करूँ, जो इस देवद्रोहीके वधके लिये सिद्धि-सफलता प्रदान करनेवाला हो॥ ४१॥ तदनन्तर उन्होंने जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ था, ऐसा अत्यन्त विशाल नरसिंहरूप धारण किया। वह रूप दैत्य, दानव और राक्षसोंके लिये अजेय था॥ ४२॥ इसके बाद महाबाहु श्रीहरिने ओंकारको अपना सहायक बनाकर साथ ले लिया। ओंकारकी सहयतासे सम्पन्न हुए वे सर्वसमर्थ अविनाशी परमेश्वर भगवान् विष्णु हिरण्यकशिपुके स्थानपर गये, वे तेजसे सूर्यके समान और कान्तिसे दूसरे चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे॥ ४३-४४॥ उन सर्वव्यापी परमेश्वरने आधा शरीर मनुष्यका और आधा सिंहका-सा बनाकर एक हाथसे दूसरे हाथको रगड़ते हुए नरसिंह-शरीरसे युक्त हो हिरण्यकशिपुकी वह विस्तृत, रमणीय, मनोरम, समस्त मनोवाञ्छित भोगोंसे युक्त एवं परम उज्ज्वल दिव्य सभा देखी॥ ४५-४६॥ उस सभा-भवनकी लम्बाई डेढ़ सौ योजन और चौड़ाई सौ योजनकी थी। उसकी ऊँचाई पाँच योजनकी थी। वह आकाशमें ही स्थित रहनेवाली और सभासदोंके इच्छानुसार चलनेवाली थी॥ ४७॥ उसमें बुढ़ापा, शोक और थकावट—इन दोषोंका प्रवेश नहीं था। वह अविचल, शिव (सुखद) एवं सुन्दर थी। उसमें सुन्दर सिंहासन सजाकर रखे गये थे। वह रमणीय सभा अपने तेजसे अग्निके समान प्रज्वलित हो रही थी॥ ४८॥

अन्तःसलिलसंयुक्तां विहितां विश्वकर्मणा।
दिव्यरत्नमयैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युताम्॥ ४९

नीलपीतासितश्यामैः सितैर्लोहितकैरपि।
अवतानैस्तथा गुल्मैर्मञ्जरीशतधारिभिः॥ ५०

सिताभ्रघनसंकाशा प्लवन्तीवाप्सु दृश्यते।
धन्यासनवती रम्या ज्वलन्ती इव तेजसा॥ ५१

प्रभावती भास्वरा च दिव्यगन्धमनोरमा।
न सुखा न च दुःखा सा न शीता न च घर्मदा॥ ५२

न क्षुत्पिपासे न ग्लानिं प्राप्य तां प्राप्नुवन्ति हि।
नानारूपैर्विरचिता विचित्रैरतिभास्वरैः॥ ५३

स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैः शाश्वती चाक्षता च सा।
अतिचन्द्रं च सूर्यं च पावकं च स्वयम्प्रभा॥ ५४

दीप्यते नाकपृष्ठस्था भर्त्सयन्तीव भास्करम्।
सर्वे च कामाः प्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः॥ ५५

रसवन्तः प्रभूताश्च भक्ष्यभोज्यं तथाक्षयम्।
पुण्यगन्धाः स्त्रजस्तत्र नित्यपुष्पफलद्रुमाः॥ ५६

उष्णे शीतानि तोयानि शीते चोष्णानि सन्ति वै।
पुष्पिताग्रान् महाशाखान् प्रवालाङ्कुरधारिणः॥ ५७

लतावितानसंच्छन्नान् सरित्सु च सरःसु च।
मनोहरांश्च विविधान् ददर्श स तदा प्रभुः॥ ५८

द्रुमान् बहुविधांस्तत्र मृगेन्द्रो ददृशे द्रुतम्।
गन्धवन्ति च पुष्पाणि रसवन्ति फलानि च॥ ५९

तानि शीतानि तोयानि तत्र तत्र सरांसि च।
अपश्यत् सर्वतीर्थानि सभायां शतशो विभुः॥ ६०

नलिनैः पुण्डरीकैश्च शतपत्रैः सुगन्धिभिः।
रक्तैः कुवलयैर्नीलैः कुमुदैः संयुतानि च॥ ६१

उसके भीतर जलाशय बना हुआ था। साक्षात् विश्वकर्माने उसका निर्माण किया था। वह फल-फूल देनेवाले दिव्य रत्नमय वृक्षोंसे सुशेभित थी॥ ४९॥ उसके भीतर तने हुए चँदोवोंमें नीले, पीले, काले, श्याम, श्वेत और लाल रंगकी झालरें लगी थीं तथा उन्हींमें गुच्छे लटकाये गये थे, साथ ही उसमें सैकड़ों मञ्जरियाँ जड़ी हुई थीं॥ ५०॥ बहुमूल्य आसनोंसे युक्त तथा तेजसे प्रज्वलित होती हुई-सी वह रमणीय सभा आकाशमें श्वेत बादलोंके समान दिखायी देती थी और जलमें तैरती हुई विशाल नौका जान पड़ती थी॥ ५१॥ वह विशेष सौन्दर्यसे सुशोभित तथा अतिशय दीप्तिसे प्रकाशित थी, अपनी दिव्य सुगन्धसे वह मनको मोहे लेती थी। वहाँ न सुख था, न दुःख; न तो सर्दीका अनुभव होता था और न गरमीका ही॥ ५२॥ उस सभामें पहुँचकर सदस्यगण भूख, प्यास, ग्लानिका अनुभव नहीं करते थे, वह नाना रूपवाले विचित्र अत्यन्त प्रकाशमान एवं दिव्य मणिमय खंभोंसे निर्मित हुई थी, बहुत टिकाऊ और सुदृढ़ थी। चन्द्रमा, सूर्य और अग्निसे भी बढ़कर तेजोराशिसे युक्त तथा अपनी ही प्रभासे प्रकाशित होनेवाली थी॥ ५३-५४॥ स्वर्गके पृष्ठभागपर स्थित हो वह सभा सूर्यदेवको तिरस्कृत करती हुई-सी अपनी दीप्तिसे प्रकाशित होती थी, दिव्य और मानव सभी तरहके भोग वहाँ प्रचुर मात्रामें उपलब्ध होते थे॥ ५५॥ रसीले पदार्थ अधिक मात्रामें सुलभ होते थे। अक्षय भक्ष्य, भोज्य वहाँ सदा प्रस्तुत रहता था। पवित्र गन्धवाले पुष्पहार वहाँ बराबर बनते थे और नित्य फल-फूल देनेवाले वृक्ष उसमें सदा लहलहाते रहते थे॥ ५६॥ वहाँ गरमीमें शीतल जल और सर्दीमें गरम जल सदा सुलभ होता था। उस समय भगवान् नृसिंहने देखा, वहाँ सरिताओं और सरोवरोंके तटपर विविध प्रकारके मनोहर वृक्ष शोभा पाते थे, उनकी डालियोंके अग्रभाग फूलोंके भारसे लदे हुए थे। वे वृक्ष विशाल शाखाओंसे सुशोभित थे। नये-नये पल्लवोंके अङ्कुर धारण करते थे और फैली हुई लता-बेलोंके विस्तारसे आच्छादित हो रहे थे। उनके फूलोंमें मनोहर गन्ध और फलोंमें स्वादिष्ट रस थे॥ ५७—५९॥ उस सभामें भगवान्ने जहाँ-तहाँ शीतल जल, सरोवर तथा सम्पूर्ण तीर्थ देखे॥ ६०॥ वे सरोवर नलिन, पुण्डरीक तथा शतदल नामवाले सुगन्धित कमलोंसे सुशोभित थे, लाल और नील कमल तथा कुमुद उनमें छा रहे थे॥ ६१॥

सकान्तैर्धार्तराष्ट्रैश्च राजहंसैः सुरप्रियैः।
कादम्बैश्चक्रवाकैश्च सारसैः कुररैरपि॥ ६२
विमलस्फटिकाभानि पाण्डुराष्टदलानि च।
कलहंसोपगीतानि सारिकाभिरुतानि च॥ ६३
गन्धवत्यः शुभास्तत्र पुष्पमञ्जरिधारिणीः।
दृष्टवान् पादपाग्रेषु नानापुष्पधरा लताः॥ ६४
केतकाशोकसरलाः पुन्नागतिलकार्जुनाः।
चूता नीपा नागपुष्पाः कदम्बबकुला धवाः॥ ६५
प्रियङ्गुपाटलीवृक्षाः शाल्मल्यः सहरिद्रकाः।
शालास्तालाः प्रियालाश्च चम्पकाश्च मनोरमाः॥ ६६
तथा चान्ये व्यराजन्त सभायां पुष्पिता द्रुमाः।
वैद्रुमाश्च द्रुमानीका दावाग्निज्वलितप्रभाः॥ ६७
स्कन्धवन्तः सुशाखाश्च बहुतालसमुच्छ्रयाः।
अञ्जनाशोकवर्णाभा भान्ति वञ्जुलका द्रुमाः॥ ६८
वरणा वत्सनाभाश्च पनसाश्चन्दनैः सह।
नीलाः सुमनसश्चैव पीताम्लाश्वत्थतिन्दुकाः॥ ६९
प्राचीनामलका लोध्रा मल्लिका भद्रदारवः।
आम्रातकास्तथा जम्बूलकुचाः शैलवालुकाः॥ ७०
सर्जार्जुनाः कन्दुरवाः पतङ्गाः कुटजास्तथा।
रक्ताः कुरबकाश्चैव नीपाश्चागरुभिः सह॥ ७१
कदम्बाश्चैव भव्याश्च दाडिमीबीजपूरकाः।
कालीयका दुकूलाश्च हिङ्गवस्तैलपर्णिकाः॥ ७२
खर्जूरा नालिकेराश्च पूगवृक्षा हरीतकी।
मधूकाः सप्तपर्णाश्च बिल्वाः पारावतास्तथा॥ ७३
पनसाश्च तमालाश्च नानागुल्मलतावृताः।
लताश्च विविधाकाराः पत्रपुष्पफलोपगाः॥ ७४
एते चान्ये च बहवस्तत्र काननजा द्रुमाः।
नानापुष्पफलोपेता व्यराजन्त समन्ततः॥ ७५
चकोराः शतपत्राश्च मत्तकोकिलसारिकाः।
पुष्पितान् फलिताग्रांश्च सम्पतन्ति महाद्रुमान्॥ ७६
रक्तपीतारुणास्तत्र पादपाग्रगता द्विजाः।
परस्परमवैक्षन्त प्रहृष्टा जीवजीवकाः॥ ७७

उन सरोवरोंमें अपनी प्रियतमाओंको साथ लिये धार्तराष्ट्र नामक देवप्रिय हंस, कादम्ब (कलहंस), चक्रवाक, सारस और कुरर आदि पक्षी कलरव कर रहे थे॥ ६२॥ वे तालाब निर्मल स्फटिक मणिके समान जलसे भरे थे। उनमें श्वेत अष्टदल कमल शोभा पाते थे। कलहंसोंके गीत और सारिकाओंके कलरव वहाँ गूँजते रहते थे॥ ६३॥ वहाँ वृक्षोंकी शाखाओं तथा शिखाओंपर भगवान्ने नाना प्रकारके फूल और मञ्जरी धारण करनेवाली सुन्दर सुगन्धित लताएँ फैली हुई देखीं॥ ६४॥ उस सभा-भवनमें केवड़े, अशोक, सरल, पुंनाग (नागकेशर), तिलक, अर्जुन, आम, नीप, नागपुष्प, कदम्ब, बकुल, धव, प्रियङ्गु, पाटल, सेमल, हरिद्रक, साल, ताल, प्रियाल, चम्पा तथा अन्य मनोरम पुष्पित वृक्ष शोभा पा रहे थे। मूँगेके वृक्षोंके समूह अपनी अरुण कान्तिसे ऐसे जान पड़ते थे, मानो दावानलकी लपटोंसे जल रहे हों। सुन्दर तने और शाखावाले वञ्जुल नामक वृक्ष (जो अशोककी ही जातिके हैं) वहाँ शोभा पाते थे, उनकी ऊँचाई कई ताड़के बराबर थी और आभा अञ्जन तथा अशोकके समान प्रतीत होती थी॥ ६५—६८॥ वरण, वत्सनाभ, कटहल, चन्दन, नील, सुमना, पीत, अम्ल, पीपल, तेन्दूक, प्राचीन आँवले, लोध, मल्लिका, भद्रदारु, आम्रातक (अमला), जामुन, लकुच (बड़हर), शैल बालुक, सर्ज (राल), अर्जुन, कन्दुरव, पतंग, कुटज, लाल कुरबक, नीप, अगरु, कदम्ब, भव्य, अनार, बिजौरा नीबू, कालीयक, दुकूल, हिंगु, तैलपर्णिक, खजूर, नारियल, सुपारी, हर्रे, महुवा, छितवन, बेल, पारावत, पनस, नाना प्रकारकी झाड़ियों और लताओंसे घिरे हुए तमाल, पत्र-पुष्प और फलोंसे युक्त भाँति-भाँतिकी वल्लरियाँ—ये तथा और भी बहुत-से जंगली वृक्ष, जो नाना प्रकारके फूलों और फलोंसे भरे हुए थे, वहाँ सब ओर शोभा पाते थे॥ ६९—७५॥ वहाँके फूली-फली डालियोंवाले विशाल वृक्षोंपर चकोर, शतपत्र, मतवाले कोकिल तथा सारिका आदि पक्षी झुंड-के-झुंड आ-आकर बैठते थे॥ ७६॥ वृक्षके अग्रभागपर बैठे हुए लाल-पीले और अरुण रंगके पक्षी तथा जीव-जीवक वहाँ हर समय एक-दूसरेको देख रहे थे॥ ७७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे हिरण्यकशिपुसभावर्णने एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें नरसिंहावतारके प्रसंगमें हिरण्यकशिपुकी सभाका वर्णनविषयक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४१॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् नरसिंहका देवता, गन्धर्व, अप्सराओं तथा दैत्योंसे सेवित हिरण्यकशिपुको देखना

वैशम्पायन उवाच

तस्यां सभायां दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुः प्रभुः।
आसीन आसने दिव्ये नल्वमात्रे प्रमाणतः॥ १
दिवाकरनिभे रम्ये दिव्यास्तरणसम्भृते।
रराज सुचिरं राजन् ज्वलत्काञ्चनकुण्डलः॥ २
तस्य दैत्यपतेर्मन्दं विरजस्कं समन्ततः।
दिव्यगन्धवहस्तत्र मारुतः सुमुखो ववौ॥ ३
तत्र देवाः सगन्धर्वा गणैरप्सरसां वृताः।
दिव्यतालेन दिव्यानि जगुर्गीतानि गायनाः॥ ४
विश्वाची सहजन्या च प्रम्लोचेत्यभिविश्रुता।
दिव्या च सौरभेयी च समीची पुञ्जिकस्थला॥ ५
मिश्रकेशी च रम्भा च चित्रसेना शुचिस्मिता।
चारुनेत्रा घृताची च मेनका चोर्वशी तथा॥ ६
एताः सहस्रशश्चान्या नृत्यगीतविशारदाः।
उपतिष्ठन्ति राजानं हिरण्यकशिपुं तदा॥ ७
हिरण्यकशिपुस्तत्र विचित्राभरणाम्बरः।
स्त्रीसहस्त्रैः परिवृतस्तस्थौ ज्वलितकुण्डलः॥ ८
तत्रासीनं महाबाहुं हिरण्यकशिपुं प्रभुम्।
उपासन्ति दितेः पुत्राः सर्वे लब्धवराः पुरा॥ ९
बलिर्वैरोचनस्तत्र नरकः पृथिवीजयः।
प्रह्लादो विप्रचित्तिश्च गविष्ठश्च महासुरः॥ १०
चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता सुमनाः सुमतिः खरः।
घटोदरो महापार्श्वः क्रथनः पिठरस्तथा॥ ११
विश्वरूपश्च रूपश्च विरूपश्च महाद्युतिः।
दशग्रीवश्च वाली च मेघवासा महारवः॥ १२
कटाभो विकटाभश्च संह्लादश्चेन्द्रतापनः।
दैत्यदानवसंघाश्च सर्वे ज्वलितकुण्डलाः॥ १३
स्त्रग्विणो वाग्मिनः सर्वे सर्वे सुचरितव्रताः।
सर्वे लब्धवराः शूराः सर्वे विगतमृत्यवः॥ १४
एते चान्ये च बहवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम्।
उपासन्ते महात्मानं सर्वे दिव्यपरिच्छदाः॥ १५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उस सभामें प्रभावशाली दैत्यराज हिरण्यकशिपु चार हाथ लम्बे एक दिव्य सिंहासनपर बैठा हुआ था॥ १॥ राजन्! वह सिंहासन सूर्यके समान प्रभापुञ्जसे परिपूर्ण, रमणीय तथा दिव्य बिछौनोंसे ढका हुआ था। उसपर देरसे बैठा हुआ हिरण्यकशिपु बड़ी शोभा पा रहा था। उसके कानोंमें सोनेके कुण्डल अपनी दिव्य दीप्तिसे दमक रहे थे॥ २॥ दिव्य सुगन्धका भार वहन करनेवाली वायु वहाँ सब ओरसे उस दैत्यराजके सम्मुख आकर मन्द गतिसे बहती थी। उसमें तनिक भी धूलका कण नहीं रहता था॥ ३॥ वहाँ देवता तथा अप्सराओंसे घिरे हुए गन्धर्व गायक बनकर दिव्य तालके साथ दिव्य गीत गाते थे॥ ४॥ विश्वाची, सहजन्या, प्रम्लोचा, दिव्या, सौरभेयी, समीची, पुञ्जिकस्थला, मिश्रकेशी, रम्भा, चित्रसेना, शुचिस्मिता, चारुनेत्रा, घृताची, मेनका और उर्वशी—ये तथा अन्य सहस्रों अप्सराएँ, जो नृत्य-गीतमें कुशल थीं, उस समय राजा हिरण्यकशिपुकी सेवामें उपस्थित होती थीं॥ ५—७॥ उस सभामें विचित्र वस्त्राभूषणोंसे विभूषित और जगमगाते हुए कुण्डलोंसे अलंकृत हिरण्यकशिपु सहस्रों स्त्रियोंसे घिरकर बैठा था॥ ८॥ वहाँ बैठे हुए प्रभावशाली महाबाहु हिरण्यकशिपुकी सेवामें वे सारे दैत्य उपस्थित होते थे, जो पहले वर प्राप्त कर चुके थे॥ ९॥ विरोचनकुमार बलि, पृथ्वीविजयी नरक, प्रह्लाद, विप्रचित्ति, महान् असुर गविष्ठ, चन्द्रहन्ता, क्रोधहन्ता, सुमना, सुमति, खर, घटोदर, महापार्श्व, क्रथन, पिठर, विश्वरूप, रूप, महातेजस्वी विरूप, दशग्रीव, वाली, मेघवासा, महारव, कटाभ, विकटाभ, संह्लाद तथा इन्द्रतापन आदि दैत्यों और दानवोंके समस्त समुदाय, जो प्रज्वलित कान्तिवाले कुण्डलोंसे अलंकृत, पुष्पमालाधारी तथा कुशल वक्ता थे और जो सब-के-सब भलीभाँति ब्रह्मचर्यव्रतका पालन कर चुके थे, वरदान पाये हुए थे, शूरवीर थे और मृत्युके भयका निवारण कर चुके थे; ये तथा दूसरे भी बहुत-से दैत्य वीर दिव्य उपकरणोंसे युक्त हो प्रभावशाली महामना हिरण्यकशिपुकी उपासना करते थे॥ १०—१५॥

विमानैर्विविधैरग्र्यैर्भ्राजमानैरिवार्चिभिः।
स्रग्विणो भूषणधरा यान्ति चायान्ति हेलया॥ १६
विचित्राभरणोपेता विचित्रवसनास्तथा।
विचित्रशस्त्रकवचा विचित्रध्वजवाहनाः॥ १७
महेन्द्रचापसंकाशैर्विचित्रैरङ्गदैर्वरैः ।
भूषिताङ्गा दितेः पुत्रास्तमुपासन्ति नित्यशः॥ १८
तस्यां सभायां दिव्यायामसुराः पर्वतोपमाः।
हिरण्यमुकुटाः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः॥ १९
कनकमणिविचित्रवेदिकाया-
मुपहितरत्नसहस्रवीथिकायाम्।
स ददर्श मृगाधिपः सभायां
सुरुचिरदन्तगवाक्षसंवृतायाम्॥ २०
कनकविमलहारभूषिताङ्गं
दितितनयं स मृगाधिपो ददर्श।
दिवसकरकरप्रभं ज्वलन्त-
मसुरसहस्रगणैर्निषेव्यमाणम्॥ २१

ये नाना प्रकारके श्रेष्ठ तथा किरणोंसे प्रकाशित विमानोंद्वारा लीलापूर्वक आते-जाते थे, पुष्पहार और आभूषण धारणकर सुशोभित होते थे॥ १६॥ ये विचित्र आभूषण और विचित्र वस्त्र धारण करते थे और विचित्र शस्त्र, कवच, ध्वज और वाहनोंका उपयोग करते थे॥ १७॥ इन्द्र-धनुषके समान विचित्र रंगवाले श्रेष्ठ अंगदोंसे अपनी भुजाओंको विभूषित करके आये हुए दैत्य प्रतिदिन हिरण्यकशिपुकी उपासना करते थे॥ १८॥ उस दिव्य सभामें बैठे हुए वे सभी पर्वताकार असुर मस्तकपर सोनेके मुकुट धारण किये सूर्यके समान प्रकाशित होते थे॥ १९॥ जहाँ सोने और मणियोंकी विचित्र वेदिकाएँ बनी थीं, जिसकी गली-गलीमें सहस्रों रत्न संचित थे तथा जो रुचिर हाथीदाँतके बने झरोखोंसे आवृत थी, उस सभामें मृगराज भगवान् नरसिंहने दितिनन्दन हिरण्यकशिपुको देखा। उसका अङ्ग सोनेके निर्मल हारोंसे विभूषित था। उसकी प्रभा सूर्यकी किरणोंके समान उद्भासित होती थी, जिससे वह प्रज्वलित-सा जान पड़ता था और सहस्रों असुरोंके गण उसकी सेवामें लगे हुए थे॥ २०-२१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें नरसिंहावतारके प्रसङ्गमें बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४२॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

प्रह्लादको नरसिंह-विग्रहमें समस्त त्रिलोकीका दर्शन

वैशम्पायन उवाच

ततो दृष्ट्वा महाबाहुं कालचक्रमिवागतम्।
नारसिंहवपुश्छन्नं भस्माच्छन्नमिवानलम्॥ १
विकुञ्चितसटं तस्य नारसिंहस्य भारत।
रूपौदार्यं बभौ तत्र सहस्रशशिसंनिभम्॥ २
अहो रूपमिदं चित्रं शङ्खकुन्देन्दुसंनिभम्।
अब्रुवन् दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः॥ ३
एवं हि ब्रुवतां तेषां निर्दग्धानां महात्मनाम्।
नारसिंहेन चक्षुर्भ्यां चोदिताः कालधर्मणा॥ ४
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो नाम वीर्यवान्।
दिव्येन चक्षुषा सिंहमपश्यद् देवमागतम्॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर राखसे ढकी हुई आगकी भाँति नरसिंह-शरीरमें छिपे हुए महाबाहु भगवान् विष्णुको वहाँ कालचक्रके समान आया देख समस्त दानव और हिरण्यकशिपु आपसमें कहने लगे—'अहो! यह शङ्ख, कुन्द और चन्द्रमाके समान विचित्र रूप दिखायी दे रहा है!' भारत! भगवान् नरसिंहके मुख और गर्दनके बाल घुँघराले थे। उनका रूप-सौन्दर्य सहस्रों चन्द्रमाओंके समान प्रकाशित होता था॥ १—३॥ भगवान् नरसिंहरूपी मृत्युसे प्रेरित और उनकी नेत्राग्निसे दग्ध होते हुए वे विशालकाय दानव जब आपसमें उपर्युक्त बातें कह रहे थे, उस समय हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लाद नामक पराक्रमी दैत्यने वहाँ पधारे हुए नरसिंहभगवान्‌को दिव्य दृष्टिसे देखा॥४-५॥

तं दृष्ट्वा रुक्मशैलाभमपूर्वां तनुमास्थितम्।
विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः॥ ६

प्रह्लाद उवाच

महाराज महाबाहो दैत्यानामादिसम्भव।
न श्रुतं नैव दृष्टं च नारसिंहमिदं वपुः॥ ७
अव्यक्तप्रभवं दिव्यं किमिदं रूपमद्भुतम्।
दैत्यान्तकरणं घोरं शंसन्तीव मनांसि नः॥ ८
अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितस्तथा।
हिमवान् पारियात्रश्च ये चान्ये कुलपर्वताः॥ ९
चन्द्रमाः सह नक्षत्रैरादित्याश्चाश्विनौ तथा।
धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपतिः॥ १०
मरुतो देवगन्धर्वा मुनयश्च तपोधनाः।
नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः॥ ११
ब्रह्मदेवः पशुपतिर्ललाटस्था विभान्ति वै।
स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि तथैव च॥ १२
भवांश्च सहितोऽस्माभिः सर्वैर्दैत्यगणैर्वृतः।
विमानशतसंकीर्णा तथाभ्यन्तरजा सभा॥ १३
सर्वं त्रिभुवनं राजँल्लोकधर्मश्च शाश्वतः।
दृश्यते नारसिंहेऽस्मिन् यथेन्दौ विमले जगत्॥ १४
प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा
ग्रहाश्च योगाश्च मही नभश्च।
उत्पातकालश्च धृतिः स्मृतिश्च
रजश्च सत्त्वं च तपो दमश्च॥ १५
सनत्कुमारश्च महानुभावो
विश्वे च देवाप्सरसश्च सर्वाः।
क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षो
दर्पश्च मोहः पितरश्च सर्वे॥ १६
इत्येवमुक्त्वा स च दैत्यराजं
हिरण्यनामानमविस्मयेन।
दध्यौ च दैत्येश्वरपुत्र उग्रं
महामतिः किञ्चिदधोमुखः प्राक्॥ १७

सोनेके पर्वतकी भाँति अपूर्व शरीर धारण किये भगवान्‌को देखकर समस्त दानव और हिरण्यकशिपु आश्चर्यचकित हो रहे थे॥ ६॥

उस समय प्रह्लादजी बोले—महाराज! महाबाहो! दैत्योंके आदिसम्भव (पूर्वपुरुष)! मैंने ऐसा नरसिंहरूप न तो कभी देखा है और न सुना ही है॥ ७॥ जिसकी उत्पत्तिका कारण अव्यक्त है, ऐसा यह दिव्य अद्भुत रूप क्या है? हमारा मन तो ऐसा कहता है कि यह कोई दैत्योंका विनाश करनेवाला भयङ्कर भूत है॥ ८॥ इसके शरीरमें समस्त देवता, समुद्र तथा सरिताएँ दिखायी देती हैं, हिमवान्, पारियात्र तथा अन्य जो कुलपर्वत हैं, वे भी यहाँ दृष्टिगोचर होते हैं॥ ९॥ नक्षत्रोंसहित चन्द्रमा, आदित्य, अश्विनीकुमार, कुबेर, वरुण, यम, शचीपति इन्द्र, मरुद्गण, देवता, गन्धर्व, तपोधन मुनि, नाग, यक्ष, पिशाच, भयङ्कर पराक्रमी राक्षस, ब्रह्माजी तथा भगवान् पशुपति (शिव)—ये सब इसके ललाटमें स्थित जान पड़ते हैं। स्थावर और जङ्गम भूत, सब दैत्यगणोंसे घिरे हुए हमारे साथ आप, सैकड़ों विमानोंसे भरी हुई हमारी यह आन्तरिक सभा, सारी त्रिलोकी तथा सनातन लोकधर्म—ये सब-के-सब इस नरसिंह-विग्रहमें उसी तरह दिखायी देते हैं, जैसे महान् दर्पणके समान निर्मल चन्द्रमण्डलमें नेत्रोंकी धारणा करनेसे यह सम्पूर्ण जगत् दृष्टिगोचर होता है। १०—१४॥ इस नरसिंह-विग्रहमें प्रजापति, महात्मा मनु, ग्रह, योग, पृथ्वी, आकाश, उत्पातकाल, धृति, स्मृति, रजोगुण, सत्त्वगुण, तप और इन्द्रियसंयम सभी दिखायी देते हैं॥ १५॥ महानुभाव सनत्कुमार, विश्वेदेव, समस्त अप्सराएँ, काम, क्रोध, हर्ष, दर्प, मोह और सारे पितर भी इसमें दृष्टिगोचर होते हैं॥ १६॥ दैत्यराजके पुत्र परम बुद्धिमान् प्रह्लाद बिना किसी विस्मयके उस उग्र दैत्यपति हिरण्यकशिपुसे उपर्युक्त बात कहकर अपना मुँह कुछ नीचे करके पूर्व दिशाकी ओर ध्यान करने लगे॥ १७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे प्रह्लादवाक्ये त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें नृसिंहावतारके प्रसंगमें प्रह्लादका वाक्यविषयक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४३॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

दैत्यों तथा हिरण्यकशिपुद्वारा नृसिंहपर विभिन्न अस्त्रोंका प्रहार

वैशम्पायन उवाच

प्रह्लादस्य च तच्छ्रुत्वा हिरण्यकशिपुर्वचः।
उवाच दानवान् सर्वान् सगणांश्च गणाधिपः॥ १
मृगेन्द्रो गृह्यतां शीघ्रमपूर्वां तनुमास्थितः।
यदि वा संशयः कश्चिद् वध्यतां वनगोचरः॥ २
तच्छ्रुत्वा दानवाः सर्वे मृगेन्द्रं भीमविक्रमम्।
परिक्षिपन्तो मुदितास्त्रासयामासुरोजसा॥ ३
सिंहनादं नदित्वा तु पुनः सिंहो महाबलः।
बभञ्ज तां सभां रम्यां व्यादितास्य इवान्तकः॥ ४
सभायां भज्यमानायां हिरण्यकशिपुः स्वयम्।
चिक्षेपास्त्राणि सिंहस्य रोषव्याकुललोचनः॥ ५
सर्वास्त्राणामथ श्रेष्ठं दण्डमस्त्रं सुभैरवम्।
कालचक्रं तथात्युग्रं विष्णुचक्रं तथैव च॥ ६
धर्मचक्रं महच्चक्रमजितं नाम नामतः।
चक्रमैन्द्रं तथा घोरमृषिचक्रं तथैव च॥ ७
पैतामहं तथा चक्रं त्रैलोक्यमहितस्वनम्।
विचित्रमशनीं चैव शुष्कार्द्रं चाशनिद्वयम्॥ ८
रौद्रं तदुग्रं शूलं च कङ्कालं मुसलं तथा।
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव ब्राह्ममस्त्रं तथैव च॥ ९
ऐषीकमस्त्रमैन्द्रं च आग्नेयं शैशिरं तथा।
वायव्यं मथनं नाम कापालमथ किंकरम्॥ १०
तथा चाप्रतिमां शक्तिं क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च।
अस्त्रं हयशिरश्चैव सौम्यमस्त्रं तथैव च॥ ११
पैशाचमस्त्रममितं सार्प्यमस्त्रं तथाद्भुतम्।
मोहनं शोषणं चैव संतापनविलापने॥ १२
जृम्भणं प्रापणं चैव त्वाष्ट्रं चैव सुदारुणम्।
कालमुद्गरमक्षोभ्यं क्षोभणं तु महाबलम्॥ १३
संवर्तनं मोहनं च तथा मायाधरं परम्।
गान्धर्वमस्त्रं दयितमसिरत्नं च नन्दकम्॥ १४
प्रस्वापनं प्रमथनं वारुणं चास्त्रमुत्तमम्।
अस्त्रं पाशुपतं चैव यस्याप्रतिहता गतिः॥ १५
एतान्यस्त्राणि सर्वाणि हिरण्यकशिपुस्तदा।
चिक्षेप नारसिंहस्य दीप्तस्याग्नेर्यथाहुतिः॥ १६

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! प्रह्लादकी वह बात सुनकर दैत्यगणोंके अधिपति हिरण्यकशिपुने गणोंसहित सम्पूर्ण दानवोंसे यह बात कही—॥ १॥ 'दैत्यो! अपूर्व शरीर धारण करके आये हुए इस वनचारी मृगेन्द्र (सिंह)-को शीघ्र ही पकड़ लो अथवा यदि कोई संशय (प्राण-संकट) उपस्थित हो तो इसका वध कर डालो'॥ २॥ यह आदेश सुनकर वे समस्त दानव प्रसन्न हो उस भयङ्कर पराक्रमी सिंहपर अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए उसे बलपूर्वक त्रास देने लगे॥ ३॥ तब उस महाबली सिंहने मुँह बाये हुए कालकी भाँति बारम्बार सिंहनाद करके उस रमणीय सभा-भवनको तोड़ डाला॥ ४॥ सभा-भवनमें तोड़-फोड़ आरम्भ होनेपर हिरण्यकशिपुके नेत्र रोषसे व्याकुल हो गये, अतः उसने स्वयं भी उस अलौकिक सिंहपर नाना प्रकारके अस्त्र चलाये॥ ५॥ सब अस्त्रोंमें श्रेष्ठ जो अत्यन्त भयङ्कर दण्डास्त्र था, उसको भी चलाया। उसके सिवा अत्यन्त उग्र कालचक्र, विष्णुचक्र, धर्मचक्र, महाचक्र, अजितचक्र, घोर ऐन्द्रचक्र, ऋषिचक्र, ब्रह्मचक्र, जिसकी गड़गड़ाहटकी तीनों लोकोंमें भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती है, वह विचित्र अशनि, सूखी-गीली दो प्रकारकी अशनि, भयानक रौद्रास्त्र—शूल, कङ्काल, मूसल, ब्रह्मशिर नामक अस्त्र, ब्रह्मास्त्र, ऐषीकास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, आग्नेयास्त्र, शैशिरास्त्र, वायव्यास्त्र, मथनास्त्र, कपालास्त्र, किङ्करास्त्र, अप्रतिम शक्ति, क्रौञ्चास्त्र, हयग्रीवास्त्र, सौम्यास्त्र, अनुपम पैशाचास्त्र, अद्भुत सर्पास्त्र, मोहनास्त्र, शोषणास्त्र, संतापनास्त्र, विलापनास्त्र, जृम्भणास्त्र, प्रापणास्त्र, अत्यन्त दारुण त्वाष्ट्रास्त्र, अक्षोभ्य कालमुद्गर, महाबलवान् क्षोभणास्त्र, संवर्तनास्त्र, सम्मोहनास्त्र, मायाधरास्त्र तथा प्रिय गान्धर्वास्त्र, खड्गरत्न नन्दक, प्रस्वापनास्त्र, प्रमथनास्त्र, उत्तम वारुणास्त्र तथा जिसकी गति कहीं भी कुण्ठित नहीं होती, वह पाशुपतास्त्र—इन सभी अस्त्रोंको उस समय हिरण्यकशिपुने भगवान् नरसिंहपर वारी-वारीसे चलाया, मानो वह प्रज्वलित अग्निको आहुति दे रहा हो॥ ६—१६॥

अस्त्रैः प्रज्वलितैः सिंहमावृणोदसुराधिपः।
विवस्वान् घर्मसमये हिमवन्तमिवांशुभिः॥ १७

स ह्यमर्षानिलोद्धूतो दैत्यानां सैन्यसागरः।
क्षणेनाप्लावयत् सिंहं मैनाकमिव सागरः॥ १८

प्रासैः पाशैस्तथा शूलैर्गदाभिर्मुसलैस्तथा।
वज्रैरशनिकल्पैश्च शिलाभिश्च महाद्रुमैः॥ १९

मुद्गरैः कूटपाशैश्च शूलोलूखलपर्वतैः।
शतघ्नीभिश्च दीप्ताभिर्दण्डैरपि सुदारुणैः॥ २०

परिवार्य समन्तात् तु निघ्नन्नस्त्रैर्हरिं तदा।
स्वल्पमप्यस्य न क्षुण्णमूर्जितस्य महात्मनः॥ २१

ते दानवाः पाशगृहीतहस्ता
महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगाः।
समन्ततोऽभ्युद्यतबाहुशस्त्राः
स्थितास्त्रिशीर्षा इव पन्नगेन्द्राः॥ २२

सुवर्णमालाकुलभूषिताङ्गा
नानाङ्गदाभोगपिनद्धगात्राः।
मुक्तावलीदामविभूषिताङ्गा
हंसा इवाभान्ति विशालपक्षाः॥ २३

तेषां तु वायुप्रतिमौजसां वै
केयूरमालावलयोत्कटानि।
तान्युत्तमाङ्गान्यभितो विभान्ति
प्रभातसूर्यांशुसमप्रभाणि॥ २४

तैः प्रक्षिपद्भिर्ज्वलितानलोपमै-
र्महास्त्रपूगैः स समावृतो बभौ।
गिरिर्यथा संततवर्षिभिर्घनैः
कृतान्धकारोऽद्भुतकन्दरद्रुमः॥ २५

तैर्हन्यमानोऽपि महास्त्रजालैः
सर्वैस्तदा दैत्यगणैः समेतैः।
नाकम्पताजौ भगवान् प्रतापवान्
स्थितः प्रकृत्या हिमवानिवाचलः॥ २६

असुरेश्वर हिरण्यकशिपुने तेजसे प्रज्वलित हुए अस्त्रोंद्वारा भगवान् नरसिंहको ढक दिया, ठीक वैसे ही, जैसे ग्रीष्म-ऋतुमें भगवान् सूर्य हिमालयको अपनी किरणोंसे आच्छादित कर देते हैं॥ १७॥ दैत्योंके सैन्यरूपी समुद्रने रोषरूपी वायुके वेगसे उद्वेलित होकर क्षणभरमें भगवान् नरसिंहको उसी तरह आप्लावित-सा कर दिया, जैसे सागर मैनाकको अपने जलसे डुबो देता है॥ १८॥ प्रास, पाश, शूल, गदा, मूसल, वज्र, अशनि, शिला, बड़े-बड़े वृक्ष, मुद्गर, कूटपाश, शूल, ओखली, पर्वत, प्रज्वलित शतघ्नी तथा अत्यन्त भयङ्कर दण्ड आदि अस्त्रोंद्वारा दैत्य उन्हें सब ओरसे घेरकर मारने लगे। परंतु उस समय उन तेजस्वी महात्मा नरसिंहके शरीरका थोड़ा-सा भी भाग क्षत-विक्षत नहीं हुआ॥ १९—२१॥ उन दानवोंने अपने हाथोंमें पाश ले रखे थे। उनका वेग इन्द्रके वज्र और अशनिके समान था। वे सब ओर अस्त्र-शस्त्र लिये दोनों बाँहें ऊपर उठाये खड़े थे, इसलिये तीन फनवाले श्रेष्ठ सर्पोंके समान जान पड़ते थे॥ २२॥ उनके अङ्ग स्वर्ण-मालाओंके समुदायसे विभूषित थे, नाना प्रकारके अङ्गद (बाजूबंद) आदि आभूषण उनके विभिन्न अङ्गोंसे जुड़े हुए थे और मोतियोंके हार उनके समस्त अङ्गोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। उस अवस्थामें वे दैत्य विशाल पंखवाले हंसोंके समान सुशोभित होते थे॥ २३॥ उन वायुके समान बलशाली दैत्योंके उत्तम अङ्ग बाजूबंद, हार और वलय (कड़े) आदि आभूषणोंसे अलंकृत हो प्रभातकालके सूर्यकी किरणोंके समान कान्तिमान् एवं शोभासम्पन्न हो रहे थे॥ २४॥ जैसे निरन्तर वर्षा करनेवाले घने बादलोंसे पर्वतपर अन्धकार छा जाता है तथा उसकी कन्दराएँ और वृक्ष अद्भुत रूप धारण कर लेते हैं, उसी प्रकार अपने ऊपर फेंके जानेवाले प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी बड़े-बड़े अस्त्रोंके समूहोंसे आच्छादित हुए भगवान् नरसिंह अन्धकाराच्छन्न एवं अद्भुत प्रतीत होते थे॥ २५॥ उस समय सब दैत्य एकत्र होकर बड़े-बड़े अस्त्रोंके समुदायसे उनपर आघात कर रहे थे तो भी वे प्रतापी भगवान् नृसिंह उस युद्धस्थलमें कम्पित नहीं हुए। वे स्वभावसे ही हिमालय पर्वतकी भाँति अविचलभावसे खड़े रहे॥ २६॥

संतापितास्ते नरसिंहरूपिणा
दितेः सुताः पावकदीप्ततेजसा।
भयाद् विचेलुः पवनोद्धता यथा
महोर्मयः सागरवारिसम्भवाः॥ २७

नृसिंहरूपधारी भगवान्‌का तेज अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था, उनसे संतापित हुए दैत्य भयसे विचलित हो उठे, मानो प्रचण्ड वायुके थपेड़े खाकर महासागरके जलमें बड़ी-बड़ी तरंगें उठने लगी हों॥ २७॥

शतैर्धनुर्भिः सुमहातिवेगा
युगान्तकालप्रतिमाञ्छरौघान्।
एकायनस्था मुमुचुर्नृसिंहे
महासुराः क्रोधविदीपिताङ्गाः॥ २८

वे महान् असुर अत्यन्त वेगशाली थे, उनके सारे अङ्ग क्रोधसे जल रहे थे, अतः वे सौ धनुषोंकी दूरीपर एक स्थानमें खड़े हो उन नृसिंहदेवपर प्रलयकालकी अग्निके समान तेजस्वी बाणसमूहोंको छोड़ने लगे॥ २८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें नृसिंहावतारविषयक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४४॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

दैत्योंद्वारा किये गये प्रहारों और रची गयी मायाओंकी निष्फलता

वैशम्पायन उवाच

खराः खरमुखाश्चैव मकराशीविषाननाः।
ईहामृगमुखाश्चान्ये वराहसदृशाननाः॥ १

बालसूर्यमुखाश्चैव धूमकेतुमुखास्तथा।
चन्द्रार्धचन्द्रवक्त्राश्च प्रदीप्ताग्निमुखास्तथा॥ २

हंसकुक्कुटवक्त्राश्च व्यादितास्या भयावहाः।
पञ्चास्या लेलिहानाश्च काकगृध्रमुखास्तथा॥ ३

विद्युज्जिह्वास्त्रिशीर्षाश्च तथोल्कासंनिभाननाः।
महाग्राहनिभाश्चान्ये दानवा बलदर्पिताः॥ ४

कैलासवपुषस्तस्य शरीरे शरवृष्टयः।
अवध्यस्य मृगेन्द्रस्य न व्यथाञ्चक्रुराहवे॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं— जनमेजय! उन दानवोंमें कुछ तो मूर्तिमान् गधे ही थे और कुछ दानवोंके केवल मुख ही गधोंके समान थे। कितनोंके मुख मगरों और विषधर सर्पोंके समान थे। किन्हींके मुख भेड़ियोंके समान और किन्हींके सूअरोंके समान थे॥ १॥ कितनोंके मुख प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण कान्तिसे सुशोभित थे। कई दानव धूमकेतुके-से मुखवाले थे। कुछ दैत्योंके मुख पूर्ण चन्द्र, अर्ध चन्द्र तथा प्रज्वलित अग्निके समान थे॥ २॥ किन्हींके मुख हंसोंके समान थे तो किन्हींके मुर्गोंके समान। कितने ही दैत्य मुँह बाये रहते थे, अतः बड़े भयङ्कर जान पड़ते थे, किन्हीं-किन्हींके पाँच मुख थे। कोई-कोई लपलपाती जिह्वासे अपने जबड़े चाटते थे और कितने ही दैत्य कौओं तथा गीधोंके समान मुखवाले थे॥ ३॥ किन्हींकी जिह्वा बिजलीके समान चमकती रहती थी। किन्हींके तीन सिर थे। कोई-कोई उल्काके समान मुखवाले थे तथा बलके घमंडसे भरे हुए दूसरे बहुत-से दानव बड़े-बड़े ग्राहोंके समान मुख धारण करते थे॥ ४॥ भगवान् नरसिंहका श्रीविग्रह कैलास पर्वतके समान उज्ज्वल था। वे सर्वथा अवध्य थे। उनके शरीरमें दैत्योंद्वारा की गयी बाणोंकी वर्षाओंने तनिक भी पीड़ा उत्पन्न नहीं की॥ ५॥

एवं भूयोऽपरान् घोरानसृजन् दानवाः शरान्।
मृगेन्द्रस्योरसि क्रुद्धा निःश्वसन्त इवोरगाः॥ ६

ते दानवशरा घोरा मृगेन्द्राय समीरिताः।
विलयं जग्मुराकाशे खद्योता इव पर्वते॥ ७

ततश्चक्राणि दिव्यानि दैत्याः क्रोधसमन्विताः।
मृगेन्द्रायाक्षिपन्त्याशु प्रज्वलन्तीव सर्वशः॥ ८

तैरासीद् गगनं चक्रैः सम्पतद्भिः समावृतम्।
युगान्ते सम्प्रकाशद्भिश्चन्द्रसूर्यग्रहैरिव॥ ९

तानि चक्राणि वदनं प्रविशन्ति विभान्ति वै।
मेघोदरदरीं घोरां चन्द्रसूर्यग्रहा इव॥ १०

तानि चक्राणि सर्वाणि मृगेन्द्रेण महात्मना।
निगीर्णानि प्रदीप्तानि पावकार्चिःसमानि वै॥ ११

हिरण्यकशिपुर्दैत्यो भूयः प्रासृजदूर्जिताम्।
शक्तिं प्रज्वलितां घोरां हुताशनसमप्रभाम्॥ १२

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य मृगेन्द्रः शक्तिमुत्तमाम्।
हुङ्कारेणैव रौद्रेण बभञ्ज भगवांस्तदा॥ १३

रराज भग्ना सा शक्तिर्मृगेन्द्रेण महीतले।
सविस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केव नभश्च्युता॥ १४

नाराचपङ्क्तिः सिंहस्य सृष्टा रेजे विदूरतः।
नीलोत्पलपलाशानां मालेवोज्ज्वलदर्शना॥ १५

गर्जित्वा तु यथाकामं विक्रम्य च यथासुखम्।
तत् सैन्यमुत्सारितवांस्तृणाग्राणीव मारुतः॥ १६

ततोऽश्मवर्षं दैत्येन्द्रा व्यसृजन्त नभोगताः।
नगमात्रैः शिलाखण्डैर्गिरिकूटैर्महाप्रभैः॥ १७

तदश्मवर्षं सिंहस्य गात्रे निपतितं महत्।
दिशो दश प्रकीर्णं हि खद्योतप्रकरो यथा॥ १८

तदश्मौघैर्दितिसुतास्तदा सिंहमरिंदमम्।
प्राच्छादयन् यथा मेघा धाराभिरिव पर्वतम्॥ १९

न च तं चालयामासुर्दैत्यौघा देवमास्थितम्।
भीमवेगा बलश्रेष्ठं समुद्रा इव पर्वतम्॥ २०

इसी तरह फुफकारते हुए सर्पोंके समान उन कुपित हुए दानवोंने भगवान् नरसिंहकी छातीमें पुनः दूसरे-दूसरे घोर बाणोंका प्रहार किया॥ ६॥ भगवान् नरसिंहपर चलाये गये दानवोंके वे घोर बाण पर्वतमें अदृश्य हो जानेवाले जुगुनुओंके समान आकाशमें ही विलीन हो गये॥ ७॥ तब क्रुद्ध हुए दैत्य उन नरसिंहदेवपर बड़ी शीघ्रताके साथ दिव्य चक्र चलाने लगे, जो सब ओरसे प्रज्वलित-से हो रहे थे॥ ८॥ चलाये जाते हुए उन चक्रोंसे घिरा हुआ आकाश प्रलयकालमें प्रकाशित होनेवाले अनेकानेक चन्द्र, सूर्यादि ग्रहोंसे व्याप्त हुआ-सा प्रतीत होता था॥ ९॥ वे चक्र भगवान् नरसिंहके मुखमें प्रवेश करते चले जा रहे थे। उस समय वे मेघोंकी भयङ्कर उदर-दरीमें घुसनेवाले चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रहोंके समान जान पड़ते थे॥ १०॥ महात्मा नरसिंहने आगकी ज्वालाओंके समान प्रज्वलित होनेवाले वे सब चक्र निगल लिये॥ ११॥ तब दैत्य हिरण्यकशिपुने पुनः प्रज्वलित अग्निके समान प्रभावाली एक प्रबल एवं भयङ्कर शक्ति छोड़ी॥ १२॥ उस उत्तम शक्तिको अपनी ओर आती देख भगवान् नरसिंहने भयङ्कर हुङ्कारमात्रसे ही तत्काल उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ १३॥ भगवान् नरसिंहद्वारा भग्न होकर पृथ्वीपर पड़ी हुई वह शक्ति आकाशसे गिरी हुई चिनगारियोंसहित प्रज्वलित विशाल उल्काके समान शोभा पाती थी॥ १४॥ नरसिंहदेवको लक्ष्य करके दूरसे छोड़ी गयी बाणोंकी पंक्ति नील कमलदलोंकी उज्ज्वल मालाके समान सुशोभित हो रही थी॥ १५॥ तब भगवान् नरसिंह इच्छानुसार गर्जना करके मौजसे इधर-उधर विचरण करके दैत्योंकी उस सेनाको उसी प्रकार उखाड़ फेंकने लगे जैसे वायु तिनकोंके अग्रभागको उड़ाती है॥ १६॥ तब आकाशमें स्थित हुए वे दैत्यराज पत्थरोंकी वर्षा करने लगे। उनके एक-एक शिलाखण्ड वृक्षोंके बराबर होते थे। वे महान् कान्तिमान् पर्वत-शिखरोंका प्रहार करते थे॥ १७॥ भगवान् नरसिंहके शरीरपर पड़ती हुई प्रस्तरोंकी वह विशाल वर्षा खद्योत-समूहोंकी भाँति दसों दिशाओंमें बिखरने लगी॥ १८॥ जैसे बादल अपनी धाराओंसे पर्वतको आच्छादित कर देते हैं, उसी प्रकार वे दैत्य उन प्रस्तरसमूहोंकी वर्षासे शत्रुदमन नरसिंहदेवको ढकने लगे॥ १९॥ जैसे भयंकर वेगवाले समुद्र बलमें बढ़े-चढ़े पर्वतको विचलित नहीं कर सकते, उसी प्रकार वे दैत्यसमूह वहाँ खड़े हुए नरसिंहदेवको पीछे न हटा सके॥ २०॥

ततोऽश्मवर्षे निहते जलवर्षमनन्तरम्।
धाराभिरक्षमात्राभिः प्रादुरासीत् समन्ततः॥ २१

नभसः प्रच्युता धारास्तिग्मवेगाः सहस्रशः।
आवृण्वन् सर्वतो व्योम दिशश्चोपदिशस्तथा॥ २२

धाराणां संनिपातेन वायोर्विस्फूर्जितेन च।
वर्धता चैव वर्षेण न प्राज्ञायत किञ्चन॥ २३

धारा दिवि च संसक्ता वसुधायां च सर्वशः।
न स्पृशन्ति स्म तं तत्र निपतन्त्योऽनिशं भुवि॥ २४

बाह्यतो ववृषे वर्षं नोपरिष्टात् तु तोयदः।
मृगेन्द्रप्रतिरूपस्य स्थितस्य युधि मायया॥ २५

हतेऽश्मवर्षे तुमुले जलवर्षे च शोषिते।
ससृजुर्दानवा मायामग्निं वायुं च सर्वशः॥ २६

नभसः प्रच्युतश्चैव तिग्मवेगः समन्ततः।
ज्वालामाली महारौद्रो दीप्ततेजाः समन्ततः॥ २७

स सृष्टः पावकस्तेन दैत्येन्द्रेण महात्मना।
न शशाक महातेजा दग्धुमप्रतिमौजसम्॥ २८

तमिन्द्रस्तोयदैः सार्धं सहस्राक्षोऽमितद्युतिः।
महता तोयवर्षेण शमयामास पावकम्॥ २९

तस्यां प्रतिहतायां तु मायायां युधि दानवाः।
ससृजुर्घोरसंकाशं तमस्तीव्रं समन्ततः॥ ३०

तमसा संवृते लोके दैत्येष्वात्तायुधेषु वै।
स्वतेजसा परिवृतो दिवाकर इवाबभौ॥ ३१

त्रिशिखां भ्रुकुटीं चास्य ददृशुर्दानवा रणे।
ललाटस्थां त्रिकूटस्थां गङ्गां त्रिपथगामिव॥ ३२

तदनन्तर प्रस्तरोंकी वर्षा बंद हो जानेपर जलकी वर्षा आरम्भ हुई, चारों ओर धुरोंके समान मोटी धाराओंके साथ घोर वर्षा होने लगी॥ २१॥ आकाशसे प्रचण्ड वेगवाली सहस्रों जलधाराएँ गिरने लगीं, उन्होंने आकाश, दिशा और विदिशाओंको भी सब ओरसे आवृत कर लिया॥ २२॥ जलकी धाराओंके गिरने, प्रचण्ड वायुके वेगपूर्वक बहने और वर्षाकी उत्तरोत्तर वृद्धि होनेसे कुछ भी सुझायी नहीं देता था॥ २३॥ जलकी धारा आकाशसे वसुधातक लगी हुई थी और सब ओर फैल रही थी। भूतलपर निरन्तर गिरती रहनेपर भी वे धाराएँ वहाँ नृसिंहदेवका स्पर्श नहीं कर पाती थीं॥ २४॥ वे मृगेन्द्ररूपधारी भगवान् विष्णु अपनी मायाके द्वारा युद्धस्थलमें खड़े थे। उस समय बाहरकी ओर तो जलकी वर्षा होती थी, किंतु मेघ उनके ऊपर जल नहीं गिराते थे॥ २५॥ जब भयंकर पत्थरोंकी वर्षा नष्ट हो गयी और जलकी वर्षा भी सोख ली गयी, तब दानवोंने सब ओर मायामय अग्नि और वायुकी सृष्टि की॥ २६॥ आकाशसे चारों ओर प्रचण्ड वेगशाली, ज्वालामालाओंसे अलंकृत महाभयंकर तथा प्रज्वलित तेजसे युक्त अग्निकी वर्षा होने लगी॥ २७॥ उस महामनस्वी दैत्यराजके द्वारा उत्पादित हुआ वह महातेजस्वी पावक उन अनुपम शक्तिशाली नृसिंहदेवको दग्ध न कर सका॥ २८॥ अमिततेजस्वी सहस्रलोचन इन्द्रने मेघोंके साथ आकर भारी जल-वर्षा करके उस अग्निको बुझा दिया॥ २९॥ उस अग्निमयी मायाके नष्ट हो जानेपर दानवोंने युद्धस्थलमें सब ओर घोर एवं तीव्र अन्धकारकी सृष्टि की॥ ३०॥ जब सारा जगत् अन्धकारसे आच्छन्न हो गया और दैत्यलोग हाथमें हथियार लेकर युद्धके लिये उद्यत हो गये, उस समय भगवान् नृसिंह अपने तेजसे सूर्यदेवकी भाँति प्रकाशित हो उठे॥ ३१॥ उस समय दानवोंने रणक्षेत्रमें भगवान्‌के ललाटमें तीन शिखाओंसे युक्त भ्रुकुटि देखी, जो त्रिकूट पर्वतपर स्थित हुई त्रिपथगा गङ्गाके समान सुशोभित होती थी॥ ३२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें नृसिंहावतारविषयक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४५॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

दैत्योंके विनाशकी सूचना देनेवाले महान् उत्पात, हिरण्यकशिपुका गदा लेकर धावा करना तथा उसके पैरोंकी धमकसे पृथ्वी, पर्वत, नदी एवं देशोंका कम्पित होना

वैशम्पायन उवाच

ततः सर्वासु मायासु हतासु दितिनन्दनाः।
हिरण्यकशिपुं सर्वे विषण्णाः शरणं गताः॥ १
ततः प्रज्वलितः क्रोधात् प्रदहन्निव तेजसा।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यश्चालयामास मेदिनीम्॥ २
ततः प्रक्षुभिताः सर्वे सागराः सलिलाकराः।
चलिता गिरयः सर्वे सकाननवनद्रुमाः॥ ३
तस्मिन् क्रुद्धे तु दैत्येन्द्रे तमोभूतमभूज्जगत्।
तमसा समभूच्छन्नं न प्राज्ञायत किञ्चन॥ ४
आवहः प्रवहश्चैव विवहश्च समीरणः।
परावहः संवहश्च उद्वहश्च महाबलः॥ ५
तथा परिवहः श्रीमान् मारुता भयशंसिनः।
इत्येते क्षुभिताः सप्त मारुता गगनेचराः॥ ६
ये ग्रहाः सर्वलोकस्य क्षये प्रादुर्भवन्ति वै।
ते ग्रहा गगने हृष्टा विचरन्ति यथासुखम्॥ ७
अयोगतश्चात्यचरद् योगं दिवि निशाकरः।
सग्रहं सहनक्षत्रं प्रजज्वाल नभो नृप॥ ८
विवर्णत्वं च भगवान् गतो दिवि दिवाकरः।
कृष्णः कबन्धश्च महाल्लँक्ष्यते च नभस्तले॥ ९
अमुञ्चच्चासितां सूर्यो धूमवर्तिं भयावहाम्।
गगनस्थश्च भगवानभीक्ष्णं परितप्यते॥ १०
सप्तधूमनिभा घोराः सूर्या दिवि समुत्थिताः।
सोमस्य गगनस्थस्य ग्रहास्तिष्ठन्ति शृङ्गगाः॥ ११
वामे च दक्षिणे चैव स्थितौ शुक्रबृहस्पती।
शनैश्चरो लोहिताङ्गो लोहितार्कसमद्युतिः॥ १२
समं समभिरोहन्ति दुर्गाणि गगनेचराः।
शृङ्गाणि कनकैर्घोरा युगान्तावर्तका ग्रहाः॥ १३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब दैत्योंकी सारी मायाएँ नष्ट हो गयीं, तब सब-के-सब खिन्न होकर हिरण्यकशिपुकी शरणमें गये॥ १॥ तब दैत्य हिरण्यकशिपुने क्रोधसे प्रज्वलित हो पृथ्वीको तेजसे दग्ध-सा करता हुआ उसे कम्पित कर दिया॥ २॥ फिर तो सारे समुद्र और जलाशय क्षुब्ध हो गये। वन, कानन और वृक्षोंसहित समस्त पर्वत हिलने लगे॥ ३॥ दैत्यराज हिरण्यकशिपुके कुपित होनेपर सारा जगत् अन्धकारमय हो गया। अन्धकारसे आच्छादित हो जानेके कारण किसी भी वस्तुका ज्ञान नहीं होता था॥ ४॥ आवह, प्रवह, विवह, परावह, संवह, महाबली उद्वह तथा श्रीमान् परिवह—ये सात[1] आकाशचारी समीर क्षुब्ध होकर भयकी सूचना देने लगे॥ ५-६॥ जो ग्रह सम्पूर्ण जगत्का संहार होनेके समय प्रकट होते हैं, वे ही उस समय आकाशमें उदित हो बड़े हर्ष और सुखसे विचर रहे थे॥ ७॥ चन्द्रमा आकाशमें नियत योगके बिना ही अतिचारगतिसे दूरवर्ती नक्षत्रोंके साथ भी संयुक्त होने लगे। नरेश्वर! ग्रहों और नक्षत्रोंसे सारा आकाश जल उठा॥ ८॥ सूर्यदेव आकाशमें श्रीहीन-से हो गये। व्योममण्डलमें काले रंगका महान् कबन्ध दृष्टिगोचर होने लगा॥ ९॥ सूर्यदेव काले रंगकी धूमकी भयंकर बत्ती छोड़ने लगे। आकाशमें स्थित हुए भगवान् सूर्य बहुत अधिक तपने और तपाने लगे॥ १०॥ धुएँके समान रंगवाले सात भयंकर सूर्य आकाशमें उदित हो गये और व्योममण्डलमें स्थित हुए सोमके शृङ्गपर सात ग्रह स्थित हो गये॥ ११॥ सोमके बायें भागमें शुक्र और दायें भागमें बृहस्पति स्थित हुए। शनैश्चर और प्रातःकालके अरुण वर्णवाले सूर्यके समान कान्तिमान् मंगल भी क्रमशः बायें-दायें स्थित हो गये॥ १२॥ प्रलयकालकी आवृत्ति करनेवाले भयंकर आकाशचारी ग्रह मेरु पर्वतके सुवर्णनिर्मित दुर्गम शिखरोंपर एक साथ आरोहण करने लगे॥ १३॥

---

१. आवह आदि सात वायुओंका परिचय महाभारत शान्तिपर्व, मोक्षधर्मपर्व अध्याय ३२८ के श्लोक ३६ से ५२ तक विस्तारपूर्वक दिया गया है।

चन्द्रमाः सह नक्षत्रैर्ग्रहैः सप्तभिरावृतः।
चराचरविनाशार्थं रोहिणीं नाभ्यनन्दत॥ १४

गृहीतो राहुणा चन्द्र उल्काभिरभिहन्यते।
उल्काः प्रज्वलिताश्चन्द्रे प्रचेलुर्घोरदर्शनाः॥ १५

देवानामपि यो देवः सोऽभ्यवर्षत शोणितम्।
अपतन् गगनादुल्का विद्युद्रूपाः सनिःस्वनाः॥ १६

अकाले पादपाः सर्वे पुष्यन्ति च फलन्ति च।
लताश्च सफलाः सर्वा याः प्राहुर्दैत्यनाशनम्॥ १७

फले फलान्यजायन्त पुष्पे पुष्पं तथैव च।
उन्मीलन्ति निर्मीलन्ति हसन्ति च रुदन्ति च॥ १८

विक्रोशन्ति च गम्भीरं धूमयन्ति ज्वलन्ति च।
प्रतिमाः सर्वदेवानां कथयन्ति युगक्षयम्॥ १९

आरण्यैः सह संसृष्टा ग्राम्याश्च मृगपक्षिणः।
चुक्रुशुर्भैरवं तत्र मृगेन्द्रे समुपस्थिते॥ २०

नद्यश्च प्रतिलोमा हि वहन्ति कलुषोदकाः।
अपराह्णगते सूर्ये लोकानां क्षयकारके॥ २१

न प्रकाशन्ति च दिशो रक्तरेणुसमाकुलाः।
वानस्पत्या न पूज्यन्ते पूजनार्हाः कथञ्चन॥ २२

वायुवेगेन हन्यन्ते भिद्यन्ते प्रणुदन्ति च।
तदा च सर्वभूतानां छाया न परिवर्तते॥ २३

अपराह्णगते सूर्ये लोकानां च युगक्षये।
तदा हिरण्यकशिपोर्दैत्यस्योपरिवेश्मनः॥ २४

भाण्डागारायुधागारे निविष्टमभवन्मधु।
तथैव चायुधागारे धूमराजिरदृश्यत॥ २५

स च दृष्ट्वा महोत्पातान् हिरण्यकशिपुस्तदा।
पुरोहितं तदा शुक्रं वचनं चेदमब्रवीत्॥ २६

किमर्थं भगवन्नेते महोत्पाताः समुत्थिताः।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे॥ २७

नक्षत्रोंके साथ चन्द्रमा सात ग्रहोंसे आवृत हो चराचर प्राणियोंके विनाशके लिये रोहिणीका अभिनन्दन नहीं करते थे॥ १४॥ राहुसे ग्रस्त हुए चन्द्रमा उल्काओंसे आहत होने लगे। भयंकर दिखायी देनेवाली प्रज्वलित उल्काएँ चन्द्रमण्डलकी ओर जाने लगीं॥ १५॥ जो देवताओंके भी देवता हैं, वे इन्द्र रक्तकी वर्षा करने लगे। आकाशसे भयंकर शब्दके साथ विद्युन्मयी उल्काएँ गिरने लगीं॥ १६॥ सभी वृक्ष असमयमें फूलने-फलने लगे, समस्त लताएँ फलोंसे लद गयीं, जो दैत्योंके विनाशकी सूचना दे रही थीं॥ १७॥ फलमें फल और फूलमें फूल उत्पन्न होने लगे। समस्त देवताओंकी प्रतिमाएँ आँखें खोलने-मीचने लगीं, हँसने-रोने लगीं, वे उच्च स्वरसे चीत्कार कर उठती थीं, कभी धुँआ छोड़तीं, कभी प्रज्वलित होने लगती थीं, इस प्रकार वे प्रलयकी सूचना दे रही थीं॥ १८-१९॥ ग्रामीण पशु-पक्षी जंगली पशु-पक्षियोंके साथ संसर्ग (मैथुन) करने लगे। वहाँ भगवान् नरसिंहके उपस्थित होनेपर वे सभी पशु-पक्षी भैरव-रवमें आर्तनाद करने लगे॥ २०॥ नदियाँ उलटी दिशाकी ओर बहने लगीं। उनके जल गँदले हो गये। उस समय सम्पूर्ण लोकोंके विनाशकी सूचना देते हुए सूर्यदेव अपराह्णकालमें आ पहुँचे थे॥ २१॥ दिशाएँ लाल रंगकी धूलसे भर रही थीं, अतः प्रकाशित नहीं होती थीं। पूजनीय चैत्य देवताओंकी किसी तरह पूजा नहीं होती थी॥ २२॥ वे चैत्य वृक्ष वायुके वेगसे छिन्न-भिन्न तथा कम्पित होते रहते थे। उस समय सूर्य अपराह्णकालमें स्थित थे और लोकोंका प्रलय-सा उपस्थित था। उस अवस्थामें सूर्यकी प्रभा हीन हो जानेसे किसी भी प्राणीकी छाया (परछाईं) नहीं पड़ रही थी। हिरण्यकशिपु दैत्यके महलके ऊपर तथा उसके भण्डारगृह और शस्त्रागारमें मधुकी मक्खियोंने मधुका छाता लगा रखा था। इसी तरह उसके आयुधागारमें धूममाला उठती दिखायी दी। हिरण्यकशिपुने उस समय उन बड़े-बड़े उत्पातोंको देखकर अपने पुरोहित शुक्राचार्यसे कहा—॥ २३—२६॥ 'भगवन्! ये बड़े-बड़े उत्पात किसलिये प्रकट हो रहे हैं, मैं ठीक-ठीक इनका कारण सुनना चाहता हूँ। इसके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है'॥ २७॥

शुक्र उवाच

श्रृणु राजन्नवहितो वचनं मे महासुर।
यदर्थमिह दृश्यन्ते महोत्पाता महाभयाः॥ २८

यस्यैते सम्प्रदृश्यन्ते राज्ञो राष्ट्रे महासुर।
देशो वा ह्रियते तस्य राजा वा वधमर्हति॥ २९

अतो बुद्ध्या समीक्षस्व यथा सर्वं प्रणश्यति।
बृहद्भयं हि नचिराद् भविष्यति न संशयः॥ ३०

एतावदुक्त्वा शुक्रस्तु हिरण्यकशिपुं तदा।
स्वस्तीत्युक्त्वा तु दैत्येन्द्रं जगाम स्वं निवेशनम्॥ ३१

तस्मिन् गते स दैत्येन्द्रो ध्यातवान् सुचिरं तदा।
आसाञ्चक्रे सुदीनात्मा ब्रह्मवाक्यमनुस्मरन्॥ ३२

असुराणां विनाशाय सुराणां विजयाय च।
दृश्यन्ते विविधोत्पाता घोरा घोरनिदर्शनाः॥ ३३

एते चान्ये च बहवो घोरा ह्युत्पातदर्शनाः।
दैत्येन्द्राणां विनाशाय दृश्यन्ते कालनिर्मिताः॥ ३४

ततो हिरण्यकशिपुर्गदामादाय सत्वरम्।
अभ्यद्रवत वेगेन धरणीमनुकम्पयन्॥ ३५

हिरण्यकशिपुर्दैत्यो पदा संस्पृष्टवान् महीम्।
संदष्टौष्ठपुटः क्रोधाद् वराह इव पूर्वजः॥ ३६

मेदिन्यां कम्प्यमानायां दैत्येन्द्रेण महात्मना।
महीधरेभ्यो नागेन्द्रा निपेतुर्भयविक्लवाः॥ ३७

विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैर्विमुञ्चन्तो हुताशनम्।
चतुःशीर्षाः पञ्चशीर्षाः सप्तशीर्षाश्च पन्नगाः॥ ३८

वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ।
एलापत्रश्च कालीयो महापद्मश्च वीर्यवान्।
सहस्रशीर्षधृङ्नागो हेमतालध्वजः प्रभुः॥ ३९

शेषोऽनन्तो महीपालो दुष्प्रकम्प्यः प्रकम्पितः।
दीप्तान्यन्तर्जलस्थानि पृथिवीधरणानि च॥ ४०

तदा क्रुद्धेन दैत्येन कम्पितानि समन्ततः।
पातालतलचारिण्यो नागतेजोधराः शिवाः॥ ४१

आपश्च सहसा क्रुद्धा दुष्प्रकम्प्यरसाः शुभाः।

शुक्र बोले—राजन्! महासुर! तुम ध्यान देकर मेरी बात सुनो। ये महान् भयदायक बड़े-बड़े उत्पात यहाँ जिस निमित्तसे दिखायी देते हैं, वह बताता हूँ, सुनो॥ २८॥ महासुर! जिस राजाके राज्यमें ये उत्पात दृष्टिगोचर होते हैं, उसका राज्य छिन जाता है अथवा वह राजा ही मारा जाता है॥ २९॥ अतः तुम बुद्धिसे भलीभाँति विचार करो, जिससे सारा उत्पात नष्ट हो जाय, अन्यथा शीघ्र ही महान् भय प्राप्त होगा, इसमें संशय नहीं है॥ ३०॥ उस समय दैत्यराज हिरण्यकशिपुसे इतना ही कहकर शुक्राचार्य 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा कहते हुए अपने घरको चले गये॥ ३१॥ उनके चले जानेपर वह दैत्यराज बहुत देरतक चिन्तामग्न बैठा रहा। उस ब्राह्मणके वाक्यका बारम्बार स्मरण करके वह दैत्य मन-ही-मन बहुत दुःखी हो गया था॥ ३२॥ असुरोंके विनाश और देवताओंकी विजयके लिये नाना प्रकारके भयंकर उत्पात दिखायी देते थे; जो देखनेमें भी बड़े भयानक थे॥ ३३॥ ये तथा और भी बहुत-से घोर उत्पात जो साक्षात् कालके द्वारा निर्मित थे, दैत्यराजाओंके विनाशके लिये दृष्टिगोचर हो रहे थे॥ ३४॥ तदनन्तर हिरण्यकशिपु तुरंत ही हाथमें गदा लेकर पृथ्वीको बारम्बार कम्पित करता हुआ बड़े वेगसे दौड़ा॥ ३५॥ दैत्य हिरण्यकशिपुने रोषसे ओठको दाँतों तले दबाकर भगवान् आदिवाराहकी भाँति अपने पैरसे पृथ्वीका स्पर्श किया॥ ३६॥ उस महाकाय दैत्यराजके द्वारा जब बारम्बार पृथ्वी कँपायी जाने लगी, तब भयसे व्याकुल हुए बहुत-से नागराज पर्वतोंसे नीचे गिरने लगे॥ ३७॥ वे विषकी ज्वालासे व्याप्त हुए मुखोंद्वारा आग उगल रहे थे। उनमेंसे किन्हींके चार, किन्हींके पाँच और किन्हींके सात फन थे॥ ३८॥ वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय, एलापत्र, कालिय, पराक्रमी महापद्म तथा सहस्र फन धारण करनेवाले, सुवर्णमय तालध्वजसे सुशोभित, सर्वसमर्थ पृथ्वीपालक भगवान् अनन्त शेषनाग भी, जिन्हें कँपाना बहुत ही कठिन था, कम्पित हो उठे। जलके भीतर रहनेवाले जो तेजस्वी भूधर (दिग्गज आदि) थे, उन्हें भी उस समय कुपित हुए उस दैत्यने सब ओरसे कम्पित कर दिया। पातालतलमें विचरने और नागोंके तेजको धारण करनेवाले कल्याणकारी सुन्दर सुस्वादु जल, जिनके रसको विचलित करना बहुत ही कठिन था, सहसा क्षुब्ध हो गये।

नदी भागीरथी चैव सरयूः कौशिकी तथा॥ ४२
यमुना चैव कावेरी कृष्णा वेणा तथैव च।
सुवेणा च महाभागा नदी गोदावरी तथा॥ ४३

चर्मण्वती च सिन्धुश्च तथा नदनदीपतिः।
मेकलप्रभवश्चैव शोणो मणिनिभोदकः॥ ४४

सुस्त्रोता नर्मदा चैव तथा वेत्रवती नदी।
गोमती गोकुलाकीर्णा तथापूर्णा सरस्वती॥ ४५

मही कालनदी चैव तमसा पुण्यवाहिनी।
सीता चेक्षुमती चैव देविका च महानदी॥ ४६

जम्बूद्वीपं रत्नवन्तं सर्वरत्नोपशोभितम्।
सुवर्णकूटकं चैव सुवर्णाकरमण्डितम्॥ ४७

महानदश्च लौहित्यः शैलकाननशोभितः।
पत्तनं कौशिकारण्यं द्रविडं रजताकरम्॥ ४८

मागधांश्च महाग्रामानङ्गान् वङ्गांस्तथैव च।
सुह्मान् मल्लान् विदेहांश्च मालवान् काशिकोसलान्॥ ४९

भवनं वैनतेयस्य सुवर्णस्य च कम्पितम्।
कैलासशिखराकारं यत् कृतं विश्वकर्मणा॥ ५०

रक्ततोयो भीमवेगो लौहित्यो नाम सागरः।
शुभः पाण्डुरमेघाभः क्षीरोदश्चैव सागरः॥ ५१

उदयश्चैव राजेन्द्र उच्छ्रितः शतयोजनम्।
सुपर्णवेदिकः श्रीमान् नागपक्षिनिषेवितः॥ ५२

भ्राजमानोऽर्कसदृशैर्जातरूपमयैर्द्रुमैः।
शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकाभिश्च पुष्पितैः॥ ५३

अयोमुखश्च विपुलः सर्वतो धातुमण्डितः।
तमालवनगन्धश्च पर्वतो मलयः शुभः॥ ५४

सुराष्ट्राश्च सुबाह्लीकाः शूराभीरास्तथैव च।
भोजाः पाण्ड्याश्च वङ्गाश्च कलिङ्गास्ताम्रलिप्तकाः॥ ५५

तथैवान्ध्राश्च पुण्ड्राश्च वामचूडाः सकेरलाः।
क्षोभितास्तेन दैत्येन सदेवाः साप्सरोगणाः॥ ५६

भागीरथी नदी, सरयू, कौशिकी (कोशी), यमुना, काबेरी, कृष्णा, वेणा, महाभागा सुवेणा, गोदावरी नदी, चर्मण्वती, सिन्धु, नदों और नदियोंका अधिपति समुद्र, मेकल पर्वतसे प्रकट हुआ और मणिके समान स्वच्छ जलवाला शोणभद्रनद, सुन्दर स्त्रोतवाली नर्मदा नदी, वेत्रवती नदी, गौओंके समुदायसे व्याप्त गोमती नदी, अपूर्ण जलवाली सरस्वती नदी, मही कालनदी, पवित्र जल बहानेवाली तमसा, सीता, इक्षुमती, देविका और महानदी—इन सबको उस दैत्यने विक्षुब्ध कर दिया। ३९—४६॥ सम्पूर्ण रत्नोंसे सुशोभित रत्नवान् जम्बूद्वीपको और सोनेकी खानोंसे युक्त स्वर्णकूटक नामक देशको भी उसने कम्पित कर दिया॥ ४७॥

पर्वतों और काननोंसे सुशोभित लौहित्य नामक महानद, कौशिकारण्य नामक पत्तन (नगर या प्रान्त), चाँदीकी खानोंसे युक्त द्रविड़ देश, बड़े-बड़े ग्रामवाले मगध, अङ्ग, वङ्ग, सुह्म, मल्ल, विदेह, मालव, काशी और कौशल देशोंको तथा जिसे विश्वकर्माने बनाया था और जो कैलाश पर्वतके शिखरकी भाँति सुशोभित होता था, गरुड़के उस स्वर्णनिर्मित भवनको भी उस दैत्यने कम्पित कर दिया॥ ४८—५०॥ जिसका जल लाल तथा वेग भयंकर है, उस लौहित्य नामक सागरको और श्वेत बादलोंके समान सुन्दर एवं स्वच्छ क्षीरसमुद्रको भी उसने विचलित कर दिये॥ ५१॥ राजेन्द्र! उदयगिरि सौ योजन ऊँचा है, उसपर सोनेकी वेदियाँ बनी हुई हैं, वह शोभाशाली पर्वत नागों और पक्षियोंसे सेवित है। सूर्यके सदृश तेजस्वी स्वर्णमय वृक्ष साल, ताल, तमाल आदि जो फूलोंके भारसे लदे रहते हैं, उदयगिरिकी शोभा बढ़ाते हैं। कर्णिकाएँ भी उस पर्वतकी श्रीवृद्धि करती हैं (ऐसा उदयाचल भी उस दैत्यके पैरोंकी धमकसे कम्पित हो गया)॥ ५२-५३॥ सब ओरसे धातुओंद्वारा अलंकृत विशाल अयोमुख पर्वत तथा तमाल वन और चन्दनकी सुगन्धसे भरा हुआ सुन्दर मलयगिरि भी उस समय विचलित हो उठा॥ ५४॥ सुराष्ट्र, सुबाह्लीक, शूर, आभीर, भोज, पाण्ड्य, वङ्ग, कलिङ्ग, ताम्रलिप्त, आन्ध्र, पुण्ड्र, वामचूड और केरल नामक देशोंको तथा वहाँके देवताओं और अप्सराओंको भी उस दैत्यने शोकमें डाल दिया॥ ५५-५६॥

अगस्तिभुवनं चैव यदगम्यं पुरा कृतम्।
सिद्धचारणसङ्घैश्च सेवितं सुमनोहरम्॥ ५७

विचित्रनागविहगं सुपुष्पितलताद्रुमम्।
जातरूपमयैः शृङ्गैरप्सरोगणसेवितम्॥ ५८

गिरिः पुष्पितकश्चैव लक्ष्मीवान् प्रियदर्शनः।
उत्थितः सागरं भित्त्वा वयस्यश्चन्द्रसूर्ययोः॥ ५९

रराज सुमहाशृङ्गैर्गगनं विलिखन्निव।
सूर्यचन्द्रांशुसंकाशैः सागराम्बुसमावृतः॥ ६०

विद्युत्वान् पर्वतः श्रीमानायतः शतयोजनम्।
विद्युतां यत्र सम्पाता निपात्यन्ते नगोत्तमे॥ ६१

ऋषभः पर्वतश्चैव श्रीमानृषभसंस्थितः।
कुञ्जरः पर्वतश्चैव यत्रागस्त्यगृहं महत्॥ ६२

विशाखरथ्या दुर्धर्षा सर्पाणामालया पुरी।
तथा भोगवती चापि दैत्येन्द्रेणाभिकम्पिता॥ ६३

महामेघगिरिश्चैव पारियात्रश्च पर्वतः।
चक्रवांस्तु गिरिः श्रेष्ठो वाराहश्चैव पर्वतः॥ ६४

प्राग्ज्योतिषपुरं चैव जातरूपमयं शुभम्।
यस्मिन् वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः॥ ६५

मेरुश्च पर्वतश्रेष्ठो मेघगम्भीरनिःस्वनः।
षष्टिं तत्र सहस्राणि पर्वतानां विशाम्पते॥ ६६

तरुणादित्यसंकाशो महेन्द्रश्च महागिरिः।
देवावासः शुभः पुण्यो गिरिराजो दिवं गतः॥ ६७

हेमशृङ्गो महाशैलस्तथा मेघसखो गिरिः।
कैलासश्चापि दुष्कम्पो दानवेन्द्रेण कम्पितः॥ ६८

यक्षराक्षसगन्धर्वैर्नित्यं सेवितकन्दरः।
श्रीमान् मनोहरश्चैव नित्यं पुष्पितपादपः॥ ६९

हेमपुष्करसञ्छन्नं तेन वैखानसं सरः।
कम्पितं मानसं चैव राजहंसैर्निषेवितम्॥ ७०

सिद्धों और चारणोंके समुदायोंसे सेवित महर्षि अगस्त्यका निवासभूत 'अगस्तिभुवन' नामक पर्वत, जिसे पूर्वकालमें दूसरोंके लिये अगम्य बना दिया गया था, बहुत ही मनोहर है। वहाँके नाग और पक्षी विचित्र हैं, लताएँ और वृक्ष फूलोंके भारसे लदे रहते हैं। वह स्वर्णमय शिखरोंसे सुशोभित तथा अप्सराओंके समूहसे सेवित है (किंतु उसे भी उस दैत्यने क्षुब्ध कर दिया)॥ ५७-५८॥ पुष्पितक नामक पर्वत उत्तम शोभासे सम्पन्न और देखनेमें प्रिय है। वह समुद्रका भेदन करके ऊपरको उठा हुआ है। वह अपने शिखरोंपर चन्द्रमा और सूर्यको विश्राम देता है, इसलिये उनका प्रिय सखा है। सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंके समान प्रकाशमान अपने बड़े-बड़े शृङ्गोंद्वारा वह आकाशमें रेखा खींचता हुआ-सा सुशोभित होता है। उसका निम्नभाग सब ओरसे समुद्रके जलसे आच्छादित है (वह पर्वत भी उस दैत्यके पैरोंकी धमकसे कम्पित हो उठा था)॥ ५९-६०॥ शोभाशाली विद्युत्वान् नामक पर्वत सौ योजन लम्बा है। उस श्रेष्ठ पर्वतपर विद्युत्पात होते रहते हैं। उसके सिवा, वृषभके आकारमें स्थित ऋषभ पर्वत, जहाँ अगस्त्यजीका विशाल भवन है वह कुञ्जर पर्वत, सर्पोंका निवासस्थान दुर्जय विशाखरथ्या नामक पुरी तथा भोगवतीपुरीको भी उस दैत्यराजने कम्पित कर दिया॥ ६१—६३॥ प्रजानाथ! महामेघगिरि, पारियात्र पर्वत, श्रेष्ठ चक्रवान् गिरि, वाराह पर्वत, स्वर्णमय सुन्दर प्राग्ज्योतिषपुर जिसमें नरक नामक दुष्टात्मा दानव निवास करता था, मेघकी गम्भीर गर्जनासे युक्त पर्वतश्रेष्ठ मेरु, जहाँ साठ हजार पर्वतोंका निवास है; इन सबको उस दैत्यने विचलित कर दिया॥ ६४—६६॥ बाल-सूर्यके समान अरुण कान्तिसे प्रकाशित महागिरि महेन्द्र जो देवताओंका सुन्दर निवास-स्थान है, वह पवित्र गिरिराज स्वर्गलोकतक पहुँचा हुआ है (वह भी उस दैत्यसे कम्पित हो गया।)॥ ६७॥ महाशैल हेमशृङ्ग, मेघसख नामक पर्वत तथा जिसको कम्पित करना कठिन है वह कैलास भी उस दानवराजके पैरोंकी धमकसे काँप उठा॥ ६८॥ कैलास वह पर्वत है जिसकी कन्दराओंका यक्ष, राक्षस और गन्धर्व सदा ही सेवन करते हैं, उसके वृक्ष सदा खिले रहते हैं, वह सुन्दर शोभासे सम्पन्न और मनोहर है॥ ६९॥ स्वर्णमय कमलोंसे आच्छादित वैखानस सरोवर तथा राजहंसोंसे सेवित मानस सरोवरको भी उसने क्षुब्ध कर दिया था॥ ७०॥

विशृङ्गः पर्वतश्चैव कुमारी च सरिद्वरा।
तुषारचयसंकाशो मन्दरश्चैव पर्वतः॥ ७१

उशीरबीजश्च गिरी रुद्रोपस्थस्तथाद्रिराट्।
प्रजापतेश्च निलयस्तथा पुष्करपर्वतः॥ ७२

देवावृत् पर्वतश्चैव तथा वै वालुको गिरिः।
क्रौञ्चः सप्तर्षिशैलश्च धूम्रवर्णश्च पर्वतः॥ ७३

एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा।
नद्यश्च सागराश्चैव दानवेन्द्रेण कम्पिताः॥ ७४

कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्राक्षः क्षितकम्पनः।
खेचराश्च निशापुत्राः पातालतलवासिनः॥ ७५

गणस्तथापरो रौद्रो मेघनादोऽङ्कुशायुधः।
ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च सर्व एवाभिकम्पिताः॥ ७६

विशृङ्ग पर्वत, सरिताओंमें श्रेष्ठ कुमारी नदी, हिमके राशि-सदृश मन्दराचल, उशीरबीज नामक पर्वत, गिरिराज रुद्रोपस्थ तथा प्रजापतिका निवास-स्थान पुष्कर पर्वत—इन सबको उस दैत्यने कम्पित कर दिया था॥ ७१-७२॥ देवावृत् पर्वत, वालुकगिरि, क्रौञ्चगिरि, सप्तर्षिशैल तथा धूम्रवर्ण पर्वत—ये और दूसरे भी बहुत-से पर्वत, देश, जनपद, नदी और समुद्र उस दानवेन्द्रने कम्पित कर दिये॥ ७३-७४॥ इतना ही नहीं, आकाशमें विचरनेकी शक्ति रखनेवाले जो पातालनिवासी निशाचरवंशज थे, वे महीपुत्र कपिल, व्याघ्राक्ष, क्षितिकम्पन तथा अन्य भयंकर असुरगण—मेघनाद, अङ्कुशायुध, ऊर्ध्वग और भीमवेग आदि भी—सब-के-सब कम्पित हो उठे॥ ७५-७६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें नृसिंहावतारविषयक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४६॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

देवताओंके अनुरोधसे भगवान् नरसिंहद्वारा हिरण्यकशिपुका वध तथा देवताओं और ब्रह्माजीद्वारा उनकी स्तुति

वैशम्पायन उवाच

तत्रादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च मरुतस्तथा।
रुद्रा देवा महात्मानो वसवश्च महाबलाः॥ १

आगम्य ते मृगेन्द्रस्य सकाशं सूर्यवर्चसः।
ऊचुः संत्रस्तमनसो देवा लोकक्षयार्दिताः॥ २

जहि देव दितेः पुत्रं दानवं लोकनाशनम्।
दुर्वृत्तमसदाचारं सह सर्वैर्महासुरैः॥ ३

त्वं ह्येषामन्तकृन्नान्यो दैत्यानां दैत्यनाशन।
तन्नाशय हितार्थाय लोकानां स्वस्ति वै कुरु॥ ४

त्वं गुरुः सर्वलोकानां त्वमिन्द्रस्त्वं पितामहः।
ऋते त्वदन्यच्छरणं न भूतं न भविष्यति॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! लोकसंहारकी आशङ्कासे पीड़ित और भयभीत चित्तवाले सूर्यतुल्य तेजस्वी देवता—आदित्य, साध्य, विश्वेदेव, मरुद्गण, महात्मा रुद्रगण तथा महाबली वसुगण वहाँ भगवान् नरसिंहके निकट आकर इस प्रकार बोले—॥ १-२॥ 'देव! आप सम्पूर्ण जगत्का विनाश करनेवाले, दुर्वृत्त, दुराचारी दानव दितिपुत्र हिरण्यकशिपुका समस्त बड़े-बड़े असुरोंसहित वध कर डालिये॥ ३॥ दैत्यनाशन! आप ही इन दैत्योंका अन्त कर सकते हैं, दूसरा कोई नहीं। अतः आप संसारके हितके लिये इन दैत्योंका नाश और सब लोगोंका कल्याण कीजिये॥ ४॥ आप ही समस्त लोकोंके गुरु, इन्द्र और पितामह हैं, आपके सिवा दूसरा कोई न तो इस जगत्के लिये शरणदाता हुआ है और न होगा ही'॥ ५॥

तच्छ्रुत्वा वचनं देवो देवानामादिसम्भवः।
ननाद सुमहानादमतिगम्भीरनिःस्वनम्॥ ६
पाटितान्यसुरेन्द्राणां मृगेन्द्रेण महात्मना।
सिंहनादेन महता हृदयानि मनांसि च॥ ७
गणः क्रोधवशो नाम कालकेयस्तथा परः।
वेगश्च वैगलेयश्च सैंहिकेयश्च वीर्यवान्॥ ८
संह्लादीयो महानादो महावेगस्तथा परः।
कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्राक्षः क्षितिकम्पनः॥ ९
खेचराश्च निशापुत्राः पातालतलचारिणः।
गणस्तथापरो रौद्रो मेघनादोऽङ्कुशायुधः॥ १०
ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च भीमकर्मार्कलोचनः।
वज्री शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्ततः॥ ११
जीमूतघनसंकाशो जीमूत इव वेगवान्।
जीमूतघनसंनादो जीमूतसदृशद्युतिः॥ १२
देवारिर्दितिजो दृप्तो नृसिंहं समुपाद्रवत्॥ १३
समुत्पत्य ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण महानखैः।
तत्रोङ्कारसहायेन विदार्य निहतो युधि॥ १४
मही च लोकश्च शशी नभश्च
ग्रहाश्च सूर्यश्च दिशश्च सर्वाः।
नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च
गताः प्रकाशं दितिपुत्रनाशात्॥ १५
ततः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः।
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैरादिदेवं सनातनम्॥ १६

देवा ऊचुः

यत् त्वया विहितं देव नारसिंहमिदं वपुः।
एतदेवार्चयिष्यन्ति परावरविदो जनाः॥ १७

मृगेन्द्रत्वं च लोकेषु सर्वसत्त्वेषु वा विभो।
गायन्ति त्वां च मुनयो मृगेन्द्र इति नित्यशः।
त्वत्प्रसादात् स्वकं स्थानं प्रतिपन्नाः स्म वै विभो॥ १८

एवमुक्तो देवसंघैर्नरसिंहो महामनाः।
ब्रह्मा च परमप्रीतो विष्णोः स्तोत्रमुदैरयत्॥ १९

देवताओंका यह वचन सुनकर सबके आदिकारण भगवान् नरसिंहने अत्यन्त गम्भीर स्वरमें बड़े जोरसे गर्जना की॥ ६॥ उन महात्मा मृगेन्द्रने अपने महान् सिंहनादसे समस्त असुरेन्द्रोंके हृदय विदीर्ण कर दिये। मनमें क्षोभ उत्पन्न कर दिये॥ ७॥ दैत्योंका क्रोधवश नामक गण, दूसरा कालकेय नामक गण, वेग, वैगलेय, पराक्रमी सैंहिकेय (सिंहिकापुत्र राहु), संह्लादीय, महानाद, महावेग, महीपुत्र कपिल, व्याघ्राक्ष, क्षितिकम्पन आदि आकाश और पातालमें विचरनेवाले निशाचरवंशज तथा अन्य भयंकर दैत्यगण—मेघनाद, अङ्कुशायुध, ऊर्ध्वग, भीमवेग, भीमकर्मा, अर्कलोचन, वज्री, शूली और कराल—इन सबके साथ मेघके समान रूपवान्, मेघतुल्य वेगवान्, मेघके समान गम्भीर गर्जना करनेवाला तथा मेघके ही सदृश कान्तिमान् बलाभिमानी देवद्रोही दैत्य हिरण्यकशिपुने भगवान् नरसिंहपर धावा किया॥ ८—१३॥ तब युद्धस्थलमें ॐकारसहित भगवान् नरसिंहने उछलकर अपने तीखे और बड़े-बड़े नखोंद्वारा उस असुरका वक्षःस्थल विदीर्ण करके उसे मार डाला॥ १४॥ उस दैत्यके विनाशसे पृथ्वी, लोक, चन्द्रमा, आकाश, ग्रह, सूर्य, समस्त दिशाएँ, नदी, पर्वत और महासागर—इन सबमें प्रकाश (उल्लास) छा गया॥ १५॥ तब आनन्दमग्न हुए देवता तथा तपोधन ऋषि नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा सनातन आदिदेव भगवान् नरसिंहकी स्तुति करने लगे॥ १६॥

देवता बोले—देव! आपने जो यह नरसिंहरूप धारण किया है, कार्य और कारण अथवा भूत और वर्तमानको जाननेवाले विद्वान् पुरुष आपके इसी स्वरूपकी आराधना करेंगे॥ १७॥ प्रभो! सम्पूर्ण लोकों अथवा समस्त प्राणियोंमें आपका यह मृगेन्द्ररूप विख्यात होगा। मुनि भी सदा 'मृगेन्द्र' कहकर आपके गुणोंका गान करेंगे। प्रभो! आपकी कृपासे हमें अपना खोया हुआ स्थान पुनः प्राप्त हो गया॥ १८॥ देव-समुदायके ऐसा कहनेपर महामनस्वी भगवान् नरसिंह बड़े प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने भी बड़े हर्षके साथ भगवान् विष्णुकी स्तुति की॥ १९॥

ब्रह्मोवाच

भवानक्षरमव्यक्तमचिन्त्यं गुह्यमुत्तमम्।
कूटस्थमकृतं कर्तृ सनातनमनामयम्॥ २०
सांख्ययोगे च या बुद्धिस्तत्त्वार्थपरिनिष्ठिता।
तां भवान् वेद विद्यात्मा पुरुषः शाश्वतो ध्रुवः॥ २१
त्वं व्यक्तश्च तथाव्यक्तस्त्वत्तः सर्वमिदं जगत्।
भवन्मया वयं देव भवानात्मा भवान् प्रभुः॥ २२
चतुर्विभक्तमूर्तिस्त्वं सर्वलोकविभुर्गुरुः।
चतुर्युगसहस्रेण सर्वलोकान्तकान्तकः॥ २३
प्रतिष्ठा सर्वभूतानामनन्तबलपौरुषः।
कपिलप्रभृतीनां च यतीनां परमा गतिः॥ २४
अनादिमध्यनिधनः सर्वात्मा पुरुषोत्तमः।
स्रष्टा त्वं त्वं च संहर्ता त्वमेको लोकभावनः॥ २५
भवान् ब्रह्मा च रुद्रश्च महेन्द्रो वरुणो यमः।
भवान् कर्ता विकर्ता च लोकानां प्रभुरव्ययः॥ २६
परां च सिद्धिं परमं च देवं
परं च मन्त्रं परमं मनश्च।
परं च धर्मं परमं यशश्च
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ २७
परं च सत्यं परमं हविश्च
परं पवित्रं परमं च मार्गम्।
परं च होत्रं परमं च यज्ञं
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ २८
परं शरीरं परमं च धाम
परं च योगं परमां च वाणीम्।
परं रहस्यं परमां गतिं च
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ २९
परं परस्यापि परं च यत् परं
परं परस्यापि परं च देवम्।
परं परस्यापि परं प्रभुं च
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ ३०
परं परस्यापि परं प्रधानं
परं परस्यापि परं च तत्त्वम्।
परं परस्यापि परं च धाता
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ ३१
परं परस्यापि परं रहस्यं
परं परस्यापि परं परं यत्।
परं परस्यापि परं तपो यत्
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ ३२

ब्रह्मा बोले—भगवन्! आप अविनाशी, अव्यक्त, अचिन्त्य, गोपनीय परमतत्त्व और कूटस्थ हैं। आपका कोई कर्ता नहीं है। आप स्वयं सबके कर्ता हैं, आप ही रोग-शोकसे रहित सनातन ब्रह्म हैं॥ २०॥ सांख्ययोगमें जो तत्त्वार्थनिष्ठ बुद्धि है, उसे आप जानते हैं। आप ज्ञानस्वरूप अन्तर्यामी सनातन एवं ध्रुव परमात्मा हैं॥ २१॥ आप ही व्यक्त जगत् और अव्यक्त कारण हैं। आपहीसे इस सम्पूर्ण जगत्का प्रादुर्भाव हुआ है। देव! हम आपके ही स्वरूप हैं। आप ही हमारे आत्मा और आप ही प्रभु हैं॥ २२॥ आपकी मूर्ति विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय—इन चार भेदोंसे विभक्त है। आप समस्त जगत्में व्यापक एवं सबके गुरु हैं। एक सहस्र चतुर्युग व्यतीत होनेपर आप ही समस्त लोकोंका अन्त करनेवाले कल्पान्तकारी काल बन जाते हैं॥ २३॥ आप ही सम्पूर्ण भूतोंकी प्रतिष्ठा (आधार) हैं। आपके बल और पौरुष अनन्त हैं। कपिल आदि यतियों (सांख्ययोगियों)-की परम गति आप ही हैं॥ २४॥ आप आदि, मध्य और अन्तसे रहित सर्वात्मा पुरुषोत्तम हैं। एकमात्र आप ही सृष्टि, संहार तथा सम्पूर्ण जगत्का पालन करनेवाले हैं॥ २५॥ आप ही ब्रह्मा, रुद्र, महेन्द्र, वरुण और यम हैं, आप ही कर्ता तथा विकर्ता हैं। समस्त लोकोंके अविनाशी प्रभु भी आप ही हैं॥ २६॥ विद्वान् पुरुष आपको ही परम सिद्धि, परम देवता, परम मन्त्र, परम मन, परम धर्म, परम यश तथा सर्वश्रेष्ठ पुराण-पुरुष कहते हैं॥ २७॥ ज्ञानीजन आपको ही परम सत्य, उत्कृष्ट हविष्य, परम पवित्र सर्वोत्तम मार्ग (गन्तव्यपद), उत्तम अग्निहोत्र, परम यज्ञ तथा सर्वश्रेष्ठ पुराण-पुरुष कहते हैं॥ २८॥ विद्वानोंका कथन है कि आप ही उत्तम शरीर, परम धाम, परम योग, सर्वोत्तम वाणी, परम रहस्य, परम गति तथा सर्वश्रेष्ठ पुराण-पुरुष हैं॥ २९॥ परसे भी पर जो परात्परतत्त्व है, परसे भी पर जो परम देवता है तथा परसे भी पर जो परम प्रभु है, वह आप ही हैं। आपहीको ज्ञानी पुरुष सर्वश्रेष्ठ पुराण-पुरुष कहते हैं॥ ३०॥ परसे भी पर जो परम प्रधान है, परसे भी पर जो परम तत्त्व है तथा परसे भी पर जो परम धाता है, वह आप ही हैं। विद्वान् पुरुष आपको ही सर्वश्रेष्ठ पुराण-पुरुष कहते हैं॥ ३१॥ परसे भी पर जो परम रहस्य है, परसे भी पर जो परात्पर तत्त्व है तथा जो परसे भी पर परम तप है, वह आप ही हैं। आपको ही ऋषि-मुनि श्रेष्ठ पुराण-पुरुष कहते हैं॥ ३२॥

परं परस्यापि परं परायणं
परं च गुह्यं च परं च धाम।
परं च योगं परमं प्रभुत्वं
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ ३३

परसे भी पर जो परम परायण (उत्कृष्ट आश्रयदाता) है, वह आप ही हैं। ज्ञानीजन आपको ही परम गुह्य, परम धाम, परम योग, परम प्रभुत्व तथा सर्वश्रेष्ठ पुराण-पुरुष कहते हैं॥ ३३॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा स भगवान् सर्वलोकपितामहः।
स्तुत्वा नारायणं देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः॥ ३४

ततो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम प्रभुरीश्वरः॥ ३५

नारसिंहीं तनुं त्यक्त्वा स्थापयित्वा च तद् वपुः।
पौराणं रूपमास्थाय ययौ स गरुडध्वजः॥ ३६

अष्टचक्रेण यानेन भूतियुक्तेन शोभिना।
अव्यक्तप्रकृतिर्देवः संस्थानमगमत् प्रभुः॥ ३७

एवं महात्मना तेन नृसिंहवपुषा तथा।
देवेन निहतः पूर्वं हिरण्यकशिपुश्च सः॥ ३८

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! ऐसा कहकर तथा नारायणदेवकी स्तुति करके सर्वलोकपितामह सर्वसमर्थ भगवान् ब्रह्मा ब्रह्मलोकको चले गये॥ ३४॥ तदनन्तर बाजे बजने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। उस समय सबके स्वामी भगवान् श्रीहरि क्षीरसागरके उत्तर तटपर चले गये॥ ३५॥ नरसिंहरूपको त्यागकर उसकी प्रतिमा स्थापित करके भगवान् गरुडध्वज पुराण-प्रसिद्ध चतुर्भुजरूपका आश्रय ले अपने धामको चले गये॥ ३६॥ सर्वसमर्थ भगवान् श्रीहरि अव्यक्त प्रकृतिवाले हैं। वे पञ्चभूतनिर्मित अथवा ऐश्वर्ययुक्त आठ चक्रवाले शोभाशाली रथसे अपने स्थानको पधारे॥ ३७॥ इस प्रकार उस समय नरसिंहरूपधारी उन परमात्मा भगवान् विष्णुने पूर्वकालमें हिरण्यकशिपुका वध किया था॥ ३८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहप्रादुर्भावे हिरण्यकशिपुवधकथने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें नृसिंहावतारके प्रसङ्गमें हिरण्यकशिपुके वधका वर्णनविषयक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४७॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

वामनावतारका उपक्रम, बलिका अभिषेक तथा दैत्योंका उनसे त्रैलोक्यविजयके लिये अनुरोध

वैशम्पायन उवाच

नृसिंह एष कथितो भूयोऽयं वामनोऽपरः।
यत्र वामनमास्थाय रूपं रूपविदां वरः॥ १

बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा।
विक्रमैस्त्रिभिराक्रम्य त्रैलोक्यमखिलं हृतम्॥ २

समुद्रवसना चोर्वी नानानगविभूषिता।
हृत्वा दत्ता सुरेन्द्राय शक्राय प्रभविष्णुना॥ ३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यह नृसिंहावतारकी कथा कही गयी। अब दूसरे वामन-अवतारका वर्णन किया जाता है। इस अवतारमें रूपवेत्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीहरिने वामनरूप धारण करके देवताओंका कार्य सिद्ध किया था॥ १॥ पूर्वकालमें सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णु (वामनरूप धारण करके) बलवान् बलिके यज्ञमें गये। वहाँ उन्होंने अपने तीन ही पगोंसे नापकर सारी त्रिलोकीका राज्य हर लिया॥ २॥ प्रभावशाली श्रीहरिने नाना प्रकारके पर्वतोंसे विभूषित तथा समुद्ररूपी वस्त्रसे आच्छादित यह पृथ्वी बलिसे लेकर देवराज इन्द्रको दे दी॥ ३॥

जनमेजय उवाच

अत्र मे संशयो ब्रह्मन्नत्र कौतूहलं महत्।
कथं नारायणो देवो वामनत्वमुपागतः॥ ४

यः पुराणे पुराणात्मा भूत्वा नारायणः प्रभुः।
पद्मनाभो महाबाहुर्लोकानां प्रकृतिर्ध्रुवः॥ ५

अनादिमध्यनिधनस्त्रैलोक्यादिः सनातनः।
देवदेवः सुराध्यक्षः कृष्णो लोकनमस्कृतः॥ ६

हव्यकव्यवहः श्रीमान् हव्यकव्यभुगव्ययः।
अदित्या देवमातुश्च कथं गर्भेऽभवत् प्रभुः।
स्रष्टा यो वासवस्यापि स कथं वासवानुजः॥ ७

प्रसूतो देवदेवेशो विष्णुत्वं प्राप्तवान् कथम्।
एतदाचक्ष्व मे विप्र प्रादुर्भावं महात्मनः॥ ८

वैशम्पायन उवाच

शृणु राजन् कथां दिव्यामर्चितामृषिपुङ्गवैः।
पुराणैः कविभिः प्रोक्तां ब्रह्मोक्तां ब्राह्मणेरिताम्॥ ९
मारीचस्य सुरेशस्य कश्यपस्य प्रजापतेः।
अदितिर्दितिर्द्वे भार्ये भगिन्यौ जनमेजय॥ १०
अदित्यां जज्ञिरे देवाः कश्यपस्य महात्मनः।
धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा॥ ११
इन्द्रो विवस्वान् पूषा च पर्जन्यो दशमस्तथा।
तथैकादशमस्त्वष्टा द्वादशो विष्णुरुच्यते॥ १२
दित्यां जातो हि बलवान् हिरण्यकशिपुः प्रभुः।
तस्यानुजश्च दैत्येन्द्रो हिरण्याक्षः प्रतापवान्॥ १३
हिरण्यकशिपोः पुत्राः पञ्च घोरपराक्रमाः।
प्रह्लादश्चैव संह्लादस्तथानुह्लाद एव च।
ह्रदश्चैव तु विक्रान्तः पञ्चमोऽनुह्रदस्तथा॥ १४
विरोचनश्च प्राह्लादिस्तस्य पुत्रो बलिः स्मृतः।
पुत्रपौत्रं च बलवत् तेषामक्षयमव्ययम्॥ १५
तेजस्विनां सुरारीणां दैत्येन्द्राणां मनस्विनाम्।
गणाः सुबहुशो राजन् देशे देशे सहस्रशः॥ १६

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! इस विषयमें मुझे संदेह है, साथ ही महान् कौतूहल भी है। भगवान् नारायणदेव वामन कैसे हो गये?॥ ४॥ जिन्हें पुराणमें पुराणात्मा (पुरातन पुरुष एवं अन्तर्यामी आत्मा) कहा गया है, जो सर्वसमर्थ होकर एकार्णवके जलमें नारायणके रूपमें शयन करते हैं, जिनकी नाभिसे ब्रह्माण्ड-कमल प्रकट हुआ, जो समस्त लोकोंकी प्रकृति (उपादानकारण) हैं, जिन्हें ध्रुव (नित्य) कहा गया है, जो आदि, मध्य और अन्तसे रहित हैं, तीनों लोकोंके आदिकारण हैं, सनातन, देवाधिदेव और सुराध्यक्ष हैं, सच्चिदानन्दस्वरूप और विश्ववन्दित हैं, हव्य और कव्यको वहन करनेवाले, श्रीसम्पन्न, यज्ञ और श्राद्धके भोक्ता तथा अविनाशी परमात्मा हैं, वे सर्वव्यापी भगवान् विष्णु देवमाता अदितिके गर्भमें कैसे आये? तथा जो इन्द्रके भी स्रष्टा हैं, वे इन्द्रके छोटे भाई कैसे हुए? यदि वे देवदेवेश्वर अदितिके गर्भसे उत्पन्न हो ही गये, तब उन वामनदेवको विष्णुत्व (व्यापकत्व) कैसे प्राप्त हुआ? मेरे इस प्रश्नका उत्तर देते हुए आप परमात्मा नारायणदेवके वामनावतारकी कथा मुझसे कहिये॥ ५—८॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! यह दिव्य कथा बड़े-बड़े ऋषियोंद्वारा पूजित है। पुराणों तथा त्रिकालदर्शी विद्वानोंद्वारा वर्णित है। वेदमन्त्रोंद्वारा प्रतिपादित तथा ब्राह्मणोंद्वारा कथित है। तुम ध्यान देकर इसे सुनो॥ ९॥ जनमेजय! मरीचिपुत्र देवेश्वर प्रजापति कश्यपकी भार्याओंमेंसे दो प्रधान थीं—अदिति और दिति। वे दोनों आपसमें सगी बहनें थीं॥ १०॥ अदितिके गर्भसे महात्मा कश्यपद्वारा देवता उत्पन्न हुए। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, दसवें पर्जन्य, ग्यारहवें त्वष्टा और बारहवें विष्णु कहे गये हैं॥ ११-१२॥ दितिके गर्भसे बलवान् एवं सामर्थ्यशाली हिरण्यकशिपु तथा उसका छोटा भाई प्रतापी दैत्यराज हिरण्याक्ष—ये दो पुत्र उत्पन्न हुए॥ १३॥ हिरण्यकशिपुके पाँच पुत्र हुए, जो भयंकर पराक्रमी थे, उनके नाम इस प्रकार हैं— प्रह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद, पराक्रमी ह्रद और पाँचवाँ अनुह्रद॥ १४॥ प्रह्लादका पुत्र विरोचन और विरोचनका पुत्र बलि हुआ। उन सबके पुत्र-पौत्र बड़े बलवान्, अक्षय और अविनाशी परम्परावाले थे॥ १५॥ राजन्! उन तेजस्वी और मनस्वी देवद्रोही दैत्यराजोंके सहस्रों समुदाय देश-देशमें विद्यमान हैं॥ १६॥

ते दृष्ट्वा नारसिंहेन हिरण्यकशिपुं हतम्।
दैत्या देववधार्थाय बलिमिन्द्रं प्रचक्रिरे॥ १७

दृष्ट्वा धर्मपरं नित्यं सत्यवाक्यं जितेन्द्रियम्।
शौर्याध्ययनसम्पन्नं सर्वज्ञानविशारदम्॥ १८

परावरगृहीतार्थं तत्त्वदर्शिनमव्ययम्।
तेजस्विनं सुररिपुं हिरण्यकशिपुं यथा॥ १९

अभिषेकेण दिव्येन बलिं वैरोचनिं तथा।
दैत्याधिपत्ये दितिजास्तदा सर्वेऽभ्यपूजयन्॥ २०

अभिषिक्तस्तदा दैत्यैर्बलिर्बलवतां वरः।
ब्रह्मणा चैव तुष्टेन हिरण्यकशिपोः पदे॥ २१

अभिषिक्तोऽसुरगणैर्बलिर्वैरोचनिस्तदा।
काञ्चनैः कलशैः स्फीतैः सर्वतीर्थाम्बुसंवृतैः॥ २२

जयशब्दं ततश्चक्रुरभिषिक्तस्य दानवाः।
बलेरतुलवीर्यस्य सिंहासनगतस्य वै॥ २३

कृत्वेन्द्रं दानवाः सर्वे बलिं बलवतां वरम्।
ततो विज्ञापयामासुः शिरोभिः पतिताः क्षितौ॥ २४

दैत्या ऊचुः

विदितं तव दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपोर्यथा।
त्रैलोक्यमासीदखिलं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ २५

पितामहं तु हत्वा ते सुरेश्वरनिषूदन।
हृतं तदैव त्रैलोक्यं शक्रश्चैवाभिषेचितः॥ २६

तत् पितामहराज्यं त्वं प्रत्याहर्तुमिहार्हसि।
अस्माभिः सहितो नाथ त्रैलोक्यमिदमव्ययम्॥ २७
प्रत्यानयस्व भद्रं ते राज्यं पैतामहं प्रभो॥ २८

असुरगणसहस्रसंवृतस्त्वं
जय दिवि देवगणान् महानुभावान्।
अमितबलपराक्रमोऽसि राज-
न्नतिशयसे स्वगुणैः पितामहं स्वम्॥ २९

भगवान् नृसिंहने हिरण्यकशिपुका वध कर दिया, यह देख दैत्योंने देवताओंका वध करनेके लिये राजा बलिको अपना इन्द्र बनाया॥ १७॥ बलि सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, शौर्य और स्वाध्यायसे सम्पन्न, सर्वज्ञानविशारद, परावरतत्त्वके ज्ञाता, तत्त्वदर्शी, अविनाशी, तेजस्वी तथा हिरण्यकशिपुके समान ही शक्तिशाली दैत्य थे, उनके इन गुणोंको देखकर उस समय समस्त दैत्योंने विरोचनकुमार बलिको दिव्य अभिषेकके द्वारा दैत्येन्द्रपदपर प्रतिष्ठित करके उनका पूजन किया॥ १८—२०॥ दैत्योंद्वारा बलवानोंमें श्रेष्ठ बलिका अभिषेक हो जानेपर संतुष्ट हुए ब्रह्माजीने भी असुरगणोंके साथ समस्त तीर्थोंके जलसे भरे हुए सोनेके बड़े-बड़े कलशोंद्वारा विरोचनकुमार बलिका हिरण्यकशिपुके राज्यपर अभिषेक कर दिया॥ २१-२२॥ अभिषिक्त होकर जब अनुपम पराक्रमी बलि सिंहासनपर आसीन हुए, तब समस्त दानवोंने उनकी जय-जयकार की॥ २३॥ बलवानोंमें श्रेष्ठ बलिको इन्द्र बनाकर समस्त दानवोंने पृथ्वीपर मस्तक टेककर उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार अपना अभिप्राय निवेदन किया॥ २४॥

दैत्य बोले—दैत्यराज! आपको यह ज्ञात ही होगा कि पहले चराचर प्राणियोंसहित यह सारा त्रिभुवन हिरण्यकशिपुके अधिकारमें था॥ २५॥ सुरेश्वरनिषूदन! देवताओंने आपके पितामहका वध करके तत्काल ही तीनों लोकोंका राज्य हर लिया और इन्द्रको उसपर अभिषिक्त कर दिया॥ २६॥ अतः नाथ! अब आप हमारे साथ चलकर अपने पितामहका राज्य—यह प्रवाहरूपसे सदा बना रहनेवाला त्रिभुवन वापस लौटाइये। प्रभो! आपका कल्याण हो, आप अपने पितामहके राज्यपर पुनः अधिकार कर लीजिये॥ २७-२८॥ राजन्! आप अनन्त बल-पराक्रमसे सम्पन्न हैं तथा अपने गुणोंद्वारा पितामह हिरण्यकशिपुसे भी बढ़ गये है; अतः सहस्रों असुरगणोंसे घिरे हुए आप देवलोकमें चलकर महानुभाव देवताओंपर विजय प्राप्त कीजिये॥ २९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामने बलेरभिषेके अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारके प्रसंगमें बलिका अभिषेकविषयक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४८॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

देवताओंके साथ युद्धके लिये दैत्योंकी तैयारी

वैशम्पायन उवाच

निशम्य तेषां वचनं महामति-
र्बलिस्तदा प्रीतमना महाबलः।
आज्ञापयामास स दैत्यकोटिं
त्रैलोक्यमद्यैव जयाम सर्वम्॥ १

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा बलेर्वैरोचनस्य तु।
उद्योगं परमं चक्रुर्दानवा युद्धदुर्मदाः॥ २

महापद्मो निकुम्भश्च कुम्भकर्णश्च वीर्यवान्।
काञ्चनाक्षः कपिस्कन्धो मैनाकः क्षितिकम्पनः॥ ३

शितकेशोर्ध्ववक्त्रश्च वज्रनाभः शिखी जटी।
सहस्रबाहुर्विकटो व्याघ्राक्षः प्रियदर्शनः॥ ४

एकाक्ष एकपान्मुण्डो विद्युदक्षश्चतुर्भुजः।
गजोदरो गजशिरा गजस्कन्धो गजेक्षणः॥ ५

अष्टदंष्ट्रश्चतुर्वक्त्रो मेघनादी जलंधरः।
करालो ज्वालजिह्वास्यः शताङ्गः शतलोचनः॥ ६

सहस्रपादः सुमुखः कृष्णश्चैव महासुरः।
रणोत्कटो दानपतिः शैलकम्पी कुलाकुलिः॥ ७

समुद्रो रभसश्चण्डो धूम्रश्चैव महासुरः।
गोत्रजो गोक्षुरो रौद्रो गोदन्तः स्वस्तिको ध्रुवः॥ ८

मांसलो मांसभक्षश्च वेगवान् केतुमाञ्छिबिः।
पङ्कदिग्धशरीरश्च बृहत्कीर्तिर्महाहनुः॥ ९

समप्रभो विकुम्भाण्डो विरूपाक्षो महोदरः।
श्वेतशीर्षश्चन्द्रहनुश्चन्द्रहा चन्द्रतापनः॥ १०

विक्षरो दीर्घबाहुश्च मद्यपो मारुताशनः।
तालजङ्घो महाभागः शरभः शलभः क्रथः॥ ११

समुद्रमथनो नादी विततश्च महाबलः।
प्रलम्बो नरको व्याली धेनुकः काललोचनः॥ १२

वरिष्ठश्च गरिष्ठश्च भूतलोमा तथा विधुः।
दुष्प्रसादः किरीटी च सूचीवक्त्रो महासुरः॥ १३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उन दैत्योंकी बात सुनकर महाबली एवं महाबुद्धिमान् बलि मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने करोड़ों दैत्योंको आज्ञा दी कि सारी त्रिलोकीपर विजय प्राप्त करें॥ १॥ विरोचनकुमार बलिका वह उत्साहवर्धक वचन सुनकर रणदुर्मद दानवोंने युद्धके लिये बड़ी भारी तैयारी की॥ २॥ महापद्म, निकुम्भ, पराक्रमी कुम्भकर्ण, काञ्चनाक्ष, कपिस्कन्ध, मैनाक, क्षितिकम्पन, शितकेश, ऊर्ध्ववक्त्र, वज्रनाभ, शिखी, जटी, सहस्रबाहु, विकट, व्याघ्राक्ष, प्रियदर्शन, एकाक्ष, एकपाद, मुण्ड, विद्युदक्ष, चतुर्भुज, गजोदर, गजशिरा, गजस्कन्ध, गजेक्षण, अष्टदंष्ट्र, चतुर्वक्त्र, मेघनादी, जलंधर, कराल, ज्वालजिह्वास्य, शताङ्ग, शतलोचन, सहस्रपाद, सुमुख, महासुर कृष्ण, रणोत्कट, दानपति, शैलकम्पी, कुलाकुलि, समुद्र, रभस, चण्ड, महासुर धूम्र, गोत्रज, गोक्षुर, रौद्र, गोदन्त, स्वस्तिक, ध्रुव, मांसल, मांसभक्ष, वेगवान्, केतुमान्, शिबि, पङ्कदिग्धशरीर, बृहत्कीर्ति, महाहनु, समप्रभ, विकुम्भाण्ड, विरूपाक्ष, महोदर, श्वेतशीर्ष, चन्द्रहनु, चन्द्रहा, चन्द्रतापन, विक्षर, दीर्घबाहु, मद्यप, मारुताशन, तालजङ्घ, महाभाग शरभ, शलभ, क्रथ, समुद्रमथन, नादी, महाबली वितत, प्रलम्ब, नरक, व्याली, धेनुक, काललोचन, वरिष्ठ, गरिष्ठ, भूतलोमा, विधु, दुष्प्रसाद, किरीटी, महासुर सूचीवक्त्र,

सुबाहुः कञ्जबाहुश्च करणः कलशोदरः।
सोमपो देवयाजी च प्रवरो वीरमर्दनः॥ १४

सुपथः खण्डमुक्तिश्च शिखिनेत्रः शिखिध्वजः।
यथास्मृति मया प्रोक्ता मरीचेः कीर्तिवर्धनाः॥ १५

एते चान्ये च बहवो नानाभूषणभूषिताः।
रथौघैर्बहुसाहस्रैर्ययुर्योद्धुमरिंदमाः॥ १६

दिव्याम्बरधरा दैत्या दिव्यमाल्यानुलेपनाः।
दिव्यैश्च कवचैर्नद्धा दिव्यैश्चैवोच्छ्रितैर्ध्वजैः॥ १७

दिव्यायुधधरा दैत्या गर्जमाना यथाम्बुदाः।
बृहद्भी रथघोषैश्च चालयन्तो वसुंधराम्॥ १८

महाबला दिव्यबलास्त्रधारिणो
भुजङ्गभोगप्रतिमैर्महाभुजैः।
सुदुर्जया दैत्यवृषाः सुरारयो
दितिप्रिया लोहितलोहितेक्षणाः॥ १९

ते जग्मुरर्कज्वलनेन्द्रवीर्या
महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगाः।
विवृत्तदंष्ट्रा हरिधूम्रकेशा
विवर्धमानाः शरदीव मेघाः॥ २०

सहस्रबाहुर्बाणश्च बलेः पुत्रो महाबलः।
रथातिरथकोट्या वै संनह्यत महाबलः॥ २१

सर्वे मायाधरा दैत्याः सर्वे दिव्यास्त्रयोधिनः।
सर्वे मदबलोत्सिक्ताः सर्वे लब्धवराः पुरा॥ २२

सर्वे काञ्चनशैलाभाः पीतकौशेयवाससः।
किरीटोष्णीषमुकुटा दिव्यभूषणभूषिताः॥ २३

हिरण्यकवचाः सर्वे हिरण्यध्वजकेतवः।
स्यन्दनस्था व्यराजन्त शारदा इव खे ग्रहाः॥ २४

तापनीयैर्वरैर्निष्कैरनलज्वलितप्रभैः।
हेमपर्वतशृङ्गस्थाः पुष्पिता इव किंशुकाः॥ २५

सुबाहु, कञ्जबाहु, करण, कलशोदर, सोमप, देवयाजी, प्रवर, वीरमर्दन, सुपथ, खण्डमुक्ति, शिखिनेत्र और शिखिध्वज—ये मरीचिके कुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले दैत्य अपनी स्मरणशक्तिके अनुसार मैंने बतलाये हैं। ये तथा और भी बहुत-से शत्रुदमन दैत्य वीर नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हो कई सहस्र रथ-समूहोंके साथ युद्धके लिये प्रस्थित हुए॥ ३—१६॥ समस्त दैत्योंने दिव्य वस्त्र धारण किये थे। वे दिव्य माला और अनुलेपनसे विभूषित थे। उनके अङ्गोंमें दिव्य कवच बँधे हुए थे। उनके दिव्य और ऊँचे ध्वज सदा फहराते रहते थे॥ १७॥ सभी दैत्य दिव्य आयुध धारण किये हुए थे, सभी मेघोंके समान गर्जना करते थे और रथोंके गम्भीर घोषोंसे पृथ्वीको कम्पित करते हुए चलते थे॥ १८॥ उनमें महान् बल था, वे दिव्य शक्तिसे सम्पन्न अस्त्र धारण करते थे और सर्पोंके शरीरकी भाँति मोटी एवं विशाल भुजाओंके द्वारा अत्यन्त दुर्जय थे। देवताओंसे शत्रुता रखनेवाले वे दैत्यशिरोमणि वीर दितिके लाड़ले थे, उन सबके नेत्र लाल-लाल हो रहे थे॥ १९॥ वे सूर्य, अग्नि और इन्द्रके समान पराक्रमी थे। इन्द्रके वज्र और अशनिके समान उनका वेग था। वे अपनी दाढ़ें सदा खोले रखते थे। उनके केश हरित और धूम्रवर्णके थे। वे शरत्कालके मेघोंके समान निरन्तर बढ़ रहे थे॥ २०॥ बलिका महाबली पुत्र सहस्रबाहु बाणासुर करोड़ों रथियों और अतिरथियोंकी विशाल सेना साथ ले युद्धके लिये कवच बाँधकर तैयार हो गया॥ २१॥ सभी दैत्य माया धारण करनेवाले थे। सभी दिव्यास्त्रोंद्वारा युद्ध करनेमें समर्थ थे। सभी बलके मदसे उन्मत्त थे तथा सबने पहले देवताओंसे वरदान प्राप्त किया था॥ २२॥ सबके शरीर सोनेके पर्वतके समान थे। सबने रेशमी पीताम्बर धारण कर रखे थे। सबके मस्तकपर किरीट, पगड़ी एवं मुकुट शोभा देते थे तथा सभी दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थे॥ २३॥ सबके कवच तथा ध्वजा-पताकाएँ स्वर्णमयी थीं। रथोंपर बैठकर वे दैत्य वीर शरत्कालके आकाशमें प्रकाशित होनेवाले ग्रहोंके समान सुशोभित होते थे॥ २४॥ उनके गलेमें सोनेके बने हुए सुन्दर पदक अग्निकी ज्वालाके समान प्रकाशित होते थे। उनसे भूषित हुए वे रथी वीर स्वर्णमय पर्वतके शिखरपर खिले हुए पलाश-वृक्षोंके समान शोभा पाते थे॥ २५॥

तेषां मध्यगतो बाणः प्रावृषीवोत्थितो घनः।
स्थितः शक्तिगदापाणिस्त्रिनल्वप्रतिमे रथे॥ २६

विचित्राश्वध्वजयुगे चित्रभक्तिविराजिते।
गदापरिघसम्पूर्णे हेमजालविभूषिते॥ २७

अन्वीयमानो दितिजैर्वालखिल्यैरिवांशुमान्।
नानाप्रहरणैर्घोरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैरिवोरगैः॥ २८

पञ्च तस्य महावीर्या दानवा युद्धदुर्मदाः।
ररक्षू रथमव्यग्रा व्यादितास्या भयावहाः॥ २९

सुबाहुर्मेघनादश्च भीमगर्भश्च वीर्यवान्।
तथा कनकमूर्धा च वेगवान् केतुमानिति॥ ३०

कनकरजतभक्तिचित्रपार्श्वे
पतगपतिप्रतिमे रथे स्थितोऽभूत्।
जलदनिनदतुल्यनेमिघोषे
सुरगणसैन्यवधाय दानवेन्द्रः॥ ३१

दनायुषायाः पुत्रस्तु बलो नाम महासुरः।
वृतः शतसहस्रेण रथानां भीमवर्चसाम्॥ ३२

युक्तमृक्षसहस्रेण रथमारुह्य वीर्यवान्।
नीलायसमयं घोरं वायसाङ्कं सुदुर्जयम्॥ ३३

नीलाम्बरधरः श्रीमान् वैदूर्याचलसंनिभः।
महता रथवेगेन प्रययौ दानवस्तदा॥ ३४

तत्रैकार्णवसंकाशे सैन्यमध्ये व्यराजत।
प्रभातसमये श्रीमान् समुद्रस्थ इवांशुमान्॥ ३५

सुतप्तजाम्बूनदतुल्यवर्चसा
निशाकराकारतडिद्गुणाकरः।
किरीटमुख्येन विभाति शोभिना
यथा गिरिः शृङ्गवरेण भास्वता॥ ३६

उनके बीच बाणासुर वर्षा-ऋतुमें घिरी हुई मेघोंकी घटाके समान खड़ा हुआ था। वह बारह हाथ लम्बे रथपर बैठा था और उसके हाथोंमें शक्ति एवं गदा शोभा पाती थी॥ २६॥ उसके रथमें जो घोड़े, ध्वज एवं जुए थे, वे सब-के-सब विचित्र शोभा धारण करते थे। वह रथ विभिन्न प्रकारके चित्रोंसे सुशोभित था, उसमें गदा और परिघ आदि अस्त्र भरे हुए थे तथा वह सोनेकी जालीसे विभूषित था॥ २७॥ जैसे सूर्यदेवके पीछे बालखिल्य नामक ऋषि चलते हैं, उसी प्रकार सब दैत्य बाणासुरके पीछे-पीछे चल रहे थे। वे दैत्य नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न एवं भयंकर थे तथा तीखी दाढ़वाले सर्पोंके समान जान पड़ते थे॥ २८॥ पाँच महापराक्रमी रणदुर्मद दानव स्वस्थचित्त होकर बाणासुरके रथकी रक्षा करते थे। वे पाँचों दानव मुँह बाये हुए होनेके कारण बड़े भयावह प्रतीत होते थे॥ २९॥ उन पाँचोंके नाम इस प्रकार थे—सुबाहु, मेघनाद, पराक्रमी भीमगर्भ, कनकमूर्धा तथा वेगशाली केतुमान्॥ ३०॥ देवसमुदायकी सेनाका वध करनेके लिये दानवराज बलि जिस रथपर बैठे थे, वह पक्षिराज गरुडके समान प्रतीत होता था। उसके पार्श्वभागोंमें विभागपूर्वक सोने और चाँदीके चित्र लगे हुए थे तथा उसके पहियोंकी घरघराहट मेघोंकी गम्भीर गर्जनाके समान सुनायी देती थी॥ ३१॥ दनायुषाका पुत्र बल नामक महान् असुर भयंकर तेजवाले एक लाख रथोंसे घिरा हुआ था॥ ३२॥ वह पराक्रमी दैत्य एक सहस्र रीछोंसे जुते हुए रथपर आरूढ़ होकर युद्धके लिये निकला था। काले लोहेका बना हुआ उसका वह भयंकर रथ अत्यन्त दुर्जय था। उसपर कौएके चिह्नसे युक्त ध्वजा फहरा रही थी॥ ३३॥ वह कान्तिमान् दानव नील वस्त्र धारण करके वैदूर्यमणिके पर्वत-सा प्रतीत होता था। उसके रथका वेग महान् था और उसीके द्वारा वह युद्धके लिये आगे बढ़ रहा था॥ ३४॥ उसकी सेनाका मध्यभाग एकार्णवके समान जान पड़ता था, उसमें वह कान्तिमान् दानव प्रभातकालमें समुद्रके मध्य-भागमें स्थित सूर्यदेवके समान शोभा पा रहा था॥ ३५॥ उसका श्रेष्ठ किरीट तपाये हुए जाम्बूनद नामक सुवर्णके समान तेजस्वी था, वह स्वयं चन्द्रमाके समान आकार तथा विद्युत्के समान प्रकाश आदि गुणोंसे सम्पन्न था। उस शोभाशाली किरीटसे उसकी वैसी ही शोभा हो रही थी जैसे कोई पर्वत अपने प्रकाशमान सुन्दर शिखरसे सुशोभित होता है॥ ३६॥

षष्टी रथसहस्राणि नमुचेरसुरस्य वै।
खरयुक्तानि सर्वाणि मेघतुल्यरवाणि च॥ ३७

नानाप्रहरणाः सर्वे सर्वे ते चित्रयोधिनः।
महाभ्रघनसंकाशा वेगवन्तो महाबलाः॥ ३८

रथो व्याघ्रसहस्रेण युक्तः परमवेगवान्।
नमुचेरसुरेन्द्रस्य सर्वरत्नविभूषितः॥ ३९

शार्दूलचिह्नः शुशुभे तस्य केतुर्हिरण्मयः।
रथमध्येऽसुरेशस्य मध्यंदिनरविर्यथा॥ ४०

स भीमवेगश्च महाबलश्च
प्रगृह्य चापं हिमवानिव स्थितः।
नीलाम्बरः काञ्चनपट्टनद्धो
दिशागजो यद्वदुपेतकक्षः॥ ४१

किङ्किणीजालनिर्घोषं तपनीयविभूषितम्।
सपताकध्वजोपेतं ससंध्यमिव तोयदम्॥ ४२

चक्रैश्चतुर्भिः संयुक्तमष्टनल्वायतान्तरम्।
हेमजालाकुलं दीप्तं कालचक्रमिवोदितम्॥ ४३

नानायुधधरं घोरं व्याघ्रचर्मपरिष्कृतम्।
ईहामृगगणाकीर्णं चित्रभक्तिविराजितम्॥ ४४

तूणीरशरसम्पूर्णं शक्तितोमरसंकुलम्।
गदामुद्गरसम्बाधं चापरत्नविभूषितम्॥ ४५

युक्तमृक्षसहस्रेण लम्बकेसरवर्चसा।
राजतेन विकीर्णेन शोभितं सिंहकेतुना॥ ४६

स तेन शुशुभे दैत्यो मयो मायाविसर्पिणा।
रथरत्ने स्थितः श्रीमानुदयस्थ इवांशुमान्॥ ४७

नमुचि नामक असुरके अधिकारमें साठ हजार रथ थे, जिनमें गदहे जोते जाते थे। वे सब-के-सब मेघके तुल्य गम्भीर घोष करनेवाले थे॥ ३७॥ वे सभी रथ और रथी नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त तथा विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले थे। वे देखनेमें मेघोंकी भारी घटाके समान जान पड़ते थे। उनके वेग और बल महान् थे॥ ३८॥ असुरराज नमुचिका रथ अत्यन्त वेगशाली था। उसमें एक सहस्र व्याघ्र जुते हुए थे। वह सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित था॥ ३९॥ उसकी ध्वजामें व्याघ्रका चिह्न बना हुआ था, इससे उस स्वर्णमय ध्वजकी बड़ी शोभा हो रही थी। असुरेश्वर नमुचिके रथमें वह ध्वज मध्याह्नकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित होता था॥ ४०॥ नमुचिका वेग बड़ा भयंकर था। वह नीलाम्बरधारी महाबली दैत्य स्वर्णमय कवच बाँधे और हाथमें धनुष लिये हिमवान्‌के समान अविचलभावसे खड़ा था, मानो कोई दिग्गज रस्सोंसे कसा-कसाया खड़ा हो॥ ४१॥ मयासुरका रथ स्वर्णसे विभूषित था। उसमें छोटी-छोटी घण्टिकाओंसे युक्त झालरें लगी थीं, जिनसे मधुर ध्वनि होती रहती थी। ध्वजा-पताकाओंसे युक्त वह रथ संध्याकालके मेघकी भाँति सुशोभित होता था॥ ४२॥ उसमें चार पहिये लगे थे। उसके भीतरी भागकी लम्बाई-चौड़ाई बत्तीस हाथकी थी। उस रथपर सोनेकी जाली लगी हुई थी। वह दीप्तिमान् रथ उदित हुए कालचक्रके समान शोभा पाता था॥ ४३॥ नाना प्रकारके आयुधोंसे युक्त वह भयंकर रथ व्याघ्रचर्मसे मँढ़ा हुआ था। उसमें क्रीड़ाके लिये कृत्रिम मृगगण सजाकर रखे गये थे। विभिन्न प्रकारके चित्र उस रथकी शोभा बढ़ाते थे॥ ४४॥ वह बाणों और तरकसोंसे भरा हुआ था, शक्तियों और तोमरोंसे व्याप्त था, गदाओं और मुद्गरोंसे उसके स्थान संकीर्ण हो रहे थे तथा बहुत-से धनुष-रत्न उसे विभूषित किये हुए थे॥ ४५॥ लम्बे केसरोंकी कान्तिसे युक्त एक सहस्र रीछ उस रथमें जुते हुए थे। सिंहके चिह्नसे युक्त एवं फहराते हुए रजतमय ध्वजसे उस रथकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ ४६॥ मायाको फैलानेवाले उस रथके द्वारा उस रत्नस्वरूप रथमें बैठा हुआ मय दैत्य उदयाचलके शिखरपर स्थित हुए तेजस्वी सूर्यदेवके समान सुशोभित हो रहा था॥ ४७॥

विमलरजतबिन्दुशोभिताङ्गं
मणिकनकोज्ज्वलचारुभक्तिचित्रम्।
अयुतशतसहस्रमूर्जितानां
मयमनुयाति तदा महारथानाम्॥ ४८

मयासुरका प्रत्येक अङ्ग निर्मल रजतबिन्दुओंसे सुशोभित था। उसमें मणि और स्वर्णके योगसे उज्ज्वल एवं मनोहर चित्रभङ्गीकी रचना की गयी थी। उस समय एक अरब तेजस्वी महारथी मय दानवके पीछे-पीछे चल रहे थे॥ ४८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे मयस्य युद्धाभिगमने एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारके प्रसङ्गमें मयासुरका युद्धमें प्रस्थानविषयक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४९॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पुलोमा, हयग्रीव, प्रह्लाद और शम्बरासुरका युद्धके लिये उद्योग

वैशम्पायन उवाच

पुलोमा तु महादैत्यस्तिमिराकारगह्वरम्।
आरुरोहायसं घोरं रथं पररथारुजम्॥ १
उत्कीर्णपर्वताकारं लोहजालान्तरान्तरम्।
नेमिघोषेण महता क्षुभ्यन्तमिव सागरम्॥ २
गदापरिघनिस्त्रिंशैः सतोमरपरश्वधैः।
शक्तिमुद्गरसंकीर्णं सतोयमिव तोयदम्॥ ३
रथमुष्ट्रसहस्रेण संयुक्तं वायुवेगिना।
पुलोमाऽऽरुह्य युद्धायं प्रस्थितो युद्धदुर्मदः॥ ४
षष्टी रथसहस्राणि पुलोमानं महारथम्।
अन्वयुः सूर्यवर्णानि प्रदीप्तानीव तेजसा॥ ५
खड्गध्वजेन महता तप्तकाञ्चनवर्चसा।
भ्राजते रथमध्यस्थः पर्वतस्थ इवांशुमान्॥ ६
सुचारुचामीकरपट्टनद्धां
महागदां कालनिभां महाबलः।
प्रगृह्य बभ्राज स शत्रुमध्ये
कार्ष्णायसीं केतुरिवास्थितोर्व्याम्॥ ७
हयग्रीवस्तु बलवान् हयग्रीवैर्महासुरैः।
वृतः शतसहस्रेण रथानां रथिसत्तमः॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पुलोमा नामक महादैत्य घनीभूत अंधकारके समान रंगवाले लोहेके बने हुए भयंकर रथपर आरूढ़ हुआ। वह रथ शत्रुओंके रथोंको नष्ट करनेवाला था॥ १॥ खण्डित होकर पृथ्वीपर गिरे हुए पर्वतके समान उसका विशाल आकार था, उसका भीतरी भाग लोहेकी जालसे आवृत था तथा अपने पहियोंके महान् घोषसे वह समुद्रमें भी क्षोभ-सा उत्पन्न कर देता था॥ २॥ गदा, परिघ, खड्ग, तोमर, फरसे, शक्ति और मुद्गर आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे भरा होनेके कारण वह रथ सजल जलधरके समान प्रतीत होता था॥ ३॥ उसमें वायुके समान वेगशाली एक सहस्र ऊँट जुते हुए थे, रणदुर्मद पुलोमा उसी रथपर आरूढ़ हो युद्धके लिये प्रस्थित हुआ॥ ४॥ अपने तेजसे सूर्यके समान उद्भासित होनेवाले साठ हजार रथ महारथी पुलोमाके पीछे-पीछे चले॥ ५॥ पुलोमाका रथ तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिवाले खड्गचिह्नित विशाल ध्वजसे सुशोभित होता था, रथके भीतर बैठा हुआ पुलोमा उदयगिरिपर विराजमान अंशुमाली सूर्यके समान जान पड़ता था॥ ६॥ वह महाबली योद्धा वहाँ शत्रुओंके बीच काले लोहेकी बनी हुई कालसदृश विशाल गदा हाथमें लेकर पृथ्वीपर खड़े किये गये ध्वजके समान शोभा पाता था, उसकी उस गदापर सुन्दर सुवर्णके पत्र मँढ़े हुए थे॥ ७॥ रथियोंमें श्रेष्ठ बलवान् हयग्रीव घोड़ेके समान गर्दनवाले बड़े-बड़े असुरोंके साथ एक लाख रथियोंसे घिरा हुआ युद्धके लिये आया॥ ८॥

धराधरनिभाकारं सपत्नानीकमर्दनम्।
स्यन्दनं भीममास्थाय युद्धायाभिमुखः स्थितः॥ ९

श्वेतशैलप्रतीकाशः श्वेतकुण्डलभूषणः।
शुशुभे रथमध्यस्थः श्वेतशृङ्ग इवाचलः॥ १०

महता सप्तशीर्षेण शोभितो नागकेतुना।
वैदूर्यमणिचित्रेण प्रवालाङ्कुरशोभिना॥ ११

अमितबलपराक्रमाकृतीनां
वररथिनामनुजग्मुरूर्जितानाम्।
असुरगणशतानि गच्छमानं
त्रिदशगणा इव वासवं प्रयान्तम्॥ १२

प्रह्लादस्तु महाप्राज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः।
सर्वमायाधरः श्रीमान् यष्टा क्रतुशतैरपि॥ १३

समनह्यत तेजस्वी पावकार्चिःसमप्रभः।
रथानीकेन महता दुर्दिनाम्भोदनादिना॥ १४

शूरेणामितवीर्येण हेमकुण्डलधारिणा।
वृतो दैत्यसहस्रेण देवैरिव पितामहः॥ १५

स्ववीर्यादग्रणीर्दृप्तो मत्तवारणविक्रमः।
सुरसैन्यस्य सर्वस्य प्रतिक्षोभ इव स्थितः॥ १६

स्ववीर्येणोदधेस्तुल्यः प्रदीप्ताग्निरिव ज्वलन्।
तेजसा भास्कराकारः क्षमया पृथिवीसमः॥ १७

तालध्वजेन दीप्तेन रथेनातिविराजता।
तं यान्तमनुयान्ति स्म दानवाः शतसंघशः॥ १८

सर्वे हिरण्यकवचाः सर्वे रत्नविभूषिताः।
दिव्याङ्गरागाभरणाः समरेष्वनिवर्तिनः॥ १९

जाम्बूनदविचित्राङ्गा वैदूर्यविकृताङ्गदाः।
दिव्यस्यन्दनमध्यस्थाः खस्था इव महाग्रहाः॥ २०

उसके रथका आकार मेघके समान भयंकर था, वह शत्रुओंकी सेनाका मर्दन करनेवाला था, उसीपर आरूढ़ होकर वह युद्धके लिये उद्यत होकर सामने खड़ा था॥ ९॥ वह श्वेत पर्वतके समान कान्तिमान् और श्वेत कुण्डलोंसे विभूषित हो रथके भीतर बैठकर श्वेत शिखरवाले शैलके समान शोभा पाता था॥ १०॥ सात फनवाले सर्पसे चिह्नित विशाल ध्वज, जो वैदूर्यमणिसे जटित होनेके कारण विचित्र जान पड़ता था तथा नये-नये पल्लवोंके अंकुरोंसे अलंकृत था, हयग्रीवके रथकी शोभा बढ़ा रहा था॥ ११॥ जैसे यात्रा करते हुए इन्द्रके पीछे देवताओंके समुदाय चलते हैं, उसी प्रकार युद्धके लिये जाते हुए हयग्रीवके पीछे अनन्त बल-पराक्रमसे सम्पन्न शरीरवाले ओजस्वी श्रेष्ठ रथी असुर सैकड़ोंकी संख्यामें चले॥ १२॥ महाज्ञानी तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंमें निपुण विद्वान् श्रीमान् प्रह्लाद सम्पूर्ण मायाओंको धारण करनेवाले थे, वे सैकड़ों यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुके थे॥ १३॥ उनकी कान्ति अग्निकी ज्वालाके समान प्रकाशित होती थी, वे बड़े तेजस्वी थे, वे भी वर्षाकालके मेघकी भाँति गम्भीर घोष करनेवाले विशाल रथ-सेनाको साथ लेकर युद्धके लिये तैयार हो गये॥ १४॥ देवताओंसे घिरे हुए ब्रह्माजीके समान प्रह्लाद सोनेके कुण्डल धारण करनेवाले सहस्रों अमित पराक्रमी शूरवीर दैत्योंसे घिरे हुए थे॥ १५॥ अपने पराक्रमसे वे सबके अगुआ थे। उन्हें अपने बलपर गर्व था। वे मतवाले हाथीके समान पराक्रम प्रकट करनेवाले थे और समस्त देवसेनाका सामना करनेके लिये मूर्तिमान् क्षोभके समान खड़े थे॥ १६॥ अपने अगाध बलसे वे समुद्रके समान थे, कान्तिसे प्रज्वलित अग्निकी भाँति प्रकाशित हो रहे थे, तेजसे सूर्यके तुल्य और क्षमासे पृथ्वीके समान जान पड़ते थे॥ १७॥ दीप्तिमान् तालध्वजसे अत्यन्त सुशोभित होनेवाले रथके द्वारा युद्धकी ओर जाते हुए प्रह्लादके पीछे सैकड़ों दानवोंके समूह चलते थे॥ १८॥ वे सब-के-सब सुवर्णमय कवचसे युक्त तथा रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित थे, उनके अङ्गराग और आभूषण दिव्य थे तथा वे युद्धसे कभी पीछे नहीं हटते थे॥ १९॥ जाम्बूनद नामक सुवर्णसे उनके अङ्गोंकी विचित्र शोभा होती थी। वे वैदूर्यमणिके बने हुए बाजूबंद धारण करते थे तथा दिव्य रथके अंदर बैठकर आकाशमें स्थित हुए महान् ग्रहोंके समान सुशोभित होते थे॥ २०॥

आचारवांश्चैव जितेन्द्रियश्च
धर्मे रतः सत्यपरोऽनसूयः।
स्थितोऽग्नितोयाम्बुदवायुकल्पो
रूपी यथा सर्वहरः कृतान्तः॥ २१

प्रह्लाद आचारवान्, जितेन्द्रिय, धर्मतत्पर, सत्यपरायण तथा दोषदृष्टिसे रहित थे। वे अग्नि, जल, मेघ और वायुके समान शक्तिशाली थे तथा मूर्तिमान् सर्वसंहारकारी कालके समान वहाँ युद्धके लिये खड़े थे॥ २१॥

शम्बरस्तु महामायो रथयूथपयूथपः।
आरुरोह रथं दिव्यं सर्वयुद्धविशारदः॥ २२

महामायावी शम्बर रथ-यूथपतियोंका भी यूथपति था, सब प्रकारके युद्धकी कलामें कुशल था। वह भी दिव्य रथपर आरूढ़ हुआ॥ २२॥

लोहिताक्षो महाबाहुः प्रतप्तोत्तमकुण्डलः।
जीमूतघनसंकाशो दिव्यस्रगनुलेपनः॥ २३

उसके नेत्र लाल थे, भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं, कानोंमें तपाये हुए सोनेके उत्तम कुण्डल शोभा पाते थे, उसकी कान्ति मेघके समान श्याम थी, वह दिव्य हार और दिव्य अनुलेपन धारण करता था॥ २३॥

विद्युज्ज्योतिर्निकाशेन मुकुटेनार्कवर्चसा।
मणिरत्नविचित्रेण वैदूर्यवरशोभिना॥ २४

तपनीयेन महता कवचेन विराजता।
संध्याभ्रेणेव सञ्छन्नः श्रीमानस्तशिलोच्चयः॥ २५

उसके मस्तकपर विद्युत्‌की ज्योति तथा सूर्यके तेजके समान प्रकाशमान मुकुट था, उससे तथा मणि और रत्नोंसे जटित सुन्दर वैदूर्यमणिसे सुशोभित, सुवर्णनिर्मित शोभाशाली विशाल कवचसे ढका हुआ शम्बरासुर संध्याकालके लाल बादलोंसे आच्छादित श्रीमान् अस्ताचलके समान जान पड़ता था॥ २४-२५॥

त्रिंशच्छतसहस्राणि दैत्यानां चित्रयोधिनाम्।
बलिनां कालकल्पानामन्वयुः शम्बरं तदा॥ २६

उस समय विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले तथा कालके समान बलवान् तीस लाख दैत्य शम्बरासुरके पीछे-पीछे चलते थे॥ २६॥

युक्तं हयसहस्रेण शुक्लवर्णेन राजता।
क्रौञ्चध्वजेन दीप्तेन रथेनाहवशोभिना॥ २७

उसके रथमें श्वेत रंगके एक सहस्र सुन्दर घोड़े जुते हुए थे। युद्धमें शोभा पानेवाला वह रथ क्रौञ्चके चिह्नसे युक्त विशाल ध्वजसे सुशोभित था। (ऐसे रथके द्वारा वह युद्धके लिये आया था)॥ २७॥

व्यासक्तवैदूर्यसुवर्णजालं
नानाविहङ्गैरपि भक्तिचित्रम्।
विद्युत्प्रभं भीमरवं सुवेगं
रथं समारुह्य रराज दैत्यः॥ २८

उस रथमें वैदूर्यमणि और सुवर्णकी जाली लगी हुई थी, नाना प्रकारके पक्षियोंके पृथक्-पृथक् चित्र बने हुए थे, वह रथ विद्युत्‌के समान कान्तिमान् था, उससे भयंकर शब्द होता रहता था। उस उत्तम वेगशाली रथपर आरूढ़ हो वह दैत्य बड़ी शोभा पा रहा था॥ २८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे शम्बरादिदैत्यसन्नहने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारके प्रसङ्गमें शम्बर आदि दैत्योंकी युद्धकी तैयारीविषयक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५०॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अनुह्लाद, विरोचन, कुजम्भ, असिलोमा, वृत्र, एकचक्र, वृत्रभ्राता, राहु, विप्रचित्ति, केशी, वृषपर्वा तथा बलिका युद्धके लिये तैयार होकर आगे बढ़ना

वैशम्पायन उवाच

अनुह्लादश्च तत्रैव दैत्यः परमदुर्जयः।
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रययौ युद्धलालसः॥ १

चतुश्चक्रेण यानेन त्रिनल्वप्रतिमेन तु।
युक्तेनाश्वैर्महावीर्यैः सिंहवक्त्रैरजिह्मगैः॥ २

भीमगम्भीरनादेन नेमिघोषेण वीर्यवान्।
चालयन् वसुधां सर्वां सशैलवनकाननाम्॥ ३

विनर्दमाना दैत्यौघा अनुह्लादं ययुः शुभाः।
शतं शतसहस्राणां रथानां हेममालिनाम्॥ ४

परिघैर्भिन्दिपालैश्च भल्लैः पाशैः परश्वधैः।
विविधायुधहस्तास्ते शूलमुद्गरपाणयः॥ ५

सुवर्णजालनिर्मुक्तैर्वज्रैश्च समलंकृताः।
रथैश्चित्रैश्च कवचैः सज्जमाना महासुराः॥ ६

तदा विशालोच्छ्रितशैलरूपे
बभौ रथे काञ्चनचित्रिताङ्गे।
दैत्याधिपः सत्त्वबलानुरूपे
समास्थितस्त्वप्रतिमे सुरूपे॥ ७

विरोचनश्च बलवान् वैश्वानरसमद्युतिः।
महता रथवंशेन सर्वास्त्रकुशलः शुचिः॥ ८

व्यूहानां विनियोगज्ञो ज्ञानविज्ञानतत्त्ववित्।
बलेः पितासुरवरः सुराणामिव वासवः॥ ९

सर्वायुधसमोपेतं किङ्किणीजालभूषितम्।
युक्तानां वाजिमुख्यानां सहस्रेणाशुगामिनाम्॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! हिरण्यकशिपुका पुत्र अनुह्लाद भी, जो परम दुर्जय दैत्य था, देवताओंके साथ युद्धकी लालसा रखकर वहीं गया॥ १॥ जिस रथसे वह गया था उसमें चार पहिये लगे थे, उसकी ऊँचाई बारह हाथकी थी, उसमें सिंहके समान मुखवाले और सीधे चलनेवाले महाबलशाली अश्व जुते हुए थे॥ २॥ उसके पहियोंकी घरघराहट बड़ा गम्भीर और भयंकर शब्द प्रकट करती थी। पराक्रमी अनुह्लाद उस रथके द्वारा पर्वत, वन और काननोंसहित सारी पृथ्वीको कम्पित करता हुआ चलता था॥ ३॥ अनुह्लादके पीछे बहुत-से सुन्दर दैत्यसमुदाय गर्जना करते हुए चले। सुवर्णमालाओंसे अलंकृत एक करोड़ रथी उसके साथ थे॥ ४॥ उनके हाथोंमें परिघ, भिन्दिपाल, भल्ल, पाश, फरसे आदि नाना प्रकारके आयुध थे। वे अपने हाथोंमें शूल और मुद्गर भी लिये हुए थे॥ ५॥ वे महान् असुर सोनेकी जालियोंसे युक्त वज्र नामक मणियों (हीरों)-से अलंकृत थे। विचित्र रथ और कवच उनकी शोभा बढ़ाते थे॥ ६॥ उस समय जिसका अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुवर्णसे चित्रित था तथा जो विशाल एवं ऊँचे पर्वतके समान प्रतीत होता था, अपने सत्त्व और बलके अनुरूप, उस अनुपम एवं सुन्दर रथपर बैठकर वह दैत्यराज अनुह्लाद बड़ी शोभा पा रहा था॥ ७॥ अग्निके समान तेजस्वी और बलवान् विरोचन भी युद्धके लिये उद्यत होकर वहाँ आया। उसके साथ रथियोंकी विशाल सेना थी। वह सब प्रकारके अस्त्रोंके प्रयोगमें कुशल एवं शुद्ध हृदयका था॥ ८॥ किस व्यूहका कहाँ प्रयोग करना चाहिये, इसका उसे विशेष ज्ञान था। वह ज्ञान-विज्ञानके तत्त्वको जाननेवाला था। विरोचन बलिका पिता था। जैसे देवताओंमें इन्द्र श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार असुरोंमें विरोचन श्रेष्ठ था॥ ९॥ उसका रथ छोटी-छोटी घंटियोंसे युक्त झालरोंसे सुशोभित था। उसमें सब प्रकारके आयुध रखे गये थे। वह रथ एक सहस्र शीघ्रगामी श्रेष्ठ अश्वोंसे जुता हुआ था॥ १०॥

रथमारुह्य दैत्येन्द्रो बभौ मेरुरिवापरः।
किङ्किणीजालपर्यन्तं गजेन्द्रध्वजशोभितम्।
संध्याभ्रसमवर्णाभिः पताकाभिरलंकृतम्॥ ११

प्रवालजाम्बूनदभक्तिचित्रं
व्यालम्बिमुक्ताफलभूषितं च।
रथं समारुह्य किरीटमाली
ययौ स युद्धाय महासुरेन्द्रः॥ १२

विरोचनानुजश्चैव कुजम्भो नाम दानवः।
स्यन्दनैर्बहुसाहस्रैर्मणिकाञ्चनभूषितैः॥ १३

वृतो मदबलात् सिक्तैर्देवारिभिररिंदमः।
प्रासपाशगदाहस्तैर्दानवैर्युद्धकाङ्क्षिभिः॥ १४

स पर्वतनिभाकारो भिन्नाञ्जनचयप्रभः।
महता भ्राजमानेन किरीटेन सुवर्चसा॥ १५

सर्वरत्नविचित्रेण कवचेन च संवृतः।
महता दीप्तवपुषा रथेनेन्दुरिवांशुमान्॥ १६

शातकौम्भेन महता तालवृक्षेण केतुना।
रराज रथमध्यस्थो मेरुस्थ इव भास्करः॥ १७

रणपटुरतिवीर्यसत्त्वबुद्धिः
सुरसमराभिमुखः प्रयाति तूर्णम्।
असुरगणसमावृतः कुजम्भ-
स्त्रिदशगणैरिव वृत्रहामरेन्द्रः॥ १८

असिलोमा च तत्रैव दानवः पर्वतायुधः।
दारुणं वपुरास्थाय दारुणो दारुणाननः॥ १९

रौद्रः शकटचक्राक्षो महाकायो महाबलः।
कृष्णवासा महादंष्ट्रः किरीटी लोहिताननः॥ २०

उस रथपर आरूढ़ होकर दैत्यराज विरोचन दूसरे मेरुके समान शोभा पाता था। उसके किनारे-किनारे क्षुद्र घण्टिकाओंसे युक्त जाली लगी हुई थी। वह गजराजके चिह्नसे युक्त ध्वजसे सुशोभित होता था और संध्याकालीन बादलोंके समान वर्णवाली पताकाओंसे अलंकृत था॥ ११॥ वह महान् असुरेन्द्र मूँगे और सुवर्णकी चित्रमूर्तियोंसे सुशोभित तथा सब ओर लटकते हुए मोतियोंके दानोंसे विभूषित रथपर आरूढ़ हो मस्तकपर किरीट धारण करके युद्धके लिये चला॥ १२॥ विरोचनका छोटा भाई कुजम्भ नामक दानव मणि और सुवर्णसे विभूषित कई सहस्र रथोंसे घिरा हुआ था। बलके अभिमानसे मत्त हुए देवद्रोही दैत्य उसे घेरकर खड़े थे। उन दैत्योंके हाथमें प्रास, पाश और गदा आदि अस्त्र शोभा पा रहे थे। वे सभी दानव युद्धकी अभिलाषा रखते थे, उनके साथ आया हुआ कुजम्भ शत्रुओंका दमन करनेमें समर्थ था॥ १३-१४॥ उसका आकार पर्वतके समान विशाल था, खानसे काटकर निकाले गये कोयलोंकी राशिके समान उसका काला रंग था, उसके मस्तकपर अत्यन्त तेजस्वी एवं कान्तिमान् महान् मुकुट शोभा पाता था, उस मुकुटसे तथा सर्वरत्नमय विचित्र कवचसे आच्छादित हुआ कुजम्भ अपने महान् तेजस्वी रथके द्वारा श्वेत रश्मियोंसे युक्त चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा था॥ १५-१६॥ तालवृक्षके चिह्नवाले सोनेके बने हुए विशाल ध्वजसे उपलक्षित रथके भीतर बैठा हुआ वह दैत्य मेरु पर्वतके शिखरपर विराजमान सूर्यके समान सुशोभित होता था॥ १७॥ जैसे वृत्रासुरका नाश करनेवाले देवराज इन्द्र देवताओंसे घिरे हुए चलते हैं, उसी प्रकार युद्धकुशल, अतिशय वीर्य, सत्त्व तथा बुद्धिसे युक्त कुजम्भ असुरोंसे घिरकर देवताओंसे युद्धके लिये उत्सुक हो तीव्र गतिसे आगे बढ़ रहा था॥ १८॥ वहीं असिलोमा नामक दानव भी उपस्थित था, जो बड़े-बड़े पर्वतखण्डोंको ही आयुधके रूपमें धारण करता था। वह दारुण स्वभावका दानव दारुण शरीर धारण करके वहाँ आया था, उसका मुख बड़ा ही दारुण (निर्दय) प्रतीत होता था॥ १९॥ वह महाबली महाकाय दानव देखनेमें बड़ा भयंकर था। उसके नेत्र गाड़ीके पहियोंके समान जान पड़ते थे। वह काले रंगका वस्त्र धारण करता था। उसकी दाढ़ें बहुत बड़ी थीं। उसका मुँह लाल था और वह मस्तकपर मुकुटसे सुशोभित था॥ २०॥

वृतो दैत्यसहस्रौघैर्गिरिपादपयोधिभिः।
नानारूपधरैर्दृप्तैर्दैत्यैस्त्रिदशशत्रुभिः ॥ २१

ते शूलहस्ता गगने चरन्त
इतस्ततस्तोयदवृन्दतुल्याः ।
खं छादयन्तस्तपनीयनिष्का
यथोन्नताः प्रावृषि कालमेघाः ॥ २२

दनायुषायाः पुत्रस्तु वृत्रो नाम महासुरः।
देवशत्रुर्महाकायस्ताम्रास्यो निर्नतोदरः ॥ २३

दीप्तजिह्वो हरिश्मश्रुरूर्ध्वरोमा महाहनुः।
नीलाङ्गो लोहितमुखः किरीटी लोहिताम्बरः ॥ २४

आजानुबाहुर्विकृतः श्वेतदंष्ट्रो विभीषणः।
महामायाधरो भीमो हेमकेयूरभूषणः ॥ २५

महता मणिचित्रेण कवचेन तु संवृतः।
हेममालाधरो रौद्रश्चक्रकेतुरमर्षणः ॥ २६

किंकिणीशतसंघुष्टं तपनीयविभूषितम्।
युक्तं हयसहस्रेण रक्तध्वजपताकिनम्॥ २७

रथानीकेन महता युद्धायाभिमुखो ययौ।
दिव्यं स्यन्दनमास्थाय दैत्यानां नन्दिवर्धनः ॥ २८

तपितकनकबिन्दुपिङ्गलाक्षो
दितितनयोऽसुरसैन्ययुद्धनेता ।
विकसितकमलाभचारुचक्षुः
सितदशनः शुशुभे रथासनस्थः ॥ २९

एकचक्रस्तु तत्रैव सूर्यचक्र इवोदितः।
कालचक्रसमो रौद्रश्चक्रायुध इवोद्यतः ॥ ३०

सर्वायसमयं दिव्यं रथमास्थाय भासुरम्।
वृतो दैत्यगणैर्दृप्तैः कालायसशिलायुधैः ॥ ३१

पर्वतखण्डों और वृक्षोंद्वारा युद्ध करनेवाले नाना रूपधारी, बलाभिमानी और देवद्रोही सहस्रों दैत्य उसे घेरकर खड़े थे॥ २१॥ वे दैत्य हाथोंमें त्रिशूल लेकर मेघसमूहके समान व्योममण्डलमें इधर-उधर विचरते थे। उनके कण्ठमें सोनेके पदक प्रकाशित हो रहे थे, अतः वे वर्षा-ऋतुमें उमड़-घुमड़कर आये हुए (विद्युत्सहित) काले मेघोंके समान आकाशमें छा रहे थे॥ २२॥ दनायुषाका पुत्र वृत्र नामक महान् असुर भी वहाँ युद्धके लिये उपस्थित था, उस विशालकाय देवद्रोही दैत्यका मुख ताँबेके समान लाल था और पेट भीतरकी ओर दबा हुआ था॥ २३॥ उसकी जीभ आगके समान चमक रही थी, दाढ़ी, मूँछ नीली थीं, रोएँ ऊपरकी ओर उठे हुए थे और ठोड़ी मांसल थी। नीला शरीर, लाल मुँह, लाल वस्त्र और मस्तकपर किरीट, बड़ी-बड़ी बाहें, विकृत रूप, सफेद दाढ़ें और भयानक आकृति—यही उसके रूप-रंगका परिचय है। वह बड़ी-बड़ी माया धारण करनेवाला भीमकाय दैत्य सोनेके बाजूबंदसे विभूषित था॥ २४-२५॥ मणिजटित विचित्र एवं महान् कवचसे आच्छादित अङ्गवाला वह अमर्षशील भयंकर दैत्य गलेमें सोनेकी माला धारण करता था। उसके ध्वजमें चक्रका चिह्न बना हुआ था॥ २६॥ उसके रथमें सैकड़ों छोटी-छोटी घंटियाँ लगी थीं, जिनका मधुर घोष होता रहता था। वह रथ सुवर्णसे विभूषित तथा लाल रंगकी ध्वजा-पताकासे अलंकृत था, उसमें एक हजार घोड़े जुते हुए थे॥ २७॥ दैत्योंका आनन्द बढ़ानेवाला वृत्र उस दिव्य रथपर आरूढ़ होकर युद्धके लिये उत्सुक हो रथोंकी विशाल सेनाके साथ चला॥ २८॥ उसकी आँखें तपाये हुए सुवर्णकी बूँदोंके समान पिंगल वर्णकी थीं। वह असुर-सेनाके युद्धका नेता था, उसके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान मनोहर थे। दाँत सफेद और चमकीले थे। रथके आसनपर बैठा हुआ वह दैत्य बड़ी शोभा पा रहा था॥ २९॥ एकचक्र नामक दैत्य भी वहीं था, जो सूर्यमण्डलके समान उदित हुआ था। वह कालचक्रके समान भयंकर था और चक्रधारी श्रीहरिके समान युद्धके लिये उद्यत था॥ ३०॥ सम्पूर्णतः लोहेके बने हुए दिव्य एवं तेजस्वी रथपर आरूढ़ हो वह काले लोहे और शिलाखण्डोंके आयुध धारण करनेवाले बलाभिमानी दैत्यसमूहोंसे घिरा हुआ था॥ ३१॥

तस्याशीतिसहस्राणि रथिनां चित्रयोधिनाम्।
सर्वे कालान्तकप्रख्या रुधिराक्षा महाबलाः।
आयसैः काञ्चनैश्चैव संनद्धा वरवर्णिनः॥ ३२

व्यराजन्तान्तरिक्षस्था नीला इव पयोधराः।
सर्वे कालान्तकप्रख्या धीराः समरदुर्जयाः॥ ३३

सागरोदरगम्भीरा नीलचक्रा दुरासदाः।
नेदुर्यान्तोऽसुरवरा वेलातीता इवार्णवाः॥ ३४

ते भीममायाः सुसमृद्धकायाः
किरीटिनः काञ्चनभूषिताङ्गाः।
ययुस्तदा स्वायुधदीप्तहस्ता
नभः सपक्षा इव पर्वतेन्द्राः॥ ३५

संदिष्टो बलिपुत्रेण वृत्रभ्राता महासुरः।
वधाय सुरसैन्यस्य संनह्यस्वेति वीर्यवान्॥ ३६

हेममाली महादंष्ट्रः स्रग्वी रुचिरकुण्डलः।
रक्तमाल्याम्बरधरश्चण्डः समरदुर्जयः॥ ३७

सुमहावृत्तनयनः स किरीटी धनुर्धरः।
प्रभिन्न इव मातङ्गः शार्दूलसमविक्रमः॥ ३८

महातालनिभं चापं तथा रुचिरसायकम्।
विस्फारयन् महावेगं वज्रनिष्पेषनिःस्वनम्॥ ३९

रथेन खरयुक्तेन ध्वजेन भुजगेन ह।
शुशुभे स्यन्दनस्थः स संध्यागत इवांशुमान्॥ ४०

रथैस्तु बहुसाहस्रैर्हेमपट्टविभूषितैः।
शूलमुद्गरसम्पूर्णैर्जलपूर्णैरिवाम्बुदैः।
स दैत्येन्द्रोऽभिचक्राम तस्मिन् युद्ध उपस्थिते॥ ४१

उसके साथ विचित्र युद्ध करनेवाले अस्सी हजार रथी योद्धा थे। वे सब-के-सब काल और अन्तकके समान प्रभावशाली और महाबली थे। उनके नेत्र लाल थे, वे लोहे और सोनेके बने हुए कवचोंसे सुसज्जित तथा देखनेमें सुन्दर थे॥ ३२॥ आकाशमें स्थित हुए वे दैत्य नीले मेघोंके समान शोभा पाते थे। वे सभी काल और अन्तकके समान भयंकर, धीर तथा रणदुर्जय थे॥ ३३॥ वे समुद्रके उदरकी भाँति गम्भीर थे। उनके हाथमें नीले चक्र थे, उन्हें जीतना बहुत ही कठिन था। वे श्रेष्ठ असुर युद्धके लिये जाते समय अपनी तटभूमि या सीमाको लाँघकर आगे बढ़े हुए समुद्रोंके समान भीषण गर्जना करते थे॥ ३४॥ उनकी माया भयंकर थी और काया हृष्ट-पुष्ट। उनके मस्तकपर किरीट चमक रहे थे, उनके सारे अङ्ग सोनेके आभूषणोंसे विभूषित थे। उनके हाथ अपने-अपने आयुधोंसे उद्दीप्त दिखायी देते थे, वे सब दैत्य उस समय पंखधारी पर्वतराजोंके समान आकाशमें उड़े जा रहे थे॥ ३५॥ बलिके पुत्र बाणासुरने वृत्रासुरके भाई एक महान् असुरको यह संदेश दिया कि तुम देवसेनाके वधके लिये कवच धारण करो। यह संदेश पाकर वह पराक्रमी दैत्य सुवर्णकी माला, फूलोंके हार और सोनेके कुण्डलोंसे विभूषित हो युद्धके लिये चला। उसकी दाढ़ें बहुत बड़ी थीं, वह लाल फूलोंकी माला और लाल वस्त्र धारण करता था। अत्यन्त क्रोधी होनेके साथ ही वह समरभूमिमें दुर्जय था (उसका नाम सम्भवतः वीर या विक्षर था)॥ ३६-३७॥ उसके नेत्र बड़े-बड़े और गोलाकार थे। वह मस्तकपर मुकुट और हाथमें धनुष धारण किये हुए था, देखनेमें मदकी धारा बहानेवाले मतवाले हाथीके समान जान पड़ता था। उसका पराक्रम सिंहके समान था॥ ३८॥ वह बहुत बड़े ताड़के समान विशाल तथा महान् वेगशाली सुन्दर सायकयुक्त धनुषको बारम्बार खींच रहा था, ऐसा करनेसे ऐसी टङ्कारध्वनि होती थी मानो वज्रके टकरानेसे भयंकर शब्द प्रकट हुआ हो॥ ३९॥ उसके रथमें गधे जुते हुए थे तथा उसके ऊपर सर्पके चिह्नसे युक्त ध्वजा फहराती थी। उस रथपर बैठा हुआ वह दैत्य संध्याकालके सूर्यकी भाँति शोभा पा रहा था॥ ४०॥ उस युद्धके उपस्थित होनेपर वह दैत्यराज स्वर्णपटसे विभूषित तथा शूल और मुद्गरसे युक्त कई सहस्र रथोंके साथ आगे बढ़ने लगा। वे रथ जलसे भरे हुए मेघोंके समान जान पड़ते थे॥ ४१॥

पवनसमगतिर्विशालवक्षा
विकसितपङ्कजचारुगर्भगौरः ।
प्रवररथगतो ययौ स तूर्णं
त्रिदशगणैरभिलक्षितप्रभावः ॥ ४२

सिंहिकातनयश्चैव राहुर्नाम महासुरः।
विकटः पर्वताकारः शतशीर्षा शतोदरः॥ ४३

पीतमाल्याम्बरधरो जाम्बूनदविभूषितः।
स्निग्धवैदूर्यसंकाशः पद्मपत्रनिभेक्षणः॥ ४४

सर्वकाञ्चनसंयुक्तं मणिजालपरिष्कृतम्।
पताकाशतसंकीर्णं युक्तं परमवाजिभिः॥ ४५

आरुरोह रथं दिव्यं दैत्यः परमवीर्यवान्।
ननाद च महानादं कम्पयन् वसुधातलम्॥ ४६

मयेन विहितो दिव्यस्तस्य केतुर्हिरण्मयः।
मयूरपक्षसंकाशं कवचं चायसं महत्॥ ४७

भीमवेगरवैश्चान्यै रथैर्दिव्यैः सुभासुरैः।
नानाप्रहरणाकीर्णैः सेव्यमानो महाबलः॥ ४८

असुरगणपतिर्गजेन्द्रगामी
अतिरभसगतिर्महासुराणाम् ।
अरिगणमभितो विभुः प्रयातो
गिरिवरमस्तमिवांशुमान् सुदीप्तः॥ ४९

विप्रचित्तिस्तु तत्रैव दनोर्वंशविवर्धनः।
कश्यपस्यात्मजः श्रीमान् ब्रह्मणस्तेजसा समः॥ ५०

यष्टा क्रतुसहस्राणां वेदवित् तपसान्वितः।
स्वयम्भुवा दत्तवरो वरदश्च स्वयम्भुवः।
ईशित्वं च महत्त्वं च वशित्वं च महाद्युतेः॥ ५१

ऐश्वर्यगुणसम्पन्नो ब्रह्मेव स्वयमूर्जितः।
सार्धं पुत्रैश्च पौत्रैश्च संनह्यत महाबलः॥ ५२

वायुके समान उसकी प्रखर गति थी, वक्षःस्थल विशाल था, प्रफुल्ल कमलके मनोहर भीतरी भागके समान उसकी गौर कान्ति थी, वह उस श्रेष्ठ रथपर बैठकर तुरंत युद्धके लिये चल दिया। देवताओंने उसके प्रभावको अनेक बार देखा था॥ ४२॥ सिंहिकाका पुत्र राहु नामक महान् असुर भी युद्धके लिये आया था। उसकी आकृति बड़ी विकट थी, डीलडौल पर्वतके समान जान पड़ता था। उसके सैकड़ों सिर और पेट थे॥ ४३॥ वह पीले रंगके फूलोंकी माला और पीला ही वस्त्र धारण करता था, जाम्बूनदके आभूषणोंसे विभूषित था। स्निग्ध वैदूर्यमणिके समान उसकी श्याम कान्ति थी तथा कमलदलके समान सुन्दर नेत्र थे॥ ४४॥ उसका रथ पूर्णतः सुवर्णसे जड़ा हुआ था। मणिमय झालरोंसे उसको सजाया गया था। वह सैकड़ों पताकाओंसे व्याप्त था तथा उसमें उत्तम घोड़े जुते हुए थे॥ ४५॥ वह परम पराक्रमी दैत्य उस दिव्य रथपर आरूढ़ हुआ और पृथ्वीतलको कँपाता हुआ बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगा॥ ४६॥ मयासुरने उसके लिये दिव्य सुवर्णमय ध्वजका निर्माण किया था, साथ ही मोरपंखके समान विशाल लौहमय कवच भी बनाया था॥ ४७॥ उस महाबली दानवकी सेवामें भयंकर वेग और शब्दवाले दूसरे-दूसरे बहुत-से दिव्य एवं तेजस्वी रथ भी उपस्थित थे, जो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे भरे हुए थे॥ ४८॥ असुरगणोंका स्वामी राहु गजराजके समान मस्तीके साथ चलता था। उन महान् असुरोंमें उसकी चाल बहुत तेज थी। वह प्रभावशाली योद्धा शत्रुसमूहके पास उसी प्रकार बढ़ता चला गया, जैसे अत्यन्त दीप्तिमान् सूर्य अस्ताचलके समीप चले जा रहे हों॥ ४९॥ दानववंशकी वृद्धि करनेवाला विप्रचित्ति भी वहीं आ पहुँचा था। वह कान्तिमान् दानव साक्षात् कश्यपजीका पुत्र तथा ब्रह्माजीके समान तेजस्वी था॥ ५०॥ वह सहस्रों यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला, वेदवेत्ता और तपस्वी था। ब्रह्माजीने उसे वर दे रखा था और वह स्वयं भी ब्रह्माजीको वर देनेमें समर्थ हो गया था। उस महातेजस्वी विप्रचित्तिको ईशित्व, महत्त्व (महिमा) और वशित्व आदि सिद्धियाँ उपलब्ध थीं॥ ५१॥ वह ब्रह्माजीके समान ऐश्वर्य-गुणसे सम्पन्न तथा ओजस्वी था। वह महाबली दानव अपने पुत्रों और पौत्रोंके साथ कवच बाँधकर युद्धके लिये तैयार हो गया॥ ५२॥

सर्वे मायाधराः शूराः कृतास्त्रा रणदुर्जयाः।
सर्वे कमलवर्णाभा हेमकूटोच्छ्रयोच्छ्रयाः॥ ५३

सर्वे रजतसंकाशाः कैलासशिखरोपमाः।
मयेन निर्मितास्तेषां सर्वे मायामया रथाः॥ ५४

विचरन्तो व्यराजन्त शारदा इव तोयदाः।
सर्वे हंसध्वजाः श्वेताः श्वेतदण्डसमुच्छ्रयाः॥ ५५

श्वेताम्बरधरा दैत्याः श्वेतमाल्यविभूषिताः।
श्वेतातपत्राः सर्वे ते श्वेतकुण्डलमण्डिताः॥ ५६

मुक्ताहारवृतोरस्का भान्ति नाकेश्वरा इव।
महाग्रहनिभाकाराः शत्रूणां लोमहर्षणाः॥ ५७

रक्तचित्राम्बरधराश्चित्राभरणभूषिताः।
त्रैलोक्यविजयं नाम रथमास्थाय वीर्यवान्।
कैलासशिखराकारमष्टनल्वायतान्तरम्॥ ५८

युक्तं वाजिसहस्रेण सितेन सितवर्चसा।
पताकाशतसंछन्नं नानायुधविकल्पितम्॥ ५९

हिमांशुकुन्दप्रतिमं विशालं
सितातपत्रं दनुजेश्वरस्य।
विभाति तस्योपरि धार्यमाणं
श्वेताद्रिमूर्धोपगतः शशाङ्कः॥ ६०

केशी दानवमुख्यस्तु जिह्मस्ताम्राक्षदर्शनः।
नीलमेघचयप्रख्यः कालः पुरुषविग्रहः॥ ६१

महाग्रहनिभाकारः शत्रूणां लोमहर्षणः।
चित्रमाल्याम्बरधरो रक्ताभरणभूषितः॥ ६२

शताक्षः शतबाहुश्च हरिश्मश्रुर्महाबलः।
शङ्कुकर्णो महानादो वपुषा घोरदर्शनः॥ ६३

वे सब-के-सब माया धारण करनेवाले, शूर, अस्त्रवेत्ता तथा रणदुर्जय थे। उन सबकी कान्ति कमलके समान थी। वे हेमकूट पर्वतके शिखरके समान ऊँचे कदके थे॥ ५३॥ वे सब-के-सब रूप-रंग और वेश-भूषासे रजत (चाँदी)-के समान श्वेत प्रतीत होते थे। कैलास-शिखरके समान जान पड़ते थे। मयने उन सबके लिये मायामय रथका निर्माण किया था॥ ५४॥ उन सभी रथोंपर हंसचिह्नित श्वेत ध्वज फहराते थे तथा उन उन्नत श्वेत दण्डोंके कारण उन रथोंकी ऊँचाई बहुत बढ़ गयी थी। वे रथ शरद्-ऋतुके श्वेत बादलोंके समान आकाशमें विचरते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे॥ ५५॥ वे दैत्य श्वेत वस्त्र धारण किये हुए थे और श्वेत पुष्पोंकी मालाओंसे अलंकृत थे। उन सबके छत्र भी श्वेत ही थे और उनके कानोंमें श्वेत कुण्डल शोभा दे रहे थे॥ ५६॥ उनके वक्षःस्थल मोतियोंके हारोंसे अलंकृत थे। वे स्वर्गलोकके अधीश्वर-से जान पड़ते थे। उनके आकार महान् ग्रहोंके समान तेजस्वी थे और वे शत्रुओंके रोंगटे खड़े कर देते थे। उनमेंसे कितने ही दानव लाल और विचित्र वस्त्र धारण करनेवाले तथा विचित्र आभूषणोंसे विभूषित थे। पराक्रमी विप्रचित्ति 'त्रैलोक्यविजय' नामक रथपर आरूढ़ होकर आया था। उस रथका आकार कैलासशिखरके समान था। उसके भीतरी भागकी लम्बाई बत्तीस हाथकी थी॥ ५७-५८॥ उसमें श्वेत कान्तिसे युक्त एक सहस्र श्वेत घोड़े जुते हुए थे। वह सैकड़ों पताकाओंसे आच्छादित था तथा उसके भीतर नाना प्रकारके आयुध सजाकर रखे गये थे॥ ५९॥ उस दानवराजके ऊपर तना हुआ इन्दु और कुन्दके समान वर्णवाला विशाल श्वेत छत्र श्वेताचलके शिखरपर उदित हुए चन्द्रदेवके समान शोभा पा रहा था॥ ६०॥ दानवोंमें प्रधान केशी बड़ा कुटिल था। उसके नेत्र ताँबेके समान लाल दिखायी देते थे। उसकी कान्ति मेघोंकी काली घटाके समान थी। वह पुरुषके आकारमें काल था॥ ६१॥ उसकी आकृति विशाल ग्रहके समान थी। वह शत्रुओंके रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। उसने विचित्र माला और वस्त्र धारण कर रखे थे तथा वह लाल रंगके आभूषणोंसे विभूषित था॥ ६२॥ सौ आँखें, सौ भुजाएँ, (पचास मुख) काली या नीली दाढ़ी-मूँछ, खूँटे-जैसे कान तथा शरीर देखनेमें भयंकर—यही उसकी रूपरेखा थी। वह महाबली दानव बड़े जोरसे गर्जना करता था॥ ६३॥

युक्तं महिषकैर्दिव्यैर्घण्टाकोटिकृतस्वनम्।
महावारिधराकारमास्थाय रथमुत्तमम्॥ ६४

ध्वजेनोष्ट्रेण महता नीलकेसरवर्चसा।
नानारागविचित्राभिः पताकाभिर्विभूषितम्॥ ६५

द्विपञ्चाशत्सहस्राणि रथानामुग्रवर्चसाम्।
ययुस्तस्यासुरेन्द्रस्य प्रयातस्य सुरान् प्रति॥ ६६

भान्ति भिन्नाञ्जननिभाः प्रयातस्य महात्मनः।
दंष्ट्रार्धचन्द्रवदनाः सबलाका इवाम्बुदाः॥ ६७

तत् तस्य वैदूर्यसुवर्णचित्रं
विद्युत्प्रभं भास्कररश्मितुल्यम्।
किरीटमाभात्यसुरोत्तमस्य
दावाग्निदीप्तं शिखरं यथाद्रेः॥ ६८

वृषपर्वासुरश्चैव श्रीमांश्च सुरसूदनः।
आरुरोह रथं दिव्यं मेरुशृङ्गमिवांशुमान्॥ ६९

प्रवालजाम्बूनदचित्रकूबरं
महारथं भारसहं महार्हम्।
स्वलंकृतं राजतनेमिमण्डलं
गभस्तिनक्षत्रतडिन्निकाशम्॥ ७०

केयूरयुक्ताङ्गदनद्धबाहुः
सहस्रतारेण च चर्मणा सः।
सांग्रामिकैराभरणैश्च चित्रै-
र्मध्याह्नसूर्यप्रतिमो बभूव॥ ७१

महाबलो बद्धतलाङ्गुलित्रो
बलोत्कटः किंशुकलोहिताक्षः।
प्रगृह्य चामीकरचारुचित्रं
चापं स्थितो वृत्तविशालनेत्रः॥ ७२

महासुरेन्द्रश्च महासुरैर्वृतो
बलिस्तदा स्यन्दनमारुरोह।

उसके उत्तम रथका आकार महान् मेघके समान था। उसमें करोड़ों घण्टाओंकी ध्वनि होती रहती थी तथा उसमें दिव्य भैंसे जुते हुए थे। केशी उसी रथपर आरूढ़ होकर आया था॥ ६४॥ वह रथ नील केसरकी-सी कान्ति और ऊँटके चिह्नवाले विशाल ध्वजसे तथा नाना रंगोंके कारण विचित्र दिखायी देनेवाली पताकाओंसे अलंकृत था॥ ६५॥ देवताओंकी ओर बढ़े जाते हुए उस असुरेश्वर केशीके साथ भयंकर तेजवाले बावन हजार रथी भी जा रहे थे॥ ६६॥ यात्रा करते समय कटे हुए कोयलेके समान काले और दाढ़ोंके कारण अर्धचन्द्राकार प्रतीत होनेवाले उस महाकाय दानवके मुख बगुलोंकी पंक्तियोंसे युक्त मेघोंके समान जान पड़ते थे॥ ६७॥ असुरशिरोमणि केशीका किरीट वैदूर्यमणि और सुवर्णके संयोगसे विचित्र शोभा पाता था, विद्युत्की-सी प्रभासे प्रकाशित हो रहा था तथा सूर्यकी रश्मियोंके समान उद्भासित होता था। उससे केशीका मस्तक दावानलसे उद्दीप्त हुए पर्वत-शिखरके समान प्रतीत होता था॥ ६८॥ देवताओंका संहार करनेवाला तेजस्वी असुर वृषपर्वा अपने दिव्य रथपर उसी प्रकार आरूढ़ हुआ, जैसे अंशुमाली सूर्य मेरु पर्वतके शिखरपर आरूढ़ होते हैं॥ ६९॥ उसके महान् रथका कूबर मूँगे और सुवर्णसे जटित होनेके कारण विचित्र शोभा पाता था। वह बहुमूल्य रथ भार सहन करनेमें समर्थ था। उसके पहियोंका नेमिभाग (किनारा) चाँदीसे मँढ़ा गया था। उस रथको अच्छी तरह सजाया गया था। वह सूर्यकी किरणों, नक्षत्रों तथा विद्युत्के समान प्रकाशित होता था॥ ७०॥ वृषपर्वाने अपनी भुजाओंमें केयूरयुक्त अङ्गद (बाजूबंद) पहन रखे थे। वह सहस्र तारिकाओंके चिह्नोंसे युक्त ढाल तथा युद्धोपयोगी विचित्र आभूषणोंसे सुशोभित हो मध्याह्नकालके सूर्यकी भाँति देदीप्यमान होता था॥ ७१॥ उसका बल महान् था। उसने अपने दोनों हाथोंमें दस्ताने बाँध रखे थे। वह बलसे उन्मत्त हो रहा था। उसकी आँखें पलाशके फूलकी भाँति लाल थीं। वह सुवर्णसे जटित होनेके कारण मनोहर एवं विचित्र धनुष लेकर खड़ा था। उसके नेत्र गोल-गोल और बड़े-बड़े थे॥ ७२॥ तदनन्तर उस समय बड़े-बड़े असुरोंसे घिरे हुए महान् असुरराज बलि रथपर

वैदूर्यहेमोपचितं विशालं
विद्युत्प्रभं षोडशनल्वमात्रम्॥ ७३
युक्तं सहस्रेण दितेः सुतानां
गजाननानां विकृताकृतीनाम्।
चामीकरोरःस्थलभूषितानां
प्रनर्दतां प्रावृषि चाम्बुदानाम्॥ ७४
महारथं देवरथप्रकाशं
सहस्रमायेन मयेन सृष्टम्।
ईहामृगाक्रीडितभक्तिचित्रं
दिव्यं रथं दिव्यरथानुयातम्॥ ७५
सकिङ्किणीकं विमलं सुविस्तृतं
हिरण्मयैः पद्मशतैरलंकृतम्।
अभ्याददे वैजयिकीं जयाय
स्रजं बलिर्हेमविचित्रपुष्पाम्॥ ७६
आबध्य मालां प्रभया विचित्रां
बलिस्तदा भाति भुजैर्विशालैः।
रराज तैः सर्वसमृद्धियुक्तै-
र्महार्चिषा सूर्य इवाम्बरस्थः॥ ७७
स्रजं तदा बध्यति चास्य दुर्गा
सर्वासुराणामिव हारभूताम्।
वैरोचनिः सर्वश्रियाभिजुष्टो
विभ्राजतेऽसौ शरदीव चन्द्रः॥ ७८
मेरोस्तटे वा ज्वलनप्रकाशे
ह्यादित्यसंयुक्तमिवाभ्रजालम् ।
प्रासाश्च पाशाश्च हिरण्यबद्धा
वर्माणि खड्गाश्च परश्वधाश्च॥ ७९
धनूंषि वज्रायुधसप्रभाणि
दिव्या गदा वज्रमुखाश्च शक्त्यः।
दिव्याश्च खड्गा विशिखाश्च दीप्ता
नाराचपूर्णा विविधाश्च तूणाः॥ ८०
धृता रथे दैत्यवृषस्य तस्य
चकाशिरे प्रज्वलिता यथोल्काः।

आरूढ़ हुए। उनका वह विशाल रथ वैदूर्यमणि और सुवर्णसे जटित था, विद्युत्के समान प्रकाशित होता था और उसकी लम्बाई चौंसठ हाथकी थी॥ ७३॥

उसमें हाथीके-से मुख और विकट आकारवाले एक सहस्र दैत्य जुते हुए थे। उन सबके वक्षःस्थल सुवर्णसे विभूषित थे तथा वे वर्षाकालके मेघोंके समान जोर-जोरसे गर्जना करते थे॥ ७४॥ वह महान् रथ देवताओंके रथ (विमान)-की भाँति प्रकाशित होता था। सहस्रों मायाओंके ज्ञाता मयासुरने उसका निर्माण किया था। उसके भीतर क्रीडा-मृग और उनके क्रीडास्थलके विभिन्न चित्र बने हुए थे, जो उस दिव्य रथकी शोभा बढ़ाते थे। उस रथके पीछे और भी बहुत-से दिव्य रथ चलते थे॥ ७५॥ उसमें छोटी-छोटी घण्टियाँ लगी थीं। वह निर्मल एवं सुविस्तृत रथ सैकड़ों सुवर्णमय कमलोंसे अलंकृत था। उसपर आरूढ़ होकर बलिने विजयके लिये वैजयन्तीकी माला ग्रहण की, जिसमें विचित्र सुवर्णमय पुष्प गुँथे हुए थे॥ ७६॥ उस समय राजा बलि वह दिव्य प्रभासे युक्त विचित्र माला धारण करके सम्पूर्ण समृद्धियोंसे युक्त अपनी विशाल भुजाओंके द्वारा उसी तरह शोभा पा रहे थे, जैसे आकाशमें स्थित हुए सूर्य अपनी महाप्रभासे अत्यन्त उद्भासित होते रहते हैं॥ ७७॥ उस समय साक्षात् दुर्गादेवीने समस्त असुरोंके लिये हारस्वरूप उस पुष्पमालाको बलिके गलेमें पहनाया था। उसे पहनकर सब प्रकारकी शोभा-सम्पत्तिसे सेवित विरोचनकुमार बलि शरद्-ऋतुके चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित होने लगे॥ ७८॥ अथवा अग्निके समान प्रकाशित होनेवाले मेरु पर्वतके तट-प्रान्तमें सूर्यसे संयुक्त हुए मेघसमूहकी जैसी शोभा होती है, वैसी ही शोभा उस समय राजा बलिकी हो रही थी। उन दैत्यप्रवर बलिके रथमें प्रास, सुवर्णजटित पाश, कवच, खड्ग, फरसे, वज्रके समान प्रकाशित होनेवाले धनुष, दिव्य गदा, वज्रमुखी शक्तियाँ, दिव्य खड्ग, प्रज्वलित बाण तथा उन बाणोंसे भरे हुए नाना प्रकारके तरकस रखे गये थे, जो प्रज्वलित उल्काओंके समान प्रकाशित होते थे।

तं चामरापीडधराः सुदंष्ट्राः
सुवर्णमुक्तामणिहेमचित्राः ॥ ८१
वीजन्ति बालव्यजनैर्विनीता
महासुराः स्यन्दनवेदिकास्थाः।
अयःशिरा अश्वशिरा दुरापः
शिबिर्मतङ्गो विशिराः शताक्षः॥ ८२

अयो निकुम्भः क्रथनश्च दानवो
ररक्षिरे ते दश दानवाधिपम्।
पुरश्चराश्चैव सहस्रशोऽसुराः
पदातयो दानवराजरक्षिणः॥ ८३

शतघ्निचक्राशनिशक्तिपाणयः
प्रजग्मुरग्रेऽनिलतुल्यवेगिनः ।
घण्टाः सुशब्दास्तपनीयबद्धा
आडम्बरा गर्गरडिण्डिमाश्च॥ ८४

महारवा दुन्दुभयश्च नेदू
रथप्रयाणे दितिजेश्वरस्य।
तस्योत्थितः काञ्चनवेदिकाढ्यो
हिरणमयो दिव्यमहापताकः॥ ८५

महाध्वजो वै तपनीयनद्धो
रराज वीरस्य यथा विवस्वान्।
समुच्छ्रितं काञ्चनमातपत्रं
स्रक्काञ्चनी वक्षसि चास्य भाति॥ ८६

समन्ततश्चाप्यसुराश्चरन्ति
दैत्यर्षयः प्राञ्जलयो जयन्ति।
पुरोहिताः शत्रुवधे समाहिता-
स्तथैव चान्ये श्रुतशीलवृद्धाः॥ ८७

जपैश्च मन्त्रैश्च तथौषधीभि-
र्महात्मनः स्वस्त्ययनं प्रचक्रुः।
स तत्र वस्त्राणि शुभाश्च गावः
फलानि पुष्पाणि तथैव निष्कान्॥ ८८

हाथमें चँवर और सिरपर पगड़ी धारण किये, सोना, मोती, मणि और हेमके विचित्र आभूषणोंसे अलंकृत, सुन्दर दाढ़ोंवाले और विनयशील महान् असुर उस रथकी वेदिकापर खड़े हो बाल-व्यजनों (चँवरों)-से राजा बलिको हवा करते थे। अयःशिरा, अश्वशिरा, दुराप, शिबि, मतङ्ग, विशिरा शताक्ष, अयस्, निकुम्भ और क्रथन—ये दस दानव दानवराज बलिकी रक्षामें तत्पर रहते थे। दानवराज बलिकी रक्षाके लिये हजारों पैदल असुर उनके आगे-आगे भी चलते थे। वे सब शतघ्नी, चक्र, अशनि और शक्ति हाथमें लेकर वायुके समान वेगसे आगे-आगे चल रहे थे। दैत्यराज बलिका रथ जब प्रस्थित हुआ, उस समय सुवर्णजटित घण्टे सुन्दर शब्द करते हुए बजने लगे। तुरही या बिगुल, गर्गर (प्राचीन वाद्यविशेष), नगाड़े तथा महान् शब्द करनेवाली दुन्दुभियाँ—इन सबकी तुमुल ध्वनि होने लगी। वीर राजा बलिका सुवर्णजटित और विशेषतः सोनेका ही बना हुआ विशाल ध्वज ऊपरको उठा हुआ था, उसकी दिव्य पताका बहुत बड़ी थी तथा वह सुवर्णमयी वेदीसे संयुक्त था। वह विशाल ध्वज भगवान् सूर्यके समान प्रकाशित होता था। राजा बलिके ऊपर सोनेका ऊँचा छत्र तना हुआ था और उनके वक्षःस्थलपर सुवर्णमयी माला शोभा पा रही थी। उनके चारों ओर बहुत-से असुर विचरते थे और दैत्य, ऋषि हाथ जोड़कर जय-जयकार करते थे। राजा बलिके पुरोहित तथा वेद और शीलमें बढ़े-चढ़े दूसरे ब्राह्मण राजाके शत्रुओंके वधके उद्देश्यसे एकाग्रचित्त हो मन्त्रजप, वेदपाठ तथा ओषधियोंके प्रयोगद्वारा उन महात्मा नरेशके लिये स्वस्तिवाचन करते थे। राजा बलि अपने मनको संयममें रखकर वहाँ उन ब्राह्मणोंको वस्त्र, सुन्दर गौएँ, फल-फूल और

बलिर्द्विजेभ्यः प्रयतः प्रयच्छन्
विराजतेऽतीव यथा धनेशः।
सहस्रसूर्यो बहुकिङ्किणीकः
पराद्‌र्ध्यजाम्बूनदहेमचित्रः ॥ ८९
सहस्रचन्द्रायुततारकश्च
रथो बलेरग्निरिवावभाति।
तमास्थितो दानवसंगृहीतं
महाबलः कार्मुकधृक् सबाणः॥ ९०
उद्वर्तयिष्यंस्त्रिदशेन्द्रसेना-
मतीव रौद्रं स बिभर्ति रूपम्।
स वेगवान् वीररथौघसंकुलः
प्रयाति देवान् प्रति दैत्यसागरः॥ ९१
महार्णवो वीचितरङ्गसंकुलो
यथा जलौघैर्युगसंक्षये तथा।
त्रैलोक्यवित्रासकरैर्वपुर्भि-
स्तान्यग्रतो यान्ति बले रथस्य॥ ९२
महाबलान्युच्छ्रितकार्मुकाणि
सपर्वतानीव वनानि राजन्॥ ९३

पदक अधिक मात्रामें देते हुए धनाध्यक्ष कुबेरके समान अतिशय शोभा पा रहे थे। बलिका रथ सहस्र सूर्योंके चित्रसे शोभित था, उसमें बहुत-सी छोटी-छोटी घण्टियाँ लटकायी गयी थीं। उसमें बहुमूल्य जाम्बूनद और सुवर्ण जड़े गये थे, जिनसे उसकी विचित्र शोभा हो रही थी। सहस्रों चन्द्रमाओं तथा दस हजार तारिकाओंसे युक्त बलिका वह रथ अग्निके समान उद्भासित हो रहा था। उस रथकी बागडोर एक दानवने ले रखी थी। महाबली बलि उसपर आरूढ़ हो धनुष और बाण लेकर अत्यन्त भयंकर रूप धारण किये हुए थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो वे देवेन्द्रकी सेनाका संहार कर डालेंगे। वीर रथियोंके प्रवाहसे व्याप्त हुआ वह वेगशाली दैत्यसागर देवताओंकी ओर बढ़ा जा रहा था। ठीक उसी तरह जैसे प्रलयकालमें जलके प्रवाह और उत्ताल तरङ्गोंसे व्याप्त महासागर समस्त त्रिलोकीको डुबो देनेके लिये बढ़ने लगता है। राजन्! बलिके रथके आगे उनके बड़े-बड़े सैनिक धनुष उठाये तीनों लोकोंको भयभीत कर देनेवाले शरीरोंसे बढ़े जा रहे थे, उस समय वे पर्वतोंसहित वनोंके समान जान पड़ते थे॥ ७९—९३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे बलेरुद्योगे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारके प्रसङ्गमें बलिका उद्योगविषयक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५१॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

इन्द्र आदि देवताओं और लोकपालोंका युद्धके लिये उद्योग और प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तरो जनमेजय।
भूयस्त्रिदशसैन्यस्य शृणु विस्तरमादितः॥ १

सुराधिपस्तु भगवानाज्ञापयत वै सुरान्।
मरुद्गणांस्तथादित्यान् विश्वान् देवांश्च वासवः॥ २

वसूनष्टौ भृशं सर्वान् यक्षरक्षोमहोरगान्।
विद्याधरगणान् सर्वान् गन्धर्वांश्च महाबलान्॥ ३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तुमने दैत्योंकी सेनाका विस्तारपूर्वक वर्णन सुन लिया; अब पुनः देवताओंकी सेनाका विस्तार आरम्भसे ही बता रहा हूँ, सुनो॥ १॥ देवताओंके अधिपति भगवान् इन्द्रने देवता, मरुद्गण, आदित्य, विश्वेदेव, आठ वसु, यक्ष, राक्षस, बड़े-बड़े नाग, समस्त विद्याधरगण, महाबली गन्धर्व,

महार्णवांश्च शैलांश्च तथा रुद्रान् महौजसः।
यमवैश्रवणौ चोभौ वरुणं च जनाधिपम्॥ ४
ये तु सिद्धा महात्मानः पितरश्च मनस्विनः।
राजर्षयश्च शतशो योगसिद्धास्तथैव च॥ ५
त्रिदशाज्ञापकः शक्र आज्ञापयति वीर्यवान्।
भवन्तो दैत्यनाशाय संनह्यन्तामिति प्रभुः॥ ६
शक्रस्य वचनं श्रुत्वा ततः सर्वे दिवौकसः।
संनह्यन्त महात्मानः शक्रस्य समविक्रमाः॥ ७
नानाकवचिनः सर्वे विचित्रकवचध्वजाः।
नानायुधोद्यतकरा मत्ता इव महागजाः॥ ८
केचिदारुरुहुर्व्याघ्रान् केचिदारुरुहुर्गजान्।
केचिदारुरुहुर्नागान् केचिदारुरुहुर्वृषान्॥ ९
हरिनेत्रो हरिश्मश्रुर्द्विरदैरावृतध्वजम्।
रथं हरिहयैर्युक्तं स प्रायात् समरं प्रति॥ १०
आदित्यवर्णं विरजं सुधौतं
त्वष्ट्रा स्वयं निर्मितमीश्वरार्थम्।
जालैश्च जाम्बूनदभक्तिचित्रै-
रलंकृतं काञ्चनदामभिश्च॥ ११
सकूबरोपस्करबन्धुरेषं
विद्युत्प्रभाभिः कृतमाभिताम्रम्।
कैलासशृङ्गोपममिन्द्रयानं
सुचारुचारु प्रतिचक्रचक्रम्॥ १२
तारासहस्रैः खचितं ज्वलद्भि-
र्देवार्हमाल्यार्चितसर्वदेहम्।
समुच्छ्रितश्रीध्वजमक्षयाक्षं
प्रज्वाल्यमानं पुरुषोत्तमेन॥ १३
आस्थाय तं भास्करमाशुवेगं
शचीपतिर्लोकपतिः सुरेशः।
वज्रस्य धर्ता भुवनस्य गोप्ता
ययौ महात्मा भगवान् महेन्द्रः॥ १४

महासागर, पर्वत, महातेजस्वी रुद्र, यम, कुबेर तथा राजा वरुणको युद्धके लिये तैयार होनेकी आज्ञा दी॥ २—४॥ उनके आदेशकी घोषणा इस प्रकार हुई—'जो सिद्ध महात्मा हैं, जो मनस्वी पितर हैं तथा जो राजर्षि और सैकड़ों योग-सिद्ध पुरुष हैं, उन सबको सर्वसमर्थ, देवशासक, पराक्रमी इन्द्र आज्ञा देते हैं कि आपलोग दैत्योंका विनाश करनेके लिये कमर कसकर तैयार हो जायँ'॥ ५-६॥

देवेन्द्रका यह वचन सुनकर उनके समान ही पराक्रम प्रकट करनेवाले समस्त महामनस्वी देवता युद्धके लिये तैयार होने लगे॥ ७॥ उन सबने नाना प्रकारके कवच धारण किये। उनके कवच और ध्वज विचित्र थे। वे हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये हुए थे और मतवाले गजराजोंके समान युद्धके लिये उद्यत थे॥ ८॥ उनमेंसे कुछ लोग व्याघ्रोंपर सवार थे और कुछ लोग हाथियोंपर। कोई नागोंपर चढ़े थे और कोई बैलोंपर॥ ९॥ इन्द्रके नेत्र सिंहके समान चमकीले हैं, उनकी मूँछ नीले रंगकी है, उनका ध्वज ऐरावत हाथीसे चिह्नित है, उनके रथमें हरे रंगके घोड़े जुते हुए हैं। वे उसी रथपर आरूढ़ हो समरकी ओर चले॥ १०॥ उस रथकी कान्ति सूर्यके समान थी। वह निर्मल तथा स्वच्छ धुला हुआ था। साक्षात् विश्वकर्माने इन्द्रके लिये उसका निर्माण किया था। वह सोनेकी जालियों, जाम्बूनदकी चित्रभङ्गी तथा सुवर्णकी लड़ियोंसे अलंकृत था॥ ११॥ कूबर, अन्य उपकरण तथा मनोहर ईषादण्डसहित वह रथ विद्युत्की प्रभासे ताम्रवर्णका हो गया था। वह इन्द्रयान कैलास-शिखरके समान दिखायी देता था और मनोहरसे भी मनोहर तथा शत्रुमण्डलीपर शासन करनेवाला था॥ १२॥ उसमें सहस्रों प्रकाशमान तारे जड़े हुए थे। उस रथका सम्पूर्ण अङ्ग देवोचित मालाओंसे पूजित था। उसमें शोभाशाली ऊँचा ध्वज फहरा रहा था तथा उसका धुरा कभी क्षीण होनेवाला नहीं था। पुरुषोत्तम इन्द्रकी कान्तिसे वह रथ और भी उद्भासित हो रहा था॥ १३॥ तीव्र वेगसे चलनेवाले उस तेजस्वी रथपर आरूढ़ हो तीनों लोकोंके स्वामी देवताओंके ईश्वर वज्रधारी भुवनरक्षक शचीपति महात्मा भगवान् महेन्द्र युद्धके लिये चले॥ १४॥

आमुच्य वर्माथ सहस्रतारं
हुताशनादित्यसमप्रभावम् ।
सूर्यप्रभं चामुमुचे किरीटं
मालां च जाम्बूनदवैजयन्तीम्॥ १५

त्वष्ट्रा कृतं भास्कररश्मिदीप्तं
सुतीक्ष्णघोरामलतीव्रधारम् ।
महासुराणां रुधिरार्द्रमुग्रं
प्रगृह्य वज्रं शतपर्व भीमम्॥ १६

महाशनी द्वे च महाग्रहाभे
दीप्ताममोघां च सशक्तिमुग्राम्।
चक्रं तथैन्द्रं सुमहत्प्रतापं
प्रगृह्य शक्रः प्रययौ रणाय॥ १७

सहस्रदृग् भूतपतिः सनातनः
सनातनानामपि यः सनातनः।
खड्गं च देवाधिपतिर्महात्मा
वैयाघ्रमादाय च चर्म चित्रम्॥ १८

क्षीरोदधिक्षोभसमुच्छ्रितानि
पुरामृतादुत्तमभूषणानि ।
देवासुराणां श्रमनिर्जितानि
सोमार्कनक्षत्रतडित्प्रभाणि ॥ १९

दत्तान्यदित्या मणिकुण्डलानि
युद्धे प्रयातस्य सुरेश्वरस्य।
तैर्भूषितो भाति सहस्रचक्षु-
रुद्योतयन् वै विदिशो दिशश्च॥ २०

हरिः प्रभुर्नेत्रसहस्रचित्रो
विभाति युद्धाभिमुखः सुरेन्द्रः।
यथा सितं शारदमभ्रकल्पं
नभस्तलं ऋक्षसहस्रचित्रम्॥ २१

उन्होंने अग्नि और सूर्यके समान प्रभापुञ्जसे परिपूर्ण सहस्र तारिकावाले कवचको धारण करके मस्तकपर सूर्यके समान तेजस्वी मुकुटको रखा और गलेमें पैरोंतक लटकनेवाली जाम्बूनदमयी वैजयन्तीमाला धारण की॥ १५॥ इसके बाद सौ पर्वोंसे युक्त भयंकर वज्र हाथमें लिया, जो बड़े-बड़े असुरोंके रक्तसे भीगा हुआ था। सूर्यकी किरणोंके समान उद्दीप्त होनेवाले उस उग्र वज्रका निर्माण साक्षात् विश्वकर्माने किया था। उसकी धार अत्यन्त तीक्ष्ण, घोर, निर्मल और तीव्र थी॥ १६॥

महान् ग्रहोंके समान प्रकाशित होनेवाली दो अशनियाँ, प्रज्वलित एवं अमोघ उग्र शक्ति तथा महाप्रतापी ऐन्द्र-चक्र हाथमें लेकर देवराज इन्द्र युद्धके लिये प्रस्थित हुए॥ १७॥ उनके सहस्र नेत्र हैं। वे सम्पूर्ण भूतोंके सनातन पति हैं। सनातनोंके भी जो सनातन हैं। देवताओंके भी अधिपति और महामनस्वी हैं। वे उस समय व्याघ्रचर्मकी बनी हुई विचित्र ढाल और एक तलवार लेकर संग्रामभूमिकी ओर चले॥ १८॥ पूर्वकालमें क्षीरसागरके मन्थनसे जिनका प्राकट्य हुआ था, जो अमृतसे निकले थे तथा देवता और असुर दोनोंके परिश्रमसे उपलब्ध हुए थे, जिनकी प्रभा चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र और विद्युत्‌के समान थी तथा जो सर्वोत्तम भूषण माने गये थे, उन मणिमय कुण्डलोंको अदितिने युद्धके लिये प्रस्थित हुए देवराज इन्द्रको दिया। उनसे भूषित होकर सहस्र-लोचन इन्द्र दिशाओं और विदिशाओंको प्रकाशित करते हुए बड़ी शोभा पाने लगे॥ १९-२०॥ सर्वसमर्थ देवराज इन्द्र युद्धके लिये उत्सुक हो सहस्र नेत्रोंकी विचित्र शोभा धारण किये ऐसे जान पड़ते थे मानो शरद्-ऋतुका मेघहीन स्वच्छ आकाश सहस्रों नक्षत्रोंसे चितकबरा दिखायी देता हो॥ २१॥

स्तुवन्ति यान्तं विपुलैर्वचोभि-
र्जयाशिषा चोर्जितसत्त्ववीर्यम्।
अत्रिर्वसिष्ठो जमदग्निरूर्वो
बृहस्पतिर्नारदपर्वतौ च॥ २२

तमन्वयुर्देवगणा महेन्द्रं
प्रयान्तमादित्यसमानवर्चसम् ।
विश्वे च देवा मरुतस्तथैव
साध्यास्तथाऽऽदित्यगणाश्च सर्वे॥ २३

ते देवराजस्य पुरंदरस्य
हयाश्च ये मातलिसंगृहीताः।
प्रयान्ति देवेश्वरमुद्वहन्तो
नभस्तलं पद्भिरिवाक्षिपन्तः॥ २४

ब्रह्मर्षयश्चैव महर्षयश्च
राजर्षयश्चाक्षयपुण्यलोकाः ।
सर्वेऽनुजग्मुः सहसा ज्वलन्तं
तेजोऽन्वितं शक्रममित्रसाहम्॥ २५

प्रगृह्य शूलांश्च परश्वधांश्च
दीप्तानि चापान्यशनीर्विचित्राः।
वर्माणि चामुच्य हिरण्मयानि
प्रयान्ति सूर्यांशुसमप्रभाणि॥ २६

तथा कुबेरोऽश्वसहस्रयुक्तं
श्रेष्ठं रथं सर्वसहं महार्हम्।
दिव्यं समारुह्य रणाय यातो
धनेश्वरो दीप्तगदाग्रहस्तः॥ २७

निशाचराः पावकधूमकाया
रक्षोवृषा रुद्रसखस्य तस्य।
विशालनानायुधदीप्तहस्ता
यान्त्यग्रतो वैश्रवणस्य राज्ञः॥ २८

ते लोहिताक्षाः परिवार्य देवं
व्रजन्ति भिन्नाञ्जनचूर्णवर्णाः।
यक्षोत्तमा यक्षपतिं धनेशं
रक्षन्ति वै पाशगदासिहस्ताः॥ २९

बढ़े हुए धर्म तथा बल-पराक्रमसे सम्पन्न इन्द्र जब युद्धके लिये चले, तब अत्रि, वसिष्ठ, जमदग्नि, ऊर्व, बृहस्पति, नारद तथा पर्वत—ये ऋषि अपने विपुल वचनोंद्वारा उन्हें विजयके लिये आशीर्वाद देते हुए उनकी स्तुति करने लगे॥ २२॥ सूर्यके समान तेजस्वी महेन्द्रको जाते देख उनके पीछे विश्वेदेव, मरुद्गण, साध्य, आदित्यगण तथा अन्य सब देवता भी चले॥ २३॥ जिनकी रास मातलिने पकड़ रखी थी, वे देवराज इन्द्रके घोड़े देवेश्वरकी सवारी ढोते हुए आकाशको अपने पैरोंसे तिरस्कृत करते हुए-से तीव्र गतिसे आगे बढ़ने लगे॥ २४॥

अक्षय पुण्य-लोकोंमें निवास करनेवाले ब्रह्मर्षि, महर्षि तथा राजर्षि—ये सब लोग सहसा तेजसे प्रज्वलित होने और शत्रुका सामना करनेवाले इन्द्रके पीछे-पीछे चल दिये॥ २५॥ वे हाथोंमें शूल, फरसे, दमकते हुए धनुष और विचित्र अशनि लेकर सूर्यके समान तेजस्वी सुवर्णमय कवच धारण करके युद्धके लिये आगे बढ़ने लगे॥ २६॥ इसी प्रकार धनेश्वर कुबेर सहस्र अश्वोंसे जुते हुए सब कुछ सहनेमें समर्थ बहुमूल्य एवं दिव्य उत्तम रथपर आरूढ़ हो युद्धके लिये चले, उनके हाथके अग्रभागमें दमकती हुई गदा शोभा पा रही थी॥ २७॥ विश्रवाके पुत्र तथा रुद्रके सखा राजा कुबेरके आगे नाना प्रकारके विशाल आयुधोंसे चमकीले हाथवाले बहुत-से निशाचारी राक्षसप्रवर जा रहे थे। उनके शरीर अग्नि और धूमके समान वर्णवाले थे॥ २८॥ जिनके शरीरकी कान्ति कटे हुए कोयलोंके चूर्णकी भाँति काली है, वे लाल नेत्रोंवाले यक्षशिरोमणि वीर हाथोंमें पाश, गदा और तलवार लिये यक्षराज धनेश्वरदेवको चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करते हैं॥ २९॥

पुण्यः प्रभुः प्राणपतिर्जितात्मा
वैवस्वतो धर्मभृतां वरिष्ठः।
तडिद्‌गणाभं शतवाजियुक्तं
रथं समारोहत सूर्यकल्पम्॥ ३०

तं लोकपालं पितरोऽनुजग्मु-
र्विविक्तपापा ज्वलितास्तपोभिः।
सर्वे च भूता भुवनप्रधाना
नानायुधव्यग्रकराः सुभीमाः॥ ३१

दण्डं महास्त्रं परिगृह्य देवो
लोकाङ्कुशं निग्रहनिश्चितार्थम्।
हिरण्मयानां कमलोत्पलानां
मालां मनोज्ञामवसज्य कण्ठे॥ ३२

स्थितोऽस्थिमेदामिषलोहितार्द्रं
सर्वासुराणां निधनं विरूपम्।
तेजोमयं मुद्गरमुग्ररूपं
विकर्षमाणोऽरुणधूम्रनेत्रः ॥ ३३

समन्वितो व्याधिशतैरनेकै-
र्ययौ हरिश्मश्रुरुदारसत्त्वः।
महासुराणां निधनाय बुद्धिं
चक्रे तदा व्याधिपतिः कृतान्तः॥ ३४

ततस्त्रिशीर्षैर्भुजगैर्बृहद्भि-
र्युक्तं रथं हेमचितं महात्मा।
आस्थाय कुन्देन्दुनिभं जलेशो
ययौ रणायासुरदर्पहन्ता॥ ३५

वैदूर्यमुक्तामणिभूषिताङ्ग-
स्तेजोमयः पाशगृहीतहस्तः।
महासुराणां निधनाय देवः
प्रयाति रूप्याङ्गदबद्धबाहुः॥ ३६

अपने मनको वशमें रखनेवाले, प्राणिमात्रके प्राणोंके अधिपति तथा धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ पुण्यात्मा प्रभु सूर्यपुत्र यम सौ घोड़ोंसे जुते हुए, विद्युद्गणोंसे प्रकाशित तथा सूर्यके समान तेजस्वी रथपर आरूढ़ हुए॥ ३०॥ तपस्यासे प्रकाशित होनेवाले पापरहित पितृगणोंने उन लोकपाल यमका अनुसरण किया। तीनों लोकोंमें जो प्रधान-प्रधान भयंकर भूत थे, वे सब हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर उनके पीछे-पीछे चले॥ ३१॥ समस्त जगत्‌पर अङ्कुश (नियन्त्रण) रखनेवाले दण्ड नामक महान् अस्त्रको, जो शत्रुओंका निश्चितरूपसे निग्रह करनेवाला था, हाथमें लेकर यमराजने अपने कण्ठमें सुवर्णमय कमलों और उत्पलोंकी मनोहर माला पहन ली थी॥ ३२॥

उनके नेत्र अरुण और धूम्रवर्णके थे। वे रथपर बैठकर अपने उस तेजोमय, भयंकर एवं विरूप मुद्गरको साथ लिये जा रहे थे, जो समस्त असुरोंके लिये कालरूप था और उनके मेद, मांस, अस्थि तथा रक्तसे भीगा हुआ था॥ ३३॥ उनकी मूँछ काली या नीली थी। उनका अन्तःकरण उदार था। रोग-व्याधियोंके स्वामी उन यमराजने नाना प्रकारकी सैकड़ों व्याधियोंको साथ लेकर बड़े-बड़े असुरोंके विनाशका निश्चय कर लिया था॥ ३४॥ तदनन्तर असुरोंके दर्पका दमन करनेवाले जलके स्वामी महात्मा वरुण कुन्द और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल तथा सुवर्णजटित रथपर, जिसमें तीन सिरवाले विशालकाय सर्प जुते हुए थे, आरुढ़ हो युद्धके लिये चले॥ ३५॥ उनके अङ्ग वैदूर्य, मुक्ता एवं मणियोंसे विभूषित थे, उनकी भुजाओंमें चाँदीके बाजूबंद बँधे हुए थे और उन्होंने अपने हाथमें पाश ले रखा था, इस प्रकार वे तेजस्वी देवता वरुण उन महान् असुरोंके विनाशके लिये समराङ्गणकी ओर प्रस्थित हुए॥ ३६॥

अन्वीयमानो जलदेवताभि-
निषेव्यमाणो जलजैश्च सत्त्वैः।
संस्तूयमानश्च महर्षिवृन्दैः
सम्पूज्यमानश्च महाभुजङ्गैः॥ ३७

कैलासशृङ्गप्रतिमोऽप्रमेयः
समुद्रनाथोऽमृतपो महात्मा।
महोरगैः स्वैस्तनयैः सुगुप्तो
ययौ रथेनार्कसमप्रभेण॥ ३८

युद्धाय तं यान्तमदीनसत्त्वं
नभस्तले चन्द्रमिवातिकान्तम्।
पश्यन्ति भूतानि महानुभावं
संहृष्टरोमाणि कृताञ्जलीनि॥ ३९

धातार्यमांशोऽथ भगो विवस्वान्
पर्जन्यमित्रौ च शशी च देवः।
त्वष्टा तथैवोर्जितविश्वकर्मा
पूषा च साक्षाद् दिवि देवराजः॥ ४०

सोरश्छदैः सध्वजकिङ्किणीकै-
र्वैदूर्यनिष्कैश्चितहेमकण्ठैः।
हयैर्वरैः शक्ररथप्रकाशै-
र्युक्तान् रथानारुरुहुः सुरास्ते॥ ४१

दिवाकराकारनिभानि केचि-
द्धुताशनार्चिःप्रतिमानि केचित्।
निशाकरांशुप्रतिमानि केचित्
तडिद्गणोद्योतनिभानि केचित्॥ ४२

नीलांशुमेघप्रतिमानि केचित्
कार्ष्णायसाकारनिभानि केचित्।
वर्माणि दिव्यानि महाप्रभाणि
त्वष्ट्रा कृतान्युत्तमभानुमन्ति॥ ४३

आमुच्य मालाश्च सुवर्णपुष्पाः
प्रयान्ति तोयानिलतुल्यवेगाः।

उस समय जलके अधिष्ठाता देवता उनका अनुसरण करते थे। जलमें उत्पन्न होनेवाले उनका अभिषेक कर रहे थे। महर्षियोंके समुदाय उनके गुण गा रहे थे और बड़े-बड़े भुजंग उनकी पूजामें लगे थे॥ ३७॥ समुद्रके स्वामी तथा अमृतपान करनेवाले महात्मा वरुण कैलास-शिखरके समान गौरवर्णके थे। उनकी शक्ति अप्रमेय थी। उनके पुत्र और बड़े-बड़े नाग उनकी भलीभाँति रक्षा करते थे। वे सूर्यके समान तेजस्वी रथसे चले॥ ३८॥ चन्द्रमाके समान अत्यन्त कान्तिमान् और उदार हृदयवाले महानुभाव वरुण जब युद्धके लिये जा रहे थे, उस समय आकाशमें समस्त प्राणी पुलकित-शरीरसे हाथ जोड़कर उनकी ओर देख रहे थे॥ ३९॥ धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान्, पर्जन्य, मित्र, चन्द्रदेव, त्वष्टा, तेजस्वी विश्वकर्मा, पूषा तथा साक्षात् देवराज इन्द्र—ये सभी देवता आकाशमें अच्छे घोड़ोंसे जुते हुए रथोंपर आरूढ़ थे। वे सभी घोड़े हृदयको आच्छादित करनेवाले कवचोंसे युक्त थे। उनके गलेमें वैदूर्यमणिके पदक और सोनेके हार शोभा पाते थे। वे अश्व ध्वज और छोटी-छोटी घंटिकाओंसे युक्त थे। उन सबका रंग वही था, जो इन्द्रके रथमें जुते हुए घोड़ोंका था (इन्द्रके रथमें हरे रंगके घोड़े जुते हुए थे)॥ ४०-४१॥ कुछ देवता सूर्यमण्डलके समान, कोई अग्निकी ज्वालाके समान, कोई चन्द्रमाकी किरणोंके सदृश, कुछ देवता विद्युत्की प्रभाके समान, कुछ नीलवर्णवाले मेघोंके सदृश और कोई काले लोहेके समान महान् प्रभापुञ्जसे युक्त तथा उत्तम किरणोंसे उद्भासित दिव्य कवच धारण किये हुए थे, जिन्हें साक्षात् विश्वकर्माने बनाया था। जिनमें सुवर्णमय पुष्प गूँथे गये थे, ऐसी मालाएँ पहनकर जल और वायुके समान तीव्र वेगवाले वे देवता रणभूमिकी ओर बढ़े जा रहे थे।

द्वावश्विनौ चैव महानुभावौ
रूपोत्तमौ धर्मभृतां वरिष्ठौ ॥ ४४
रथं समारुह्य सुवर्णचित्रं
रणं गतौ काञ्चनतुल्यवर्णौ।
मनोः सुता वै वसवश्च सर्वे
बलोत्कटा दैत्यवधाय देवाः ॥ ४५
रथांश्च नागांश्च महाप्रमाणा-
नास्थाय जग्मुः सुशुभास्त्रहस्ताः।
रुद्राश्च सर्वेऽरुणधूमवर्णाः
श्वेतैर्ययुर्गोपतिभिर्बृहद्भिः ॥ ४६
महौजसः सर्वगुणोपपन्ना
दीप्तात्मनो भाभिरिव ज्वलन्तः।
नानायुधव्यग्रकरैर्भुजैस्तै-
र्लोकान् समस्तानिव निर्दहन्तः ॥ ४७
ययुः ससैन्यास्तपनीयनद्धाः
सविद्युतस्तोयधरा यथैव।
विश्वे च देवास्तपसा ज्वलन्तो
वीर्योत्तमाः सूर्यमरीचिवर्णाः ॥ ४८
ययुः ससैन्या युधि दुर्निवार्या
बलोत्कटाः पद्मसहस्रमालाः।
रथैः सुयुक्तैस्तपनीयवर्णै-
र्वैदूर्यमुक्तामणिदामचित्रैः ॥ ४९
नानाविधाकारसमाकुलास्ते
पारिप्लवैश्चैव सितातपत्रैः।
तेजोमयैः काञ्चनचारुचित्रैः
सुनिर्मलैः पावकसंनिभास्ते ॥ ५०
सोरश्छदैः सध्वजकिङ्किणीकै-
र्हयैश्च वायोः समवेगवद्भिः।
दिशां गजैश्चैव महाबलैस्तैः
कैलासशृङ्गप्रतिमैर्महद्भिः ॥ ५१
प्रजग्मुरुग्रायुधचापहस्ता-
श्चतुर्युगान्ते ज्वलिता इवोल्काः।

रूपमें सबसे उत्तम तथा धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ दोनों अश्विनीकुमार महानुभाव भी सुवर्णजटित रथपर आरूढ़ हो रणभूमिमें गये। उन दोनोंके शरीरकी कान्ति सुवर्णके तुल्य थी। मनुके पुत्र तथा समस्त वसु देवता जो उत्कट बलशाली और हाथोंमें उत्तम अस्त्र धारण करनेवाले थे, बड़े-बड़े रथों और हाथियोंपर आरूढ़ हो दैत्योंका वध करनेके लिये चले। अरुण और धूमके समान वर्णवाले समस्त रुद्रगण, जो महाबली, सर्वगुणसम्पन्न और दीप्तिमान् शरीरवाले थे तथा अपनी प्रभाओंसे प्रज्वलित-से हो रहे थे, श्वेतवर्णवाले विशाल वृषभोंद्वारा युद्धभूमिमें गये। नाना प्रकारके आयुधोंसे युक्त हाथवाली भुजाओंसे वे समस्त लोकोंको दग्ध करते हुए-से जान पड़ते थे॥ ४२—४७ ॥ सुवर्णमय कवच बाँधकर सेनाको साथ लिये जब वे आगे बढ़े, उस समय बिजलियोंसे युक्त मेघोंके समान शोभा पाने लगे। सूर्यकी किरणोंके समान कान्तिमान्, उत्तम बलशाली तथा तपस्याके तेजसे प्रकाशित होनेवाले विश्वेदेवगण भी सेना साथ लेकर युद्धके लिये चले। शत्रुओंके लिये उनके वेगको रोकना कठिन था। वे उत्कट बलशाली तथा सहस्र कमलोंकी मालाओंसे अलंकृत थे। सोनेके समान कान्तिवाले तथा वैदूर्य, मुक्ता और मणियोंकी लड़ियोंसे विचित्र शोभा पानेवाले, भलीभाँति जुते हुए रथोंद्वारा वे सब लोग समरभूमिमें गये। वे नाना प्रकारकी आकृतियोंसे युक्त थे। उनके ऊपर सुवर्णनिर्मित, मनोहर, विचित्र, अत्यन्त निर्मल, तेजस्वी और सब ओर घूमनेवाले श्वेत छत्र तने हुए थे। जिनके कारण वे सब लोग प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ ४८—५० ॥ कवच, ध्वज और घुँघुरुओंसे युक्त वायुके समान वेगशाली घोड़ों तथा कैलासशिखरके समान उज्ज्वल, विशालकाय एवं महाबली दिग्गजोंद्वारा वे यात्रा कर रहे थे। उनके हाथोंमें भयंकर धनुष थे, जिनसे वे युगान्तकालमें प्रज्वलित होनेवाली उल्काओंके समान प्रतीत होते थे।

साध्याश्च देवा सुमहाप्रभावाः
स्वाधीनचक्राः प्रतिदीप्तवक्त्राः॥ ५२

प्रयान्ति जाम्बूनदभूषिताङ्गा
गाङ्गौघमात्रैर्गगनैर्बलौघैः ।
विद्योतयन्तो विदिशो दिशश्च
महाबलास्ते जयतां वरिष्ठाः॥ ५३

वरिष्ठपुष्टाष्टभुजाः सुदृप्ता
वैश्वानरार्कप्रतिमप्रभावाः ।
ते ब्रह्मविद्भिश्च नमस्यमानाः
सम्पूज्यमानाश्च सुरैः सशक्रैः॥ ५४

गन्धर्वसंघैरनुगम्यमाना
वधाय तेषामसुराधिपानाम्।
वैदूर्यवज्रस्फटिकाग्रचित्रै-
र्ध्वजैः सुवर्णैश्च परिष्कृतानाम्॥ ५५

रूपं बभौ चोत्कटभूषणानां
दैत्येन्द्रनाशाय विभूषितानाम्।
आत्मप्रभाभिश्च रणोत्कटाभि-
र्वर्मप्रभाभिश्च तमोनुदाभिः॥ ५६

ध्वजोत्थभाभिः स्वशरोरुभाभि-
र्महाप्रभाभिश्च महोज्ज्वलाभिः।
विभान्ति ते देववराः ससाध्याः
प्रध्मातशङ्खस्वनसिंहनादाः ॥ ५७

महारथस्थास्त्रिदिवौकसस्ते
महाबलाः शत्रुबलं प्रयान्ति।
महास्त्रहस्ता ययुरुग्रकाया
महासुराणां निधनाय देवाः॥ ५८

तथैव सर्वे मरुतोऽतिवीर्या
बलोत्कटास्ते समरं प्रतीताः।

महान् प्रभावशाली साध्यदेवता सारी सेनाको अपने अधीन करके युद्धके लिये जा रहे थे। उनके मुख दिव्य दीप्तिसे उद्दीप्त हो रहे थे। उन्होंने अपने अङ्गोंको जाम्बूनदके आभूषणोंसे विभूषित कर रखा था। उनके साथ गङ्गाके जलप्रवाह और आकाशके समान अनन्त एवं असंख्य सैनिक थे। विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ वे महाबली साध्यगण अपने तेजसे समस्त दिशाओं और विदिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे॥ ५१—५३॥ उनके आठ भुजाएँ थीं, जो श्रेष्ठ एवं पुष्ट थीं। उन्हें अपने बलपर गर्व था। वे अग्नि एवं सूर्यके समान प्रभावशाली थे। ब्रह्मवेत्ता पुरुष उन्हें नमस्कार करते थे। इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता उनकी पूजा करते थे तथा दैत्येश्वरोंका वध करनेके लिये जाते हुए उन साध्यगणोंके पीछे गन्धर्वोंके समुदाय चलते थे। वैदूर्य, हीरे और स्फटिकमणिसे जटित होनेके कारण विचित्र शोभा पानेवाले ध्वजों और सुवर्णमय आभूषणोंसे जिनकी सुन्दर शोभा होती थी, जो उत्कट आभूषण पहने हुए थे तथा दैत्येन्द्रोंके विनाशके लिये ही जिन्होंने अपनेको विभूषित किया था, उन साध्य देवताओंका रूप वहाँ अद्भुत शोभा पा रहा था। युद्धके लिये उत्कट प्रतीत होनेवाली अपने शरीरकी प्रभा, अन्धकारको दूर करनेवाली कवचोंकी प्रभा, ध्वजसे उत्पन्न होनेवाली आभा तथा अपने बाणसमूहोंसे उद्गत हुई प्रचुर प्रभा—इन सबके योगसे प्रकाशित होनेवाली परम उज्ज्वल महाप्रभाओंसे वे साध्यगणोंसहित श्रेष्ठ देवता बड़ी शोभा पा रहे थे। वे महाबली देवता अपने विशाल रथोंपर बैठकर शङ्खध्वनि और सिंहनाद करते हुए शत्रुसेनाकी ओर बढ़ने लगे। उनके हाथोंमें बड़े-बड़े अस्त्र थे। उनकी काया भयंकर थी; वे देवता उन महादैत्योंका संहार करनेके लिये चल दिये॥ ५४—५८॥ इसी प्रकार अत्यन्त पराक्रमी और उत्कट बलशाली समस्त मरुद्गण, जो महान् मेघके

ययुर्महामेघसमानवर्णा-
श्चक्रायुधास्तोयदनादनादाः ॥ ५९

महेन्द्रकेतुप्रतिमा महाबलाः
प्रगृह्य सर्वासुरसूदनां गदाम्।
रणोत्कटा लोहितचन्दनाक्ताः
सहेममाल्याम्बरभूषिताङ्गाः ॥ ६०

ते युद्धशौण्डाः सभुजास्त्रवीर्या
बलोत्कटाः क्रोधविलोहिताक्षाः।
ययुः सजाम्बूनदपद्ममाला
यथेष्टनानाविधकामरूपाः ॥ ६१
खड्गप्रभाश्यामलितांसपीठाः
पुरंदरं वै परिवार्य देवाः।

वैदूर्यचामीकरचारुरूपा-
ण्याबध्य गात्रेषु महाप्रभाणि ॥ ६२
वर्माणि दैत्यास्त्रनिवारणानि
प्रयान्ति युद्धाय सपत्नसाहाः।

तैरुत्थितैः काञ्चनवेदिकाढ्यै-
र्वरध्वजैर्भास्कररश्मिवर्णैः ॥ ६३
ययौ सुराणां पृतनोग्रभासा
समुन्नदन्ती युधि सिंहनादान्।

इत्येवमुक्तं त्रिदिवेश्वरस्य
सैन्यं तदासीत् सुमहत्प्रभावम् ॥ ६४
युद्धं प्रयातस्य जयावहस्य
वधाय तेषामसुराधिपानाम् ॥ ६५

समान श्याम वर्णवाले तथा चक्रधारी थे, मेघकी भाँति गर्जना करते हुए विजयका दृढ़ विश्वास लिये समरभूमिकी ओर चले॥ ५९॥ वे इन्द्रके ध्वजस्वरूप ऐरावतके समान महान् बलवान् थे। युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले थे। उनके सारे अङ्ग लाल चन्दनसे चर्चित तथा सोनेके हार और दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित थे। उन्होंने समस्त असुरोंका संहार करनेवाली गदा लेकर युद्धके लिये यात्रा की थी॥ ६०॥ वे सब-के-सब युद्धमें कुशल थे। उनमें बाहुबल और अस्त्रबलकी पूर्णता थी। वे उत्कट बलशाली थे। उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं। वे देवता सुवर्ण तथा कमलोंकी माला धारण करके इच्छानुसार नाना प्रकारके रूप धारण किये देवराज इन्द्रको चारों ओरसे घेरकर रणभूमिकी ओर जा रहे थे। उनके कंधे और पीठ खड्गोंकी प्रभासे साँवले दिखायी देते थे। शत्रुओंका वेग सहन करनेमें समर्थ वे देवता अपने अङ्गोंमें वैदूर्य और सुवर्णसे जटित होनेके कारण मनोहररूपवाले परम कान्तिमान् कवचोंको, जो दैत्योंके अस्त्रोंका निवारण करनेवाले थे, बाँधकर युद्धके लिये जा रहे थे। सोनेकी वेदिकाओंसे युक्त और सूर्यकी किरणोंके समान कान्तिमान् ऊँचे उठे हुए श्रेष्ठ ध्वजोंसे उपलक्षित होनेवाली देवताओंकी वह भयंकर सेना युद्धके लिये जोर-जोरसे सिंहनाद करती हुई जा रही थी। इस प्रकार उन असुरेश्वरोंके वधके लिये युद्धस्थलकी ओर प्रस्थित हुए विजयशाली देवेश्वर इन्द्रकी वह सेना बड़ी प्रभावशालिनी थी। जिसका इस रूपमें वर्णन किया गया है॥ ६१—६५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारविषयक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५२॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

देवताओं और असुरोंका द्वन्द्वयुद्ध, भीषण उत्पात, ब्रह्माजी तथा सनकादि योगेश्वरोंका युद्ध देखनेके लिये आगमन

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रवृत्तोऽसुरदेवविग्रह-
स्तदद्भुतो भाति सुरासुराकुलः।
वेलामतिक्रम्य युगान्तकाले
महार्णवान्योन्यमिवाश्रयन्तः ॥ १

नानायुधोद्योतविदीपिताङ्गा
महाबला व्यायतकार्मुकास्ते।
रणोत्सुका वारणहस्तहस्ताः
सुदुर्जयास्तोयदनादनादाः ॥ २

विस्फारयन्तः सहसा धनूंषि
चक्राणि चादित्यसमप्रभाणि।
समुत्क्षिपन्तो ह्यशनीश्च घोरान्
खड्गाश्च ते वज्रमुखाश्च शक्तीः ॥ ३

महागदाः काञ्चनपट्टनद्धा-
स्तथायसान् कार्मुकमुद्गरांश्च।
शूलांश्च वृक्षांश्च विगृह्य दीप्तान्
नदन्ति शूराः शतशो रणस्थाः ॥ ४

एतस्मिन्नन्तरे तेषामन्योन्यमभिनिघ्नताम्।
द्वन्द्वयुद्धान्यवर्तन्त देवानां दानवैः सह ॥ ५

मरुतां पञ्चमो यस्तु स बाणेनाभ्ययुध्यत।
महाबलः सुरवरः सावित्र इति यं विदुः ॥ ६

दनायुषायाः पुत्रस्तु बलो नाम महासुरः।
सोऽयुध्यत रणेऽत्युग्रो ध्रुवेण वसुना सह ॥ ७

नमुचिश्चासुरश्रेष्ठो धरेण सह युध्यत।
प्रवरौ विश्वकर्माणौ ख्यातौ देवासुरेश्वरौ ॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर देवताओं और असुरोंका युद्ध आरम्भ हुआ। देवताओं और दैत्योंसे व्याप्त होनेके कारण उसकी अद्भुत शोभा हो रही थी। जैसे प्रलयकालमें चारों दिशाओंके महासागर अपनी सीमाको लाँघकर एक-दूसरेसे मिल जाते हैं (उसी प्रकार देवता और दैत्य उस युद्धमें एक-दूसरेसे मिश्रित हो गये) ॥ १ ॥ वे महाबली योद्धा बड़े-बड़े धनुष ताने हुए युद्धके लिये उत्सुक हो रहे थे। उनके अङ्ग नाना प्रकारके आयुधोंकी प्रभासे प्रकाशित होते थे। उनकी भुजाएँ हाथियोंकी सूँड़के समान मोटी थीं। उनपर विजय पाना बहुत ही कठिन था और उनका सिंहनाद मेघोंकी गम्भीर गर्जनाके समान जान पड़ता था ॥ २ ॥ वे सहसा धनुषकी टंकार करने लगते थे तथा सूर्यके समान तेजस्वी चक्र, भयंकर अशनि, खड्ग तथा वज्रमुखी शक्तियोंका लगातार प्रहार करते थे ॥ ३ ॥ रणभूमिमें खड़े हुए सैकड़ों शूरवीर सुवर्णपत्रसे मढ़ी हुई विशाल गदाओं, लोहेके बने हुए धनुषों, मुद्गरों, चमकीले त्रिशूलों और वृक्षोंको हाथमें लेकर वहाँ गर्जना करते थे ॥ ४ ॥ इस बीचमें एक-दूसरेपर चोट करते हुए उन सैनिकोंमेंसे देवताओंका दानवोंके साथ द्वन्द्वयुद्ध होने लगा ॥ ५ ॥ मरुद्गणोंमें जो पाँचवें थे और जिनको लोग महाबली सुरश्रेष्ठ सावित्रके नामसे जानते हैं, वे बाणासुरके साथ युद्ध करने लगे ॥ ६ ॥

दनायुषाका पुत्र अत्यन्त भयंकर महान् असुर बल उस रणभूमिमें ध्रुव नामक वसुके साथ युद्ध करने लगा ॥ ७ ॥ असुरोंमें श्रेष्ठ नमुचि धर नामक वसुके साथ जूझने लगा। जो दोनों श्रेष्ठ विश्वकर्माके रूपमें विख्यात हैं, वे देवेश्वर त्वष्टा और असुरेश्वर मय परस्पर युद्ध करने लगे ॥ ८ ॥

पुलोमा तु महादैत्यो वायुना सह युध्यत।
ससैन्यः पर्वताकारो रणेऽयुध्यत दंशितः॥ ९

हयग्रीवस्तु दितिजः सह पूष्णा त्वयुध्यत।
शूरेणामितवीर्येण भास्कराकारवर्चसा॥ १०

शम्बरस्तु महादैत्यो महामायो महासुरः।
भगेनायुध्यत तदा सहितो युद्धदुर्मदः॥ ११

शरभः शलभश्चैव दैत्यानां चन्द्रभास्करौ।
प्रयुद्धौ सह सोमेन शैशिरास्त्रेण धीमता॥ १२

विरोचनस्तु बलवान् बलेर्बलवतः पिता।
विष्वक्सेनेन साध्येन देवेन च स युध्यत॥ १३

कुजम्भस्तु महातेजा हिरण्यकशिपोः सुतः।
अंशेनायुध्यत तदा प्रासप्रहरणेन वै॥ १४

असिलोमा तु बलिना मारुतेन समं विभो।
तदायुध्यत दीप्तास्यो विकृतः पर्वतायुधः॥ १५

दनायुषायाः पुत्रस्तु वृत्रो नाम महासुरः।
अश्विभ्यां देववैद्याभ्यां सह युध्यत संयुगे॥ १६

एकचक्रस्तु दितिजश्चक्रहस्तो दुरासदः।
सहायुध्यत देवेन साध्येन दितिजारिणा॥ १७

बलस्तु मधुपिङ्गाक्षो वृत्रभ्राता महासुरः।
मृगव्याधेन रुद्रेण सहायुध्यत वीर्यवान्॥ १८

राहुस्तु विकृताकारः शतशीर्षा महोदरः।
अजैकपादेन रणे सहायुध्यत दंशितः॥ १९

केशी तु दानवश्रेष्ठः प्रावृट्कालाम्बुदप्रभः।
धनेश्वरेण भीमेन सहायुध्यत संयुगे॥ २०

वृषपर्वा तु बलिना पावनेन महारणे।
विश्वेदेवेन विश्वेशः सहायुध्यत वीर्यवान्॥ २१

प्रह्लादस्तु महावीर्यो वीरैः स्वैस्तनयैर्वृतः।
युयुधे सह कालेन रणे काल इवापरः॥ २२

महादैत्य पुलोमाने वायुदेवताके साथ युद्ध छेड़ दिया। वह पर्वताकार दैत्य कवच धारण करके अपनी सेनाको साथ लिये रणभूमिमें जूझ रहा था॥ ९॥ हयग्रीव नामक दैत्य सूर्यतुल्य तेजस्वी अमित पराक्रमी शूरवीर पूषाके साथ लड़ने लगा॥ १०॥ महामायावी महान् असुर रणदुर्मद महादैत्य शम्बर भगदेवताके साथ युद्ध करने लगा॥ ११॥ शरभ और शलभ ये दोनों वीर दैत्योंमें सूर्य और चन्द्रमाके समान तेजस्वी थे। वे शैशिरास्त्रधारी बुद्धिमान् सोमके साथ जूझने लगे॥ १२॥ बलवान् बलिका पिता महाबली विरोचन विष्वक्सेन नामक साध्य-देवताके साथ भिड़ गया॥ १३॥ महातेजस्वी कुजम्भ, जो हिरण्यकशिपुके पुत्रका पुत्र था, उस समय प्रासधारी अंशके साथ युद्ध करने लगा॥ १४॥ प्रभो! तेजस्वी मुखवाला विकृताङ्ग दैत्य असिलोमा पर्वतखण्डरूपी आयुध लेकर उस समय बलवान् मारुतके साथ संग्राम करने लगा॥ १५॥ दनायुषाका पुत्र महान् असुर वृत्र युद्धस्थलमें देववैद्य अश्विनीकुमारोंके साथ जूझने लगा॥ १६॥ हाथमें चक्र लिये हुए एकचक्र नामक दुर्जय दैत्यने दैत्योंके शत्रु साध्य-देवके साथ युद्ध किया॥ १७॥ वृत्रासुरके भाई, मधुके समान पिङ्गल नेत्रवाले, पराक्रमी महान् असुर बलने मृगव्याध नामक रुद्रके साथ युद्ध किया॥ १८॥ सैकड़ों सिर और बड़े पेटवाले विकृताकार दैत्य राहुने कवच धारण करके रणभूमिमें अजैकपाद नामक रुद्रके साथ संग्राम छेड़ दिया॥ १९॥ वर्षाकालके मेघकी भाँति काले रंगवाले दानवशिरोमणि केशीने युद्धस्थलमें धनेश्वर भीमके साथ युद्ध ठाना॥ २०॥ पराक्रमी और जगत्के शासक वृषपर्वाने उस महासमरमें पावन नामक बलवान् विश्वेदेवके साथ युद्ध किया॥ २१॥ अपने वीर पुत्रोंसे घिरे हुए महापराक्रमी प्रह्लाद रणभूमिमें दूसरे कालके समान होकर कालके ही साथ युद्ध करने लगे॥ २२॥

अनुह्लादः कुबेरेण धनदेन महारणे।
गदाहस्तेन युयुधे क्षोभयन् रिपुवाहिनीम्॥ २३

विप्रचित्तिस्तु दैतेयो वरुणेन महात्मना।
प्रवृत्तो वै रणं कर्तुं दैत्यानां नन्दिवर्धनः॥ २४

बलिस्तु सह शक्रेण सुरेशेन महात्मना।
युयुधे देवराजेन बलिना बलवान् रणे॥ २५

शेषा देवाश्च दैत्याश्च जघ्नुरन्योन्यमाहवे।
विनर्दन्तो महानादान् प्रासासिशरशक्तिभिः॥ २६

अदृश्यन्त महोत्पाता ये प्रोक्ता जगतः क्षये।
मारुताः सप्त ते क्षुब्धा व्यशीर्यन्त महीधराः॥ २७

सप्त चैवोत्थिताः सूर्याः शोषयन्तो महार्णवान्।
बहुनाभिद्यत धरा वायुना मथिता यथा॥ २८

व्युत्थिताश्च महामेघाः शक्रचापाङ्कितोदराः।
प्रणेदुः सर्वभूतानि सर्वाः सतिमिरा दिशः॥ २९

देवानामजयो घोरो दृश्यते कालनिर्मितः।
घोरोत्पातः समुद्भूतो युगान्तसमये यथा॥ ३०

न ह्यन्तरिक्षं न दिशो न भूमि-
र्न भास्करोऽदृश्यत रेणुजालैः।
ववुश्च वातास्तुमुलाः सधूमा
दिशश्च सर्वास्तिमिरोपगूढाः॥ ३१

एते चान्ये च बहवो दृश्यन्ते देवनिर्मिताः।
भूमौ तथान्तरिक्षे च महोत्पाताः समन्ततः॥ ३२

तद् युद्धं देवदैत्यानां भीमानां भीमदर्शनम्।
अपश्यत गुरुर्ब्रह्मा सर्वैरेव सुरैः सह॥ ३३

वेदैश्चतुर्भिः साङ्गैश्च विद्याभिश्च सनातनः।
पद्मयोनिर्वृतः श्रीमान् सिद्धैश्च परमर्षिभिः॥ ३४

नानामणिस्तम्भसहस्रचित्र-
मारुह्य यानं ददृशे स्वयम्भूः।
सुभास्वरं भूतसहस्रयुक्तं
प्रदीप्यमानो वपुषा वरेण॥ ३५

अनुह्लाद शत्रुसेनाको क्षोभमें डालता हुआ उस महासमरमें गदाधारी धनदाता कुबेरके साथ जूझने लगा॥ २३॥ दैत्योंका आनन्द बढ़ानेवाला विप्रचित्ति नामक दैत्यने महात्मा वरुणके साथ युद्ध करना आरम्भ किया॥ २४॥ उस रणभूमिमें बलवान् दैत्यराज बलिने महाबली देवराज सुरेश्वर महात्मा इन्द्रके साथ संग्राम आरम्भ किया॥ २५॥ शेष देवता और दैत्य युद्धस्थलमें जोर-जोरसे सिंहनाद करते हुए प्रास, खड्ग, बाण और शक्तियोंद्वारा एक-दूसरेको चोट पहुँचाने लगे॥ २६॥ उस समय ऐसे बड़े-बड़े उत्पात दिखायी देने लगे, जिन्हें प्रलयकालमें प्रकट होनेयोग्य बताया गया है। प्रवह आदि जो सात प्रकारके वायु हैं, वे क्षुब्ध हो उठे। पर्वत स्वयं ही बिखर-बिखरकर गिरने लगे॥ २७॥ महासागरोंको सोखते हुए सात सूर्य उदित हो गये। प्रचण्ड वायुने इस पृथ्वीको इस प्रकार विदीर्ण कर दिया, जैसे इसे मथ डाला हो॥ २८॥ आकाशमें बड़े-बड़े मेघोंकी घटा घिर आयी। उसका मध्यभाग इन्द्रधनुषसे अङ्कित हो गया। समस्त प्राणी आर्तनाद करने लगे और सम्पूर्ण दिशाओंमें अन्धकार छा गया॥ २९॥ कालकी प्रेरणासे देवताओंकी घोर पराजय दिखायी देने लगी। जैसा प्रलयकालमें होता है, वैसा ही भयंकर उत्पात प्रकट होने लगा॥ ३०॥ न तो अन्तरिक्ष, न दिशाएँ, न भूमि और न सूर्य ही दिखायी देते थे। सबपर धूलका जाल-सा बिछ गया था। धूमयुक्त भयंकर वायु चलने लगी और सारी दिशाएँ अन्धकारसे आच्छन्न हो गयीं॥ ३१॥ ये तथा और भी बहुत-से देवनिर्मित बड़े-बड़े उत्पात पृथ्वी और आकाशमें सब ओर दिखायी देने लगे॥ ३२॥ भीषण देवताओं और दैत्योंका वह युद्ध देखनेमें बड़ा भयंकर था। लोकगुरु ब्रह्माजीने समस्त देवताओंके साथ उस युद्धको देखा॥ ३३॥ छहों अङ्गोंसहित चारों वेदों तथा चारों विद्याओंसे घिरे हुए सनातन पद्मयोनि ब्रह्माजीको सिद्ध और महर्षिगण सब ओरसे घेरकर खड़े थे॥ ३४॥ नाना प्रकारके सहस्रों मणिमय खम्भोंसे विचित्र शोभा पानेवाले तथा सहस्रों भूतगणोंसे जुते हुए तेजस्वी विमानपर आरूढ़ हो स्वयम्भू ब्रह्माजी अपने श्रेष्ठ शरीरसे देदीप्यमान दिखायी दे रहे थे॥ ३५॥

सुतप्तजाम्बूनदभक्तिचित्र-
मानन्दभेरीशतसम्प्रणादम्।
नक्षत्रचण्डांशुभिरंशुमन्तं
वैदूर्यसोमार्कविभूषिताङ्गम्॥ ३६

तमात्मजा वै पुलहः पुलस्त्य-
स्तथा मरीचिर्भृगुरङ्गिराश्च।
ऋक्सामभिः सम्यगभिष्टुवन्तः
सेवन्ति देवं वरदं विमाने॥ ३७

तं पावका लोकगुरुं स्वयम्भुवं
साङ्गाश्च वेदा मखदेवताश्च।
सेवन्ति देवं भुवनेश्वरेशं
भूतानि चान्यानि महानुभावम्॥ ३८

एते बभूवुश्च महर्षिसंघा
वैश्वानराः पावकयोनयश्च।
सर्वे ययुर्देवपुरोहिताश्च
युद्धोत्सुकाः सर्वसुरासुराणाम्॥ ३९

योगेश्वराः षट् च दिवाकराभा
विभूषणैर्भूषितसर्वदेहाः ।
अन्तर्हिता वै ददृशुर्नभःस्था
नारायणश्चैव नरश्च देवाः॥ ४०

वक्त्रैश्चतुर्वेदधरैश्चतुर्भिः
सम्पूर्णचन्द्रप्रतिमैः सुकान्तैः।
सर्वा दिशो निस्तिमिराश्चकार
नवोदितोऽसौ शरदीव चन्द्रः॥ ४१

उनका विमान तपाये हुए सुवर्णद्वारा निर्मित विभिन्न चित्र-मूर्तियोंसे सुशोभित था। उसमें सहस्रों भेरियोंका आनन्दमय शब्द गूँजता रहता था। नक्षत्रों तथा सूर्यकी तेजोमयी मूर्तियोंके कारण वह किरणोंकी प्रभासे परिपूर्ण था और वैदूर्यमणि तथा चन्द्रकान्त एवं सूर्यकान्त-मणियोंसे (अथवा सूर्य एवं चन्द्रमाकी मूर्तियोंसे) उस विमानका प्रत्येक अङ्ग विभूषित था॥ ३६॥ उस समय विमानपर बैठे हुए वरदायक देवता ब्रह्माजीकी, उन्हींके पुत्र पुलह, पुलस्त्य, मरीचि, भृगु तथा अङ्गिरा ऋषि ऋग्वेद एवं सामवेदके मन्त्रोंद्वारा सम्यक्-रूपसे स्तुति करते हुए उनकी सेवामें तत्पर थे॥ ३७॥ उन लोकगुरु, महानुभाव, भुवनेश्वरेश्वर देवता स्वयम्भू ब्रह्माजीकी सेवामें अग्नि, साङ्ग वेद, यज्ञदेवता तथा अन्यान्य भूत (प्राणी) भी संलग्न थे॥ ३८॥ महर्षियोंके समुदाय, वैश्वानरगण, अग्निसे जिनकी उत्पत्ति हुई है, वे ऋषि तथा देवताओंके समस्त पुरोहित—ये सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंके उस युद्धको देखनेके लिये उत्सुक हो वहाँ उपस्थित हुए थे॥ ३९॥ छः योगेश्वर (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, कपिल और जैगीषव्य), जो सूर्यके समान तेजस्वी थे और सारे अङ्गोंमें उत्तमोत्तम आभूषणोंसे विभूषित भी थे, अदृश्यभावसे आकाशमें खड़े हो उस युद्धका दृश्य देख रहे थे। भगवान् नारायण, नर तथा कतिपय देवता भी अदृश्यभावसे उस युद्धका अवलोकन करते थे॥ ४०॥ शरत्कालके नवोदित चन्द्रमाके समान ब्रह्माजी चार वेदोंको धारण करनेवाले अपने चारों मुखोंसे, जो पूर्ण चन्द्रमण्डलके समान परम मनोहर कान्तिसे युक्त थे, सम्पूर्ण दिशाओंको अन्धकाररहित कर रहे थे॥ ४१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि देवासुरयुद्धे सनकादिकागमनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें देवताओं और असुरोंके युद्धमें सनकादिका आगमन नामक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५३॥

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

देवताओं और असुरोंके युद्धका यज्ञके रूपमें वर्णन, दोनों सेनाओंका तुमुल युद्ध तथा सावित्र और ध्रुवकी पराजय

वैशम्पायन उवाच

उभयोः सेनयो राजन् भूयो युद्धमवर्तत।
नादेन संचालयतां त्रैलोक्यमिदमव्ययम्॥ १

गोमुखाडम्बराणां च भेरीणां मुरजैः सह।
झल्लरीडिण्डिमानां च व्यश्रूयन्त महास्वनाः॥ २

प्रवृत्तो युद्धयज्ञस्तु तुमुलो लोमहर्षणः।
रणमध्ये महानादः स्वर्गीयः शूरसम्मतः॥ ३

युद्धयज्ञस्य नेताभूत् प्रह्लादो दैत्यसत्तमः।
विरोचनस्तथाध्वर्युर्युद्धयज्ञप्रवर्तकः॥ ४

होता चैवात्र नमुचिर्वृत्रः स्तोत्रोपकल्पकः।
मन्त्रा दैत्याः समाख्याता यज्ञकर्मणि तत्र वै॥ ५

अनुयातश्च पितरमधिको वा पराक्रमैः।
यष्टा तत्राभवद् बाणः संयुगे चोपतिष्ठते॥ ६

ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं स्थूणाकर्णं सुदुर्जयम्।
मन्त्रास्तत्राभ्यवर्तन्त साध्वनुह्लादयोजिताः॥ ७

उद्गाता च मयः श्रीमान् स्थितः शत्रुभयंकरः।
विनदन् दितिजश्रेष्ठो देवानीकं व्यदारयत्॥ ८

बलिस्तु राजा द्युतिमान् स्वयं तत्र महासुरः।
जाप्यैर्होमैश्च संयुक्तो ब्रह्मत्वमकरोत् प्रभुः॥ ९

रणाग्निर्ज्वलितो घोरो वैरेन्धनसमीरितः।
हूयते त्वसुरैस्तत्र देवो विष्णुः सुरैः सह॥ १०

शङ्खशब्दैः सुतुमुलैर्भेरीणां च महास्वनैः।
उद्घुष्टं विमलं चैव सुब्रह्मण्यं प्रयुज्यते॥ ११

बलश्च बलकश्चैव पुलोमा च महासुरः।
प्रशस्तं च समं कृत्वा सत्रं सम्यक् प्रचक्रिरे॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! पुनः दोनों सेनाओंमें घोर युद्ध होने लगा। गोमुख, बिगुल, भेरी, ढोल, झाँझ और नगाड़ोंके बड़े भारी शब्द सुनायी देने लगे। वे बाजे अपनी तुमुल ध्वनिसे तीनों लोकोंको विचलित कर रहे थे॥ १-२॥ वहाँ रोंगटे खड़े कर देनेवाला भयंकर युद्धयज्ञ होने लगा, जो स्वर्गरूपी फलकी प्राप्ति करानेवाला था। उस संग्राममें महान् सिंहनाद एवं आर्तनाद होता था, जो शूरवीरोंके लिये अभिमत है॥ ३॥ उस युद्धयज्ञके नेता हुए दैत्यप्रवर प्रह्लाद। उनका पुत्र विरोचन उस युद्धयज्ञका प्रवर्तक अध्वर्यु हुआ॥ ४॥ इसमें नमुचि होता और वृत्रासुर प्रस्तोता हुआ। उस यज्ञकर्ममें दैत्योंको ही मन्त्र कहा गया है॥ ५॥ जो पराक्रमद्वारा अपने पिता बलिका अनुसरण करता था अथवा पितासे बढ़कर पराक्रमी था, वह बाणासुर उस युद्धयज्ञका यजमान बना और युद्धस्थलमें बराबर उपस्थित रहा॥ ६॥ अनुह्लादके द्वारा भलीभाँति प्रयुक्त हुए ऐन्द्र, पाशुपत, ब्राह्म और अत्यन्त दुर्जय स्थूणाकर्ण नामक अस्त्र वहाँ मन्त्र थे॥ ७॥ शत्रुओंके लिये भयंकर श्रीमान् मयासुर वहाँ उद्गाता बनकर खड़ा था। वह दैत्यशिरोमणि वीर सिंहनाद करके देवताओंकी सेनाको विदीर्ण करने लगा॥ ८॥ सामर्थ्यशाली, तेजस्वी, महान् असुर राजा बलि स्वयं ही वहाँ जप-होम आदिसे युक्त हो ब्रह्माका कार्य करने लगे॥ ९॥ वैरके ईंधनसे उद्दीप्त हो वहाँ युद्धकी घोर अग्नि प्रज्वलित हुई। असुरगण देवताओंके साथ आकर उस आगमें आहुति डालने लगे। वह आहुति भगवान् विष्णुकी तृप्तिके लिये की जा रही थी॥ १०॥ शङ्खोंकी तुमुल ध्वनि और भेरियोंके गम्भीर नादसे मानो वहाँ '**सुब्रह्मण्यम्**' का विमल उद्घोष होता रहता था॥ ११॥ बल, बलक और पुलोमा नामक महासुर इन तीनोंने वहाँ प्रशस्त एवं सम कर्म करके सम्यक्-रूपसे सत्रका अनुष्ठान किया॥ १२॥

कल्माषदण्डा विमला विपुला रथपङ्क्तयः।
यूपाश्च समकल्पन्त युद्धयज्ञे महाफले॥ १३

कर्णिनालीकनाराचा वत्सदन्तोपबृंहिकाः।
तोमराः सोमकलशा विचित्राणि धनूंषि च॥ १४

अस्थीन्यत्र कपालानि पुरोडाशाः शिरांसि च।
आज्यं च रौद्रं रुधिरं तस्मिन् यज्ञेऽभिहूयते॥ १५

इध्माः परिधयस्तत्र प्रस्तारा विपुला गदाः।
हयग्रीवोऽसिलोमा च राहुः केशी च दानवः॥ १६

विरोचनश्च जम्भश्च कुजम्भश्च महाबलः।
सदस्यास्तत्र तु मखे विप्रचित्तिस्तु वीर्यवान्॥ १७

इषवस्तु स्रुवास्तत्र रथाक्षसदृशाः शुभाः।
धनुष्कोट्या धनुर्ज्याश्च स्रुवस्तत्र महामखे॥ १८

प्रतिप्रास्थानिकं कर्म वृषपर्वाकरोदिह।
दीक्षितस्तत्र तु बलिस्तस्य पत्नी महाचमूः॥ १९

शम्बरस्तत्र शामित्रमकरोद् दितिनन्दनः।
अतिरात्रे महाबाहुर्वितते यज्ञकर्मणि॥ २०

दक्षिणास्तस्य यज्ञस्य कालनेमिर्महासुरः।
वैताने कर्मणि विभोर्यः ख्यातो हव्यवाडिव॥ २१

त्रिदशानां तु सैन्यस्य शरीरैर्गतजीवितैः।
तस्मिन् यज्ञे तु सवनं वर्धते दैत्यनिर्मितम्॥ २२

देवानां रुधिरं संख्ये पपुरुग्रा दितेः सुताः।
नर्दमानाः प्रमुदिताः सोमपानं रणाध्वरे॥ २३

यदा बलिर्महादैत्यो विजेता समरे सुरान्।
तदा ह्यवभृथो यज्ञे भविष्यति न संशयः॥ २४

महासुरेन्द्रपतयो यज्वानो भूरिदक्षिणाः।
वेदवन्तो वृत्तवन्तः शूराः सर्वे तनुत्यजः॥ २५

त्रैलोक्यहरणे सृष्टा युद्धयज्ञाय दीक्षिताः।
बद्धकृष्णाजिनाः सर्वे व्रतिनो मुञ्जधारिणः॥ २६

उस महान् फलदायक युद्धयज्ञमें चितकबरे ईषा-दण्डवाली निर्मल एवं विशाल रथपंक्तियाँ यूपोंके रूपोंमें कल्पित हुईं॥ १३॥ कर्णि, नालीक, नाराच, वत्सदन्त, उपबृंहिका, तोमर और विचित्र धनुष—ये ही उस यज्ञमें सोमकलश थे॥ १४॥ हड्डियाँ इसमें कपाल थीं, सिर पुरोडाश थे तथा भयंकर रुधिर ही घी था, जिसकी उस यज्ञमें आहुति दी जाती थी॥ १५॥ शरपंक्तियाँ, इध्म और विशाल गदाएँ परिधि थीं। हयग्रीव, असिलोमा, राहु, दानव केशी, विरोचन, जम्भ, महाबली कुजम्भ और पराक्रमी विप्रचित्ति—ये उस यज्ञमें सदस्य थे॥ १६-१७॥ रथके धुरेके समान मोटे और सुन्दर बाण उस यज्ञमें स्रुवा थे। धनुषकी कोटियाँ और प्रत्यञ्चाएँ उस महायज्ञमें स्रुवका काम देती थीं॥ १८॥ वृषपर्वाने उस यज्ञमें प्रतिप्रस्थाताका कार्य किया, राजा बलि उसमें दीक्षा ग्रहण करनेवाले यजमान थे और उनकी विशाल सेना ही उनकी पत्नी थी॥ १९॥ महाबाहु दितिनन्दन शम्बरने वहाँ चालू हुए उस अतिरात्र नामक यज्ञकर्ममें शामित्र-कर्म किया॥ २०॥ उस यज्ञकी दक्षिणाओंके रूपमें महान् असुर कालनेमि उपस्थित था, जो अपने स्वामी बलिके यज्ञकर्ममें अग्निके समान विख्यात था॥ २१॥ देवताओंकी सेनाके निष्प्राण शरीरोंद्वारा उस यज्ञमें दैत्योंका किया हुआ सवनकर्म उत्तरोत्तर बढ़ रहा था॥ २२॥ उस रणयज्ञमें भयंकर दैत्य जो देवताओंका रुधिर पान करते थे, वही मानो प्रसन्नतापूर्वक उनके द्वारा किया गया सोमपान था, वे कोलाहल करते हुए वहाँ वह सोमपान करते थे॥ २३॥ जब महादैत्य बलि समरमें देवताओंपर विजय पा लेंगे, तब उस यज्ञकी समाप्तिपर अवभृथस्नान होगा, इसमें संशय नहीं है॥ २४॥ बड़े-बड़े असुरेश्वर जो प्रचुर दक्षिणा देनेवाले, यज्ञकर्ता, वेदज्ञ, सदाचारी और शूरवीर थे, सब-के-सब उस युद्धमें शरीरका मोह छोड़कर लगे थे॥ २५॥ वे सब त्रिलोकीका राज्य हर लेनेके लिये उद्यत हो उस युद्धरूपी यज्ञके लिये दीक्षा ले चुके थे। उन सबने अपने शरीरमें काले मृगचर्म बाँध रखे थे। वे सभी मुञ्जकी मेखला धारण करके व्रतके पालनमें तत्पर थे॥ २६॥

एकनिश्चयकार्याश्च त्रैलोक्यजयकाङ्क्षिणः।
सुरदानवदैत्यानां शब्दः समभवन्महान्॥ २७

नानायुधविहस्तानां त्वरितानां प्रधावताम्।
क्ष्वेडितोत्क्रुष्टनिनदैर्गजबृंहितनिःस्वनैः॥ २८

रथनेमिस्वनैर्घोरैस्तुमुलः सर्वतोऽभवत्।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्हयहेषितनिःस्वनैः ॥ २९

हयानां हेषमाणानां दानवानां च गर्जताम्।
क्ष्वेडितोत्क्रुष्टनिनदैः पाणिपादरवैस्तथा॥ ३०

दानवानां परेषां च शस्त्रवन्ति महान्ति च।
समरे भीमकर्माणि सैन्यानि प्रचकाशिरे॥ ३१

ततो नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः।
भ्राजमाना व्यराजन्त मेघा इव सविद्युतः॥ ३२

ऋष्टिखड्गगदास्तीक्ष्णाः शूलशक्तिपरश्वधाः।
चारु विभ्राजिरे तत्र तेष्वनीकेषु भागशः॥ ३३

रथा बहुविधाकाराः शतशोऽथ सहस्रशः।
हेमप्रच्छन्नशिखरा ज्वलन्त इव पावकाः॥ ३४

दानवानां सुराणां च समालोक्यन्त सैनिकाः।
काञ्चनैः कवचैः सर्वे ज्वलितार्कसमप्रभैः॥ ३५

संनद्धाः समदृश्यन्त ज्योतींषि गगने यथा।
उद्यतैरायुधैश्चित्रैस्तलबद्धाः कलापिनः॥ ३६

ऋषभाक्षाः सुरगणाश्चमूमुखगता बभुः।
नानावर्णाः पताकाश्च ध्वजमालाश्च संयुगे॥ ३७

युद्ध्यतां रणशौण्डानामीरयामास मारुतः।
ध्वजालंकारवस्त्राणि कवचानि च रश्मिभिः॥ ३८

भासयामास सर्वाणि रश्मिवर्णानि रश्मिवान्।
सर्वेषामप्रमेयाणां बलानां पादचारिणाम्॥ ३९

एक ही निश्चित उद्देश्यको लेकर वे सभी युद्धरूपी कार्यमें संलग्न थे। सबके मनमें यही इच्छा थी कि त्रिलोकीके राज्यपर विजय प्राप्त हो जाय। नाना प्रकारके आयुध हाथमें लेकर बड़ी उतावलीके साथ रणभूमिमें तीव्रगतिसे दौड़ते हुए देवताओं, दानवों और दैत्योंका महान् कोलाहल वहाँ होने लगा। योद्धाओंके सिंहनाद, उच्चस्वरसे पुकार, गर्जना, हाथियोंके चिग्घाड़ने तथा रथके पहियोंकी घरघराहट आदिके घोर कोलाहलसे वहाँ सब ओर तुमुलनाद छा गया। शङ्ख और दुन्दुभियोंके गम्भीर घोषसे, घोड़ोंके हिनहिनानेकी आवाजसे, हींसते हुए अश्वों और गरजते हुए दानवोंके सिंहनादसे, उनके चीखने और चिल्लानेसे तथा उनके हाथ-पैर पटकनेसे भी वहाँ महान् कोलाहल छा रहा था॥ २७—३०॥ दानवों और देवताओंकी विशाल सेनाएँ अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो समराङ्गणमें भयंकर कर्म करती हुई प्रकाशित हो रही थीं॥ ३१॥ उस समय वहाँ सुवर्णसे विभूषित हाथी और रथ, विद्युत्सहित मेघोंके समान उद्भासित होते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे॥ ३२॥ उन सेनाओंमें पृथक्-पृथक् ऋष्टि, खड्ग, गदा, तीखे शूल, शक्ति और फरसे चमक रहे थे, जो अत्यन्त मनोहर जान पड़ते थे॥ ३३॥ नाना प्रकारकी आकृतिवाले सैकड़ों और हजारों रथ जिनके ऊपरी भाग सोनेके पत्रसे ढके हुए थे, प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ ३४॥ दीप्तिमान् सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले सुवर्णमय कवचोंसे सुसज्जित हुए दानवों और देवताओंके समस्त सैनिक आकाशमें तारोंके समान दृष्टिगोचर हो रहे थे। हाथोंमें दस्ताने बाँधे और पीठपर तरकस लिये बैलोंके समान बड़े-बड़े नेत्रोंवाले देवता सेनाके मुहानेपर आकर ऊपर उठाये हुए विचित्र आयुधोंके द्वारा बड़ी शोभा पा रहे थे। समरभूमिमें जूझते हुए रणकुशल योद्धाओंकी बहुरंगी पताकाओं और ध्वजपंक्तियोंको वायु कम्पित कर रही थी। सैनिकोंके ध्वज, आभूषण, वस्त्र और कवच—इन सभी वस्तुओंको सूर्यदेव अपनी किरणोंसे उन्हींके समान कान्तिमान् बनाकर प्रकाशित कर रहे थे। दोनों दलोंके समस्त पैदल सैनिकोंके, जो असंख्य थे,

रजः प्रच्छादयामास पत्रोर्णं पाण्डुरं दिशः।
दिव्यायुधधराः सर्वे दीप्तायुधपरिच्छदाः॥ ४०

प्रतितस्तम्भिरेऽन्योन्यमनीकं प्रत्यनीकतः।
गिरिकूटोच्छ्रयाः सर्वे तदा ते देवदानवाः॥ ४१

अन्योन्यमभिनिघ्नन्तो रणस्थाश्चित्रयोधिनः।
बाणैः सुरुचिरैस्तीक्ष्णैः पत्रवाजैर्दुरासदैः॥ ४२

मुद्गरैर्मुसलैः शूलैरयस्तुण्डैरुलूखलैः।
वज्रैरशनिकल्पैश्च खड्गवृक्षादिभिस्तथा॥ ४३

तथा प्रवर्तिते तेषां विमर्देऽद्भुतविक्रमे।
सावित्रस्य वधं प्रेप्सुर्बाणो जग्राह कार्मुकम्॥ ४४

शरजालेन दिव्येन च्छादयानः सुरोत्तमम्।
मन्त्रैर्हुत इवार्चिष्मान् सम्प्रजज्वाल तेजसा॥ ४५

सागराभां महासेनां देवानां दैत्यपुंगवः।
संशोषयति बाणौघैरर्कोऽशुभिरिवार्णवम्॥ ४६

मारुतः सुमहावेगः सावित्रः शक्तिमुत्तमाम्।
चिक्षेप बलिपुत्राय शक्रोऽशनिमिवाद्रये॥ ४७

आपतन्ती च सा शक्तिर्महोल्का ज्वलिता इव।
द्विधा छिन्ना क्षुरप्रेण बाणेनाद्भुतकर्मणा॥ ४८

हतायामथ शक्त्यां तु सावित्रो देवसत्तमः।
विश्वकर्मकृतं दिव्यं सुतीक्ष्णं दानवार्दनम्॥ ४९

सुपीनधारं विमलं विपुलं चन्द्रवर्चसम्।
अगृह्णान्निशितं खड्गमाशीविषमिवोरगम्॥ ५०

तं गृहीत्वा रणमुखे प्रज्वलन्तं महाप्रभम्।
बाणाभ्याशे महातेजाः खड्गपाणिरवस्थितः॥ ५१

स तं स्थितमथालक्ष्य सावित्रं बलिनन्दनः।
लोहिताक्षं महाकायं चिक्षेप च ननाद च॥ ५२

ततोऽर्ककिरणाकारानशनिप्रतिमाञ्छितान्।
संदधे चाशु बाणौघानाशीविषशिलीमुखान्॥ ५३

पैरोंसे उठी हुई धुले हुए रेशमी वस्त्रके समान श्वेत धूलने समस्त दिशाओंको आच्छादित कर दिया। सबने दिव्य आयुध धारण कर रखे थे; सभीके अस्त्र-शस्त्र तथा वस्त्र-आभूषण आदि चमकीले थे। वे आपसमें एक सेनाके लोग दूसरी सेनाके लोगोंको स्तम्भित कर देते थे (आगे नहीं बढ़ने देते थे)। पर्वत-शिखरोंके समान ऊँचे शरीरवाले वे समस्त देवता और दानव उस समय रणभूमिमें खड़े हो एक-दूसरेपर चोट करते हुए विचित्र रीतिसे युद्ध करने लगे। पंखोंसे वेगयुक्त हुए दुर्जय, तीक्ष्ण और परम सुन्दर बाण, मुद्गर, मूसल, शूल, अयस्तुण्ड, उलूखल, अशनितुल्य वज्र, खड्ग और वृक्ष आदिके द्वारा अद्भुत पराक्रम प्रकट करते हुए उन योद्धाओंमें जब इस प्रकार भीषण मारकाट हो रही थी, उसी समय सावित्रका वध करनेके लिये बाणासुरने धनुष उठाया॥ ३५—४४॥ अपने दिव्य बाणोंके जालसे सुरश्रेष्ठ सावित्रको आच्छादित करता हुआ बाणासुर मन्त्रोंद्वारा घीकी आहुति पाये हुए अग्निदेवके समान तेजसे प्रज्वलित हो उठा॥ ४५॥ देवताओंकी विशाल सेना समुद्रके समान थी। उसे दैत्यशिरोमणि बाणासुर अपने बाणसमूहोंद्वारा उसी प्रकार सुखाने लगा, जैसे सूर्य अपनी किरणोंद्वारा समुद्रको सुखाते रहते हैं॥ ४६॥ तब महान् वेगशाली सावित्र नामक मारुतने बलिपुत्र बाणासुरपर उत्तम शक्ति चलायी, मानो इन्द्रने किसी पर्वतपर वज्र फेंका हो॥ ४७॥ परंतु अद्भुत कर्म करनेवाले बाणासुरने प्रज्वलित हुई विशाल उल्काके समान अपनी ओर आती हुई उस शक्तिके एक क्षुरप्रद्वारा दो टुकड़े कर डाले॥ ४८॥ उस शक्तिके खण्डित हो जानेपर देवशिरोमणि सावित्रने विश्वकर्माके बनाये हुए एक दिव्य दानवदलन खड्गको हाथमें लिया, जो विषधर सर्पके समान भयंकर था। उसकी धार बहुत ही तीखी और पुष्ट थी। वह निर्मल एवं विशाल खड्ग तेज होनेके साथ ही चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कान्तिसे प्रकाशित हो रहा था॥ ४९-५०॥ युद्धके मुहानेपर उस प्रज्वलित होनेवाले महान् कान्तिमान् खड्गको हाथमें लेकर महातेजस्वी सावित्र बाणासुरके निकट खड़े हो गये॥ ५१॥ सावित्रकी आँखें लाल और काया विशाल थी। उन्हें इस प्रकार खड़ा हुआ देख बलिनन्दन बाणासुरने उनके प्रति आक्षेप और सिंहनाद किया॥ ५२॥ तदनन्तर उसने सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी, अशनिके सदृश तीखे और विषधर सर्पोंकी भाँति विषैले बाणसमूहोंका शीघ्र ही संधान किया॥ ५३॥

रुक्मपुङ्खान् प्रदीप्ताग्रानुग्रवेगानलंकृतान्।
आकर्णपूरांश्चिक्षेप शरानुग्रान् समन्ततः॥ ५४

दृढचापप्रयुक्तास्ते शरा वैश्वानरप्रभाः।
सावित्रं छादयामासुः कैलासमिव तोयदाः॥ ५५

संछाद्यमानः शस्त्रौघैर्बाणेन बलिसूनुना।
पराङ्मुखः सुरवरः प्रयातः सरथध्वजः॥ ५६

पराजित्य स सावित्रं बाणः परमहर्षितः।
प्रगृह्य कार्मुकं घोरं गतः शक्ररथं प्रति॥ ५७

बलश्चाप्यसुरश्रेष्ठः प्रगृह्य महतीं गदाम्।
ध्रुवाय वसवे मूर्ध्नि रौद्रां चिक्षेप दानवः॥ ५८

तस्य निर्मथितं त्वंसे हेमचित्रं च वर्म वै।
गदावेगेन भीमेन ध्रुवस्य समरे तदा॥ ५९

शेषाश्च वसवः सर्वे दिव्यास्त्रैर्घोरदर्शनैः।
प्राच्छादयन् रणे दैत्यमादित्यमिव तोयदाः॥ ६०

ततः सम्मर्दितो बाणैर्बलो दानवसत्तमः।
अवातरद् रथात् तस्माद् गदामुद्यम्य वेगवान्॥ ६१

पातयामास शत्रूणां समाविध्य महासुरः।
दिशः प्राद्रावयत् सर्वांस्त्रिदशान् सा महागदा॥ ६२

इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण प्रवृद्धा सुमहास्वना।
तस्याः सविद्युद्घोषायास्तेन शब्देन वेपिताः॥ ६३

व्यद्रवन्त परिभ्रष्टा रथेभ्यो रथिनस्तदा।
तदुदीर्णं रथानीकं सूर्याभं मेघनिःस्वनम्॥ ६४

देवानां शरधाराभिः समन्तादभ्यवर्षत।
क्षुरप्रैर्विशिखैर्भल्लैर्वत्सदन्तैः शिलीमुखैः॥ ६५

मुहुर्मुहुर्महातेजाः प्रत्यविध्यन्महासुरः।
बलाकस्तु गदापाणिर्व्यादितास्य इवान्तकः॥ ६६

उनमें सोनेके पर लगे थे। उनका अग्रभाग उद्दीप्त हो रहा था। वे भयंकर वेगशाली तथा अलंकृत थे। बाणासुरने उन उग्र बाणोंको धनुषपर रखकर उन्हें कानतक खींचकर चारों ओर बरसाना आरम्भ किया॥ ५४॥ वे अग्निके समान तेजस्वी बाण सुदृढ़ धनुषद्वारा छोड़े गये थे। उन्होंने सावित्रको उसी तरह ढक लिया, जैसे बादल कैलास पर्वतको आच्छादित कर देते हैं॥ ५५॥ बलिकुमार बाणासुरके शस्त्रसमूहोंद्वारा इस प्रकार आच्छादित होते हुए सुरश्रेष्ठ सावित्र युद्धसे विमुख हो रथ और ध्वजसहित वहाँसे चल दिये॥ ५६॥ सावित्रको पराजित करके बाणासुर बहुत प्रसन्न हुआ। तत्पश्चात् वह भयंकर धनुष लेकर इन्द्रके रथकी ओर चला गया॥ ५७॥ इधर असुरशिरोमणि बल नामक दानवने विशाल एवं भयंकर गदा हाथमें लेकर उसे ध्रुव नामक वसुके मस्तकपर दे मारा॥ ५८॥ उस समय समराङ्गणमें उस गदाके भयंकर वेगसे ध्रुवके कंधेपर स्थित सुवर्णजटित विचित्र कवच छिन्न-भिन्न हो गया॥ ५९॥ तब शेष सभी वसुओंने घोर दिव्यास्त्रोंद्वारा रणभूमिमें उस दैत्यको उसी प्रकार ढक दिया, जैसे बादल सूर्यदेवको आच्छादित कर देते हैं॥ ६०॥ फिर तो उनके बाणोंसे रौंदा गया दानवशिरोमणि बल गदा उठाकर अपने उस रथसे वेगपूर्वक उतर पड़ा॥ ६१॥ उस महान् असुरने गदाको घुमाकर उसे अपने शत्रुओंपर चला दिया। उस विशाल गदाने सम्पूर्ण देवताओंको उस समय विभिन्न दिशाओंमें भागनेको विवश कर दिया॥ ६२॥ जैसे इन्द्रके द्वारा फेंकी गयी उनकी अशनि बड़े वेगसे आगे बढ़कर बड़ी भारी गड़गड़ाहट पैदा करती है, उसी तरह उस गदाने भी किया। बिजलीकी-सी कड़क पैदा करनेवाली उस गदाके शब्दसे कम्पित होकर उस समय देवसेनाके रथी अपने रथोंसे कूदकर भाग गये। तब सूर्यके समान तेजस्विनी और मेघोंके समान गर्जना करनेवाली देवताओंकी उस प्रचण्ड रथ-सेनापर बलने चारों ओरसे बाणधाराकी वर्षा आरम्भ कर दी। वह महातेजस्वी महान् असुर देवताओंको क्षुरप्र, विशिख, भल्ल, वत्सदन्त तथा शिलीमुख नामक बाणोंद्वारा बारम्बार घायल करने लगा। बलाक नामक दैत्य हाथमें गदा लेकर मुँह बाये हुए कालके समान जान पड़ता था॥ ६३—६६॥

तडिद्गणार्कसदृशो वैश्वानर इवापरः।
पिबन्निव शरौघांस्तान् देवचापसमुच्छ्रितान्॥ ६७

अभ्यद्रवत दैत्येन्द्रो महार्णव इवापरः।
अवस्फूर्जन् दिशः सर्वाः स्वेन वीर्येण दानवः॥ ६८

अरुणत् त्रिदशान् दैत्यः सिंधुवेगान् नगा इव।
समुद्रस्तरसा देवान् वायुर्वृक्षानिवौजसा॥ ६९

दमयंश्च महेष्वासान् वसुभ्यां समसज्जत।
आपश्चैवानिलश्चैव ववर्षतुररिंदमौ॥ ७०

शरवर्षाणि दीप्तानि मेघाविव परंतपौ।
क्षिप्तांस्तान् विशिखान् दीप्तानन्तरिक्षे स चिच्छिदे॥ ७१

अमृष्यमाणस्तत्कर्म ध्रुवस्तमभिदुद्रुवे।
तौ पृथक्छरवर्षाभ्यामन्योन्यमभिजघ्नतुः॥ ७२

उत्तमाभिजनौ शूरौ देवदैत्यौ यशस्करौ।
तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ॥ ७३

रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्चाप्यकृन्तताम्।
निर्भिन्दन्तौ च गात्राणि विलिखन्तौ च सायकैः॥ ७४

स्तम्भयन्तौ च बलिनौ प्रतुदन्तौ स्थितौ रणे।
चरन्तौ विविधान् मार्गान् मण्डलानि च भागशः॥ ७५

मुद्गरैर्जघ्नतुः क्रुद्धावन्योन्यमभिमानिनौ।
असिभ्यां चर्मणी दिव्ये विपुले च शरासने॥ ७६

निकृत्याचलसंकाशौ बाहुयुद्धं प्रचक्रतुः।
व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ॥ ७७

बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव।
तयोरासीद् भुजाघातैर्निग्रहः प्रग्रहस्तथा॥ ७८

वह विद्युत् और सूर्यके समान तेजस्वी था। दूसरे वैश्वानर (अग्नि)-के समान प्रकाशित हो रहा था। वह दैत्यराज देवताओंके धनुषसे छूटे हुए बाणसमूहोंको पीता हुआ-सा उनकी ओर दौड़ा। वह दूसरे महासागरके समान वेगशाली प्रतीत होता था। जैसे पर्वत समुद्रके वेगको भंग कर देते हैं, उसी प्रकार उस दानव अथवा दैत्य बलाकने अपनी गर्जनासे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए अपने बल-पराक्रमसे समस्त देवताओंकी प्रगति भंग कर दी। समुद्र नामक दैत्य जैसे वायु अपने बलसे वृक्षोंको उखाड़ फेंकता है, उसी प्रकार अपने वेगसे महाधनुर्धर देवताओंका दमन करता हुआ आप और अनिल नामक दो वसुओंके साथ युद्ध करने लगा। शत्रुओंका दमन करनेवाले परंतप आप और अनिल दोनों वसुओंने दो मेघोंके समान तेजस्वी बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी; परंतु उस दैत्यने उनके चलाये हुए उन तेजस्वी बाणोंको आकाशमें ही काट गिराया॥ ६७—७१॥ उसके उस कर्मको ध्रुव सहन न कर सके; अतः उन्होंने उसपर धावा कर दिया। फिर वे दोनों वीर पृथक्-पृथक् बाण-वर्षा करके एक-दूसरेको घायल करने लगे॥ ७२॥ वे देवता और दैत्य दोनों शूरवीर, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा यशस्वी थे। जैसे दो बाघ नखोंसे और दो महान् गजराज दाँतोंसे एक-दूसरेपर चोट करते हैं, उसी प्रकार वे दोनों वीर रथ-शक्तियों और बाणोंद्वारा एक-दूसरेको क्षत-विक्षत करने लगे। वे अपने-अपने सायकोंद्वारा प्रतिपक्षीके अङ्गोंको विदीर्ण एवं घायल करने लगे॥ ७३-७४॥ दोनों बलवान् थे; अतः दोनों ही रणभूमिमें स्थित होकर एक-दूसरेको आगे बढ़नेसे रोकते और पीड़ित करते हुए युद्धके विविध मार्गोंसे विचरते और पृथक्-पृथक् पैंतरे दिखाते थे॥ ७५॥ इसके बाद वे दोनों अभिमानी वीर कुपित होकर परस्पर मुद्गरोंकी मार करने लगे। दोनों ही तलवारोंसे दोनोंके दिव्य ढाल और विशाल धनुष काटकर पर्वतके समान खड़े हो परस्पर बाहुयुद्ध करने लगे। दोनोंकी ही छाती चौड़ी और भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं। दोनों ही मल्लयुद्धमें कुशल थे, अतः लोहेके बने हुए परिघोंके समान अपनी मोटी एवं बलिष्ठ भुजाओंद्वारा वे एक-दूसरेसे गुथ गये। उन दोनोंमें भुजाओंके आघातसे निग्रह और प्रग्रहके दाँव-पेंच चलने लगे॥ ७६—७८॥

अतीव भीमः संह्रादो वज्रपर्वतयोरिव।
द्विपाविव विषाणाग्रैः शृङ्गैरिव महावृषौ॥ ७९

अन्योन्यमभिसंरब्धौ मुहूर्तं पर्यकर्षताम्॥ ८०

ततः पराजितो देवो बलाकेन तथा ध्रुवः।
रथं त्यक्त्वा भयात् तस्य प्रणष्टः प्राङ्मुखो वसुः॥ ८१

उस समय वज्र और पर्वतके टकरानेके समान अत्यन्त भयंकर शब्द होता था। जैसे दो हाथी अपने दाँतोंके अग्रभागसे तथा दो बड़े-बड़े साँड़ अपने सींगोंसे प्रहार करते हुए लड़ते हैं, उसी प्रकार वे दोनों वीर अत्यन्त क्रोधपूर्वक दो घड़ीतक एक-दूसरेको खींचते और धक्के देते रहे॥ ७९-८०॥ तदनन्तर वसुदेवता ध्रुव बलाक नामक दैत्यसे पराजित हो रथ छोड़कर भयके मारे पूर्व दिशाकी ओर भाग गये॥ ८१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे देवासुरयुद्धे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारके प्रसङ्गमें देवताओं और असुरोंका युद्धविषयक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५४॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नमुचिद्वारा धर नामक वसुकी, मयासुरद्वारा त्वष्टाकी, वायुदेवद्वारा पुलोमाकी, हयग्रीवद्वारा पूषा देवताकी, शम्बरासुरद्वारा भगकी तथा चन्द्रदेवद्वारा समूची दैत्यसेनाकी पराजय

वैशम्पायन उवाच

पुनरेव तु तत्रासीन्महायुद्धं सुदारुणम्।
क्रुद्धस्य नमुचेश्चैव धरस्य च महात्मनः॥ १

संरब्धौ च महाबाहू महेष्वासावरिंदमौ।
परस्परमुदैक्षेतां दहन्ताविव लोचनैः॥ २

विस्फार्य च महाचापं हेमपृष्ठं दुरासदम्।
संरम्भात् स वसुश्रेष्ठस्त्यक्त्वा प्राणानयुध्यत॥ ३

स सायकमयैर्जालैर्धरो दैत्यरथं प्रति।
भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोः प्राच्छादयत् प्रभाम्॥ ४

ततः प्रहस्य नमुचिर्धरस्य च शिलाशितान्।
असृजत् सायकान् दीप्तान् भीमवेगान् दुरासदान्॥ ५

महातेजा महाबाहुर्महावेगो महारथः।
विव्याधातिबलो दैत्यो नवभिर्निशितैः शरैः॥ ६

स तोत्रैरिव मातङ्गो वार्यमाणः पतत्त्रिभिः।
अभ्यधावच्च संक्रुद्धो नमुचिं वसुसत्तमः॥ ७

तमापतन्तं वेगेन संरम्भान्नमुची रणे।
दैत्यः प्रत्यसरद् देवं मत्तो मत्तमिव द्विपम्॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वहाँ पुनः क्रोधमें भरे हुए नमुचि और महात्मा धरका अत्यन्त भयंकर महान् युद्ध आरम्भ हुआ॥ १॥ दोनों ही महाबाहु, महाधनुर्धर और शत्रुदमन वीर थे। वे दोनों क्रोधसे भरकर एक-दूसरेको इस तरह देखने लगे, मानो नेत्रोंद्वारा दग्ध कर देंगे॥ २॥ वसुश्रेष्ठ धर जिसके पृष्ठभागमें सोना जड़ा हुआ था, उस दुर्जय एवं विशाल धनुषको फैलाकर और प्राणोंका मोह छोड़कर क्रोधपूर्वक युद्ध करने लगे॥ ३॥ धरने शिलापर तेज किये हुए तेजस्वी बाणोंका जाल-सा बिछाकर दैत्य नमुचिके रथको तथा सूर्यके प्रकाशको भी ढक दिया॥ ४॥ तब नमुचिने हँसकर धरके ऊपर भी भयंकर वेगशाली दुर्जय बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। वे सभी बाण सानपर चढ़ाकर तेज किये गये और तेजस्वी थे॥ ५॥ महातेजस्वी, महान् वेगशाली, महारथी और अत्यन्त बलशाली महाबाहु दैत्य नमुचिने नौ पैने बाणोंसे धरको घायल कर दिया॥ ६॥ जैसे अंकुशोंसे हाथीको रोका जाय, उसी प्रकार बाणोंद्वारा रोके जाते हुए वसुशिरोमणि धरने अत्यन्त कुपित होकर नमुचिपर धावा किया॥ ७॥ उन्हें क्रोधपूर्वक वेगसे आते देख रणभूमिमें नमुचि नामक दैत्य उन वसुदेवताका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा, ठीक उसी तरह जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथीके साथ भिड़नेके लिये आगे बढ़ता है॥ ८॥

ततः प्राध्मापयच्छङ्खं भेरीशतनिनादिनम्।
विक्षोभ्य तद्बलं हर्षादुद्भूतार्णवसप्रभम्॥ ९

अश्वानृक्षसवर्णाभान् हंसवर्णैः सुवाजिभिः।
मिश्रयन् समरे दैत्यो वसुं प्राच्छादयच्छरैः॥ १०

समाश्लिष्टावथान्योन्यं वसुदानवयो रथौ।
दृष्ट्वा प्राकम्पत मुहुस्त्रिदशानां महद्बलम्॥ ११

क्रोधसंरम्भताम्राक्षौ प्रेक्षमाणौ मुहुर्मुहुः।
गर्जन्ताविव शार्दूलौ प्रभिन्नाविव वारणौ॥ १२

यमराष्ट्रोपमं रौद्रमासीदायोधनं तयोः।
रथाश्वनरसम्बाधं मत्तवारणसंकुलम्॥ १३

समाजमिव तं दृष्ट्वा प्रेक्षमाणा महारथाः।
आशंसन्तो जयं ताभ्यां योधा नैकत्रसंश्रयाः॥ १४

तयोः प्रैक्षन्त संरम्भं संनिकृष्टं महास्त्रयोः।
सिद्धगन्धर्वमुनयो देवदानवयोस्तदा॥ १५

तौ च्छादयन्तावन्योन्यं समरे निशितैः शरैः।
शरजालावृतं व्योम चक्रतुश्च महाबलौ॥ १६

तावन्योन्यं जिघांसन्तौ शरैस्तीक्ष्णैर्महारथौ।
प्रेक्षणीयतमावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ॥ १७

सुवर्णविकृतान् बाणान् प्रमुञ्चन्तावरिंदमौ।
भास्कराभं तदाकाशमुल्काभिरिव चक्रतुः॥ १८

तयोः शराः प्रकाशन्ते देवदानवयोस्तदा।
पङ्क्त्यः शरदमत्तानां सारसानामिवाम्बरे॥ १९

त्रिदशाश्वगजानां हि शरीरैर्गतजीवितैः।
क्षणेन संवृता भूमिर्मेघैरिव नभस्तलम्॥ २०

ततः सुधारं ज्वलितं सूर्यमण्डलसन्निभम्।
धराय वसवे मुक्तं चक्रं नमुचिना रणे॥ २१

पतता तेन चक्रेण धरस्य स्यन्दनोत्तमः।
सध्वजः सायुधः साश्वो दग्धोऽर्ककिरणप्रभः॥ २२

तदनन्तर दैत्यने शङ्ख बजाया, जो सौ भेरियोंके समान गम्भीर घोष करनेवाला था। उसने हर्षसे उमड़ते हुए समुद्रके समान देवताओंकी सेनाको क्षोभमें डालकर अपने रीछके समान रंगवाले घोड़ोंको धरके हंसकी-सी कान्तिवाले उत्तम घोड़ोंके साथ मिलाते हुए समराङ्गणमें बाणोंद्वारा वसुको आच्छादित कर दिया॥ ९-१० ॥ वसु और दानवके रथोंको एक-दूसरेसे सटा हुआ देख देवताओंकी विशाल सेना बारम्बार काँपने लगी॥ ११ ॥ उन दोनोंके नेत्र रोषावेशसे लाल हो रहे थे। वे दोनों दो बाघों और मदकी धारा बहानेवाले दो हाथियोंके समान एक-दूसरेकी ओर देख-देखकर बारम्बार गर्जना करते थे॥ १२ ॥ उन दोनोंका भयंकर युद्ध यमराजके राज्यके समान प्रतीत होता था। वह युद्धस्थल रथ, घोड़े और मनुष्योंसे भरा हुआ तथा मतवाले हाथियोंसे व्याप्त था॥ १३ ॥ उन दोनोंका युद्ध समाज (रंगशालामें होनेवाली क्रीडा)-के समान दर्शनीय हो गया था। उसे देखते हुए उभयपक्षीय महारथी योद्धा उन दोनोंमेंसे एकको जय मनाते थे (देवता देवताकी और दैत्य दैत्यकी विजय चाहते थे)॥ १४ ॥ उन महान् अस्त्रधारी देवता और दानव दोनों वीरोंके निकटसे होनेवाले रोषपूर्ण संग्रामको सिद्ध, गन्धर्व और मुनि देख रहे थे॥ १५ ॥ उन दोनों महाबली योद्धाओंने समराङ्गणमें पैने बाणोंसे एक-दूसरेको आच्छादित करते हुए आकाशको बाणोंके जालसे ढक दिया॥ १६ ॥ तीखे बाणोंसे एक-दूसरेको मार डालनेकी इच्छावाले वे दोनों महारथी वीर वर्षा करनेवाले मेघोंके समान परम दर्शनीय हो रहे थे॥ १७ ॥ सुवर्णनिर्मित बाणोंकी वर्षा करते हुए उन दोनों शत्रुदमन वीरोंने उस समय आकाशको सूर्यके समान प्रकाशमान तथा उल्काओंसे व्याप्त-सा कर दिया॥ १८ ॥ देवता धर और दानव नमुचि दोनोंके बाण उस समय आकाशमें ऐसे प्रकाशित हो रहे थे, मानो शरद्-ऋतुमें मतवाले सारसोंकी पंक्तियाँ उड़ी जा रही हों॥ १९ ॥ जैसे बादल आकाशको ढक लेते हैं, उसी प्रकार देवताओंके घोड़े और हाथियोंके निर्जीव शरीरोंसे वहाँकी भूमि क्षणभरमें पट गयी॥ २० ॥ तदनन्तर रणभूमिमें नमुचिने सूर्यमण्डलके समान प्रज्वलित और तीखी धारवाला चक्र धर नामक वसुको लक्ष्य करके छोड़ दिया॥ २१ ॥ गिरते हुए उस चक्रने धरके सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशमान उत्तम रथको ध्वज, आयुध और घोड़ोंसहित जलाकर भस्म कर दिया॥ २२ ॥

स त्यक्त्वा स्यन्दनं देवः प्रदीप्तं चक्रतेजसा।
भयात् तस्यासुरेन्द्रस्य गतः स्वगृहमुत्तमम्॥ २३

पराजित्य सुरं दैत्यो नमुचिर्बलगर्वितः।
प्रयातः स्वेन सैन्येन भूयः सुरचमूं प्रति॥ २४

यौ तौ मयश्च त्वष्टा च देवदैत्येषु विश्रुतौ।
प्रवरौ विश्वकर्माणौ मायाशतविशारदौ॥ २५

घोरस्तयोः सम्प्रहारः प्रावर्तत सुदारुणः।
अन्योन्यस्पर्द्धिनोस्तत्र चिरात्प्रभृति संयुगे॥ २६

त्वष्टा तु निशितैर्बाणैर्दैत्यं तु बलदर्पितम्।
पराक्रान्तं पराक्रम्य विव्याध त्रिशतैः शरैः॥ २७

मयस्तु प्रतिविव्याध त्वष्टारं निशितैः शरैः।
सुघातैः सुप्रसन्नाग्रैः शातकुम्भविभूषितैः।
ननाद दितिजश्रेष्ठो हतस्त्वष्टुः शरैर्मयः॥ २८

संक्रुद्धो दैत्यसैन्यस्य विचिन्वन्निव जीवितम्।
शक्तिं कनकवैदूर्यचित्रदण्डां महाप्रभाम्॥ २९

देवो गृहीत्वा समरे दैत्येन्द्रं समपातयत्।
भीमां सर्वायसीं दृष्ट्वा पुरंदर इवाशनिम्॥ ३०

तां त्वष्टुर्भुजनिर्मुक्तामर्कवैश्वानरप्रभाम्।
मयश्चिच्छेद तीक्ष्णाग्रैस्तूर्णं सप्तभिराशुगैः॥ ३१

ततः क्षुण्वन्निव प्राणांस्त्वष्टुः कोपान्महासुरः।
प्रेषयामास संरब्धः शरान् बर्हिणवाससः॥ ३२

चिच्छेद बाणांस्त्वष्टा ताञ्ज्वलितैर्नतपर्वभिः।
दैत्यस्य सुमहावेगैः सुवर्णविकृतैः शरैः॥ ३३

तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे।
शार्दूलाविव चान्योन्यं प्रसक्तावभिजघ्नतुः॥ ३४

अन्योन्यं प्रतियुध्यन्तावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ।
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ क्रुद्धावाशीविषाविव॥ ३५

चक्रके तेजसे जलते हुए उस रथको त्यागकर धरदेवता असुरेश्वर नमुचिके भयसे अपने उत्तम घरको भाग गये॥ २३॥ इस प्रकार वसु देवताको पराजित करके बलके घमंडसे भरा हुआ दैत्य नमुचि पुनः अपनी सेनाके साथ देवसेनाकी ओर बढ़ा॥ २४॥ देवताओं और दैत्योंमें जो विख्यात मय और त्वष्टा हैं, वे दोनों श्रेष्ठ विश्वकर्मा कहे गये हैं। दोनों ही सैकड़ों मायाओंके विशेषज्ञ हैं। उन दोनोंमें वहाँ अत्यन्त दारुण और घोर युद्ध आरम्भ हो गया। वे चिरकालसे युद्धके लिये एक-दूसरेके प्रति स्पर्धा रखते चले आ रहे थे॥ २५-२६॥ त्वष्टाने बलके घमंडमें भरे हुए पराक्रमी दैत्य मयको पराक्रमपूर्वक तीन सौ तीखे बाणोंसे घायल कर दिया॥ २७॥ तब मयने भी त्वष्टाको अपने पैने बाणोंका निशाना बनाया। मयासुरके वे बाण अच्छी तरह चोट करनेवाले तथा सुवर्णसे विभूषित थे। उनके अग्रभाग स्वच्छ एवं चमकीले थे। फिर त्वष्टाके बाणोंसे घायल हुए दैत्यप्रवर मयासुरने बड़े जोरसे सिंहनाद किया॥ २८॥ यह देख त्वष्टा अत्यन्त कुपित हो उठे और दैत्यसेनाके प्राणोंका चयन-सा करने लगे। उन्होंने सुवर्ण और वैदूर्यमणिसे जटित विचित्र दण्डवाली, अत्यन्त प्रभासे परिपूर्ण शक्ति हाथमें लेकर उसे समराङ्गणमें उस दैत्यराजपर दे मारा। वह भयंकर शक्ति सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई थी। जैसे देवराज इन्द्रने वज्र चलाया हो, उसी प्रकार त्वष्टाके हाथोंसे छूटी हुई सूर्य और अग्निके समान प्रभावशाली उस शक्तिको आती देख मयासुरने तीखे अग्रभागवाले सात शीघ्रगामी बाणोंद्वारा तुरंत ही उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ २९—३१॥ तब उस महान् असुरने कुपित हो मानो त्वष्टाके प्राण लेनेको उद्यत होकर उनके ऊपर रोषपूर्वक मोरपंख लगे बाणोंका प्रहार आरम्भ किया॥ ३२॥ परंतु त्वष्टाने सुवर्णनिर्मित, झुकी हुई गाँठवाले, प्रज्वलित तथा महान् वेगशाली सायकोंद्वारा दैत्यके उन बाणोंको काट डाला॥ ३३॥ वे दोनों बलवान् वीर मैथुनकी इच्छावाले गौके लिये आपसमें लड़ने और गर्जनेवाले दो साँड़ों तथा परस्पर उलझे हुए दो बाघोंके समान एक-दूसरेपर आघात करने लगे॥ ३४॥ वे एक-दूसरेके वधकी इच्छासे परस्पर लड़ते थे और क्रोधमें भरे हुए दो विषधर सर्पोंके समान एक-दूसरेकी ओर देखते थे॥ ३५॥

महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम्।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः॥ ३६

ततः सुविपुलां दीप्तां मयो रुक्माङ्गदो गदाम्।
त्वष्टरि प्राहिणोत् क्रुद्धः सर्वप्राणहरां रणे॥ ३७

तया जघानातिरथस्त्वष्टुरुत्तमवाजिनः।
गदया दानवः क्रुद्धो वज्रेणेन्द्र इवाचलान्॥ ३८

ततः क्रुद्धो महादैत्यः क्षुराभ्यामथ संयुगे।
पुनर्द्वाभ्यां शराभ्यां तु निशिताभ्यां महारणे॥ ३९

ध्वजं त्वष्टुरथ च्छित्त्वा सूतं निन्ये यमक्षयम्।
महाबलान् महावेगान् सदश्वान् गदया हनत्॥ ४०

दृष्ट्वा त्वष्टा हतं सूतमश्वांश्च विनिपातितान्।
हताश्वं रथमुत्सृज्य सूतं च पतितं भुवि॥ ४१

विस्फारयन् महाचापं स्थितो भूमाविवाचलः।
हताश्वसूतं विरथं दृष्ट्वा रिपुमवस्थितम्॥ ४२

जयश्रिया सेव्यमानो दीप्यमान इवानलः।
मयः कालान्तकप्रख्यश्चापपाणिरदृश्यत॥ ४३

प्रादहद् देवसैन्यानि दावाग्निरिव काननम्।
त्वष्टुः सोऽक्षिपतात्युग्रान् नाराचांस्तिग्मतेजसः॥ ४४

चतुर्दशशिलाधौतान् सायकान् विविधाकृतीन्।
ते पपुस्तस्य सैन्यस्य शोणितं रुक्मभूषणाः॥ ४५

आशीविषा इव क्रुद्धा भुजङ्गाः कालचोदिताः।
ते क्षितिं समवर्तन्त शोभन्ते रुधिरोक्षिताः॥ ४६

अर्द्धप्रविष्टाः संरब्धा बिलानीव महोरगाः।
तं प्रत्यविध्यत् त्वष्टा तु जाम्बूनदविभूषितैः॥ ४७

चतुर्दशभिरत्युग्रैर्नाराचैरभिदारयन्।
ते तस्य दैत्यस्य भुजं सव्यं निर्भिद्य पत्रिणः॥ ४८

विदार्य विविशुर्भूमिं पन्नगा इव वेगतः।
ते प्रकाशन्त नाराचाः प्रविशन्तो वसुंधराम्॥ ४९

जैसे दो बड़े-बड़े हाथी परस्पर भिड़कर दाँतोंके अग्रभागोंसे एक-दूसरेपर चोट करते हैं, उसी प्रकार वे दोनों धनुषको पूरा-पूरा तानकर छोड़े गये बाणोंद्वारा परस्पर आघात कर रहे थे॥ ३६॥ तब सोनेके बाजूबंद धारण करनेवाले मयासुरने कुपित हो रणभूमिमें सबके प्राण हर लेनेवाली एक विशाल एवं दीप्तिमती गदा त्वष्टापर चलायी॥ ३७॥ क्रोधमें भरे हुए उस अतिरथी दानवने उस गदाके द्वारा त्वष्टाके उत्तम घोड़ोंको मार डाला; ठीक उसी तरह, जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतोंको धराशायी कर देते हैं॥ ३८॥ इसके बाद कुपित हुए उस महादैत्यने महासमरमें पुनः दो पैने 'क्षुर' नामक बाणोंद्वारा त्वष्टाके ध्वजको काटकर उनके सारथिको यमलोक पहुँचा दिया। उनके महाबली और महावेगशाली उत्तम घोड़ोंको तो उसने पहले ही गदासे मार डाला था॥ ३९-४०॥ त्वष्टाने जब देखा कि मेरा सारथि मारा गया और घोड़े भी धराशायी कर दिये गये, तब वे अश्वहीन रथ और धरतीपर पड़े हुए सारथिको वहीं छोड़कर अपने महान् धनुषको टंकारते हुए पृथ्वीपर अविचलभावसे खड़े हो गये। घोड़े और सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुए शत्रुको रणभूमिमें खड़ा देख विजय-लक्ष्मीसे सेवित और अग्निके समान दीप्तिमान् मयासुर हाथमें धनुष लेकर सामने आ गया। उस समय वह काल और अन्तकके समान दिखायी दे रहा था॥ ४१—४३॥ जैसे दावानल वनको जला देता है, उसी प्रकार वह देवताओंकी सेनाओंको दग्ध करने लगा। उसने त्वष्टापर प्रचण्ड तेजवाले अत्यन्त उग्र नाराच चलाये। साथ ही सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए विभिन्न रूप-रंगवाले चौदह सायकोंका प्रहार किया। जैसे कालसे प्रेरित हुए विषधर सर्प कुपित हो किसीका रक्त पीते हों, उसी प्रकार वे सुवर्णभूषित बाण उनकी सेनाका रक्त पान करने लगे। वे खूनसे भीगे हुए बाण पृथ्वीपर गिरकर उसमें धँस गये और बिलमें आधे घुसे हुए रोषभरे महान् सर्पोंके समान शोभा पाने लगे। तब त्वष्टाने सुवर्ण-भूषित अत्यन्त उग्र चौदह नाराचोंद्वारा मयासुरको विदीर्ण करते हुए घायल कर दिया। वे पङ्खधारी बाण उस दैत्यकी बायीं भुजाको विदीर्ण करके सर्पोंके समान वेगपूर्वक पृथ्वीमें घुस गये। पृथ्वीमें प्रवेश करते

अस्तं गच्छन्तमादित्यं प्रविशन्त इवांशवः।
मयस्त्रिभिरथानर्च्छत् त्वष्टारं तु पतत्रिभिः॥ ५०
सुपर्णवेगैर्विकृतैर्ज्वलद्भिः प्राणनाशनैः।
त्वष्टाथ मयनिर्मुक्तैः सायकैरर्दितः प्रभुः॥ ५१
अपयातो रणं हित्वा व्रीडयाभिसमन्वितः।
तं तत्र हतसूतं च भुजङ्गमिव निर्विषम्॥ ५२
त्वष्टारं विरथं कृत्वा मुदितः स तु दानवः।
विस्फार्यमाणो रुचिरं चापं रुक्माङ्गदं दृढम्॥ ५३
रणे व्यतिष्ठद् दैत्येन्द्रो ज्वलन्निव हुताशनः।
पुलोमा तु बलश्लाघी दृप्तो दानवसत्तमः॥ ५४
रथे श्वेतहयेनेह सार्धं युद्ध्यति वायुना।
सर्वेषामेव भूतानां यः प्राणः कथ्यते द्विजैः॥ ५५
बलिना कालकल्पेन वायुना सह संगतः।
पुलोम्नस्तत्र पवनः श्रुत्वा ज्यातलनिःस्वनम्॥ ५६
नामृष्यत यथा मत्तो गजः प्रतिगजस्वनम्।
दैत्यचापच्युतैर्बाणैः प्राच्छाद्यन्त दिशो दश॥ ५७
रश्मिजालैरिवार्कस्य विततं साम्बरं जगत्।
स ताम्रनयनः क्रुद्धः श्वसन्निव महोरगः॥ ५८
वृतो दैत्यशतैर्वायू रश्मिवानिव भास्करः।
दैत्यचापभुजोत्सृष्टाः शरा बर्हिणवाससः॥ ५९
रुक्मपुङ्खाः प्रकाशन्ते हंसाः श्रेणीकृता इव।
चापध्वजपताकाभ्यः शस्त्रा दीप्तमुखाश्च्युताः॥ ६०
प्रपतन्तः स्म दृश्यन्ते दैत्यस्यापततः शराः।
एवं सुतीक्ष्णान् खचराञ्छलभानिव पावके॥ ६१
सुवर्णविकृतांश्चित्रान् मुमोच दितिजः शरान्।
तमन्तकमिव क्रुद्धमापतन्तं स मारुतः॥ ६२
त्यक्त्वा प्राणानतिक्रम्य विव्याध नवभिः शरैः।
तस्य वेगमसंहार्यं दृष्ट्वा वायुः सनातनः॥ ६३
उत्तमं जवमास्थाय व्यधमत् सायकव्रजान्।
तेजो विधम्य बलवाञ्छरजालानि मारुतः॥ ६४

हुए वे नाराच अस्ताचलको जाते हुए सूर्यमें प्रविष्ट होनेवाली किरणोंके समान प्रकाशित हो रहे थे। तदनन्तर मयने पङ्खवाले तीन बाणोंद्वारा, जो गरुड़के समान वेगशाली, विकराल, प्रकाशमान और प्राणनाशक थे, त्वष्टाको घायल कर दिया। मयके छोड़े हुए सायकोंसे पीड़ित हो प्रभावशाली त्वष्टा लज्जित होकर युद्ध छोड़कर भाग गये। त्वष्टाको सारथि और रथसे हीन तथा विषरहित सर्पके समान शक्तिशून्य करके वह दानव बहुत प्रसन्न हुआ। सोनेके कड़ेसे विभूषित सुदृढ़ एवं सुन्दर धनुषकी टङ्कार करता हुआ वह दैत्यराज रणभूमिमें प्रज्वलित अग्निके समान खड़ा था। अपने बलकी प्रशंसा करनेवाला अभिमानी दानवशिरोमणि पुलोमा रथपर बैठकर श्वेत अश्ववाले वायुदेवके साथ युद्ध करने लगा। द्विजगण जिन्हें सभी प्राणियोंके प्राण कहते हैं, उन्हीं महाबली कालसदृश वायुदेवताके साथ वह जा भिड़ा। वायुदेव वहाँ पुलोमाके धनुषकी प्रत्यञ्चाकी टङ्कार सुनकर सहन न कर सके, जैसे मतवाला हाथी अपने विरोधी हाथीकी गर्जनाको नहीं सहन कर पाता है। जैसे सूर्यके किरण-जालसे आकाशसहित विस्तृत जगत् आवृत हो जाता है, उसी प्रकार पुलोमा दैत्यके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा दसों दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। फुफकारते हुए महान् सर्पकी भाँति कुपित हुए वायुदेवके नेत्र ताँबेके समान लाल हो रहे थे। वे सैकड़ों दैत्योंसे घिरकर अंशुमाली सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे। दैत्यके धनुष और बाहुबलसे छोड़े गये मोरपङ्खवाले बाण, जिनमें सोनेके पर लगे हुए थे, श्रेणीबद्ध हंसोंके समान प्रकाशित होते थे। उस आक्रमणकारी दैत्यके धनुष, ध्वज और पताकाओंसे छूटे हुए प्रदीप्त मुखवाले शस्त्र एवं बाण सब ओर गिरते दिखायी देते थे। इस प्रकार दैत्यने आगमें गिरनेवाले शलभोंके समान बहुत-से तीखे, सुवर्णनिर्मित, विचित्र एवं आकाशमें विचरनेवाले बाण छोड़े। क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान उस दैत्यको अपनी ओर आते देख वायुने प्राणोंका मोह छोड़कर उसे नौ बाणोंसे बींध डाला। पुलोमाका वेग अनिवार्य देख सनातन वायुदेवने उत्तम वेगका आश्रय ले उसके समस्त सायकसमूहोंका विध्वंस कर डाला। उसके तेज और बाणसमूहोंका नाश करके बलवान् वायुदेवने

विव्याध दैत्यं विंशत्या विशिखैर्नतपर्वभिः।
मरुद्गणानां प्रवरा दश दिव्या महौजसः॥ ६५

साधु साध्विति वेगेन सिंहनादं प्रचक्रिरे।
तस्मिन् समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे॥ ६६

अभ्यधावन्त दितिजाः पौलोमाः क्रोधमूर्च्छिताः।
ते समासाद्य पवनं समावृण्वञ्छरोत्तमैः॥ ६७

पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकाः।
ते पीडयन्तः पवनं क्रुद्धाः सप्त महारथाः॥ ६८

प्रजासंहरणे घोराः सोमं सप्त ग्रहा इव।
ततो दक्षिणमक्षोभ्यं नानारत्नविभूषितम्॥ ६९

करं गजकराकारमुद्यम्य युधि मारुतः।
तेषां मूर्धसु दैत्यानां पातयामास वीर्यवान्॥ ७०

निहता वायुवेगेन तेन सप्त महारथाः।
त्यक्त्वा प्राणान् पुलोमा तु विव्याध नवभिः शरैः॥ ७१

प्रदर्पितमसंहार्यं दृष्ट्वा वायुं सनातनम्।
असंचिन्त्य शरौघांस्ताञ्ज्वलितांश्च पुलोमतः॥ ७२

तेषां विदार्य तेजांसि दानवानां महात्मनाम्।
शोणितक्लिन्नमुकुटा गैरिकाक्ता इवाद्रयः॥ ७३

ते भिन्नवर्मास्थिभुजाः पतन्तो भान्ति दानवाः।
मातङ्गयूथसम्भग्नाः पुष्पिता इव पादपाः॥ ७४

तेषां विदारितैर्देहैर्दानवानां महात्मनाम्।
ततः प्रावर्तत नदी रौद्ररूपा भयावहा॥ ७५

प्रस्रवन्ती रणे रक्तं भीरूणां भयवर्धिनी।
देवदैत्यगजाश्वानां रुधिरौघपरिप्लुता।
रणभूमिरभूद् रौद्रा तत्र तत्र सहस्रशः॥ ७६

सम्भृता गतसत्त्वैश्च यक्षराक्षसखेचरैः।
सानुगैः सपताकैश्च सोपासङ्गरथध्वजैः॥ ७७

उस दैत्यको झुकी हुई गाँठवाले बीस बाणोंसे घायल कर दिया। यह देखकर मरुद्गणोंमें श्रेष्ठ जो दस दिव्य महातेजस्वी पुरुष थे, उन्होंने 'साधु! साधु! (वाह! वाह!)' कहकर बड़े वेगसे सिंहनाद किया। उस रोमाञ्चकारी भयंकर सिंहनादके प्रकट होनेपर पौलोम नामवाले दैत्य क्रोधसे मूर्च्छित होकर दौड़े। उन्होंने वायुके पास पहुँचकर उन्हें अपने उत्तम बाणोंसे ढक दिया, ठीक वैसे ही, जैसे वर्षा-ऋतुमें बादल अपनी जलधाराओंसे पर्वतको आच्छादित कर देते हैं। क्रोधमें भरे हुए वे सात पौलोम महारथी वायुदेवको उसी तरह पीडा देने लगे, जैसे प्रजाके संहारकालमें सात घोर ग्रह सोमको पीड़ित करने लगते हैं। तब बल-पराक्रमसे सम्पन्न वायु देवताने किसीसे भी क्षुब्ध न किये जाने योग्य, नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित तथा हाथीकी सूँड़के समान आकारवाले दाहिने हाथको ऊपर उठाकर उसीसे युद्धस्थलमें उन सातों पौलोमोंके मस्तकोंपर प्रहार किया। उस वायुतुल्य वेगशाली कर-प्रहारसे वे सातों महारथी मारे गये। तब पुलोमाने सनातन वायु देवताको दर्पयुक्त और अजेय देख प्राणोंका मोह छोड़कर नौ बाणोंसे उन्हें बींध डाला। पुलोमाकी ओरसे आये हुए उन प्रज्वलित बाणसमूहोंकी चिन्ता न करते हुए उन महाकाय दानवोंके तेज (मस्तक)-को विदीर्ण करके वायु देवताने उनके मुकुटोंको रक्तसे भिगो दिया। उस समय वे दैत्य गेरुसे भीगे हुए पर्वतोंके समान प्रतीत होते थे॥ ४४—७३॥ कवच, हड्डी और भुजाओंके छिन्न-भिन्न हो जानेसे पृथ्वीपर गिरते हुए वे दानव हाथियोंके झुंडद्वारा तोड़े गये पुष्पयुक्त वृक्षोंके समान प्रतीत होते थे॥ ७४॥ उन महाकाय दानवोंके विदीर्ण किये हुए शरीरोंसे खूनकी एक भयंकर नदी बह चली, जिसका स्वरूप बड़ा ही रौद्र था॥ ७५॥ वह रणभूमिमें रक्तका स्रोत बहाती हुई भीरु पुरुषोंके मनमें भयकी वृद्धि कर रही थी। देवताओं और दैत्योंके हाथी-घोड़ोंके रक्तके प्रवाहसे जहाँ-तहाँ सहस्रों स्थानोंमें डूबी हुई वह रणभूमि बड़ी भयंकर प्रतीत हो रही थी॥ ७६॥ निर्जीव यक्ष, राक्षस तथा खेचरोंसे वह भूमि भरी हुई थी। उनके सेवक, ध्वजा, पताका, उपासङ्ग और रथ सभी वहाँ बिखरे पड़े थे॥ ७७॥

शीर्णकुम्भैस्तथा नागैर्घण्टाभिस्तु विभूषितैः।
सुवर्णपुङ्खैर्ज्वलितैर्नाराचैस्तिग्मतेजसैः॥ ७८

देवदानवनिर्मुक्तैः सविषैरुरगैरिव।
प्रासतोमरनाराचैः शक्तिखड्गपरश्वधैः॥ ७९

सुवर्णविकृतैश्चापि गदामुसलपट्टिशैः।
कनकाङ्गदकेयूरैर्मणिभिश्च सकुण्डलैः॥ ८०

तनुत्रैः सतलत्रैश्च हारैर्निष्कैश्च शोभनैः।
हतैश्च दितिजैस्तत्र शस्त्रस्यन्दनवर्जितैः॥ ८१

पतितैरपि विद्धैश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
निपातितध्वजरथो हतवाजिरथद्विपः॥ ८२

विमर्दो देवदैत्यानां सदृशः कर्मणा बभौ।
अथ दैत्यसहस्रेण पौलोमेन महारथः॥ ८३

संवृतः पवनः श्रीमान् गदामुसलपाणिना॥ ८४

ते जघ्नुः शतसाहस्रः पवनं दानवोत्तमाः।
तैर्वध्यमानः स बभौ समन्तादर्पितैः शरैः॥ ८५

हत्वाष्टौ तत्र योधानां शतानि पवनः प्रभुः।
कृत्वा मार्गं सुरश्रेष्ठो ननाद सुमहारथः॥ ८६

अद्यापि च सुविस्तीर्णः पन्थाः संदृश्यते दिवि।
नाम्ना वायुरथो नाम सिद्धाः पश्यन्ति तं दिवि॥ ८७

वैशम्पायन उवाच

हयग्रीवस्तु दितिजः पूषणं प्रति वीर्यवान्।
ननाद सुमहानादं सिंहनादं महारथः॥ ८८

विस्फार्य सुमहच्चापं हेमजालविभूषितम्।
पूषणं दितिजोऽपश्यत् क्रुद्धो घोरेण चक्षुषा॥ ८९

भुजाभ्यामाददानस्य संदधानस्य वै शरान्।
मुञ्चतः कर्षतो वापि ददृशुस्तत्र नान्तरम्॥ ९०

अग्निचक्रोपमं दीप्तं मण्डलीकृतकार्मुकम्।
तदासीद् दानवेन्द्रस्य सव्यदक्षिणमस्यतः॥ ९१

रुक्मपुङ्खैस्ततस्तस्य चापमुक्तैः शितैः शरैः।
प्राच्छाद्यन्त शिलाधौतैर्दिशः सूर्यस्य च प्रभाः॥ ९२

घण्टोंसे विभूषित गजराज धराशायी हो गये थे, उनके कुम्भस्थल फट गये थे। सोनेके पर लगे हुए प्रचण्ड तेजवाले प्रज्वलित बाण, जिन्हें देवताओं और दानवोंने छोड़ा था, विषैले सर्पोंके समान वहाँ पड़े हुए थे। प्रास, तोमर, नाराच, शक्ति, खड्ग, फरसे, सुवर्ण-निर्मित गदा, मुसल, पट्टिश, सोनेके बाजूबंद, केयूर, मणि, कुण्डल, कवच, दस्ताने, हार, सुन्दर पदक, शस्त्र तथा रथसे रहित मरे हुए दैत्य तथा घायल होकर पड़े हुए सैकड़ों और हजारों सैनिकोंसे वह रणभूमि भर गयी थी। जहाँ बहुत-से ध्वज और रथ गिराये गये थे, घोड़े, हाथी और रथी मार डाले गये थे, वह देवताओं तथा दैत्योंका विमर्द (संग्राम) उनके कर्मके अनुरूप ही प्रतीत होता था। तदनन्तर हाथोंमें गदा और मुसल लिये हुए पौलोम नामवाले एक सहस्र दैत्योंने श्रीमान् महारथी पवनदेवको घेर लिया॥ ७८—८४॥ फिर तो लाखों श्रेष्ठ दानवोंने पवनदेवको मारना आरम्भ किया। वे चारों ओरसे बाण मारकर उन्हें चोट पहुँचाने लगे। शरीरमें धँसे हुए उन बाणोंसे उनकी अद्भुत शोभा हो रही थी॥ ८५॥ प्रभावशाली, महारथी, सुरश्रेष्ठ पवनदेवने वहाँ आठ सौ पौलोम योद्धाओंका वध करके अपने लिये मार्ग बना लिया और बड़े जोरसे सिंहनाद किया॥ ८६॥ आज भी आकाशमें वह सुविस्तृत मार्ग दिखायी देता है, जो वायुरथके नामसे प्रसिद्ध है। सिद्ध पुरुष द्युलोकमें उसका दर्शन करते हैं॥ ८७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! हयग्रीव नामक पराक्रमी एवं महारथी दैत्यने पूषापर आक्रमण करके बड़े जोरसे सिंहनाद किया॥ ८८॥ क्रोधमें भरे हुए उस दैत्यने सोनेकी जालीसे विभूषित विशाल धनुषको तानकर पूषाकी ओर घोर दृष्टिसे देखा॥ ८९॥ उस दैत्यके दोनों हाथोंसे बाणोंके लेने, धनुषपर रखने, प्रत्यञ्चाको खींचने और उन बाणोंको छोड़नेमें कितने क्षणका अन्तर होता है, यह कोई भी वहाँ देख नहीं पाते थे॥ ९०॥ दायें-बायें दोनों ओर बाण छोड़ते हुए उस दानवराजका दीप्तिमान् धनुष मण्डलाकार होकर अलात-चक्रके समान प्रतीत होता था॥ ९१॥ उसके धनुषसे छूटे हुए तीखे बाणोंसे, जिनमें सोनेके पर लगे थे और जिन्हें सानपर चढ़ाकर तेज किया गया था, सम्पूर्ण दिशाएँ और सूर्यकी प्रभाएँ भी आच्छादित हो गयीं॥ ९२॥

ततः कनकपुङ्खानां शराणां नतपर्वणाम्।
नभश्चराणां नभसि दृश्यन्ते बहवो व्रजाः॥ ९३

गिरिकूटनिभाच्चापात् प्रभवन्तः शरोत्तमाः।
श्रेणीभूताः प्रकाशन्ते यान्तः श्येना इवाम्बरे॥ ९४

गृध्रपत्राञ्छिलाधौतान् कार्तस्वरविभूषितान्।
महावेगान् प्रशस्ताग्रान् मुमोच दितिजः शरान्॥ ९५

ततश्चापबलोद्धूताः शातकुम्भविभूषिताः।
देहे समवकीर्यन्त पूष्णः संनिहिताः शराः॥ ९६

ते व्योम्नि रुक्मविकृताः सम्प्रकाशन्त सर्वशः।
खद्योता इव घर्मान्ते खे चरन्तः समन्ततः॥ ९७

शिलाधौताः प्रसन्नाग्राः पूषणं सिषिचुः शराः।
पर्वतं वारिधाराभिर्यथा प्रावृषि तोयदाः॥ ९८

ततः प्रच्छादयामास पूषणं शरवृष्टिभिः।
पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः॥ ९९

ततः सपूष्णोऽदेवस्य बलं वीर्यं पराक्रमम्।
व्यवसायं च सत्त्वं च पश्यन्ति त्रिदशाद्भुतम्॥ १००

तां समुद्रादिवोद्धूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम्।
नाचिन्तयत् तदा पूषा दैत्यं चाभ्यद्रवद् रणे॥ १०१

हेमपृष्ठं महानादं पूष्ण आसीन्महाधनुः।
विकृतं मण्डलीभूतं शक्राशनिरिवापरा॥ १०२

ततः शराः प्रादुरासन् पूरयन्त इवाम्बरम्॥ १०३

सुवर्णपुङ्खाः पूष्णस्ते प्रभवन्तः शरासनात्।
मालेव रुक्मपुङ्खानां वितता व्योम्नि पत्रिणाम्॥ १०४

प्रादुरासीन्महाघोरा बृहती पूषकार्मुकात्।
ततो व्योम्नि विभक्तानि शरजालानि सर्वशः॥ १०५

आहतानि व्यशीर्यन्त शरैः संनतपर्वभिः।
ततः कनकपुङ्खानां छिन्नानां कङ्कवाससाम्॥ १०६

पततां पात्यमानानां खमासीच्चावृतं रणे।
पूषा प्रापूरयद् बाणैर्हयग्रीवं शिलाशितैः॥ १०७
नामाङ्कैरर्कसदृशैर्दिव्यहेमपरिष्कृतैः।

तदनन्तर झुकी हुई गाँठ और सुवर्णमय पंखवाले आकाशचारी बाणोंके बहुत-से समूह अन्तरिक्षमें दिखायी देने लगे॥ ९३॥ पर्वतशिखरके समान उसके विशाल धनुषसे प्रकट होनेवाले उत्तम बाण आकाशमें श्रेणीबद्ध होकर उड़ते हुए बाजोंके समान सुशोभित होते थे॥ ९४॥ वह दैत्य गीधके पंख लगे हुए, शिलापर तेज किये गये, सुवर्णसे विभूषित, महान् वेगशाली तथा अच्छी नोकवाले बाणोंका प्रहार कर रहा था॥ ९५॥ तदनन्तर धनुषसे बलपूर्वक उठे हुए सुवर्णभूषित बाण पूषाके शरीरमें गिरने और धँसने लगे॥ ९६॥ जैसे वर्षा-ऋतुमें जुगुनुओंके समुदाय आकाशमें सब ओर विचरते हैं, उसी प्रकार वे सुवर्णनिर्मित बाण व्योममण्डलमें सब ओर प्रकाशित हो रहे थे॥ ९७॥ जैसे वर्षाकालमें बादल अपनी जलधाराओंसे पर्वतको नहलाते हैं, उसी प्रकार शिलापर चढ़ाकर तेज किये गये स्वच्छ अग्रभागवाले वे बाण मानो पूषाको सींच रहे थे॥ ९८॥ तत्पश्चात् अपनी जलधाराओंसे पर्वतको आच्छादित करनेवाले मेघकी भाँति हयग्रीवने अपने बाणोंकी वर्षासे पूषाको ढक दिया॥ ९९॥ उस समय सब देवता पूषासहित उस दैत्यके बल, वीर्य, पराक्रम, व्यवसाय और धैर्यको अद्भुतरूपसे देख रहे थे॥ १००॥ तदनन्तर समुद्रसे उठी हुई जलवर्षाके समान उस बाणवर्षाकी पूषाने कोई परवा नहीं की। उन्होंने तत्काल ही रणभूमिमें उस दैत्यपर धावा किया॥ १०१॥ पूषाका विशाल धनुष बड़े जोरसे टङ्कार करनेवाला था। उसके पृष्ठभागमें सोना जड़ा हुआ था। वह खींचा जानेपर मण्डलाकार हो दूसरे इन्द्र-वज्रके समान जान पड़ता था॥ १०२॥ तत्पश्चात् पूषाके धनुषसे सोनेके पर लगे हुए बाण आकाशको भरते हुए-से प्रकट होने लगे। उस समय पूषाके शरासनसे आकाशमें सुनहरे पंखवाले बाणोंकी महाघोर, विस्तृत एवं विशाल माला-सी प्रकट हो गयी। फिर तो झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे आहत हो वे दैत्यके बाणजाल आकाशमें छिन्न-भिन्न हो सब ओर बिखरकर गिरने लगे। तदनन्तर सोनेके पंख और कङ्क पक्षीके परवाले बाण कटकर गिरने और गिराये जाने लगे, जिससे रणभूमिका सारा आकाश आच्छादित हो गया। पूषाने अपने नामसे चिह्नित, सूर्यतुल्य तेजस्वी तथा दिव्य सुवर्णसे भूषित हुए, शिलापर तेज किये गये बाणोंसे हयग्रीवको ढक दिया।

ततो व्यसृजदुग्राणि शरजालानि दानवः ॥ १०८

अमर्षी बलवान् क्रुद्धो दिधक्षन्निव पावकः ।
पूष्णस्त्वाजौ ध्वजं चैव पताकां धनुरेव च ॥ १०९

रश्मीन् योक्त्राणि चाश्वानां हयग्रीवो रणेऽच्छिनत् ।
अथाप्यश्वान् पुनर्हत्वा चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ ११०

सारथिं सुमहातेजा रथोपस्थादपातयत् ।
कृतस्तु विरथः पूषा हयग्रीवेण संयुगे ॥ १११

पूषा तस्य रथाभ्याशात् स ययौ तेन वै जितः ।
गतः शक्ररथाभ्याशं मुक्तो मृत्युमुखादिव ॥ ११२

तत्राद्भुतमिदं भूयो युद्धं वर्तत दारुणम् ।
कृतप्रतिकृतं घोरं शम्बरस्य भगस्य च ॥ ११३

सप्तकिष्कुपरीणाहं द्वादशारत्निकार्मुकम् ।
चापं चाशनिनिर्घोषं दृढज्यं भारसाधनम् ॥ ११४

विक्षिपन्नक्षसदृशान् व्यसृजत् सायकान् बहून् ।
क्रोधसंरक्तनयनः शम्बरः सर्वयोगवित् ॥ ११५

तेन वित्रास्यमानानि देवसैन्यानि सर्वशः ।
समकम्पन्त भीतानि सिन्धोरिव महोर्मयः ॥ ११६

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य विरूपाक्षं विभीषणम् ।
भगः प्रस्फुरमाणौष्ठस्त्वरमाणो व्यदारयत् ॥ ११७

ततो भगो महेष्वासो दिव्यं विस्फारयन् धनुः ।
अवाकिरद् दैत्यगणाञ्छरजालेन छादयन् ॥ ११८

तमभ्यगाद् भगो दैत्यं तूर्णमस्यन्तमन्तिकात् ।
मातङ्गमिव मातङ्गो वृषं प्रति वृषो यथा ॥ ११९

तौ प्रगृह्य महावेगौ धनुषी भारसाधने ।
प्राच्छादयेतामन्योन्यं तक्षमाणौ रणे शरैः ॥ १२०

तयोः सुतुमुलं युद्धमासीद् घोरं महारणे ।
भगशम्बरयोर्भीममप्रमेयं महात्मनोः ॥ १२१

तब वह अमर्षशील बलवान् कुपित तथा जलानेकी इच्छावाले अग्निदेवके समान तेजस्वी दानव वहाँ भयङ्कर बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगा। हयग्रीवने रणभूमिमें पूषाके ध्वज, पताका, धनुष, बागडोर और घोड़ोंके जोते काट डाले। तत्पश्चात् चार उत्तम सायकोंसे उनके घोड़ोंको मारकर उस महातेजस्वी दैत्यने पूषाके सारथिको भी रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया। उस युद्धस्थलमें हयग्रीवके द्वारा रथहीन किये गये पूषा उससे पराजित हो उसके रथके पाससे दूर चले गये। वे मृत्युके मुखसे मुक्त हुएके समान उस दानवसे बचकर इन्द्रके रथके समीप चले गये॥ १०३—११२॥ तदनन्तर वहाँ पुनः शम्बरासुर और भग देवताका अद्भुत, घोर और दारुण युद्ध आरम्भ हुआ, जिसमें दोनों ओरसे प्रहार और उसका प्रतीकार किया जा रहा था॥ ११३॥ सब प्रकारके योग (या प्रयोग)-का ज्ञान रखनेवाले शम्बरासुरके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे। उसके धनुषकी लम्बाई बारह अरत्नि थी और उसकी चौड़ाई सात किष्कु (साढ़े तीन हाथ)-की थी। उससे वज्रकी गड़गड़ाहटके समान टङ्कारध्वनि प्रकट होती थी। उसकी प्रत्यञ्चा सुदृढ़ थी और वह धनुष भारी-से-भारी कार्यको सिद्ध कर सकता था। शम्बरासुर उस धनुषको खींचकर धुरेके समान मोटे-मोटे बहुसंख्यक सायकोंकी वृष्टि करने लगा॥ ११४-११५॥ शम्बरासुरके द्वारा आतङ्कित की गयी सम्पूर्ण देवसेनाएँ भयभीत हो महासागरकी बड़ी-बड़ी तरङ्गोंके समान काँपने लगीं॥ ११६॥ विरूप नेत्रवाले उस भयंकर दैत्यको आते देख भगदेवताके ओष्ठ फड़क उठे। उन्होंने बड़ी उतावलीके साथ उसे अपने अस्त्रोंद्वारा घायल कर दिया॥ ११७॥ तदनन्तर महाधनुर्धर भगने अपने दिव्य धनुषको तानकर दैत्यगणोंको अपने बाणोंके जालसे आच्छादित करते हुए उनपर बाणोंकी बौछार आरम्भ कर दी॥ ११८॥ लगातार बाण फेंकते हुए उस दैत्यके समीप भग देवता तुरंत जा पहुँचे। मानो एक हाथी दूसरे हाथीसे और एक साँड़ दूसरे साँड़से भिड़नेके लिये उसके पास जा पहुँचा हो॥ ११९॥ वे दोनों महान् वेगशाली वीर भारसाधनमें समर्थ धनुष हाथमें लेकर रणभूमिमें बाणोंद्वारा एक-दूसरेको क्षत-विक्षत करते हुए आच्छादित करने लगे॥ १२०॥ उस महासमरमें महामनस्वी भग और शम्बरासुरमें अनुपम, भीषण, तुमुल और घोर युद्ध होने लगा॥ १२१॥

अथ पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः संनतपर्वभिः ।
व्यदारयेतामन्योन्यं कार्ष्णे निर्भिद्य चर्मणी ॥ १२२

तौ तु विकृतसर्वाङ्गौ रुधिरेण समुक्षितौ ।
सम्प्रेक्ष्यमाणौ रथिनावुभौ परमदुर्मदौ ।
तक्षमाणौ शितैर्बाणैर्न वीक्षितुमशक्नुताम् ॥ १२३

अथ विव्याध समरे त्वरमाणोऽसुरो भगम् ।
नाराचैः क्रोधताम्राक्षः कालान्तकयमोपमः ॥ १२४

गरुत्मानिव चाकाशे पोथयानो महोरगम् ।
नाराचा न्यपतन् देहे तूर्णं शम्बरचोदिताः ॥ १२५

तानन्तरिक्षे नाराचान् भगश्चिच्छेद पत्रिभिः ।
ज्वलन्तमचलप्रख्यं वैश्वानरसमप्रभम् ॥ १२६

ततो भगं चतुःषष्ट्या विव्याधासुरसत्तमः ।
शिलीमुखैर्महावेगैर्जाम्बूनदविभूषितैः ॥ १२७

तदा तत् सुचिरं कालं युद्धं सममिवाभवत् ।
शम्बरस्य च मायाभिर्नादृश्यत ततोऽम्बरम् ॥ १२८

दोर्भ्यां विक्षिपतश्चापं रणे विष्टभ्य तिष्ठतः ।
श्रूयते धनुषः शब्दो विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ १२९

स भगस्य हयान् हत्वा सारथिं च महाहवे ।
अभ्यवर्षच्छरैरेनं पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ १३०

न तस्यासीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यङ्गुलमन्तरम् ।
भगदेवस्य दैत्येन शम्बरेणास्त्रघातिना ॥ १३१

देवस्य चाद्भुतं दिव्यमस्त्रमस्त्रेण वारयन् ।
मायायुद्धेन मायावी शम्बरस्तमयोधयत् ॥ १३२

अवञ्चयद् भगं दैत्यो मायाभिर्लाघवेन च ।
भगस्तस्य रथं साश्वं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १३३

सहस्रमायो द्युतिमान् देवसेनां निषूदयन् ।
अदृश्यत शरैश्छन्नः शम्बरः शतशो रणे ॥ १३४

अदृश्यत् पतितो भूमौ गतचेता इवासुरः ।
अथ स्म युध्यते भूयः शतधा शैलसंनिभः ॥ १३५

उन्होंने पूर्णतः कानोंतक खींचकर छोड़े गये झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा लोहेकी ढालोंको भी छिन्न-भिन्न करके एक-दूसरेको विदीर्ण कर दिया ॥ १२२ ॥ उनके सारे अङ्ग विकृत तथा रक्तसे लथपथ हो गये थे तो भी वे दोनों रथी परम दुर्मद (युद्धके लिये उन्मत्त) दिखायी देते थे। वे तीखे बाणोंसे परस्पर गहरी चोट कर रहे थे और दूसरेकी ओर देख नहीं पाते थे ॥ १२३ ॥ तदनन्तर शम्बरासुरकी आँखें क्रोधसे लाल हो उठीं। वह काल, अन्तक और यमके समान विकराल हो गया। उसने तुरंत ही समरभूमिमें भगदेवताको घायल कर दिया ॥ १२४ ॥ जैसे गरुड़ आकाशमें बड़े भारी सर्पको दबोच लेता है, उसी प्रकार शम्बरासुरने भगको पीड़ित कर दिया। शम्बरासुरके चलाये हुए नाराच भगके शरीरपर तीव्र वेगसे गिरने लगे, किंतु भगने अन्तरिक्षमें ही अपने बाणोंद्वारा उन सभी नाराचोंको काट दिया। तब असुरशिरोमणि शम्बरने अग्निके समान तेजस्वी और पर्वतके समान स्थिरभावसे खड़े हुए प्रकाशमान भगदेवताको महान् वेगशाली सुवर्णभूषित चौंसठ बाणोंसे बींध डाला ॥ १२५—१२७ ॥ उस समय उन दोनोंमें बहुत देरतक एक-सा युद्ध चलता रहा। शम्बरासुरकी मायाओंसे आकाशका दिखायी देना बंद हो गया ॥ १२८ ॥ रणभूमिमें धनुषको तानकर खड़े हुए और दोनों हाथोंसे बाण चलाते हुए शम्बरासुरके धनुषका शब्द वज्रकी गड़गड़ाहटके समान सुनायी देता था ॥ १२९ ॥ शम्बरासुर उस महासमरमें भगके घोड़ों और सारथिको मारकर भगके ऊपर वर्षा करनेवाले मेघकी भाँति बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ १३० ॥ भगदेवताके शरीरमें दो अङ्गुल भी ऐसा स्थान नहीं रह गया, जिसे अस्त्रघाती दैत्य शम्बरने बाणोंद्वारा विदीर्ण न किया हो ॥ १३१ ॥ मायावी शम्बरासुर भगदेवताके अद्भुत दिव्यास्त्रका अपने अस्त्रद्वारा वारण करता हुआ मायामय युद्धके द्वारा उनके साथ जूझता रहा ॥ १३२ ॥ वह दैत्य अपनी मायाओं तथा फुर्तीसे भगदेवताको चकमा देने लगा और भगदेवता उसके घोड़ोंसहित रथपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १३३ ॥ सहस्रों मायाओंका ज्ञाता तेजस्वी शम्बरासुर देवसेनाका संहार करता हुआ बाणोंसे आच्छन्न हो समरभूमिमें सैकड़ोंकी संख्यामें दिखायी देने लगा ॥ १३४ ॥ वह असुर कभी भूमिपर अचेत-सा होकर गिरा हुआ दिखायी देता था और पुनः सैकड़ों पर्वताकार शरीर धारण करके युद्ध करने लगता था ॥ १३५ ॥

दिशां गजेन्द्रमारूढो दृश्यते स पुनर्बली।
प्रादेशमात्रश्च पुनः पुनर्भवति शैलवत्॥ १३६

महामेघ इव श्रीमांस्तिर्यगूर्ध्वं च सोऽभवत्।
पुनः कृत्वा विरूपाणि विकृतानि च सर्वशः॥ १३७

सर्वां भीषयते सेनां देवानां भीमदर्शनः।
ते भीताः प्रपलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा मृगा यथा॥ १३८

ततः सोऽन्यं वरं देहं कृत्वा प्रांशुतरं पुनः।
गच्छत्यूर्ध्वगतिं घोरो दिशः शब्देन पूरयन्॥ १३९

नभस्तलगतश्चापि वर्षते वासवो यथा।
संवर्तकाम्बुदप्रख्यः पूरयन् पृथिवीतलम्॥ १४०

संवर्तकोऽनलश्चैव भूत्वा भीमपराक्रमः।
शतवर्मा शतशिखो ददाह च पुनः सुरान्॥ १४१

मुहूर्ताच्च महाशैलः शतशीर्षा शतोदरः।
अदृश्यत दिवः स्तम्भः शतशृङ्ग इवाचलः॥ १४२

येऽन्ये देवाश्च साध्याश्च ये च विश्वे च देवताः।
क्षिपन्त्यस्त्राणि दिव्यानि तानि सोऽग्रसतासुरः॥ १४३

युद्ध्यमानश्च समरे सरथः सोऽसुरोत्तमः।
गन्धर्वनगराकारस्तत्रैवान्तरधीयत॥ १४४

ते भीताः समुदीक्षन्त त्रिदशा भीमविक्रमाः।
सहस्रमायं समरे शम्बरं चित्रयोधिनम्॥ १४५

स भगो भयसंत्रस्तो दानवेन्द्रस्य संयुगे।
रथं त्यक्त्वा महाभागो महेन्द्रं शरणं गतः॥ १४६

पराजित्य तु तं देवं दानवेन्द्रः प्रतापवान्।
गतो यत्र महातेजा जातवेदा महाप्रभः॥ १४७

पुनः वह बलवान् दैत्य दिग्गजकी पीठपर बैठा हुआ दृष्टिगोचर होता था। फिर कुछ ही देरमें वह प्रादेशमात्रका हो जाता और दूसरे ही क्षणमें पुनः पर्वत-जैसा रूप धारण कर लेता था॥ १३६॥ वह तेजस्वी दैत्य महान् मेघोंकी घटाके समान ऊपर और अगल-बगलकी दिशाओंमें छा जाता था। फिर विकृत एवं विकराल रूप धारण करके भयानक दिखायी देनेवाला वह असुर सब ओरसे सारी देवसेनाको भयभीत करने लगता था। जैसे सिंहको देखकर मृग भाग जाते हैं, उसी प्रकार उसे देखकर देवताओंके सैनिक भयभीत होकर भागने लगे॥ १३७-१३८॥ तत्पश्चात् वह घोर दैत्य पुनः दूसरा श्रेष्ठ एवं बहुत ही ऊँचा शरीर धारण करके ऊपरकी ओर चला गया और वहींसे भयंकर सिंहनाद करके सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करने लगा॥ १३९॥ आकाशमें पहुँचकर संवर्तक नामक मेघके समान रूप धारण करके पृथ्वीतलको पूर्ण करता हुआ इन्द्रकी भाँति वर्षा करने लगा॥ १४०॥ फिर वह भयंकर पराक्रमी दैत्य संवर्तक अग्नि बनकर सैकड़ों ज्वालाओंसे युक्त हो, सैकड़ों मार्गोंसे चलकर देवताओंको बारम्बार दग्ध करने लगा॥ १४१॥ फिर दो घड़ीमें महान् पर्वतके समान रूप धारण करके वह सौ मस्तकों और सौ पेटोंसे युक्त हो गया (अथवा महान् पर्वतरूप होकर सैकड़ों शिखरों एवं कन्दराओंसे सम्पन्न हो गया)। उस समय वह शतशृङ्ग पर्वतकी भाँति स्वर्गलोकका स्तम्भ-सा दिखायी देता था॥ १४२॥ जो दूसरे देवता, साध्यगण और विश्वेदेव उसके ऊपर दिव्यास्त्र चलाते थे, उनके उन सभी अस्त्रोंको वह असुर अपना ग्रास बना लेता था॥ १४३॥ समराङ्गणमें युद्ध करता हुआ वह असुरशिरोमणि शम्बर अपने रथके साथ गन्धर्व-नगरकी भाँति वहीं अन्तर्धान हो गया॥ १४४॥ भयानक पराक्रम दिखानेवाले वे प्रसिद्ध देवता समरभूमिमें विचित्र युद्ध करनेवाले सहस्र मायाधारी शम्बरासुरको भयभीत होकर देखने लगे॥ १४५॥ उस युद्धस्थलमें दानवराज शम्बरासुरके भयसे संत्रस्त हो महाभाग भगदेवता अपना रथ छोड़कर देवराज इन्द्रकी शरणमें चले गये॥ १४६॥ भग देवताको पराजित करके प्रतापी दानवराज शम्बर उस स्थानपर गया, जहाँ महातेजस्वी तथा महान् प्रभापुञ्जसे परिपूर्ण जातवेदा (सर्वज्ञ) अग्निदेव विराजमान थे॥ १४७॥

स वह्निं वाग्भिरुग्राभिः क्रुद्धस्तर्जयते बली।
भवाम्येष हि ते मृत्युरित्युक्त्वान्तरधीयत॥ १४८

वह बलवान् दैत्य कुपित हो अपनी कठोर वाणीसे अग्निदेवको डाँट बताता हुआ बोला—'मैं अभी तुम्हारे लिये मृत्युरूप होता हूँ।' ऐसा कहकर वह अन्तर्धान हो गया॥ १४८॥

वैशम्पायन उवाच

एतस्मिन्नन्तरे चैव ब्राह्मणेन्द्रो महाबलः।
जघान सोमः शीतास्त्रो दानवानां चमूं रणे॥ १४९

कैलासशिखराकारो द्युतिमद्भिर्गणैर्वृतः।
अवधीद् दानवान् दृष्ट्वा दण्डपाणिरिवान्तकः॥ १५०

पोथयद् रथवृन्दानि वाजिवृन्दानि वै प्रभुः।
दैत्येषु विचरञ्छ्रीमान् युगान्ते कालवद् बली॥ १५१

सोऽमर्षाद् रथजालानि उरुवेगेन चन्द्रमाः।
ददाह दानवान् सर्वान् दावाग्निरिव चोदितः॥ १५२

मृद्नन् रथेभ्यो रथिनो गजेभ्यो गजयोधिनः।
सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातिनः॥ १५३

शीतेन व्यधमत् सर्वान् वायुर्वृक्षानिवौजसा।
चन्द्रमाः सुमहातेजा दानवानां महाचमूम्॥ १५४

तदस्त्रमभवत् तस्य प्रदिग्धं शत्रुशोणितैः।
पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याभिघ्नतः पशून्॥ १५५

युगान्तकोपमः श्रीमान् दैत्येषु व्यचरद् बली।
आवार्य महतीं सेनां प्राद्रवन्तीं पुनः पुनः॥ १५६

चन्द्रं मृत्युमिवायान्तं दृष्ट्वा योधा विसिस्मियुः।
यतो यतः प्रक्षिपति शिशिरास्त्रं तमोनुदः॥ १५७

ततस्ततो व्यशीर्यन्त दैत्यसैन्यानि संयुगे।
व्यदारयत् स सैन्यानि स्वबलेनाभिसंवृतः॥ १५८

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इसी बीचमें ब्राह्मणोंके राजा महाबली सोम रणभूमिमें शीतास्त्र लेकर दानवोंकी सेनाका संहार करने लगे॥ १४९॥ उनकी आकृति कैलास-शिखरके समान गौर थी; वे तेजस्वी नक्षत्रगणोंसे घिरे हुए थे, उन्होंने दण्डधारी यमराजके समान दानवोंको देख-देखकर मारना आरम्भ किया॥ १५०॥ सामर्थ्यशाली एवं कान्तिमान् चन्द्रदेव प्रलयकालमें प्रकट हुए कालके समान दैत्योंकी सेनामें विचरते हुए उनके रथसमूहों और अश्वसमुदायोंका संहार करने लगे॥ १५१॥ चन्द्रमाने अमर्षवश बड़े वेगसे समस्त दानवों और उनके रथसमूहोंको उसी तरह दग्ध करना आरम्भ किया, जैसे वनमें प्रकट हुआ दावानल सारे वृक्षोंको जलाकर भस्म कर देता है॥ १५२॥ वे रथोंसे रथियों, हाथियोंसे हाथी-सवार योद्धाओं और घोड़ोंकी पीठोंसे घुड़सवारों तथा पैदल सैनिकोंको भी पृथ्वीपर गिराकर रौंद डालते थे॥ १५३॥ जैसे वायुदेव अपने बलसे वृक्षोंको तोड़ डालते हैं, उसी प्रकार महातेजस्वी चन्द्रमाने समस्त दानवों तथा उनकी विशाल सेनाको अपने शीतास्त्रसे नष्टप्राय कर दिया॥ १५४॥ उनका वह अस्त्र क्रोधपूर्वक पशुओंका संहार करनेवाले रुद्रदेवके पिनाककी भाँति शत्रुओंके रक्तसे सन गया॥ १५५॥ वे बलवान् एवं कान्तिमान् चन्द्रदेव युगान्तकारी कालके समान दैत्योंकी सेनामें विचरने लगे। वे भागती हुई विशाल दैत्य-सेनाको बारम्बार रोककर उसका संहार करते थे॥ १५६॥ चन्द्रमाको मृत्युके समान आते देख सारे दैत्य योद्धा विस्मित हो जाते थे। अन्धकारका निवारण करनेवाले चन्द्रदेव युद्धस्थलमें जिस-जिस ओर शिशिरास्त्रका प्रहार करते थे, उस-उस ओरकी सारी दैत्यसेनाएँ अकड़कर धराशायी हो जाती थीं। वे अपने बलसे सुरक्षित हो सारी दैत्य-सेनाओंको विदीर्ण करने लगे॥ १५७-१५८॥

ग्रसमानमनीकानि व्यादितास्यमिवान्तकम्।
तं तथा भीमकर्माणं गृहीतास्त्रं महाहवे॥ १५९

दृष्ट्वा शशांकमायान्तं दैत्याभं चन्द्रभास्करौ।
तालमात्राणि चापानि कर्षमाणौ महाबलौ॥ १६०

छादयेतां शरैश्चन्द्रं वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ।
अथ विस्फार्यमाणानां कार्मुकाणां सुरासुरैः॥ १६१

अभवत् सुमहाशब्दो दिशः संनादयन्निव।
विनदद्भिर्महानागैर्ह्रेषमाणैश्च वाजिभिः॥ १६२

भेरीशङ्खनिनादैश्च तुमुलं सर्वतोऽभवत्।
युयुत्सवस्ते संरब्धा जयगृद्धा यशस्विनः॥ १६३

अन्योन्यमभिगर्जन्तो गोष्ठेष्विव महावृषाः।
शिरसां पात्यमानानां समरे निशितैः शरैः॥ १६४

अश्मवृष्टिरिवाकाशे ह्यभवत् सेनयोस्तथा।
कुण्डलोष्णीषधारीणि जातरूपस्रजांसि च॥ १६५

पतितानि स्म दृश्यन्ते शिरांसि रणमूर्धनि।
विशिखैर्मथितैर्गात्रैर्बाहुभिश्च सकार्मुकैः॥ १६६

सहस्ताभरणैश्चान्यैर्विच्छिन्नै रुधिरोक्षितैः।
कवचैरावृतैर्गात्रैरुरुभिश्चन्दनोक्षितैः॥ १६७

मुखैश्च चन्द्रसंकाशैस्तप्तकुण्डलभूषणैः।
गजवाजिमनुष्याणां सर्वगात्रैः समन्ततः॥ १६८

आसीत् सर्वा समाकीर्णा मुहूर्तेन वसुंधरा।
चापमेघाश्च विपुलाः शस्त्रविद्युत्प्रकाशिनः।
वाहनानां च निर्घोषः स्तनयित्नुसमोऽभवत्॥ १६९

स सम्प्रहारस्तुमुलः कटुकः शोणितोदकः।
प्रावर्तत सुराणां च दानवानां च संयुगे॥ १७०

उस महासमरमें भयंकर कर्म करनेवाले चन्द्रमाको इस प्रकार मुँह बाये यमराजके समान दैत्यसेनाओंको अपना ग्रास बनाते तथा दैत्यकी भाँति भयानक रूपसे अपनी ओर आते देख चन्द्र और सूर्य नामवाले महाबली दैत्य धनुष खींचकर वर्षा करनेवाले दो मेघोंके समान अपने बाणोंसे उन चन्द्रदेवको आच्छादित करने लगे। तदनन्तर देवता और असुर सभी अपने धनुषोंकी टङ्कार करने लगे। उनका वह महान् शब्द सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित-सा करने लगा। चिग्घाड़ते हुए बड़े-बड़े हाथियों और हिनहिनाते हुए घोड़ोंकी आवाजों तथा शङ्ख और भेरियोंके घोषोंसे वहाँ सब ओर बड़ा भयंकर शब्द गूँजने लगा। जयकी अभिलाषासे युद्धके लिये उत्सुक वे यशस्वी योद्धा गोशालाओंमें हँकड़नेवाले साँड़ोंके समान एक-दूसरेके प्रति भयंकर गर्जना करने लगे। समराङ्गणमें दोनों सेनाओंके भीतर तीखे बाणोंसे गिराये जाते हुए योद्धाओंके मस्तकोंका शब्द ऐसा जान पड़ता था, मानो आकाशमें पत्थरोंकी वर्षा हो रही हो। युद्धके मुहानेपर कुण्डल, पगड़ी तथा सोनेके हार धारण करनेवाले योद्धाओंके मस्तक पृथ्वीपर पड़े हुए दृष्टिगोचर होते थे। वहाँ सब ओर दो ही घड़ीमें सारी भूमि योद्धाओंके बाणोंद्वारा मथे गये शरीरों, धनुषसहित कटी हुई भुजाओं, हस्त-भूषणसहित हाथों, अन्यान्य रक्तरञ्जित कटे हुए अङ्गों, कवचावृत शरीरों, चन्दनचर्चित बहुत-से अवयवों, तप्त सुवर्णके कुण्डल आदि भूषणोंसे अलंकृत चन्द्रोपम मुखों तथा हाथी, घोड़े और मनुष्योंके सम्पूर्ण गात्रों (लाशों)-से आच्छादित हो गयी। वहाँ विशाल धनुष मेघोंके समान शस्त्ररूपी विद्युत्से प्रकाशित हो रहे थे। रथ आदि वाहनोंका घोष घनमण्डलकी गर्जनाके समान प्रतीत होता था॥ १५९—१६९॥ युद्धस्थलमें देवताओं और दानवोंका वह घोर संग्राम रक्तरूपी जलकी धारा बहाता हुआ उग्र रूप धारण करता जा रहा था॥ १७०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे देवासुरयुद्धे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारके प्रसङ्गमें देवताओं और असुरोंका युद्धविषयक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५५॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

देवताओं और दानवोंका घोर संग्राम—विरोचनका विष्वक्सेनके साथ और कुजम्भका अंश देवताके साथ युद्ध करते समय घोर पराक्रम प्रकट करना

वैशम्पायन उवाच

तस्मिन् महाहवे रौद्रे तुमुले लोमहर्षणे।
ववर्षुः शरवर्षाणि संरब्धा देवदानवाः॥ १

व्याक्रोशन्त गजास्तत्र शरघातप्रपीडिताः।
अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश॥ २

उत्पत्य निपतन्त्यन्ये शरवर्षप्रपीडिताः।
देवानां दानवानां च गजाश्वरथिनां रणे॥ ३

समरे तत्र शूराणामन्योन्यमभिधावताम्।
धनुर्ज्यातलशब्देन न प्राज्ञायत किंचन॥ ४

शरशक्तिगदाभिस्ते खड्गैश्चामिततेजसः।
निजघ्नुर्महतीं सेनामन्योन्यस्य परंतप॥ ५

बाहूनामुत्तमाङ्गानां कार्मुकाणां च संयुगे।
राशयस्तत्र दृश्यन्ते देवदैत्यसमागमे॥ ६

अश्वानां कुञ्जराणां च रथानां च वरूथिनाम्।
नान्तं समभिगच्छन्ति निहतानां सुरासुरैः॥ ७

गदाभिरसिभिः प्रासैर्भल्लैः संनतपर्वभिः।
योधास्तत्राभ्यहन्यन्त हस्त्यश्वं चामितं बहु॥ ८

प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघा तरङ्गिणी।
तदा मध्ये तु सैन्यानां केशशैवलशाद्वला॥ ९

हाहाकारो महाशब्दो योधानामभवत् तदा।
दानवैर्हन्यमानानां त्रिदशानां महारणे॥ १०

वैशम्पायन उवाच

तेषां तदभवद् युद्धं देवानामसुरैः सह।
विभीषणं महारौद्रं विकृतं भीमदर्शनम्॥ ११

विरोचनस्तु तत्रैव विष्वक्सेनं महाहवे।
जघान रुधिराभाक्षं साध्यं परमधन्विनम्॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वह महायुद्ध बड़ा ही भयंकर, तुमुल और रोमाञ्चकारी था। उसमें देवता और दानव उभय पक्षके योद्धा रोषमें भरकर बाणोंकी वर्षा करते थे॥ १॥ वहाँ बाणोंके आघातसे अत्यन्त पीड़ित हो हाथी घोर चीत्कार कर रहे थे और जिनके सवार मारे गये थे, वे घोड़े दसों दिशाओंमें चक्कर लगा रहे थे॥ २॥ कितने ही घोड़े बाणोंकी वर्षासे अत्यन्त व्यथित हो उछलकर गिर पड़ते थे। देवताओं और दानवोंके शूरवीर गजारोही, अश्वारोही तथा रथी समराङ्गणमें एक-दूसरेपर धावा करते थे। उनके धनुषोंकी प्रत्यञ्चाके शब्दसे इतना कोलाहल होता था कि दूसरी किसी बातका ज्ञान नहीं होता था॥ ३-४॥ शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश्वर! वे अमिततेजस्वी योद्धा बाण, शक्ति, गदा और खड्गोंसे एक-दूसरेकी विशाल सेनाका संहार कर रहे थे॥ ५॥ देवताओं और दैत्योंके उस संग्राममें युद्धक्षेत्रके भीतर कटी हुई भुजाओं, मस्तकों और धनुषोंकी बहुत-सी राशियाँ दिखायी देती थीं॥ ६॥ वहाँ देवताओं और असुरोंद्वारा मारे गये घोड़ों, हाथियों, आवरणयुक्त रथों और रथियोंका कोई अन्त नहीं पाता था॥ ७॥ उस युद्धमें गदाओं, तलवारों, प्रासों और झुकी हुई गाँठवाले भल्लोंद्वारा बहुत-से योद्धा और असंख्य हाथी-घोड़े मारे गये॥ ८॥ उस समय दोनों सेनाओंके बीचमें खूनकी भयंकर नदी बह चली। जिसमें रक्तके स्रोत और तरङ्गें दिखायी देती थीं। योद्धाओंके केश उसमें सेवार और घासके समान प्रतीत होते थे॥ ९॥ उस महायुद्धमें दानवोंद्वारा मारे जाते हुए देवयोद्धाओंका महान् हाहाकार शब्द उस समय सब ओर गूँज रहा था॥ १०॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उन देवताओंका असुरोंके साथ बड़ा भयंकर, महारौद्र, विकराल तथा देखनेमें डरावना युद्ध हो रहा था॥ ११॥ वहीं उस महासमरमें विरोचनने लाल नेत्रवाले उत्तम धनुर्धर साध्य देवता विष्वक्सेनको अपने बाणोंका निशाना बनाया॥ १२॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य विष्वक्सेनः सुरैर्वृतः।
अमेयात्मा सुरश्रेष्ठः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे॥ १३

साध्यस्य बाणाभिहतस्तोत्रार्पित इव द्विपः।
विरोचनः प्रजज्वाल क्रोधेनाग्निरिवाध्वरे॥ १४

स कार्मुकविनिर्मुक्तैः शरैर्दानवसत्तमः।
विष्वक्सेनं विभेदाजौ दीप्तैः सप्तभिराशुगैः॥ १५

सोऽतिविद्धो बलवता दानवेन सुरोत्तमः।
मूर्च्छामभिजगामाशु ध्वजं चाप्याश्रयत् प्रभुः॥ १६

ततः स पुनराश्वस्य साध्यो युद्धे मनो दधे।
विस्फार्य च महाचापं दैत्यमध्ये व्यवस्थितः॥ १७

विरोचनस्तु बलवानभ्ययुध्यत सर्वशः।
क्षोभयन् सुरसैन्यानि समन्तान्निशितैः शरैः॥ १८

ततस्तस्यासुरेन्द्रस्य युद्ध्यमानस्य संयुगे।
श्रूयते तुमुलः शब्दो जीमूतस्येव गर्जतः॥ १९

जगर्ज च महाघोषो विनिघ्नन् देववाहिनीम्।
चण्डवेगाश्मवर्षी च सविद्युत्स्तनयित्नुमान्॥ २०

दिशो विद्रावयामास शरवर्षेण दानवः।
सर्वसैन्यानि देवानामुद्यतास्त्रो महाहवे॥ २१

ते प्राद्रवन्त वित्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तदा।
सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातयः॥ २२

श्रुत्वा कार्मुकनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः।
सर्वसैन्यानि भीतानि निव्यलीयन्त संयुगे॥ २३

विरोचनभयत्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तदा।
पदातीनां ययुः संघा यत्र देवः शचीपतिः॥ २४

विष्वक्सेनस्य साध्यस्य सर्वतः सुमहाबलः।
पदा रक्षःसहस्राणि निजघान चतुर्दश॥ २५

अश्ववृन्देषु नागेषु रथानीकेषु चाभिभूः।
पदातीनां च संघेषु विनिघ्नन् प्रत्यदृश्यत॥ २६

वितत्य श्येनवत् पक्षौ सर्वतः स वरूथिनीम्।
भित्त्वा छित्त्वा महाबाहुः शिरांस्याजौ ह्यकृन्तत॥ २७

देवताओंसे घिरे हुए अमेय आत्मबलसे सम्पन्न सुरश्रेष्ठ विष्वक्सेनने विरोचनको आते देख उसकी छातीमें बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी॥ १३॥ साध्य देवताके बाणोंसे आहत हुए विरोचनको अङ्कुशकी मार खाये हाथीके समान बड़ा कोप हुआ। वह यज्ञशालामें अग्निकी भाँति उस रणभूमिमें क्रोधसे प्रज्वलित हो उठा॥ १४॥ उस दानवशिरोमणिने अपने धनुषसे छूटे हुए सात तेजस्वी तथा शीघ्रगामी बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें विष्वक्सेनको विदीर्ण कर दिया॥ १५॥ उस बलवान् दानवके द्वारा गहरा आघात पाकर प्रभावशाली सुरश्रेष्ठ विष्वक्सेनको तुरंत मूर्च्छा आ गयी और वे ध्वजका सहारा लेकर टिक गये॥ १६॥ तदनन्तर पुनः होशमें आकर दैत्योंके बीचमें खड़े हुए साध्य देवताने अपने विशाल धनुषको तानकर युद्धमें मन लगाया॥ १७॥ उधर बलवान् विरोचन अपने तीखे बाणोंद्वारा देवसेनाओंको सब ओरसे क्षोभमें डालता हुआ सबके सामने युद्ध करने लगा॥ १८॥ युद्धस्थलमें जूझते हुए उस असुरशिरोमणिका गर्जते हुए मेघके समान भयंकर सिंहनाद सुनायी पड़ता था॥ १९॥ वह महान् घोष करनेवाला दैत्य प्रचण्ड वेगसे पत्थरोंकी वर्षा करनेवाले बिजलीसहित मेघसमूहकी भाँति देवसेनाका संहार करता हुआ जोर-जोरसे गर्जना करने लगा॥ २०॥ उस महायुद्धमें अस्त्र उठाये हुए उस दानवने अपने बाणोंकी वर्षासे देवताओंकी समस्त सेनाओंको मार भगाया॥ २१॥ वे देवसैनिक रथी रथोंसे और घुड़सवार घोड़ोंकी पीठोंसे उतरकर भयभीत होकर भागे, भूमिपर खड़े हुए पैदल योद्धा भी पलायन करने लगे॥ २२॥ वज्रकी गड़गड़ाहटके समान उसके धनुषकी टंकार सुनकर सारी देवसेनाएँ भयभीत हो युद्धस्थलमें लुकने-छिपने लगीं॥ २३॥ विरोचनके भयसे डरे हुए रथी रथोंसे उतरकर पैदलसमूहोंको साथ ले उस स्थानपर चले गये, जहाँ शचीवल्लभ इन्द्रदेव विराजमान थे॥ २४॥ साध्य देवता विष्वक्सेनके चारों ओर जो चौदह हजार राक्षस (कुबेरकी सेनामें देव-पक्षकी ओरसे आये) थे, उन्हें महाबली विरोचनने लातोंसे ही मार गिराया॥ २५॥ शत्रुओंको पराजित करनेवाला विरोचन देवताओंके अश्वसमूहों, नागों, रथसमुदायों तथा पैदलोंके दलोंमें भी मारकाट मचाता हुआ दृष्टिगोचर होता था॥ २६॥ वह महाबाहु वीर पंख फैलाकर आक्रमण करनेवाले बाजकी भाँति देवसेनाको सब ओरसे छिन्न-भिन्न करके योद्धाओंके सिर काट लेता था॥ २७॥

सादिनश्च पदाताश्च हतशेषा रथास्तथा।
विष्वक्सेनेन सहिता विरोचनमथाद्रवन्॥ २८

तेऽसिचर्मगदाशक्तिपरिघप्रासतोमरैः ।
तमेकमभ्यधावन्त सिंहनादं प्रचक्रिरे॥ २९

ततः सोऽसिं समुद्यम्य जवमास्थाय दानवः।
चकर्त रथिनामाजौ शिरांसि च धनूंषि च॥ ३०

रथनागाश्ववृन्देषु बलवानरिसूदनः।
विरोचनश्चरन् मार्गान् प्रकारानेकविंशतिम्॥ ३१

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं प्लुतम्।
सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयामास दानवः॥ ३२

केचिद् वरासिना रुग्णा दानवेन महात्मना।
विनेदुश्छिन्नवर्माणो निपेतुश्च गतासवः॥ ३३

छिन्नपृष्ठा हतारोहा दानवेन महात्मना।
विद्रुताः स्वान्यनीकानि जघ्नुस्त्रिदशवारणाः॥ ३४

निपेतुरुर्व्यामाकाशे निकृता दृढधन्विना।
विविधास्तोमराश्चापा महामात्रशिरांसि च॥ ३५

प्रतीपमाहरन्नागानश्वांश्च दृढविक्रमान्।
चकर्त रथिनः कांश्चित् परामृश्य महाबलः।
सूतांश्चिच्छेद खड्गेन रथानपि च दानवः॥ ३६

मुहुरुत्पततो दिक्षु धावतश्च यशस्विनः।
मार्गांश्चरति वैचित्रान् व्यस्मयन्त ततोऽसुराः॥ ३७

निजघान पदा कांश्चिदाक्षिप्यान्यानपोथयत्।
खड्गेन चान्यांश्चिच्छेद नादेनान्यांश्च भीषयन्॥ ३८

ऊरुस्तम्भगृहीताश्च निपतन्त्यपरे भुवि।
अपरे दैत्यमालोक्य भयात् प्राणानवासृजन्॥ ३९

मरनेसे बचे हुए घुड़सवार, पैदल और रथी विष्वक्सेनके साथ होकर विरोचनपर टूट पड़े॥ २८॥ वे ढाल, तलवार, गदा, शक्ति, परिघ, प्रास और तोमरोंद्वारा उस एकमात्र विरोचनकी ओर दौड़े तथा सिंहनाद करने लगे॥ २९॥ परंतु उस दानवने उत्तम वेगका आश्रय ले तलवार उठाकर युद्धस्थलमें शत्रुपक्षके रथी योद्धाओंके सिर और धनुष काट लिये॥ ३०॥ बलवान् शत्रुसूदन विरोचन रथ, नाग तथा अश्वोंके समुदायमें विचरता हुआ भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, प्लुत, सम्पात और समुदीर्ण आदि तलवारके इक्कीस* पैंतरे दिखाने लगा॥ ३१-३२॥ उस महामनस्वी दानवने कितनोंको अपनी उत्तम तलवारसे बहुत ही घायल कर दिया, उनके कवच भी छिन्न-भिन्न कर दिये, अतः वे आर्तनाद करने लगे और प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३३॥ उस महाकाय दैत्य विरोचनने देवताओंके हाथियोंके पृष्ठभागमें घाव कर दिये और उनके सवारोंको मार डाला, अतः वे भागते हुए अपनी ही सेनाओंको कुचलने लगे॥ ३४॥ सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले उस दानव वीरने नाना प्रकारके तोमर, धनुष और महावतोंके सिर आकाशमें ही काट दिये। वे कटे हुए तोमर आदि पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३५॥ महाबली दानव विरोचन सुदृढ़ पराक्रमवाले हाथियों और घोड़ोंको भी पीछे खींच लेता था। कितने ही रथियोंको पकड़कर तलवारसे काट डालता था तथा सारथियों और रथोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर देता था॥ ३६॥ सम्पूर्ण दिशाओंमें बारम्बार उछलते और दौड़ते हुए यशस्वी वीरोंको भी उसने तलवारके घाट उतार दिया। वह विचित्र मार्गों (पैंतरों)-से चलता था, जिससे असुर भी विस्मयमें पड़ जाते थे॥ ३७॥ उसने कितने ही वीरोंको पैरोंसे कुचल डाला, दूसरे बहुत-से योद्धाओंको घुमाकर पृथ्वीपर दे मारा, कितनोंको तलवारसे काट डाला और अन्य कितने ही सैनिकोंको भीषण सिंहनादसे डरा दिया॥ ३८॥ कितने ही योद्धाओंकी जाँघें अकड़ गयीं और वे पृथ्वीपर गिर पड़े। दूसरे बहुत-से सैनिकोंने उस दैत्यको देखते ही भयके मारे प्राण त्याग दिये॥ ३९॥

* हरिवंश पृष्ठ ८६१ की टिप्पणीमें तलवारके बत्तीस हाथ बताये गये हैं। उन्हींमेंसे इक्कीसको यहाँ समझ लेना चाहिये। भ्रान्त आदिकी व्याख्या भी वहीं देखें।

तस्मिंस्तथा वर्तमाने युद्धे महति दारुणे।
रथौघगजपत्तीनां सुराणां च महाक्षये॥ ४०
कुजम्भो दानवश्रेष्ठो ह्यंशमादित्यमाहवे।
योधयामास समरे वृषः प्रतिवृषं यथा॥ ४१
जघानाचलसंकाशो मत्तवारणविक्रमः।
स्फुरद्भिर्निशितैस्तीक्ष्णशरैर्बहुभिराशुगैः॥ ४२
देवसैन्यसहस्राणि सरथानि महाहवे।
तस्य बाणपथं प्राप्य नाभ्यवर्तन्त सर्वशः॥ ४३
प्रणेदुः सर्वभूतानि बभूवुस्तिमिरा दिशः।
देवानामजयः क्रूरः प्रत्यपद्यत दारुणः॥ ४४
अंशस्तु दानवेन्द्रस्य जघानोत्तमविक्रमः।
अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम्॥ ४५
आपतन्तं गजानीकं कुजम्भो वीक्ष्य दानवः।
गदापाणिरवारोहद् रथोपस्थादरिंदमः॥ ४६
अद्रिसारमयीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदाम्।
अभ्यद्रवद् गजानीकं व्यादितास्य इवान्तकः॥ ४७
स गजान् गदया निघ्नन् व्यचरत् समरे बली।
कुजम्भो दानवश्रेष्ठो गदापाणिर्बलाधिकः॥ ४८
विशीर्णदन्तांश्च बहून् भिन्नकुम्भांश्च दारुणान्।
अकरोद् दानवश्रेष्ठ उद्दिश्योद्दिश्य तान् बली॥ ४९
विशीर्णदन्ता बहवो भिन्नकुम्भास्तथा परे।
कुजम्भेनार्दिता नागा व्यद्रवन्त दिशो दश॥ ५०
कुजम्भस्य च येऽमात्या दानवा घोरविक्रमाः।
नाराचैर्विविधैस्तीक्ष्णैरपास्तगजयोधिनः॥ ५१
क्षुरैः क्षुरप्रैर्भल्लैश्च पातैरञ्जलिकैः शितैः।
चिच्छेद चोत्तमाङ्गानि कुजम्भो दानवोत्तमः॥ ५२
शिरोभिः प्रपतद्भिस्तु गगनं प्रत्यपूर्यत।
अश्मवृष्टिरिवाकाशे बहुभिश्च सहाङ्कुशैः॥ ५३
कृत्तोत्तमाङ्गाः स्कन्धेषु गजानां गजयोधिनः।
अदृश्यन्त महाराज ताला विशिरसो यथा॥ ५४
आपतन्तं महानागमंशस्यासुरसत्तमः।
जघानैकेषुणा क्रुद्धस्ततः स विमुखोऽभवत्॥ ५५

रथसमूह, हाथी और पैदल योद्धाओं तथा देवताओंका महान् विनाश करनेवाला वह अत्यन्त भयंकर महायुद्ध अभी चल ही रहा था कि दानवशिरोमणि कुजम्भ युद्धस्थलमें आकर अंश नामक आदित्यके साथ युद्ध करने लगा, जैसे एक साँड़ अपने विरोधी साँड़से जा भिड़ा हो॥ ४०-४१॥ पर्वतके समान विशालकाय और मतवाले हाथीके समान पराक्रमी कुजम्भने अपने तीखे, चमकीले, बहुसंख्यक, शीघ्रगामी और पैने बाणोंद्वारा उस महासमरमें देवसेनाके सहस्रों योद्धाओंका रथों-सहित संहार कर डाला। उसके बाणके मार्गमें पड़कर कोई भी ठहर न सका। सभी प्राणी आर्तनाद करने लगे तथा समस्त दिशाओंमें अन्धकार छा गया। देवताओंको बड़ी ही कठोर एवं भयंकर पराजय प्राप्त हुई॥ ४२—४४॥ उत्तम पराक्रमी अंशने दानवराज कुजम्भके दस हजार वेगशाली हाथियोंकी सेनाका संहार कर डाला॥ ४५॥ देवताओंकी गजसेनाको अपने ऊपर आक्रमण करती देख शत्रुओंका दमन करनेवाला दानव कुजम्भ हाथमें गदा लेकर रथकी बैठकसे उतर पड़ा॥ ४६॥ पर्वतके सारभूत लोहेकी बनी हुई उस भारी एवं विशाल गदाको हाथमें लेकर कुजम्भ मुँह बाये हुए कालके समान देवताओंकी गजसेनाकी ओर दौड़ा॥ ४७॥ दानवशिरोमणि कुजम्भ बलमें बहुत बढ़ा-चढ़ा था। वह गदाधारी बलवान् वीर गदासे हाथियोंका वध करता हुआ समराङ्गणमें विचरने लगा॥ ४८॥ बलवान् दानवशिरोमणि कुजम्भने नाम ले-लेकर बहुतेरे भयंकर गजराजोंके दाँत तोड़ दिये और कुम्भस्थल फोड़ डाले॥ ४९॥ कुजम्भसे पीड़ित हो टूटे दाँत और फूटे कुम्भस्थलवाले बहुत-से हाथी दसों दिशाओंमें भाग रहे थे॥ ५०॥ कुजम्भके जो मन्त्री थे, उन घोर पराक्रमी दानवोंने नाना प्रकारके तीखे नाराचोंसे गजारोहियोंको धराशायी कर दिया॥ ५१॥ दानवराज कुजम्भने क्षुर, क्षुरप्र, भल्ल, पात तथा तीखे अञ्जलिक नामक बाणोंसे शत्रुपक्षके हाथियोंके मस्तक काट डाले॥ ५२॥ अङ्कुशोंसहित हाथियोंके बहुसंख्यक मस्तकोंके गिरनेसे सारा आकाश भर गया। उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो आकाशमें पत्थरोंकी वर्षा हो रही हो॥ ५३॥ महाराज! हाथियोंके कंधोंपर बैठे हुए गजारोही योद्धा मस्तकोंके कट जानेपर शिखारहित ताड़-वृक्षोंके समान जान पड़ते थे॥ ५४॥ अपनी ओर आते हुए अंशके महान् गजराजको असुर-शिरोमणि कुजम्भने कुपित होकर एक बाण मारा, जिससे वह युद्धसे विमुख हो गया॥ ५५॥

विगाह्यैवं गजानीकं कुजम्भो दानवोत्तमः।
विनिघ्नन् प्रवरान् सैन्यान् गदया बलिनां वरः॥ ५६

इस प्रकार हाथियोंकी सेनामें प्रविष्ट होकर बलवानोंमें श्रेष्ठ दानवप्रवर कुजम्भ गदासे उस सेनाके बड़े-बड़े गजराजोंका वध करता हुआ वहाँ विचरने लगा॥ ५६॥

एकप्रहाराभिहतान् कुजम्भेन महागजान्।
अपश्यन्त सुराः सर्वे पर्वतानिव पातितान्॥ ५७

कुजम्भके एक ही प्रहारसे मारे गये महान् गजराजोंको समस्त देवताओंने धराशायी हुए पर्वतोंके समान देखा॥ ५७॥

कुजम्भस्य च मार्गेषु विशीर्णास्ते महागजाः।
वज्राहता इवेन्द्रेण विशीर्णा इव पर्वताः॥ ५८

कुजम्भके मार्गोंपर छिन्न-भिन्न होकर पड़े हुए महान् गज इन्द्रके वज्रसे आहत एवं चूर-चूर होकर ढहे हुए पर्वतोंके समान प्रतीत होते थे॥ ५८॥

अपश्यंस्त्रिदशाः सर्वे मूर्तिमन्तमिवान्तकम्।
गजास्तथा व्यदीर्यन्त सिंहस्येवेतरे मृगाः॥ ५९

समस्त देवता कुजम्भको मूर्तिमान् कालके समान देखने लगे। जैसे सिंहके डरसे दूसरे वन्य पशु भाग जाते हैं, उसी प्रकार उसे देखकर हाथियोंकी सेनामें दरार पड़ जाती थी॥ ५९॥

स बभौ तां गदां बिभ्रत् प्रोक्षितां गजशोणितैः।
व्यादितास्योऽनदत् क्रुद्धो रौद्ररूपो भयानकः॥ ६०

हाथियोंके खूनसे रँगी हुई उस गदाको धारण किये रौद्ररूपधारी भयानक दैत्य कुजम्भ कुपित हो मुँह बाकर जोर-जोरसे गर्जना कर रहा था॥ ६०॥

यथा हि भगवान् क्रुद्धः प्रजानां संक्षये पुरा।
विक्रीडमानो गदया रणमध्ये महासुरः॥ ६१

जैसे पूर्वकालमें प्रजाओंके संहारके समय कुपित हुए भगवान् रुद्र क्रीडा करते हैं, उसी प्रकार उस रणभूमिमें महान् असुर कुजम्भ गदासे खेल रहा था॥ ६१॥

गोपाल इव दण्डेन कालयन् स महागजान्।
क्रुद्धं कालमिवाकाले दण्डमुद्यम्य दानवम्।
अपश्यन्त सुराः सर्वे कुजम्भं भीमविक्रमम्॥ ६२

जैसे ग्वाला डंडेसे गौओंको हाँकता है, उसी प्रकार वह गदासे बड़े-बड़े गजराजोंको खदेड़ रहा था। उस समय सब देवता भयंकर पराक्रमी दानव कुजम्भको असमयमें कुपित हो कालदण्ड उठाये हुए कालके समान देखते थे॥ ६२॥

हतारोहास्तु तत्रान्ये प्रभिन्ना वारणोत्तमाः।
ते हन्यमाना गदया बाणैश्च भृशविक्षताः॥ ६३

जिनके सवार मारे गये थे, वे दूसरे-दूसरे मदवर्षी गजराज उसकी गदासे आहत और बाणोंसे बहुत ही क्षत-विक्षत हो गये थे॥ ६३॥

असहन्तः कुजम्भस्य गदावेगं महाहवे।
स्वान्यनीकानि मृद्नन्तः प्राद्रवन्त महागजाः॥ ६४

उस महासमरमें कुजम्भकी गदाके वेगको सहन न कर सकनेके कारण बड़े-बड़े गजराज अपनी ही सेनाओंको कुचलते हुए भागने लगे॥ ६४॥

महावात इवाभ्राणि विधमन् गदया गजान्।
अतिष्ठत् समरे दैत्यः कालः संवर्तको यथा॥ ६५

जैसे आँधी बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार गदाके आघातसे गजराजोंको विदीर्ण करता हुआ वह दैत्य समराङ्गणमें संहारकारी कालके समान खड़ा था॥ ६५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे देवासुरयुद्धे कुजम्भोत्कर्षवर्णने षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारके प्रसङ्गमें देवासुर-संग्राममें कुजम्भके उत्कर्षका वर्णनविषयक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५६॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

देवासुरसंग्राममें कुजम्भ, असिलोमा और वृत्रासुरके उत्कर्षका वर्णन तथा हरि एवं अश्विनीकुमारकी पराजय

वैशम्पायन उवाच

ततः सर्वाणि सैन्यानि देवराजस्य शासनात्।
अभ्यद्रवन्त दितिजान् नदन्तो भैरवान् रवान्॥ १

तं बलौघमपर्यन्तं देवानां सुदुरासदम्।
रथनागाश्वकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम्॥ २

आपतन्तं सुदुष्पारं रजसा सर्वतोवृतम्।
सैन्यसागरमक्षोभ्यं वेलेव मकरालयम्॥ ३

तदाश्चर्यमपश्यन्त अश्रद्धेयमिवाद्भुतम्।
उदीर्णां पृतनां सर्वां साश्वां सरथकुञ्जराम्॥ ४

आवार्य समरेऽतिष्ठत् कुजम्भस्तरसा बली।
सैन्यार्णवं देवतानां गिरिर्मेरुरिवाचलः॥ ५

अनीकिनीं कुजम्भस्तु गदया स न्यवारयत्।
सा तथा वारिता सेना विह्वलाभून्निरुद्यमा॥ ६

तस्मिंस्तथा वर्तमाने सम्प्रहारे सुदारुणे।
असिलोमा तु बलवान् दानवो दानवाधिपः॥ ७

देवसैन्यस्य सर्वस्य धूमकेतुरिवोत्थितः।
तपत्यर्क इवामोघः सुरसैन्यानि संयुगे॥ ८

सहस्ररश्मिप्रतिमो दानवस्य रथोत्तमः।
शरैर्मेघ इवावर्षद् देवानीकं प्रतापवान्॥ ९

शरौघरश्मिभिर्दीप्तैः प्रतप्तो घोरविक्रमः।
रौद्रः क्रूरो दुराधर्षो दुरापो ध्वजिनीमुखे॥ १०

युध्यते दैवतैः सार्धं ग्रसमान इव प्रभुः।
उग्रेषुरुग्रवदनः समारुह्य महागजम्॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर देवराज इन्द्रकी आज्ञासे सारी देवसेनाएँ भैरव-स्वरसे गर्जना करती हुई दैत्योंपर टूट पड़ीं॥ १॥ देवताओंका वह सैन्यसमुदाय अनन्त एवं अत्यन्त दुर्जय था। उसमें रथ, हाथी और घोड़े भरे हुए थे। शङ्खों और दुन्दुभियोंका गम्भीर घोष गूँज रहा था। उसका पार पाना बहुत कठिन था। उसपर सब ओरसे धूल छा रही थी। वह अक्षोभ्य सैन्यसागर आश्चर्यमय, अविश्वसनीय और अद्भुत प्रतीत होता था। दैत्योंने आक्रमण करती हुई उस सेनाको देखा और जैसे तटभूमि समुद्रको आगेको बढ़नेसे रोकती है, उसी प्रकार उसको रोका। घोड़े, रथ और हाथियोंसहित आगे बढ़ती हुई उस सारी सेनाको वेगपूर्वक रोककर बलवान् कुजम्भ समराङ्गणमें खड़ा हो गया। देवताओंके सैन्यसमुद्रको रोकनेके लिये वह मेरुपर्वतके समान अविचल भावसे खड़ा रहा॥ २—५॥ कुजम्भने अपनी गदासे उस सेनाको रोक दिया। इस प्रकार रोकी गयी वह सेना विह्वल एवं उद्योगशून्य हो गयी॥ ६॥ वह भयंकर संग्राम उक्तरूपसे चल ही रहा था कि दनुकुलनन्दन बलवान् दानवराज असिलोमा समूची देवसेनाके लिये धूमकेतु नामक उत्पातग्रहके समान उठ खड़ा हुआ। जैसे अमोघ सूर्य सबको ताप देता है, उसी प्रकार उसने युद्धस्थलमें देवताओंकी सेनाको तपाना आरम्भ किया॥ ७-८॥ उस दानवका उत्तम रथ सूर्यके समान तेजस्वी था। वह प्रतापी दैत्य जलकी वर्षा करनेवाले मेघके समान देवताओंकी सेनापर बाणोंकी वृष्टि करने लगा॥ ९॥ वह भयंकर पराक्रमी दानव बाणसमूहरूपी दीप्तिमती किरणोंसे तप रहा था। वह रौद्र, क्रूर, दुर्धर्ष और दुर्जय था। सेनाके मुहानेपर खड़ा हो वह प्रभावशाली दैत्य देवताओंके साथ इस प्रकार युद्ध करने लगा, मानो उन सबको अपना ग्रास बना लेगा। उसके बाण भयङ्कर थे। उसका मुख भी बड़ा ही उग्र था। वह महाबली दानव एक विशाल गजराजपर आरूढ़ हो

सुराणामुत्तमाङ्गानि प्रचिनोति महाबलः।
ग्रसन् दैवतसैन्यानि शरदंष्ट्रः प्रतापवान्॥ १२

असिजिह्वश्चक्रहस्तश्चापव्यात्ताननोऽसुरः।
परश्वधनखः श्रीमान् मृदङ्गापूरितध्वनिः॥ १३

तिष्ठते दानवश्रेष्ठः संयुगे व्याघ्रवद् बली।
मौर्वीघोषस्तनयितुः पृषत्कः प्रथितो महान्॥ १४

धनुर्विद्युद्गणश्चापो महामेघ इवापरः।
इष्वस्त्रसागरो घोरो बाहुग्राहो दुरासदः॥ १५

कार्मुकोर्मितरङ्गौघो बाणावर्तमहाह्रदः।
गदासिमकरो रौद्रो ज्यावेलः शिक्षयोद्धतः॥ १६

पदातिमीनः सुमहान् गर्जितोत्क्रुष्टघोषवान्।
हयान् गजान् पदातींश्च रथांश्च सहसा बहून्॥ १७

न्यमज्जयत समरे परवीरान् महारथान्।
आप्लावयत् स देवौघान् दारुणो दानवेश्वरः॥ १८

प्रावर्तत युधि श्रीमान् युधि श्रेष्ठो युधि स्थिरः।
अपश्यंस्त्रिदशाः सर्वे शुद्धजाम्बूनदप्रभम्॥ १९

सन्नद्धं तत्र युध्यन्तं ज्वलन्तमिव पावकम्।
मध्यंदिनगतं सूर्यं ज्वलन्तमिव तेजसा॥ २०

न शेकुः सर्वभूतानि दानवं प्रसमीक्षितुम्।
यथा प्ररूढं घर्मान्ते दहेत् कक्षं हुताशनः॥ २१

तथा सुरवरान् दैत्यो दहति स्म सुतेजसा।

देवताओंके मस्तकोंका चयन करता था (उन्हें काट गिराता था)। देवताओंकी सेनाको अपना ग्रास बनाते हुए उस प्रतापी असुरके बाण ही उसकी दाढ़ थे। तलवार ही उसकी जिह्वा थी। चक्र ही हाथ थे। तना हुआ धनुष ही उसका खुला हुआ मुख था। फरसे उसके नख थे। मृदङ्ग आदि वाद्योंकी ध्वनि ही उसके दहाड़नेकी आवाज थी। इस प्रकार वह बलवान् दानवशिरोमणि असिलोमा उस युद्धस्थलमें व्याघ्रके समान खड़ा था। वह दानव दूसरे महामेघके समान प्रतीत होता था। प्रत्यञ्चाकी टंकार ही उसकी गर्जना थी। सुविख्यात बाणोंका महान् समूह ही उसके द्वारा बरसाये जानेवाले जलकी बूँदें थीं तथा उसका धनुष ही इन्द्रधनुष एवं विद्युत्का समुदाय था। जिसमें बाण आदि अस्त्रोंका प्रयोग होता था, वह संग्राम एक भयङ्कर समुद्रके समान था। उसकी भुजाएँ ही उसमें ग्राह थीं। उसे पार करना अत्यन्त कठिन था। धनुष ही उस सागरकी छोटी-बड़ी लहरोंका समुदाय था। बाणोंका जो आवर्तन है, वही भँवरोंसे युक्त महान् ह्रद था। गदा और तलवार उसमें मगरके समान थीं। वह देखनेमें रौद्र प्रतीत होता था। धनुषकी प्रत्यञ्चा ही उस समुद्रकी वेला (तटभूमि) थी। शिक्षारूपी वायुके वेगसे उसमें ज्वार-सा उठता था। पैदल सैनिक उस सागरके मत्स्य थे। वह महान् रणसागर योद्धाओंके गर्जने और चीखने-चिल्लानेके गम्भीर घोषसे परिपूर्ण था। उस दारुण दानवराज असिलोमाने शत्रुपक्षके महारथी वीरों, घोड़ों, हाथियों, पैदलों और बहुसंख्यक रथोंको तथा कितने ही देवताओंको भी सहसा उस समरसागरमें निमज्जित एवं आप्लावित कर दिया॥ १०—१८॥ वह तेजस्वी दानव असिलोमा युद्धमें स्थिर रहनेवाला तथा युद्धस्थलका एक श्रेष्ठ वीर था। वह निरन्तर युद्धमें संलग्न रहा। समस्त देवताओंने देखा—उसकी अङ्गकान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान प्रकाशित हो रही थी। वह कवच धारण करके वहाँ युद्ध करते समय प्रज्वलित अग्निके समान जान पड़ता था। वह दानव अपने तेजसे दोपहरके सूर्यकी भाँति देदीप्यमान हो रहा था। सम्पूर्ण भूतोंमेंसे कोई भी उसकी ओर आँख उठाकर देख नहीं पाता था। जैसे ग्रीष्म-ऋतुमें आग बढ़े और सूखे हुए घास-फूँसको शीघ्र ही जला देती है, उसी प्रकार वह दैत्य अपने तेजसे उन श्रेष्ठ देवताओंको

देवानां दानवानां च बलं नर्दति दारुणम्॥ २२

विरूढमभवत् सर्वमाकुलं च समन्ततः।
शूराश्च ते बलोदग्रा हस्त्यश्वरथधूर्गताः॥ २३

आर्यां बुद्धिं समास्थाय न त्यजन्ति महारणम्।
तदुत्पिञ्जलकं युद्धमभवद् रोमहर्षणम्॥ २४

देवदानवयोः संख्ये रुधिरस्रावकर्दमम्।
न दिशः प्रत्यजानन्त भयग्राहनिपीडिताः।
शस्त्रपातांश्च विविधान् दानवानां महारणे॥ २५

अन्योन्यं मूढचित्तास्ते निजघ्नुर्व्याकुलीकृताः।
स्वान् परान् नाभिजानन्ति विमूढाः शस्त्रपाणयः॥ २६

शिरोरुहेषु संगृह्य कश्चिच्छूरस्य संयुगे।
शूरश्छिनत्ति मूर्धानं संदष्टौष्ठपुटाननम्॥ २७

बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव वज्रकल्पैः सुदारुणैः।
प्रहरन्ति रणे वीरा आत्तशस्त्राः परस्परम्॥ २८

योधप्राणहरे रौद्रे स्वर्गद्वारेऽनपावृते।
संकुले तुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये॥ २९

हयो हयं गजो नागं वीरो वीरं महाहवे।
अभ्यद्रवज्जिघांसन्तो ह्यसमञ्जसमाहवे॥ ३०

असुराश्च सुराश्चैव विक्रमाढ्या महारथाः।
जुहुवुः समरे प्राणान् निजघ्नुरितरेतरम्॥ ३१

मुक्तकेशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः।
हस्तैः पादैश्च युध्यन्ते दानवास्त्रिदशैः सह॥ ३२

हरिस्तु निशितं भल्लं प्रेषयामास संयुगे।
स तस्य धनुषः कोटिं छित्त्वा भूमावपातयत्॥ ३३

पुनश्चापि पृषत्कानां शतानि नतपर्वणाम्।
प्राहिणोत् सहसा तस्य दानवेन्द्रस्य संयुगे॥ ३४

दग्ध कर रहा था। देवताओं और दानवोंकी सेनाएँ बड़ी भयंकर गर्जनाएँ कर रही थीं। वे सारी सेनाएँ सब ओरसे परस्पर चढ़ आयीं और आपसमें घोल-मेल हो गयीं। वे सभी सैनिक प्रचण्ड बलशाली और शूरवीर थे। हाथी, घोड़े तथा रथोंपर बैठे हुए वे उभय पक्षके वीर श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय लेकर उस महासमरका त्याग नहीं करते थे। देवता और दानव-जातिका वह युद्ध अमर्यादित तथा रोमाञ्चकारी था। उस युद्धस्थलमें अधिक रक्त बहनेके कारण कीच मच गयी थी। उस महासमरमें भयरूपी ग्राहसे पीड़ित हुए देव-सैनिक न तो दिशाओंको जान पाते थे और न दानवोंके चलाये हुए नाना प्रकारके शस्त्रोंको ही समझ पाते थे॥ १९—२५॥ उनके चित्तमें मोह छा गया था। वे व्याकुल होकर हाथमें शस्त्र ले एक-दूसरेको मार रहे थे और इतने मूढ़ हो गये थे कि अपने-परायेकी भी पहचान नहीं कर पाते थे॥ २६॥ कोई शूरवीर युद्धस्थलमें दूसरे शूरवीरके केश पकड़कर उसका मस्तक काट लेता था। वह मस्तक, जिसका मुख दाँतोंतले दबे हुए ओष्ठसे सुशोभित था॥ २७॥ हाथोंमें हथियार लिये वीर रणभूमिमें एक-दूसरेपर भुजाओं तथा अत्यन्त भयंकर वज्रतुल्य मुक्कोंसे प्रहार करते थे॥ २८॥ वह वर्तमान महाभयंकर तुमुल युद्ध उभय पक्षके योद्धाओंसे व्याप्त था। वह रौद्र संग्राम सभी योद्धाओंके प्राण हर लेनेवाला तथा उनके लिये स्वर्गका खुला हुआ द्वार था। उस महासमरमें घुड़सवारने घुड़सवारपर, हाथीसवारने हाथीसवार-पर और पैदल वीरने पैदल वीरपर आक्रमण किया। वे सब-के-सब एक-दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे अमर्यादितरूपसे परस्पर टूट पड़े॥ २९-३०॥ बल-पराक्रमसे सम्पन्न महारथी देवता और असुर एक-दूसरेको मारने और समराग्निमें प्राणोंकी आहुति देने लगे॥ ३१॥ जिनके रथ नष्ट हो गये और धनुष कट गये थे, वे कवचरहित दानव केश खोले हुए वहाँ देवताओंके साथ केवल हाथों और पैरोंसे ही युद्ध करते थे॥ ३२॥ इसी समय हरिने युद्धस्थलमें असिलोमापर एक तेज धारवाला भल्ल चलाया। उस भल्लने उसके धनुषकी कोटिका छेदन करके उसे पृथ्वीपर गिरा दिया॥ ३३॥ तत्पश्चात् उन्होंने पुनः रणभूमिमें उस दानवराजको लक्ष्य करके सहसा झुकी हुई गाँठवाले सौ बाण चलाये॥ ३४॥

तस्य देहे विमुक्तास्ते मारुतेन समीरिताः।
मग्नार्धकाया विविशुः पन्नगा इव पर्वते॥ ३५

स तैर्निपतितैर्गात्रैः क्षरद्भिरसृगावलीः।
बभौ दैत्यो महाबाहुर्मेरुर्धातुमिवोत्सृजन्।
पुनश्चापि पृषत्कानां शतानि नतपर्वणाम्॥ ३६

ततोऽसिलोमा संक्रुद्धः प्रगृह्यान्यन्महाधनुः।
रुक्मपुङ्खांश्च निशितान् प्रेषयामास सायकान्॥ ३७

तैस्तु मर्मसु विव्याध सर्पानलविषोपमैः।
गात्रं संछादयामास महाभ्रैरिव पर्वतम्॥ ३८

भूयः संधाय च शरं मुमोचान्तकसंनिभम्।
सुपुङ्खं सूर्यसंकाशं बाणमप्रतिमं रणे॥ ३९

तेन बाणप्रहारेण संयुगे भीमकर्मणा।
मुमोह सहसा देवो भूमौ चापि पपात ह॥ ४०

ततो हाहाकृताः सर्वे देवे भूतलमाश्रिते।
जगत् सदेवमाविग्नं यथार्कपतनं तथा॥ ४१

परिवारं तु समरे तस्य हत्वा महासुरः।
एकत्रिंशत्सहस्राणि योधानां दानवोत्तमः॥ ४२

जयश्रिया सेव्यमानो दीप्यमान इवाचलः।
प्रगृह्य कार्मुकं घोरं गतः शक्ररथं प्रति॥ ४३

तथैव तु महायुद्धे ससैन्यावश्विनावुभौ।
प्रयुद्धौ सह वृत्रेण बलिना देवतारिणा॥ ४४

बाणखड्गधनुष्पाणिः समरे त्यक्तजीवितः।
आसाद्य सोऽश्विनौ दैत्यः स्थितो गिरिरिवाचलः॥ ४५

ततः शङ्खमुपाध्माय द्विषतां लोमहर्षणम्।
ज्याघोषतलशब्दैश्च सर्वभूतान्यवेजयत्॥ ४६

ततः संहृष्टरोमाणः शङ्खशब्दं विशुश्रुवुः।
यक्षराक्षसदेवौघा वृत्रस्यापि च निःस्वनम्॥ ४७

गदातोमरनिस्त्रिंशशूलशक्तिपरश्वधाः।
प्रगृहीता व्यराजन्त यक्षराक्षसबाहुभिः॥ ४८

उनके छोड़े हुए वे बाण वायुसे प्रेरित हो उस दानवके शरीरमें उसी प्रकार घुस गये, जैसे पर्वतमें सर्प घुस जाते हैं। उन सभी बाणोंका आधा-आधा भाग उसके शरीरमें धँस गया था॥ ३५॥ उन बाणोंकी मार पड़नेसे उसके सारे अङ्गोंसे खूनकी धाराएँ बह चलीं। उस समय वह महाबाहु दैत्य गेरूकी धारा बहानेवाले मेरुगिरिके समान शोभा पाता था। तदनन्तर पुनः उसपर झुकी हुई गाँठवाले सौ बाणोंका प्रहार हुआ॥ ३६॥ तब असिलोमाको बड़ा क्रोध हुआ। उसने दूसरा विशाल धनुष लेकर हरिपर सोनेके पंखवाले बहुत-से पैने बाणोंका प्रहार किया॥ ३७॥ वे बाण सर्प, अग्नि और विषके समान प्राणनाशक थे। उनके द्वारा उसने हरिके मर्मस्थानोंमें आघात किया तथा बड़े-बड़े बादलोंसे पर्वतकी भाँति अपने उन बाणोंसे उनके शरीरको ढक दिया॥ ३८॥ इसके बाद उसने पुनः रणभूमिमें सुन्दर पंखयुक्त सूर्यसदृश तेजस्वी, अनुपम एवं कालके समान भयंकर बाणका संधान करके उसे हरिपर छोड़ दिया॥ ३९॥ भयंकर कर्म करनेवाले उस दानवके उस बाणप्रहारसे युद्धस्थलमें हरिदेवता सहसा मूर्च्छित हो गये और पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ४०॥ हरिदेवके धराशायी होते ही सब लोग हाहाकार करने लगे। देवताओंसहित सारा जगत् उद्विग्न हो उठा, मानो साक्षात् सूर्यदेव आकाशसे पृथ्वीपर टूट गिरे हों॥ ४१॥ हरिको सब ओरसे घेरकर खड़े हुए जो सैनिक थे, उन सबको मारकर उस दानवराजने समराङ्गणमें देवपक्षके इकतीस हजार योद्धाओंका संहार कर डाला॥ ४२॥ विजयश्रीसे सेवित हो दीप्तिमान् पर्वतकी भाँति प्रतीत होनेवाला असिलोमा घोर धनुष लेकर इन्द्रके रथकी ओर चला गया॥ ४३॥ इसी प्रकार उस महायुद्धमें सेनासहित दोनों अश्विनीकुमार बलवान् देवद्रोही वृत्रासुरके साथ युद्ध कर रहे थे॥ ४४॥ वृत्रासुरके हाथमें बाण, खड्ग और धनुष थे। वह जीवनका मोह छोड़कर समरभूमिमें आया था। वह दैत्य दोनों अश्विनीकुमारोंके पास पहुँचकर पर्वतके समान अविचल भावसे खड़ा हो गया॥ ४५॥ तदनन्तर शत्रुओंके रोंगटे खड़े कर देनेवाले शङ्खको बजाकर धनुषकी प्रत्यञ्चाके टङ्कार-घोषसे उसने सम्पूर्ण प्राणियोंको कम्पित कर दिया॥ ४६॥ उस समय यक्ष, राक्षस और देवताओंके समुदायने रोमाञ्चित शरीरसे उस शङ्खकी ध्वनि और वृत्रासुरकी गर्जना सुनी॥ ४७॥ फिर तो यक्षों और राक्षसोंके हाथोंमें गदा, तोमर, खड्ग, शूल, शक्ति और फरसे शोभा पाने लगे॥ ४८॥

तैः प्रयुक्तान् महाकायैः शूलशक्तिपरश्वधान्।
भल्लैर्वृत्रः प्रचिच्छेद भीमवेगरवैस्तथा॥ ४९

अन्तरिक्षचराणां च भूमिस्थानां च गर्जताम्।
शरैर्विव्याध गात्राणि देवानां प्रियदर्शिनाम्॥ ५०

वृत्रासुरभुजोत्सृष्टैर्बहुधा यक्षरक्षसाम्।
निकृत्तान्येव दृश्यन्ते शरीराणि शिरांसि च॥ ५१

अथ रक्तमहावृष्टिरभ्यवर्षत मेदिनीम्।
गदापरिघभिन्नानां देवानां गात्रसम्भवा॥ ५२

प्रच्छादयन्तं बाणौघैर्वृत्रं भीमपराक्रमम्।
ददृशुः सर्वभूतानि भानुमन्तमिवांशुभिः॥ ५३

तीक्ष्णरश्मिरिवादित्यः प्रतपन् सर्वदेवताः।
अविध्यद् बलवान् क्रुद्धः सायकैर्मर्मभेदिभिः॥ ५४

नदतो विविधान् नादानर्दितस्यापि सायकैः।
न मोहमसुरेन्द्रस्य ददृशुस्त्रिदशा रणे॥ ५५

तेऽसिचर्मगदाभिश्च परिघप्रासतोमरैः।
परश्वधैश्च शूलैश्च प्रववर्षुर्महारथाः॥ ५६

ततो वृत्रः सुसंक्रुद्धस्तैस्तदाभ्यर्दितो बली।
अभ्यवर्षच्छितैर्बाणैस्तान् सर्वान् सत्यविक्रमः॥ ५७

तेन वित्रासिता देवा विप्रकीर्णमहायुधाः।
घोरमार्तस्वरं चक्रुर्वृत्रासुरभयार्दिताः॥ ५८

उत्सृज्य ते गदाशक्तिशूलर्ष्टिपरिघाशनीन्।
उत्तरां दिशमाजग्मुस्त्रासिता दृढधन्विना॥ ५९

शूलशक्तिगदापाणिर्व्यूढोरस्को महाभुजः।
प्रावर्तत रणे वृत्रस्त्रासयानश्चराचरान्॥ ६०

तत्रैकस्तु महाबाहुरसिशूलधरः प्रभुः।
अभ्यधावत दैत्येन्द्रं वृत्रमप्रतिमं रणे॥ ६१

उन महाकाय यक्ष आदिके द्वारा छोड़े गये उन शूल, शक्ति और फरसोंको वृत्रासुरने भयंकर वेग और शब्दवाले भल्लोंसे काट डाला॥ ४९॥ अन्तरिक्षमें विचरने और पृथ्वीपर खड़े होकर गर्जनेवाले प्रियदर्शी देवताओंके सारे अङ्गोंमें उस दैत्यने अपने बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी॥ ५०॥ वृत्रासुरकी भुजाओंसे छोड़े गये उन अस्त्रोंद्वारा बहुधा यक्ष और राक्षसोंके शरीर तथा मस्तक कटे हुए ही देखे जाते थे॥ ५१॥ तदनन्तर पृथ्वीपर खूनकी बड़ी भारी वर्षा होने लगी। गदा और परिघसे घायल हुए देवताओंके शरीरसे ही वह रक्तवर्षा हो रही थी॥ ५२॥ अपने बाणसमूहोंद्वारा शत्रुओंको आच्छादित करते हुए भयंकर पराक्रमी वृत्रासुरको समस्त प्राणियोंने अपने किरणजालसे सारे जगत्‌को ढकनेवाले सूर्यदेवके समान देखा॥ ५३॥ प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्यके समान सम्पूर्ण देवताओंको ताप देते हुए उस बलवान् दैत्यने कुपित होकर मर्मभेदी सायकोंद्वारा उन सबको घायल कर दिया॥ ५४॥ देवताओंके सायकोंसे पीड़ित होनेपर भी वह नाना प्रकारसे सिंहनाद करता रहा। रणभूमिमें देवताओंने असुरराज वृत्रको कभी मोह या मूर्च्छामें पड़ते नहीं देखा॥ ५५॥ वे महारथी देवता उसके ऊपर ढाल, तलवार, गदा, परिघ, प्रास, तोमर, फरसे और शूलोंकी वर्षा करने लगे॥ ५६॥ उनके द्वारा इस प्रकार पीड़ित होनेपर बलवान् एवं सत्यपराक्रमी वृत्रासुर अत्यन्त कुपित हो उठा। उस समय उसने उन सब लोगोंपर पैने बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ ५७॥ उसके द्वारा आतङ्कित हुए देवताओंके बड़े-बड़े आयुध हाथसे छूटकर बिखर गये। वृत्रासुरके भयसे पीड़ित हुए वे देवता घोर आर्तनाद करने लगे॥ ५८॥ सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले उस दैत्यसे त्रास पाकर वे देवता गदा, शक्ति, शूल, ऋष्टि, परिघ और अशनि आदि अस्त्रोंको त्यागकर उत्तर दिशाकी ओर आ गये॥ ५९॥ चौड़ी छातीवाला महाबाहु वृत्रासुर शूल, शक्ति और गदा हाथमें लेकर चराचर प्राणियोंको त्रास देता हुआ युद्धमें प्रवृत्त हुआ था॥ ६०॥ उन दोनों अश्विनीकुमारोंमेंसे एक सामर्थ्यशाली महाबाहु नासत्य हाथमें तलवार और त्रिशूल लिये रणक्षेत्रमें अनुपम वीरता प्रकट करनेवाले दैत्यराज वृत्रासुरकी ओर दौड़े॥ ६१॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य निर्भिन्नमिव वारणम्।
वत्सदन्तैस्त्रिभिः पार्श्वे विव्याध सुरसत्तमम्॥ ६२

सोऽपि विद्धो महेष्वासः शरैरमितविक्रमः।
गदां जग्राह बलवान् गदायुद्धविशारदः॥ ६३

तां प्रगृह्य गदां भीमामयःसारमयीं दृढाम्।
अश्विनं सहसाऽऽगम्य ताडयामास वीर्यवान्॥ ६४

दीप्यमानं ततः शूलमश्वी सुविपुलं दृढम्।
प्रासृजद् वृत्रदैत्याय सहसा रोमहर्षणम्॥ ६५

भङ्क्त्वा शूलं गदाग्रेण गदायुद्धविशारदः।
अश्विनं सहसाभ्येत्य गरुत्मानिव पन्नगम्॥ ६६

सोऽन्तरिक्षात् समुत्पत्य विधूय महतीं गदाम्।
नासत्योपरि चिक्षेप गिरिशृङ्गोपमां बली॥ ६७

गदयाभिहतः सोऽश्वी त्यक्त्वा शूलमनुत्तमम्।
प्रयातः सहसा तत्र यत्र युध्यति वासवः॥ ६८

पराजित्य तु संग्रामे अश्विनं भीमविक्रमम्।
जयश्रिया सेव्यमानो वृत्रो युद्धे व्यवस्थितः॥ ६९

मदकी धारा बहानेवाले हाथीके समान सुरश्रेष्ठ नासत्यको आक्रमण करते देख वृत्रासुरने उनके पार्श्वभागमें तीन वत्सदन्त नामक बाणोंका प्रहार किया॥ ६२॥ तब नासत्यने वृत्रासुरको भी अपने बाणोंद्वारा घायल कर दिया। उनके बाणोंसे विद्ध हो अमित पराक्रमी, महा धनुर्धर, गदायुद्धविशारद बलवान् वृत्रासुरने गदा हाथमें ले ली॥ ६३॥ लोहेके सारतत्त्वकी बनी हुई उस सुदृढ़ एवं भयंकर गदाको लेकर वह पराक्रमी दैत्य सहसा अश्विनीकुमारके पास आया और आते ही उसने उनपर उस गदाका प्रहार किया॥ ६४॥ तब अश्वी (नासत्य)-ने अत्यन्त विशाल सुदृढ़ दीप्तिमान् और रोमाञ्चकारी शूल लेकर सहसा उसे वृत्रासुरपर दे मारा॥ ६५॥ गदायुद्धमें कुशल वृत्रासुर गदाके अग्रभागसे उस शूलके टुकड़े-टुकड़े करके सहसा अश्विनीकुमारके पास आ पहुँचा, मानो गरुड़ सर्पके पास आ गये हों॥ ६६॥ उस बलवान् वीरने अन्तरिक्षसे उछलकर पर्वतशिखरके समान उस विशाल गदाको घुमाकर नासत्यके ऊपर दे मारा॥ ६७॥ उस गदासे आहत होकर अश्वी (नासत्य) अपने परम उत्तम शूलको त्यागकर सहसा उस स्थानको भाग गये जहाँ इन्द्र युद्ध कर रहे थे॥ ६८॥ भयंकर पराक्रमी अश्वीको युद्धमें पराजित करके विजयलक्ष्मीसे सेवित वृत्रासुर उस समरभूमिमें स्थिरभावसे खड़ा हो गया॥ ६९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनावतारे देवासुरयुद्धे वृत्रासुरोत्कर्षवर्णने सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारके प्रसङ्गमें देवासुरसंग्राममें वृत्रासुरके उत्कर्षका वर्णनविषयक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५७॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

रणाजि और एकचक्रके, मृगव्याध और बलासुरके, अजैकपाद् और राहुके तथा सुधूम्राक्ष एवं केशी दैत्यके युद्धका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

तत्रैव तु महायुद्धे रणाजिर्देवसत्तमः।
युध्यते सह दैत्येन एकचक्रेण धीमता॥ १

प्रच्छाद्य रथपन्थानमुत्क्रोशंश्च महाबलः।
एकचक्रस्य सैन्यं तच्छरवर्षैरवाकिरत्॥ २

महासुरा महावीर्या महापट्टिशयोधिनः।
शूलानि च भुशुण्डीश्च क्षिपन्ति स्म महारणे॥ ३

तच्छूलवर्षं सुमहद्गदाशक्तिसमाकुलम्।
अविशद् दितिजैर्मुक्तं दुर्निवार्यं चराचरैः॥ ४

अन्योन्यमभिवर्तन्ते देवासुरगणा युधि।
महाद्रिशिखराकारा वीर्यवन्तो महाबलाः॥ ५

तुरङ्गमाणां तु शतं युक्तं तस्य महारथे।
महासुरवरस्येव हिरण्यकशिपोर्युधि॥ ६

तेषां चरणपातेन चक्रनेमिस्वनेन च।
तस्य बाणनिपातैश्च हता वै शतशः सुराः॥ ७

ततः स लघुभिश्चित्रैः शरैः संनतपर्वभिः।
सायुधानच्छिनत् क्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ८

वध्यमानाः शरैस्तीक्ष्णै रथद्विरदवाजिनः।
गमिताः प्रक्षयं केचित् त्रिदशैर्दानवा रणे॥ ९

ततः प्रक्षीयमाणांस्तानुपप्रेक्ष्य दितेः सुताः।
त्यक्त्वा प्राणान् न्यवर्तन्त प्रगृहीतवरायुधाः॥ १०

ते दिशो विदिशश्चैव प्रतियुद्धप्रहारिणः।
अभ्यघ्नन् निशितैः शस्त्रैर्देवान् दितिसुता रणे॥ ११

रणाजिर्ज्वलितं घोरं परमं तिग्मतेजसम्।
मुमोचास्त्रं महाबाहुर्मथनं नाम संयुगे॥ १२

ततः शस्त्राणि शूलानि निशितानि सहस्रशः।
अस्त्रवीर्येण महता दितिजः सम्प्रचिच्छिदे॥ १३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उसी महायुद्धमें देवशिरोमणि रणाजि नामक साध्यदेवता बुद्धिमान् दैत्य एकचक्रके साथ युद्ध कर रहे थे॥ १॥ महाबली रणाजिने रथके मार्गको आच्छादित करके जोर-जोरसे गर्जना करते हुए एकचक्रकी सेनापर बाणोंकी झड़ी लगा दी॥ २॥ महापराक्रमी और महान् पट्टिशद्वारा युद्ध करनेवाले महान् असुर उस महासमरमें शूलों और भुशुण्डियोंका प्रहार करते थे॥ ३॥ दैत्योंद्वारा की गयी गदा और शक्तियोंसहित शूलोंकी वह बड़ी भारी वर्षा देवसेनामें व्याप्त हो गयी; समस्त चराचर प्राणियोंके लिये उसका निवारण करना कठिन था॥ ४॥ उस युद्धस्थलमें देवता और असुरगण एक-दूसरेके सामने खड़े थे; उनके आकार विशाल पर्वतोंके समान थे और वे सभी महाबलवान् तथा पराक्रमी थे॥ ५॥ महान् असुरशिरोमणि एकचक्र युद्धमें हिरण्यकशिपुके समान था। उसके विशाल रथमें सौ घोड़े जुते हुए थे॥ ६॥ उन घोड़ोंकी टापोंके आघातसे, रथके पहियोंकी घरघराहटसे तथा एकचक्रके बाणोंकी मारसे सैकड़ों देवता नष्ट हो गये॥ ७॥ रणाजिने कुपित होकर झुकी हुई गाँठवाले शीघ्रगामी विचित्र बाणोंद्वारा आयुधोंसहित सैकड़ों और हजारों दैत्योंको छिन्न-भिन्न कर डाला॥ ८॥ देवताओंने अपने तीखे बाणोंकी मारसे रथ, हाथी और घोड़ोंसहित कितने ही दानवोंका समराङ्गणमें संहार कर डाला॥ ९॥ उन दानवोंका इस प्रकार विनाश होता देख वे दैत्य हाथोंमें श्रेष्ठ आयुध लिये प्राणोंका मोह छोड़कर वहाँ लौट पड़े॥ १०॥ युद्धमें शत्रुका सामना और शत्रुसेनापर प्रहार करनेवाले उन दैत्योंने रणभूमिमें अपने तीखे शस्त्रोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओंमें खड़े हुए देवताओंको गहरी चोट पहुँचायी॥ ११॥ यह देख महाबाहु रणाजिने प्रचण्ड तेजवाले अत्यन्त घोर मथन नामक प्रज्वलित अस्त्रका उस युद्धस्थलमें प्रयोग किया॥ १२॥ तदनन्तर उससे निकले हुए सहस्रों तीखे शूल आदि शस्त्रोंको एकचक्र दैत्यने अपने महान् अस्त्रबलसे काट डाला॥ १३॥

छित्त्वा शूलेन तान् सर्वानेकचक्रो महासुरः।
अभ्यविध्यत तं साध्यं दशभिर्निशितैः शरैः॥ १४

अस्त्रवेगं निहत्यैवं सोऽस्त्रैस्तस्यानुसैनिकान्।
ज्वलितैरपरैः शीघ्रैस्तानविध्यत् सहस्रशः॥ १५

तेषां छिन्नानि गात्राणि विसृजन्ति स्म शोणितम्।
प्रावृषीवाम्बुवृष्टीनि शृङ्गाणि धरणीभृताम्॥ १६

इन्द्राशनिसमस्पर्शैर्निपतद्भिरजिह्मगैः।
दितिजैर्वध्यमानास्ते वित्रेसुः सुरसत्तमाः॥ १७

एकचक्रो रथे तिष्ठन्नपश्यद् गजयूथपान्।
वराभरणनिर्ह्रादान् समुद्रस्वननिःस्वनान्॥ १८

मत्तान् सुविहितान् दृप्तान् महामात्रैरधिष्ठितान्।
कुलीनान् वीर्यसम्पन्नान् प्रतिद्विरदघातिनः॥ १९

शिक्षितान् गजशिक्षायामैरावतसमान् युधि।
न्यहनत् सुरसैन्यस्य गजान् गज इवासुरः॥ २०

विक्षरन्तो महानागान् भीमवेगांस्त्रिधा मदम्।
मेघस्तनितनिर्घोषान् महाद्रीनिव चोत्थितान्॥ २१

सहस्रसम्मितान् दिव्याञ्जाम्बूनदपरिष्कृतान्।
सुवर्णजालैर्विततांस्तरुणादित्यवर्चसः॥ २२

एकचक्रो गदापाणिर्बलवान् गदिनां वरः।
उत्सारयामास गजान् महाभ्राणीव मारुतः॥ २३

निहत्य गदया सर्वांस्तान् गजान् गजमर्दनः।
भूयोऽश्वसंघान् स बली निरैक्षत महासुरः॥ २४

शुकवर्णानृष्यवर्णान् मयूरसदृशांस्तथा।
पारावतसवर्णांश्च हंसवर्णांस्तथैव च॥ २५

उस महान् असुर एकचक्रने शूलसे उन सब अस्त्रोंको छिन्न-भिन्न करके साध्यदेवता रणाजिको दस पैने बाणोंसे अच्छी तरह घायल किया॥ १४॥ उस दैत्यने अपने अस्त्रोंसे साध्यदेवताके अस्त्रवेगका इस प्रकार निवारण करके उनके पीछे चलनेवाले सहस्रों सैनिकोंको दूसरे शीघ्रगामी प्रज्वलित अस्त्रोंद्वारा बींध डाला॥ १५॥ उन सैनिकोंके छिदे हुए अङ्ग वर्षाकालमें जलकी वृष्टि करनेवाले पर्वतोंके शिखरोंकी भाँति रक्त बहा रहे थे॥ १६॥ जिनका स्पर्श इन्द्रके वज्रकी भाँति दु:सह था, उन सीधे जानेवाले बाणोंके प्रहारसे दैत्योंद्वारा पीड़ित किये गये वे श्रेष्ठ देवता अत्यन्त भयभीत हो गये॥ १७॥ एकचक्रने रथमें बैठे हुए ही देखा कि देवताओंके गजयूथपति चले आ रहे हैं, उनके श्रेष्ठ आभूषणोंकी झंकार सुनायी पड़ती है। उनके चिग्घाड़नेका शब्द समुद्रकी गर्जनाको लज्जित करता है। वे मतवाले और बलाभिमानी गजराज अच्छी तरह सजाये गये हैं; उनके ऊपर महावत बैठे हैं। वे उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा बल-पराक्रमसे सम्पन्न हैं और प्रतिद्वन्द्वी हाथियोंको मार डालनेकी शक्ति रखते हैं। गजशिक्षामें पूर्णत: शिक्षित हैं तथा युद्धमें ऐरावतके समान पराक्रमी हैं। तब उसने गजासुरके समान देवसेनाके उन हाथियोंको मार डाला॥ १८—२०॥ वे सब विशालकाय हाथी कण्ठ, सूँड़ और कुम्भस्थल—इन तीन स्थानोंसे मद बहा रहे थे; उनका वेग बड़ा भयंकर था। वे मेघकी गर्जनाके समान चिग्घाड़ते थे और खड़े विशाल पर्वतोंके समान प्रतीत होते थे॥ २१॥ उन दिव्य हाथियोंकी संख्या लगभग एक सहस्र थी। वे सब-के-सब सुवर्णके अलंकारोंसे विभूषित थे। उनपर सोनेकी जालियोंसे युक्त झूलें पड़ी हुई थीं तथा वे प्रात:कालके सूर्यके समान दीप्तिमान् दिखायी देते थे॥ २२॥ हाथमें गदा लिये गदाधारियोंमें श्रेष्ठ बलवान् एकचक्रने उन समस्त गजराजोंका उसी प्रकार संहार कर डाला, जैसे वायु महान् मेघोंको छिन्न-भिन्न कर देती है॥ २३॥ गजोंका मर्दन करनेवाले उस महान् बलवान् असुरने अपनी गदाके द्वारा उन समस्त हाथियोंको मौतके घाट उतारकर पुन: अश्वसमूहोंपर दृष्टिपात किया॥ २४॥ कुछ घोड़ोंके रंग तोतोंके समान हरे थे; कुछ मृगके समान धूसर वर्णवाले थे। कितने ही घोड़ोंके रंग मोरोंके समान थे; कितने ही कबूतरों और हंसोंके समान वर्णसे विभूषित थे॥ २५॥

मल्लिकाक्षान् विरूपाक्षान् क्रौञ्चवर्णान् मनोजवान्।
अश्वसैन्यं महाबाहुस्तदप्रतिमपौरुषः।
निषूदयामास बली गदया भीमविक्रमः॥ २६

रणाजिस्तस्य समरे सर्वान् दृष्ट्वा सुरद्विषः।
अचिन्त्यविक्रमः श्रीमान् स युद्धाद् विरराम ह॥ २७

गदायुद्धेषु कुशलो रथेन रथयूथपः।
नष्टसैन्यो महाबाहुः प्रस्थितः शक्रसंनिधौ॥ २८

त्रिंशच्छतसहस्राणि रथानां विनिहत्य सः।
रणेऽतिष्ठत दैत्येन्द्रो विधूम इव पावकः॥ २९

तस्मिन्नेव तु संग्रामे बलो दृप्तो महासुरः।
मृगव्याधं महात्मानं योधयत्यजितं रणे॥ ३०

मृगव्याधस्य रुद्रस्य महापारिषदास्तथा।
समुत्पेतुर्बलं दृष्ट्वा हुताग्निसमतेजसः॥ ३१

गजैर्मत्तै रथैर्दिव्यैर्वाजिभिश्च महाजवैः।
अस्त्रैश्च निशितैर्बाणैः शरैश्चानलसंनिभैः॥ ३२

ददृशुस्ते ततो वीरा दीप्यमानं महासुरम्।
रश्मिवन्तमिवोद्यन्तं सुतेजोरश्मिमालिनम्॥ ३३

संग्रामस्थं महावेगं महासत्त्वं महाबलम्।
महामतिं महोत्साहं महाकायं महारथम्॥ ३४

समीक्ष्य तं महायोधं दिक्षु सर्वास्ववस्थितम्।
ततः प्रहरणैर्घोरैरभिपेतुः समन्ततः॥ ३५

तस्य सर्वायसास्तीक्ष्णाः शराः पीतमुखाः शिताः।
शिरस्यद्रिप्रतीकाशे मृगव्याधेन पातिताः॥ ३६

तैश्च सप्तभिराविष्टः शरैः शिरसि चार्पितैः।
उत्पपात तदा व्योम्नि दिशो दश विनादयन्॥ ३७

ततस्तं त्रिदशो वीरः सरथः सज्जकार्मुकः।
अनुवव्राज संहृष्टः खे तदा स महाबलः॥ ३८

असुरं छादयामास तं व्योम्नि शरवृष्टिभिः।
वृष्टिमानिव जीमूतो निदाघान्ते धराधरम्॥ ३९

किन्हींकी आँखें मल्लिकाके समान थीं और किन्हींकी विरूप। कुछ घोड़ोंके वर्ण क्रौञ्च पक्षीके समान थे। वे सभी मनके समान वेगशाली थे। अनुपम पुरुषार्थ और भयंकर पराक्रमसे युक्त बलवान् महाबाहु एकचक्रने पूर्वोक्त अश्वोंकी सेनाको अपनी गदाके आघातसे नष्ट कर दिया॥ २६॥ अचिन्त्यपराक्रमी श्रीमान् रणाजि उस समरमें समस्त देवद्रोहियोंको उपस्थित देख उन सबको त्यागकर युद्धसे विरत हो गये॥ २७॥ गदायुद्धमें कुशल तथा रथ-यूथपति महाबाहु रणाजि, जिनकी सेना प्रायः नष्ट हो गयी थी, रथके द्वारा इन्द्रके समीप चले गये॥ २८॥ दैत्यराज एकचक्र वहाँ तीस लाख रथियोंका संहार करके रणभूमिमें धूमरहित अग्निके समान स्थित हो गया॥ २९॥ उसी युद्धमें महान् असुर बल, जिसे अपने बलपर घमंड था, अपराजित महात्मा मृगव्याध (रुद्र)-के साथ युद्ध करने लगा॥ ३०॥ मृगव्याध नामक रुद्रदेवके महान् पार्षद घीकी आहुति पाकर प्रज्वलित हुए अग्निके समान तेजस्वी थे। वे बलको देखते ही वहाँ उछलते-कूदते हुए आ पहुँचे॥ ३१॥ कुछ पार्षद मतवाले हाथियोंसे, कुछ दिव्य रथोंसे और कुछ महान् वेगशाली घोड़ोंसे आये। वे सब-के-सब अग्निके समान तेजस्वी, तीखे अस्त्र एवं बाणोंसे सम्पन्न थे॥ ३२॥ तत्पश्चात् उन वीरोंने उस महान् असुरको उगते हुए सूर्यके समान तेजोमयी किरण-मालाओंसे अलंकृत एवं देदीप्यमान देखा॥ ३३॥ युद्धस्थलमें खड़े हुए उस महान् वेग, महान् सत्त्व, महान् बल, महती बुद्धि, महान् उत्साह और विशाल कायासे सम्पन्न महारथी महायोद्धाको सम्पूर्ण दिशाओंमें अवस्थित देख वे रुद्रपार्षद घोर अस्त्र-शस्त्र लिये चारों ओरसे उसपर टूट पड़े॥ ३४-३५॥ मृगव्याधने उसके पर्वतसदृश मस्तकपर पूर्णतः लोहेके बने हुए तीखे और तेज धारवाले बाण बरसाये। जिनके मुख (धार)-पर पानी चढ़ाया गया था॥ ३६॥ मृगव्याधके वे सात बाण उसके सिरमें धँस गये। उन बाणोंसे आविष्ट होकर महान् असुर बल अपने चीत्कारसे दसों दिशाओंको निनादित करता हुआ आकाशमें उड़ गया॥ ३७॥ तब उन देववीर महाबली मृगव्याधने रथ और धनुषसहित बड़े हर्षके साथ आकाशमें उस समय उस दानवका पीछा किया॥ ३८॥ जैसे वर्षाकालमें पानी बरसानेके लिये उद्यत हुआ मेघ पर्वतको अपनी जलधाराओंसे ढक देता है, उसी प्रकार मृगव्याधने आकाशमें अपने बाणोंकी वर्षासे उस असुरको आच्छादित कर दिया॥ ३९॥

अर्द्यमानस्ततस्तेन मृगव्याधेन दानवः।
चकार निनदं घोरमम्बरे जलदो यथा॥ ४०

स दूरं सहसोत्पत्य मृगव्याधरथं प्रति।
निपपात महावेगः पक्षवातैर्गिरिर्यथा॥ ४१

बभञ्ज च ततो दैत्यो भग्नेषाकूबरं रथम्।
मृगव्याधः परित्यज्य स्थितो भूमौ महाबलः॥ ४२

विरथं प्रेक्ष्य रुद्रं तु तस्य पारिषदाः शुभाः।
उत्थिता घोररक्ताक्षा व्योम्नि मुद्गरपाणयः॥ ४३

स तु तैः सहसोत्थाय वेष्टितो विमलेऽम्बरे।
मुद्गरैरर्दितो भीमैर्वृक्षः परशुभिर्यथा॥ ४४

तेषां वेगवतां वेगं निहत्य स महारथः।
निपपात पुनर्भूमौ सुपर्णसमविक्रमः॥ ४५

स शालवृक्षमुत्पाट्य महाशाखं महाबलः।
सर्वान् पारिषदान् संख्ये सूदयामास दानवः॥ ४६

स तैर्विक्षतदेहस्तु रुधिरौघपरिप्लुतः।
शुशुभे दानवश्रेष्ठो बालसूर्य इवोदितः॥ ४७

अथोत्पाट्य गिरेः शृङ्गं समृगव्यालपादपम्।
जघान तान् पारिषदान् समरे दानवेश्वरः॥ ४८

ततस्तेषु च भग्नेषु महापारिषदेषु वै।
बलं तदवशेषं तु नाशयामास वीर्यवान्॥ ४९

अश्वैरश्वान् गजैर्नागान् योधान् योधै रथान् रथैः।
दानवः सूदयामास युगान्तेऽन्तकवत् प्रजाः॥ ५०

हतैरश्वैश्च नागैश्च भग्नाक्षैश्च महारथैः।
त्रिदशैश्चाभवद् भूमी रुद्धमार्गा समन्ततः॥ ५१

एवं बलः स दैत्येन्द्रो मृगव्याधश्च वीर्यवान्।
युधि प्रवृद्धौ बलिनौ प्रभिन्नाविव वारणौ॥ ५२

वैशम्पायन उवाच

तत्रैव युध्यते रुद्रो द्वितीयो राहुणा सह।
विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु क्रोधात्मा ह्यज एकपात्॥ ५३

तद् यथा सुमहद् युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
आसीत् प्रतिभयं रौद्रं वीराणां जयमिच्छताम्॥ ५४

मृगव्याधसे पीड़ित किये जानेपर उस दानवने आकाशमें ही मेघकी भाँति घोर गर्जना की॥ ४०॥ तदनन्तर वह महान् वेगशाली दानव सहसा दूरतक उछलकर मृगव्याधके रथपर पाँखोंकी हवासे युक्त पर्वतकी भाँति कूद पड़ा॥ ४१॥ ऐसा करके उस दैत्यने उस रथके ईषादण्ड और कूबरको तोड़ दिया तथा उस रथको भी चौपट कर दिया। महाबली मृगव्याध वह रथ त्यागकर पृथ्वीपर खड़े हो गये॥ ४२॥ रुद्रको रथहीन हुआ देख उनके शुभ पार्षद आकाशमें मुद्गर लिये खड़े हो गये। उनकी भयंकर आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं॥ ४३॥ उन सबने सहसा ऊपर उठकर निर्मल आकाशमें बलासुरको घेर लिया और जैसे फरसोंसे वृक्ष काटा जाता है, उसी प्रकार भयंकर मुद्गरोंसे उसे पीड़ित करना आरम्भ किया॥ ४४॥ परंतु वह महारथी बल गरुड़के समान पराक्रमी था। वह उन वेगवानोंका वेग नष्ट करके पुनः पृथ्वीपर कूद पड़ा॥ ४५॥ वहाँ विशाल शाखावाले एक शाल-वृक्षको उखाड़कर उस महाबली दानवने युद्धस्थलमें उन समस्त पार्षदोंपर उसका प्रहार किया॥ ४६॥ उन पार्षदोंने बलके शरीरको क्षत-विक्षत कर दिया था, अतः खूनसे लथपथ हुआ दानवशिरोमणि बल उगे हुए बालसूर्यके समान शोभा पाने लगा॥ ४७॥ तदनन्तर मृगों, सर्पों और वृक्षोंसहित एक पर्वतशिखरको उखाड़कर दानवराज बलने समराङ्गणमें उन पार्षदोंपर आघात किया॥ ४८॥ तत्पश्चात् उन महान् पार्षदोंके व्यूह टूट जानेपर उस पराक्रमी असुरने शेष सेनाका नाश कर दिया॥ ४९॥ जैसे प्रलयकालमें संवर्तक यम सारी प्रजाका संहार कर डालते हैं, उसी प्रकार उस दानवने घोड़ोंसे घोड़ोंको, हाथियोंसे हाथियोंको, पैदल योद्धाओंसे पैदल योद्धाओंको तथा रथोंसे रथोंको नष्ट कर दिया॥ ५०॥ वहाँ मारे गये घोड़ों, हाथियों, टूटे धुरेवाले विशाल रथों और देवताओंसे वहाँकी भूमिका मार्ग सब ओरसे अवरुद्ध हो गया था॥ ५१॥ इस प्रकार दैत्यराज बल और पराक्रमी मृगव्याध दोनों बलवान् वीर मदकी धारा बहानेवाले हाथियोंके समान युद्धमें बढ़े-चढ़े थे॥ ५२॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वहीं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध क्रोधात्मा अजैकपाद नामक द्वितीय रुद्र राहुके साथ युद्ध करते थे॥ ५३॥ विजयकी इच्छा रखनेवाले वीरोंका वह महान् युद्ध तुमुल, रोमाञ्चकारी, भयानक तथा रौद्ररूप था॥ ५४॥

देवदानवदेहैस्तु दुस्तरा केशशाद्वला।
शरीरसंघातवहा प्रसृता लोहितापगा॥ ५५

आजघानाथ संक्रुद्धो रुद्रो रौद्राकृतिः प्रभुः।
राहुं शतमुखं युद्धे शत्रुसैन्यनिवारणम्॥ ५६

तस्य काञ्चनचित्राङ्गं रथं साश्वं ससारथिम्।
जघान समरे श्रीमान् क्रुद्धो दैत्यस्य सायकैः॥ ५७

तस्य पारिषदस्त्वेकः शरशक्त्या महाबलः।
बिभेद समरे हृष्टो दानवं तं स्तनान्तरे॥ ५८

स भिन्नगात्रो रुद्रेण तथा पारिषदैरपि।
रुद्रस्य रथमायान्तं स राहुर्दानवोत्तमः॥ ५९

प्रममाथ तलेनाशु सहसा क्रोधमूर्च्छितः।
भिन्नगात्रं शरैस्तीक्ष्णैर्मेरुं सूर्य इवांशुभिः॥ ६०

हतैर्दानवमुख्यैस्तु रुद्रेणामिततेजसा।
रुद्रपारिषदान् सर्वान् निजघान महासुरः॥ ६१

सृजन्तं शरवर्षाणि दानवं घोरदर्शनम्।
बिभेद समरे रुद्रो बाणैः संनतपर्वभिः॥ ६२

वर्तमाने महाघोरे संग्रामे लोमहर्षणे।
रुधिरौघा महावेगा महानद्यः प्रसुस्रुवुः॥ ६३

दानवं समरे रुद्रो नीलाञ्जनचयोपमम्।
निर्बिभेद शरैस्तीक्ष्णैर्मेरुं सूर्य इवांशुभिः॥ ६४

हतैर्दानवमुख्यैश्च शक्तिशूलपरश्वधैः।
पतितैः पर्वताभैश्च दानवैः कामरूपिभिः॥ ६५

वर्तमाने महाघोरे संग्रामे लोमहर्षणे।
विरेजुस्ते तदा दैत्याः पुष्पिता इव किंशुकाः॥ ६६

महाभेरीमृदङ्गानां पणवानां च निःस्वनः।
शङ्खवेणुस्वनोन्मिश्रः सम्बभूवाद्भुतोपमः॥ ६७

हतानां स्वनतां तत्र दैत्यानां चापि निःस्वनः।
देवानां च तथा तत्र शुश्रुवे दारुणो महान्॥ ६८

तुरङ्गमखुरोत्कीर्णं रथनेमिसमुत्थितम्।
रुरोध मार्गं योधानां चक्षूंषि च धरारजः॥ ६९

देवताओं और दानवोंके शरीरोंसे वहाँ खूनकी एक दुस्तर नदी बह चली, जो विभिन्न शरीरसमूहोंको बहाये लिये जाती थी। मनुष्योंके केश उसमें घास और सेवार-के समान जान पड़ते थे॥ ५५॥ प्रभावशाली रुद्रदेवकी आकृति बड़ी ही रौद्र थी। उन्होंने कुपित होकर युद्धमें शत्रुसेनाका निवारण करनेवाले शतमुख राहुपर गहरा आघात किया॥ ५६॥ क्रोधमें भरे हुए श्रीमान् रुद्रदेवने समरभूमिमें अपने सायकोंद्वारा उस दैत्यके सुवर्णमय विचित्र अङ्गवाले रथको घोड़ों और सारथिसहित नष्ट कर दिया॥ ५७॥ उनके हर्ष और उत्साहमें भरे हुए एक महाबली पार्षदने समरमें बाणोंकी शक्तिसे उस दानवकी छातीमें घाव कर दिया॥ ५८॥ रुद्र तथा उनके पार्षदोंसे शरीरके क्षत-विक्षत कर दिये जानेपर दानवशिरोमणि राहु सहसा क्रोधसे मूर्च्छित हो गया। उसने रुद्रदेवके आते हुए रथको शीघ्रतापूर्वक थप्पड़से मारकर चूर-चूर कर डाला। जैसे सूर्य अपनी तीखी किरणोंसे मेरुपर्वतको संतप्त करते हैं; उसी प्रकार वह दानव घायल अङ्गोंवाले रुद्रदेवको अपने तीखे बाणोंसे पीड़ा देने लगा॥ ५९-६०॥ जब अमिततेजस्वी रुद्रदेवके द्वारा मुख्य-मुख्य दानव मारे गये, तब महान् असुर राहुने रुद्रदेवके समस्त पार्षदोंको भी मारना आरम्भ किया॥ ६१॥ बाणोंकी वर्षा करते हुए उस घोर दृष्टिवाले दानवको रुद्रदेवने युद्धस्थलमें झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा घायल कर दिया॥ ६२॥ उस रोमाञ्चकारी महाघोर संग्रामके होते समय वहाँ रक्तके प्रवाहसे युक्त महावेगशालिनी बड़ी-बड़ी नदियाँ बहने लगीं॥ ६३॥ रुद्रदेवने समरभूमिमें काले कोयलेकी राशिके समान कान्तिवाले दानव राहुको अपने तीखे बाणोंसे उसी प्रकार क्षत-विक्षत कर दिया, जैसे सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे मेरुपर्वतको संतप्त करते हैं॥ ६४॥ शक्ति, शूल और फरसोंकी मारसे जब इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले पर्वताकार मुख्य-मुख्य दानव मरकर धराशायी हो गये और वह महाघोर रोमाञ्चकारी संग्राम चालू ही रह गया, तब उसमें घायल हुए दैत्य फूले हुए पलास वृक्षके समान शोभा पाने लगे॥ ६५-६६॥ उस समय महाभेरी, मृदङ्ग तथा पणवोंका गम्भीर नाद जब शङ्ख और वेणुकी ध्वनिसे मिल गया, तब अद्भुत-सा ही प्रतीत होने लगा॥ ६७॥ वहाँ आहत होकर आर्तनाद करते हुए दैत्यों तथा देवताओंका अत्यन्त दारुण शब्द सुनायी दे रहा था॥ ६८॥ घोड़ोंके टापों तथा रथके पहियोंसे उठी हुई धरतीकी धूलने वहाँ जूझते हुए योद्धाओंके मार्ग तथा नेत्रोंको अवरुद्ध कर दिया॥ ६९॥

शस्त्रपुष्पोपहारा सा तत्रासीद् युद्धमेदिनी।
दुर्दर्शा दुर्विगाह्या च मांसशोणितकर्दमा॥ ७०

भग्नैः खड्गैर्गदाभिश्च शक्तितोमरपट्टिशैः।
अपविद्धैश्च भग्नैश्च रथैः सांग्रामिकैर्हतैः॥ ७१

निहतैः कुञ्जरैर्मत्तैस्तथा त्रिदशदानवैः।
चक्राक्षयुगशस्त्रैश्च भग्नैरवनिपातितैः॥ ७२

बभूवायोधनं घोरं पिशिताशनसंकुलम्।
उत्पेतुश्च कबन्धानि दिक्षु सर्वासु संयुगे॥ ७३

अन्योन्यबद्धवैराणां दैत्यानां जयगृद्धिनाम्।
सम्प्रहारस्तथा युद्धे वर्ततेऽतिभयंकरः॥ ७४

सैन्यानां सम्प्रयुद्धानां शूराणामनिवर्तिनाम्।
अजस्य चैकपादस्य राहोश्चैव महात्मनः॥ ७५

तेषां तु तत्र पततां क्रुद्धानामतिनिःस्वनः।
उद्वर्त इव भूतानां समुद्राणां तु शुश्रुवे॥ ७६

तत्रैकस्तु सुधूम्राक्षः श्रीमान् रुद्रो मुनीश्वरः।
बिभेद केशिनं शक्त्या गदापरिघशूलभृत्॥ ७७

नानाप्रहरणा घोरा भीमाक्षा भीमविक्रमाः।
निष्पेतू रुद्रदयिता महापारिषदास्तथा॥ ७८

रथमास्थाय च श्रीमांस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः।
दानवैः संवृतः केशी युध्यते युद्धदुर्जयैः॥ ७९

तस्य संग्रामशौण्डस्य संग्रामेषु युयुत्सतः।
निपेतुरुग्रवीर्यस्य ज्वाला हि प्रसृता मुखात्॥ ८०

स तु सिंहर्षभस्कन्धः शार्दूलसमविक्रमः।
महाजलदसंकाशो मृदङ्गध्वनिनिःस्वनः॥ ८१

तस्य निष्पतमानस्य दानवैः संवृतस्य च।
बभूव सुमहानादः क्षोभयंस्त्रिदिवं यथा॥ ८२

तेन शब्देन वित्रस्ता त्रिदशानां महाचमूः।
द्रुमशैलप्रहरणा योद्धुमेवाभ्यवर्तत॥ ८३

वहाँ रणभूमिको अस्त्र-शस्त्ररूपी पुष्पोंका उपहार अर्पित हो रहा था। उसमें मांस और रक्तकी ऐसी कीच जम गयी थी कि उसकी ओर देखना कठिन हो गया था और उसमें प्रवेश करना या चलना-फिरना तो और भी कठिन था॥ ७० ॥ टूटी हुई तलवारों, गदाओं, शक्ति, तोमर और पट्टिशों, टूटे-फूटे होनेके कारण फेंके गये रथों, नष्ट हुए युद्धसम्बन्धी उपकरणों, मारे गये मतवाले हाथियों तथा देवताओं और दानवों, खण्डित होकर पृथ्वीपर पड़े हुए पहियों, धुरों, जूओं और शस्त्रोंसे भरा हुआ वह भयंकर युद्धक्षेत्र मांसाहारी जन्तुओंसे व्याप्त हो रहा था। उस समराङ्गणमें चारों ओर कबन्ध (बिना सिरके धड़) उछल रहे थे॥ ७१—७३ ॥ विजयकी अभिलाषा रखनेवाले देवता और दैत्य परस्पर वैर बाँधकर लड़ते थे। उस युद्धमें एक-दूसरेके प्रति होनेवाला उनका प्रहार बड़ा भयंकर था॥ ७४ ॥ उस युद्धमें सम्मिलित हुए शूरवीर सैनिक पीछे हटनेवाले नहीं थे। महात्मा अजैकपाद तथा महामनस्वी राहुकी भी यही स्थिति थी। वे सब क्रोधमें भरकर जब वहाँ एक-दूसरेपर आक्रमण करते थे, उस समय उनका अत्यन्त घोर कोलाहल प्रलयकालमें प्राणियोंके भीषण आर्तनाद तथा समुद्रोंके महान् गर्जनकी भाँति सुनायी पड़ता था॥ ७५-७६ ॥ वहाँ एक तेजस्वी रुद्र सुधूम्राक्ष नामसे प्रसिद्ध एवं मुनीश्वर थे। वे शक्तिके साथ ही गदा, परिघ और शूल धारण करते थे। उन्होंने शक्तिके द्वारा केशीको घायल कर दिया॥ ७७ ॥ उस समय नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले, भयानक नेत्रवाले, भयंकर पराक्रमी तथा रुद्रदेवके प्रिय घोर महापार्षद वहाँ आ पहुँचे॥ ७८ ॥ केशी नामक दैत्य तपाये हुए सुवर्णके कुण्डलोंसे अलंकृत और उत्तम शोभासे सम्पन्न था। वह रणदुर्जय दानवोंसे घिरा हुआ रथपर आरूढ़ होकर युद्ध करता था॥ ७९ ॥ वह संग्राममें कुशल और उग्र बल-पराक्रमसे सम्पन्न था। जिस समय वह युद्धमें प्रवृत्त होता था, उस समय उसके मुखसे ज्वालाएँ प्रकट होकर फैलने लगती थीं॥ ८० ॥ उसके कंधे सिंह और बैलोंके समान थे। उसका पराक्रम भी सिंहके ही समान था। उसका सिंहनाद महामेघोंकी गम्भीर गर्जना और मृदङ्गोंकी ध्वनिके समान होता था॥ ८१ ॥ दानवोंसे घिरा हुआ वह दैत्य जब युद्धभूमिमें कूदा था, उस समय जो उसका महान् सिंहनाद हुआ, वह स्वर्गलोकको क्षोभमें डालनेवाला था॥ ८२ ॥ उसकी उस गर्जनासे देवताओंकी विशाल सेना संत्रस्त हो उठी तो भी वृक्षों तथा पर्वतखण्डोंका प्रहार करती हुई युद्ध करनेके लिये ही सामने आकर डट गयी॥ ८३ ॥

तेषां च देवदैत्यानां युयुत्सूनां परस्परम्।
संनिपातः सुतुमुलो रौद्रो लोकभयावहः॥ ८४
तेषां युद्धं महाघोरं संजज्ञे लोमहर्षणम्।
देवदानवसंघानां प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे॥ ८५
सर्वे ह्यतिबलाः शूराः सर्वे पर्वतसंनिभाः।
सर्वे सर्वास्त्रविद्वांसः सर्वे सर्वायुधोद्यताः।
त्रिदशा दानवाश्चैव परस्परजिघांसवः॥ ८६
तेषां वै नदतां शब्दः संयुगे मेघनिःस्वनः।
शुश्रुवेऽतिमहाघोरश्चरस्थावरकम्पनः॥ ८७
रेणुश्चारुणसंकाशो भीमः स समपद्यत।
उद्धूतो देवदैत्यौघैः संरुरोध दिशो दश॥ ८८
अन्योन्यं रजसा तेन कौशेयारुणपाण्डुना।
संवृता बहुरूपेण ददृशुर्न च किंचन॥ ८९
न ध्वजो न पताकाश्च न वर्म तुरगोऽपि वा।
आयुधं स्यन्दनो वापि दृश्यते नैव सारथिः॥ ९०
स शब्दस्तुमुलस्तेषामन्योन्यमभिधावताम्।
श्रूयते तुमुलः शब्दो न रूपाणि चकाशिरे॥ ९१
दानवास्तत्र संक्रुद्धा दानवानेव जघ्निरे।
त्रिदशास्त्रिदशांश्चैव निजघ्नुस्तुमुले तदा॥ ९२
ते परांश्च विनिघ्नन्तः स्वांश्च युद्धे महासुरान्।
रुधिरार्द्रां तथा चक्रुर्मेदिनीमसुराः सुराः॥ ९३
ततस्तु रुधिरौघेण संसिक्तमुदितं रजः।
शरीरशतसंकीर्णं बभूव धरणीतलम्॥ ९४
शूलशक्तिगदाखड्गपरिघप्रासतोमरैः।
त्रिदशा दानवाश्चैव जघ्नुरन्योन्यमाहवे॥ ९५
बाहुभिः परिघाकारैर्निघ्नतः परिघैस्तथा।
रुद्रपारिषदान् सर्वान् सूदयन्ति स्म दानवाः॥ ९६
रुद्रपारिषदाश्चैव महाद्रुममहाश्मभिः।
व्यदारयन्नतिक्रम्य शस्त्रैश्चादित्यसंनिभैः॥ ९७

परस्पर जूझनेकी इच्छावाले देवताओं और दैत्योंका वह घमासान युद्ध बड़ा ही रौद्र तथा जगत्को भय देनेवाला था॥ ८४॥ देवताओं और दानवोंके समुदायोंका वह महाघोर युद्ध प्राणोंका मोह छोड़कर हो रहा था। उस महासमरमें उस युद्धका वह दृश्य बड़ा ही रोमाञ्चकारी था॥ ८५॥ वे सभी शूरवीर, अत्यन्त बलशाली तथा पर्वतके समान विशालकाय थे। सभी सम्पूर्ण अस्त्रोंके विद्वान् थे और सभी सब प्रकारके अस्त्रोंसे सम्पन्न हो युद्धके लिये उद्यत हुए थे। वे देवता और दानव दोनों ही एक-दूसरेके वधकी इच्छा रखते थे॥ ८६॥ युद्धस्थलमें गर्जना करते हुए उन समस्त योद्धाओंका शब्द महान् मेघोंकी गर्जनाके समान सुनायी पड़ता था। वह महाघोर शब्द स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंको कम्पित कर देनेवाला था॥ ८७॥ देवताओं और दैत्योंके समूहोंद्वारा उड़ायी गयी लाल रंगकी धूल वहाँ सब ओर फैल गयी। वह बड़ी भयंकर जान पड़ती थी। उसने दसों दिशाओंको अवरुद्ध कर दिया॥ ८८॥ लाल, पीली और सफेद बहुरंगी धूलसे परस्पर आच्छादित हुए सैनिक कोई भी वस्तु नहीं देख पाते थे॥ ८९॥ उस समय न ध्वजा दिखायी देती थी न पताका, न कवच सूझता था न घोड़ा। अस्त्र-शस्त्र, रथ अथवा सारथि कोई भी दृष्टिगोचर नहीं होता था॥ ९०॥ एक-दूसरेके सम्मुख धावा करनेवाले उन योद्धाओंका भयंकर शब्द सब ओर गूँजने लगा। उनका वह तुमुलनाद तो सुनायी देता था, किंतु धूलके कारण किसीके रूप नहीं सूझते थे॥ ९१॥ वहाँ उस तुमुल युद्धमें क्रोधमें भरे हुए दानव दानवोंपर ही प्रहार कर बैठे तथा देवता देवताओंको ही मारने लगे॥ ९२॥ वे देवता और असुर उस युद्धमें शत्रुपक्षके तथा अपने पक्षके भी बड़े-बड़े देवताओं और असुरोंका संहार करने लगे। उन दोनों पक्षोंके योद्धाओंने पृथ्वीको रक्तसे गीली कर दिया॥ ९३॥ तदनन्तर वह उड़ती हुई धूल रक्तके प्रवाहसे भी भीगकर बैठ गयी, वहाँका धरातल सैकड़ों लाशोंसे व्याप्त हो रहा था॥ ९४॥ देवता और दानव युद्धमें परस्पर शूल, शक्ति, गदा, खड्ग, परिघ, प्रास और तोमरोंद्वारा प्रहार करते थे॥ ९५॥ परिघतुल्य भुजाओं तथा परिघोंसे प्रहार करनेवाले समस्त रुद्रगणोंपर दानव भी अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा आघात करते थे॥ ९६॥ रुद्रके पार्षद भी बड़े-बड़े वृक्षों, विशाल प्रस्तरखण्डों तथा सूर्यतुल्य तेजस्वी शस्त्रोंद्वारा आगे बढ़कर दानवोंको विदीर्ण करने लगे॥ ९७॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः केशी दानवसत्तमः।
संग्रामामर्षघोरः सन् स्वान्यनीकानि हर्षयन्।
तेषां परमसंक्रुद्धो वज्रमस्त्रमुदीरयत्॥ ९८

वज्रेणास्त्रेण दिव्येन शस्त्रेण च महात्मना।
महापारिषदाः सर्वे निहता युधि दुर्जयाः॥ ९९

वज्रास्त्रपीडिता भ्रान्ता रुद्रपारिषदा युधि।
विप्रकीर्णद्रुमाः पेतुः शैला वज्रहता इव॥ १००

एवं सुतुमुलं युद्धमभवल्लोमहर्षणम्।
केशिनः सह रुद्रेण तदद्भुतमिवाभवत्॥ १०१

इसी बीचमें कुपित हुआ दानवशिरोमणि केशी संग्राममें अमर्षके कारण घोर रूप धारण करके अपने सैनिकोंका हर्ष बढ़ाने लगा। उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन रुद्रपार्षदोंपर वज्रास्त्रका प्रयोग किया॥ ९८॥ उस महामनस्वी दैत्यने दिव्य आयुध वज्रास्त्रके द्वारा समस्त महापार्षदोंको जो युद्धमें दुर्जय थे, मार गिराया॥ ९९॥ उस युद्धस्थलमें वज्रास्त्रसे पीड़ित हुए रुद्रपार्षद चक्कर काटने लगे और जिनके वृक्ष बिखरकर गिर पड़े थे, वज्रके मारे हुए उन पर्वतोंके समान धराशायी हो गये॥ १००॥ इस प्रकार केशीका रुद्रके साथ जो अत्यन्त भयंकर एवं रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ, वह अद्भुत-सा प्रतीत होता था॥ १०१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे देवासुरयुद्धकेशिरुद्रयुद्धकथने अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारके प्रसङ्गमें देवासुरसंग्रामके भीतर केशी और रुद्रके युद्धका वर्णनविषयक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५८॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

वृषपर्वा और निष्कुम्भ नामक विश्वेदेवके तथा प्रह्लाद और कालके घोर युद्धका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

वृषपर्वा तु दैत्येन्द्रो विश्वमद्भुतदर्शनम्।
निष्कुम्भं योधयामास लोहितार्कसमद्युतिम्॥ १

क्रोधमूर्च्छितवक्त्रस्तु धुन्वन् परमकार्मुकम्।
धनूंषि प्रेक्ष्य शत्रूणां सारथिं त्वरितोऽब्रवीत्॥ २

अत्रैव तावत् त्वरितं नय मे सारथे रथम्।
एते देवाश्च सहिता घ्नन्ति नः समरे बलम्॥ ३

एतान् निहन्तुमिच्छामि समरश्लाघिनो रणे।
एतैर्हि दानवानीकं कृतच्छिद्रमिदं महत्॥ ४

ततः प्रजविताश्वेन रथेन रथिनां वरः।
अरीनभ्यहनत् क्रुद्धः शरजालैर्महासुरः॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! दैत्यराज वृषपर्वाने अरुण-सूर्यके समान कान्तिमान् तथा अद्भुत दिखायी देनेवाले निष्कुम्भ नामक विश्वेदेवके साथ युद्ध किया॥ १॥ उसकी मुखाकृति क्रोधसे व्याप्त थी। वह अपने उत्तम धनुषको बारम्बार खींच रहा था। उसने शत्रुओंके धनुषको देखकर तुरंत अपने सारथिसे कहा— ॥ २॥ 'सारथे! ये देवता एक साथ होकर समरभूमिमें हमारी सेनाका संहार करते हैं, अतः तुम मेरे रथको तुरंत पहले यहीं ले चलो॥ ३॥ समरभूमिमें अपने बल-पौरुषकी प्रशंसा करनेवाले इन देवताओंका मैं युद्धमें वध करना चाहता हूँ; क्योंकि इन्होंने दानवसेनामें यह विशाल छिद्र उत्पन्न कर दिया है'॥ ४॥ तदनन्तर वेगशाली घोड़ोंसे युक्त रथके द्वारा वहाँ उपस्थित हो रथियोंमें श्रेष्ठ महान् असुर वृषपर्वाने क्रोधपूर्वक शत्रुओंपर बाणसमूहोंद्वारा प्रहार आरम्भ किया॥ ५॥

न स्थातुं देवताः शक्ताः किं पुनर्योद्धुमाहवे।
वृषपर्वेषुनिर्भिन्नाः सर्व एवाभिदुद्रुवुः॥ ६

तान् मृत्युवशमापन्नान् वैवस्वतवशं गतान्।
समीक्ष्य निहताञ्ज्ञातीनवतस्थे महासुरः॥ ७

दृष्ट्वा तं तत्र निष्कुम्भं सर्वे ते त्रिदशोत्तमाः।
समेत्य सहिताः सर्वे द्रुतं तं पर्यवारयन्॥ ८

व्यवस्थितं तु निष्कुम्भं दृष्ट्वा त्रिदशसत्तमम्।
बभूवुर्बलवन्तो वै तस्यास्त्रबलतेजसा॥ ९

वृषपर्वा तु शैलाभं निष्कुम्भं समरे स्थितम्।
महेन्द्र इव धाराभिः शरवर्षैरवाकिरत्॥ १०

अचिन्तयित्वा तु शराञ्छरीरे पतितान् बहून।
स्थितश्च प्रमुखे श्रीमान् ससैन्यः स महाबलः॥ ११

सम्प्रहस्य महातेजा वृषपर्वाणमाहवे।
अभिदुद्राव वेगेन कम्पयन्निव मेदिनीम्॥ १२

तस्य त्वाधावमानस्य दीप्यमानस्य तेजसा।
बभूव रूपं दुर्धर्षं दीप्तस्येव विभावसोः॥ १३

रथं त्यक्त्वा महातेजाः सक्रोधः समपद्यत।
वृक्षमुत्पाटयामास महातालं महोच्छ्रयम्॥ १४

ततश्चिक्षेप तं वृक्षं निष्कुम्भो वृषपर्वणः।
तं गृहीत्वा महावृक्षं पाणिनैकेन दानवः॥ १५

विनद्य सुमहानादं भ्रामयित्वा च वीर्यवान्।
सगजान् सगजारोहान् सरथान् रथिनस्तथा॥ १६

जघान दानवस्तेन शाखिना त्रिदशांस्तदा।
तमन्तकमिव क्रुद्धं समरे प्राणहारिणम्॥ १७

वृषपर्वाणमासाद्य त्रिदशा विप्रदुद्रुवुः।
तमापतन्तं संक्रुद्धं त्रिदशानां भयावहम्॥ १८

आलोक्य धन्वी निष्कुम्भश्चुक्रोध च ननाद च।
स तत्र निशितैर्बाणैस्त्रिंशद्भिर्मर्मभेदिभिः॥ १९

निर्बिभेद महावीर्यो निष्कुम्भो दानवाधिपम्।
शरशक्तिभिरुग्राभिर्दैत्यानामधिपोऽप्यमुम्॥ २०

उस समय देवता उस युद्धस्थलमें खड़े भी न रह सके, फिर युद्ध करनेकी तो बात ही क्या है? वृषपर्वाके बाणोंसे विदीर्ण होकर सब-के-सब वहाँसे भाग चले॥ ६॥ वहाँ मृत्युके वशमें पड़कर यमराजके अधीन हुए अपने मारे गये भाई-बन्धुओंको देखकर महान् असुर वृषपर्वा वहीं ठहर गया॥ ७॥ निष्कुम्भ नामक विश्वेदेवको वहाँ उपस्थित देख वे सभी देवशिरोमणि एकत्र होकर एक साथ वहाँ आये और सब-के-सब तुरंत उन्हें घेरकर खड़े हो गये॥ ८॥ देवश्रेष्ठ निष्कुम्भको वहाँ डटा हुआ देख उनके अस्त्रबल और तेजसे सभी देवता सबल हो गये॥ ९॥ पर्वताकार निष्कुम्भको समराङ्गणमें खड़ा देख वृषपर्वा उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा, ठीक उसी तरह जैसे देवराज इन्द्र जलकी धाराओंसे पर्वतको आच्छादित करते हैं॥ १०॥ अपने शरीरपर पड़े हुए उन बहुसंख्यक बाणोंकी कोई परवा न करके महाबली श्रीमान् निष्कुम्भ युद्धके मुहानेपर सेनासहित डटे रहे॥ ११॥ उन महातेजस्वी विश्वेदेवने युद्धक्षेत्रमें हँसकर पृथ्वीको कम्पित करते हुए-से बड़े वेगसे वृषपर्वापर आक्रमण किया। धावा करते समय वे तेजसे दीप्तिमान् हो रहे थे। उस समय उनका रूप प्रज्वलित अग्निके समान दुर्धर्ष हो रहा था॥ १२-१३॥ वे महातेजस्वी निष्कुम्भ रथको त्यागकर अत्यन्त कुपित हो उठे; उन्होंने एक बहुत ऊँचे और विशाल तालवृक्षको उखाड़ लिया॥ १४॥ तत्पश्चात् निष्कुम्भने वृषपर्वापर उस वृक्षको दे मारा; किंतु उस पराक्रमी दानवने एक ही हाथसे उस विशाल वृक्षको पकड़कर बड़े जोरसे सिंहनाद किया और उसे घुमाकर उसके द्वारा सवारोंसहित हाथियों, रथोंसहित रथियों एवं बहुत-से देवताओंको मार गिराया। समरभूमिमें कुपित हुए प्राणहारी कालके समान वृषपर्वासे पाला पड़नेपर सब देवता भाग खड़े हुए। देवताओंको भय देनेवाले उस कुपित दानवको आक्रमण करते देख निष्कुम्भको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने धनुष लेकर बड़े जोरसे सिंहनाद किया। उन महापराक्रमी निष्कुम्भने तेज धारवाले तीस मर्मभेदी बाणोंद्वारा दानवराज वृषपर्वाको घायल कर दिया। तब दैत्यराज वृषपर्वाने भी भयंकर बाणों और शक्तियोंद्वारा निष्कुम्भको घायल कर दिया। घायल होनेपर वे रणभूमिमें खड़े-खड़े बहुत रक्त बहाने लगे॥ १५—२०॥

विद्धः स रणमध्यस्थो रुधिरं प्रास्रवद् बहु।
उद्विग्ना मुक्तकेशास्ते भग्नदर्पाः पराजिताः॥ २१
श्वसन्तो दुद्रुवुः सर्वे भयाद् वै वृषपर्वणः।
अन्योन्यं प्रममन्थुस्ते त्रासिता वृषपर्वणा॥ २२
पृष्ठवक्त्राः सुसंविग्नाः प्रेक्षमाणा मुहुर्मुहुः।
त्यक्तप्रहरणाः सर्वे कृतास्ते वृषपर्वणा॥ २३
संग्रामे युद्धशौण्डेन तदा निष्कुम्भसैनिकाः।
तत्रैव तु महावीर्यः प्रह्लादः कालमाहवे॥ २४
योधयामास रक्ताक्षो हिरण्यकशिपोः सुतः।
तस्य दानववीरस्य युद्धकाले जयक्रियाः॥ २५
चकार त्वरया युक्तो भार्गवो विजयावहाः।
हुताशनं तर्पयतो ब्राह्मणांश्च नमस्यतः॥ २६
आज्यगन्धप्रतिवहो मारुतः सुरभिर्ववौ।
स्त्रजश्च विविधाश्चित्रा जयार्थमभिमन्त्रिताः॥ २७
प्रह्लादस्य शुभे मूर्धन्याबबन्धोशनाः स्वयम्।
कालेन सह संग्रामे प्रयुद्धस्य महात्मनः॥ २८
प्रह्लादस्यातिवीर्यस्य शान्तिं चक्रे स भार्गवः।
दश शिष्यसहस्त्राणि भार्गवस्य महात्मनः॥ २९
यानि दानववीराणां जेपुः शान्तिमनुत्तमाम्।
अथर्वाणमथो दिव्यं ब्रह्मसंस्तवचोदितम्॥ ३०
रणप्रवेशसदृशं कर्म वैजयिकं कृतम्।
ततः सर्वास्त्रविदुषः समरेष्वनिवर्तिनः॥ ३१
विद्यया तपसा युक्ताः कृतस्वस्त्ययनक्रियाः।
धनुर्हस्ताः कवचिनो वेगेनाप्लुत्य दानवाः।
बलिमभ्यर्च्य राजानं प्रह्लादं पर्यवारयन्॥ ३२
आस्थाय परमं दिव्यं रथं पररथारुजम्।
नानाप्रहरणाकीर्णं सवज्रमिव पर्वतम्॥ ३३
तद् बभूव मुहूर्तेन क्ष्वेडितास्फोटिताकुलम्।
मेरोः शिखरमाकीर्णं द्यौरिवाम्बुधरागमे॥ ३४
स्त्रजः पद्मपलाशानामामुच्य सुविभूषिताः।
बान्धवान् सम्परित्यज्य निपतन्ति रणप्रियाः॥ ३५

फिर तो वृषपर्वाके भयसे उद्विग्न हो केश खोले दर्पहीन एवं पराजित हुए समस्त देवता लंबी साँस खींचते हुए वहाँसे भाग चले। वृषपर्वासे डराये हुए देवता भागते समय एक-दूसरेको कुचल डालते थे और भयभीत हो पीछेकी ओर मुँह फेरकर बारंबार देखते जाते थे। युद्धकुशल वृषपर्वाने उस समय संग्राममें निष्कुम्भके उन सब सैनिकोंको हथियार नीचे डालनेके लिये विवश कर दिया था। उसी युद्धमें लाल नेत्रवाले हिरण्यकशिपुकुमार महापराक्रमी प्रह्लाद कालके साथ युद्ध कर रहे थे। उन दानववीर प्रह्लादके लिये युद्धकालमें विजय दिलानेवाली सारी क्रियाएँ शुक्राचार्यने बड़ी शीघ्रताके साथ सम्पन्न की थीं। उन्होंने अग्निको घीकी आहुतिसे तृप्त किया और ब्राह्मणोंको मस्तक झुकाया; उस समय उनके होमे हुए घृतकी सुगन्ध लेकर मन्द-मन्द सुगन्धित वायु चल रही थी। साक्षात् शुक्राचार्यने प्रह्लादके सुन्दर मस्तकपर विजयके लिये अभिमन्त्रित किये हुए नाना प्रकारके विचित्र पुष्पहार बाँधे थे। युद्धपरायण, अतिशय पराक्रमी, महात्मा प्रह्लादके कालके साथ होनेवाले संग्राममें भृगुनन्दन शुक्राचार्यने शान्तिकर्मका सम्पादन किया था। महात्मा शुक्राचार्यके दस हजार शिष्य थे, जो दानववीरोंके लिये परम उत्तम सुख-शान्तिकी प्राप्तिके निमित्त जप करते थे। उन्होंने दानवोंके लिये अथर्ववेदके अनुसार परमात्माकी स्तुतिसे युक्त और रणप्रवेशके अनुरूप विजयसाधक दिव्य कर्मका भी अनुष्ठान किया था। तदनन्तर सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता, युद्धसे कभी पीछे न हटनेवाले, विद्वान्, तपस्वी, स्वस्तिवाचन आदि माङ्गलिक कृत्यसे सम्पन्न, धनुर्धर तथा कवचधारी दानवोंने बड़े वेगसे उछलकर राजा बलिका सम्मान करते हुए प्रह्लादको चारों ओरसे घेर लिया॥ २१—३२॥ शत्रुओंके रथको तोड़ डालनेमें समर्थ एक परम उत्तम दिव्य रथ नाना प्रकारके आयुधोंसे भरा हुआ था जो वज्रयुक्त पर्वतके समान जान पड़ता था। प्रह्लाद उसी रथपर आरूढ़ होकर आये थे॥ ३३॥ जैसे वर्षाकालमें आकाश मेघोंकी घटासे घिर जाता है उसी प्रकार मेरुपर्वतका वह शिखर दो ही घड़ीमें दैत्योंके गर्जन-तर्जन तथा ताल ठोंकनेकी ध्वनिसे व्याप्त हो उठा॥ ३४॥ युद्धप्रेमी दैत्य कमलदलोंकी मालाएँ पहनकर वस्त्राभूषणोंसे भलीभाँति विभूषित हो बन्धु-बान्धवोंको त्यागकर वहाँ टूटे पड़ते थे॥ ३५॥

महायुधधरः श्रीमाञ्छुभचर्मधरः प्रभुः।
सतनुत्रशिरस्त्राणो धन्वी परमदुर्जयः॥ ३६
सिंहशार्दूलदर्पाणां गदतां किङ्किणीकिनाम्।
दैत्यानां च सहस्त्राणि प्रयान्त्यग्रे महारणे॥ ३७
सैन्यपक्षहितास्तस्य रथाः परमदुर्जयाः।
सप्ततिर्वै सहस्त्राणि गजास्तावन्त एव च॥ ३८
मध्ये व्यूहोदरस्थस्तु कालनेमिर्महासुरः।
धनुर्विस्फारयन् घोरं ननाद प्रजहास च॥ ३९
तस्मिञ्छतसहस्त्राणि पुरो यान्ति महाद्युतेः।
दानवानां बलवतां शक्रप्रतिमतेजसाम्॥ ४०
स समं वर्तमानस्तु पक्षाभ्यां विस्तृतो महान्।
अभवद् दानवव्यूहो दुर्भेद्यः सर्वदैवतैः॥ ४१
षष्टी रथसहस्त्राणि दानवानां धनुर्भृताम्।
नानाप्रहरणानां च परिमाणं न विद्यते॥ ४२
गदापरिघनिस्त्रिंशैः शूलमुद्गरपट्टिशैः।
प्रगृहीतैर्व्यराजन्त दानवाः पर्वतोपमाः॥ ४३
गर्जन्तो निनदन्तश्च विक्रोशन्तः पुनः पुनः।
अयुध्यन्त महावीर्याः समरेष्वनिवर्तिनः॥ ४४
तत्र तूर्यसहस्त्राणि भेरीशङ्खरवाणि च।
हयानां च गजानां च गर्जतामतिवेगिनाम्॥ ४५
दुन्दुभीनां च निर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः।
शुश्रुवे शङ्खशब्दश्च पटहानां च निःस्वनः॥ ४६
तेन शङ्खनिनादेन भेरीतूर्यरवेण च।
निर्घोषेण रथानां च क्रोशतीव नभस्तलम्॥ ४७
सागरप्रतिमौघेन बलेन महता वृतः।
प्रह्लादोऽयुध्यत रणे कालान्तकयमोपमः॥ ४८
तस्य नादेन रौद्रेण घोरेणाप्रतिमौजसः।
विनेदुः सर्वभूतानि त्रैलोक्यनिकृतैः स्वनैः॥ ४९
अन्तरिक्षात् पपातोल्का वायुश्च परुषो ववौ।
वमन्त्यः पावकं घोरं शिवाश्चैव ववाशिरे॥ ५०
प्रह्लादस्तु महावीर्यः प्रहसन् युद्धदुर्मदः।
उवाच वचनं श्रीमांस्तत्कालक्षममुत्तमम्॥ ५१

महान् आयुध, सुन्दर ढाल, कवच और शिरस्त्राण (टोप) धारण करके हाथमें धनुष लिये प्रभावशाली श्रीमान् प्रह्लाद शत्रुओंके लिये अत्यन्त दुर्जय हो गये थे॥ ३६॥ उनके आगे उस महासमरमें सिंह और व्याघ्रके समान बलाभिमानी तथा कमरमें क्षुद्र घण्टिकाओंसे युक्त करधनी बाँधनेवाले सहस्रों दैत्य गर्जना करते हुए चलते थे॥ ३७॥ उनकी सेनामें परम दुर्जय सत्तर हजार रथ थे। हाथियोंकी संख्या भी उतनी ही थी॥ ३८॥ सेनाके मध्यभागमें जो व्यूहका उदर था, उसमें स्थित हुआ कालनेमि नामक महान् असुर अपने भयंकर धनुषको खींचता हुआ गरजता और अट्टहास करता था॥ ३९॥ उस सैन्यव्यूहमें महातेजस्वी कालनेमिके आगे इन्द्रतुल्य तेजस्वी एक लाख बलवान् दानव चलते थे॥ ४०॥ समभावसे विद्यमान तथा दोनों पक्षोंसे महान् विस्तृत वह दानवव्यूह समस्त देवताओंके लिये दुर्भेद्य हो गया था॥ ४१॥ धनुर्धर दानवोंके साठ हजार रथ वहाँ शोभा पाते थे। नाना प्रकारके आयुधोंकी कोई गणना ही नहीं थी॥ ४२॥ पर्वताकार दानव अपने हाथोंमें गदा, परिघ, खड्ग, शूल, मुद्गर और पट्टिश लेकर बड़ी शोभा पा रहे थे॥ ४३॥ वे गर्जते, सिंहनाद करते और बारम्बार चिल्लाते थे। उनका पराक्रम महान् था। वे समरभूमिसे पीछे हटनेवाले नहीं थे। अतः उत्साहपूर्वक युद्धमें लगे रहते थे॥ ४४॥ वहाँ सहस्रों तुरहियाँ बजने लगीं, भेरियों और शङ्खोंकी ध्वनि होने लगी। अत्यन्त वेगशाली घोड़ों और हाथियोंके गर्जनका शब्द होने लगा। इन सबके साथ दुन्दुभियोंका गम्भीर घोष मेघगर्जनाके समान जान पड़ता था। शङ्खनाद और पटहोंकी ध्वनि विशेषरूपसे सुनायी पड़ती थी॥ ४५-४६॥ उस शङ्खनादसे, भेरी और तुरहीके शब्दसे और रथोंकी घरघराहटसे वहाँका आकाश कोलाहल करता-सा प्रतीत होता था॥ ४७॥ रणभूमिमें उस समुद्रतुल्य विशाल सेनासे घिरे हुए प्रह्लाद काल, अन्तक और यमके समान युद्ध कर रहे थे॥ ४८॥ अप्रतिम तेजस्वी प्रह्लादके घोर एवं भयंकर नादसे तथा तीनों लोकोंको तिरस्कृत करनेवाली गर्जनाओंसे भयभीत हो समस्त प्राणी आर्तनाद करने लगे॥ ४९॥ अन्तरिक्षसे उल्कापात होने लगा। प्रचण्ड वायु चलने लगी तथा गीदड़ियाँ घोर आग उगलती हुई क्रन्दन करने लगीं॥ ५०॥ महापराक्रमी रणदुर्मद श्रीमान् प्रह्लाद वहाँ जोर-जोरसे हँसते हुए उस समयके योग्य यह उत्तम वचन बोले—॥ ५१॥

अद्याहं दर्शयिष्यामि स्वबाहुबलमूर्जितम्।
अद्य मद्बाणनिहतान् देवान् द्रक्ष्यथ संयुगे॥ ५२

बान्धवा निहता येषां त्रिदशैरिह संयुगे।
अद्य निर्वर्तयिष्यन्ति शत्रुमांसानि दानवाः॥ ५३

इममद्य समुद्धूतं रेणुं समरमूर्धनि।
अहं तु शमयिष्यामि शत्रुशोणितविस्रवैः॥ ५४

तिमिरौघहतार्कं तु सैन्यरेण्वरुणीकृतम्।
आकाशं सम्पतिष्यन्ति खद्योता इव मे शराः॥ ५५

हृष्टाः सम्परिमोदध्वं देवेभ्यस्त्यज्यतां भयम्।
अद्याहं निहनिष्यामि कालेन्द्रं धनुषा रणे॥ ५६

तोषयिष्यामि राजानं बलिं बलवतां वरम्।
त्रिदशान् सगणान् हत्वा रणे चान्तकमन्तिकात्॥ ५७

अक्षयाः सन्ति मे तूणाः शराश्चाशीविषोपमाः।
स्थातुं मे पुरतः शक्ताः के रणे जीवितेप्सवः॥ ५८

हत्वा रिपुगणांस्तुष्टिरनुरागश्च राजसु।
हतस्य त्रिदिवे वासो नास्ति युद्धसमा गतिः॥ ५९

तद् भयं पृष्ठतः कृत्वा रणे दानवसत्तमाः।
निहत्येमानरीन् सर्वान् मोदध्वं नन्दने वने॥ ६०

एवमुक्त्वा महत्सैन्यं प्रह्लादो दानवोत्तमः।
कालसैन्यं महारौद्रं तरसामर्दतासुरः॥ ६१

सर्वास्त्रविद्वान् वीरश्च नित्यं चाप्यपराजितः।
युद्धे ह्यभिमुखो नित्यं स्वबाहुबलदर्पितः॥ ६२

षष्टिं रथसहस्राणि विविधायुधधारिणाम्।
प्रह्लादस्यातिवीर्यस्य ते तस्य तनया निजाः॥ ६३

तैस्तु क्रतुशतैरिष्टं विपुलैराप्तदक्षिणैः।
क्षान्ता धर्मपरा नित्यं सत्यव्रतपरायणाः॥ ६४

दातारः प्रियवक्तारो वक्तारः शास्त्रवस्तुषु।
स्वदारनिरता दान्ता ब्रह्मण्याः सत्यसङ्गराः॥ ६५

'वीरो! आज मैं अपने बढ़े हुए बाहुबलका दर्शन कराऊँगा। आज युद्धस्थलमें तुम सब लोग मेरे द्वारा मारे गये देवताओंको प्रत्यक्ष देखोगे॥ ५२॥ देवताओंने रणभूमिमें जिनके भाई-बन्धुओंका वध किया है, वे दानव आज अपने उन बन्धुओंके उद्देश्यसे शत्रुओंके मांस अर्पित करेंगे॥ ५३॥ युद्धके मुहानेपर जो यह धूल उड़ रही है, इसे आज मैं शत्रुओंके रक्तका स्रोत बहाकर शान्त करूँगा॥ ५४॥ जहाँ अँधेरेके कारण सूर्यका दर्शन नहीं हो रहा है, जो सेनाकी धूलसे अरुण रंगका हो गया है, उस आकाशमें आज मेरे चमकीले बाण जुगुनुओंके समान उड़ेंगे॥ ५५॥ अब तुमलोग हर्षपूर्वक आनन्द मनाओ। देवताओंसे होनेवाले भयको त्याग दो। आज मैं रणभूमिमें अपने धनुषसे कालके स्वामी यमराजका वध कर डालूँगा॥ ५६॥ समरभूमिमें सेवकगणोंसहित देवताओंका और निकटसे यमराजका भी वध करके आज मैं बलवानोंमें श्रेष्ठ राजा बलिको भी संतुष्ट करूँगा॥ ५७॥ मेरे तरकस अक्षय हैं, उनमें बाणोंकी कभी कमी नहीं होती है तथा मेरे बाण विषधर सर्पोंके समान भयंकर हैं। जो अपने जीवनकी इच्छा रखनेवाले हैं, ऐसे कौन योद्धा रणभूमिमें मेरे सामने ठहर सकते हैं?॥ ५८॥ शत्रुओंका वध करनेसे मनमें संतोष होगा, राजाओंमें अनुराग उत्पन्न होगा और यदि युद्धमें वीर पुरुष स्वयं ही मारा गया तो उसका स्वर्गलोकमें निवास होगा; अतः युद्धके समान दूसरी कोई गति नहीं है॥ ५९॥ अतः दानवशिरोमणियो! रणभूमिमें भयको पीछे करके इन समस्त शत्रुओंका वध करो और नन्दनवनमें आनन्द भोगो'॥ ६०॥ दानवशिरोमणि असुर प्रह्लाद अपनी विशाल सेनाके सैनिकोंसे उपर्युक्त बात कहकर कालकी महाभयंकर सेनाका वेगपूर्वक मर्दन करने लगे॥ ६१॥ वे सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता, वीर तथा नित्यविजयी थे। कभी उनकी पराजय नहीं होती थी। उन्हें अपने बाहुबलपर गर्व था; अतः वे युद्धमें सदा सामने रहकर लड़ते थे॥ ६२॥ नाना प्रकारके आयुध धारण करनेवाले साठ हजार रथी तथा अतिशय वीर्यशाली प्रह्लादके वे पूर्वोक्त औरस पुत्र सभी उस युद्धमें सम्मिलित थे॥ ६३॥ उन सबने पर्याप्त दक्षिणावाले सौ विशाल यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। वे सभी क्षमाशील, धर्मपरायण तथा सदैव सत्यव्रतका पालन करनेवाले थे॥ ६४॥ दानी, प्रियभाषी, शास्त्रीय विषयोंके वक्ता, अपनी ही स्त्रीमें अनुराग रखनेवाले, जितेन्द्रिय, ब्राह्मणभक्त तथा सत्यप्रतिज्ञ थे॥ ६५॥

यष्टारः क्रतुभिर्नित्यं नित्यं चाध्ययने रताः।
इष्वस्त्रकुशलाः सर्वे बहुशो दृढविक्रमाः॥ ६६

मत्तवारणविक्रान्ताः शत्रुसैन्यप्रमर्दकाः।
दारयन्तः पदाक्षेपैः सुघोरान् वातरेचकान्॥ ६७

युद्धोत्सुकधिया नित्यं क्रोधरञ्जितलोचनाः।
संदष्टौष्ठपुटा दैत्या विनेदुर्भीमविक्रमाः।
क्ष्वेडितास्फोटितरवैरन्योन्यं समहर्षयन्॥ ६८

वेणुशङ्खरवैश्चैव सिंहनादैश्च पुष्कलैः।
आप्लुत्याप्लुत्य सहसा रणे वव्रुरनेकशः॥ ६९

तालमात्राणि चापानि विकृष्य सुमहाबलाः।
अमृष्यमाणाः सहसा दानवाश्चापपाणयः॥ ७०

सुरासुरैरप्यजितं योधयन्ति रणेऽन्तकम्।
प्रतप्तहेमाभरणाः सर्वे ते श्वेतवाससः॥ ७१

दानवा मानिनः सर्वे सर्वे स्वर्गाभिकाङ्क्षिणः।
सर्वे जयैषिणो वीराः सर्वे शत्रुवधोद्यताः॥ ७२

शुशुभे सा चमूर्दीप्ता पताकाध्वजमालिनी।
गजाश्वरथसम्बाधा स्वर्गमार्गाभिकाङ्क्षिणी॥ ७३

ततः कालः सुनिर्यातो भीमो भीमपराक्रमः।
निनदन् सुमहाकायो व्याधिभिर्बहुभिर्वृतः॥ ७४

ददर्श महतीं सेनां दानवानां बलीयसाम्।
अभिसंजातदर्पाणां कालं समभिगर्जताम्॥ ७५

तदायान्तं तदानीकं दानवानां तरस्विनाम्।
प्रतिलोमं चकाराशु व्याधिभिः सहितोऽन्तकः॥ ७६

प्रविश्य ध्वजिनीं चैषां पातयामास दानवान्।
कालो रुधिररक्ताक्षः स्वेनानीकेन संवृतः॥ ७७

प्रह्लादबलमत्युग्रं प्रह्लादं च महाबलम्।
आजघान रणे कालो दण्डमुद्गरपट्टिशैः॥ ७८

वे सदा यज्ञोंका अनुष्ठान करते और प्रतिदिन वेदशास्त्रोंके स्वाध्यायमें लगे रहते थे। सब-के-सब धनुर्वेदमें कुशल तथा बारम्बार सुदृढ़ पराक्रमका परिचय देनेवाले थे॥ ६६॥ उनका पराक्रम मतवाले हाथियोंके समान था। वे शत्रुसेनाका मर्दन करनेवाले थे तथा अपने पैरोंके आघातसे घोर वृक्ष आदिको भी विदीर्ण कर डालते थे॥ ६७॥ उनकी चित्तवृत्ति सदा युद्धके लिये उत्सुक रहती थी, इसलिये उनकी आँखें क्रोधसे लाल बनी रहती थीं। अपने ओठको दाँतोंतले दबाये हुए वे भयंकर पराक्रमी दैत्य वहाँ जोर-जोरसे गर्जना करते और सिंहनाद तथा ताल ठोंकनेकी आवाजसे एक-दूसरेके हर्ष बढ़ाते थे॥ ६८॥ वेणु और शङ्खकी ध्वनि तथा पुष्कल सिंहनादके साथ सहसा उछल-उछलकर वे बहुसंख्यक दैत्य युद्धमें आने और हथियार ग्रहण करने लगे॥ ६९॥ वे महाबली दानव हाथमें धनुष लिये अमर्षमें भरे हुए थे। वे तालके बराबर लंबे धनुषोंको खींचकर देवताओं और असुरोंसे भी पराजित न होनेवाले कालके साथ समराङ्गणमें युद्ध करने लगे। सभी दानव तपाये हुए सुवर्णके आभूषण पहने हुए थे। सबके अङ्गोंमें श्वेत वस्त्र शोभा पा रहे थे। सब-के-सब मानी थे और सभी स्वर्गलोककी अभिलाषा रखते थे। शत्रुवधके लिये उद्यत हुए वे सभी वीर अपने पक्षकी विजय चाहते थे॥ ७०—७२॥ ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी हुई तथा स्वर्गलोकके मार्गपर जानेकी इच्छा रखनेवाली वह दीप्तिशालिनी दैत्यसेना बड़ी शोभा पा रही थी॥ ७३॥ तदनन्तर भीषण पराक्रमी भयंकर कालदेवता बहुत-सी व्याधियोंसे घिरे हुए युद्धके लिये निकले। उनकी काया विशाल थी और वे जोर-जोरसे सिंहनाद कर रहे थे॥ ७४॥ उन्होंने अपने सामने गर्जते और अभिमानमें भरे हुए महाबली दानवोंकी उस विशाल सेनाको देखा॥ ७५॥ वेगशाली दानवोंकी उस आती हुई सेनाको व्याधियोंसहित कालने तुरंत प्रतिकूल दिशामें ठेल दिया॥ ७६॥ तत्पश्चात् अपनी सेनासे घिरे हुए लाल नेत्रवाले कालदेव दानवोंकी सेनामें प्रवेश करके उन्हें धराशायी करने लगे॥ ७७॥ उस युद्धमें कालदेव दण्ड, मुद्गर और पट्टिश आदि अस्त्रोंद्वारा महाबली प्रह्लाद तथा उनकी अत्यन्त भयंकर सेनापर घातक प्रहार करने लगे॥ ७८॥

शरशक्त्यृष्टिखड्गांश्च शूलानि मुसलानि च।
गदाश्च परिघाश्चैव विचित्राश्च परश्वधाः॥ ७९

धनूंषि च विचित्राणि शतघ्नीश्च स्थिरायसीः।
पात्यन्ते व्याधिभिर्युद्धे दानवानां चमूमुखे॥ ८०

बहवो व्याधयो युद्धे बहूनसुरपुङ्गवान्।
व्याधीनपि च दैत्यौघा निजघ्नुर्बहवो बहून्॥ ८१

शूलैः प्रमथिताः केचित् केचिच्छिन्नाः परश्वधैः।
परिघैराहताः केचित् केचिच्च परमायुधैः॥ ८२

केचिद् द्विधा कृताः खड्गैः स्फुरन्तः पतिता भुवि।
व्याधयो दानवैरेव नानाशस्त्रैर्विदारिताः॥ ८३

ते चापि व्याधिभिः सर्वे विविधैरायुधोत्तमैः।
खड्गैश्च मुसलैस्तीक्ष्णैः प्रासतोमरमुद्गरैः।
भिन्नाश्च दानवाः सर्वे निकृत्ताश्च परश्वधैः॥ ८४

मुद्गरैः पट्टिशैश्चैव व्याधिभिश्च महाबलैः।
कृत्वा शस्त्रैरनेकैश्च मुष्टिभिश्च हता भृशम्॥ ८५

वेमुः शोणितमन्योन्यं विष्टब्धदशनेक्षणाः।
आर्तस्वरं च नदतां सिंहनादं च गर्जताम्॥ ८६

बभूव तुमुलः शब्दः संग्रामे लोमहर्षणे।
मुष्टिभिश्चोत्तमाङ्गानि तलैर्गात्राणि चासकृत्॥ ८७

सादितानि महीं जग्मुस्तिष्ठतामेव संयुगे।
अस्त्रफेना ध्वजावर्ता च्छिन्नबाहुमहोरगा॥ ८८

शूलशक्तिमहामत्स्या चापग्राहसमाकुला।
रथेषोपलसम्बाधा ध्वजद्रुमलतावृता॥ ८९

सशब्दघोषविस्तारा लोहितोदाभवन्नदी।
स्वधनुःशक्रधनुषौ काञ्चनाङ्गदविद्युतौ॥ ९०

कालके सैनिक व्याधियोंने रणक्षेत्रमें बाण, शक्ति, ऋष्टि, खड्ग, शूल, मुसल, गदा, परिघ, विचित्र फरसे, भाँति-भाँतिके धनुष तथा लोहेकी बनी हुई सुदृढ़ शतघ्नी आदि बहुत-से अस्त्र-शस्त्र दानव-सेनाके ऊपर गिराये॥ ७९-८०॥ उस युद्धमें बहुसंख्यक व्याधियोंने बहुत-से असुरशिरोमणियोंका वध किया और बहुत-से दैत्योंने भी बहुसंख्यक व्याधियोंका विनाश कर डाला॥ ८१॥ कितने ही योद्धा शूलोंसे मथ डाले गये। कितनोंके फरसोंसे टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। कोई परिघोंसे आहत हुए तो कोई दूसरे-दूसरे उत्तम आयुधोंसे॥ ८२॥ किन्हींके खड्गोंद्वारा दो टुकड़े कर दिये गये और वे पृथ्वीपर गिरकर छटपटाने लगे। दानवोंने नाना प्रकारके शस्त्रोंद्वारा व्याधियोंको विदीर्ण कर डाला॥ ८३॥ व्याधियोंने भी नाना प्रकारके उत्तम आयुधों, खड्गों, तीखी धारवाले मुसलों, प्रास, तोमर और मुद्गरों तथा फरसोंसे समस्त दानवोंको छिन्न-भिन्न करके काट डाला॥ ८४॥ महाबली व्याधियोंने मुद्गरों, पट्टिशों तथा अनेक प्रकारके शस्त्रोंद्वारा दैत्योंके टुकड़े-टुकड़े करके बहुतोंको मुक्कोंसे भी मार गिराया॥ ८५॥ एक-दूसरेके द्वारा दाँतोंके तोड़ दिये जानेपर और आँखोंके फोड़ दिये जानेपर वे सब योद्धा मुँहसे रक्त वमन करने लगे। उस रोमाञ्चकारी संग्राममें आर्तस्वरसे कराहते और सिंहोंके समान गर्जते हुए योद्धाओंका शब्द बड़ा भयंकर प्रतीत होता था। युद्धस्थलमें खड़े हुए योद्धाओंके मस्तक तथा दूसरे-दूसरे अङ्ग बारंबार मुक्कों और तमाचोंकी मार पड़नेसे कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ते थे। उस समय वहाँ भारी कोलाहलके साथ खूनकी विस्तृत नदी बह चली। आँसू ही उसमें फेन थे। ध्वजोंकी भँवर उठ रही थी। कटी हुई बाँहें बड़े-बड़े सर्पोंके समान जान पड़ती थीं। शूल और शक्ति नामक अस्त्र महान् मत्स्य-से प्रतीत होते थे। धनुषरूपी ग्राहोंसे वह भरी हुई थी। रथोंके ईषादण्डरूपी प्रस्तरखण्डोंसे वह नदी व्याप्त थी तथा ध्वजरूपी वृक्षों और लताओंसे आवृत दिखायी देती थी।

तौ दैत्यकालजलदौ शरधारां व्यमुञ्चताम्।
तौ महामेघसंकाशौ रथनागगतौ तदा॥ ९१

बभूवतुरभिक्रुद्धौ साम्बुगर्भाविवाम्बुदौ।
तप्तकाञ्चनसंनाहौ दिव्यहारविभूषितौ॥ ९२

तौ विरेजतुरायस्तौ सूर्यवैश्वानरोपमौ।
तौ महाचलसंकाशावन्योन्यस्य चमूमुखे॥ ९३

शक्राशनिसमस्पर्शैर्बाणैर्जघ्नतुराहवे।
परस्परं समासाद्य तयोर्युधि दुरासदे॥ ९४

नाशंसन्त तदा योधा जीवितान्यपि संयुगे।
शरैर्विभिन्नसर्वाङ्गा युधि प्रक्षीणबान्धवाः।
निपेतुर्योधमुख्यास्तु रुधिरोक्षितवक्षसः॥ ९५

पतितैर्निष्पतद्भिश्च पात्यमानैश्च संयुगे।
बभूव भूः समाकीर्णा योधैरुद्गतजीवितैः॥ ९६

संगृह्णतोः शरान् घोरान्न च संदधतोस्तयोः।
अन्तरं ददृशे कश्चित् प्रयत्नादपि संयुगे॥ ९७

लघुत्वाच्च महाबाहू युद्धशौण्डौ महाबलौ।
मण्डलीभूतधनुषौ सकृदेव बभूवतुः॥ ९८

प्रह्लादस्य च बाणौघैर्दुद्रावान्तकवाहिनी।
उह्यमानं बलवता वायुनेवाभ्रमण्डलम्॥ ९९

हतदर्पं तु विज्ञाय प्रह्लादः कालमाहवे।
अपयातं च समरे द्विषन्तं सम्प्रतर्क्य तम्॥ १००

मत्वा वशगतं चैव प्रह्लादो युद्धदुर्मदः।
तत्रैवान्यां चमूं भूयः सम्ममर्द महासुरः॥ १०१

कालप्रह्लादयोर्युद्धमभवद् यादृशं पुरा।
तादृशं सर्वलोकेषु न भूतं न भविष्यति॥ १०२

एवमद्भुतवीर्यौजा महारणकृतव्रणः।
प्रह्लादस्त्वथ वृद्धोऽत्र कालस्त्वपसृतो रणात्॥ १०३

दैत्य प्रह्लाद और कालदेवता दोनों मेघके समान होकर बाणरूपी जलकी धारा गिरा रहे थे। दोनोंके अपने धनुष ही इन्द्रधनुषकी प्रतीति कराते थे और उनकी बाँहोंमें जो सोनेके बाजूबन्द थे, वे विद्युत्‌के समान प्रकाशित हो रहे थे। क्रमशः रथ और हाथीपर बैठे हुए वे दोनों योद्धा महान् मेघके समान जान पड़ते थे। दोनों ही एक-दूसरेके प्रति क्रोधसे भरे हुए थे और सजल जलधरोंके समान शोभा पाते थे। तपाये हुए सुवर्णमय कवच तथा दिव्य हारोंसे विभूषित वे दोनों विजयके लिये प्रयत्नशील योद्धा सूर्य और अग्निके समान शोभा पाते थे। महान् पर्वतके समान विशाल शरीरवाले वे दोनों वीर सेनाके मुहानेपर युद्धस्थलमें एक-दूसरेको इन्द्रके वज्रकी भाँति दुःसह बाणोंद्वारा चोट पहुँचाते थे। उन दोनोंके दुर्जय युद्धमें परस्पर भिड़े हुए योद्धा समरभूमिमें अपने जीवनकी भी आशा छोड़ बैठे थे। उनके सारे अङ्ग बाणोंसे क्षत-विक्षत हो गये थे। उनके बन्धु-बान्धव भी युद्धमें काम आ गये थे और उन प्रमुख योद्धाओंकी छाती खूनसे रँगी हुई थी। इस अवस्थामें वे धराशायी हो गये॥ ८६—९५॥ युद्धस्थलमें गिरे हुए, गिरते हुए और गिराये जाते हुए निष्प्राण योद्धाओंकी लाशोंसे भूमि पट गयी थी॥ ९६॥ उस युद्धस्थलमें घोर बाणोंको हाथमें लेते और धनुषपर रखते हुए उन दोनों वीरोंमें कितना अन्तर है, इस बातको कोई प्रयत्न करके भी न देख सका॥ ९७॥ वे दोनों महाबली, महाबाहु युद्धमें कुशल थे। उन दोनोंने फुर्तीके कारण एक साथ ही अपने धनुषोंको खींचकर मण्डलाकार बना लिया॥ ९८॥ प्रह्लादके बाणसमूहोंसे घायल होकर कालकी सेना भाग चली। ठीक उसी तरह जैसे बलवान् वायुके द्वारा ढोये जाते हुए मेघोंका समूह छिन्न-भिन्न हो जाता है॥ ९९॥ उस समराङ्गणमें कालका घमंड चूर हुआ जान तथा अपने उस शत्रुको युद्धसे भागा हुआ समझकर रणदुर्मद महान् असुर प्रह्लाद उन्हें पराजित मानकर पुनः दूसरी देवसेनाका मर्दन करने लगे॥ १००-१०१॥ पूर्वकालमें प्रह्लाद और कालका जैसा युद्ध हुआ था, वैसा युद्ध सम्पूर्ण लोकोंमें न तो कभी हुआ है और न होगा ही॥ १०२॥ इस प्रकार अद्भुत बल-पराक्रम और ओजसे सम्पन्न तथा उस महासमरमें घायल हुए प्रह्लाद उस युद्धमें बढ़ गये—विजयी हुए और कालदेवता रणक्षेत्रसे भाग गये॥ १०३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामने देवासुरयुद्धे कालप्रह्लादयुद्धे एकोनषष्टितमोऽध्यायः॥ ५९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारके प्रसङ्गमें देवासुरसंग्राममें काल और प्रह्लादका युद्धविषयक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५९॥

षष्टितमोऽध्यायः

कुबेर और अनुह्लादका भयंकर युद्ध

वैशम्पायन उवाच

धनाध्यक्षमनुह्लादः प्रह्लादस्यानुजो बली।
ससैन्यं योधयामास क्षोभयन् यक्षवाहिनीम्॥ १

महता च बलौघेन त्वनुह्लादोऽसुरोत्तमः।
अर्दयामास संक्रुद्धो धनाध्यक्षं प्रतापवान्॥ २

अमृष्यमाणस्त्रिदशानाहवस्थानुदायुधान्।
चकार कदनं घोरं धनुष्पाणिर्महासुरः॥ ३

आवर्त इव संजज्ञे बलस्य महतो महान्।
क्षुभितस्याप्रमेयस्य सागरस्येव सम्प्लवे॥ ४

त्रिदशानां शरीरैस्तु दानवानां च मेदिनी।
बभूव निचिता घोरैः पर्वतैरिव सम्प्लवे॥ ५

मेरुपृष्ठं तु रक्तेन रञ्जितं सम्प्रकाशते।
सर्वतो माधवे मासि पुष्पितैरिव किंशुकः॥ ६

हतैर्वीरैर्गजैरश्वैः प्रावर्तत महानदी।
शोणितौघा महाघोरा यमराष्ट्रविवर्धिनी॥ ७

शकृन्मेदोमहापङ्का सम्प्रकीर्णान्त्रशैवला।
छिन्नकायशिरोमीना अङ्गावयवशाद्वला॥ ८

गृध्रहंससमाकीर्णा केकिसारसनादिता।
वसाफेनसमाकीर्णा प्रोत्क्रुष्टस्तनितस्वरा॥ ९

तां कापुरुषदुस्तारां युद्धभूमौ महानदीम्।
नदीमिवातपापाये हंससंघोपशोभिताम्॥ १०

त्रिदशा दानवाश्चैव तेरुस्ते दुस्तरां नदीम्।
यथा पद्मरजोध्वस्तां नलिनीं गजयूथपाः॥ ११

ततः सृजन्तं बाणौघाननुह्लादं रथे स्थितम्।
ददर्श तरसा देवो निघ्नन्तं यक्षवाहिनीम्॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! प्रह्लादका बलवान् भाई अनुह्लाद यक्षसेनाको क्षोभमें डालता हुआ सेनासहित धनाध्यक्ष कुबेरके साथ युद्ध करने लगा॥ १॥ असुरोंमें श्रेष्ठ प्रतापी अनुह्लाद कुपित हो अपने विशाल सैन्यसमूहद्वारा कुबेरको पीड़ा देने लगा॥ २॥ वह महान् असुर युद्धस्थलमें खड़े हुए देवताओंको शस्त्र उठाये देख उन्हें सहन न कर सका। उसने हाथमें धनुष लेकर उनका घोर संहार मचाया॥ ३॥ जैसे प्रलयकालमें क्षुब्ध हुए अपार महासागरमें भँवरें उठने लगती हैं, उसी प्रकार उस क्षुब्ध हुई विशाल सेनामें आवर्त (मन्थन)-सा होने लगा॥ ४॥ देवताओं और दानवोंकी लाशोंसे वहाँकी धरती पट गयी, मानो प्रलयकालमें ढहे हुए भयंकर पर्वतोंसे आच्छादित हो गयी हो॥ ५॥ मेरुपर्वतकी वह घाटी रक्तसे रञ्जित होकर वैशाखमासमें सब ओरसे लाल फूलोंसे युक्त पलाशवृक्षकी भाँति प्रकाशित हो रही थी॥ ६॥ मारे गये वीरों, हाथियों और घोड़ोंसे वहाँ खूनकी एक महानदी बह चली, जिसमें जलके स्थानमें रक्तका स्रोत बह रहा था। वह महाघोर नदी यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाली थी॥ ७॥ उसमें विष्ठा और चरबी बड़ी भारी कीचड़के समान प्रतीत होती थी। सब ओर बिखरी हुई आँतें सेवार-सी जान पड़ती थीं। कटे हुए सिर और धड़ ही उस नदीके मत्स्य थे। अङ्गोंके अवयव ही घास थे॥ ८॥ गीधरूपी हंस वहाँ छा रहे थे। मोरों और सारसोंके कलरवोंसे वह मुखरित हो रही थी। वसारूपी फेन उसमें व्याप्त थे। चारों ओर मची हुई चीख-पुकार ही उसका कलकलनाद थी॥ ९॥ युद्धभूमिमें बहनेवाली वह महानदी कायरोंके लिये दुस्तर थी। ठीक वैसे ही जैसे वर्षा-ऋतुमें बढ़ी हुई नदीको पार करना किसीको भी कठिन हो जाता है। हंस आदि पक्षियोंके समुदाय उसकी शोभा बढ़ाते थे॥ १०॥ देवता और दानव उस दुस्तर नदीको उसी प्रकार पार कर गये जैसे कमलोंके परागसे धूसर वर्णवाली पुष्करिणीको गजयूथपति लाँघ जाते हैं॥ ११॥ रथपर बैठा हुआ अनुह्लाद बाणसमूहोंकी वर्षा करके यक्षसेनाका वेगपूर्वक विनाश कर रहा था। यह बात स्वयं कुबेरने देखी॥ १२॥

क्रुद्धस्ततो दैत्यबलं सूदयामास वित्तपः।
विक्षिपन्निव खे वायुर्महाभ्रपटलं बलात्॥ १३
समीक्ष्य तुमुलं युद्धमनुह्लादश्च वीर्यवान्।
रथेनादित्यवर्णेन कुबेरमभिदुद्रुवे॥ १४
स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठो विकृष्य रणमूर्धनि।
उत्ससर्ज शितान् बाणान् वित्तेशस्य महात्मनः॥ १५
कुबेरं प्राप्य ते बाणा निर्भिद्य सुसमाहिताः।
अपरान् पृष्ठतो जघ्नुर्व्यासक्तान् यक्षराक्षसान्॥ १६
देवः शरैरभिहतो निशितैर्ज्वलनोपमैः।
अनुह्लादं प्रत्युदियात् संक्रुद्धः परमाहवे॥ १७
ततो वैश्रवणो राजा क्रुद्धो यक्षगणैः सह।
ववर्ष शरवर्षाणि दानवं प्रति वीर्यवान्॥ १८
तद्यथा शारदं वर्षं गोवृषः शीघ्रमागतम्।
अपारयन् वारयितुं प्रतिगृह्णन् निमीलितः॥ १९
एवमेव कुबेरस्य शरवर्षं महासुरः।
निमीलिताक्षः सहसा दैत्यः सहति दारुणम्॥ २०
रोषितः शरवर्षेण धनदेन महासुरः।
इन्द्रकेतुप्रतीकाशमभीतोऽपश्यत द्रुमम्॥ २१
प्रवृद्धशाखाविटपं तरुणाङ्कुरपल्लवम्।
उत्पाट्य कुपितो दैत्यस्तरुं फलसमन्वितम्॥ २२
निजघान हयाञ्छ्रेष्ठान् कुबेरस्य महात्मनः।
तस्य कर्म महाघोरं दृष्ट्वा सर्वे महासुराः॥ २३
सिंहनादं नदन्ति स्म अनुह्लादप्रहर्षिताः।
तयोस्तु तुमुलं युद्धं संजज्ञे देवदैत्ययोः॥ २४
ततस्तौ क्रोधरक्ताक्षावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ।
अन्योन्यं विविधैः शस्त्रैर्घोरैर्जघ्नतुराहवे॥ २५
त्रिदशा दानवान् सर्वे मथित्वा प्राणदंस्तदा।
दानवैस्त्रिदशाश्चापि क्रुद्धैर्भुवि निपातिताः॥ २६
दानवास्त्वथ संक्रुद्धास्त्रिदशान् निशितैः शरैः।
विव्यधुर्वज्रसंकाशैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः॥ २७

फिर तो जैसे वायु आकाशमें फैली हुई मेघोंकी भारी घटाको बलपूर्वक छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार क्रोधमें भरे हुए धनाध्यक्ष कुबेरने दैत्योंकी सेनाका संहार कर डाला॥ १३॥ वह भयंकर युद्ध देखकर पराक्रमी अनुह्लादने सूर्यके समान तेजस्वी रथके द्वारा कुबेरपर धावा किया॥ १४॥ धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ उस दैत्यवीरने युद्धके मुहानेपर अपने धनुषको खींचकर महामनस्वी धनाध्यक्ष कुबेरपर पैने बाणोंका प्रहार किया॥ १५॥ वे बाण कुबेरके पास पहुँचकर उनके शरीरको विदीर्ण करते हुए पीठकी ओरसे निकल गये और युद्धमें लगे हुए दूसरे-दूसरे यक्षों तथा राक्षसोंको एकाग्रतापूर्वक घायल करने लगे॥ १६॥ अग्निके समान तेजस्वी तथा पैने बाणोंसे घायल हुए धनाध्यक्ष कुबेर उस महासमरमें बहुत कुपित हुए और अनुह्लादका सामना करनेके लिये आगे बढ़े॥ १७॥ क्रोधमें भरे हुए पराक्रमी राजा कुबेरने यक्षोंके साथ रहकर उस दानवपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ १८॥ जैसे साँड़ शीघ्र आयी हुई शरद्-ऋतुकी वृष्टिको रोकनेमें असमर्थ हो आँख बन्द करके उसके आघातको चुपचाप ग्रहण करता है, उसी प्रकार वह महान् असुर दैत्य कुबेरद्वारा सहसा की गयी भयंकर बाणवर्षाको नेत्र मूँदकर चुपचाप सहन करने लगा॥ १९-२०॥ कुबेरकी बाणवर्षासे रोषमें भरे हुए उस महान् असुरने तनिक भी भयभीत न होकर इन्द्रध्वजके समान एक विशाल वृक्षको देखा, जिसकी शाखाएँ और टहनियाँ विशेषरूपसे बढ़ी हुई थीं। उसमें नये-नये अङ्कुर और पल्लव निकले हुए थे तथा वह फलसे भी सम्पन्न था। उस कुपित हुए दैत्यने उस वृक्षको उखाड़कर उसके द्वारा महात्मा कुबेरके श्रेष्ठ घोड़ोंको मार डाला। उसके उस महाघोर कर्मको देखकर सभी बड़े-बड़े असुर अनुह्लादसे प्रसन्न हो जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे। उन देवता (कुबेर) और दैत्य (अनुह्लाद)-में तुमुल युद्ध होने लगा। दोनोंके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे। दोनों ही उस युद्धमें एक-दूसरेके वधकी इच्छासे भाँति-भाँतिके घोर शस्त्रोंद्वारा परस्पर आघात कर रहे थे॥ २१—२५॥ समस्त देवता दानव-योद्धाओंको रौंदकर जोर-जोरसे गर्जना करते थे। इसी प्रकार कुपित हुए दानवोंने भी देवताओंको पृथ्वीपर मार गिराया था॥ २६॥ दानव अत्यन्त कुपित हो वज्रके तुल्य तेजस्वी तथा कङ्कपत्र लगे हुए सीधे जानेवाले तीखे बाणोंसे देवताओंको घायल करने लगे॥ २७॥

विदार्यमाणा दैत्यौघैस्त्रिदशास्तु महाबलाः।
अमर्षिततराश्चक्रुर्युद्धकर्माण्यभीतवत् ॥ २८

तैर्गदाभिः सुभीमाभिः पट्टिशैः शूलमुद्गरैः।
परिघैश्च सुतीक्ष्णाग्रैर्दानवाः पीडिताः शरैः॥ २९

शरनिर्भिन्नगात्राश्च खड्गविच्छिन्नवक्षसः।
जगृहुस्ते शिलाश्चैव द्रुमांश्चासुरसत्तमाः॥ ३०

ते भीमवेगा दितिजा नर्दमानाः पुनः पुनः।
ममन्थुस्त्रिदशान् वीर्याच्छतशोऽथ सहस्रशः॥ ३१

ततस्तु तुमुलं युद्धं तेषां समभिवर्तत।
शिलाभिर्विपुलाभिश्च शतशश्चैव पादपैः॥ ३२

परिघैः पट्टिशैर्भल्लैर्भिन्दिपालैः परश्वधैः।
केचिन्निवृत्तशिरसः केचिच्च विदलीकृताः॥ ३३

केचिद् विनिहता भूमौ रुधिरार्द्राः सुरासुराः।
केचिद् रणाजिरान्नष्टाः परस्परवधार्दिताः॥ ३४

विभिन्नहृदयाः केचिच्छिन्नपादाश्च शेरते।
विदारितास्त्रिशूलैश्च केचित् तत्र गतासवः॥ ३५

तत् सुभीमं महद्युद्धं देवदानवसंकुलम्।
बभूव तुमुलं युद्धं शिलापादपसंकुलम्॥ ३६

धनुर्ज्यातन्त्रिमधुरं हिक्कातालसमन्वितम्।
आर्तस्तनितघोषाढ्यं युद्धं गान्धर्वमाबभौ॥ ३७

कुबेरः स धनुष्पाणिर्दानवान् रणमूर्धनि।
दिशो विद्रावयामास संक्रुद्धः शरवृष्टिभिः॥ ३८

कुबेरेणार्दितं सैन्यं विद्रुतं प्रेक्ष्य दानवः।
अभ्यद्रवदनुह्लादः प्रगृह्य महतीं शिलाम्॥ ३९

क्रोधाद् द्विगुणरक्ताक्षः पितृतुल्यपराक्रमः।
शिलां तां पातयामास कुबेरस्य रथोत्तमे॥ ४०

आपतन्तीं शिलां दृष्ट्वा गदापाणिर्धनाधिपः।
रथादाप्लुत्य वेगेन वसुधायां व्यतिष्ठत॥ ४१

सचक्रकूबरहयं सध्वजं सशरासनम्।
भङ्क्त्वा रथोत्तमं तस्य निपपात शिला भुवि॥ ४२

दैत्यसमूहोंद्वारा घायल किये जाते हुए महाबली देवता अत्यन्त अमर्षमें भरकर निर्भयकी भाँति युद्धकर्म करने लगे॥ २८॥ उन्होंने भयंकर गदा, पट्टिश, शूल, मुद्गर, परिघ तथा तेज धारवाले बाणोंद्वारा दानवोंको बड़ी पीड़ा दी॥ २९॥ उन असुरशिरोमणि योद्धाओंके अङ्ग बाणोंसे क्षत-विक्षत हो रहे थे। उनकी छाती खड्गसे छिन्न-भिन्न हो गयी थी; अतः उन्होंने भी बड़ी-बड़ी शिलाएँ और वृक्ष हाथमें ले लिये॥ ३०॥ उन भयंकर वेगवाले सैकड़ों और हजारों दैत्योंने बारम्बार गर्जना करके अपने बल-पराक्रमसे देवताओंको मथ डाला॥ ३१॥ तदनन्तर उनमें घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। वे बड़ी-बड़ी शिलाओं, सैकड़ों वृक्षों तथा परिघ, पट्टिश, भल्ल, भिन्दिपाल और फरसोंद्वारा एक-दूसरेको मारने लगे। किसीके सिर उड़ गये, कोई विदीर्ण हो गये, कोई भूमिपर गिराकर मार डाले गये। इस प्रकार सभी देवता और असुर खूनसे लथपथ हो रहे थे। परस्परकी मारसे पीड़ित हो कितने ही योद्धा समराङ्गणसे भाग गये। किन्हींके हृदय विदीर्ण हो गये। कोई पैर कट जानेसे पृथ्वीपर सो रहे थे और कितने ही त्रिशूलोंसे विदीर्ण हो वहाँ प्राणोंसे हाथ धो बैठे थे॥ ३२—३५॥ वह देवताओं और दानवोंसे भरा हुआ महायुद्ध बड़ा भयंकर प्रतीत होता था; शिलाओं और वृक्षोंके प्रहारसे व्याप्त होनेके कारण उसकी भयंकरता और भी बढ़ गयी थी॥ ३६॥ वहाँ धनुषकी प्रत्यञ्चारूपी वीणाकी मधुर तान छिड़ी हुई थी। योद्धाओंको जो हिचकियाँ आती थीं, वे ही मानो ताल थीं। पीड़ितोंके आर्तनाद ही मृदङ्ग आदि वाद्योंके घोष एवं आलाप थे। इस प्रकार वह युद्ध गान्धर्वमहोत्सव (संगीतसमारोह)-के समान प्रतीत होता था॥ ३७॥ उस समय क्रोधमें भरे हुए कुबेर हाथमें धनुष लेकर युद्धके मुहानेपर बाणोंकी वर्षा करके दानवोंको सम्पूर्ण दिशाओंमें खदेड़ने लगे॥ ३८॥ अपनी सेनाको कुबेरसे पीड़ित हुई देख दानव अनुह्लाद एक बहुत बड़ी शिला हाथमें लेकर कुबेरकी ओर दौड़ा॥ ३९॥ उस समय उसके नेत्र क्रोधसे दुगुने लाल हो रहे थे। वह अपने पिता हिरण्यकशिपुके समान पराक्रमी था। उसने कुबेरके उत्तम रथपर उस शिलाको दे मारा॥ ४०॥ उस शिलाको आती देख हाथमें गदा लिये हुए कुबेर अपने रथसे वेगपूर्वक कूदकर पृथ्वीपर खड़े हो गये॥ ४१॥ वह शिला कुबेरके उत्तम रथको चक्र, कूबर, घोड़े, ध्वज और धनुषबाणसहित तोड़-फोड़कर भूमिपर गिर पड़ी॥ ४२॥

विमथ्य तु कुबेरस्य प्रह्लादस्यानुजो रथम्।
शूराणां कदनं चक्रे सस्कन्धविटपैर्द्रुमैः॥ ४३
निर्भिन्नशिरसो भग्नास्त्रिदशाः शोणितोक्षिताः।
द्रुमप्रव्यथिताङ्गाश्च निपेतुर्धरणीतले॥ ४४
विद्राव्य विपुलं सैन्यमनुह्लादो महासुरः।
गिरिशृङ्गं गृहीत्वा तु कुबेरमभिदुद्रुवे॥ ४५
तमापतन्तं धनदो गदामुद्यम्य वीर्यवान्।
विनदित्वाऽऽह्वयामास दानवेन्द्रं महाबलम्॥ ४६
तस्य दैत्यस्य संक्रुद्धो गदां तां बहुकण्टकाम्।
न्यपातयत वित्तेशो दानवस्योरसि प्रभो॥ ४७
दैत्यः सक्रोधताम्राक्षस्तं प्रहारमचिन्तयन्।
वित्तेशस्योपरि तदा गिरिशृङ्गमपातयत्॥ ४८
स विह्वलितसर्वाङ्गो गिरिशृङ्गेण ताडितः।
पपात सहसा भूमौ विशीर्ण इव पर्वतः॥ ४९
वित्तेशं विह्वलं दृष्ट्वा सर्वे ते यक्षराक्षसाः।
परिवार्य महात्मानं ररक्षुर्भीमविक्रमाः॥ ५०
मुहूर्तं विह्वलो भूत्वा पुनर्विश्रवसः सुतः।
उपतस्थे च सहसा धनदः क्रोधमूर्च्छितः॥ ५१
स ननाद महानादं त्रैलोक्यमभिनादयन्।
जनयन्निव निर्घोषं विधमन्निव पर्वतान्॥ ५२
तमवध्यं तु विज्ञाय निहन्तुं पुनरुत्थितम्।
प्रेक्ष्य पिङ्गाक्षमायान्तं दानवा विप्रदुद्रुवुः॥ ५३
तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वानुह्लादो ह्यसुरोऽब्रवीत्।
कालनेमिं दानवं च वीर्यदर्पसमन्वितम्॥ ५४
आत्मानं चैव वीर्यं च विस्मृत्याभिजनं तथा।
क्व गच्छथ भयत्रस्ताः प्राकृता इव दानवाः॥ ५५
निवर्तध्वं महावीर्याः किं प्राणान् परिरक्षथ।
नालं युद्धाय यक्षोऽयं महतीयं विभीषिका॥ ५६
एतां विभीषिकामद्य दानवानां समुत्थिताम्।
विक्रम्य विधमिष्यामि निवर्तध्वं महासुराः॥ ५७

कुबेरके रथको नष्ट-भ्रष्ट करके प्रह्लादके छोटे भाई अनुह्लादने तनों और शाखाओंसहित वृक्षोंद्वारा देवपक्षके शूरवीरोंका संहार आरम्भ किया॥ ४३॥ देवताओंके सिर फूट गये। अङ्ग-भङ्ग हो गये। वे रक्तसे नहा गये। वृक्षोंकी मारसे उनके सारे अङ्ग व्यथित होने लगे और वे पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ४४॥ महान् असुर अनुह्लादने देवताओंकी विशाल सेनाको भगाकर एक पर्वतका शिखर हाथमें ले लिया और कुबेरपर धावा किया॥ ४५॥ उसे आते देख पराक्रमी कुबेरने गदा उठा ली और बड़े जोरसे गरजकर उस महाबली दानवराजको ललकारा॥ ४६॥ प्रभो! धनके स्वामी कुबेरने कुपित होकर उस दैत्य एवं दानवकी छातीपर उस गदाको दे मारा, जिसमें बहुत-से काँटे लगे हुए थे॥ ४७॥ परंतु क्रोधसे लाल आँखें किये उस दैत्यने उनके उस प्रहारकी कोई परवा नहीं की और धनके स्वामी कुबेरपर तत्काल ही उस पर्वतशिखरको गिरा दिया॥ ४८॥ पर्वतशिखरकी चोट खाकर कुबेरके सारे अङ्ग विह्वल हो गये और वे चूर-चूर हुए पर्वतकी भाँति सहसा पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ४९॥ महात्मा धनेशको विह्वल हुआ देख वे भयंकर पराक्रमी समस्त यक्ष और राक्षस उन्हें चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करने लगे॥ ५०॥ दो घड़ीतक व्याकुल रहनेके पश्चात् विश्रवाके पुत्र धनदाता कुबेर सहसा उठकर खड़े हो गये और पुनः क्रोधसे मूर्च्छित हो तीनों लोकोंको प्रतिध्वनित करते हुए बड़े जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे। उस समय वे मेघोंकी गम्भीर गर्जनाके समान घोष उत्पन्न करने और पर्वतोंको भी ताप-सा देने लगे॥ ५१-५२॥ पिङ्गल नेत्रवाले कुबेर अवध्य हैं और पुनः दानवोंका संहार करनेके लिये उठ गये हैं। यह जानकर उन्हें आते देख समस्त दानव सहसा भाग खड़े हुए॥ ५३॥ उन सबको भागते देख असुर अनुह्लादने कहा—'महापराक्रमी दानवो! तुमलोग बल और दर्पसे भरे हुए दानव कालनेमिको, अपनेको तथा अपने पराक्रम और कुलको भूलकर निम्नश्रेणीके मनुष्योंकी भाँति भयभीत होकर कहाँ भागे जा रहे हो। लौट आओ! क्यों अपने प्राण बचानेकी चेष्टामें लगे हो? यह यक्ष युद्ध करनेमें समर्थ नहीं है, यह गर्जना इसकी महती विभीषिका-मात्र है॥ ५४—५६॥ महान् असुरो! तुमलोग लौट आओ। मैं यक्षराजकी इस विभीषिकाको, जो दानवोंके लिये उठी हुई है, पराक्रमपूर्वक नष्ट कर दूँगा'॥ ५७॥

तेऽसुराः संनिवृत्ताश्च समदा इव कुञ्जराः।
निजघ्नुः परमक्रुद्धा देवसैन्यं महासुराः॥ ५८

क्षीणप्रहरणाः केचिन्महामेघनिभस्वनाः।
दर्पोत्कटा भुजैरेव सम्प्रहारं प्रचक्रिरे॥ ५९

प्रांशुभिश्चैव काष्ठैश्च शिलाभिश्च महाबलाः।
बाहुभिश्च तथान्योन्यमाक्षिपन्ति स्म वेगिताः॥ ६०

मुष्टिभिश्च तलैश्चैव नखपातैर्महाबलाः।
पादपैश्च महाशाखैरयुध्यन्त रणाजिरे॥ ६१

अनुह्लादस्तु संक्रुद्धो देवतानां महाचमूम्।
ममन्थ परमायत्तो वनान्यग्निरिवोत्थितः॥ ६२

रुधिरार्द्रास्तु बहवः शेरते योधसत्तमाः।
विकृताः पतिता भूमौ ताम्रपुष्पा इव द्रुमाः॥ ६३

अनुह्लादस्य विक्रान्तो देवस्त्वाशीविषोपमान्।
युध्यमानस्य समरे व्यसृजन्निशिताञ्छरान्॥ ६४

धनाधिपेन विद्धस्य अनुह्लादस्य संयुगे।
अङ्गारमिश्राः क्रुद्धस्य मुखान्निश्चेरुरर्चिषः॥ ६५

अथ बाणसहस्रेण वित्तेशं दानवोत्तमः।
विव्याध स शरैः क्रुद्धो दण्डपाणिरिवान्तकः॥ ६६

कुबेरस्तु शरैर्भिन्नः समन्तात् क्षतजोक्षितः।
रुधिरं परिसुस्राव गिरिः प्रस्रवणैरिव॥ ६७

लब्ध्वा स तु पुनः संज्ञां रोषरक्तेक्षणः सुरः।
गदामथ समासाद्य भीमां भीमपराक्रमः।
चिक्षेप दैत्यमुद्दिश्य बलात् क्रोधेन मूर्च्छितः॥ ६८

अप्राप्तामन्तरे सोऽथ तां गदां गदयासुरः।
बभञ्ज विनदन् क्रुद्धस्तदाश्चर्यमभूत् तदा॥ ६९

प्रगृह्य तु गदां भूयो ह्यभिदुद्राव दानवम्।
तमापतन्तं दृष्ट्वैव अनुह्लादो महाबलः॥ ७०

गिरिशृङ्गमिवोत्पाट्य कैलासाचलसंनिभम्।
धनाधिपं प्रदुद्राव व्यादितास्य इवान्तकः॥ ७१

यह सुनकर मतवाले हाथियोंके समान वे असुर लौट आये और अत्यन्त क्रोधमें भरकर वे महान् असुर देवसेनाका संहार करने लगे॥ ५८॥ कितने ही दैत्य आयुधोंके नष्ट हो जानेसे महान् मेघके समान केवल गर्जना कर रहे थे। कितने ही उत्कट दर्पसे युक्त हो भुजाओंसे ही प्रहार करते थे॥ ५९॥ वे महान् बलशाली वेगवान् योद्धा ऊँचे-ऊँचे काष्ठों, शिलाओं तथा भुजाओंद्वारा एक-दूसरेपर प्रहार करते थे॥ ६०॥ महाबली सैनिक उस समराङ्गणमें मुक्कों, थप्पड़ों, नखप्रहारों तथा बड़ी-बड़ी शाखाओंवाले वृक्षोंद्वारा युद्ध करते थे॥ ६१॥ क्रोधमें भरा हुआ अनुह्लाद विजयके लिये परम प्रयत्नशील हो देवताओंकी उस विशाल वाहिनीको उसी प्रकार मथने लगा, जैसे प्रज्वलित हुआ दावानल जंगलोंको जलाकर भस्म कर डालता है॥ ६२॥ बहुत-से श्रेष्ठ योद्धा रक्तसे भीगकर विकृत अवस्थामें भूमिपर पड़े हुए सो रहे थे, जो लाल फूलवाले वृक्षोंके समान शोभा पाते थे॥ ६३॥ पराक्रमी देवता कुबेर समरभूमिमें जूझते हुए अनुह्लादपर विषधर सर्पोंके समान भयंकर और पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ ६४॥ युद्धमें धनाध्यक्ष कुबेरद्वारा घायल किये गये अनुह्लादके मुखसे क्रोधवश अङ्गारयुक्त आगकी लपटें निकलने लगीं॥ ६५॥ तब कुपित हुए दण्डधारी यमराजके समान दानवशिरोमणि अनुह्लादने धनेश्वर कुबेरको अपने सहस्रों बाणोंसे घायल कर दिया॥ ६६॥ सब ओरसे बाणोंद्वारा विदीर्ण हुए कुबेर रक्तसे नहा गये। जैसे झरनोंसे युक्त पर्वत पानीकी धारा बहाता है, उसी प्रकार कुबेर अपने अङ्गोंसे रक्त बहाने लगे (और बेहोश हो गये)॥ ६७॥ पुनः होशमें आनेपर रोषसे लाल आँखें किये भयानक पराक्रमी देवता कुबेरने भयंकर गदा हाथमें ले क्रोधसे अचेत-से होकर उस दैत्यको लक्ष्य करके उसे बलपूर्वक दे मारा॥ ६८॥ किंतु सिंहनाद करते हुए उस दैत्यने निकट आनेसे पहले ही अपनी गदासे उस गदाको क्रोधपूर्वक बीचमें ही तोड़ डाला। उस समय वह एक आश्चर्यकी-सी बात हुई॥ ६९॥ कुबेर पुनः गदा लेकर उस दानवकी ओर दौड़े। महाबली अनुह्लाद उन्हें आक्रमण करते देख कैलास पर्वतके सदृश विशाल शैलशिखर-सा उखाड़कर मुँह बाये हुए कालके समान धनाध्यक्षकी ओर दौड़ा॥ ७०-७१॥

तमन्तकमिवायान्तमजेयं सकलैः सुरैः।
ग्रसन्तमिव तं दैत्यं त्रैलोक्यमखिलं रुषा॥ ७२

तमालोक्य तथा भूतं धनाध्यक्षो रणं भयात्।
अपहाय ययौ तत्र यत्र शक्रः सुराधिपः॥ ७३

तस्य चापि महत् कर्म दृष्ट्वा वित्तपतिस्तदा।
जगाम भयसंत्रस्तो यत्र देवः शचीपतिः॥ ७४

वह दैत्य समस्त देवताओंके लिये अजेय था और यमराजके समान रोषवश सम्पूर्ण त्रिलोकीको ग्रस लेनेके लिये उद्यत जान पड़ता था। उसे उस रूपमें आते देख धनाध्यक्ष कुबेर भयके कारण रणभूमिका त्यागकर उस स्थानपर चले गये, जहाँ देवराज इन्द्र युद्ध करते थे॥ ७२-७३॥ उसका महान् पराक्रम देखकर धनपति कुबेर भयसे थर्रा उठे और जहाँ शचीपति इन्द्र थे, वहीं चले गये॥ ७४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे देवासुरयुद्धे अनुह्लादकुबेरयुद्धवर्णने षष्टितमोऽध्यायः॥ ६०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारके प्रसङ्गमें देवासुरसंग्राममें अनुह्लाद और कुबेरके युद्धका वर्णनविषयक साठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६०॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

वरुणका विप्रचित्तिके साथ युद्ध और पराजय

वैशम्पायन उवाच

विप्रचित्तिस्तु वरुणं दैत्यानामादिरव्ययम्।
जघानेषुगणैः क्रुद्धो दीप्तैरिव महोरगैः॥ १

स दह्यमानो दैत्येन दीप्तैः शरगभस्तिभिः।
नाभ्यजानत कर्तव्यं संग्रामे स जलेश्वरः॥ २

सर्वलोकेश्वरस्येव परमेष्ठी प्रजापतिः।
न शक्नोत्यग्रतः स्थातुं विप्रचित्तेर्जलाधिपः॥ ३

वज्रो नाम महाव्यूहो निर्भयः सर्वतोमुखः।
तं व्यूह्य प्रत्ययुध्यन्त दानवा देववाहिनीम्॥ ४

वह्निज्वालासमं तत्र रविमण्डलसंनिभम्।
मुखमाभाति दैत्यस्य विप्रचित्तेर्महात्मनः॥ ५

वरुणस्तु महातेजा विप्रचित्तिं महासुरम्।
प्रदहन्निव तेजोभिर्जिगीषुः प्रत्यवैक्षत॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! दैत्योंके आदि पुरुष विप्रचित्तिने अविनाशी देवता वरुणको क्रोधपूर्वक अपने बाणसमूहोंसे घायल कर दिया। उसके वे बाण तेजस्वी सर्पोंके समान जान पड़ते थे॥ १॥ वह दैत्य जब बाणरूपी दीप्तिमान् किरणोंसे वरुणको दग्ध करने लगा, उस समय संग्राममें खड़े हुए जलेश्वर वरुण यह भी न समझ सके कि अब मुझे क्या करना चाहिये॥ २॥ जैसे सर्वलोकेश्वर परमात्माके समक्ष प्रजापति परमेष्ठी नहीं ठहर सकते, इसी प्रकार दानवराज विप्रचित्तिके आगे जलके स्वामी वरुण नहीं ठहर सके॥ ३॥ वज्र नामक महान् व्यूहका मुख सब ओर होता है, वह सर्वथा निर्भय हुआ करता है। उसी व्यूहका आश्रय लेकर दानव-योद्धा देवसेनाके साथ युद्ध करने लगे॥ ४॥ महामनस्वी विप्रचित्ति नामक दैत्यका मुख वहाँ अग्निज्वाला तथा सूर्यमण्डलके समान प्रकाशित होता था॥ ५॥ महातेजस्वी वरुणने विजयकी इच्छा मनमें लेकर विप्रचित्ति नामक महान् असुरकी ओर इस प्रकार देखा, मानो वे अपने तेजसे उसको दग्ध कर डालेंगे॥ ६॥

स्रग्दाममालाभरणः केयूराङ्गदभूषणः।
जग्राह परिघं दैत्यः कैलासशिखरोपमम्॥ ७

पिनद्धं काञ्चनैः पट्टैर्हेममालिनमायसम्।
यमदण्डोपमं घोरं दैत्यानां भयनाशनम्॥ ८

भ्रामयामास संक्रुद्धो महाशक्रध्वजोपमम्।
विननाद विवृत्तास्यो विप्रचित्तिर्महासुरः॥ ९

स कण्ठस्थेन निष्केण भुजस्थैरपि चाङ्गदैः।
कुण्डलाभ्यां विचित्राभ्यां भ्राजते काञ्चनस्रजा॥ १०

दानवो भूषणैर्भाति परिघेणायसेन च।
यथेन्द्रधनुषा मेघः सविद्युत्स्तनयित्नुमान्॥ ११

प्रस्फुरन् परिघास्त्रेण वातस्कन्धान्महास्वनः।
जज्वाल च सधूमार्चिः साङ्कर्षण इवानलः॥ १२

विद्याधरगणैः सार्धं गन्धर्वनगरैरपि।
सह चैवामरावत्या सिद्धलोकैस्तथा सह॥ १३

ग्रहनक्षत्रसहितं सार्कचन्द्रविभूषितम्।
दैत्येन्द्रपरिघोद्धूतं भ्रमतीव नभस्तलम्॥ १४

दुरासदः सुसंजज्ञे परिघाभरणक्षमः।
सुरेन्धनोऽसुरेन्द्राग्निर्युगान्ताग्निरिवोत्थितः॥ १५

त्रिदशा वरुणश्चैव न शेकुः स्पन्दितुं भयात्।
तत्रासीन्निर्भयस्त्वेकः कौशिको वासवः प्रभुः॥ १६

भास्करप्रतिमं घोरं परिघं रौद्रदर्शनम्।
पातयामास सेनायां जलेशस्य स दानवः॥ १७

पतता तेन संग्रामे जलेशस्य महात्मनः।
भूतानां शतसाहस्रं परिघेण समाहतम्।
तेषां गात्राणि चासाद्य व्यशीर्यन्त सहस्रशः॥ १८

विशीर्यमाणं विबभावुल्काशतमिवाम्बरे।
भूयश्चैनं तदाऽऽभ्राम्य वरुणाय न्यपातयत्॥ १९

दैत्य विप्रचित्ति फूलोंके हार तथा सुवर्ण आदिकी मालाओंसे अलंकृत था। उसकी भुजाओंमें केयूर तथा अङ्गद नामक आभूषण शोभा दे रहे थे। उसने कैलासशिखरके समान एक परिघ हाथमें लिया॥ ७॥ उसपर सोनेके पत्र जड़े हुए थे। वह परिघ लोहेका बना हुआ था और सोनेकी मालासे अलंकृत था। देखनेमें यमदण्डके समान भयंकर था, किंतु दैत्योंके भयका नाश करनेवाला था॥ ८॥ महान् असुर विप्रचित्तिने अत्यन्त कुपित होकर इन्द्रध्वजके समान उस विशाल परिघको घुमाया और मुँह फैलाकर बड़ी जोर-जोरसे गर्जना की॥ ९॥ उसके कण्ठमें सुवर्णमय पदक, भुजाओंमें बाजूबंद, कानोंमें विचित्र कुण्डल तथा वक्षःस्थलपर सोनेके हार सुशोभित थे, जिनसे वह दानव प्रकाशित हो रहा था॥ १०॥ लोहेके परिघ और सोनेके आभूषणोंसे युक्त वह दानव इन्द्रधनुष, विद्युत् और गर्जनासे युक्त मेघके समान शोभा पा रहा था॥ ११॥ परिघ नामक अस्त्रसे वायुसमूहोंको संचालित करते हुए जोर-जोरसे सिंहनाद करनेवाला वह दैत्य धूम और ज्वालाओंसहित प्रलयकालीन अग्निके समान प्रज्वलित हो उठा॥ १२॥ विद्याधरगण, गन्धर्वनगर, अमरावती पुरी तथा सिद्धलोकोंके साथ ग्रह-नक्षत्रोंसहित एवं सूर्य और चन्द्रमासे विभूषित आकाश उस दैत्यराजके परिघसे उद्भ्रान्त होकर चक्कर-सा काटने लगा॥ १३-१४॥ परिघको धारण करने और सब ओर घुमानेमें समर्थ वह दैत्य दुर्जय हो गया था। अग्निके समान तेजस्वी वह असुरराज विप्रचित्ति प्रलयकालकी आगके समान उठ खड़ा हुआ था, देवता उसकी आँचसे ईंधनकी भाँति जल रहे थे॥ १५॥ देवता और वरुण उसके भयके मारे हिल-डुल भी न सके। वहाँ एकमात्र सामर्थ्यशाली कौशिक इन्द्र ही निर्भय खड़े रहे॥ १६॥ उस दानवने उस सूर्यतुल्य तेजस्वी घोर परिघको, जो देखनेमें बड़ा ही भयंकर था, जलेश्वर वरुणकी सेनामें गिराया॥ १७॥ संग्रामभूमिमें वहाँ गिरते हुए उस परिघने महात्मा वरुणके एक लाख भूतोंको हताहत कर दिया। उस परिघसे टकराकर उनके शरीरोंके सहस्रों टुकड़े हो गये॥ १८॥ जीर्ण-शीर्ण होते हुए वरुणके सैनिक आकाशमें सैकड़ों उल्काओंके समान प्रतीत हो रहे थे। तदनन्तर विप्रचित्तिने पुनः उस परिघको घुमाकर वरुणपर दे मारा॥ १९॥

पात्यमाने तदा तस्मिञ्छरीरे वारुणे तदा।
स भिन्नः परिघो घोरो देवगात्रे व्यशीर्यत॥ २०
शीर्यमाणस्य चूर्णानि खद्योता इव चाम्बरे।
स तु तेन प्रहारेण न चचाल जलाधिपः॥ २१
परिघेण हतः संख्ये यथा वज्रहतोऽचलः।
स्वसैन्येष्वपि भग्नेषु भिन्नदेहेषु चाहवे॥ २२
मुहूर्तमगमत् क्षोभमपाम्पतिरमर्षणः।
सोऽमर्षं च समापन्नो वरुणोऽमितविक्रमः॥ २३
सर्वसंहारमकरोत् स्वपक्षस्यारिमर्दनः।
स सागरैश्चतुर्भिश्च वृतो दीप्तैश्च पन्नगैः॥ २४
शङ्खमुक्तामणिचितो बिभ्रत्तोयमयं वपुः।
पाण्डुरोद्धूतवसनो नानारत्नविभूषितः॥ २५
वरुणः पाशधृक्छ्रीमान् कूर्ममीनसमाकुलः।
वरुणस्तु तदा क्रुद्धस्तान् निरीक्ष्य स्वसैनिकान्॥ २६
उवाच दृष्ट्वा युध्यध्वं दानवानां जिघांसया।
अहमेनं हनिष्यामि भयं मुक्त्वा तु युध्यत॥ २७
ततस्ते पन्नगाः सर्वे महार्णवजलाश्रयाः।
जघ्नुर्दैत्यान् रणमुखे नदन्तो जयगृद्धिनः॥ २८
ते तु नालीकनाराचैर्गदाभिर्मुसलैस्तथा।
अभ्यघ्नन् दानवान् हृष्टा मुदिता वरुणानुगाः॥ २९
विप्रचित्तिस्तु संक्रुद्धो महाबलपराक्रमः।
पन्नगानां शरीराणि व्यधमद् युद्धदुर्मदः॥ ३०
गरुडेनापि चास्त्रेण पन्नगान् दानवोत्तमः।
समरे घातयामास गरुडैः पन्नगाशनैः॥ ३१
स शरैः सूर्यसंकाशैः शातकुम्भविभूषितैः।
पन्नगान् समरे वीरः प्रममाथ सुदुर्जयान्॥ ३२
समरे भिन्नगात्रास्ते पन्नगाः शरपीडिताः।
पेतुर्मथितसर्वाङ्गा गजा इव महागजैः॥ ३३
तपन्तं तमिवादित्यं दीप्तैर्बाणगभस्तिभिः।
अभ्यधावत संक्रुद्धः समरे वरुणः प्रभुः॥ ३४

वरुणके शरीरपर पड़ते ही उस परिघके टुकड़े-टुकड़े हो गये। वह भयंकर परिघ वरुणदेवके शरीरसे टकराकर टूक-टूक हो गया॥ २०॥ जीर्ण-शीर्ण होकर गिरते हुए उस परिघके चूर्ण आकाशमें खद्योतोंके समान प्रकाशित होते थे। उस प्रहारसे जलेश्वर वरुण विचलित नहीं हुए। परिघकी मार खाकर भी वे युद्धमें वज्रसे आहत हुए पर्वतकी भाँति स्थिरभावसे खड़े रहे। युद्धस्थलमें अपने सैनिकोंके भग्न एवं घायल होनेपर अमर्षशील जलेश्वर वरुणको दो घड़ीतक बड़ा क्षोभ रहा। वे अमित पराक्रमी वरुण अमर्षमें भर गये॥ २१—२३॥ तत्पश्चात् शत्रुमर्दन वरुणने अपने पक्षके सभी लोगोंको पूर्णतः संगठित किया। वे जलमय शरीर धारण करके शङ्खों और मुक्तामणियोंसे विभूषित हुए। उस समय चारों समुद्र उन्हें घेरकर खड़े हो गये। तेजस्वी सर्पोंने भी उनका साथ दिया। उनके श्वेत वस्त्र हवासे हिल रहे थे तथा वे नाना प्रकारके रत्नोंसे अलंकृत थे॥ २४-२५॥ कछुओं और मत्स्योंसे व्याप्त हुए पाशधारी श्रीमान् वरुणदेवने कुपित हो अपने सैनिकोंकी ओर देखकर कहा—'वीरो! तुमलोग दानवोंके वधकी इच्छासे युद्ध करो। मैं इस दानवका वध करूँगा। तुमलोग भय छोड़कर युद्धमें डटे रहो'॥ २६-२७॥ तब महासागरके जलमें निवास करनेवाले समस्त सर्प विजयकी अभिलाषासे सिंहनाद करते हुए युद्धके मुहानेपर दैत्योंका संहार करने लगे॥ २८॥ हर्ष और उल्लासमें भरे हुए वरुणके उन सैनिकोंने नालीक, नाराच, गदा और मुसलोंद्वारा दानवोंको मारना आरम्भ किया॥ २९॥ तब महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न रणदुर्मद विप्रचित्ति अत्यन्त कुपित हो सर्पोंके शरीरोंका विनाश करने लगा॥ ३०॥ उस दानव-शिरोमणिने गरुडास्त्रका प्रयोग करके सर्पभोजी गरुड़ोंद्वारा समराङ्गणमें सर्पोंका संहार करा दिया॥ ३१॥ संग्रामभूमिमें वीर विप्रचित्तिने सूर्यतुल्य तेजस्वी सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा अत्यन्त दुर्जय सर्पोंको मथ डाला॥ ३२॥ रणभूमिमें बाणोंसे पीड़ित हुए सभी सर्प घायल हो धराशायी हो गये। उस समय वे जिनके सारे अङ्ग महान् गजराजोंने मथ डाले हों उन हाथियोंके समान पृथ्वीपर पड़े थे॥ ३३॥ उस समय समराङ्गणमें बाणरूपी दीप्तिमान् किरणोंद्वारा सूर्यके समान तपनेवाले उस दैत्यपर भगवान् वरुणने अत्यन्त क्रोधपूर्वक धावा किया॥ ३४॥

ततस्तु दानवास्तत्र भिन्नदेहाः सहस्रशः।
व्यथिता विद्रवन्ति स्म दिशो दश विचेतसः॥ ३५

इन्द्रस्यार्थे पराक्रम्य वरुणस्त्यक्तजीवितः।
विनर्दमानो युयुधे समरे पाशभृद्वरः॥ ३६

वरुणः पन्नगाश्चैव मुष्टिभिः समरोत्कटाः।
अभ्यवर्तन्त समरे विप्रचित्तिं महासुरम्॥ ३७

ततोऽस्त्रैश्च शिलाभिश्च प्राहरत् स बलोत्कटः।
व्यपोहत महातेजा विप्रचित्तिर्महासुरः॥ ३८

ततः पावकसंकाशैः स मुक्तैः शीघ्रगामिभिः।
वरुणस्य महावेगान् बिभेद समरे हयान्॥ ३९

कर्मणा तेन महता विप्रचित्तेर्महात्मनः।
अग्नेराज्याहुतस्येव तेजः समभिवर्धत॥ ४०

स शरैः सूर्यसंकाशैः सुमुक्तैः शीघ्रगामिभिः।
वारुणीं तां महासेनां निर्ममन्थ महाबलः॥ ४१

क्षीणास्त्रां सायकाक्रान्तां शरजालेन मोहिताम्।
शूलशक्त्यृष्टिभिन्नां च चकार रुधिरोक्षिताम्॥ ४२

स शरैर्वह्निसंकाशैः सुमुक्तैर्नतपर्वभिः।
वरुणस्य महावेगान् बिभेद समरे हयान्॥ ४३

अभिद्रुतोऽथ दैत्येन ससैन्यः सलिलाधिपः।
महेन्द्रं शरणं प्राप्तो विप्रचित्तेर्भयार्दितः॥ ४४

फिर तो उनके द्वारा शरीर छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण वहाँ पीड़ित हुए सहस्रों दानव अचेत-से होकर दसों दिशाओंमें भागने लगे॥ ३५॥ पाशधारियोंमें श्रेष्ठ वरुणदेव जीवनका मोह छोड़कर पराक्रमपूर्वक गर्जना करते हुए समरभूमिमें इन्द्रके लिये युद्ध करने लगे॥ ३६॥ वरुण और सर्प युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले थे; वे शत्रुओंपर मुक्कोंका प्रहार करते हुए संग्रामभूमिमें महान् असुर विप्रचित्तिका सामना करने लगे॥ ३७॥ तत्पश्चात् उत्कट बलशाली, महातेजस्वी महान् असुर विप्रचित्तिने अस्त्रों और शिलाओंद्वारा प्रहार किया और शत्रुओंको मार भगाया॥ ३८॥ उसने अपने धनुषसे छूटे हुए अग्नितुल्य तेजस्वी एवं शीघ्रगामी बाणोंद्वारा वरुणके महान् वेगशाली घोड़ोंको समराङ्गणमें क्षत-विक्षत कर दिया॥ ३९॥ जैसे घीकी आहुति देनेसे अग्निका तेज बढ़ता है, उसी प्रकार उस महान् कर्मसे महामनस्वी विप्रचित्तिका तेज एवं प्रताप बढ़ने लगा॥ ४०॥ उस महाबली दानवने भलीभाँति छोड़े गये शीघ्रगामी एवं सूर्यतुल्य तेजस्वी बाणोंद्वारा वरुणदेवकी उस विशाल सेनाको मथ डाला॥ ४१॥ उसने वरुणके सैनिकोंके अस्त्र-शस्त्र काट डाले, उन्हें सायकोंसे आक्रान्त कर दिया; वे सब-के-सब उसके बाणजालसे आच्छादित होकर मोहके वशीभूत हो गये, विप्रचित्तिने उन सबको शूल, शक्ति और ऋष्टि आदि शस्त्रोंसे घायल करके खूनसे लथपथ कर दिया॥ ४२॥ उस दानवने उत्तम रीतिसे छोड़े गये झुकी हुई गाँठवाले अग्नितुल्य तेजस्वी बाणोंद्वारा समरभूमिमें वरुण देवताके महान् वेगशाली घोड़ोंको घायल कर दिया॥ ४३॥ उस दैत्यने जलके स्वामी वरुणको सेनासहित वहाँसे भाग जानेको विवश कर दिया। वे विप्रचित्तिके भयसे पीड़ित हो देवराज इन्द्रकी शरणमें चले गये॥ ४४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामने वरुणविप्रचित्तियुद्धे एकषष्टितमोऽध्यायः॥ ६१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारके प्रसङ्गमें वरुण और विप्रचित्तिका युद्धविषयक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६१॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

अग्निद्वारा दैत्योंकी पराजय तथा बृहस्पतिके द्वारा अग्निदेवका स्तवन

वैशम्पायन उवाच

पराजयं तु देवानां दृष्ट्वाग्निर्देवसत्तमः।
चकार बुद्धिं दैत्यानां वधे ब्रह्मर्षिभिः स्तुतः॥ १

स्वयंप्रभायाः शाण्डिल्या यः पुत्रो हव्यवाहनः।
हिरण्यरेताः पिङ्गाक्षो देवहूतो हुताशनः॥ २

रोहितो लोहितग्रीवो हर्ता दाता हविः कविः।
पावको विश्वभुग् देवः सर्वदेवाननः प्रभुः॥ ३

सुब्रह्मात्मा सुवर्चस्कः सहस्रार्चिर्विभावसुः।
कृष्णवर्त्मा चित्रभानुर्देवानामपि देवराट्॥ ४

लोकसाक्षी द्विजहुतः सदर्चिष्मान् वषट्कृतः।
हव्यभक्षः शमीगर्भस्वयोनिः सर्वकर्मकृत्॥ ५

पावनः सर्वभूतानां त्रिदशानां तपोनिधिः।
शमनः सर्वपापानां लेलिहानस्तपोमयः॥ ६

प्रदक्षिणावर्तशिखः शुचिरोमा मखाकृतिः।
हव्यभुग् भूतभव्येशो यज्ञभागहरो हरिः॥ ७

सोमपः सुमहातेजा भूतेशः सुमहातपाः।
अधृष्यः पावको भूतिर्भूतात्मा वै स्वधाधिपः॥ ८

स्वाहापतिः सामगीतः सोमपूताशनोऽद्रिधृक्।
देवदेवो महाक्रोधो रुद्रात्मा ब्रह्मसम्भवः॥ ९

लोहिताश्वं वायुचक्रं रथमास्थाय भूतधृक्।
धूमकेतुर्धूमशिखो नीलवासाः सुरोत्तमः॥ १०

उद्यम्य दिव्यमाग्नेयं शस्त्रं देवो रणे महान्।
दानवानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च॥ ११
ददाह भगवान् वह्निः संक्रुद्धः प्रलये यथा।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! देवताओंकी यह पराजय देखकर ब्रह्मर्षियोंद्वारा प्रशंसित देवशिरोमणि अग्निने दैत्योंके वधका विचार किया॥ १॥ जो स्वयंप्रभा शाण्डिलीके पुत्र हैं, हविष्यका वहन करते हैं। सुवर्ण जिनका रेतस् (वीर्य) है। जिनके नेत्र पिङ्गल वर्णके हैं। देवता जिनका आवाहन करते हैं। जो आहुतिमें प्राप्त हुए हविष्यका भक्षण करते हैं। जिनका वर्ण लाल है। जिनकी ग्रीवा भी लाल रंगकी बतायी गयी है। जो दोषोंका हरण करनेवाले, दाता, हव्य-कव्यस्वरूप, पवित्र करनेवाले, विश्वभोक्ता, देव, सम्पूर्ण देवताओंके मुख तथा सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। सुन्दर वेद जिनके स्वरूप हैं। जो उत्तम तेजसे सम्पन्न हैं। जिनसे सहस्रों ज्वालाएँ उठती रहती हैं। विभा (उत्कृष्ट प्रभा) ही जिनका वसु (धन) है। जिनका मार्ग कृष्ण है। जो विचित्र किरणोंसे प्रकाशित होते हैं तथा देवताओंके भी देवराज हैं। जिन्हें सम्पूर्ण जगत्का साक्षी माना गया है। द्विजगण जिन्हें आहुति देकर तृप्त करते हैं। जो उत्तम ज्वालाओंसे सम्पन्न और वषट्कारस्वरूप हैं। शमीगर्भ—अश्वत्थ ही जिनके लिये अपने प्राकट्यका कारण है। जो हविष्यभोक्ता तथा सम्पूर्ण वैदिक कर्मोंको सम्पन्न करनेवाले हैं। जो सम्पूर्ण भूतोंको पवित्र करनेवाले, देवताओंमें तपोनिधि, पापोंको शान्त करनेमें समर्थ, अपनी ज्वालारूपी जिह्वाओंको लपलपानेवाले और तपोमय हैं। जिनकी शिखा (ज्वाला) दक्षिणावर्त होती है। जिनका धूम पवित्र है। यज्ञ जिनका स्वरूप है। जो हविष्यके भोक्ता, भूत और वर्तमानके स्वामी, यज्ञभागको पहुँचानेवाले तथा श्रीहरिस्वरूप हैं। जो सोमपान करनेवाले, महान् तेजसे सम्पन्न, भूतनाथ, महातपस्वी, अजेय, पावक, ऐश्वर्यस्वरूप, सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा और स्वधाके स्वामी हैं। साममन्त्रोंद्वारा जिनकी महिमा गायी गयी है। जो स्वाहादेवीके पति हैं, सोमयागके द्वारा पवित्र सोमरसका पान करते हैं। जिनके लिये सोमरस निकालनेके निमित्त लोढ़े धारण किये जाते हैं। जो देवताओंके भी देवता, महाक्रोधी, रुद्रस्वरूप तथा ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए हैं। वे सम्पूर्ण भूतोंको धारण करनेवाले, धूमरूपी ध्वजा एवं शिखासे युक्त, नीलवस्त्रधारी, सुरश्रेष्ठ महान् देवता भगवान् अग्निदेव लाल घोड़ों और वायुरूपी पहियोंवाले रथपर आरूढ़ हो रणभूमिमें दिव्य आग्नेयास्त्र उठाकर प्रलयकालकी भाँति कुपित हो

प्राणो यः सर्वभूतानां देहे तिष्ठति पञ्चधा॥ १२
यन्ता यश्च हुताशस्य सखा च प्रभुरीश्वरः।
प्रभञ्जनो यो लोकानां युगान्ते सर्वनाशनः॥ १३

सप्तस्वरगता यस्य योनिर्गीर्भिरुदीर्यते।
यो ह्याकाशमयो देवो दूरगः सर्वसम्भवः॥ १४

यश्च कर्ता विकर्ता च गतिर्गतिमतां प्रभुः।
वेदकर्ता समो लोके ब्रह्मणा यः सनातनः॥ १५

अमूर्तिमन्तं यं प्राहुर्महाभूतं महत्तरम्।
सोऽग्निं समीरयामास शमीगर्भं समीरणः॥ १६

त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशो दश।
दानवानामभावाय युगान्ताग्निरिवोत्थितः॥ १७

मेदोमज्जामहापङ्कां केशशैवलशालिनीम्।
योधशीर्षोपलवहां मृतद्विपतटोत्कटाम्॥ १८

शोणितोदां रणे दृष्ट्वा संग्रामसरितं विभुः।
वह्निः प्रस्कन्दयामास दैत्यानां भयवर्धनः॥ १९

ततोऽग्निर्दितिजान् सर्वान् प्रह्लादप्रमुखांस्तथा।
पराजयानः स विभुः क्रोशमानो महामृधे॥ २०

केचित् प्रदीप्तैर्मुकुटैः केचिद् दीप्तैः शिरोरुहैः।
केचित् प्रदीप्तवसनैः केचिद् दीप्तैर्भुजाननैः॥ २१

केचित् प्रदीप्तैरुरुभिः केचिच्छत्रैर्ध्वजै रथैः।
असुरास्तत्र दृश्यन्ते प्रदीप्तेनाग्निना वृताः॥ २२

त्यक्त्वाऽऽयुधानि सर्वाणि सध्वजांश्च रथोत्तमान्।
प्रयान्ति समरे भीताः पावकेन पराजिताः॥ २३

न च पश्यन्ति ते वह्निं प्रदीप्तं ध्वजिनीमुखे।
दिशः खड्गांश्च मेघांश्च दीप्तान् पश्यन्ति दानवाः॥ २४

ध्रुवः स्वयम्भुवा सृष्टो युगान्तस्तोययोनिना।
इत्येवं दानवाः सर्वे मेनिरे त्रस्तचेतसः॥ २५

सहस्रों, लाखों और अर्बुदों दानवोंको दग्ध करने लगे। जो समस्त प्राणियोंके शरीरमें पाँच प्राणोंके रूपमें निवास करते हैं। जो अग्निदेवके सारथि और सखा हैं, जो प्रभावशाली तथा ईश्वर हैं। जो प्रलयकालमें समस्त लोकोंका भञ्जन करनेवाले और सर्वसंहारकारी हैं। जिनकी उत्पत्तिका कारणभूत आकाश श्रुतियोंद्वारा सप्तस्वरमय नादब्रह्मको प्राप्त बताया जाता है। जो आकाशमय देवता हैं, दूरतक जानेकी शक्ति रखते हैं तथा सबकी उत्पत्तिके कारण हैं। जो कर्ता (स्रष्टा) और विकर्ता (संहारक) हैं, जङ्गम प्राणियोंकी गति और प्रभु हैं। जो परमात्माके निःश्वासरूपसे वेदमन्त्रोंको प्रकट करनेवाले हैं। लोकमें चतुर्मुख ब्रह्माके समान सनातन पुरुष हैं तथा जिन्हें सबसे महान् अमूर्त महाभूत कहा गया है, उन सर्वप्रेरक वायुदेवने शमीगर्भसे उत्पन्न अग्निदेवको प्रेरणा देकर सबल बनाया॥ २—१६॥ वे स्वर्गलोकतक फैली हुई अपनी ज्वालाओंद्वारा दसों दिशाओंमें बढ़ने लगे और दानवोंका विनाश करनेके लिये प्रलयकालीन अग्निके समान उठ खड़े हुए॥ १७॥ मेदा और मज्जा जिसमें महान् पङ्क थे, जो केशरूपी सेवारोंसे सुशोभित होती थी, योद्धाओंके कटे हुए मस्तक जिसमें प्रस्तरखण्डोंके समान प्रतीत होते थे, मरे हुए हाथियोंकी लाशें जिसके ऊँचे तटोंकी भाँति जान पड़ती थीं तथा जिसमें रक्तरूपी जल बह रहा था, रणभूमिमें उस संग्राम-सरिताको देखकर दैत्योंका भय बढ़ानेवाले भगवान् अग्निदेवने उसे और भी तीव्र गतिसे प्रवाहित किया॥ १८-१९॥ तदनन्तर उस महासमरमें गर्जना करते हुए व्यापक अग्निदेव प्रह्लाद आदि समस्त दैत्योंको पराजित करने लगे॥ २०॥ किन्हींके मुकुट जलने लगे, किन्हींके सिरके बालोंमें आग लग गयी, किन्हींके कपड़े जलने लगे, किन्हींकी भुजाओं और मुखोंमें आग जल उठी, किन्हींकी जाँघें जल गयीं और किन्हींके छत्र, ध्वज तथा रथ जलकर भस्म हो गये। वहाँ समस्त असुर प्रज्वलित आगकी लपटोंसे घिरे दिखायी देने लगे॥ २१-२२॥ उस पावकसे पराजित एवं भयभीत हो समस्त दैत्य-दानव समरभूमिमें अपने सारे आयुधों और ध्वजसहित उत्तम रथोंको त्यागकर भागने लगे॥ २३॥ वे दानव सेनाके मुहानेपर प्रज्वलित हुई अग्निकी ओर नहीं देख पाते थे। उन्होंने सम्पूर्ण दिशाओं, खड्गों और मेघोंको भी जलता ही देखा॥ २४॥ वे त्रस्तचित्त समस्त दानव ऐसा मानने लगे कि निश्चय ही जलमें शयन करनेवाले स्वयम्भू नारायणदेव अथवा जलके कारणभूत अग्निदेवने प्रलय आरम्भ कर दिया है॥ २५॥

मयश्च शम्बरश्चैव महामायाधरौ तदा।
पार्जन्यवारुणी माये सृजतां वारिविक्षरे॥ २६

ताभ्यां वह्निःस मायाभ्यां सिच्यमानः समन्ततः।
तोयौघैः पर्वतनिभैर्मृद्वर्चिरभवद् रणे॥ २७

शम्यमाने तु समरे पावके दैत्यनाशिनि।
बृहत्कीर्तिर्बृहत्तेजा वह्निमाह बृहस्पतिः॥ २८

गुरुरुवाच

हिरण्यरेतः सुमुख ज्वलनाह्वय सर्वभुक्।
सप्तजिह्वानन क्षाम लेलिहान महाबल॥ २९

आत्मा वायुस्तव विभो शरीरं सर्ववीरुधः।
योनिरापश्च ते प्रोक्ता योनिस्त्वमसि चाम्भसः॥ ३०

ऊर्ध्वं चाधश्च गच्छन्ति संचरन्ति च पार्श्वतः।
अर्चिषस्ते महाभाग सर्वतः प्रभवन्ति च॥ ३१

त्वमेवाग्ने सर्वमसि त्वयि सर्वमिदं जगत्।
त्वं धारयसि भूतानि भुवनं त्वं बिभर्षि च॥ ३२

त्वमग्ने हव्यवाडेकस्त्वमेव परमं हविः।
यजन्ति च सदा सन्तस्त्वामेव परमाध्वरे॥ ३३

त्वमन्नं प्राणिनां भुङ्क्षे जगत्त्रातासि त्वं प्रभो।
त्वयि प्रवृत्तो विजयस्त्वयि लोकाः प्रतिष्ठिताः॥ ३४

सर्वाल्ँलोकांस्त्रीनिमान् हव्यवाह
प्राप्ते काले त्वं पचस्येव दीप्तः।
त्वमेवैकस्तपसे जातवेदो
नान्यस्त्वत्तो विद्यते गोषु देव॥ ३५

वृषाकपिः सिन्धुपतिस्त्वमग्ने
महामखेष्वग्र्यहरस्त्वमेव।
विश्वस्य भूम्नस्त्वमसि प्रसूति-
स्त्वं च प्रतिष्ठा भगवन् प्रजानाम्॥ ३६

सृजस्यपो रश्मिभिर्जातवेद-
स्तथौषधीरोषधीनां रसांश्च।
विश्वं त्वमादाय युगान्तकाले
स्रष्टा भवस्यानल सर्गकाले॥ ३७

मय और शम्बरासुर—ये दो दानव उन दिनों बड़े भारी मायावी थे। इन दोनोंने वहाँ पार्जन्य और वारुणास्त्ररूपिणी मायाओंकी सृष्टि की, जो जलकी वर्षा करनेवाली थीं॥ २६॥ उन दोनों मायाओंने जब पर्वतसदृश जल-प्रवाहोंसे अग्निदेवको सब ओरसे सींचना आरम्भ किया, तब उस रणभूमिमें उनकी ज्वाला कुछ मन्द हो गयी॥ २७॥ समराङ्गणमें दैत्यनाशन अग्निदेवके शान्त होनेपर महायशस्वी एवं महातेजस्वी बृहस्पतिने उन्हें सम्बोधित करके कहा॥ २८॥

बृहस्पति बोले—अग्निदेव! सुवर्ण आपका वीर्य है, मुख सुन्दर है। आप ज्वलन नामसे विख्यात हैं, सर्वभोक्ता हैं। आपके मुखमें सात जिह्वाएँ हैं। आप सबको क्षीण करनेवाले हैं। लपलपाती जिह्वाओंसे सबको चाट जानेवाले महाबली पावक! आपकी जय हो॥ २९॥ विभो! वायु आपकी आत्मा है। सब प्रकारके वृक्ष-वनस्पति आपके शरीर हैं। जलको आपकी योनि बताया गया है और आप भी जलकी योनि हैं॥ ३०॥ महाभाग! आपकी ज्वालाएँ ऊपर और नीचेको जाती हैं, पार्श्वभाग (अगल-बगल)-में भी संचरण करती हैं तथा सब ओरसे उनका प्रादुर्भाव होता है॥ ३१॥ अग्ने! आप ही सब कुछ हैं। यह सम्पूर्ण जगत् आपमें ही प्रतिष्ठित है। आप समस्त भूतों और सम्पूर्ण भुवनोंका धारण-पोषण करते हैं॥ ३२॥ अग्ने! एकमात्र आप ही देवताओंके पास हविष्य पहुँचानेवाले हैं। आप ही उत्तम हविष्य हैं। साधु पुरुष श्रेष्ठ यज्ञमें सदा आपका ही यजन करते हैं॥ ३३॥ प्रभो! आप समस्त प्राणियोंका अन्न खाते हैं और सारे जगत्‌की रक्षा करते हैं। आपमें ही विजयकी प्रवृत्ति होती है और आपमें ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं॥ ३४॥ हव्यवाहन! आप प्रलयका समय आनेपर प्रज्वलित हो इस सम्पूर्ण त्रिलोकीको जला-पचा डालते हैं। अग्निदेव! एकमात्र आप ही सूर्यरूपसे तपते हैं। आपके सिवा दूसरा कोई उन किरणोंमें ताप देनेवाला नहीं है॥ ३५॥ अग्ने! आप ही सूर्यरूपसे जलको बरसाते और सोखते हैं। आप ही सिन्धुपति हैं तथा आप ही बड़े-बड़े यज्ञोंमें अग्रभागके अधिकारी हैं। भगवन्! इस विराट् विश्वके प्रसवस्थान भी आप ही हैं तथा आप ही समस्त प्रजाओंके आधार हैं॥ ३६॥ अग्निदेव! आप अपनी किरणोंसे जलकी सृष्टि करते हैं। आप ही ओषधियों तथा उनके रसोंके उत्पादक हैं। अनल! आप युगान्तकालमें सम्पूर्ण विश्वको लेकर अपने-आपमें विलीन कर लेते हैं तथा सृष्टिकालमें पुनः संसारके स्रष्टा होते हैं॥ ३७॥

त्वमग्ने सर्वभूतानां योनिर्वेदेषु गीयसे।
त्वया देवहितार्थाय निहता दानवा रणे॥ ३८

स्वयोनिस्ते महातेजस्तोयं मखशतार्चित।
तां स्वयोनिं समासाद्य किं विषीदसि पावक॥ ३९

त्रायस्व समरे देवान् दैत्येभ्यः सुरसत्तम।
पिङ्गाक्ष लोहितग्रीव कृष्णवर्त्मन् हुताशन॥ ४०

अग्निदेव! सम्पूर्ण वेदोंमें आप ही समस्त प्राणियोंकी योनि बताये गये हैं। देव! आपने ही देवताओंके हितके लिये रणभूमिमें दानवोंका वध किया है॥ ३८॥ सैकड़ों यज्ञोंद्वारा पूजित महातेजस्वी पावक! जल तो आपकी अपनी ही योनि है। उस अपनी ही योनिको पाकर आप विषाद क्यों करते हैं?॥ ३९॥ सुरश्रेष्ठ! कृष्णवर्त्मन्! पिङ्गलनेत्र! लोहितग्रीव! हुताशन! आप समराङ्गणमें देवताओंकी दैत्योंसे रक्षा करें॥ ४०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनेऽग्निस्तवे द्विषष्टितमोऽध्यायः॥ ६२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारके प्रसङ्गमें अग्निकी स्तुतिविषयक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६२॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

राजा बलिके प्रति प्रह्लादका वचन तथा बलिका देवसेनापर आक्रमण

वैशम्पायन उवाच

बृहस्पतेस्तु वचनं श्रुत्वा सत्यं समीरितम्।
भूयः प्रजज्वाल रणे हविषेव महामखे॥ १

हतास्तु माया दैत्यानां प्रदीप्तेनाग्निना रणे।
हतमाया हतबला बलिं ते समुपस्थिताः॥ २

पराजितेषु दैत्येषु वह्निनाद्भुतकर्मणा।
प्रह्लादस्तूत्तमं वाक्यमाह दैत्यपतिं बलिम्॥ ३

भवानग्निश्च वायुश्च भास्करः सलिलं शशी।
नक्षत्राणि दिशो व्योम भूश्च दानवसत्तम॥ ४

भविष्यं चैव भूतं च भवच्चासुरसत्तम।
दत्तं चैतद् भगवता वरदेन स्वयम्भुवा॥ ५

इन्द्रत्वं चामरत्वं च युद्धे चाप्यपराजयः।
ईशित्वं च वशित्वं च बलं चैवामितं शुभम्॥ ६

सर्वभूतेश्वरत्वं च दैत्यराज सदा तव।
महायोगीश्वरत्वं च शूरत्वं च महामृधे॥ ७

अणिमा लघिमा चैव ये चान्ये सात्त्विका गुणाः।
तत्पराजित्य दैत्येन्द्र देवान् सर्वांश्च सानुगान्॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! बृहस्पतिकी कही हुई यह सच्ची बात सुनकर अग्निदेव उस रणक्षेत्रमें पुनः प्रज्वलित हो उठे, मानो किसी महायज्ञमें घृतकी आहुति पाकर वे फिरसे धधक उठे हों॥ १॥ समरभूमिमें प्रदीप्त अग्निके द्वारा दैत्योंकी सारी मायाएँ नष्ट कर दी गयीं। माया तथा बलके नष्ट हो जानेपर वे बलिकी सेवामें उपस्थित हुए॥ २॥ अद्भुत कर्म करनेवाले अग्निके द्वारा समस्त दैत्योंके परास्त कर दिये जानेपर प्रह्लादने दैत्यराज बलिसे यह उत्तम बात कही—॥ ३॥ 'दानवशिरोमणे! अग्नि, वायु, सूर्य, ज़ल, चन्द्रमा, नक्षत्र, दिशाएँ, आकाश तथा पृथ्वी—सब कुछ तुम्हीं हो॥ ४॥ असुरप्रवर! भूत, वर्तमान और भविष्य भी तुम्हीं हो। दैत्यराज! वरदायक भगवान् स्वयम्भूने तुम्हें यह वर दिया है कि तुम इन्द्रत्व और अमरत्व प्राप्त करोगे, युद्धमें तुम्हारी पराजय नहीं होगी। ईशित्व, वशित्व, अपरिमित शुभ बल तथा सम्पूर्ण भूतोंका अधीश्वरत्व तुम्हें सदा प्राप्त होगा। तुम महायोगीश्वर होओगे और महासमरमें शौर्य प्राप्त करोगे। अणिमा, लघिमा तथा अन्य जो सात्त्विक गुण हैं, वे भी तुम्हें सुलभ होंगे, अतः दैत्यराज! तुम सेवकोंसहित समस्त देवताओंको पराजित करके महान् ऐश्वर्य प्राप्त करो;

यथोक्तं ब्रह्मणा राजंस्तत्तथा न तदन्यथा।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा प्रह्लादस्य महात्मनः।
बलिः परमसंहृष्टः प्रायाच्छक्ररथं प्रति॥ ९
ततः प्रयान्तं त्रिदशेन्द्रसंनिधौ
महासुरेन्द्रं बलिमुत्तमश्रियम्।
तमञ्जसा जग्मुरभिप्रदक्षिणं
द्विजाश्च पुण्याः पशवश्च सत्तमाः॥ १०
महाजटाभारधरास्तपस्विन-
स्तदा तमाहुर्विधिमन्त्रमङ्गलैः।
अभिष्टुवन्तः कवयः स्वलंकृतं
बलिं प्रयान्तं रणमूर्धनि स्थिताः॥ ११
प्रतप्तजाम्बूनदचित्रभूषणै-
र्दिव्यैश्च रत्नैर्विविधैरलंकृतः।
विराजमानः परमेण वर्चसा
रणे विभात्यग्निशिखेव दानवः॥ १२
स वै तदा शत्रुबलार्दितं बलं
बलिर्ददर्शोत्तमसत्त्ववीर्यवान्।
जलागमे श्रीमदिवाभ्रमण्डलं
विशीर्यमाणं नभसीव वायुना॥ १३
ततो ददर्शाथ बलानि सर्वतो
रणे प्रगुप्तानि हुताशनेन वै।
समुच्छ्रितान्युग्रतराणि तत्र वै
समुद्रवेगानिव पर्वसंधिषु॥ १४
सशूलशक्त्यृष्टिगदासिसायकान्
क्षिपन् रिपूणां समरे महात्मनाम्।
ननाद सिंहर्षभमत्तनागव-
ज्जलागमे तोयदवच्च वीर्यवान्॥ १५
दिव्यास्त्रधूमः सुभुजोग्रवायु-
र्महाबलः पौरुषविक्रमेन्धनः।
प्रजा दिधक्षन्निव कालवह्निः
सुघोररूपो विबभौ रणे बलिः॥ १६

राजन्! ब्रह्माजीने जैसा कहा है; वह उसी रूपमें सत्य होगा। उसे कोई मिथ्या नहीं कर सकता। महात्मा प्रह्लादका वह वचन सुनकर राजा बलिको बड़ा हर्ष हुआ। वे उत्साहित होकर इन्द्रके रथकी ओर चले॥ ५—९॥ इन्द्रके समीप जाते हुए उत्तम शोभासे सम्पन्न महान् असुरेन्द्र बलिको उस समय पवित्र पक्षी और श्रेष्ठ पशु अनायास ही दाहिने करके गये॥ १०॥ उस समय युद्धके मुहानेपर स्थित हुए महान् जटाभारको धारण करनेवाले विद्वान् तपस्वी युद्धोपयोगी वेषभूषासे विभूषित होकर रणकी यात्रा करनेवाले राजा बलिकी विधिपूर्वक मङ्गलमय मन्त्रोंद्वारा स्तुति करने लगे॥ ११॥ तपाये हुए सुवर्णके विचित्र आभूषणों तथा नाना प्रकारके दिव्य रत्नोंसे अलंकृत हो उत्तम तेजसे प्रकाशमान दानवराज बलि रणभूमिमें अग्निशिखाके समान उद्‌भासित हो रहे थे॥ १२॥ उस समय उत्तम सत्त्व और बल-पराक्रमसे सम्पन्न राजा बलिने देखा कि शत्रुओंकी सेनाने मेरी सेनाको भलीभाँति पीड़ित कर दिया है। जैसे वर्षा-ऋतुमें शोभासम्पन्न मेघमण्डल आकाशमें वायुके द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया जाता है, उसी प्रकार दैत्यसेना तितर-बितर हो गयी है॥ १३॥ तदनन्तर उन्होंने देखा कि शत्रुओंकी सेनाएँ रणभूमिमें अग्निके द्वारा सब ओरसे सुरक्षित हैं। वे निरन्तर उत्कर्षके पथपर बढ़ती हुई उग्रतर होती चली जा रही हैं। जैसे पर्वसंधि (पूर्णिमा)-की वेलामें समुद्रोंके वेग बढ़ जाते हैं, उसी प्रकार शत्रुसेनाकी प्रगति उत्तरोत्तर बढ़ रही है॥ १४॥ तब वे पराक्रमी राजा बलि समरभूमिमें महामनस्वी शत्रुओंपर शूल, शक्ति, ऋष्टि, गदा, खड्ग और सायकोंकी वर्षा करते हुए सिंह, साँड, मतवाले हाथी और वर्षाकालके मेघकी भाँति जोर-जोरसे गर्जना करने लगे॥ १५॥ उस रणभूमिमें महाबलवान् राजा बलि समस्त प्रजाओंको दग्ध कर डालनेकी इच्छावाले प्रलयंकर अग्निके समान अत्यन्त घोर रूपमें प्रकाशित होने लगे। दिव्यास्त्र ही उन अग्निस्वरूप बलिके धूम थे। उत्तम भुजा ही उन्हें उत्तेजित करनेवाली भयंकर वायु थी और पुरुषार्थ एवं पराक्रम ही उस अग्निको उद्दीप्त करनेवाले ईंधन थे॥ १६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥ ६३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारविषयक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६३॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

बलि और इन्द्रका युद्ध तथा इन्द्रका रणभूमिसे पलायन

वैशम्पायन उवाच

बलिना तु सुराः सर्वे वर्जयित्वा सुराधिपम्।
रणे शरशतैर्भिन्नाः ससैन्या वै पराजिताः॥ १

विमुखा याति दैत्येन्द्रैर्वध्यमाना महाचमूः।
जितास्तु बलिना देवाः शक्रमाहुर्महाबलम्॥ २

देवा ऊचुः

भवानिन्द्रश्च धाता च लोकानां प्रभुरव्ययः।
त्वमप्रतिमकर्मा च तथैवानुपमद्युतिः॥ ३

विद्रुतानीह सैन्यानि सहास्माभिः सुरेश्वर।
रथचक्रध्वजाक्षाणि विभिन्नानि महासुरैः॥ ४

रथहस्त्यश्वयोधाश्च पदाताश्च सहस्रशः।
भिन्नच्छिन्नाश्च शतशो गदामुसलपट्टिशैः॥ ५

महाभैरवरूपं हि दैत्येन्द्रेण कृतं रणे।
किमुपेक्षसि दैत्येन्द्रैर्हन्यमानां महाचमूम्॥ ६

त्रायस्व त्रिदशश्रेष्ठ शरण्यः शरणागतान्।
श्रुत्वा तु वचनं तेषां देवानाममराधिपः॥ ७

संवर्ताग्निसमक्रुद्धः सर्वान् दहति दानवान्।
दिवाकरकराकारं किरीटं धारयन् प्रभुः॥ ८

वैदूर्यवर्णसंकाशो नानारत्नचिताङ्गदः।
मयूररोमा रक्ताक्षः शतबाहुः सहस्रदृक्॥ ९

हरिरेको हरिश्मश्रुर्नानाकेतुर्महाबलः।
वज्रप्रहरणः श्रीमान् योगी शतशिरोधरः॥ १०

सधनुर्बद्धसन्नाहः शतादित्यसमप्रभः।
देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राजा बलिने देवराज इन्द्रको छोड़कर शेष सभी देवताओंको सेनासहित पराजित कर दिया। वे रणभूमिमें उनके सैकड़ों बाणोंसे क्षत-विक्षत हो गये थे॥ १॥ दैत्येन्द्रोंकी मार खाती हुई देवताओंकी विशाल सेना रणभूमिसे विमुख होकर भाग चली। बलिसे पराजित हुए देवता महाबली इन्द्रके पास गये और इस प्रकार बोले॥ २॥

देवताओंने कहा—देवराज! आप ही इन्द्र (महान् ऐश्वर्यशाली) हैं, आप ही सम्पूर्ण लोकोंके धारण-पोषण करनेवाले अविनाशी प्रभु हैं। आपके वीरोचित कर्मोंकी कहीं उपमा नहीं है। आप अनुपम तेजसे सम्पन्न हैं॥ ३॥ सुरेश्वर! बड़े-बड़े असुरोंने हमारे साथ ही समस्त देव-सैनिकोंको यहाँ मार भगाया है और हमारे रथोंके पहिये, ध्वज तथा धुरे तोड़ डाले हैं॥ ४॥ सैकड़ों रथी, हाथीसवार, घुड़सवार तथा सहस्रों पैदल सैनिक गदा, मुसल और पट्टिशोंकी मारसे छिन्न-भिन्न होकर रणभूमिमें पड़े हैं॥ ५॥ दैत्यराज बलिने रणभूमिमें महाभयंकर रूप धारण किया है। दैत्येन्द्रोंद्वारा मारी जाती हुई विशाल देवसेनाकी आप उपेक्षा क्यों कर रहे हैं? देवश्रेष्ठ! आप शरणागतवत्सल हैं, अतः शरणमें आये हुए हम देवताओंकी रक्षा कीजिये। उन देवताओंका यह वचन सुनकर अमरेश्वर इन्द्र संवर्तक अग्निके समान कुपित हो समस्त दानवोंको दग्ध करने लगे। वे प्रभावशाली देवराज सूर्यदेवकी किरणोंके समान कान्तिमान् किरीट धारण किये हुए थे। उनका वर्ण वैदूर्यमणिके समान था। उनके बाजूबन्दोंमें नाना प्रकारके रत्न जड़े गये थे। उनकी रोमावलि मोरोंके समान और आँखें लाल थीं। वे सौ बाँहों तथा सहस्र नेत्रोंसे सुशोभित थे॥ ६—९॥ वे इन्द्र अद्वितीय वीर थे। उनकी मूँछें हरे रंगकी थीं। उनके रथपर नाना प्रकारकी ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं। वे महान् बलशाली थे। वज्र ही उनका आयुध था। वे सौ सिर धारण करनेवाले तेजस्वी योगी थे॥ १०॥ कवच बाँधकर हाथमें धनुष लिये देवराज इन्द्र सौ सूर्योंके समान दिव्य प्रभासे प्रकाशित हो रहे थे। सहस्रों देवता, गन्धर्व और यक्षोंके समुदाय उनके पीछे-पीछे चलते थे॥ ११॥

सामगैश्च जयैश्चापि स्तूयमानो महर्षिभिः।
शतपर्वं महारौद्रं स्फोटनं सर्वतोमुखम्॥ १२
प्रगृह्य रुचिरं वज्रं दीप्तं रौद्राट्टहासनम्।
दैत्यानयोधयत् सर्वान् महेन्द्रः पाकशासनः॥ १३
अधृष्यः सर्वभूतानामदित्या दयितः सुतः।
ततः प्रवृत्तः संग्रामो बलिवासवयोस्तदा॥ १४
उभाभ्यां देवदैत्याभ्यामचिरान्महदद्भुतः।
अतिवीर्यबलोदग्रस्तुमुलो लोमहर्षणः॥ १५
प्रह्लादेन स्तुतिशतैः कर्मभिर्जयसम्मतैः।
प्रबोधितो दैत्यपतिरग्निरिद्ध इवाबभौ॥ १६
सुरासुरेन्द्रयोर्दृष्ट्वा संग्रामं लोमहर्षणम्।
देवानां दानवानां च भूयो युद्धमभूत् तदा॥ १७
ततोऽविध्यन्महेन्द्रस्तं बलिमस्त्रैर्महाबलम्।
तान्यस्त्राणि महाबाहुश्चिच्छेद शतधा रणे॥ १८
ततः क्रुद्धः पुनस्तत्र निजघ्ने दानवं महत्।
आग्नेयमथ शत्रुघ्नं चिक्षेपेन्द्रो महाबलः॥ १९
तद् दृष्ट्वा खे समागच्छत् प्रलयानलसंनिभम्।
पातयामास तच्चैन्द्रं वारुणास्त्रेण दानवः॥ २०
संक्रुद्धो मघवा वज्रमगृह्णात् पर्वतोपमम्।
हन्तुकामो रणश्लाघी बलिं दैत्याधिपं रणे॥ २१
ततः शुश्राव देवेन्द्रः कौशिको हरिवाहनः।
अशरीरां शुभां वाणीं तस्मिन् महति वैशसे॥ २२
निवर्तस्व महाबाहो सुराणां नन्दिवर्धन।
पुरन्दर सुरश्रेष्ठ न जेष्यसि रणे बलिम्॥ २३
तपसात्युत्तमो दैत्यो वरदानेन चाधिकः।
स्वयंभूपरितोषाच्च सत्यधर्माच्च वासव॥ २४
नैष शक्यस्त्वया जेतुं त्रिदशैर्वा सुरेश्वर।
यो ह्यस्य जेता भगवांस्तं शृणुष्व समाहितः॥ २५
ब्रह्मणः स हि सर्वस्वं देवानां चैव सा गतिः।
परं रहस्यं धर्मस्य परस्य च परा गतिः॥ २६

सामगान करनेवाले महर्षि जय-जयकार करते हुए उनकी स्तुति करते थे। वे पाकशासन महेन्द्र तोड़-फोड़ करनेवाले, महाभयंकर, सब ओर मुखवाले तथा रौद्र अट्टहास (गड़गड़ाहट) करनेवाले, सौ पर्वोंसे युक्त, दीप्तिमान् एवं मनोहर वज्र हाथमें लेकर समस्त दैत्योंके साथ युद्ध करने लगे। अदितिके प्रिय पुत्र वे देवराज इन्द्र समस्त प्राणियोंके लिये अजेय थे। तदनन्तर शीघ्र ही राजा बलि और इन्द्रमें महान् अद्भुत संग्राम होने लगा। उनमेंसे एक देवता था, दूसरा दैत्य। उन दोनोंका वह संग्राम अत्यन्त बल-पराक्रमसे बढ़ा-चढ़ा, भयंकर और रोमाञ्चकारी था॥ १२—१५॥ प्रह्लादने सैकड़ों स्तुतियों और विजयके लिये अनुमोदित कर्मोंका वर्णन करके दैत्यराज बलिके शौर्य और उत्साहको जगाया, जिससे वे प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित होने लगे॥ १६॥ देवेन्द्र और असुरेन्द्रके उस रोमाञ्चकारी संग्रामको देखकर उस समय दूसरे-दूसरे देवताओं और दानवोंमें भी फिर युद्ध होने लगा॥ १७॥ महेन्द्रने महाबलवान् बलिको अपने अस्त्रोंद्वारा घायल कर दिया। तब महाबाहु बलिने रणभूमिमें इन्द्रके चलाये हुए उन सभी अस्त्रोंके सौ-सौ टुकड़े कर डाले॥ १८॥ तब महाबली इन्द्रने कुपित होकर पुनः वहाँ महान् दानवदलका संहार आरम्भ किया। उन्होंने शत्रुनाशक आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया॥ १९॥ प्रलयाग्निके समान तेजस्वी उस आग्नेयास्त्रको आकाशमें आता देख दानव बलिने वारुणास्त्रके द्वारा इन्द्रके छोड़े हुए उस अस्त्रको काट गिराया॥ २०॥ तब क्रोधमें भरे हुए रणश्लाघी इन्द्रने रणभूमिमें दैत्यराज बलिका वध करनेके लिये पर्वताकार वज्र हाथमें लिया॥ २१॥ इतनेहीमें हरे रंगके वाहनवाले कौशिक देवेन्द्रने उस महासंग्रामके भीतर यह शुभ आकाशवाणी सुनी॥ २२॥ 'महाबाहो! युद्धसे निवृत्त हो जाओ! देवताओंका आनन्द बढ़ानेवाले सुरश्रेष्ठ पुरन्दर! तुम बलिको रणभूमिमें नहीं जीत सकोगे॥ २३॥ वासव! दितिनन्दन बलि तपस्यासे तो अत्यन्त उत्तम है ही, वरदानके द्वारा भी तुमसे अधिक शक्तिशाली हो गया है; ब्रह्माजीके संतोषसे तथा सत्यधर्मके पालनसे भी इसकी शक्ति बढ़ गयी है॥ २४॥ सुरेश्वर! तुम अथवा दूसरे देवता भी इसे नहीं जीत सकते। जो भगवान् इसपर विजय पानेवाले हैं, उन्हें बताता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो॥ २५॥ वे ब्रह्माजीके सर्वस्व हैं, देवताओंकी भी गति हैं, धर्मके परम रहस्य हैं तथा उत्कृष्ट पुरुषकी भी परम गति हैं'॥ २६॥

परात्परतरः श्रीमान् परावरगतिः प्रभुः।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥ २७

शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासाः सुरारिहा।
जेताजेयो जयः श्रीमान् सोऽस्य जेता भविष्यति॥ २८

श्रुत्वा दिव्यां तु मधुरां वाणीं तामशरीरिणीम्।
अपयातो रणाच्छक्रः सार्धं सर्वैः सुरोत्तमैः॥ २९

अपयाते तु देवेन्द्रे कौशिके हरिवाहने।
सिंहनादो महानासीद् दानवानां महामृधे॥ ३०

ततः किलकिलाशब्दः क्ष्वेडितास्फोटितस्वनः।
शङ्खानां निनदश्चात्र योधानां वल्गितस्वनः॥ ३१

वादित्राणां च निर्घोषस्तुमुलश्चाभवत्तदा।
जयशब्दरवाश्चैव देवानां तु पराजये॥ ३२

ससैन्यो दैत्यराजस्तु स्तूयमानः सुहृद्गणैः।
बलीन्द्रो विबभौ दैत्यो हिरण्यकशिपुर्यथा॥ ३३

'वे भगवान् परसे भी परतर (उत्तमसे भी परमोत्तम) हैं; लक्ष्मीसे सम्पन्न हैं तथा वे ही कारण और कार्य अथवा भूत और भविष्यकी भी गति हैं। वे सबके अन्तर्यामी आत्मा हैं। उनके सहस्रों सिर, सहस्रों नेत्र और सहस्रों पैर हैं॥ २७॥ उनके हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा आदि आयुध शोभा पाते हैं। वे पीताम्बरधारी तथा देवद्रोहियोंका दलन करनेवाले हैं। वे श्रीमान् भगवान् सबपर विजय पाते हैं, किंतु उन्हें कोई नहीं जीत सकता। वे विजयस्वरूप हैं। वे ही इस बलिपर विजय प्राप्त करेंगे'॥ २८॥ वह दिव्य मधुर आकाशवाणी सुनकर समस्त श्रेष्ठ देवताओंके साथ इन्द्र रणभूमिसे हट गये॥ २९॥ हरिवाहन देवराज इन्द्रके पलायन कर जानेपर उस महासमरमें दानवोंका महान् सिंहनाद होने लगा॥ ३०॥ तदनन्तर किलकारियोंकी आवाज आने लगी, गर्जने और ताल ठोंकनेका शब्द सुनायी देने लगा, शङ्खोंकी ध्वनि होने लगी और योद्धाओंके उछलने-कूदनेकी आवाज भी वहाँ सब ओर होने लगी॥ ३१॥ उस समय देवताओंकी पराजय होनेपर दैत्योंके दलमें नाना प्रकारके वाद्योंका तुमुल घोष होने लगा और जय-जयकारके शब्द सुनायी देने लगे॥ ३२॥ सुहृदोंके समुदाय सेनासहित दैत्यराज बलिकी स्तुति करने लगे। उस समय इन्द्रपदपर प्रतिष्ठित हुए राजा बलि दैत्यप्रवर हिरण्यकशिपुके समान शोभा पाने लगे॥ ३३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे देवासुरसंग्रामे शक्रापयाने चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥ ६४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारके प्रसङ्गमें देवासुरसंग्राममें इन्द्रका पलायनविषयक चौंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६४॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

विजयी बलिके पास राजलक्ष्मी आदिका शुभागमन

वैशम्पायन उवाच

निष्प्रयत्नेषु देवेषु त्रैलोक्ये दैत्यपालिते।
जये बलेर्बलवतो मयशम्बरयोस्तथा॥ १

सुधासु दिक्षु सर्वासु प्रवृत्ते धर्मकर्मणि।
अपावृत्ते धर्मपथे अयनस्थे दिवाकरे॥ २

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर देवता विजयके लिये प्रयत्न छोड़ बैठे और त्रिलोकीके राज्यका दैत्यराज बलिके द्वारा पालन होने लगा। बलवान् बलि, मयासुर और शम्बरासुरकी विजय हुई॥ १॥ सम्पूर्ण दिशाएँ अमृतमयी हो गयीं, धर्म-कर्मका पालन होने लगा। धर्मका मार्ग खुल गया और सूर्यदेव अपने अयनमें स्थित हो गये॥ २॥

प्रह्लादशम्बरमयैरनुह्लादेन चैव हि।
दिक्षु सर्वासु गुप्तासु गगने दैत्यपालिते॥ ३

दैत्येषु मखशोभाश्च स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च।
प्रकृतिस्थे तदा लोके वर्तमाने च सत्पथे॥ ४

अभावे सर्वपापानां भावे चैव तथा स्थिते।
भावे तपसि सिद्धानां सर्वत्राश्रमरक्षिषु॥ ५

चतुष्पादे स्थिते धर्मे अधर्मे पादविग्रहे।
प्रजापालनयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु॥ ६

स्वधर्मसम्प्रयुक्तेषु सर्वाश्रमनिवासिषु।
अभिषिक्तोऽसुरैः सर्वैर्दैत्यराजो बलिस्तदा॥ ७

हृष्टेष्वसुरसंघेषु नदत्सु मुदितेषु च।
अथाभ्युपगता लक्ष्मीर्बलिं पद्मासने स्थिता॥ ८
पद्मोद्यतकरा देवी वरदा सुरमोहिनी।

श्रीरुवाच

बले बलवतां श्रेष्ठ महाराज महाद्युते॥ ९

प्रीतास्मि तव भद्रं ते देवतानां पराजये।
यस्त्वया युधि विक्रम्य देवराजः पराजितः॥ १०

दृष्ट्वा ते परमं सत्त्वं ततोऽहं स्वयमागता।
नाश्चर्यं दानवश्रेष्ठ हिरण्यकशिपोः कुले॥ ११

प्रसूतस्यासुरेन्द्रस्य तव कर्मेदमीदृशम्।
विशेषितस्त्वया राजन् दैत्येन्द्रः प्रपितामहः॥ १२

येन भुक्तं हि निखिलं त्रैलोक्यमिदमव्ययम्।
विशेषतस्तव विभो सर्वे धर्मपथे स्थिताः॥ १३

तेन त्रैलोक्यमुख्येन भोक्ष्यस्यमितविक्रम।
एवमुक्त्वा हि सा देवी लक्ष्मीर्दैत्यपतिं बलिम्॥ १४
प्रविष्टा वरदा सौम्या सर्वभूतमनोरमा।

प्रह्लाद, शम्बरासुर, मयासुर और अनुह्लादके द्वारा सम्पूर्ण दिशाएँ सुरक्षित हो गयीं। आकाशका दैत्योंद्वारा पालन होने लगा। दैत्यलोग स्वर्गकी प्राप्तिके लिये यज्ञशोभाका दर्शन कराने लगे। उस समय सारा जनसमुदाय प्रकृतिस्थ होकर सन्मार्गपर चलने लगा। सब प्रकारके पापोंका अभाव हो गया। पुण्यकर्मकी व्यापक सत्ता दिखायी देने लगी। सिद्ध पुरुषोंकी तपस्यामें स्थिति हुई। सर्वत्र आश्रमोंकी रक्षा होने लगी। धर्म अपने चारों चरणोंसे युक्त होकर रहने लगा। अधर्मका चतुर्थांशमात्र ही शेष रह गया। तेजस्वी राजा प्रजापालनमें तत्पर रहने लगे और सभी आश्रमोंके निवासी अपने-अपने धर्ममें स्थित हो गये। ऐसे समयमें समस्त असुरोंने दैत्यराज बलिका इन्द्रके पदपर अभिषेक किया॥ ३—७॥ उस समय असुरोंके समुदाय हर्षमें भर गये और आनन्दमग्न होकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। इसी समय कमलके आसनपर विराजमान राजलक्ष्मी राजा बलिके पास आयीं। देवताओंको मोहनेवाली उन वरदायिनी देवीने अपने हाथमें एक कमलका फूल ले रखा था॥ ८½॥

लक्ष्मी बोलीं—बलवानोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी महाराज बलि! तुम्हारा भला हो। तुमने जो देवताओंको पराजित किया है, इससे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हुई हूँ। तुमने युद्धमें पराक्रम करके जो देवराज इन्द्रपर विजय पायी है, तुम्हारे उस उत्तम सत्त्व (धैर्य और बल)-को देखकर मैं स्वयं तुम्हारे पास चली आयी हूँ। दानवशिरोमणे! तुम असुरराज हिरण्यकशिपुके कुलमें उत्पन्न हुए हो, अतः तुम्हारा ऐसा पराक्रम करना आश्चर्यकी बात नहीं है। राजन्! तुमने अपने प्रपितामह उस दैत्यराज हिरण्यकशिपुका महत्त्व बढ़ा दिया, जिसने प्रवाहरूपसे सदा बने रहनेवाले इस समस्त त्रिभुवनके राज्यका उपभोग किया है। प्रभो! सबसे विशेष बात यह है कि तुम्हारे राज्यमें सब लोग धर्मके मार्गपर स्थित हैं। अमितपराक्रमी दैत्यराज! उस त्रिलोकीकी श्रेष्ठ वस्तु धर्मके साथ रहकर तुम राज्यका उपभोग करोगे। ऐसा कहकर सम्पूर्ण प्राणियोंके मनको प्रिय लगनेवाली सौम्यरूपा वरदायिनी लक्ष्मीदेवी दैत्यराज बलिके भीतर प्रविष्ट हो गयीं।

शिष्टाश्च देव्यः प्रवरा ह्रीः कीर्तिर्द्युतिरेव च॥ १५
प्रभा धृतिः क्षमा भूतिर्नीतिर्विद्या दया स्मृतिः।
कृतिर्लज्जा तथा मेधा लक्ष्मीरीहा गतिस्तथा॥ १६
श्रुतिः प्रीतिरिला कीर्तिः शान्तिः पुष्टिः क्रियास्तथा।
सर्वाश्चाप्सरसो दिव्या नृत्यगीतविशारदाः॥ १७
पतिं प्राप्ताः सुदैतेयं त्रैलोक्ये सचराचरे।
प्राप्तमैश्वर्यममितं बलिना ब्रह्मवादिना॥ १८

शेष जो श्रेष्ठ देवियाँ थीं, उन कीर्ति, द्युति, प्रभा, धृति, क्षमा, भूति, नीति, विद्या, दया, स्मृति, कृति, लज्जा, मेधा, लक्ष्मी, ईहा, गति, श्रुति, प्रीति, इला (श्रौतक्रिया), कीर्ति, शान्ति, पुष्टि तथा क्रिया आदिने एवं नृत्यगीतविशारद सम्पूर्ण दिव्य अप्सराओंने उत्तम दैत्यकुमार राजा बलिको पति (पालक)-रूपमें प्राप्त किया। ब्रह्मवादी बलिने चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीमें असीम ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया॥ ९—१८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥ ६५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारविषयक पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६५॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

अदिति और कश्यपजीके साथ देवताओंका ब्रह्मलोकमें जाना

जनमेजय उवाच

पराजिताः सुरा दैत्यैः किमकुर्वत वै मुने।
कथं च त्रिदिवं लब्धं भूयो देवैर्द्विजोत्तम॥ १

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा वाणीं तु तां दिव्यां सह देवैः सुराधिपः।
प्राग्दिशं प्रस्थितः श्रीमानदित्यालयमुत्तमम्॥ २
प्राप्यादित्यालयं शक्रः कथयामास तां गिरम्।
अदित्यां सा यथा युद्धे तेन वाणी पुरा श्रुता॥ ३

अदितिरुवाच

यद्येवं पुत्र युष्माभिर्न शक्यो हन्तुमाहवे।
बलिर्विरोचनसुतः सर्वैश्चैव मरुद्गणैः॥ ४
सहस्रशिरसा हन्तुं केवलं शक्यतेऽसुरः।
तेनैकेन सहस्राक्ष न ह्यन्येन शतक्रतो॥ ५
तद् वः पृच्छस्व पितरं कश्यपं सत्यवादिनम्।
पराजयार्थं दैत्यस्य बलेस्तस्य महात्मनः॥ ६
ततोऽदित्या सह सुराः सम्प्राप्ताः कश्यपान्तिकम्।
अपश्यन् कश्यपं तत्र मुनिं दिव्यतपोनिधिम्॥ ७

जनमेजयने पूछा—मुने! द्विजश्रेष्ठ! दैत्योंसे पराजित होकर देवताओंने क्या किया? फिर उन्हें स्वर्गका राज्य कैसे प्राप्त हुआ?॥ १॥

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! देवताओंसहित श्रीमान् देवराज इन्द्र उस दिव्य आकाशवाणीको सुनकर पूर्व दिशामें देवी अदितिके उत्तम भवनकी ओर चल दिये॥ २॥ अदितिके भवनमें पहुँचकर इन्द्रने युद्धस्थलमें पहले जो आकाशवाणी सुनी थी, उसे वहाँ माता अदितिके समीप कह सुनाया॥ ३॥

अदिति बोलीं—बेटा! सहस्रलोचन! शतक्रतो! यदि ऐसी बात है, यदि तुमलोग और समस्त मरुद्गण भी रणक्षेत्रमें विरोचनकुमार बलिका वध नहीं कर सकते, यदि वह असुर केवल उन एकमात्र सहस्र मस्तकवाले भगवान्‌के हाथसे ही मारा जा सकता है, दूसरे किसीके हाथसे नहीं तो तुम अपने सत्यवादी पिता कश्यपजीसे पूछो कि दितिनन्दन महात्मा बलिकी पराजयके लिये क्या उपाय हो सकता है?॥ ४—६॥ तब सब देवता माता अदितिके साथ अपने पिता कश्यपजीके समीप गये। वहाँ उन्होंने दिव्य तपोनिधि मुनिवर कश्यपजीका दर्शन किया॥ ७॥

आद्यं देवं गुरुं दिव्यं क्लिन्नं त्रिषवणाम्बुभिः।
तेजसा भास्कराकारं गौरमग्निशिखाप्रभम्॥ ८

न्यस्तदण्डं तपोयुक्तं बद्धकृष्णाजिनोत्तरम्।
वल्कलाजिनसंवीतं प्रदीप्तं ब्रह्मवर्चसा॥ ९

हुताशमिव दीप्यन्तमाज्यमन्त्रपुरस्कृतम्।
स्वाध्यायनिरतं शान्तं वपुष्मन्तमिवानलम्॥ १०

तं ब्रह्मवादिनां श्रेष्ठं सुरासुरगुरुं प्रभुम्।
प्रतपन्तमिवादित्यं मारीचं दीप्ततेजसम्॥ ११

यः स्रष्टा सर्वभूतानां प्रजानां पतिरुत्तमः।
आत्मभावविशेषेण तृतीयो यः प्रजापतिः॥ १२

ततः प्रणम्य ते वीराः सहादित्या सुरर्षभाः।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे ब्रह्माणमिव मानसाः॥ १३

यच्छ्रुतं युधि शक्रेण सरस्वत्या समीरितम्।
अजेयस्त्रिदशैः सर्वैर्बलिर्दानवसत्तमः॥ १४

श्रुत्वा तु वचनं तेषां पुत्राणां कश्यपस्तदा।
चकार गमने बुद्धिं ब्रह्मलोकाय लोककृत्॥ १५

कश्यप उवाच

गच्छाम ब्रह्मसदनं ब्रह्मघोषनिनादितम्।
यथाश्रुतं च तत्रैव ब्रह्मणे वदतानघाः॥ १६

वैशम्पायन उवाच

ततोऽदित्या सह सुरा यान्तं कश्यपमन्वयुः।
प्रस्थितं ब्रह्मसदनं देवर्षिगणसेवितम्॥ १७

ते मुहूर्तेन सम्प्राप्ता ब्रह्मलोकं दिवौकसः।
दिव्यैः कामगमैर्यानैर्महार्हैः सुमनोहरैः॥ १८

दिदृक्षवस्ते ब्रह्माणं तपसो राशिमव्ययम्।
अभ्यगच्छन्त विस्तीर्णां ब्रह्मणः परमां सभाम्॥ १९

षट्पदोद्गीतनिनदां सामगीतविमिश्रिताम्।
श्रेयस्करीममित्रघ्नीं दृष्ट्वा संजहृषुर्मुदा॥ २०

वे आदिदेवता और दिव्य गुरु हैं। तीनों समय स्नान करनेके कारण उनका शरीर जलसे भीगा रहता है। वे सूर्यके समान तेजस्वी हैं। उनका गौरवर्ण अग्निशिखाके समान प्रकाशित होता है॥ ८॥ उन्होंने दण्डका परित्याग कर दिया है। वे तपस्यामें संलग्न रहते हैं। उनके ऊपरके अङ्गोंमें उत्तरीयके रूपमें काला मृगचर्म बँधा होता है। वे वल्कल और मृगचर्मसे ही अपने शरीरको ढकते हैं। ब्रह्मतेजसे सदा ही उद्दीप्त रहते हैं॥ ९॥ मन्त्रोच्चारणपूर्वक घीकी आहुति देनेसे प्रज्वलित हुए अग्निदेवके समान वे सदा देदीप्यमान होते रहते हैं। सदा स्वाध्यायमें तत्पर रहनेवाले और शान्त हैं, शरीरधारी अग्निके समान जान पड़ते हैं॥ १०॥ वे ब्रह्मवादियोंमें श्रेष्ठ, देवताओं और असुरोंके पिता तथा प्रभावशाली हैं। तपते हुए सूर्यके समान उनका तेज सदा ही उद्दीप्त रहता है। उन मरीचिनन्दन कश्यपको देवताओंने देखा॥ ११॥ जो समस्त प्राणियोंके स्रष्टा उत्तम प्रजापति ब्रह्मा हैं, उनके आत्मभावकी विशेषरूपसे अभिव्यक्ति होनेके कारण कश्यपजी (ब्रह्मा और मरीचिकी अपेक्षा) तीसरे प्रजापति हैं॥ १२॥ अदितिसहित उन सभी वीर एवं श्रेष्ठ देवताओंने कश्यपजीको प्रणाम करके उनसे हाथ जोड़कर उसी प्रकार कहना आरम्भ किया, जैसे ब्रह्माजीके मानसपुत्र उनसे अपनी बात निवेदन करते हैं॥ १३॥ युद्धस्थलमें इन्द्रने आकाशवाणीद्वारा कही गयी जो यह बात सुनी थी कि दानवशिरोमणि बलि समस्त देवताओंके लिये अजेय हैं, उसे कह सुनाया॥ १४॥ उस समय अपने उन पुत्रोंकी यह बात सुनकर लोकस्रष्टा कश्यपजीने ब्रह्मलोकमें जानेका विचार किया॥ १५॥

कश्यपजी बोले—निष्पाप देवताओ! हमलोग वेदमन्त्रोंके घोषसे प्रतिध्वनित होनेवाले ब्रह्मलोकको चलें। वहीं वह बात, जैसी तुमने सुनी है वैसी ही ब्रह्माजीके समक्ष कहो॥ १६॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तब अदितिसहित समस्त देवता देवर्षियोंद्वारा सेवित ब्रह्मलोककी ओर प्रस्थित हुए कश्यपजीके साथ-साथ गये॥ १७॥ वे सब देवता इच्छानुसार चलनेवाले परम मनोहर बहुमूल्य दिव्य विमानोंद्वारा दो ही घड़ीमें ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे॥ १८॥ वे तपस्याकी अक्षय राशि ब्रह्माजीको देखनेके लिये उनकी अत्यन्त विस्तृत उत्तम सभामें गये॥ १९॥ वहाँ भ्रमरोंका गुञ्जारव गूँज रहा था। उसमें सामगानकी ध्वनि भी मिश्रित थी। वह सभा सबके लिये कल्याणकारिणी और शत्रुओंका नाश करनेवाली थी। उसे देखकर उन सब लोगोंको बड़ा हर्ष हुआ॥ २०॥

ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः।
ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च शिक्षाविद्भिस्तथा द्विजैः॥ २१

शब्दनिर्वचनार्थं च प्रेर्यमाणपदाक्षराः।
शुश्रुवुस्तेऽमरव्याघ्रा विततेषु च कर्मसु॥ २२

यज्ञवेदाङ्गविदुषां पदक्रमविदां तथा।
घोषेण परमर्षीणां सा बभूव निनादिता॥ २३

यज्ञसंस्तवविद्भिश्च शिक्षाविद्भिस्तथा द्विजैः।
शब्दनिर्वचनार्थज्ञैः सर्वविद्याविशारदैः॥ २४

मीमांसाहितवाक्यज्ञैः सर्ववादविशारदैः।
हृष्टपुष्टस्वरैस्तत्र द्विजेन्द्रैर्वल्गुवादिभिः।
नादितं ब्रह्मसदनं प्रवरं देवसद्मवत्॥ २५

ते तत्र समनुप्राप्य शृण्वन्तो वै ध्वनिं सुराः।
पूतान्यात्मशरीराणि मेनिरे तु न संशयः॥ २६

तूष्णींभूता एकचित्ता ब्रह्मण्यागतमानसाः।
विस्मयोत्फुल्लनयना निरीक्षन्तः परस्परम्॥ २७

नमस्कुर्वन्ति च पुनर्गुरुं लोकगुरुं प्रभुम्।
मनसैव सुरश्रेष्ठाः पुरस्कृत्य तु कश्यपम्॥ २८

पुनः सम्पूज्य परमं वेदोच्चारणनिःस्वनम्।
गम्भीरोदारमधुरं सुस्वरं हंसगद्गदम्॥ २९

ऐक्यनानात्वसंयोगसमवायविशारदैः।
लोकायतिकमुख्यैश्च शुश्रुवुः स्वनमीरितम्॥ ३०

तत्र तत्र च विप्रेन्द्रान् नियतान् संशितव्रतान्।
जपहोमपरान् मुख्यान् ददृशुः कश्यपात्मजाः॥ ३१

तस्यां सभायामास्ते स्म ब्रह्मा लोकपितामहः।
सुरासुरगुरुः श्रीमान् विधिवद् देवमायया॥ ३२

वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान् महाभाग ब्राह्मण, ऋग्वेद-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ तथा शिक्षाके ज्ञाता द्विज ऋचाओंका पाठ करते थे॥ २१॥ उन अमरश्रेष्ठ देवताओंने आयोजित हुए यज्ञकर्मोंमें शब्दकी व्युत्पत्तिके लिये ब्राह्मणोंद्वारा जिनके एक-एक पद और अक्षरोंका उच्चारण हो रहा था, उन ऋचाओंको सुना॥ २२॥ यज्ञ, वेद और वेदाङ्गोंके विद्वान् तथा पदपाठ और क्रमपाठके ज्ञाता महर्षियोंके वैदिक घोषसे वह ब्रह्माजीकी सभा प्रतिध्वनित हो रही थी॥ २३॥ जो यज्ञोंमें की जानेवाली स्तुतियोंके ज्ञाता, शिक्षाके विद्वान्, शब्दकी व्युत्पत्ति और अर्थके जानकार, सम्पूर्ण विद्याओंमें प्रवीण, मीमांसाके अनुकूल वेदवाक्योंके तात्पर्यको जाननेवाले, सर्ववादविशारद, हृष्ट-पुष्ट स्वरसे युक्त तथा मधुरभाषी थे, उन्हीं द्विजेन्द्रोंद्वारा किये गये वेदघोषसे प्रतिध्वनित वह श्रेष्ठ ब्रह्मसदन देवसभाके समान सुशोभित होता था॥ २४-२५॥ वहाँ पहुँचकर उस ध्वनिको सुनते हुए वे देवता निःसंदेह अपने शरीरोंको पवित्र मानने लगे॥ २६॥ वे श्रेष्ठ देवता मौन और एकचित्त हो ब्रह्माजीमें मन लगाये आश्चर्यचकित नेत्रोंसे एक-दूसरेको देखते हुए कश्यपजीको आगे करके मन-ही-मन लोकगुरु भगवान् ब्रह्माको बारम्बार प्रणाम करने लगे॥ २७-२८॥ गम्भीर, उदार, मधुर, उत्तम स्वरसे युक्त और हंसके समान गद्गद वाणीमें उच्चारित वेदपाठकी उस उत्तम ध्वनिकी बार-बार प्रशंसा करके एकत्ववाद (जीव और ईश्वरकी एकताका प्रतिपादन), नानात्ववाद (जीव, ईश्वर और प्रकृति—इन तीन अनादि तत्त्वोंका प्रतिपादन), संयोगवाद (प्रकृति-पुरुषके संयोगसे सृष्टिका प्रतिपादन) तथा समवायवादमें प्रवीण पुरुषों एवं लोकायतिकशास्त्रके ज्ञाता मुख्य-मुख्य विद्वानोंद्वारा उच्चारित शब्दको भी उन देवताओंने सुना॥ २९-३०॥ कश्यपके उन पुत्रोंने वहाँ भिन्न-भिन्न स्थानोंमें बहुत-से ब्राह्मणशिरोमणियोंको, जो कठोर व्रतका पालन करनेवाले थे, नियमपूर्वक जप और होममें तत्पर देखा॥ ३१॥ उस सभामें देवताओं और असुरोंके गुरु श्रीमान् लोकपितामह ब्रह्मा देवमायाके साथ विधिपूर्वक निवास करते थे॥ ३२॥

उपासते च तत्रैनं प्रजानां पतयः प्रभुम्।
दक्षः प्रचेताः पुलहो मरीचिश्च द्विजोत्तमः॥ ३३
भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमो नारदस्तथा।
मनुर्द्यौरन्तरिक्षं च वायुस्तेजो जलं मही॥ ३४
शब्दस्पर्शौ च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च।
प्रकृतिश्च विकाराश्च यच्चान्यत् कारणं महत्॥ ३५
साङ्गोपाङ्गाश्चतुर्वेदाः सरहस्यपदक्रमाः।
क्रियाश्च क्रतवश्चैव संकल्पः प्राण एव च॥ ३६
एते चान्ये च बहवः स्वयम्भुवमुपस्थिताः।
अर्थो धर्मश्च कामश्च द्वेषो दर्पश्च नित्यदा॥ ३७
शक्रो बृहस्पतिश्चैव संवर्तो बुध एव च।
शनैश्चरोऽथ राहुश्च ग्रहाः सर्वे ह्यशेषतः॥ ३८
मरुतो विश्वकर्मा च नक्षत्राणि च भारत।
दिवाकरश्च सोमश्च ब्रह्माणं समुपासते॥ ३९
सावित्री दुर्गतरणी वाणी सप्तविधा तथा।
सर्वाणि श्रुतिशास्त्राणि गाथाश्च नियमास्तथा॥ ४०
भाष्याणि सर्वशास्त्राणि देहवन्ति विशाम्पते।
क्षणा लवा मुहूर्ताश्च दिवा रात्रिश्च भारत॥ ४१
अर्धमासाश्च मासाश्च ऋतवः षट् तथैव च।
संवत्सराश्चतुर्युगं मासा रात्रिश्चतुर्विधा॥ ४२
कालचक्रं च यद् दिव्यमनित्यं ध्रुवमव्ययम्।
एते चान्ये च बहवः स्वयम्भुवमुपस्थिताः॥ ४३
ते प्रविष्टाः सभां दिव्यां ब्रह्मणः सर्वकामदाम्।
कश्यपस्त्रिदशैः सार्धं पुत्रैर्धर्मविशारदैः॥ ४४
सर्वतेजोमयीं दिव्यां ब्रह्मर्षिगणसेविताम्।
ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानमचिन्त्यं विगतक्लमम्॥ ४५
ब्रह्माणं वीक्ष्य ते सर्वे आसीनं परमासने।
जग्मुर्मूर्ध्ना शुभौ पादौ ब्रह्मणस्ते दिवौकसः॥ ४६
शिरोभिः स्पृश्य चरणौ तस्य ते परमेष्ठिनः।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः शान्ता विगतकल्मषाः॥ ४७
दृष्ट्वा तु तान् सुरान् सर्वान् कश्यपेन सहागतान्।
आह ब्रह्मा महातेजा देवानां प्रभुरीश्वरः॥ ४८

वहाँ इन भगवान् ब्रह्माकी समस्त प्रजापतिगण उपासना करते थे। दक्ष, प्रचेता (वरुण), पुलह, द्विजश्रेष्ठ मरीचि, भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, नारद, मनु, द्यौ, अन्तरिक्ष, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, प्रकृति और उसके विकार, अन्यान्य महान् कारण, अङ्ग और उपाङ्गोंसहित चारों वेद, रहस्य, पद, क्रम, क्रिया, क्रतु, संकल्प तथा प्राण—ये और दूसरे भी बहुत-से भाव-पदार्थ वहाँ ब्रह्माजीकी सेवामें (शरीर धारण करके) उपस्थित थे। अर्थ, धर्म, काम, द्वेष और दर्प आदि भाव भी वहाँ नित्य निवास करते थे॥ ३३—३७॥ इन्द्र, बृहस्पति, संवर्त, बुध, शनैश्चर तथा राहु आदि सभी ग्रह वहाँ विद्यमान थे॥ ३८॥ भारत! मरुद्गण, विश्वकर्मा, नक्षत्र, सूर्य और चन्द्रमा भी वहाँ ब्रह्माजीकी उपासना करते थे॥ ३९॥ प्रजानाथ! सावित्री, दुर्गम संकटसे तारनेवाली दुर्गा, (सात स्वरोंके भेदसे) सात प्रकारकी वाणी, समस्त श्रुति-शास्त्र (वैदिक साहित्य), गाथा, नियम, भाष्य तथा सम्पूर्ण शास्त्र—ये देह धारण करके ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित थे। भारत! क्षण, लव, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, छः ऋतुएँ, संवत्सर, चारों युग, दिव्य मास, चार प्रकारकी रात्रि, दिव्य, अनित्य, ध्रुव एवं अव्यय कालचक्र—ये तथा अन्य बहुत-से पदार्थ (शरीर धारण करके) स्वयम्भू ब्रह्माकी सेवामें उपस्थित थे॥ ४०—४३॥ वे सब आगन्तुक देवता ब्रह्माजीकी दिव्य सभामें, जो सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली थी, प्रविष्ट हुए। अपने धर्मविशारद देवजातीय पुत्रोंके साथ कश्यपजीने उस सभामें प्रवेश किया॥ ४४॥ सम्पूर्ण तेजसे सम्पन्न वह दिव्य सभा ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित थी। उसके भीतर एक उत्तम आसनपर अचिन्त्य, क्लेशहीन तथा ब्राह्मी शोभासे देदीप्यमान ब्रह्माजी विराजमान थे। उन्हें देखकर सभी देवताओंने उन ब्रह्माजीके शुभ चरणोंमें मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किया॥ ४५-४६॥ उन परमेष्ठी ब्रह्माजीके चरणोंका अपने मस्तकोंसे स्पर्श करके वे सब देवता समस्त पापोंसे मुक्त, शान्त और कल्मषरहित हो गये॥ ४७॥ कश्यपजीके साथ आये हुए उन समस्त देवताओंको देखकर महातेजस्वी देवेश्वर भगवान् ब्रह्मा उनसे इस प्रकार बोले॥ ४८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे ब्रह्मलोकगमने षट्षष्टितमोऽध्यायः॥ ६६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारके प्रसङ्गमें देवताओंका ब्रह्मलोकमें गमनविषयक छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६६॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्माजीकी आज्ञासे कश्यप और अदितिसहित देवताओंका क्षीरसागरके उत्तर तटपर जाकर तपस्यामें संलग्न होना

ब्रह्मोवाच

यदर्थमिह सम्प्राप्ता भवन्तः सर्व एव हि।
विजानाम्यहमव्यग्र एतत् सर्वं महाबलाः॥ १

भविष्यति च वः सोऽर्थः काङ्क्षितो यः सुरोत्तमाः।
बलेर्दानवमुख्यस्य यो विजेता भविष्यति॥ २

न खल्वसुरसंघानामेको जेता स विश्वकृत्।
त्रैलोक्यस्यापि जेतासौ देवानामपि चोत्तमः॥ ३

धाता चैव हि लोकानां विश्वयोनिः सनातन।
पूर्वं देवं सदा प्राहुर्हेमगर्भनिदर्शनम्॥ ४

आत्मा देवेन विभुना कृतोऽजेयो महात्मनः।
बलेरसुरमुख्यस्य विश्वस्य जगतस्तथा॥ ५

प्रभवः स हि सर्वेषामस्माकमपि पूर्वजः।
अचिन्त्यः स हि विश्वात्मा योगयुक्तः परंतपः॥ ६

तं देवापि महात्मानं न विदुः कोऽप्यसाविति।
वेदात्मानं च विश्वं च स देवः पुरुषोत्तमः॥ ७

तस्यैव तु प्रसादेन प्रवक्ष्येऽहं परां गतिम्।
यत्र योगं समास्थाय तपश्चरति दुश्चरम्॥ ८

क्षीरोदस्योत्तरे कूले उदीच्यां दिशि देवताः।
अमृतं नाम परमं स्थानमाहुर्मनीषिणः॥ ९

भवन्तस्तत्र वै गत्वा तपसा संशितव्रताः।
अमृतं स्थानमासाद्य तपश्चरत दुश्चरम्॥ १०

तत्र श्रोष्यथ विस्पष्टां स्निग्धगम्भीरनिःस्वनाम्।
उष्णगे तोयपूर्णस्य तोयदस्य समस्वनाम्॥ ११

युक्ताक्षरपदस्निग्धां रम्यामभयदां शिवाम्।
वाणीं परमसंस्कारां वरदां ब्रह्मवादिनीम्॥ १२

ब्रह्माजीने कहा—महाबली देवताओ! तुम सब लोग जिस उद्देश्यसे यहाँ आये हो, यह सब मैं व्यग्रतारहित होकर जानता हूँ॥ १॥ सुरश्रेष्ठगण! तुमलोग जिसकी इच्छा रखते हो, तुम्हारा वह मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा। दानवराज बलिपर विजय पानेवाले जो परम पुरुष हैं, वे शीघ्र ही प्रकट होंगे॥ २॥ वे विश्वस्रष्टा परमात्मा केवल असुरसमुदायोंको ही नहीं जीतेंगे, त्रिलोकीके राज्यको भी जीत लेंगे। वे देवताओंमें भी सबसे उत्तम हैं॥ ३॥ वे ही लोकोंके धाता (धारण-पोषण करनेवाले), सम्पूर्ण विश्वकी योनि एवं सनातन पुरुष हैं। विद्वान् पुरुष उन्हींको सदा आदि देवता कहते हैं। मैं हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) उन्हींका निदर्शन (प्रतिबिम्ब अथवा पुत्र) हूँ॥ ४॥ उन सर्वव्यापी परमात्मदेवने ही असुरशिरोमणि महात्मा बलिके स्वरूपको अजेय बनाया है। वे ही सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिके कारण तथा हम सब देवताओंके भी पूर्वज हैं। शत्रुओंको संताप देनेवाले वे योगयुक्त विश्वात्मा अचिन्त्य (मन और बुद्धिके अविषय) हैं॥ ५-६॥ देवता भी उन परमात्माके विषयमें यह नहीं जानते कि वे कौन हैं? किंतु वे पुरुषोत्तमदेव अपनेको तथा सम्पूर्ण विश्वको भी जानते हैं॥ ७॥ उन्हींके कृपा-प्रसादसे मैं उनकी परा गति (उत्कृष्ट आश्रय)-का पता बता रहा हूँ, जहाँ योगका आश्रय लेकर वे दुष्कर तपस्या करते हैं॥ ८॥ देवताओ! मनीषी पुरुष कहते हैं कि उत्तर दिशामें क्षीरसागरके उत्तर तटपर 'अमृत' नामक उत्कृष्ट स्थान (परम पद) है॥ ९॥ तुमलोग वहीं जाकर तपस्यापूर्वक कठोर व्रतका पालन करो। उस 'अमृत' स्थानमें पहुँचकर दुष्कर तपस्यामें लग जाओ॥ १०॥ सर्वदेवगण! वहाँ व्रतकी समाप्ति होनेपर उस व्रतके विसर्जनसे पूर्व तुम्हें वर्षाकालके सजल जलधरकी भाँति स्निग्ध एवं गम्भीर स्वरमें उन अमोघ परमात्माकी सुस्पष्ट वाणी सुनायी देगी, जो उपयुक्त अक्षरों और पदोंसे युक्त, स्नेहपूर्ण, रमणीय, अभयदायिनी, मङ्गलकारिणी, उत्तम संस्कारोंसे सम्पन्न, वरदायक तथा ब्रह्मवादिनी होगी।

दिव्यां सरस्वतीं सत्यां सर्वकिल्बिषनाशिनीम्।
सर्वदेवाधिदेवस्य भाषितां भावितात्मनः॥ १३
तस्य व्रतसमाप्तौ तु यावद् व्रतविसर्जनम्।
अमोघस्य तु देवस्य विश्वेदेवा महात्मनः॥ १४
स्वागतं वः सुरश्रेष्ठा मत्सकाशे व्यवस्थिताः।
कस्य किं वा वरं देवा ददामि वरदः स्थितः॥ १५
तं कश्यपोऽदितिश्चैव वरं गृह्णीत वै ततः।
प्रणम्य शिरसा पादौ तस्मै योगात्मने तदा॥ १६
भवानेव च नः पुत्रो भवत्विति न संशयः।
उक्तश्च परया भक्त्या तथास्त्विति स वक्ष्यति॥ १७
देवा ब्रुवन्तु तं सर्वे भ्राता नस्त्वं भवेति ह।
तथास्त्विति च स श्रीमान् वक्ष्यते सर्वलोककृत्॥ १८
तस्मादेवं गृहीत्वा तु वरं त्रिदशसत्तमाः।
कृतकृत्याः पुनः सर्वे गच्छध्वं स्वं स्वमालयम्॥ १९
तथास्त्विति सुराः सर्वे कश्यपोऽदितिरेव च।
वन्दित्वा ब्रह्मचरणौ गताः सौम्यां दिशं प्रति॥ २०
तेऽचिरेणैव सम्प्राप्ताः क्षीरोदस्योत्तरं तटम्।
यथोद्दिष्टं भगवता ब्रह्मणा ब्रह्मवादिना॥ २१
तेऽतीत्य सागरान् सर्वान् पर्वतांश्च बहून् क्षणात्।
नद्यश्च विविधा दिव्याः पृथिव्यां सुरसत्तमाः॥ २२
पश्यन्ति च सुघोरां वै सर्वसत्त्वविवर्जिताम्।
अभास्कराममर्यादां तमसा संवृतां दिशम्॥ २३
अमृतं स्थानमासाद्य कश्यपेन सुराः सह।
दीक्षिताः कामदं दिव्यं व्रतं वर्षसहस्रकम्॥ २४
प्रसादार्थं सुरेशाय तस्मै योगाय धीमते।
नारायणाय देवाय सहस्राक्षाय धीमते॥ २५
ब्रह्मचर्येण मौनेन स्थानवीरासनेन च।
दमेन च सुराः सर्वे तपो दुश्चरमास्थिताः॥ २६
कश्यपस्तत्र भगवान् प्रसादार्थं महात्मनः।
उदीरयति वेदोक्तं यमाहुः परमं स्तवम्॥ २७

उन शुद्ध अन्तःकरणवाले सर्वदेवाधिदेव भगवान्‌की कही हुई वह दिव्य सत्य वाणी सम्पूर्ण कल्मषोंका नाश करनेवाली होगी। वे कहेंगे—'मेरे पास खड़े हुए सुरश्रेष्ठगण! तुम्हारा स्वागत है! मैं वर देनेके लिये खड़ा हूँ, बोलो किसको कौन-सा वर दूँ?' उस समय कश्यप, अदिति और तुम सब लोग उनसे वर ग्रहण करना। कश्यप और अदिति उन योगात्मा श्रीहरिके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम करनेके पश्चात् निस्संदेह यही बात कहें कि 'आप ही मेरे पुत्र होकर प्रकट हों'। परम भक्तिभावसे ऐसी बात कहनेपर वे भगवान् 'तथास्तु—ऐसा ही होगा' यह कहेंगे, सब देवता भी उनसे यही कहें कि आप हमारे भाई हो जायँ। तब वे सम्पूर्ण लोकोंके स्रष्टा श्रीमान् भगवान् 'तथास्तु' कहकर तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार कर लेंगे॥ ११—१८॥ श्रेष्ठ देवताओ! इस प्रकार उनसे वर लेकर कृतकृत्य हो पुनः तुम सब लोग अपने-अपने स्थानको चले जाना॥ १९॥ तब सब देवता, कश्यप और अदितिने 'ऐसा ही होगा' यह कहकर ब्रह्माजीके चरणोंमें प्रणाम किया और सब-के-सब उत्तर दिशाकी ओर चल दिये॥ २०॥ ब्रह्मवादी भगवान् ब्रह्माने जैसा बताया था, उसके अनुसार वे शीघ्र ही क्षीरसागरके उत्तर तटपर चले गये॥ २०॥ वे श्रेष्ठतम देवता क्षणभरमें समस्त सागरों, बहुसंख्यक पर्वतों तथा नाना प्रकारकी दिव्य नदियोंको लाँघकर जब भूतलपर स्थित हुए, तब उन्हें अत्यन्त भयंकर, समस्त प्राणियोंसे रहित, सूर्यके प्रकाशसे शून्य, सीमाहीन एवं अन्धकारसे आच्छन्न दिशा दृष्टिगोचर हुई॥ २२-२३॥ कश्यपके साथ अमृतस्थानमें पहुँचकर समस्त देवताओंने उन योगस्वरूप बुद्धिमान् देवेश्वर सहस्रलोचनधारी नारायणदेवकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे एक सहस्र वर्षोंके लिये दिव्य कामदव्रतकी दीक्षा ली॥ २४-२५॥ वे सब देवता ब्रह्मचर्यपालन, मौनधारण, वीरासनग्रहण तथा मन और इन्द्रियोंके संयमद्वारा दुष्कर तपस्यामें संलग्न हो गये॥ २६॥ वहाँ उन परमात्माकी प्रसन्नताके लिये भगवान् कश्यप एक वेदोक्त स्तोत्रका पाठ करने लगे, जिसे 'परमस्तव' कहते हैं॥ २७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥ ६७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारविषयक सरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६७॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

कश्यपद्वारा परमपुरुष परमात्माका स्तवन

कश्यप उवाच

नमोऽस्तु देवदेवेश एकशृङ्ग वराह वृषार्चिष वृषसिन्धो वृषाकपे सुरवृषभ सुरनिर्मित अनिर्मित भद्रकपिल विष्वक्सेन ध्रुव धर्म धर्मराज वैकुण्ठ त्रेतावर्त अनादिमध्यनिधन धनञ्जय शुचिश्रवः अग्निज वृष्णिज अज अजयामृतेशय सनातन विधातस्त्रिकाम त्रिधाम त्रिककुत् ककुद्मिन् दुन्दुभे महानाभ लोकनाभ पद्मनाभ विरिञ्चे वरिष्ठ बहुरूप विरूप विश्वरूपाक्षयाक्षर सत्याक्षर हंसाक्षर हव्यभुक् खण्डपरशो शुक्र मुञ्जकेश हंस महाहंस महदक्षर हृषीकेश सूक्ष्म परसूक्ष्म तुराषाड् विश्वमूर्ते सुराग्रज नील निस्तमो विरजस्तमोरजः-सत्त्वधाम सर्वलोकप्रतिष्ठ शिपिविष्ट सुतपस्तपोऽग्र अग्र अग्रज धर्मनाभ

कश्यपने कहा—देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। आप एक सींग धारण करनेवाले मत्स्य एवं वराहरूप हैं। धर्ममयी किरणोंसे प्रकाशित होते हैं। धर्मके सागर हैं। जलका वर्षण और शोषण करनेवाले सूर्य हैं। देवताओंमें श्रेष्ठ हैं। देवताओंके स्रष्टा हैं। आपका किसी अन्यसे निर्माण नहीं हुआ है—आप नित्यसिद्ध हैं। कल्याणमय कपिलस्वरूप हैं। युद्धके लिये की हुई तैयारीमात्रसे ही आप दैत्यसेनाको तितर-बितर कर डालते हैं। आप ध्रुव, धर्म, धर्मराज एवं वैकुण्ठधामके अधिपति हैं। गार्हपत्यादि त्रिविध अग्निके आवर्तक, आदि, मध्य और अन्तसे रहित, धनञ्जय (अग्नि), पवित्र कीर्तिवाले, अग्निज (कार्तिकेयस्वरूप), वृष्णिज (श्रीकृष्ण), अजन्मा, अजय (अपराजित), अमृतेशय (जलमें शयन करनेवाले) और सनातन पुरुष हैं। आप ही विधाता, त्रिकाम (तीनों लोकोंकी कामनाके विषय अथवा तीनों वेदोंकी श्रुतियोंके लिये कमनीय), त्रिधाम (त्रिलोकीके आश्रय), त्रिककुद् (धर्म, ज्ञान और वैराग्यरूप तीन कंधोंवाले), ककुद्मी (मोटे कंधेवाले), दुन्दुभे (विजयघोष करनेवाले वाद्यरूप), महानाभ (बड़ी नाभिवाले), लोकनाभ (अपने नाभिकमलसे सम्पूर्ण लोकको प्रकट करनेवाले), पद्मनाभ (अपनी नाभिसे कमलको प्रकट करनेवाले), विरिञ्चि (ब्रह्मस्वरूप), वरिष्ठ (सर्वश्रेष्ठ), बहुरूपधारी, विरूप (विविध रूप धारण करनेवाले), विश्वरूप, अक्षय, अक्षर (अविनाशी), सत्याक्षर (सत्य एवं अविनाशी अथवा सत्य अक्षरवाले वेदरूप), हंसाक्षर (अजपा मन्त्ररूप), हव्यभोक्ता (अग्नि), खण्डपरशु (शिव), शुक्र (बलवीर्यरूप), मुञ्जकेश (मूँजके समान केशवाले), हंस और महाहंस हैं। महान् अक्षर प्रणव, इन्द्रियोंके प्रेरक, सूक्ष्म, परमसूक्ष्म, इन्द्र, विश्वरूप, देवताओंके अग्रज, नीलवर्ण, तमोगुण और रजोगुणसे रहित, तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुणके आश्रय, सम्पूर्ण लोकोंमें प्रतिष्ठित, शिपिविष्ट (सूर्य-किरणोंमें स्थित रहनेवाले), उत्तम तपस्यावाले, श्रेष्ठ तपोरूप, अग्र (सबके आदि), अग्रज (सबसे प्रथम प्रकट), धर्मनाभ

गभस्तिनाभ धर्मनेमे सत्यधाम सत्याक्षर गभस्तिनेमे विपाप्मन् चन्द्ररथ त्वमेव समुद्रवासाः अजैकपात् सहस्त्रशीर्ष सहस्त्रसम्मित महाशीर्ष सहस्त्रदृक् सहस्त्रपात् अधोमुख महामुख महापुरुष पुरुषोत्तम सहस्त्रबाहो सहस्त्रमूर्ते सहस्त्रास्य सहस्त्राक्ष सहस्त्रभुज सहस्त्रभव सहस्त्रशस्त्वामाहुर्वेदाः॥ १॥ विश्वेदेव विश्वसम्भव सर्वेषामेव देवानां सौभग आदौ गतिः विश्वं त्वमाप्यायनः विश्वं त्वामाहुः पुष्पहास परमवरदस्त्वमेव वौषट् ओंकार वषट्कार त्वामेकमाहुरग्र्यं मखभागप्राशिनम्॥ २॥ शतधार सहस्त्रधार भूर्द भुवर्द स्वर्द भूर्भुवःस्वर्द त्वमेव भूतं भुवनं त्वं स्वधा त्वमेव ब्रह्मसख ब्रह्ममय ब्रह्मादिस्त्वमेव॥ ३॥ द्यौरसि पृथिव्यसि पूषासि मातरिश्वासि धर्मोऽसि मघवासि होता पोता नेता हन्ता मन्ता होम्यहोता परात्परस्त्वं होम्यस्त्वमेव॥ ४॥

आपोऽसि विश्ववाग् धात्रा परमेण धाम्नः

त्वमेव दिग्भ्यः स्त्रुक् स्त्रुग्भाण्डस्त्वं गण इष्टोऽसि

इज्योऽसि ईड्योऽसि त्वष्टा त्वमसि समिद्धस्त्वमेव

(धर्मस्वरूप नाभिवाले), गभस्तिनाभ (किरणमयी नाभिवाले), धर्मनेमि (धर्मचक्रके प्रवर्तक), सत्यधाम (वैकुण्ठस्वरूप), सत्याक्षर (वेदस्वरूप), गभस्तिनेमि (रश्मिमण्डलसे प्रकाशित), पापरहित तथा चन्द्र (समष्टि मन)-रूपी रथपर आरूढ़ परमेश्वर! आप ही समुद्रवासा (समुद्ररूपी वस्त्र धारण करनेवाले) हैं। आप ही अजैकपात् (ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक अथवा पूर्वभाद्रपदानक्षत्र), सहस्त्रों मस्तकवाले, सहस्त्रसंख्यक, महान् मस्तक धारण करनेवाले, सहस्त्रनेत्र, सहस्त्रचरण, अधोमुख, महामुख, महापुरुष, पुरुषोत्तम, सहस्त्रबाहु, सहस्त्रमूर्ति, सहस्त्रमुख, सहस्त्रलोचन, सहस्त्रभुज तथा सहस्त्रों रूपोंमें प्रकट होनेवाले हैं, वेद आपका सहस्त्रों प्रकारसे वर्णन करते हैं॥ १॥ आप ही विश्वेदेवस्वरूप, विश्वको उत्पन्न करनेवाले, सम्पूर्ण देवताओंके सौभाग्यस्वरूप एवं धर्मरूप हैं। आप ही सम्पूर्ण विश्वको पुष्ट एवं तुष्ट करनेवाले हैं। विद्वान् पुरुष आपको ही विश्वरूप बताते हैं। आपका हास पुष्पोंके विकासकी भाँति सुशोभित होता है। आप ही सर्वोत्तम वरदायक देवता हैं। आप ही वौषट्, ओङ्कार और वषट्कार हैं। एकमात्र आपको ही सर्वश्रेष्ठ यज्ञभागका भोक्ता बताया गया है॥ २॥ आप ही शतधार और सहस्त्रधार (सैकड़ों, हजारों धाराओंमें अमृतकी वर्षा करनेवाले) सोम हैं। आप ही भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकको देनेवाले हैं। आप उक्त तीनों लोकोंका एक साथ ही दान करनेके कारण भूर्भुवःस्वर्द (त्रिलोकप्रद) कहे गये हैं। आप ही भूत एवं भुवन हैं। आप ही स्वधा हैं। आप ही ब्रह्मसख (ब्रह्माजीके सखा) और ब्रह्ममय हैं तथा ब्रह्माजीके आदि कारण भी आप ही हैं॥ ३॥ आप ही द्युलोक हैं, पृथ्वी हैं, पूषा नामक आदित्य हैं, मातरिश्वा (वायु) हैं, धर्म हैं, इन्द्र हैं, होता (हवनकर्ता), पोता (एक ऋत्विज), नेता (नायक अथवा अगुआ), हन्ता (दुष्टोंका वध करने वाले), मन्ता (सम्मान देनेवाले), हवनीय पदार्थका होम करनेवाले, परात्पर परमात्मा तथा हवनीय पदार्थरूप हैं॥ ४॥

आप ही जल हैं। सम्पूर्ण विश्वकी वाणी हैं। विधाताने उत्तम यज्ञके निमित्त अग्निकी तृप्तिके लिये दिशाओंसे जिस स्त्रुक्का संग्रह किया, वह आपका ही स्वरूप है। स्त्रुग्भाण्ड (स्त्रुक् आदि यज्ञसामग्री) भी आप ही हैं। आप ही गण (ऋत्विजोंका समुदाय) हैं। आपका ही यज्ञोंद्वारा यजन किया गया है। आप ही इज्य (यज्ञोंद्वारा पूजनीय) हैं। ईड्य (स्तवनीय) हैं। आप ही त्वष्टा (विश्वकर्मा) हैं। आप ही प्रज्वलित अग्नि हैं।

गतिर्गतिमतामसि मोक्षोऽसि योगोऽसि गुह्योऽसि सिद्धोऽसि धन्योऽसि धातासि परमोऽसि यज्ञोऽसि सोमोऽसि यूपोऽसि दक्षिणासि दीक्षासि विश्वमसि॥ ५॥ स्थविष्ठ स्थविर विश्व तुराषाड् हिरण्यगर्भ हिरण्यनाभ हिरण्यनारायण नारायणान्तर नृणामयन आदित्यवर्ण आदित्यतेजः महापुरुष सुरोत्तम आदिदेव पद्मनाभ पद्मेशय पद्माक्ष पद्मगर्भ हिरण्याग्रकेश शुक्ल विश्वदेव विश्वतोमुख विश्वाक्ष विश्वसम्भव विश्वभुक्त्वमेव॥ ६॥ भूरिविक्रम चक्रक्रम त्रिभुवन सुविक्रम स्वविक्रम स्वर्विक्रम बभ्रुः सुविभुः प्रभाकरः शम्भुः स्वयम्भूश्च भूतादिर्भूतात्मन् महाभूत विश्वभुक् त्वमेव विश्वगोप्तासि विश्वम्भर पवित्रमसि हविर्विशारद हविःकर्मा अमृतेन्धन सुरासुरगुरो महादिदेव नृदेव ऊर्ध्वकर्मन् पूतात्मन् अमृतेश दिवःस्पृग् विश्वस्य पते घृताच्यसि अनन्तकर्मन् द्रुहिणवंश स्ववंश विश्वपास्त्वं त्वमेव विश्वं बिभर्षि वरार्थिनो नस्त्रायस्वेति॥ ७॥

आप ही जङ्गम प्राणियोंकी गति हैं तथा आप ही मोक्ष हैं, योग हैं, गुह्य हैं, सिद्ध हैं, धन्य हैं, धाता हैं, परम (उत्कृष्ट) हैं, यज्ञ हैं, सोम हैं, यूप हैं, दक्षिणा हैं, दीक्षा हैं और सब कुछ हैं॥ ५॥ आप अत्यन्त स्थूल और वृद्ध हैं, जाग्रत्-अवस्थाके अभिमानी विश्वसंज्ञक पुरुष हैं, इन्द्र हैं, हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) हैं। आपकी नाभिमें हिरण्य है—इसीलिये आप हिरण्यनारायण कहलाते हैं और आप अन्तर्यामी नारायण हैं, नरों (मनुष्यों)-के अयन (आश्रय) हैं। आपका वर्ण आदित्यके समान कान्तिमान् हैं। आप सूर्यके समान तेजस्वी हैं, आप ही महापुरुष, सुरश्रेष्ठ, आदिदेव, पद्मनाभ (नाभिसे कमल उत्पन्न करनेवाले), कमलपर शयन करनेवाले और कमललोचन हैं। पद्मको गर्भसे प्रकट करनेके कारण पद्मगर्भ कहलाते हैं। आपके सुन्दर केश सुनहरे हैं। आपकी अङ्गकान्ति भास्वरशुक्ल है। आप सम्पूर्ण देवस्वरूप हैं। आपके सब ओर मुख और सब ओर नेत्र हैं। आप ही इस विश्वके उत्पादक तथा जगत्के भोक्ता (रक्षक और संहारक) हैं॥ ६॥ आपका पराक्रम बहुत है। आप चक्रका संचालन करनेवाले हैं। तीनों लोक आपके ही स्वरूप हैं। आपका विक्रम उत्तम है। विक्रम आपका स्वरूप है। आप स्वर्लोकको लाँघ जानेवाले हैं। आप बभ्रु (अग्नि एवं विष्णुरूप), सुविभु (व्यापक), प्रभाकर (सूर्यरूप), शम्भु (कल्याणमय शिव), स्वयम्भू (ब्रह्मा), भूतादि (महत्तत्त्व अथवा सम्पूर्ण भूतोंके आदि कारण), भूतात्मा (समस्त प्राणियोंके आत्मा), महाभूत (परमात्मा अथवा पञ्चमहाभूतस्वरूप), विश्वभोक्ता और विश्वपालक हैं। विश्वम्भर! आप पवित्र हैं। सात हविर्यज्ञ-संस्थाओंके विशेषज्ञ हैं। हविष्यके होममें तत्पर रहनेवाले हैं। अमृत (घी)-रूपी ईंधनसे प्रज्वलित होने-वाले अग्नि हैं। सुरासुरगुरो! महादिदेव! नरदेव! आपके कर्म ऊर्ध्वगति प्रदान करनेवाले हैं। पूतात्मन्! आप अमृतपदके स्वामी हैं। द्युलोकका स्पर्श करनेवाले हैं। विश्वपते! आप घृताची (घीकी आहुति डालनेवाली स्रुवा) हैं। आपके कर्म अनन्त हैं। ब्रह्मा आपके वंशज हैं। आप स्ववंश (स्वयम्भू) हैं। आप ही विश्वके पालक हैं तथा आप ही विश्वका धारण-पोषण करते हैं। हम वरकी अभिलाषा रखनेवाले सेवकोंकी आप रक्षा करें॥ ७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे महापुरुषस्तवे अष्टषष्टितमोऽध्यायः॥ ६८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारके प्रसङ्गमें महापुरुषकी स्तुतिविषयक अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६८॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

कश्यप, अदिति और देवताओंको भगवान् विष्णुका वरदान देना और अदितिके गर्भसे प्रकट होना

वैशम्पायन उवाच

नारायणस्तु भगवाञ्छ्रुत्वैतत् परमं स्तवम्।
ब्रह्मज्ञेन द्विजेन्द्रेण कश्यपेन समीरितम्॥ १
स्निग्धगम्भीरनिर्घोषजीमूतस्वननिःस्वनम्।
मनसा प्रीतियुक्तेन विबुधानां महात्मनाम्॥ २
उवाच वचनं सम्यग् हृष्टपुष्टपदाक्षरम्।
आकाशाच्छुश्रुवे शब्दो दर्शनं नोपलक्ष्यते।
श्रीमान् प्रीतमना देवः प्रोवाच प्रभुरीश्वरः॥ ३

विष्णुरुवाच

प्रीतोऽस्मि वः सुरश्रेष्ठाः सर्वे मत्तो विनिश्चयम्।
वरं वृणुत भद्रं वो वरदोऽस्मि सुरोत्तमाः॥ ४

कश्यप उवाच

यदैव भगवान् प्रीतः सर्वेषाममरोत्तमः।
तदैव कृतकृत्याः स्म त्वं हि नः परमा गतिः॥ ५
यदि प्रसन्नो भगवान् दातव्यो वा वरो यदि।
वासवस्यानुजो भ्राता ज्ञातीनां नन्दिवर्धनः।
अदित्यां वामनः श्रीमान् भगवानस्तु वै सुतः॥ ६

वैशम्पायन उवाच

अदितिर्देवमाता च एतमेवार्थमुत्तमम्।
पुत्रार्थे वरदं प्राह भगवन्तं वरार्थिनी॥ ७

अदितिरुवाच

याचे त्वां पुत्रकामा वै भवान् पुत्रो भवत्विति।
निःश्रेयसाय सर्वेषां देवानां हि महात्मनाम्॥ ८

देवा ऊचुः

भ्राता भर्ता च दाता च शरणं च भवस्व नः।
अदित्याः पुत्रतां याते त्वयि देवाः सवासवाः।
देवशब्दं वहिष्यन्ति कश्यपस्यात्मजो भव॥ ९

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! ब्रह्मवेत्ता विप्रवर कश्यपद्वारा किये गये इस परमस्तवको सुनकर भगवान् नारायणके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई; वे उन महात्मा देवताओंसे मेघगर्जनाके समान स्निग्ध-गम्भीर घोष करते हुए हृष्ट-पुष्ट पद और अक्षरवाली उत्तम वाणीमें बोले; उस समय आकाशसे केवल उनका शब्दमात्र सुनायी देता था, दर्शन नहीं हो रहा था। करने, न करने और अन्यथा करनेमें भी समर्थ वे श्रीमान् भगवान् नारायण देव इस प्रकार कहने लगे॥ १—३॥

भगवान् विष्णु बोले—सुरश्रेष्ठगण! तुम्हारा भला हो! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ; तुम सब लोग मुझसे सुनिश्चित वर माँगो। श्रेष्ठ देवताओ! मैं तुम्हें वर देनेके लिये उद्यत हूँ॥ ४॥

कश्यपने कहा—प्रभो! आप देवताओंमें उत्तम हैं; आप जभी हम सबपर प्रसन्न हुए तभी हम कृतकृत्य हो गये, क्योंकि आप ही हमारी परम गति हैं॥ ५॥ यदि भगवान् हमपर प्रसन्न हैं अथवा यदि हमें वर देना उचित समझते हैं तो अदितिके गर्भसे पुत्ररूपमें उत्पन्न हो श्रीमान् भगवान् वामनके नामसे विख्यात हों और इन्द्रके छोटे भाई होकर बन्धु-बान्धवोंका आनन्दवर्धन करें॥ ६॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वरकी इच्छा रखनेवाली देवमाता अदिति भी वरदायक भगवान्से पुत्रके लिये यही उत्तम मनोरथ प्रकट करती हुई बोलीं॥ ७॥

अदितिने कहा—भगवन्! मेरे मनमें पुत्रकी कामना है। मैं आपसे यही प्रार्थना करती हूँ कि आप समस्त महात्मा देवताओंके कल्याणके लिये मेरे पुत्र हो जायँ॥ ८॥

देवता बोले—भगवन्! आप हमारे भ्राता, भर्ता (भरण-पोषण करनेवाले), दाता और आश्रय हों। आप जब अदितिके पुत्र होंगे, तभी इन्द्रसहित समस्त देवता देवशब्द (देवता पदवी)-का भार वहन कर सकेंगे, अतः आप कश्यपके पुत्र हो जाइये॥ ९॥

वैशम्पायन उवाच

ततस्तानब्रवीद् विष्णुर्देवान् कश्यपमेव च।
एवं भवतु भद्रं वो यथेष्टं काममाप्नुत॥ १०
सर्वेषामेव युष्माकं ये भविष्यन्ति शत्रवः।
मुहूर्तमपि ते सर्वे न स्थास्यन्ति ममाग्रतः॥ ११
हत्वासुरगणान् सर्वान् ये चान्ये देवशत्रवः।
करिष्ये देवताः सर्वा यज्ञभागाग्रभोजिनः॥ १२
हव्यादांश्च सुरान् सर्वान् कव्यादांश्च पितॄनपि।
करिष्ये विबुधश्रेष्ठाः पारमेष्ठ्येन कर्मणा॥ १३
यथागतेन मार्गेण निवर्तध्वं सुरोत्तमाः।
देवमातुस्तथादित्याः कश्यपस्यामितात्मनः।
यथामनीषितं कर्ता गच्छध्वं स्वं स्वमालयम्॥ १४

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ते तु वचने विष्णुना प्रभविष्णुना।
देवाः प्रहृष्टमनसः पूजयन्ति स्म सर्वशः॥ १५
विश्वेदेवा महात्मानः कश्यपोऽदितिरेव च।
साध्या मरुद्गणाश्चैव शक्रश्चैव महाबलः॥ १६
नमस्कृत्य सुरेशाय तस्मै देवाय रंहसे।
प्रयाताः प्राग्दिशं दिव्यं विपुलं कश्यपाश्रमम्॥ १७
गत्वा ते आश्रमं तत्र ब्रह्मर्षिगणसेवितम्।
चेरुः स्वाध्यायनियता अदित्या गर्भमीप्सवः॥ १८
अदितिर्देवमाता च गर्भं दध्रेऽतितेजसम्।
भूतात्मानं महात्मानं दिव्यं वर्षसहस्रकम्॥ १९
पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्रसूता गर्भमुत्तमम्।
सुराणां शरणं देवमसुराणां विनाशनम्॥ २०
गर्भस्थेन तु देवेन परित्राताः सुरास्तदा।
आददानेन तेजांसि त्रैलोक्यस्य महात्मना॥ २१
तस्मिञ्जाते तु देवेशे त्रैलोक्यस्य सुखावहे।
भयदे दैत्यसंघानां सुराणां नन्दिवर्धने॥ २२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तब भगवान् विष्णुने देवताओं तथा कश्यपजीसे कहा—'ऐसा ही होगा तुम्हारा कल्याण हो। तुम अपना अभीष्ट मनोरथ प्राप्त करो॥ १०॥ तुम सब लोगोंके जो शत्रु होंगे, वे सब-के-सब दो घड़ी भी मेरे सामने नहीं ठहर सकेंगे॥ ११॥ समस्त असुरों तथा अन्यान्य देवद्रोहियोंका वध करके मैं समस्त देवताओंको यज्ञभागका अग्रभोजी बना दूँगा॥ १२॥ श्रेष्ठ देवताओ! मैं अपने परमेश्वरोचित कर्मके द्वारा सब देवताओंको हविष्यभोक्ता और पितरोंको भी कव्यभोजी (श्राद्धभोक्ता) बना दूँगा॥ १३॥ सुरश्रेष्ठगण! तुम जिस मार्गसे आये हो, उसीसे लौट जाओ! मैं देवमाता अदिति तथा महात्मा कश्यपजीकी इच्छाके अनुसार कार्य करूँगा! तुम सब लोग अपने-अपने स्थानको जाओ'॥ १४॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! प्रभावशाली विष्णुके ऐसी बात कहनेपर देवताओंका मन हर्षसे खिल उठा। वे सब प्रकारसे भगवान्‌की पूजा—भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे॥ १५॥ महात्मा विश्वेदेवगण, कश्यप, अदिति, साध्य, मरुद्गण तथा महाबली इन्द्र—ये सब उन वेगशाली दिव्यस्वरूप देवेश्वरको नमस्कार करके पूर्व दिशामें स्थित कश्यपजीके दिव्य एवं विशाल आश्रमकी ओर चल दिये॥ १६-१७॥ ब्रह्मर्षियोंद्वारा सेवित उस आश्रममें पहुँचकर वे देवता वहाँ नियमपूर्वक स्वाध्यायमें तत्पर रहकर अदितिके गर्भकी प्रतीक्षा करते हुए विचरने लगे॥ १८॥ देवमाता अदितिने अत्यन्त तेजस्वी गर्भ धारण किया, जिसमें समस्त प्राणियोंके आत्मा परमात्मा श्रीहरिका निवास था। एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक वे उस गर्भको धारण किये रहीं॥ १९॥ सहस्र वर्ष पूर्ण होनेपर देवी अदितिने देवताओंके शरणदाता और असुरोंके विनाशक नारायणदेवको अपने उत्तम गर्भ (शिशु)-के रूपमें जन्म दिया॥ २०॥ गर्भमें रहते समय ही तीनों लोकोंके तेजको छीन लेनेवाले महात्मा नारायणदेवने तत्काल सब देवताओंकी रक्षा आरम्भ कर दी॥ २१॥ त्रिभुवनको सुख देनेवाले, दैत्यसमूहोंको भयभीत करनेवाले और देवताओंका आनन्द बढ़ानेवाले देवेश्वर श्रीहरिके अदितिके गर्भसे प्रकट होते ही सर्वत्र आनन्द छा गया॥ २२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः॥ ६९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारविषयक उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६९॥

सप्ततितमोऽध्यायः

ऋषियों और विविध देवताओंका वामनजीको नमस्कार करना, गन्धर्वों तथा अप्सराओंका नाचना-गाना, भगवान्‌के वैशिष्ट्यका वर्णन, भगवान्‌का देवताओंसे उनका मनोरथ पूछकर बृहस्पतिजीके साथ बलिके यज्ञमें जाना, वहाँ अपनी वाक्पटुतासे सबको चकित कर देना और राजा बलिका उनसे परिचय तथा आगमनका प्रयोजन पूछना

वैशम्पायन उवाच

प्रजानां पतयः सप्त सप्त चैव महर्षयः।
तस्य देवस्य जातस्य नमस्कारं प्रचक्रिरे॥ १
भरद्वाजः कश्यपो गौतमश्च
विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठः।
यश्चोदितो भास्करे सम्प्रणष्टे
सोऽप्यत्रात्रिर्भगवानाजगाम ॥ २
मरीचिरङ्गिराश्चैव पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
दक्षप्रजापतिश्चैव नमस्कारं प्रचक्रिरे॥ ३
और्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्बः काश्यप एव च।
कपीवानकपीवांश्च दत्तो निश्च्यवनस्तथा॥ ४
वसिष्ठपुत्राः सप्तासन् वासिष्ठा इति विश्रुताः।
हिरण्यगर्भस्य सुताः पूर्वजाताः सुतेजसः॥ ५
गार्ग्यः पृथुस्तथैवान्यो जन्यो वामन एव च।
देवबाहुर्यदुध्रश्च पर्जन्यश्चैव सोमजः॥ ६
हिरण्यरोमा वेदशिराः सप्तनेत्रस्तथैव च।
विश्वोऽतिविश्वश्च्यवनः सुधामा विरजास्तथा॥ ७
अतिनामा सहिष्णुश्च नमस्कारमकुर्वत।
उद्योतमाना वपुषा सर्वाभरणभूषिताः॥ ८
उपनृत्यन्ति देवेशं विष्णुमप्सरसां वराः।
ततो गन्धर्वतूर्येषु प्रणदत्सु विहायसि॥ ९
बहुभिः सह गन्धर्वैः प्रागायत च तुम्बुरुः।
महाश्रुतिश्चित्रशिरा ऊर्णायुरनघस्तथा॥ १०
गोमायुः सूर्यवर्चाश्च सोमवर्चाश्च सप्तमः।
युगपस्तृणपः कार्ष्णिर्नन्दिश्च त्रिशिरास्तथा॥ ११
त्रयोदशः शालिशिराः पर्जन्यश्च चतुर्दशः।
कलिः पञ्चदशश्चात्र तत्रैव तु महीपते॥ १२
दश पञ्च त्विमे प्रोक्ता नारदश्चैव षोडशः।
हाहा हूहूश्च गन्धर्वौ हंसश्चैव महाद्युतिः॥ १३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वहाँ प्रकट हुए भगवान् विष्णुको मरीचि आदि सात प्रजापतियों तथा सात महर्षियोंने नमस्कार किया॥ १॥ भरद्वाज, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ तथा सूर्यदेवके नष्ट (अपने स्थानसे भ्रष्ट) होनेपर जो उदित हुए थे, वे भगवान् अत्रि भी श्रीहरिको प्रणाम करनेके लिये वहाँ पधारे थे॥ २॥ मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और दक्ष प्रजापति—इन प्रजापतियोंने भी वहाँ आकर भगवान्‌को प्रणाम किया॥ ३॥ और्व, वसिष्ठपुत्र शक्ति, स्तम्ब, काश्यप, कपीवान्, अकपीवान्, दत्तात्रेय, निश्च्यवन तथा वासिष्ठ नामसे विख्यात वसिष्ठके वे सात पुत्र, जो पहले हिरण्यगर्भके परमतेजस्वी पुत्रोंके रूपमें उत्पन्न हुए थे (भगवान्‌को नमस्कार करनेके लिये वहाँ पधारे थे)॥ ४-५॥ गार्ग्य, पृथु, जन्य, वामन, देवबाहु, यदुध्र, सोमवंशी पर्जन्य, हिरण्यरोमा, वेदशिरा, सप्तनेत्र, विश्व, अतिविश्व, च्यवन, सुधामा, विरजा, अतिनामा और सहिष्णु—इन सबने वहाँ आकर भगवान्‌को नमस्कार किया। अपने शरीरसे प्रकाशित होनेवाली समस्त आभूषणोंसे विभूषित श्रेष्ठ अप्सराएँ देवेश्वर भगवान् विष्णुके समीप आकर नृत्य करने लगीं। तदनन्तर आकाशमें गन्धर्वोंके बाजे बजने लगे। उस समय बहुसंख्यक गन्धर्वोंके साथ तुम्बुरुने गीत गाया। पृथ्वीनाथ! इनके सिवा महाश्रुति, चित्रशिरा, ऊर्णायु, अनघ, गोमायु, सूर्यवर्चा, सातवें सोमवर्चा, युगप, तृणप, कार्ष्णि, नन्दि, त्रिशिरा, तेरहवें शालिशिरा, चौदहवें पर्जन्य और पंद्रहवें कलि—ये सब वहीं गीत गाने लगे॥ ६—१२॥ ये पंद्रह गन्धर्व बताये गये हैं। इनके साथ सोलहवें नारद थे तथा हाहा, हूहू नामक दो गन्धर्व और महातेजस्वी हंस भी थे॥ १३॥

सर्वे ते देवगन्धर्वा उपगायन्ति केशवम्।
तथैवाप्सरसो हृष्टाः सर्वालंकारभूषिताः॥ १४
वपुष्मन्तः सुजघनाः सर्वाङ्गशुभदर्शनाः।
ननृतुश्च महाभागा जगुश्चायतलोचनाः॥ १५
सुमध्याश्चारुमध्याश्च प्रियमुख्यो वराननाः।
अनूकाथ तथा जामी मिश्रकेशी त्वलम्बुषा॥ १६
मरीचिः शुचिका चैव विद्युत्पूर्णा तिलोत्तमा।
अद्रिका लक्षणा चैव रम्भा तद्वन्मनोरमा॥ १७
असिता च सुबाहुश्च सुप्रिया सुभगा तथा।
उर्वशी चित्रलेखा च सुग्रीवा च सुलोचना॥ १८
पुण्डरीका सुगन्धा च सुरथा च प्रमाथिनी।
नन्दा शारद्वती चैव तथान्यास्तत्र संघशः॥ १९
मेनका सहजन्या च पर्णिका पुञ्जिकस्थला।
एताश्चाप्सरसोऽन्याश्च प्रनृत्यन्ति सहस्रशः॥ २०
धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा।
इन्द्रो विवस्वान् पूषा च त्वष्टा च सविता तथा॥ २१
कथितो विष्णुरित्येवं काश्यपेयो गणस्तथा।
इत्येते द्वादशादित्या ज्वलन्तः सूर्यवर्चसः॥ २२
चक्रुस्तस्य सुरेशस्य नमस्कारं महात्मनः।
मृगव्याधश्च सर्पश्च निर्ऋतिश्च महाबलः॥ २३
अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः।
दहनोऽथेश्वरश्चैव कपाली च विशाम्पते॥ २४
स्थाणुर्भर्गश्च भगवान् रुद्रास्तत्रावतस्थिरे।
अश्विनौ वसवश्चाष्टौ मरुतश्च महाबलाः॥ २५
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च तस्य प्राञ्जलयः स्थिताः।
शेषानुजा महाभागा वासुकिप्रमुखास्तथा॥ २६
कच्छपश्चापहर्ता च तक्षकश्च महाबलः।
अधृष्टास्तेजसा युक्ता महाक्रोधा महाबलाः॥ २७
एते नागा महात्मानस्तस्मै प्राञ्जलयः स्थिताः।
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुडश्च महाबलः॥ २८
अरुणश्चारुणिश्चैव वैनतेया ह्युपस्थिताः।
पितामहश्च भगवान् स्वयमागम्य लोककृत्।
प्राह चैवं गुरुः श्रीमान् सह सर्वैर्महात्मभिः॥ २९

ब्रह्मोवाच

यस्मात् प्रसूयते लोकः प्रभविष्णुः सनातनः।
तस्माल्लोकेश्वरः श्रीमान् विष्णुरेव भवत्वयम्॥ ३०

वे समस्त देव-गन्धर्व भगवान् केशवके समीप गान करने लगे। उसी प्रकार हर्षमें भरी हुई महाभागा अप्सराएँ सब प्रकारके अलंकारोंसे विभूषित हो वहाँ नृत्य और गान करने लगीं। उनके शरीर सुन्दर थे। जघनप्रदेश मनोहर जान पड़ते थे। वे सब-की-सब सर्वाङ्गसुन्दरी दिखायी देती थीं। उनके नेत्र बड़े-बड़े थे। शरीरका मध्यभाग सुन्दर एवं मनोहर था। उन सुमुखी अप्सराओंके मुख सबको प्रिय लगते थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—अनूका, जामी, मिश्रकेशी, अलम्बुषा, मरीचि, शुचिका, विद्युत्पूर्णा, तिलोत्तमा, अद्रिका, लक्षणा, रम्भा, मनोरमा, असिता, सुबाहु, सुप्रिया, सुभगा, उर्वशी, चित्रलेखा, सुग्रीवा, सुलोचना, पुण्डरीका, सुगन्धा, सुरथा, प्रमाथिनी, नन्दा, शारद्वती, मेनका, सहजन्या, पर्णिका, पुञ्जिकस्थला—ये तथा दूसरी झुंड-की-झुंड अप्सराएँ सहस्रोंकी संख्यामें वहाँ आकर नृत्य करने लगीं॥ १४—२०॥ धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता तथा विष्णु—यह कश्यपपुत्रोंका समुदाय है। ये सूर्यतुल्य तेजस्वी और अग्निके समान प्रकाशमान बारह आदित्य कहे गये हैं। इन सबने आकर उन देवेश्वर महात्मा वामनको नमस्कार किया। प्रजानाथ! मृगव्याध, सर्प, महाबली निर्ऋति, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, अपराजित, दहन, ईश्वर, कपाली तथा भगवान् स्थाणु या भर्ग—ये ग्यारह रुद्र भी वहाँ उपस्थित थे। दोनों अश्विनीकुमार, आठ वसु, महाबली मरुद्गण, विश्वेदेव तथा साध्य देवता उन भगवान्‌के सामने हाथ जोड़कर खड़े थे। शेषके छोटे भाई महाभाग वासुकि आदि, कच्छप, अपहर्ता और महाबली तक्षक—ये महाकाय नाग किसीसे पराजित होनेवाले नहीं थे। ये तेजस्वी, महाक्रोधी और महाबलवान् थे। ये सब-के-सब वहाँ भगवान्‌के लिये हाथ जोड़े हुए खड़े थे। तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, महाबली गरुड, अरुण और आरुणि—ये विनताके पुत्र भी वहाँ उपस्थित थे। इन सब महात्माओंके साथ लोकस्रष्टा जगद्गुरु श्रीमान् भगवान् पितामह स्वयं आकर इस प्रकार बोले॥ २१—२९॥

ब्रह्माजीने कहा—इनसे ही इस सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्ति होती है, इसलिये ये प्रभावशाली सनातन पुरुष श्रीमान् विष्णु ही लोकेश्वर हों (इन्हींको लोकेश्वरके पदपर प्रतिष्ठित किया जाय)॥ ३०॥

एवमुक्त्वा तु भगवान् सार्धं देवर्षिभिः प्रभुः।
नमस्कृत्वा सुरेशाय जगाम त्रिदिवं पुनः॥ ३१

स तु जातः सुरेशानः कश्यपस्यात्मजः प्रभुः।
नवदुर्दिनमेघाभो रक्ताक्षो वामनाकृतिः॥ ३२

श्रीवत्सेनोरसि श्रीमान् रोमजातेन राजता।
उत्फुल्ललोचनाः सर्वाः पश्यन्त्यप्सरसस्तदा॥ ३३

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद् युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद् भासा तस्य महात्मनः॥ ३४

सुरर्षिप्रतिमः श्रीमान् भूर्भुवर्भूतभावनः।
शुचिरोमा महास्कन्धाः सर्वतेजोमयः प्रभुः॥ ३५

या गतिः पुण्यकीर्तीनामगतिः पापकर्मणाम्।
योगसिद्धा महात्मानो यं विदुर्योगमुत्तमम्॥ ३६

यस्याष्टगुणमैश्वर्यं यमाहुर्देवसत्तमम्।
यं प्राप्य शाश्वतं विप्रा नियता मोक्षकाङ्क्षिणः॥ ३७

जन्मनो मरणाच्चैव मुच्यन्ते भवभीरवः।
यदेतत्तप इत्याहुः सर्वाश्रमनिवासिनः॥ ३८

सेवन्ते यं यताहारा दुश्चरं व्रतमास्थिताः।
योऽनन्त इति नागेषु सेव्यते सर्वभोगिभिः॥ ३९

सहस्रमूर्धा रक्ताक्षः शेषादिभिरनुत्तमैः।
यो यज्ञ इति विप्रेन्द्रैरिज्यते स्वर्गलिप्सुभिः॥ ४०

नानास्थानगतः श्रीमानेकः कविरनुत्तमः।
यं देवा यान्ति वेत्तारं यज्ञभागप्रदायिनम्॥ ४०

वृषार्चिश्चन्द्रसूर्याक्षं देवमाकाशविग्रहम्।
स प्राह त्रिदशान् सर्वान् वाचा वै परया विभुः॥ ४२

जानन्नपि महातेजा गतो योगेन बालताम्।
किं करोमि सुरश्रेष्ठाः कं वरं च ददामि वः॥ ४३

ऐसा कहकर देवर्षियोंसहित भगवान् ब्रह्मा उन देवेश्वरको नमस्कार करके पुनः अपने धामको चले गये॥ ३१॥ वहाँ प्रकट हुए कश्यपकुमार देवेश्वर भगवान् विष्णुका स्वरूप बौना था। वे वर्षाकालके नूतन मेघकी भाँति श्याम कान्तिसे सुशोभित हो रहे थे। उनके नेत्र कुछ-कुछ लाल थे॥ ३२॥ उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्स नामवाली रोमराजि सुशोभित थी, जिससे वे भगवान् बड़े शोभासम्पन्न दिखायी देते थे। उस समय सारी अप्सराएँ प्रफुल्ल नेत्रोंसे उनकी छवि निहार रही थीं॥ ३३॥ यदि आकाशमें एक सहस्र सूर्योंकी प्रभा एक साथ ही उदित हो जाती तो वही उन महात्मा श्रीहरिकी प्रभाके समान हो सकती थी॥ ३४॥ वे देवर्षियोंके तुल्य तेजस्वी श्रीमान् भगवान् वामन भूर्लोक और भुवर्लोक आदिके समस्त प्राणियोंके उत्पादक और संरक्षक थे। उनकी रोमावली पवित्र और कंधे बड़े-बड़े थे। वे प्रभु सम्पूर्ण तेजके पुञ्ज थे॥ ३५॥ जो पुण्यकीर्ति पुरुषोंकी गति हैं, पापकर्मियोंकी जिनके पास पहुँच नहीं होती, योगसिद्ध महात्मा पुरुष जिन्हें उत्तम योगके रूपमें जानते हैं, जिनमें अणिमा आदि अष्टगुण ऐश्वर्य सदा विराजमान हैं, जिन्हें देवशिरोमणि कहा गया है, जिन सनातन देवको पाकर नियमपरायण, मोक्षाभिलाषी तथा भवबन्धनसे भयभीत रहनेवाले ब्राह्मण जन्म-मरणके चक्रसे छूट जाते हैं, जिन्हें सभी आश्रमोंके निवासी तप कहते हैं, आहारका संयम करके दुष्कर व्रतका आश्रय लेनेवाले साधक जिनकी उपासना करते हैं, शेष आदि सर्वोत्तम एवं समस्त सर्पगण नागोंमें अनन्त नामसे जिनकी आराधना करते हैं, जिनके सहस्रों मस्तक और लाल-लाल नेत्र हैं, स्वर्गकी अभिलाषा रखनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण यज्ञपुरुषरूपसे जिनका यजन करते हैं, जो श्रीसम्पन्न, अद्वितीय तथा सर्वोत्तम ज्ञानी हैं और अकेले ही नाना स्थानोंमें व्याप्त हैं, जिन्हें ज्ञानी, यज्ञभागप्रदाता, धर्ममय तेजसे युक्त, चन्द्रमा और सूर्यरूपी नेत्रोंसे सुशोभित तथा अनन्त आकाशमय शरीरसे सम्पन्न मानकर देवता उनकी शरणमें जाते हैं, उन्हीं सर्वव्यापी परमात्माने अपनी उत्तम वाणीद्वारा समस्त देवताओंसे कहा— ॥ ३६—४२॥ योगशक्तिसे बालभावको प्राप्त हुए उन महातेजस्वी श्रीहरिने जानते हुए भी पूछा—'सुरश्रेष्ठगण! बताओ, मैं तुम्हारा कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ? तुम्हें क्या वर दूँ?

यत्काङ्क्षितं वै सर्वेषां तद्वै ब्रूत मुदा युताः।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा वामनस्य महात्मनः॥ ४४
सर्वे ते हृष्टमनसो देवाः कश्यपनन्दनम्।
ऊचुः प्राञ्जलयो विष्णुं सुराः शक्रपुरोगमाः॥ ४५
ब्रह्मणो वरदानेन हृतं नो निखिलं जगत्।
तपसा महता चैव विक्रमेण दमेन च॥ ४६
बलिना दैत्यमुख्येन सर्वज्ञेन महात्मना।
अवध्यः किल सोऽस्माकं सर्वेषां देवसत्तम॥ ४७
भवान् प्रभवते तस्य नान्यः कश्चन सुव्रत।
तत् प्रपद्यामहे सर्वे भवन्तं शरणार्थिनः।
शरण्यं वरदं देवं सर्वदेवभयापहम्॥ ४८
ऋषीणां च हितार्थाय लोकानां च सुरेश्वर।
प्रियार्थं च तथादित्याः कश्यपस्य तथैव च॥ ४९
कव्यं पितॄणामुचितं सुराणां हव्यमुत्तमम्।
प्रवर्तेत महाबाहो यथापूर्वं सुरोत्तम॥ ५०
आनृण्यार्थं सुरेशस्य वासवस्य महात्मनः।
प्रत्यानय महेन्द्रस्य त्रैलोक्यमिदमव्ययम्॥ ५१
क्रतुना वाजिमेधेन यजते स हि दानवः।
यत् प्रत्यानयने युक्तं लोकानां तद् विचिन्तय॥ ५२

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तदा देवैर्विष्णुर्वामनरूपधृक्।
प्रहर्षयन्नुवाचाथ सर्वान् देवानिदं वचः॥ ५३

विष्णुरुवाच

तस्य यज्ञसकाशं मां महर्षिर्वेदपारगः।
बृहस्पतिर्महातेजा नयत्वङ्गिरसः सुतः॥ ५४
तस्याहं समनुप्राप्तो यज्ञवाटं सुरोत्तमाः।
विचरिष्ये यथायुक्तं त्रैलोक्यहरणाय वै॥ ५५

वैशम्पायन उवाच

ततो बृहस्पतिर्धीमाननयद् वामनं प्रभुम्।
यज्ञवाटं महातेजा दानवेन्द्रस्य धीमतः॥ ५६
मौञ्जी यज्ञोपवीती च छत्री दण्डी ध्वजी तथा।
वामनो धूम्ररक्ताक्षो भगवान् बालरूपधृक्॥ ५७
तं गत्वा यज्ञवाटं च ब्रह्मर्षिगणसंकुलम्।
आत्मना चैव भगवान् वर्णयामास तं क्रतुम्॥ ५८
लोकेश्वरेश्वरः श्रीमान् सुरैर्ब्रह्मपुरोगमैः।
अध्यास्यमानो भगवानवृद्धोऽप्यथ वृद्धवत्॥ ५९

तुम सब लोगोंकी जो इच्छा हो, उसे प्रसन्नतापूर्वक बताओ।' महात्मा वामनकी यह बात सुनकर इन्द्र आदि समस्त देवता प्रसन्नचित्त हो उन कश्यपनन्दन भगवान् विष्णुसे हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले— ॥ ४३—४५ ॥ 'देवप्रवर! सर्वज्ञ महात्मा दैत्यराज बलिने महान् तप, अद्‌भुत विक्रम, इन्द्रिय-संयम तथा ब्रह्माजीके द्वारा दिये हुए वरदानके प्रभावसे हमारा सारा जगत् हमसे छीन लिया है। कहा जाता है कि वे हम सब लोगोंके लिये अवध्य हैं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले प्रभो! केवल आप ही उन्हें जीतनेमें समर्थ हैं, दूसरा कोई नहीं; इसलिये हम सब लोग शरणार्थी होकर आप सर्वदेव-भयहारी शरणागतवत्सल वरदायक देवताकी शरणमें आये हैं॥ ४६—४८॥ महाबाहु सुरश्रेष्ठ सुरेश्वर! आप ऋषियों और लोकोंके हितके लिये, माता अदिति और पिता कश्यपका प्रिय करनेके लिये, पितरोंके निमित्त उचित कव्य तथा देवताओंके लिये उत्तम हव्य जिस प्रकार पूर्ववत् प्राप्त हो सके, उसके लिये तथा अपने ज्येष्ठ भ्राता देवेश्वर महात्मा इन्द्रके ऋणसे उऋण होनेके लिये यह त्रिलोकीका अविनाशी राज्य बलिसे छीनकर आप पुनः महेन्द्रको लौटा दीजिये॥ ४९—५१॥ इस समय दानवराज बलि अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करते हैं, उनसे त्रिलोकीका राज्य लौटा लानेका जो उचित उपाय हो, उसका विचार कीजिये'॥ ५२॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! देवताओंके ऐसा कहनेपर वामनरूपधारी भगवान् विष्णुने समस्त देवताओंका हर्ष बढ़ाते हुए उनसे यह बात कही॥ ५३॥

श्रीविष्णु बोले—देवताओ! वेदोंके पारंगत विद्वान् अङ्गिराकुमार महातेजस्वी महर्षि बृहस्पति मुझे बलिके यज्ञके समीप ले चलें॥ ५४॥ सुरश्रेष्ठगण! उसके यज्ञमण्डपमें पहुँचकर मैं त्रिलोकीके राज्यका अपहरण करनेके लिये यथोचित उपायका विचार करूँगा॥ ५५॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तब महातेजस्वी बुद्धिमान् बृहस्पतिने भगवान् वामनको उत्तम बुद्धिवाले दानवराज बलिकी यज्ञशालातक पहुँचा दिया॥ ५६॥ बालरूपधारी भगवान् वामनने मूँजकी मेखला, यज्ञोपवीत, छत्र, दण्ड और ध्वज धारण कर रखे थे। उनके नेत्र धूम्र तथा रक्तवर्णके थे॥ ५७॥ ब्रह्मर्षियोंसे भरे हुए उस यज्ञमण्डपमें पहुँचकर भगवान्ने स्वयं ही उस यज्ञका वर्णन किया॥ ५८॥ लोकेश्वरोंके भी ईश्वर श्रीमान् भगवान् वामन यद्यपि अवृद्ध (बालक) थे तो भी ब्रह्मा आदि समस्त देवता वृद्धकी भाँति उनकी सेवामें उपस्थित थे॥ ५९॥

दानवाधिपतेस्तस्य बलेर्वैरोचनस्य च।
यज्ञवाटमचिन्त्यात्मा जगाम सुरसत्तमः॥ ६०
पालितोऽपि हि दैतेयः सांग्रामिकपरिच्छदैः।
द्वारे दानवसम्बाधे सहसैव विवेश ह॥ ६१
ऋषिभिश्चैव मन्त्राद्यैः सर्वतः परिवारितम्।
दैत्यदानवराजेन्द्रमुपतस्थे बलिं बली॥ ६२
वर्णयित्वा यथान्यायं यज्ञं यज्ञः सनातनः।
विस्तरेण नरश्रेष्ठ प्रयोगैर्विविधैस्तथा॥ ६३
शुक्रादीनृत्विजश्चापि यज्ञकर्मविचक्षणान्।
सर्वानेव निजग्राह चकार च निरुत्तरान्॥ ६४
आरादथ बलेस्तस्य ऋत्विजामभितस्तथा।
यज्ञमात्मानमेवासौ हेतुभिः कारणं विभुः॥ ६५
वैदिकैरप्रकाशैश्च पुनरप्यथ भारत।
प्रत्यक्षमृषिसंघानां वर्णयामास चित्रगुः॥ ६६
ततो निरुत्तरान् दृष्ट्वा सोपाध्यायानृषींश्च तान्।
अवृद्धेनापि वृद्धांस्तान् वामनेन महौजसा॥ ६७
अद्भुतं चापि मेने स विरोचनसुतो बली।
मूर्ध्ना कृताञ्जलिश्चेदमब्रवीद् विस्मितो वचः॥ ६८
कुतस्त्वं कोऽसि कस्यासि किं तेहास्ति प्रयोजनम्।
नैवंविधः परिज्ञातो दृष्टपूर्वो मया द्विजः॥ ६९
बालो मतिमतां श्रेष्ठो ज्ञानविज्ञानकोविदः।
शिष्टवाग्रूपसम्पन्नो मनोज्ञः प्रियदर्शनः॥ ७०
नेदृशाः सन्ति देवानामृषीणामपि सूनवः।
न नागानां न यक्षाणां नासुराणां न रक्षसाम्॥ ७१
न पितॄणां न सिद्धानां गन्धर्वाणां तथैव च।
योऽसि सोऽसि नमस्तेऽस्तु ब्रूहि किं करवाणि ते॥ ७२

वैशम्पायन उवाच

उक्त एवं ह्यचिन्त्यात्मा बलिना वामनस्तदा।
प्रोवाचोपायतत्त्वज्ञः स्मितपूर्वमिदं वचः॥ ७३

जिनका स्वरूप अचिन्त्य है, वे सुरश्रेष्ठ भगवान् वामन दानवराज विरोचनकुमार बलिके यज्ञमण्डपमें गये॥ ६०॥ यद्यपि दैत्यराज बलि युद्धोपयोगी वेशभूषा धारण करनेवाले सेवकोंसे सुरक्षित थे (अतः उनके पास पहुँचना कठिन था), तथापि दानवोंसे भरे हुए उस मण्डपके द्वारके भीतर वे सहसा प्रविष्ट हो गये॥ ६१॥ ऋषियोंने मन्त्र आदिके द्वारा सब ओरसे उन्हें घेर रखा था, तथापि बलवान् भगवान् वामन दैत्य-दानवराज बलिके पास पहुँच ही गये॥ ६२॥ नरश्रेष्ठ! उन सनातन यज्ञपुरुषने उस यज्ञका नाना प्रकारके प्रयोगोंद्वारा विस्तारपूर्वक यथोचित वर्णन करके यज्ञकर्ममें कुशल शुक्राचार्य आदि समस्त ऋत्विजोंको निगृहीत करते हुए उन्हें निरुत्तर कर दिया॥ ६३-६४॥ भारत! विचित्र वाणीवाले उन सर्वव्यापी भगवान्ने बलिके समीप, ऋत्विजोंके निकट तथा ऋषि-समुदायोंके समक्ष अपने ही स्वरूपभूत कारणात्मा यज्ञका अप्रकाशित वैदिक युक्तियोंद्वारा बारम्बार वर्णन किया॥ ६५-६६॥ महान् तेजस्वी बालक वामनके द्वारा उपाध्यायोंसहित उन वृद्ध महर्षियोंको भी निरुत्तर हुआ देख विरोचनकुमार बलवान् बलिने उसे अद्भुत चमत्कार माना। फिर वे हाथ जोड़े मस्तक झुका विस्मित होकर इस प्रकार बोले—॥ ६७-६८॥ 'विप्रवर! आप कहाँसे आये हैं? कौन हैं? किसके पुत्र हैं? यहाँ पधारनेमें आपका क्या प्रयोजन है? मैंने आप-जैसे द्विजको न तो पहले कभी देखा था और न जाना ही था॥ ६९॥ आप बाल होकर भी बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं। ज्ञान-विज्ञानमें प्रवीण हैं। आपकी वाणी शिष्टतापूर्ण है। आप रूपवान् और मनोहर हैं। देखनेमें प्रिय लगते हैं॥ ७०॥ देवताओं तथा ऋषियोंके पुत्र भी ऐसे नहीं हैं। न नागोंके, न यक्षोंके, न असुरोंके, न राक्षसोंके, न पितरोंके, न सिद्धोंके और न गन्धर्वोंके ही पुत्र ऐसे हैं। आप जो हों, सो हों, आपको नमस्कार है। बताइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'॥ ७१-७२॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! बलिके ऐसा कहनेपर अचिन्त्यस्वरूप भगवान् वामन, जो कार्य-सिद्धिके तात्त्विक उपायको जाननेवाले थे, मुसकराकर इस प्रकार बोले॥ ७३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारविषयक सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७०॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

वामनद्वारा बलिके यज्ञकी प्रशंसा, बलिसे माँगनेके लिये प्रेरित होनेपर वामनका उनसे तीन पग भूमि माँगना, शुक्राचार्य और प्रह्लादका बलिको दान देनेसे रोकना, बलिद्वारा दानका समर्थन तथा दान पाते ही वामनका अपने विराट्रूपको प्रकट करना

विष्णुरुवाच

अहो यज्ञोऽसुरेशस्य बहुभक्षः सुसंस्कृतः।
पितामहस्येव पुरा यजतः परमेष्ठिनः॥ १
सुरेशस्य च शक्रस्य यमस्य वरुणस्य च।
विशेषितस्त्वया यज्ञो दानवेन्द्र महाबल॥ २
यजता वाजिमेधेन क्रतूनां प्रवरेण तु।
सर्वपापविनाशाय त्वया स्वर्गप्रदर्शिना॥ ३
सर्वकाममयो ह्येष सम्मतो ब्रह्मवादिनाम्।
क्रतूनां प्रवरः श्रीमानश्वमेध इति श्रुतिः॥ ४
सुवर्णशृङ्गो हि महानुभावो
लोहक्षुरो वायुजवो महात्मा।
स्वर्गेक्षणः काञ्चनगर्भगौरः
स विश्वयोनिः परमो हि मेध्यः॥ ५
आस्थाय वै वाजिनमश्वमेध-
मिष्ट्वा नरा दुष्कृतमुत्तरन्ति।
आहुश्च यं वेदविदो द्विजेन्द्रा
वैश्वानरं वाजिनमश्वमेधम्॥ ६
यथाऽऽश्रमाणां प्रवरो गृहाश्रमो
यथा नराणां प्रवरा द्विजातयः।
यथासुराणां प्रवरो भवानिह
तथा क्रतूनां प्रवरोऽश्वमेधः॥ ७

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं वामनेन समीरितम्।
मुदा परमया युक्तः प्राह दैत्यपतिर्बलिः॥ ८

बलिरुवाच

कस्यासि ब्राह्मणश्रेष्ठ किमिच्छसि ददामि ते।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि॥ ९

भगवान् विष्णु बोले—अहो! असुरेश्वर बलिका यह यज्ञ अद्भुत है। इसमें भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंकी बहुलता है तथा यह यज्ञ सुन्दर संस्कारसे सम्पन्न है। पूर्वकालमें यज्ञपरायण परमेष्ठी ब्रह्माने जैसा यज्ञ किया था, वैसा ही यह भी है॥ १॥ महाबली दानवराज! पूर्वकालमें देवराज इन्द्र, यम और वरुणका जो यज्ञ हुआ था, तुमने उससे भी बढ़कर यह यज्ञ किया है॥ २॥ स्वर्गलोकका दर्शन करानेवाला क्रतुश्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ समस्त पापोंके विनाशमें कारण है। तुमने इसके द्वारा यजन करके अपने इस यज्ञका महत्त्व बढ़ा दिया है॥ ३॥ क्रतुश्रेष्ठ श्रीमान् अश्वमेध सर्वकाममय है, यह ब्रह्मवादियोंको भी मान्य है, ऐसा श्रुतिका कथन है॥ ४॥ विश्वका कारणभूत वह उत्तम यज्ञ परम पवित्र है, उस अश्वरूपधारी यज्ञका शृङ्ग (मस्तक) सुवर्णमय है, उसका प्रभाव महान् है, खुर लोहेके समान कठोर हैं, वेग वायुके समान तीव्र है, शरीर विशाल है, वह स्वर्गलोककी ओर दृष्टि रखनेवाला है और उसकी कान्ति सुवर्णमिश्रित गौरवर्णकी है॥ ५॥ उस अश्वमेधरूपी अश्वका आश्रय लेकर यज्ञ करनेके पश्चात् मनुष्य पापसे पार हो जाते हैं। वेदवेत्ता विप्रवर अश्वमेधयज्ञसम्बन्धी अश्वको वैश्वानर (अग्निरूप) कहते हैं॥ ६॥ जैसे गृहस्थ-आश्रम सब आश्रमोंमें श्रेष्ठ है, जैसे ब्राह्मण सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं और जैसे आप यहाँ असुरोंमें श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार अश्वमेध सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ है॥ ७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वामनके कहे हुए इस वचनको सुनकर दैत्यराज बलि बड़े प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले॥ ८॥

बलिने कहा—विप्रवर! आप किसके पुत्र हैं और क्या चाहते हैं? मैं आपको मुँहमाँगी वस्तु देता हूँ। आपका भला हो, कोई वर माँगिये और अपना अभीष्ट मनोरथ प्राप्त कीजिये॥ ९॥

वामन उवाच

न राज्यं न च यानानि न रत्नानि न च स्त्रियः।
कामये यदि तुष्टोऽसि धर्मे च यदि ते मतिः॥ १०

गुर्वर्थं मे प्रयच्छस्व पदानि त्रीणि दानव।
त्वमग्निशरणार्थाय एष मे प्रवरो वरः॥ ११

वामनस्य वचः श्रुत्वा प्राह दैत्यपतिर्बलिः।

बलिरुवाच

त्रिभिः किं तव विप्रेन्द्र पदैः प्रवदतां वर।
शतं शतसहस्राणां पदानां मार्गतां भवान्॥ १२

शुक्र उवाच

मा ददस्व महाबाहो न त्वं वेत्सि महासुर।
एष मायाप्रतिच्छन्नो भगवान् प्रवरो हरिः॥ १३

वामनं रूपमास्थाय शक्रप्रियहितेप्सया।
त्वां वञ्चयितुमायातो बहुरूपधरो विभुः॥ १४

एवमुक्तः स शुक्रेण चिरं संचिन्त्य वै बलिः।
प्रहर्षेण समायुक्तः किमतः पात्रमिष्यते॥ १५

प्रगृह्य हस्ते सम्भ्रान्तो भृङ्गारं कनकोद्भवम्।

बलिरुवाच

विप्रेन्द्र प्राङ्मुखस्तिष्ठ स्थितोऽस्मि कमलेक्षण॥ १६

प्रतीच्छ देहि किं भूमिं किं मात्रा भोः पदत्रयम्।
दत्तं च पातय जलं नैव मिथ्या भवेद् गुरुः॥ १७

शुक्र उवाच

भो न देयं कुतो दैत्य विज्ञातोऽयं मया ध्रुवम्।
कोऽयं विष्णुरहो प्रीतिर्वञ्चितस्त्वं न वञ्चितः॥ १८

वामन बोले—दनुनन्दन! मैं न तो राज्य चाहता हूँ, न वाहन। न रत्नकी इच्छा रखता हूँ, न स्त्रियोंकी। यदि आप प्रसन्न हैं और यदि आपका मन धर्ममें लगता है तो मुझे गुरुके लिये अग्निशाला बनवानेके निमित्त तीन पग भूमि दे दीजिये, यही मेरे लिये सर्वोत्तम वर है। वामनजीकी यह बात सुनकर दैत्यराज बलि बोले॥ १०-११ $\frac{1}{2}$॥

बलिने कहा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ विप्रवर! तीन पग भूमिसे आपका क्या होगा? लाखों, करोड़ों पग भूमि माँग लीजिये॥ १२॥

यह देख शुक्राचार्यने कहा—महाबाहो! महान् असुर! तुम इन्हें कुछ न दो! तुम्हें पता नहीं कि ये कौन हैं? ये देवशिरोमणि भगवान् विष्णु हैं, जो मायासे अपने स्वरूपको छिपाकर आये हैं॥ १३॥ अनेक रूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णु इन्द्रका प्रिय और हित करनेकी इच्छासे वामनरूप धारण करके तुम्हें ठगनेके लिये यहाँ आये हैं॥ १४॥ शुक्राचार्यके ऐसा कहनेपर बलिने चिरकालतक सोच-विचार करके बड़े हर्षके साथ कहा—'इनसे बढ़कर उत्तम पात्र और कौन हो सकता है'॥ १५॥ ऐसा कहकर बलिने वेगपूर्वक हाथमें सोनेकी झारी उठा ली॥ १५ $\frac{1}{2}$॥

बलिने कहा—'विप्रवर! पूर्वाभिमुख होकर खड़े हो जाइये!' (वामन बोले—) 'खड़ा हूँ।' (बलि बोले—) 'कमलनयन! लीजिये।' (वामन बोले—) 'दीजिये।' (बलि बोले—) 'क्या दूँ?' (वामन बोले—) 'भूमि।' (बलि बोले—) 'ब्रह्मन्! उस भूमिकी मात्रा कितनी है?' (वामन बोले—) 'तीन पग।' (बलि बोले—) 'दे दिया।' (वामन बोले—) 'संकल्पकर जल गिराइये, जिससे मेरे गुरुकी माँग व्यर्थ न हो जाय'॥ १६-१७॥

शुक्र बोले—'अजी! यह दान नहीं देना चाहिये।' (बलि०) 'क्यों?' (शुक्र०) 'दैत्य! मैंने निश्चय ही इन्हें पहचान लिया है।' (बलि०) 'कौन हैं ये?' (शुक्र०) 'अहो! यह विष्णु हैं।' (बलि०) 'तब तो बड़ी प्रसन्नताकी बात है।' (शुक्र०) 'फिर तो तुम ठगे गये।' (बलि०) 'नहीं! मैं ठगा नहीं गया'॥ १८॥

बलिरुवाच

कथं सनाथोऽयं विष्णुर्यज्ञे स्वयमुपस्थितः।
दास्यामि देवदेवाय यद् यदिच्छत्ययं विभुः॥ १९

को वान्यः पात्रभूतोऽस्माद् विष्णोः परतरो भवेत्।
एवमुक्त्वा बलिः शीघ्रं पातयामास वै जलम्॥ २०

वामन उवाच

पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र पर्याप्तानि ममानघ।
यन्मया पूर्वमुक्तं हि तत् तथा न तदन्यथा॥ २१

वैशम्पायन उवाच

इत्येतद् वचनं श्रुत्वा वामनस्य महौजसः।
कृष्णाजिनोत्तरीयं स कृत्वा वैरोचनिस्तदा॥ २२
एवमस्त्विति दैत्येशो वाक्यमुक्त्वारिसूदनः।
ततो वारिसमापूर्णं भृङ्गारं स परामृशत्॥ २३
वामनो ह्यसुरेन्द्रस्य चिकीर्षुः कदनं महत्।
क्षिप्रं प्रसारयामास दैत्यक्षयकरं करम्॥ २४
प्राङ्मुखश्चापि दैत्येशस्तस्मै सुमनसा जलम्।
दातुकामः करे यावत् तावत् तं प्रत्यषेधयत्॥ २५
तस्य तद् रूपमालोक्य ह्यचिन्त्यं च महात्मनः।
अभूतपूर्वं च हरेर्जिहीर्षोः श्रियमासुरीम्॥ २६
इङ्गितज्ञोऽग्रतः स्थित्वा प्रह्लादस्त्वब्रवीद् वचः।

प्रह्लाद उवाच

मा ददस्व जलं हस्ते बटोर्वामनरूपिणः॥ २७
स त्वसौ येन ते पूर्वं निहतः प्रपितामहः।
विष्णुरेव महाप्राज्ञस्त्वां वञ्चयितुमागतः॥ २८

बलिरुवाच

हन्त तस्मै प्रदास्यामि देवायेमं प्रतिग्रहम्।
अनुग्रहकरं देवमीदृशं जगतः प्रभुम्॥ २९

ब्रह्मणोऽपि गरीयांसं पात्रं लप्स्यामहे वयम्।
अवश्यं चासुरश्रेष्ठ दातव्यं दीक्षितेन वै॥ ३०

बलि बोले—अहो! यह भगवान् विष्णु तो सर्वथा सनाथ (कृतकृत्य) हैं। फिर यह मेरे यज्ञमें याचनाके लिये स्वयं कैसे उपस्थित हो गये? यदि आ ही गये तो यह भगवान् जो-जो चाहते हैं, वह सब मैं इन देवाधिदेवको समर्पित करूँगा॥ १९॥ 'इन विष्णुसे बढ़कर दूसरा कौन श्रेष्ठतर पात्र हो सकता है'—ऐसा कहकर बलिने शीघ्र ही जल गिराया॥ २०॥

वामन बोले—निष्पाप दैत्यराज! मेरे लिये तीन पग पर्याप्त है! मैंने पहले जो कुछ कहा है, वह ठीक है। मिथ्या नहीं है॥ २१॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! महातेजस्वी वामनका यह वचन सुनकर शत्रुसूदन विरोचनकुमार दैत्यराज बलिने उस समय काले मृगचर्मको उत्तरीय बनाकर कहा—'एवमस्तु' ऐसा कहकर उन्होंने जलसे भरे हुए गडुएको हाथमें लिया॥ २२-२३॥ भगवान् वामन असुरराज बलिकी बड़ी भारी हानि करना चाहते थे; अतः उन्होंने अपने दैत्यविनाशक हाथको शीघ्र उनके आगे फैला दिया॥ २४॥ दैत्येश्वर बलि पूर्वाभिमुख होकर शुद्ध हृदयसे वामनजीके हाथमें ज्यों ही जल देनेको उद्यत हुए त्यों ही प्रह्लादने उन्हें रोका॥ २५॥ असुरोंकी सम्पत्तिको हर लेनेकी इच्छावाले उन परमात्मा श्रीहरिके उस अभूतपूर्व एवं अचिन्त्य रूपको देखकर उनकी चेष्टाको समझनेवाले प्रह्लाद बलिके सामने खड़े हो गये और इस प्रकार बोले॥ २६ $\frac{1}{2}$॥

प्रह्लादने कहा—दैत्यराज! तुम इन वामन-रूपधारी ब्रह्मचारीके हाथमें जल न दो। ये वे ही हैं, जिन्होंने पूर्वकालमें तुम्हारे प्रपितामहको मार डाला था। ये महाबुद्धिमान् विष्णु ही तुम्हें ठगनेके लिये आये हैं॥ २७-२८॥

बलिने कहा—असुरश्रेष्ठ! यदि ऐसी बात है तब तो बड़े हर्षका विषय है। मैं उन नारायणदेवको यह प्रतिग्रह अवश्य दूँगा। जो ब्रह्माजीसे भी अधिक गौरवशाली और अनुग्रह करनेवाले हैं, ऐसे जगदीश्वरदेवको हमलोग दानपात्रके रूपमें प्राप्त करेंगे (इससे बढ़कर सौभाग्यकी बात और क्या हो सकती है)। अतः यज्ञमें दीक्षित हुए मुझ यजमानको इन वामनदेवके लिये अवश्य दान देना चाहिये॥ २९-३०॥

इत्युक्त्वासुरसंघानां मध्ये वैरोचनिस्तदा।
देवाय प्रददौ तस्मै पदानि त्रीणि विष्णवे॥ ३१

प्रह्लाद उवाच

दानवेश्वर मा दास्त्वं विप्रायास्मै प्रतिग्रहम्।
नेमं विप्रशिशुं मन्ये नेदृशो भवति द्विजः॥ ३२
रूपेणानेन दैत्येन्द्र सत्यमेव ब्रवीमि ते।
नारसिंहमहं मन्ये तमेव पुनरागतम्॥ ३३
एवमुक्तस्तदा तेन प्रह्लादेनामितौजसा।
प्रह्लादमब्रवीद् वाक्यमिदं निर्भर्त्सयन्निव॥ ३४

बलिरुवाच

देहीति याचते यो हि प्रत्याख्याति च योऽसुर।
उभयोरप्यलक्ष्म्या वै भागस्तं विशते नरम्॥ ३५
प्रतिज्ञाय तु यो विप्रे न ददाति प्रतिग्रहम्।
स याति नरकं पापी मित्रगोत्रसमन्वितः॥ ३६
अलक्ष्मीभयभीतोऽहं ददाम्यस्मै वसुंधराम्।
प्रतिग्रहीता चाप्यन्यः कश्चिदस्माद् द्विजोऽथ वै॥ ३७
नाधिको विद्यते यस्मात् तद् ददामि वसुंधराम्।
हृदयस्य च मे तुष्टिः परा भवति दानव॥ ३८
दृष्ट्वा वामनरूपेण याचन्तं द्विजपुङ्गवम्।
एष तस्मात् प्रदास्यामि न स्थास्यामि निवारितः॥ ३९
भूयश्च प्राब्रवीदेवं वामनं विप्ररूपिणम्।
स्वल्पैः स्वल्पमते किं ते पदैस्त्रिभिरनुत्तमम्॥ ४०
कृत्स्नां ददामि ते विप्र पृथिवीं सागरैर्वृताम्।

वामन उवाच

न पृथ्वीं कामये कृत्स्नां संतुष्टोऽस्मि पदैस्त्रिभिः।
एष एव रुचिष्यो मे वरो दानवसत्तम॥ ४१

वैशम्पायन उवाच

तथास्त्विति बलिः प्रोच्य स्पर्शयामास दानवः।
पदानि त्रीणि देवाय विष्णवेऽमिततेजसे॥ ४२
तोये तु पतिते हस्ते वामनोऽभूदवामनः।
सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास वै विभुः॥ ४३

असुरसमूहोंके बीचमें ऐसी बात कहकर विरोचनकुमार बलि उस समय उन विष्णुदेवको तीन पग भूमिका दान देने लगे॥ ३१॥

तब प्रह्लादने फिर कहा—दानवेश्वर! तुम इन ब्राह्मणको प्रतिग्रह न दो। मैं इन्हें ब्राह्मणका बालक नहीं मानता; क्योंकि ब्राह्मणका बालक ऐसा नहीं होता॥ ३२॥ दैत्येन्द्र! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। इनके इस रूपसे मुझे यही अनुमान होता है कि पुनः वे नरसिंहदेव ही यहाँ आ गये हैं॥ ३३॥ अमित तेजस्वी प्रह्लादके ऐसा कहनेपर उस समय बलिने प्रह्लादको फटकारते हुए-से इस प्रकार कहा॥ ३४॥

बलि बोले—असुर! जो 'दीजिये' कहकर याचना करता है तथा जो उस याचकको ठुकरा देता है, उस मनुष्यको उस याचक और ठुकरानेवाले दोनोंकी दरिद्रताका भाग प्राप्त होता है॥ ३५॥ जो प्रतिज्ञा करके भी ब्राह्मणको दान नहीं देता है, वह पापी मित्र और कुटुम्बी-जनोंसहित नरकमें जाता है॥ ३६॥ मैं अलक्ष्मी (दरिद्रता)- के भयसे डरकर इन्हें पृथ्वीका दान देता हूँ। दूसरा कोई दान लेनेवाला ब्राह्मण इनसे बढ़कर नहीं मिल सकता, इसलिये मैं इन्हींको पृथ्वीका दान देता हूँ। दानव! इन ब्राह्मणशिरोमणिको वामनरूपसे याचना करते देख मेरे हृदयको बड़ा संतोष प्राप्त होता है, इसलिये मैं इन्हें अवश्य दान दूँगा, आपके रोकनेपर भी रुक नहीं सकूँगा॥ ३७—३९॥ तदनन्तर उन्होंने ब्राह्मणरूपधारी वामनसे पुनः इस प्रकार कहा—'मन्दबुद्धि ब्राह्मण! तुम्हारे इन छोटे-छोटे तीन पदोंसे कौन-सा परम उत्तम भूभाग प्राप्त हो सकेगा? मैं तुम्हें समुद्रोंसे घिरी हुई सारी पृथ्वी देता हूँ'॥ ४०½॥

वामनने कहा—दानवशिरोमणे! मैं सारी पृथ्वीकी कामना नहीं करता। तीन पगोंसे ही संतुष्ट हूँ। यही मेरी रुचिके अनुकूल वर है॥ ४१॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तब दानवराज बलिने 'तथास्तु' कहकर उन महातेजस्वी विष्णुदेवको तीन पग भूमिका दान कर दिया॥ ४२॥ हाथपर संकल्पका जल पड़ते ही वामनजी विराट् बन गये। उन भगवान्ने वहाँ अपने सर्वदेवमय रूपका दर्शन कराया॥ ४३॥

भूः पादौ द्यौः शिरश्चास्य चन्द्रादित्यौ च चक्षुषी।
पादाङ्गुल्यः पिशाचाश्च हस्ताङ्गुल्यश्च गुह्यकाः॥ ४४
विश्वेदेवाश्च जानुस्था जङ्घे साध्याः सुरोत्तमाः।
यक्षा नखेषु सम्भूता लेखाश्चाप्सरसस्तथा॥ ४५
तडिद् दृष्टिः सुविपुला केशाः सूर्यांशवस्तथा।
तारका रोमकूपाणि रोमाणि च महर्षयः॥ ४६
बाहवो विदिशश्चास्य दिशः श्रोत्रे तथैव च।
अश्विनौ श्रवणौ चास्य नासा वायुर्महाबलः॥ ४७
प्रसादश्चन्द्रमाश्चैव मनो धर्मस्तथैव च।
सत्यमस्याभवद् वाणी जिह्वा देवी सरस्वती॥ ४८
ग्रीवा दितिर्महादेवी तालुः सूर्यश्च दीप्तिमान्।
द्वारं स्वर्गस्य नाभिर्वै मित्रस्त्वष्टा च वै भ्रुवौ॥ ४९
मुखं वैश्वानरश्चास्य वृषणौ तु प्रजापतिः।
हृदयं भगवान् ब्रह्मा पुंस्त्वे वै कश्यपो मुनिः॥ ५०
पृष्ठेऽस्य वसवो देवा मरुतः पादसंधिषु।
सर्वच्छन्दांसि दशना ज्योतींषि विमलाः प्रभाः॥ ५१
ऊरू रुद्रो महादेवो धैर्यं चास्य महार्णवः।
उदरे चास्य गन्धर्वा भुजगाश्च महाबलाः॥ ५२
लक्ष्मीर्मेधा धृतिः कान्तिः सर्वविद्या च वै कटिः।
ललाटमस्य परमस्थानं च परमात्मनः॥ ५३
सर्वज्योतींषि यानीह तपः शक्रस्तु देवराट्।
तस्य देवाधिदेवस्य तेजो ह्याहुर्महात्मनः॥ ५४
स्तनौ कक्षौ च वेदाश्च ओष्ठौ चास्य मखाः स्थिताः।
इष्टयः पशुबन्धाश्च द्विजानां चेष्टितानि च॥ ५५
तस्य देवमयं रूपं दृष्ट्वा विष्णोर्महासुराः।
अभ्यसर्पन्त संक्रुद्धाः पतङ्गा इव पावकम्॥ ५६

भूलोक उनका पैर था और स्वर्गलोक सिर। चन्द्रमा और सूर्य उनके नेत्रोंके स्थानमें थे। पिशाच इनके पैरोंकी अङ्गुलियाँ थे तो गुह्यक हाथोंकी॥ ४४॥ विश्वेदेव उनके घुटनोंमें स्थित थे। श्रेष्ठ देवता साध्यगण उनकी दोनों पिण्डलियाँ थे। यक्ष, लेख नामक देवता तथा अप्सराएँ उनके नखोंमें स्थित थीं॥ ४५॥ विद्युत् उनकी विशाल दृष्टि थी। सूर्यकी किरणें उनके केश थीं। तारे उनके रोमकूप और महर्षि उनके रोम थे॥ ४६॥ दिशाएँ कान और विदिशाएँ उनकी भुजाएँ थीं। अश्विनीकुमार उनके श्रवणरन्ध्र तथा महाबली वायुदेव उनकी नासिका थे॥ ४७॥ चन्द्रमा उनके प्रसाद, धर्म मन, सत्य वाणी और देवी सरस्वती जिह्वा थीं॥ ४८॥ महादेवी दिति ग्रीवा, दीप्तिमान् सूर्य तालु, स्वर्गद्वार नाभि और मित्र तथा त्वष्टा दोनों भौंहें थे॥ ४९॥ अग्नि मुख, प्रजापति अण्डकोश, भगवान् ब्रह्मा हृदय तथा कश्यप मुनि जननेन्द्रियके स्थानमें थे॥ ५०॥ उनके पृष्ठभागमें वसुदेवता और पैरोंकी संधियोंमें मरुद्गण थे। सम्पूर्ण छन्द दाँत और ग्रह-नक्षत्र निर्मल प्रभाएँ थे॥ ५१॥ उनके दोनों ऊरु (जाँघें) महादेव रुद्र थे। धैर्यका स्थान महासागरने ले लिया था। उदरमें गन्धर्व और महाबली सर्प निवास करते थे॥ ५२॥ लक्ष्मी, मेधा, धृति, कान्ति और सम्पूर्ण विद्याएँ उनका कटि-प्रदेश थीं। उन परमात्माका परमधाम ही उनका ललाट था॥ ५३॥ सम्पूर्ण ज्योतिर्गण, तप और देवराज इन्द्र—सबको उन देवाधिदेव परमात्माका तेज कहा गया है॥ ५४॥ चारों वेद उनके स्तन और कक्ष थे। यज्ञ उनके ओष्ठके स्थानमें स्थित थे। इष्टियाँ पशुबन्ध और द्विजोंकी चेष्टाएँ सभी उनके विभिन्न अङ्ग थे॥ ५५॥ भगवान् विष्णुके उस देवमय रूपको देखकर सभी महान् असुर अत्यन्त कुपित हो उसी प्रकार उनकी ओर बढ़े, जैसे पतिंगे जलती आगपर टूटे पड़ते हैं॥ ५६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे विश्वरूपप्रकाशे एकसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारके प्रसङ्गमें वामनके विश्वरूपका प्रकाशविषयक इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७१॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

विराट्रूपधारी वामनपर आक्रमण करनेवाले दैत्योंके नाम, रूप और आयुधोंका परिचय, भगवान्‌का तीनों लोकोंको नापकर राज्यका विभाजन करना, बलिको पातालका राज्य दे मर्यादा बाँधकर उन्हें वहाँ भेजना, जीविकाकी व्यवस्था करना, नारदजीका बलिको मोक्षविंशक स्तोत्रका उपदेश देना, उसके प्रभावसे बलिका बन्धनमुक्त होना और उस स्तोत्रकी महिमा

वैशम्पायन उवाच

शृणु नामानि सर्वेषां रूपाण्यभिजनानि च।
आयुधानि च मुख्यानि दानवानां महात्मनाम्॥ १
विप्रचित्तिः शिबिः शङ्कुरयः शङ्कुस्तथैव च।
अयःशिरा अश्वशिरा हयग्रीवश्च वीर्यवान्॥ २
वेगवान् केतुमानुग्रः सोग्रव्यग्रो महासुरः।
पुष्करः पुष्कलश्चैव साश्वोऽश्वपतिरेव च॥ ३
प्रह्लादोऽश्वशिराः कुम्भः संह्लादो गगनप्रियः।
अनुह्लादो हरिहरौ वाराहः संहरो रुजः॥ ४
वृषपर्वा विरूपाक्षो अतिचन्द्रः सुलोचनः।
निष्प्रभः सुप्रभः श्रीमांस्तथैव च निरूदरः॥ ५
एकवक्त्रो महावक्त्रो द्विवक्त्रः कालसंनिभः।
शरभः शलभश्चैव कुणपः कुलपः क्रथः॥ ६
बृहत्कीर्तिर्महागर्भः शङ्कुकर्णो महाध्वनिः।
दीर्घजिह्वोऽर्कवदनो मृदुबाहुर्मृदुप्रियः॥ ७
वायुर्गविष्ठो नमुचिः शम्बरो विक्षरो महान्।
चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्धन एव च॥ ८
कालकः कालकाक्षश्च वृत्रः क्रोधो विमोक्षणः।
गविष्ठश्च हविष्ठश्च प्रलम्बो नरकः पृथुः॥ ९
चन्द्रतापनवातापी केतुमान् बलदर्पितः।
असिलोमा पुलोमा च बाष्कलः प्रमदो मदः॥ १०
शृगालवदनश्चैव करालः केशिरेव च।
एकाक्षश्चैकबाहुश्च तुहुण्डः सृमलः सृपः॥ ११
एते चान्ये च बहवः क्रममाणं त्रिविक्रमम्।
उपतस्थुर्महात्मानं विष्णुं दैत्यगणास्तदा॥ १२
प्रासोद्यतकराः केचिद् व्यादितास्याः खरस्वनाः।
शतघ्नीचक्रहस्ताश्च वज्रहस्तास्तथा परे॥ १३
खड्गपट्टिशहस्ताश्च परश्वधधराः परे।
प्रासमुद्गरहस्ताश्च तथा परिघपाणयः॥ १४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अब तुम समस्त महामनस्वी दानवोंके नाम, रूप, कुल और मुख्य-मुख्य आयुधोंका वर्णन सुनो॥ १॥ विप्रचित्ति, शिबि, शङ्कुरय, शङ्कु, अयःशिरा, अश्वशिरा, पराक्रमी हयग्रीव, वेगवान्, केतुमान्, महान् असुर उग्र और उग्रव्यग्र, पुष्कर, पुष्कल, अश्व, अश्वपति, प्रह्लाद, अश्वशिरा (द्वितीय), कुम्भ, संह्लाद, गगनप्रिय, अनुह्लाद, हरि, हर, वाराह, संहर, रुज, वृषपर्वा, विरूपाक्ष, अतिचन्द्र, सुलोचन, निष्प्रभ, सुप्रभ, श्रीमान्, निरूदर, एकवक्त्र, महावक्त्र, द्विवक्त्र, कालसंनिभ, शरभ, शलभ, कुणप, कुलप, क्रथ, बृहत्कीर्ति, महागर्भ, शङ्कुकर्ण, महाध्वनि, दीर्घजिह्व, अर्कवदन, मृदुबाहु, मृदुप्रिय, वायु, गविष्ठ, नमुचि, शम्बर, महान् असुर विक्षर, चन्द्रहन्ता, क्रोधहन्ता, क्रोधवर्द्धन, कालक, कालकाक्ष, वृत्र, क्रोध, विमोक्षण, गविष्ठ (द्वितीय), हविष्ठ, प्रलम्ब, नरक, पृथु, चन्द्रतापन, वातापि, बलाभिमानी केतुमान् (द्वितीय), असिलोमा, पुलोमा, बाष्कल, प्रमद, मद, शृगालवदन, कराल, केशी, एकाक्ष, एकबाहु, तुहुण्ड, सृमल तथा सृप—ये और दूसरे भी बहुत-से दैत्यगण उस समय अपना पग बढ़ानेवाले महात्मा त्रिविक्रम विष्णुके पास आ पहुँचे॥ २—१२॥ किन्हीं दैत्योंने अपने हाथोंमें प्रास उठा रखे थे। वे मुँह बाये हुए थे और गधोंके रेंकनेकी भाँति गर्जना करते थे। कितने ही दैत्य अपने हाथोंमें शतघ्नी और चक्र लिये हुए थे तथा दूसरोंने हाथोंमें वज्र उठा रखे थे॥ १३॥ किन्हींके हाथोंमें खड्ग और पट्टिश थे। दूसरोंने फरसे धारण किये थे। कितनोंने अपने-अपने हाथोंमें प्रास, मुद्गर और परिघ ले रखे थे॥ १४॥

महाशनिव्यग्रकरा मौशलास्तु महाबलाः।
महावृक्षोद्यतकरास्तथैव च धनुर्धराः॥ १५

गदाभुशुण्डिहस्ताश्च वज्रहस्तास्तथा परे।
महापट्टिशहस्ताश्च तथा परिघपाणयः॥ १६

असिकम्पनहस्ताश्च दानवा युद्धदुर्मदाः।
नानाप्रहरणा घोरा नानावेषा महाबलाः॥ १७

कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च हस्तिवक्त्रास्तथा परे।
खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा॥ १८

भीमा मकरवक्त्राश्च शिशुमारमुखास्तथा।
मार्जारशुकवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च दानवाः॥ १९

गरुडाननाः खड्गमुखा मयूरवदनास्तथा।
अश्ववक्त्रा बभ्रुवक्त्रा घोरा मृगमुखास्तथा॥ २०

उष्ट्रशल्यकवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च दानवाः।
नकुलस्येव वक्त्राश्च पारावतमुखास्तथा॥ २१

चक्रवाकमुखाश्चैव गोधवक्त्रास्तथा परे।
तथा मृगाननाः शूरा गोऽजादिमहिषाननाः॥ २२

कृकलासमुखाश्चैव व्याघ्रवक्त्रास्तथा परे।
ऋक्षशार्दूलवक्त्राश्च सिंहवक्त्रास्तथा परे॥ २३

गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः।
चीरसंवृतगात्राश्च तथा फलकवाससः॥ २४

उष्णीषिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुराः।
किरीटिनो लम्बशिखाः कम्बुग्रीवाः सुवर्चसः॥ २५

नानावेषधरा दैत्या नानामाल्यानुलेपनाः।
स्वान्यायुधानि दीप्तानि प्रगृह्यासुरसत्तमाः॥ २६

किन्हींके हाथ बहुत बड़ी अशनिसे व्यग्र दिखायी देते थे। दूसरे महाबली दैत्य मूसल लिये हुए थे। कितने ही हाथोंमें विशाल वृक्ष उठाये हुए थे और कितनोंने धनुष धारण किये थे॥ १५॥ बहुत-से दैत्य हाथोंमें गदा, भुशुण्डि, वज्र, महापट्टिश और परिघ लिये हुए थे॥ १६॥ बहुत-से रणदुर्मद दानव हाथोंमें खड्ग और कम्पन धारण किये हुए थे। नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये और भाँति-भाँतिके वेश धारण किये महाबली भयंकर दैत्य वहाँ उपस्थित थे॥ १७॥ किन्हींके मुख कछुओंके समान थे तो किन्हींके मुर्गोंके समान। कोई हाथी-जैसे मुखवाले थे तो कोई गदहे, ऊँट और सूअर-जैसे॥ १८॥ कितने ही भयंकर दैत्य मगर, सूँस, बिल्ली और तोते-जैसे मुखवाले थे। किन्हीं-किन्हीं दानवोंके मुख बड़े विशाल थे॥ १९॥ कुछ घोर दैत्य गरुड़, गेंडे और मोरके समान मुखवाले थे। बहुतोंके मुख घोड़े, नेवले और मृगोंके समान थे॥ २०॥ बहुत-से दानव ऊँटों और स्याहियोंके समान मुखवाले थे। कितनोंके मुख लम्बे दिखायी देते थे। किन्हींके मुख नेवलोंके समान थे तो किन्हींके परेवोंके समान॥ २१॥ किन्हींके मुख चकवेके समान थे। कोई गोहके समान मुख धारण किये थे तथा बहुत-से शूरवीर दानव मृग, गौ, बकरे, भेड़ और भैंसोंके समान मुखवाले थे॥ २२॥ दूसरे अनेक दैत्य गिरगिट और बाघके समान मुखवाले थे। कितनोंके मुख रीछों, शार्दूलों और सिंहोंके समान थे॥ २३॥ कोई हाथीकी खाल पहने हुए थे तो कोई काले मृगचर्मको ही वस्त्रके समान धारण किये थे। बहुतोंने अपने अङ्गोंमें चिथड़े लपेट रखे थे तथा कितने ही दैत्य पत्तोंको ही वस्त्रके रूपमें धारण किये थे॥ २४॥ वे असुर पगड़ी, मुकुट, कुण्डल और किरीटसे अलंकृत थे। उनकी शिखाएँ बड़ी-बड़ी और ग्रीवा शङ्खके समान थी। वे उत्तम तेजसे सम्पन्न थे॥ २५॥ नाना प्रकारके वेश, माला और अनुलेप धारण करनेवाले असुरशिरोमणि दैत्य और दानव अपने-अपने चमकीले अस्त्र-शस्त्र लेकर

क्रममाणं हृषीकेशमुपातिष्ठन्त दानवाः।
प्रमथ्य सर्वान् दैतेयान् पादहस्ततलैः प्रभुः॥ २७

रूपं कृत्वा महाकायं जहाराशु स मेदिनीम्।
त्रैलोक्यं क्रममाणस्य द्युतिरादित्यसम्भवा॥ २८

तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे।
नभः प्रक्रममाणस्य सक्थिदेशे व्यवस्थितौ॥ २९

परं विक्रममाणस्य जानुदेशे व्यवस्थितौ।
विष्णोरमितवीर्यस्य वदन्त्येवं द्विजातयः॥ ३०

जित्वा लोकत्रयं कृत्स्नं हत्वा चासुरपुङ्गवान्।
ददौ शक्राय वसुधां हरिर्लोकनमस्कृतः॥ ३१

सुतलं नाम पातालमधस्ताद् वसुधातले।
बलेर्दत्तं भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना॥ ३२

तदवाप्यासुरश्रेष्ठश्चकार मतिमुत्तमाम्।
रसातलतले वासमकरोदसुराधिपः॥ ३३

तत्रस्थश्च महातेजा ध्यानं परममास्थितः।
उवाच वचनं धीमान् विष्णुं लोकनमस्कृतम्॥ ३४

किं मया देव कर्तव्यं ब्रूहि सर्वमशेषतः।
ततो दैत्याधिपं प्राह देवो विष्णुः सुरोत्तमः॥ ३५

विष्णुरुवाच

ददामि ते महाभाग परितुष्टोऽस्मि तेऽसुर।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि॥ ३६

मा च शुक्रस्य वचनं प्रतिहासीः कथंचन।
अहमाज्ञापयामि त्वां श्रेयश्चैवमवाप्स्यसि॥ ३७

अथ दैत्याधिपं प्राह विष्णुर्देवाधिपानुजः।
वाचा परमया देवो वरेण्यः प्रभुरीश्वरः॥ ३८

यत् त्वया सलिलं दत्तं गृहीतं पाणिना मया।
तस्मात् ते दैत्य देवेभ्यो नास्ति जातु भयं क्वचित्॥ ३९

सुतलं नाम पातालं तत्र त्वं सानुगो वस।
सर्वदैत्यगणैः सार्धं मत्प्रसादान्महासुर॥ ४०

न च ते देवदेवस्य शक्रस्यामिततेजसः।
शासनं प्रतिहन्तव्यं स्मरता शासनं मम॥ ४१

त्रिलोकीको नापनेके लिये उद्यत हुए भगवान् हृषीकेशके समीप आ पहुँचे। भगवान्ने लातों और थप्पड़ोंसे उन सब दैत्योंको रौंदकर विशालकाय रूप धारण करके पृथ्वीको तत्काल हर लिया। त्रिलोकीको मापते समय भगवान् वामनकी कान्ति सूर्यकी प्रभाके समान प्रकाशित हो रही थी। जिस समय वे भूमिको लाँघ रहे थे, उस समय चन्द्रमा और सूर्य उनके दोनों स्तनोंके बीचमें आ गये थे। फिर जब वे आकाशको लाँघने लगे, तब वे दोनों उनकी जाँघोंके स्थानमें स्थित हुए थे॥ २६—२९॥ उससे भी ऊपर स्वर्गलोकको लाँघते समय वे दोनों सूर्य और चन्द्रमा भगवान्के घुटनोंमें स्थित हुए देखे गये थे। ब्राह्मणलोग अमित पराक्रमी भगवान् विष्णुके उस विराट्-रूपका ऐसा ही वर्णन करते हैं॥ ३०॥ उस समय विश्ववन्दित श्रीहरिने समस्त त्रिलोकीको जीतकर और मुख्य-मुख्य असुरोंका वध करके वसुधाका राज्य इन्द्रको दे दिया॥ ३१॥ फिर प्रभावशाली भगवान् विष्णुने पृथ्वीके नीचे जो सुतल नामक पाताललोक है, उसे बलिको दे दिया॥ ३२॥ उसे पाकर असुरश्रेष्ठ असुरराज बलिने उत्तम बुद्धिका आश्रय लिया और वे उस रसातल-तलमें निवास करने लगे॥ ३३॥ वहाँ रहकर महातेजस्वी बुद्धिमान् बलि उत्तम ध्यानमें स्थित हो विश्ववन्दित भगवान् विष्णुसे इस प्रकार बोले— ॥ ३४॥ 'देव! मुझे क्या करना चाहिये? यह सब पूर्णरूपसे मुझे बताइये।' तब सुरश्रेष्ठ विष्णुदेवने दैत्यराज बलिसे कहा— ॥ ३५॥

भगवान् विष्णु बोले—महाभाग असुर! मैं तुमपर बहुत संतुष्ट हूँ, अतः तुम्हें वर देता हूँ। तुम्हारा भला हो। तुम कोई वर माँगो और मनोवाञ्छित कामना प्राप्त करो॥ ३६॥ तुम्हें अपने गुरु शुक्राचार्यकी आज्ञाका किसी प्रकार उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। इसके लिये मैं तुम्हें आदेश देता हूँ। इसके पालनसे तुम्हें कल्याणकी प्राप्ति होगी॥ ३७॥ तदनन्तर देवराज इन्द्रके छोटे भाई श्रेष्ठ देवता तथा सर्वसमर्थ ईश्वर श्रीविष्णुने दैत्यराज बलिसे उत्तम वाणीमें कहा— ॥ ३८॥ 'दैत्य! तुमने जो मेरे हाथपर संकल्पका जल दिया और मैंने जो ग्रहण किया, उसके प्रभावसे तुम्हें देवताओंकी ओरसे कभी कोई भय नहीं प्राप्त होगा॥ ३९॥ महान् असुर! सुतल नामवाला जो पाताल है, उसमें मेरी कृपासे तुम समस्त दैत्यों और सेवकोंके साथ निवास करो॥ ४०॥ मेरे शासनका स्मरण करते हुए तुम्हें अमित तेजस्वी देवाधिदेव इन्द्रकी आज्ञाका कभी विरोध नहीं करना चाहिये'॥ ४१॥

देवताश्चापि ते सर्वाः पूज्या एव महासुर।
भोगांश्च विविधान् सम्यग्यज्ञांश्च सहदक्षिणान्॥ ४२

प्राप्स्यसे च महाभाग दिव्यान् कामान् यथेप्सितान्।
इह चामुत्र चाक्षय्यान् विविधांश्च परिच्छदान्॥ ४३

दैत्याधिपत्यं च सदा मत्प्रसादादवाप्स्यसि।
यदा च तां मया प्रोक्तां मर्यादां चालयिष्यसि॥ ४४

वधिष्यन्ति तदा हि त्वां नागपाशैर्महाबलाः।
नमस्कार्याश्च ते नित्यं महेन्द्राद्या दिवौकसः॥ ४५
मम ज्येष्ठः सुरश्रेष्ठः शासनं प्रतिगृह्यताम्।

बलिरुवाच

देवदेव महाभाग शङ्खचक्रगदाधर॥ ४६
सुरासुरगुरो श्रेष्ठ सर्वलोकमहेश्वर।
तत्रासतो मे पाताले भागं ब्रूहि सुरोत्तम॥ ४७

ममान्नमशनं देव प्राशनार्थमरिंदम।
तद् वदस्व सुरश्रेष्ठ तृप्तिर्येन ममाक्षया॥ ४८

श्रीभगवानुवाच

अश्रोत्रियं श्राद्धमधीतमव्रत-
मदक्षिणं यज्ञमनर्त्विजा हुतम्।
अश्रद्धया दत्तमसंस्कृतं हवि-
रेते प्रदत्तास्तव दैत्य भागाः॥ ४९
पुण्यं मद्द्वेषिणां यच्च मद्भक्तद्वेषिणां तथा।
क्रयविक्रयसक्तानां पुण्यं यच्चाग्निहोत्रिणाम्॥ ५०
अश्रद्धया च यद् दानं ददतां यजतां तथा।
तत् सर्वं तव दैत्येन्द्र मत्प्रसादाद् भविष्यति॥ ५१

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं बलिर्विष्णोर्महात्मनः।
एवमस्त्विति तं प्रोक्त्वा पातालमसुरोत्तमः।
प्रविवेश महानादो देवाज्ञां प्रतिपालयन्॥ ५२

एतस्मिन्नन्तरे चापि विष्णुस्त्रिदशपूजितः।
भगवानपि राज्यानां प्रविभागांश्चकार ह॥ ५३

ददौ पूर्वां दिशं चैन्द्रीं शक्रायामिततेजसे।
याम्यां यमाय देवाय पितृराज्ञे महात्मने॥ ५४

'महान् असुर! समस्त देवता भी तुम्हारे लिये पूजनीय ही हैं। महाभाग! तुम वहाँ रहकर नाना प्रकारके भोग, दक्षिणासहित उत्तम यज्ञ, मनोवाञ्छित दिव्य काम (मनोरथ) तथा इस लोक और परलोकमें भाँति-भाँतिकी अक्षय भोगसामग्री प्राप्त करोगे॥ ४२-४३॥ वहाँ तुम्हें मेरी कृपासे सदा ही दैत्योंका आधिपत्य प्राप्त होगा। जब तुम मेरी बतायी हुई उस मर्यादाको भङ्ग करोगे, तब महाबली देवता नागपाशसे तुम्हें बाँध लेंगे। तुम्हें इन्द्र आदि देवताओंको सदा नमस्कार करना चाहिये। सुरश्रेष्ठ इन्द्र मेरे बड़े भाई हैं, अतः उनका शासन स्वीकार करो॥ ४४-४५ $\frac{1}{2}$॥

बलि बोले—शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले महाभाग देवदेव! सुरासुरगुरो! सर्वश्रेष्ठ! सर्वलोकमहेश्वर! सुरोत्तम! वहाँ पातालमें रहते समय मुझे जीवन-निर्वाहके लिये कौन-सा भाग प्राप्त होगा। यह बताइये॥ ४६-४७॥ शत्रुदमन देव! सुरश्रेष्ठ! मेरा अन्न—मेरे भोजनके लिये भोज्य पदार्थ क्या होगा? यह बताइये। जिससे मुझे अक्षय तृप्ति प्राप्त हो॥ ४८॥

श्रीभगवान् बोले—दैत्य! श्रोत्रिय ब्राह्मणके बिना किये हुए श्राद्ध, ब्रह्मचर्य-पालनके बिना किये गये अध्ययन, बिना दक्षिणाके यज्ञ, बिना ऋत्विजके होम, बिना श्रद्धाके दान और संस्कारहीन हविष्य—ये सब तुम्हें तुम्हारे भागके रूपमें अर्पित हैं॥ ४९॥ दैत्यराज! मुझसे और मेरे भक्तोंसे द्वेष रखनेवालोंका जो पुण्य है, क्रय-विक्रयमें आसक्त हुए अग्निहोत्रियोंका जो पुण्य है, बिना श्रद्धाके दान देने और यज्ञ करनेवालोंका जो सत्कर्म है, वह सब मेरी कृपासे तुम्हारा हो जायगा॥ ५०-५१॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! महात्मा भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर असुरराज बलिने उनसे 'ऐसा ही होगा' यह कहकर भगवान्‌की आज्ञाका पालन करते हुए महान् गर्जनाके साथ पाताललोकमें प्रवेश किया॥ ५२॥ इसी बीचमें देवपूजित भगवान् विष्णुने भी राज्योंके कई विभाग किये॥ ५३॥ उन्होंने अमित तेजस्वी इन्द्रको ऐन्द्री अर्थात् पूर्वदिशाका राज्य दिया। पितरोंके राजा महात्मा यमदेवताको दक्षिणदिशाका राज्य अर्पित किया॥ ५४॥

पश्चिमां तु दिशं प्रादाद् वरुणाय महात्मने।
उत्तरां च कुबेराय यक्षाधिपतये दिशम्॥ ५५

अधःस्थां नागराजाय सोमायोर्ध्वां दिशं ददौ।
एवं विभज्य त्रैलोक्यं विष्णुर्बलवतां वरः॥ ५६

जगाम त्रिदिवं देवः पूज्यमानो महर्षिभिः।
वामनः सर्वभूतेशः प्रतिष्ठाप्य च वासवम्॥ ५७
तस्मिन् प्रयाते दुर्धर्षे वामनेऽमिततेजसि।
सर्वे मुमुदिरे देवाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम्॥ ५८

वैशम्पायन उवाच

गते तु त्रिदिवं कृष्णे बद्ध्वा वैरोचनिं बलिम्।
नागैः सप्तशिरोभिश्च कम्बलश्वतरादिभिः॥ ५९

नागबन्धनदुःखार्तं बलिं वैरोचनिं ततः।
यदृच्छयासौ देवर्षिर्नारदः प्रत्यपद्यत॥ ६०

स तं कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कृपयाभिपरिप्लुतः।
उवाच दानवश्रेष्ठं मोक्षोपायं ददामि ते॥ ६१

स्तवं देवाधिदेवस्य वासुदेवस्य धीमतः।
अनादिनिधनस्यास्य अक्षयस्याव्ययस्य च॥ ६२

तमधीष्वाथ दैत्येन्द्र विशुद्धेनान्तरात्मना।
तद्गतस्तन्मना भूत्वा द्रुतं मोक्षमवाप्स्यसि॥ ६३

ततो विरोचनसुतः प्रयतः प्राञ्जलिः शुचिः।
मोक्षविंशकमव्यग्रो नारदात् समधीतवान्॥ ६४

तमधीत्य स्तवं दिव्यं नारदेन समीरितम्।
पृथिवी चोद्धृता येन तं जजाप महासुरः॥ ६५

ॐनमोऽस्त्वनन्तपतये अक्षयाय महात्मने।
जलेशयाय देवाय पद्मनाभाय विष्णवे॥ ६६

सप्तसूर्यवपुः कृत्वा त्रीँल्लोकान् क्रान्तवानसि।
भगवन् कालकालस्त्वं तेन सत्येन मोक्षय॥ ६७

महात्मा वरुणको पश्चिमदिशा तथा यक्षराज कुबेरको उत्तरदिशाका राज्य दिया॥ ५५॥ नागराज अनन्तको नीचेकी दिशाका तथा सोमको ऊपरकी दिशाका राज्य अर्पित किया। इस प्रकार तीनों लोकोंके राज्यका विभाजन करके बलवानोंमें श्रेष्ठ भगवान् विष्णु महर्षियोंसे पूजित हो स्वर्गलोकमें गये। वहाँ देवराज इन्द्रको स्वर्गके सिंहासनपर बिठाकर सर्वभूतेश्वर भगवान् वामन अपने धामको चले गये। उन अत्यन्त तेजस्वी दुर्धर्ष देवता वामनके चले जानेपर सब देवता देवराज इन्द्रको आगे करके आनन्दमें मग्न हो गये॥ ५६—५८॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सात सिरवाले कम्बल और अश्वतर आदि नागोंद्वारा विरोचनकुमार बलिको बाँधकर जब भगवान् विष्णु स्वर्गलोकको चले गये, तब नागबन्धनके दुःखसे पीड़ित हुए विरोचनपुत्र बलिके पास अकस्मात् घूमते हुए देवर्षि नारद आ पहुँचे॥ ५९-६०॥ नारदजीने बलिको संकटमें पड़ा देख दयासे द्रवित हो उन दानवशिरोमणिसे कहा— 'मैं तुम्हें इस कष्टसे छूटनेका उपाय बताता हूँ॥ ६१॥ जो आदि और अन्तसे रहित, अक्षय, अविनाशी, बुद्धिमान्, देवाधिदेव भगवान् वासुदेव हैं, उनका स्तोत्र ही वह उपाय है॥ ६२॥ दैत्यराज! तुम विशुद्ध हृदयसे उन्हीं भगवान्में मन लगाकर तन्मय हो उस स्तोत्रका पाठ करो। ऐसा करनेसे शीघ्र ही छुटकारा पा जाओगे'॥ ६३॥ तब विरोचनकुमार बलिने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर हाथ जोड़ पवित्र हो शान्तभावसे मोक्षविंशक नामक स्तोत्रका नारदजीसे अध्ययन किया॥ ६४॥ नारदजीके बताये हुए उस दिव्य स्तोत्रका अध्ययन करके महान् असुर बलिने, जिन्होंने इस पृथिवीका उद्धार किया था, उन भगवान्का जप आरम्भ किया॥ ६५॥ (बलि बोले—जो) अनन्त नागके अधिपति, अविनाशी, महात्मा, जलमें शयन करनेवाले, दिव्यस्वरूप और अपनी नाभिसे कमल प्रकट करनेवाले हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है॥ ६६॥ भगवन्! आप कालके भी काल हैं। आपने सात सूर्योंके समान तेजस्वी शरीर धारण करके तीनों लोकोंको नाप लिया है। उस सत्यके प्रभावसे आप मुझे इस बन्धनसे छुड़ाइये॥ ६७॥

नष्टचन्द्रार्कगगने क्षीणयज्ञतपःक्रिये।
पुनश्चिन्तयसे लोकांस्तेन सत्येन मोक्षय॥ ६८

ब्रह्मरुद्रेन्द्रवाय्वग्निसरिद्भुजगपर्वताः।
त्वत्स्था दृष्टा द्विजेन्द्रेण तेन सत्येन मोक्षय॥ ६९

मार्कण्डेन पुरा कल्पे प्रविश्य जठरं तव।
चराचरगतं दृष्टं तेन सत्येन मोक्षय॥ ७०

एको विद्यासहायस्त्वं योगी योगमुपागतः।
पुनस्त्रैलोक्यमुत्सृज्य तेन सत्येन मोक्षय॥ ७१

जलशय्यामुपासीनो योगनिद्रामुपागतः।
लोकांश्चिन्तयसे भूयस्तेन सत्येन मोक्षय॥ ७२

वाराहं रूपमास्थाय वेदयज्ञपुरस्कृतम्।
धरा जलोद्धृता येन तेन सत्येन मोक्षय॥ ७३

उद्धृत्य दंष्ट्र्या यज्ञांस्त्रीन् पिण्डान् कृतवानसि।
त्वं पितॄणामपि हरे तेन सत्येन मोक्षय॥ ७४

प्रदुद्रुवुः सुराः सर्वे हिरण्याक्षभयार्दिताः।
परित्रातास्त्वया देव तेन सत्येन मोक्षय॥ ७५

दीर्घवक्त्रेण रूपेण हिरण्याक्षस्य संयुगे।
शिरो जहार चक्रेण तेन सत्येन मोक्षय॥ ७६

भग्नमूर्धास्थिमस्तिष्को हिरण्यकशिपुः पुरा।
हुंकारेण हतो दैत्यस्तेन सत्येन मोक्षय॥ ७७

दानवाभ्यां हृता वेदा ब्रह्मणः पश्यतः पुरा।
परित्रातास्त्वया देव तेन सत्येन मोक्षय॥ ७८

महाप्रलयके समय जब चन्द्रमा, सूर्य और आकाशका भी लय हो जाता है, यज्ञ और तपरूपी कर्म क्षीण हो जाते हैं, तब आप पुनः सृष्टिके आरम्भमें समस्त लोकोंका चिन्तन करते हैं (और अपने संकल्पसे ही सबको प्रकट कर देते हैं), उस सत्यके प्रभावसे आप मुझे इस बन्धनसे मुक्त कीजिये॥ ६८॥ प्रलयकालमें द्विजराज मार्कण्डेयने ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वायु, अग्नि, नदी, सर्प और पर्वत आदिको आपके भीतर स्थित देखा था। उस सत्यके प्रभावसे आप मुझे इस कष्टसे छुड़ाइये॥ ६९॥ पूर्वकल्पमें मार्कण्डेयजीने आपके उदरमें प्रवेश करके वहाँ चर और अचर प्राणियोंसे व्याप्त सम्पूर्ण जगत्‌का दर्शन किया था। उस सत्यके प्रभावसे आप मुझे इस बन्धनसे मुक्त कीजिये॥ ७०॥ आप योगी हैं और योगका आश्रय लेकर एकमात्र आप ही विद्या (योगमाया)-की सहायतासे पुनः त्रिलोकीकी सृष्टि करके उसमें अन्तर्यामी आत्मारूपसे व्याप्त रहते हैं। उस सत्यके प्रभावसे आप मुझे इस नागपाशसे छुटकारा दिलावें॥ ७१॥ आप योगनिद्राका आश्रय ले जलकी शय्यापर सोकर पुनः लोकोंका चिन्तन करते हैं। उस सत्यके प्रभावसे मुझे बन्धनमुक्त कीजिये॥ ७२॥ आपने वेद और यज्ञमय वाराहरूप धारण करके जिस सत्यके प्रभावसे इस पृथिवीका जलसे उद्धार किया था, उसी सत्यके द्वारा मुझे भी संकटसे छुड़ाइये॥ ७३॥ हरे! आपने अपनी दाढ़से यज्ञोंका उद्धार करके पितरोंके लिये भी तीन पिण्डोंकी व्यवस्था की है। उस सत्यके प्रभावसे आप मुझे इस नागपाशसे मुक्त कीजिये॥ ७४॥ देव! समस्त देवता जब हिरण्याक्षके भयसे पीड़ित होकर भाग गये थे, उस समय आपने ही उनकी रक्षा की थी। उस सत्यके बलसे आप मुझे बन्धनसे छुड़ाइये॥ ७५॥ लम्बे मुँहवाले वाराहका रूप धारण करके आपने युद्धमें चक्रद्वारा हिरण्याक्षका सिर काट लिया था। उस सत्यके प्रभावसे आप मुझे बन्धनमुक्त कीजिये॥ ७६॥ पूर्वकालमें आपने हुङ्कारमात्रसे हिरण्यकशिपु नामक दैत्यके मस्तककी हड्डी और मस्तिष्कको चूर-चूर करके उसे मार डाला था। उस सत्यके प्रभावसे आप मुझे भी सङ्कटसे छुड़ाइये॥ ७७॥ देव! पूर्वकालमें ब्रह्माजीके देखते-देखते मधु और कैटभ नामक दो दानवोंने सम्पूर्ण वेद हर लिये थे, जिनका आपने उद्धार किया। उस सत्यके प्रभावसे आप मुझे इस बन्धनसे छुटकारा दिलाइये॥ ७८॥

कृत्वा हयशिरोरूपं हत्वा तु मधुकैटभौ।
ब्रह्मणे तेऽर्पिता वेदास्तेन सत्येन मोक्षय॥ ७९

देवदानवगन्धर्वा यक्षसिद्धमहोरगाः।
अन्तं तव न पश्यन्ति तेन सत्येन मोक्षय॥ ८०

अपान्तरतमा नाम जातो देवस्य वै सुतः।
कृताश्च तेन वेदार्थास्तेन सत्येन मोक्षय॥ ८१

वेदयज्ञाग्निहोत्राणि पितृयज्ञहवींषि च।
रहस्यं तव देवस्य तेन सत्येन मोक्षय॥ ८२

ऋषिर्दीर्घतमा नाम जात्यन्धो गुरुशापतः।
त्वत्प्रसादाच्च चक्षुष्मांस्तेन सत्येन मोक्षय॥ ८३

ग्राहग्रस्तं गजेन्द्रं च दीनं मृत्युवशं गतम्।
भक्तं मोक्षितवांस्त्वं हि तेन सत्येन मोक्षय॥ ८४

अक्षयश्चाव्ययश्च त्वं ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः।
उच्छ्रितानां नियन्तासि तेन सत्येन मोक्षय॥ ८५

शङ्खं चक्रं गदां पद्मं शार्ङ्गं गरुडमेव च।
प्रसादयामि शिरसा ते बन्धान्मोक्षयन्तु माम्॥ ८६

शङ्खं चक्रं गदां पद्मं शार्ङ्गं च गरुडादयः।
हरिं प्रसादयामासुर्बलिं मोक्षय बन्धनात्॥ ८७

ततः प्रसन्नो भगवानादिदेश खगेश्वरम्।
गरुडं नागहन्तारं बलिं मोक्षय बन्धनात्॥ ८८

ततो विक्षिप्य गरुडः पक्षावतुलविक्रमः।
जगाम वसुधामूलं यत्रास्ते संयतो बलिः॥ ८९

आगमं तस्य विज्ञाय नागा मुक्त्वा महासुरम्।
ययुः पुरीं भोगवतीं वैनतेयभयार्दिताः॥ ९०

मुक्तं कृष्णप्रसादेन चिन्तयानमधोमुखम्।
भ्रष्टश्रियमुवाचेदं गरुत्मान् पन्नगाशनः॥ ९१

हयग्रीव-रूप धारण करके मधु और कैटभ नामक दानवोंको मारकर आपने सारे वेद पुनः ब्रह्माजीको अर्पित कर दिये। उस सत्यके प्रभावसे आप मुझे बन्धनसे छुड़ाइये॥ ७९॥ देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध और बड़े-बड़े नाग भी आपका अन्त नहीं देख पाते हैं। उस सत्यके प्रभावसे आप मेरा इस सङ्कटसे उद्धार कीजिये॥ ८०॥ अपान्तरतमा नामसे विख्यात जो आपके पुत्र हुए थे, उन्होंने सम्पूर्ण वेदोंके अर्थ किये हैं। उस सत्यके प्रभावसे आप मुझे इस बन्धनसे छुड़ाइये॥ ८१॥ वेद, यज्ञ, अग्निहोत्र, पितृयज्ञ और हविर्यज्ञ—ये आपके रहस्य हैं। उस सत्यके द्वारा आप मुझे इस सङ्कटसे छुड़ाइये॥ ८२॥ दीर्घतमा नामक ऋषि गुरुके शापसे जन्मान्ध हो गये थे, जो आपकी कृपासे ही नेत्रवान् हो गये। उस सत्यके प्रभावसे आप मुझे बन्धन-मुक्त कीजिये॥ ८३॥ ग्राहसे ग्रस्त होकर गजराज अत्यन्त दीन हो मृत्युके वशमें पड़ गया था, परंतु आपने अपने उस भक्तको सङ्कटसे छुड़ा दिया। उस सत्यके प्रभावसे मुझे भी वर्तमान सङ्कटसे मुक्त कीजिये॥ ८४॥ आप अक्षय, अविनाशी, ब्राह्मणभक्त तथा भक्तवत्सल हैं, उच्छृङ्खल पुरुषोंका दमन करनेवाले हैं। उस सत्यके प्रभावसे मेरा सङ्कटसे उद्धार कीजिये॥ ८५॥ मैं शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, शार्ङ्गधनुष तथा गरुड़को भी सिर झुकाकर प्रसन्न होनेके लिये प्रार्थना करता हूँ, वे मुझे इस बन्धनसे छुटकारा दिलायें॥ ८६॥ तब शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, शार्ङ्गधनुष तथा गरुड़ आदिने भगवान्‌को प्रसन्न किया और कहा—'आप बलिको बन्धनसे मुक्त कीजिये'॥ ८७॥ इससे प्रसन्न हो भगवान्‌ने नागहन्ता पक्षिराज गरुड़को आज्ञा दी कि 'तुम बलिको बन्धनसे छुड़ाओ'॥ ८८॥ तब अतुल पराक्रमी गरुड़ अपनी पाँखें हिलाते हुए वसुधाके मूलप्रदेशमें जा पहुँचे, जहाँ राजा बलि नागपाशसे बँधे हुए बैठे थे॥ ८९॥ उनका आगमन जानकर, उन विनतानन्दन गरुड़के भयसे पीड़ित हो वे नाग महान् असुर बलिको बन्धनमुक्त करके भोगवतीपुरीमें चले गये॥ ९०॥ राजा बलि भगवान् विष्णुके प्रसादसे बन्धनमुक्त होकर भी राजलक्ष्मीसे भ्रष्ट होनेके कारण नीचे मुख किये चिन्तामग्न हो रहे थे, उस समय सर्पभोजी गरुड़ने उनसे इस प्रकार कहा—॥ ९१॥

गरुड उवाच

दानवेन्द्र महाबाहो विष्णुस्त्वामब्रवीत् प्रभुः।
मुक्तो निवस पाताले सपुत्रजनबान्धवः॥ ९२

इतस्त्वया न गन्तव्यं गव्यूतिमपि दानव।
समयं यदि भिन्द्यास्त्वं मूर्धा ते शतधा भवेत्॥ ९३

पक्षेन्द्रवचनं श्रुत्वा दानवेन्द्रोऽब्रवीदिदम्।
स्थितोऽस्मि समये तस्य अनन्तस्य महात्मनः॥ ९४

जीव्योपायं तु भगवान् मम किंचित् करोतु सः।
इहस्थोऽहं सुखासीनो येनाप्याये खगेश्वर॥ ९५

बलेस्तु वचनं श्रुत्वा गरुत्मानिदमब्रवीत्।
पूर्वमेव कृतस्तेन जीव्योपायो महात्मना॥ ९६

वर्तयिष्यन्ति ये यज्ञान् विधिहीनानऋत्विजः।
प्रायश्चित्तमजानन्तो यज्ञभागस्ततस्तव॥ ९७

न तेषां यज्ञभागं वै प्रतिगृह्णन्ति देवताः।
अनेनाप्यायितबलः सुखमात्रं निवत्स्यसि॥ ९८

संदेशमेतं भगवान् दत्तवान् कश्यपात्मजः।
दानवेन्द्र महाबाहो विष्णुस्त्रैलोक्यभावनः॥ ९९

वैशम्पायन उवाच

इमं स्तवमनन्तस्य सर्वपापप्रमोचनम्।
यः पठेत नरो भक्त्या तस्य नश्यति किल्बिषम्॥ १००

गोहत्यायाः प्रमुच्येत ब्रह्मघ्नो ब्रह्महत्यया।
अपुत्रो लभते पुत्रं कन्या चैवेप्सितं पतिम्॥ १०१

सद्यो गर्भात् प्रमुच्येत गर्भिणी जनयेत् सुतम्।
ये च मोक्षैषिणो लोके योगिनः सांख्यकापिलाः॥ १०२

स्तवेनानेन गच्छन्ति श्वेतद्वीपमकल्मषाः।
सर्वकामप्रदो ह्येष स्तवोऽनन्तस्य कीर्त्यते॥ १०३

यः पठेत् प्रातरुत्थाय शुचिः प्रयतमानसः।
सर्वान् कामानवाप्नोति मानवो नात्र संशयः॥ १०४

गरुड़ बोले—महाबाहु दानवराज! भगवान् विष्णुने तुम्हें यह संदेश दिया है कि तुम बन्धनमुक्त हो पुत्रों, स्वजनों और बन्धु-बान्धवोंके साथ पातालमें निवास करो॥ ९२॥ दानव! तुम यहाँसे दो कोस भी बाहर न जाना। यदि इस मर्यादाको भंग करोगे तो तुम्हारे सिरके सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे॥ ९३॥ पक्षिराज गरुड़का यह कथन सुनकर दानवेन्द्र बलिने यह बात कही— 'खगेश्वर! मैं उन महात्मा अनन्तकी बाँधी हुई मर्यादामें ही स्थित हूँ, किंतु वे भगवान् मेरे लिये जीविका चलानेका कोई उपाय नियत कर दें, जिससे यहाँ सुखपूर्वक रहकर मैं सदा तृप्ति एवं संतोषका अनुभव करता रहूँ'॥ ९४-९५॥ बलिकी यह बात सुनकर गरुड़ बोले—'उन परमात्माने पहलेसे ही तुम्हारे लिये जीविकाका उपाय नियत कर दिया है॥ ९६॥ जो लोग प्रायश्चित्तसे अनभिज्ञ रहकर बिना ऋत्विजोंके ही विधिहीन यज्ञ करेंगे, उनके यज्ञका सारा भाग तुम्हारा ही होगा॥ ९७॥ 'उनके यज्ञभागको देवता नहीं ग्रहण करेंगे। उससे तुम्हारे बलकी पुष्टि होगी और तुम सदा सुखसे रहोगे॥ ९८॥ 'महाबाहु दानवराज! त्रिभुवनपालक, कश्यपकुमार, वामनरूपधारी भगवान् विष्णुने तुमको यही संदेश दिया है'॥ ९९॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—(ऐसा कहकर गरुड़जी चले गये।) जो मनुष्य भगवान् अनन्तके इस सर्वपापहारी स्तोत्रका भक्तिपूर्वक पाठ करता है, उसका सारा पाप नष्ट हो जाता है॥ १००॥ यदि उससे गोवध या ब्राह्मणवधका पाप बन गया है तो इस स्तोत्रके पाठसे उस गोहत्या और ब्राह्मणहत्यासे भी वह मुक्त हो सकता है। इस स्तोत्रके प्रभावसे पुत्रहीनको पुत्रकी और कुमारी कन्या-को मनके अनुरूप पतिकी प्राप्ति होती है॥ १०१॥ गर्भवती स्त्री इस स्तोत्रके पाठसे तत्काल गर्भकी वेदना-से छुटकारा पा जाती है और पुत्रको जन्म देती है। जो योगी और कपिल-सांख्यमतके अनुयायी पुरुष जगत्में भवबन्धनसे मोक्ष पानेकी अभिलाषा रखते हैं, वे इस स्तोत्रके पाठसे पाप-तापसे रहित हो (भगवान्के परमधाम) श्वेतद्वीपको चले जाते हैं। भगवान् अनन्तका यह स्तोत्र सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला बताया गया है। जो प्रातःकाल उठकर स्नान आदिसे शुद्ध एवं संयतचित्त हो इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है॥ १०२—१०४॥

एष वै वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मनः।
वेदविद्भिर्द्विजैरेवं पठ्यते वैष्णवं यशः॥ १०५

यस्त्विमं वामनं दिव्यं प्रादुर्भावं महात्मनः।
शृणुयान्नियतो भक्त्या सदा पर्वसु पर्वसु॥ १०६

परान् विजयते राजा यथा विष्णुर्महाबलः।
यशो विमलमाप्नोति विपुलं चाप्नुते वसु॥ १०७

प्रियो भवति भूतानां सर्वेषां वामनो यथा।
पुत्रपौत्राश्च वर्धन्ते आरोग्यं गुणसम्पदः॥ १०८

प्रीयते पठतश्चास्य देवदेवो जनार्दनः।
सर्वकामयुतश्चैव कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्॥ १०९

यह परमात्मा श्रीहरिके वामन-अवतारका वर्णन किया गया। वेदवेत्ता ब्राह्मण इस प्रकार भगवान् विष्णुके सुयशका बखान करते हैं॥ १०५॥ जो राजा शौच-संतोषादि नियमोंके पालनपूर्वक भगवान् विष्णुके इस दिव्य वामनावतारकी कथाको सदा सभी पर्वोंपर भक्तिभावसे सुनता है, वह महाबली विष्णुके समान ही अपने समस्त शत्रुओंपर विजय पाता है, निर्मल यशका भागी होता है तथा विपुल धन-सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है॥ १०६-१०७॥ वह भगवान् वामनकी ही भाँति समस्त प्राणियोंका प्रिय होता है तथा उसके पुत्र-पौत्र, आरोग्य एवं गुण-सम्पत्तियोंकी वृद्धि होती है॥ १०८॥ इस स्तोत्रका पाठ करनेवाले पुरुषपर देवाधिदेव भगवान् जनार्दन प्रसन्न होते हैं तथा वह सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न होता है—यह श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी महाराजका कथन है॥ १०९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे द्विसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वामनावतारविषयक बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७२॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

रुक्मिणीदेवीकी भगवान् श्रीकृष्णसे पुत्रके लिये प्रार्थना और भगवान्का उन्हें आश्वासन देते हुए कैलास जानेका विचार प्रकट करना

जनमेजय उवाच

किमर्थं भगवान् विष्णुर्देवदेवो जनार्दनः।
गतः कैलासशिखरमालयं शंकरस्य च॥ १

नारदाद्यैस्तपोवृद्धैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
तत्र दृष्टो महादेवः शंकरो नीललोहितः॥ २

केशवेन पुरा विप्र कुर्वता तप उत्तमम्।
अर्चितो देवदेवेन शङ्करश्चेति नः श्रुतम्॥ ३

देवौ तत्र जगन्नाथौ दृष्टवन्तौ पुरातनौ।
अर्चयाञ्चक्रिरे देवा इन्द्राद्याः शङ्करं हरिम्॥ ४

जनमेजयने पूछा—मुने! देवताओंके भी देवता, सर्वव्यापी भगवान् जनार्दन किस लिये शङ्करजीके निवास-स्थान कैलासशिखरपर गये थे?॥ १॥ तपस्यामें बढ़े-चढ़े तत्त्वदर्शी नारद आदि मुनियोंने ही वहाँ नील-लोहित वर्णवाले कल्याणकारी महादेवजीका दर्शन किया है॥ २॥ विप्रवर! हमारे सुननेमें यह भी आया है कि पूर्वकालमें उत्तम तप करते हुए देवाधिदेव केशवने वहाँ भगवान् शङ्करका पूजन किया था॥ ३॥ वहाँ दोनों पुरातन देवता जगदीश्वर श्रीहरि और हरने एक-दूसरेका दर्शन किया था। इन्द्र आदि देवताओंने वहाँ आकर भगवान् शङ्कर तथा श्रीहरिकी अर्चना की थी॥ ४॥

तौ हि देवौ महादेवावेकीभूतौ द्विधा कृतौ।
एकात्मानौ जगद्योनी सृष्टिसंहारकारकौ॥ ५

परस्परसमावेशाज्जगतः पालने स्थितौ।
तयोस्तत्र यथावृत्तं कैलासे पर्वतोत्तमे॥ ६

ऋषयः किमचेष्टन्त दृष्ट्वा तौ पुरुषोत्तमौ।
एतत् सर्वमशेषेण वक्तुमर्हसि सत्तम॥ ७

यथा गतो हरिर्विष्णुः कृष्णो जिष्णुः पुरातनः।
यथा च शंकरः साक्षात् कृतवान् नागभूषणः।
एतत् सर्वं विप्रवर्य ब्रूहि तत्त्वेन यत्नतः॥ ८

वैशम्पायन उवाच

शृणुष्वावहितो राजन् यथा कृष्णो गतो नगम्।
यथा च दृष्टो देवेशः शंकरो वृषवाहनः॥ ९

यथा चचार स तपो यथा ते मुनयो गताः।
एवं तयोर्यथावृत्तं तथा शृणु नरोत्तम॥ १०

द्वैपायनोऽथ भगवान् यथा प्रोवाच मां तथा।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि केशवं खगवाहनम्॥ ११

यथाशक्ति यथाप्रज्ञं शृणु यत्नेन सुव्रत।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं नृशंसायातपस्विने॥ १२

नानधीताय वक्तव्यं पुण्यं पुण्यवता सदा।
स्वर्ग्यं यशस्यं धन्यं च बुद्धिशुद्धिकरं सदा॥ १३

ध्येयं पुण्यात्मनां नित्यमिदं वेदार्थनिश्चितम्।
अनेकारण्यसंयुक्तं सेवन्ते नित्यमीदृशम्॥ १४

कहते हैं कि वे दोनों महान् देवता एक ही हैं, किंतु दो स्वरूपोंमें विभक्त हो गये हैं। उनका आत्मा (स्वरूप) एक ही है, तो भी कार्यभेदसे भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते हैं। दोनों ही जगत्की उत्पत्तिके कारण हैं और दोनों ही सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले हैं॥ ५॥ वे परस्पर समाविष्ट होकर जगत्के पालन-कर्ममें स्थित रहते हैं। उत्तम पर्वत कैलासपर एकत्र हुए उन दोनोंका जैसा वृत्तान्त हो, वह बताइये॥ ६॥ साधुशिरोमणे! उन दोनों पुरुषोत्तमोंको देखकर ऋषियोंने कैसी चेष्टा की? यह सब वृत्तान्त पूर्णरूपसे बतानेकी कृपा करें॥ ७॥ विप्रवर! सर्वव्यापी, पापहारी, पुरातन पुरुष और विजयशील सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण जिस प्रकार कैलासपर्वतपर गये और सर्पमय आभूषणोंसे विभूषित भगवान् शङ्करने जिस प्रकार उनका साक्षात्कार किया, यह सब मुझे यत्नपूर्वक ठीक-ठीक बताइये॥ ८॥

वैशम्पायनजी कहते है—राजन्! नरश्रेष्ठ! भगवान् श्रीकृष्ण जिस प्रकार कैलासपर्वतपर गये, जिस प्रकार उन्होंने देवेश्वर वृषभवाहन भगवान् शङ्करका दर्शन किया, जिस तरह वे तपस्यामें संलग्न हुए, जिस प्रकार वे मुनिलोग वहाँ गये और जिस तरह उन दोनों देवताओंका वृत्तान्त वहाँ घटित हुआ, वह सब सावधान होकर सुनो। ९-१०॥ भगवान् वेदव्यासने यह प्रसङ्ग जिस प्रकार मुझसे कहा था, उसी प्रकार मैं गरुड़वाहन भगवान् केशवको नमस्कार करके अपनी बुद्धि और शक्तिके अनुसार कहूँगा। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले नरेश! तुम यत्नपूर्वक सुनो। जिसमें सेवा करनेका भाव न हो, जो नृशंस तथा तपस्यासे दूर रहनेवाला हो और जिसने कुछ भी अध्ययन न किया हो, ऐसे पुरुषको पुण्यात्मा विद्वान् इस पवित्र प्रसंगका उपदेश कभी न दे। यह विषय स्वर्गप्रद, यशोवर्धक, धनकी प्राप्ति करानेवाला तथा सदा ही बुद्धिको शुद्ध करने-वाला है, यह (भगवान् विष्णु और शिवकी एकता) वेदार्थका निश्चित सिद्धान्त है और पुण्यात्मा पुरुषोंके लिये सदा ही चिन्तन करने योग्य है। अनेक आरण्यक-ग्रन्थों (उपनिषदों)-ने इसका अनुमोदन किया है।

मुनयो वेदनिरता नारदाद्यास्तपोधनाः।
अत्यद्भुतं महापुण्यं वृत्तं कैलासपर्वते॥ १५
शिवयोर्देवयोस्तत्र हरेश्चैव भवस्य ह।
हतेष्वसुरसंघेषु नरकादिषु भूमिप॥ १६
हतेष्वथ नृपेष्वेनं किंचिच्छिष्टेषु शत्रुषु।
शासति स्म सदा विष्णुः पृथिवीं पुरुषोत्तमः॥ १७
द्वारवत्यां जगन्नाथो वसन् वृष्णिभिरीश्वरः।
रुक्मिण्या संगतो देवो वसंस्तत्र पुरे हरिः॥ १८
कदाचिच्च तया सार्धं शेते रात्रौ जगत्पतिः।
विहरंश्च यथायोगं प्रीतः प्रीतियुजा तया॥ १९
अथोवाच तदा देवी रुक्मिणी रुक्मभूषणा।
पुत्रमिच्छामि देवेश त्वत्तो माधव नन्दनम्॥ २०
बलिनं रूपसम्पन्नं त्वयैव सदृशं प्रभो।
वृष्णीनामपि नेतारं वीर्यवन्तं तपोनिधिम्॥ २१
सर्वशास्त्रार्थकुशलं राजविद्यापुरस्कृतम्।
एवमादिगुणैर्युक्तं दातुमर्हसि सत्तम॥ २२
त्वयि सर्वस्य दातृत्वं नित्यमेव प्रतिष्ठितम्।
त्वं हि सर्वस्य कर्ता च दाता भोक्ता जगत्पतिः॥ २३
विशेषतस्तु भृत्यानां शुश्रूषानियतात्मनाम्।
वक्तव्यं किमु देवेश यदि भक्तास्मि केशव॥ २४
अनुग्रहो यदि स्यान्मे देवदेव जगत्पते।
दातुमर्हसि पुत्रं त्वं वीर्यवन्तं जनार्दन॥ २५

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्तो देवदेवेशः प्रियया प्रीयमाणया।
तया महिष्या रुक्मिण्या रुक्मिशत्रुर्यदूद्वहः॥ २६
प्रोवाच वचनं काले रुक्मिणीं यादवेश्वरः।
दातास्मि तादृशं पुत्रं यं त्वमिच्छसि भामिनि॥ २७
नित्यं भक्तासि मे देवि नात्र कार्या विचारणा।
अवश्यं तव दास्यामि पुत्रं शत्रुनिबर्हणम्॥ २८
पुत्रेण लोकाञ्जयति सतां कामदुघा हि ये।
नरकं पुदिति ख्यातं दुःखं च नरकं विदुः॥ २९

वेदपरायण नारद आदि तपोधन मुनि नित्य इसका सेवन (चिन्तन) करते हैं। भगवान् विष्णु और शिव दोनों कल्याणकारी देवताओंके कैलासपर्वतपर एकत्र होनेका यह अत्यन्त अद्भुत वृत्तान्त परम पुण्यमय है। राजन्! नरक आदि असुरसमूहों तथा अन्यान्य राजाओंके मारे जानेपर जब थोड़े-से ही शत्रु शेष रह गये, उन दिनों वृष्णिवंशियोंके साथ द्वारकापुरीमें निवास करते हुए सर्वसमर्थ जगन्नाथ पुरुषोत्तम श्रीहरि पृथ्वीका सदा शासन करने लगे। भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीदेवीसे संयुक्त होकर उस नगरमें निवास करते थे॥ ११—१८॥ एक दिनकी बात है, जगदीश्वर श्रीकृष्ण प्रीतिमती रुक्मिणीदेवीके साथ रातमें यथोचित विहार करते हुए प्रसन्नतापूर्वक सो रहे थे॥ १९॥ उस समय सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित हुई रुक्मिणीदेवीने भगवान्से कहा—'देवेश्वर! माधव! मैं आपसे आनन्ददायक पुत्र प्राप्त करना चाहती हूँ॥ २०॥ प्रभो! वह पुत्र आपके ही समान रूपवान्, बलवान्, पराक्रमी, तपोनिधि तथा वृष्णिकुलका नेता हो॥ २१॥ वह सभी शास्त्रोंके अर्थज्ञानमें निपुण तथा राजविद्या (ब्रह्मविद्या)-के ज्ञाताओंमें अग्रगण्य हो। सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ पतिदेव! आप मुझे ऐसे ही गुणोंसे सम्पन्न पुत्र प्रदान कीजिये॥ २२॥ आपमें सदा ही सब कुछ देनेकी शक्ति विद्यमान है; क्योंकि आप ही सबके कर्ता, दाता, भोक्ता और जगदीश्वर हैं॥ २३॥ देवेश्वर! केशव! विशेषतः जो आपके भृत्य हैं, सदा नियमपूर्वक आपकी सेवामें मन लगाये रहते हैं, उन्हें आप अभीष्ट वस्तु प्रदान करें, इसके लिये तो कहना ही क्या है। देवदेव! जगत्पते! जनार्दन! यदि मैं आपकी भक्त हूँ और आपका मुझपर अनुग्रह है तो आप मुझे पराक्रमी पुत्र प्रदान करें'॥ २४-२५॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अपनी प्रसन्न हुई प्यारी रानी रुक्मिणीदेवीके ऐसा कहनेपर रुक्मीके शत्रु, यदुकुलतिलक, देवदेवेश्वर, यादवपति श्रीकृष्णने रुक्मिणीसे यह समयोचित बात कही—'भामिनि! तुम जैसा चाहती हो, वैसा ही पुत्र मैं तुम्हें प्रदान करूँगा॥ २६-२७॥ देवि! तुम सदा ही मेरी भक्त हो, इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं अवश्य ही तुम्हें शत्रुनाशक पुत्र प्रदान करूँगा॥ २८॥ गृहस्थ पुरुष पुत्रद्वारा उन लोकोंपर विजय पाता है, जो पुरुषोंको उनकी इच्छाके अनुसार फल देनेवाले होते हैं। नरक 'पुत्' नामसे विख्यात है, दुःखको भी नरक ही माना गया है'॥ २९॥

पुदस्त्राणात् ततः पुत्रमिहेच्छति परत्र च।
अनन्ताः पुत्रिणो लोकाः पुरुषस्य प्रिये शुभाः॥ ३०

पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम्।
तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते॥ ३१

पुत्रवन्तं बिभेतीन्द्रः किं नु तेनाशितं भवेत्।
नापुत्रो विन्दते लोकान् कुपुत्राद् वन्ध्यता वरा॥ ३२

कुपुत्रो नरके यस्मात् सुपुत्रात् स्वर्ग एव हि।
तस्माद् विनीतं सत्पुत्रं श्रुतवन्तं दयापरम्॥ ३३

विद्यया विनयो यस्माद् विद्यायुक्तं सुधार्मिकम्।
इच्छेत् पुत्रं पुत्रकामः पुरुषो यत्नवान् बुधः॥ ३४

तस्माद् दास्यामि ते पुत्रं विद्यावन्तं सुधार्मिकम्।
एष गच्छामि पुत्रार्थं कैलासं पर्वतोत्तमम्॥ ३५

तत्रोपास्य महादेवं शङ्करं नीललोहितम्।
ततो लब्धास्मि पुत्रं ते भवाद् भूतहिते रतात्॥ ३६

तपसा ब्रह्मचर्येण भवं शंकरमव्ययम्।
तोषयित्वा विरूपाक्षमादिदेवमजं विभुम्॥ ३७

गमिष्याम्यहमद्यैव द्रष्टुं शंकरमव्ययम्।
स च मे दास्यते पुत्रं तोषितस्तपसा मया॥ ३८

तत्र गत्वा महादेवं नमस्कृत्य सहोमया।
प्रविश्य बदरीं पुण्यां मुनिजुष्टां तपोमयीम्॥ ३९

अग्निहोत्राकुलां दिव्यां गङ्गाम्बुप्लावितां सदा।
मृगपक्षिसमायुक्तां सिंहद्वीपिशताकुलाम्॥ ४०

बदरीफलसम्पूर्णां वानरक्षोभितद्रुमाम्।
वेत्रारूढमहावृक्षां कदलीखण्डमण्डिताम्॥ ४१

'उस पुत्-नामक नरक या दुःखसे वह पिता-माताका परित्राण करता है, इसलिये सारा जगत् इहलोक और परलोकके लिये पुत्रकी अभिलाषा रखता है। प्रिये! पुत्रवान् पुरुषके लिये अनन्त शुभ लोक विद्यमान हैं॥ ३०॥ पति ही गर्भ बनकर पत्नीके भीतर प्रवेश करता है, उस गर्भकी वह माता (जननी) होती है। उसके गर्भमें नूतन शरीर धारण करके वह (पति) पुनः दसवें मासमें जन्म लेता है॥ ३१॥ पुत्रवान्‌को देखकर इन्द्र भी डरते हैं। वे सोचते हैं, पता नहीं यह मेरे किस वैभवका उपभोग करेगा? पुत्रहीन मनुष्य पुण्यलोकोंको नहीं पाता है; परंतु कुपुत्र पैदा करनेकी अपेक्षा तो बाँझ रह जाना ही अच्छा है॥ ३२॥ कुपुत्र नरकमें गिराता है और सुपुत्रसे स्वर्ग भी सुलभ होता है। अतः विनयशील, विद्वान् और दयालु सत्पुत्रकी इच्छा करनी चाहिये॥ ३३॥ विद्यासे विनयकी प्राप्ति होती है, अतः पुत्रकी कामनावाला प्रयत्नशील विद्वान् पुरुष विद्यायुक्त परम धार्मिक पुत्र पानेकी इच्छा करे॥ ३४॥ अतः मैं तुम्हें विद्वान् एवं परम धर्मात्मा पुत्र प्रदान करूँगा। पुत्रकी प्राप्तिके लिये मैं अभी उत्तम पर्वत कैलासको जा रहा हूँ॥ ३५॥ वहाँ नीललोहित वर्णवाले महान् देवता भगवान् शङ्करकी उपासना करके प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले भगवान् शिवसे तुम्हारे लिये पुत्र प्राप्त करूँगा॥ ३६॥ तपस्या और ब्रह्मचर्य-पालनके द्वारा सबके उत्पादक अविनाशी अजन्मा सर्वव्यापी आदिदेव विरूपाक्ष भगवान् शङ्करको संतुष्ट करके मैं उनसे पुत्र होनेका वर प्राप्त करूँगा॥ ३७॥ मैं आज ही अविनाशी भगवान् शङ्करका दर्शन करनेके लिये जाऊँगा। मेरे द्वारा किये गये तपसे संतुष्ट होकर वे मुझे पुत्र देंगे॥ ३८॥ वहाँ जाकर उमासहित महादेवजीको नमस्कार करके उन्हें संतुष्ट करूँगा। वहाँ पहुँचनेसे पहले मैं मुनियोंद्वारा सेवित तपोमयी पुण्यभूमि बदरीमें प्रवेश करूँगा, जो अग्निहोत्रके धूमसे व्याप्त है। वह दिव्य भूमि सदा गङ्गाजीके जलसे प्लावित रहती है। वहाँ पशु और पक्षियोंके समुदाय सब ओर विचरते हैं और सैकड़ों सिंह तथा व्याघ्र भरे रहते हैं॥ ३९-४०॥ वह स्थान बेरके फलोंसे परिपूर्ण है। वानर वहाँके वृक्षोंको कम्पित करते रहते हैं। वहाँके विशाल वृक्षोंपर बेंतकी लताएँ फैली होती हैं। जहाँ-तहाँ केलोंके बगीचे उस स्थानकी शोभा बढ़ाते हैं'॥ ४१॥

मुनिभिर्वेदतत्त्वार्थविचारनिपुणैः सदा।
वेदनिश्चिततत्त्वार्थैः प्रमाणकुशलैर्युताम्॥ ४२

इदमेकमिदं तत्त्वमिति निश्चितमानसैः।
उपास्यमानामन्यत्र सिद्धैः सिद्धार्थतत्परैः॥ ४३

इतिहासपुराणज्ञैः सेव्यमानां महर्षिभिः
गच्छद्भिः स्वर्गनिलयं परित्यज्य कलेवरम्॥ ४४

प्रसिद्धां महतीं देवीं यास्यामि सुकृतालयाम्।
इत्युक्त्वा विररामैव देवदेवो जनार्दनः॥ ४५

'वेदके तात्त्विक अर्थोंका विचार करनेमें निपुण, वेदके सुनिश्चित सिद्धान्तके ज्ञाता और प्रमाणकुशल मुनि सदा वहाँ निवास करते हैं॥ ४२॥ यह एकमात्र अद्वितीय तत्त्व है, यही परमार्थ है, इस प्रकार मनसे निश्चय करनेवाले सिद्धार्थपरायण सिद्धजन जहाँ-तहाँ उस भूमिकी उपासना करते हैं॥ ४३॥ इतिहास-पुराणके ज्ञाता महर्षि, जो शरीर छोड़नेके बाद स्वर्गलोकको जानेवाले हैं, उस भूमिका सेवन करते हैं॥ ४४॥ इस प्रकार उस प्रसिद्ध पुण्यस्थली दिव्य एवं विशाल बदरीपुरीको जाऊँगा'—ऐसा कहकर देवाधिदेव भगवान् जनार्दन चुप हो गये॥ ४५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें कैलास-यात्राविषयक तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७३॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णका यादवसभामें अपनी कैलासयात्राका विचार प्रकट करते हुए नगरकी रक्षाके लिये यादवोंको सावधान रहनेका आदेश देना

वैशम्पायन उवाच

प्रभातायां तु शर्वर्यां गन्तुमैच्छज्जनार्दनः।
हुताग्निः कृतकल्याणः समाप्तवरदक्षिणः॥ १

गाश्च दत्त्वाथ विप्रेभ्यो नमस्कृत्य द्विजोत्तमान्।
आस्थानमण्डपं कृष्णः प्रविवेश जगत्पतिः॥ २

आसनं महदास्थाय वृष्णीनाहूय सर्वशः।
बलभद्रं शिनेः पौत्रं हार्दिक्यं शुकसारणौ॥ ३

उग्रसेनं महाबुद्धिमुद्धवं नीतिमत्तरम्।
यस्य बुद्धिं समाश्रित्य जीवन्ते यादवाः सुखम्॥ ४

नेता च यदुवृष्णीनां स तु धर्मपरः सदा।
यस्य बिभ्यति देवाश्च नीतेस्तस्य महात्मनः॥ ५

यस्य बुद्धिबलाद् विष्णुः शशास पृथिवीं सदा।
तं च वृष्णिवरं वीरमुद्धवं देवसुप्रभम्॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब रात बीती और प्रभात हुआ, तब भगवान् श्रीकृष्णने अग्निहोत्र करके मङ्गलाचारके पश्चात् ब्राह्मणोंको उत्तम दक्षिणाएँ देकर उन्हें बहुत-सी गौएँ दीं और उन श्रेष्ठ द्विजोंको नमस्कार करके जगत्पति श्रीकृष्णने आस्थानमण्डप (सभाभवन)-में प्रवेश किया॥ १-२॥ वहाँ महान् सिंहासनपर बैठकर उन्होंने समस्त वृष्णिवंशी वीरोंको बुलाया। बलभद्र, सात्यकि, कृतवर्मा, शुक, सारण, राजा उग्रसेन तथा उन महाबुद्धिमान् एवं नीतिशास्त्रके महान् पण्डित उद्धवको भी बुलाया, जिनकी बुद्धिका आश्रय लेकर समस्त यादव सुखसे रहते थे॥ ३-४॥ वे सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले और वृष्णिवंशी यादवोंके नेता थे। उन महात्माकी नीतिसे देवता भी सदा भयभीत रहते थे॥ ५॥ जिनके बुद्धिबलसे भगवान् श्रीकृष्ण सदा पृथिवीका शासन करते थे तथा जो देवताओंके समान परम कान्तिमान् एवं वृष्णिवंशके प्रमुख वीर थे, उन उद्धवको

अन्यानपि यदून् सर्वानुवाच भगवान् हरिः।
शृण्वन्तु मम वाक्यानि यादवाः सर्व एव हि।
शृणु चापि वचो मह्यं पितुरुद्धव मे सखे॥ ७

बाल्यात्प्रभृति यो यत्नो मम दुष्टनिबर्हणे।
प्रत्यक्षं भवता दृष्टं पूतनानिधनं नृप॥ ८

केशी च निहतो बाल्ये मया बालेन यादवाः।
गोवर्धनो धृतः शैलो गावश्च परिपालिताः॥ ९

अभिषिक्तोऽस्मि शक्रेण देवानामग्रतः स्थितः।
कंसोऽपि निधनं नीतो मया चाणूरमुष्टिकौ॥ १०

उग्रसेनोऽभिषिक्तश्च कृता द्वारवती मया।
अन्ये चापि नृपा राजन् बलिनो निहता मया॥ ११

योऽपि वीरो जरासंधो निगृहीतो बलान्मया।
भीमेन बलिना राजन्नयेन मम यादवाः॥ १२

शृगालो निहतः संख्ये गोमन्ताद् गच्छता मया।
योऽपि वीरो दुरात्मासौ दानवो नरको हतः॥ १३

निष्कण्टकमिमं लोकं कृतवान् राजसत्तमाः।
किं तु वीरो नृपो जज्ञे सखा भौमस्य यादवाः॥ १४

पौण्ड्रो वीर्यवतां नेता द्वेष्टा चासौ सदा मम।
शिष्यो द्रोणस्य राजेन्द्रो बली ब्रह्मास्त्रवित् कृती॥ १५

शास्त्रज्ञो नीतिमान् साक्षान्नेता सर्वस्य यत्नवान्।
योद्धा युद्धप्रियो राजा जामदग्न्य इवापरः॥ १६

एकान्तशत्रुरस्माकं छिद्रान्वेषी सदा मम।
बाधिष्यते पुरीं योद्धाच्छिद्रं यदि लभेत सः॥ १७

न ह्यल्पसाध्यो बलवान् पुण्ड्रस्येशो नृपोत्तमाः।
यत्ता भवन्तस्तिष्ठन्तु प्रगृहीतशरासनाः॥ १८

यथा न बाधते राजा पुरीं यदुकुलाश्रयाम्।
अहं तु यास्ये कैलासं कुतश्चित् कारणान्नृपाः॥ १९

शङ्करं द्रष्टुकामोऽस्मि भूतभावनभावनम्।
यावदागमनं मह्यं तावद् यत्ता भवन्त्विह॥ २०

तथा अन्य यादवोंको भी बुलाकर भगवान् श्रीहरिने उन सबसे कहा—'समस्त यादव मेरी बातें सुनें! मेरे पिताके मित्र उद्धवजी! आप भी मेरा वचन सुनिये॥ ६-७॥ नरेश्वर उग्रसेन! बाल्यकालसे लेकर अबतक दुष्टोंका संहार करनेके लिये मेरे द्वारा जो प्रयत्न हुआ है, उसे आपने प्रत्यक्ष देखा है। यादवो! बाल्यावस्थामें बालकरूपसे मैंने पूतनाको मारा, केशीका संहार किया, गोवर्धन पर्वत उठाया और गौओंकी रक्षा की॥ ८-९॥ मुझे देवताओंके आगे खड़ा करके देवराज इन्द्रने मेरा अभिषेक किया। मेरे हाथसे कंस मारा गया और चाणूर तथा मुष्टिकका भी संहार हुआ॥ १०॥ महाराज उग्रसेनका अभिषेक हुआ और मैंने द्वारकापुरीका नवनिर्माण किया। राजन्! अन्य बलवान् नरेश भी मेरे द्वारा मारे गये॥ ११॥ यादवो! और राजन्! जो वीर राजा जरासंध था, उसका भी मैंने बलवान् भीमसेनके द्वारा बलपूर्वक दमन किया। मेरी नीतिके अनुसार ही जरासंधका संहार हुआ॥ १२॥ गोमन्त पर्वतसे जाते समय मैंने युद्धमें राजा शृगालका वध किया और वह जो वीर दुरात्मा दानव नरकासुर था, वह भी मेरे हाथसे मारा गया॥ १३॥ क्षत्रियशिरोमणि यादवो! इस प्रकार मैंने इस लोकको निष्कण्टक (शत्रुविहीन) बना दिया है। परंतु जो नरकासुरका सखा है, वह वीर राजा पौण्ड्रक अबतक शेष है। वह बलवानोंका नेता और मुझसे सदा द्वेष रखनेवाला है। राजेन्द्र पौण्ड्रक द्रोणाचार्यका शिष्य, बलवान्, ब्रह्मास्त्रवेत्ता, रणकर्मकुशल, शास्त्रज्ञ, नीतिमान्, सबका साक्षात् नेता, यत्नशील, योद्धा और दूसरे परशुरामकी भाँति युद्धप्रेमी राजा है॥ १४—१६॥ वह मेरा एकान्त शत्रु है और सदा मेरे छिद्र ढूँढ़ता रहता है। यदि वह थोड़ा-सा भी छिद्र पा जाय तो युद्धके लिये उद्यत होकर द्वारकापुरीको सताने लग जाय॥ १७॥ श्रेष्ठ नरेशो! पुण्ड्र देशका बलवान् राजा पौण्ड्रक थोड़े-से साधनोंद्वारा वशमें आनेवाला नहीं है। अतः आपलोग सदा धनुष लेकर युद्धके लिये तैयार खड़े रहें, जिससे यदुकुलकी निवासभूमि द्वारकापुरीको वह राजा पौण्ड्रक बाधा न दे सके। नरेशो! मैं किसी कारणवश कैलास पर्वतको जाऊँगा। वहाँ जाकर समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और पालन करनेवाले भगवान् शङ्करका दर्शन करना चाहता हूँ। जबतक मैं लौट न आऊँ तबतक आपलोग यहाँ नगरकी रक्षाके लिये सतत सावधान रहें'॥ १८—२०॥

मया विरहितां चेमां यदि जानाति पुण्ड्रकः।
आगमिष्यति राजेन्द्रो योत्स्यते च पुरीमिमाम्॥ २१

इमां निर्यादवीं कर्तुं शक्नोतीति च मे मतिः।
यत्ता भवत राजेन्द्राः खड्गैः पाशैः परश्वधैः॥ २२

पाषाणैः कर्षणीयैश्च सन्नद्धा भवत स्वकैः।
पिधाय च कपाटानि महाद्वाराणि यत्नतः॥ २३

एक एव महाद्वारो गमनागमने सदा।
मुद्रया सह गच्छन्तु राज्ञो ये गन्तुमीप्सवः॥ २४

न चामुद्रः प्रवेष्टव्यो द्वारपालस्य पश्यतः।
यावदागमनं मह्यं तावदेवं भविष्यति॥ २५

मृगया नात्र कर्तव्या न च क्रीडा बहिः पुरात्।
ज्ञातव्याश्च परे स्वे च गमनागमने सदा॥ २६

एवमादिक्रिया कार्या यावदागमनं मम।
इत्युक्त्वा यादवान् सर्वान् सात्यकिं पुनराह च॥ २७

'यदि राजेन्द्र पौण्ड्रक यह जान लेगा कि मैं द्वारकापुरीमें नहीं हूँ तो वह अवश्य आक्रमण करेगा और इस नगरीके साथ युद्ध छेड़ देगा॥ २१॥ राजेन्द्रगण! मैं तो ऐसा मानता हूँ कि पौण्ड्रक इस पुरीको यादवोंसे सूनी कर सकता है; अतः आपलोग खड्ग, पाश और फरसे लेकर युद्धके लिये सदा तैयार रहें॥ २२॥ पाषाणों तथा आकर्षण करनेवाले अपने यन्त्रोंके द्वारा आपलोग सदा सन्नद्ध रहें। बड़े-बड़े फाटकोंकी किवाड़ें बंद करके यत्नपूर्वक पुरीकी रक्षा करें॥ २३॥ नगरसे बाहर आने-जानेके लिये एक ही सदा बड़ा फाटक काममें लाया जाय। जो बाहर जाना चाहते हों, वे राजाकी मुद्रा(पास) लेकर उसके साथ जा सकते हैं॥ २४॥ जिसके पास राजाकी मुद्रा न हो, वह द्वारपालके देखते-देखते नगरमें प्रवेश न करने पाये। जबतक मैं लौटकर न आऊँ, तबतक ऐसी ही व्यवस्था रहेगी॥ २५॥ इस बीचमें शिकार खेलना बंद कर दिया जाय, नगरसे बाहर जाकर क्रीड़ा न की जाय। गमनागमनके समय सदा अपने और परायेकी पहचान की जाय॥ २६॥ जबतक मेरा आना न हो तबतक इसी तरहकी व्यवस्था करनी चाहिये।' समस्त यादवोंसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने पुनः सात्यकिसे इस प्रकार कहा—॥ २७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्णका कैलास-यात्राविषयक चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७४॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णकी सात्यकि और उद्धवसे नगरकी रक्षाके विषयमें बातचीत तथा बलराम आदि यादवोंको भी रक्षाका भार सौंपकर उनका कैलासयात्राके लिये उद्यत होना

श्रीभगवानुवाच

सात्यके शृणु मद्वाक्यं यत्तो भव युधां वर।
त्वं तु खड्गी गदी भूत्वा चापपाणिस्तनुत्रवान्॥ १

तिष्ठ यत्नेन रक्षस्व पुरीं बहुनृपाश्रयाम्।
न च निद्रा त्वया कार्या रात्रौ यदुवृष प्रभो॥ २

श्रीभगवान् बोले—योद्धाओंमें श्रेष्ठ सात्यके! मेरी बात सुनो। तुम स्वयं कवच पहनकर तलवार, गदा और धनुष हाथमें लिये नगरकी रक्षाके लिये प्रयत्नशील रहो॥ १॥ यदुकुलतिलक प्रभावशाली वीर! द्वारकापुरी बहुसंख्यक क्षत्रियोंकी निवासभूमि है। तुम यत्नपूर्वक खड़े रहो और इसकी रक्षा करो। तुम्हें रातभर नींद नहीं लेनी चाहिये॥ २॥

न च व्याख्या त्वया कार्या शास्त्राणां शास्त्रतत्पर।
न च वादस्त्वया कार्यो वादिभिः सह वृष्णिप॥ ३

त्वं हि योद्धा बली ज्ञाता धनुर्वेदाख्यवेदवित्।
तथा कुरु यथा वीर नोपहास्या भवेदियम्॥ ४

सात्यकिरुवाच

करिष्यामि वचस्तुभ्यं यथाशक्ति जनार्दन।
आज्ञा तव जगन्नाथ धार्या यत्नेन मे सदा॥ ५

भृत्यवत् प्रचरिष्यामि कामपालस्य माधव।
यावदागमनं तुभ्यं तावत्स्थास्यामि यत्नतः॥ ६

प्रसादस्तव गोविन्द यदि स्यान्मयि माधव।
किं नाम मे च दुःसाध्यं शत्रूणां निग्रहे रणे॥ ७

यदि शक्रं यमं वापि कुबेरमपि पाशिनम्।
सर्वानेतान् विजेष्यामि किमु पौण्ड्रं नृपोत्तमम्॥ ८
गच्छ कार्यं कुरुष्वेदं यत्तोऽहं सततं हरे।

उद्धवं पुनराहेदं कृष्णः पद्मनिभेक्षणः॥ ९
शृणूद्धव त्वं वाक्यं मे कुर्यास्त्वेतत् प्रयत्नवान्।

रक्ष्या नयेन राजेन्द्र पुरी द्वारवती त्वया॥ १०
यत्तो भव सदा तात कुरु साहाय्यमत्र नः।
लज्जा मम समुत्पन्ना वदतस्तव साम्प्रतम्॥ ११

त्वं हि नेता समस्तस्य विद्यापारस्य सर्वतः।
को नु शक्ष्यति मेधावी वक्तुं विद्यावतः पुरः॥ १२

यत् कार्यं तद् भवान् वेत्ति ह्यकार्यं वापि सर्वतः।
अतोऽहं विरमे तात वक्तुं सम्प्रति वृष्णिप॥ १३

उद्धव उवाच

किमिदं तव गोविन्द वर्तते मां प्रति प्रभो।
अहो प्रसन्नता मह्यं किंतु प्रीतिरियं तव॥ १४

जानाम्यहं जगन्नाथ प्रसादस्यैष विस्तरः।
यस्य प्रसन्नो भवति तस्य किं नास्ति केशव॥ १५

शास्त्रपरायण सात्यके! आजसे तुम्हें शास्त्रोंकी व्याख्यामें भी नहीं लगना चाहिये। वृष्णिवंशका पालन करनेवाले वीर! अब तुम्हें वादियोंके साथ वाद भी नहीं करना चाहिये॥ ३॥ वीर! तुम योद्धा, बलवान्, ज्ञानवान् और धनुर्वेदनामक उपवेदके विद्वान् हो। अतः ऐसा प्रयत्न करो, जिससे यह पुरी उपहासका पात्र न बने॥ ४॥

सात्यकि बोले—जनार्दन! मैं यथाशक्ति आपके इन वचनोंका पालन करूँगा। जगन्नाथ! मुझे सदा यत्नपूर्वक आपकी आज्ञाको शिरोधार्य करना चाहिये॥ ५॥ माधव! मैं भृत्यकी भाँति बलरामजीकी आज्ञाका अनुसरण करूँगा। जबतक आपका आना होगा, तबतक मैं यत्नपूर्वक पुरीकी रक्षामें लगा रहूँगा॥ ६॥ गोविन्द! माधव! यदि आपकी कृपा मुझपर बनी रहे तो रणभूमिमें शत्रुओंका दमन करनेके लिये कौन-सा ऐसा कार्य है, जो मेरे लिये दुःसाध्य हो॥ ७॥ यदि इन्द्र, यम, कुबेर अथवा पाशधारी वरुण भी युद्धके लिये आ जायँ तो आपकी कृपासे इन सबपर विजय पा जाऊँगा; फिर नृपश्रेष्ठ पौण्ड्रकको पराजित करना कौन बड़ी बात है। हरे! जाइये, अपना यह कार्य कीजिये। मैं सतत सावधान रहूँगा। तत्पश्चात् कमलनयन श्रीकृष्णने पुनः उद्धवसे इस प्रकार कहा—'उद्धवजी! मेरी यह बात सुनिये और इसका प्रयत्नपूर्वक पालन कीजिये'। 'राजेन्द्र! आपको अपनी नीतिसे द्वारकापुरीकी रक्षा करनी चाहिये। तात! आप सदा सावधान रहें और इस विषयमें हमलोगोंकी सहायता करें। इस समय यहाँ सब बातें कहनेमें मुझे बड़ा संकोच होता है॥ ८—११॥ जो सब प्रकारसे विद्याओंमें पारंगत हैं, उन सबके आप ही नेता हैं। कौन मेधावी पुरुष आप-जैसे विद्वान्‌के समक्ष कोई बात कह सकेगा॥ १२॥ जो करनेयोग्य कार्य है, उसे आप जानते हैं। जो सर्वथा नहीं करनेयोग्य है, वह भी आपसे अज्ञात नहीं है; अतः वृष्णिवंशका पालन करनेवाले तात! मैं इस समय कुछ कहनेसे विराम लेता हूँ'॥ १३॥

उद्धव बोले—गोविन्द! प्रभो! मेरे प्रति आपके मुँहसे यह कैसी बात निकल रही है? अहो! यह मेरे लिये प्रसन्नताकी बात है; किंतु यह आपका प्रेम ही इस रूपमें प्रकट हुआ है॥ १४॥ जगन्नाथ! मैं समझता हूँ कि यह मुझपर आपकी कृपाका विस्तार ही व्यक्त हुआ है। केशव! जिसपर आप प्रसन्न होते हैं, उसमें कौन-सी विशेषता नहीं है॥ १५॥

त्वं हि सर्वस्य जगतः कर्ता हर्ता प्रधानतः।
प्रभवः सर्वकार्याणां वक्ता श्रोता प्रमाणवित्॥ १६

ध्याता ध्यानमयो ध्येय इति ब्रह्मविदो विदुः।
जेता देवरिपूणां च गोप्ता नाकसदां भवान्॥ १७

त्वन्नाथा वयमेवेति जीवामो निहतद्विषः।
इयं नीतिरहं मन्ये नेता नीतेर्यतो भवान्॥ १८

को नु नाम नयो वेद त्वां विना साम्प्रतं वद।
नीतिस्त्वं सर्वकार्याणामिति मे निश्चिता मतिः॥ १९

दुर्गाढो नयमार्गोऽयमित्याहुस्तद्विदो जनाः।
चतुर्धा प्रोच्यते नीतिः सामदाने जनार्दन॥ २०

दण्डो भेदो मनुष्याणां निग्रहावग्रहे सदा।
दण्ड्येषु दण्डमिच्छन्ति समान्यं तु नये हरे॥ २१

बलवत्स्वथ दानं तु त्रयाणामप्यगोचरे।
प्रयोक्तव्यो महाभेद इति नीतिमतां मतम्॥ २२

तेषु तेष्वथ सर्वेषु प्रमाणं त्वां विदुर्बुधाः।
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वं त्वयि समर्पितम्॥ २३

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा विररामैव उद्धवो नीतिमत्तरः।
ततः स भगवान् विष्णुरेवमेव नृपोत्तम॥ २४
कामपालं महाबाहुमुवाच यदुसंसदि।
उग्रसेनं नृपं राजंस्तथा हार्दिक्यमेव च॥ २५

आप ही समस्त जगत्के प्रधानतः स्रष्टा और संहारक हैं। आप ही समस्त कार्योंके कारण, वक्ता, श्रोता और प्रमाणवेत्ता हैं॥ १६॥ ब्रह्मज्ञानी मुनि आपको ही ध्याता, ध्यान और ध्येयरूपमें जानते हैं। आप देवद्रोहियोंको जीतनेवाले और स्वर्गवासियोंके रक्षक हैं॥ १७॥ हमारे तो आप ही स्वामी और संरक्षक हैं; इसीलिये हम जी रहे हैं और हमारे शत्रु मारे गये हैं। यही मेरी नीति है और इसीको मैं मानता हूँ, क्योंकि आप ही नीतिके नेता हैं॥ १८॥ वेदस्वरूप परमात्मन्! कहिये, इस समय आपके सिवा दूसरा कौन नीतिमार्गका दर्शन करानेवाला है। मेरा तो यह निश्चित विचार है कि आप ही समस्त कार्योंकी नीति हैं॥ १९॥ इस नीतिमार्गमें प्रवेश करना बहुत ही कठिन है, ऐसा नीतिज्ञ पुरुष कहते हैं। जनार्दन! चार प्रकारकी नीति बतलायी जाती है—साम, दान, दण्ड और भेद। मनुष्योंके निग्रह (दूसरेके द्वारा अपना अवरोध) और अवग्रह (अपने द्वारा दूसरोंका अवरोध) होनेपर सदा इन्हीं चार नीतियोंका प्रयोग होता है। हरे! जो दण्डनीय (दुर्बल) हों, उन शत्रुओंके प्रति नीतिज्ञ पुरुष दण्ड-नीतिके ही प्रयोगकी इच्छा करते हैं और नीतिकी समता होनेपर अर्थात् शत्रुके अपने समान बलशाली होनेपर उसके प्रति साम-नीतिका ही प्रयोग अभीष्ट माना जाता है॥ २०-२१॥ शत्रु बलवान् हों तो उनके प्रति दान-नीतिका प्रयोग उचित होता है (अर्थात् उन्हें कुछ भेंट देकर शान्त कर देना आवश्यक समझा जाता है)। जहाँ साम, दान और दण्ड—इन तीनों नीतियोंकी पहुँच न हो सके, वहाँ महान् 'भेद' का प्रयोग करना चाहिये, यह नीतिज्ञ पुरुषोंका मत है॥ २२॥ उन-उन सभी नीतियोंमें विद्वान् पुरुष आपको ही प्रमाण मानते हैं (आपने जिस अवसरपर जैसी नीतिका प्रयोग किया है, वहाँ वही उचित था, ऐसा लोगोंका मत है)। यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ? सारा ज्ञान आपमें ही समर्पित है॥ २३॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—नृपश्रेष्ठ! ऐसा कहकर अतिशय नीतिमान् उद्धवजी चुप हो गये। राजन्! तदनन्तर वे तत्त्ववेत्ता भगवान् श्रीकृष्णने इसी तरह यादव-सभामें महाबाहु बलराम, महाराज उग्रसेन तथा कृतवर्मासे पूर्वोक्त बात कही।

कामपालं पुनर्विष्णुरिदं प्रोवाच तत्त्ववित्।
न प्रमादस्त्वया कार्यः सर्वदा यत्नवान् भव॥ २६

स्थिते त्वयि महाबाहो का पीडा जगतो भवेत्।
गदी भव सदा त्वार्य न क्रीडा सर्वदा भवेत्॥ २७

रक्ष त्वं सर्वदा यत्नात् पुरीं द्वारवतीं प्रभो।
नोपहास्या यथा स्याम तथा कुरु गदी भव॥ २८

उत्साहः सर्वदा कार्यो निरुत्साहो न यत्नतः।
बाढमित्यब्रवीद् रामः कृष्णं वृष्णिकुलोद्भवम्॥ २९

वृष्णयः सर्व एवैते स्वं स्वं सद्म समाययुः।
गन्तुमैच्छज्जगन्नाथः कैलासं पर्वतोत्तमम्॥ ३०

इसके बाद वे पुनः बलरामजीसे बोले—'भैया! आपको प्रमाद नहीं करना चाहिये। आप सदा नगरकी रक्षाके लिये यत्नशील बने रहिये'॥ २४—२६॥ महाबाहो! आप रक्षाके लिये खड़े हो जायँ तो जगत्‌को क्या पीड़ा हो सकती है? आर्य! अब गदा उठाइये, सदा क्रीडा और मनोरञ्जनका ही अवसर नहीं होता॥ २७॥ प्रभो! आप सदा यत्नपूर्वक द्वारकापुरीकी रक्षा करें। हमें उपहासका पात्र न बनना पड़े, ऐसा प्रयत्न कीजिये और गदा लिये सदा रक्षाके लिये उद्यत रहिये॥ २८॥ आपको सदा उत्साह बनाये रखना चाहिये। कभी उत्साहका अभाव न हो, इसके लिये यत्नशील रहना चाहिये।' तब बलरामजीने वृष्णिवंशावतंस श्रीकृष्णसे कहा—'बहुत अच्छा'॥ २९॥ उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके सभी वृष्णिवंशी अपने-अपने घरको लौट गये। तब जगन्नाथ श्रीकृष्णने पर्वतप्रवर कैलासको जानेका विचार किया॥ ३०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्णका कैलास-यात्राविषयक पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७५॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

गरुड़पर आरूढ़ होकर श्रीकृष्णका बदरिकाश्रममें जाना, मार्गमें देवताओं-मुनियोंद्वारा उनकी स्तुति

वैशम्पायन उवाच

ततः संचिन्तयामास गरुडं पक्षिपुङ्गवम्।
आगच्छ त्वरितं तार्क्ष्य इति विष्णुर्जगत्पतिः॥ १

ततः स भगवांस्तार्क्ष्यो वेदराशिरिति स्मृतः।
बलवान् विक्रमी योगी शास्त्रनेता कुरूद्वह॥ २

यज्ञमूर्तिः पुराणात्मा साममूर्द्धा च पावनः।
ऋग्वेदपक्षवान् पक्षी पिङ्गलो जटिलाकृतिः॥ ३

ताम्रतुण्डः सोमहरः शक्रजेता महाशिराः।
पन्नगारिः पद्मनेत्रः साक्षाद् विष्णुरिवापरः॥ ४

वाहनं देवदेवस्य दानवीगर्भकृन्तनः।
राक्षसासुरसंघानां जेता पक्षबलेन यः॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर जगदीश्वर श्रीकृष्णने मन-ही-मन पक्षिराज गरुड़का चिन्तन करते हुए कहा—'तार्क्ष्य! शीघ्र आओ'॥ १॥ कुरुश्रेष्ठ! तब भगवान् गरुड़ वहाँ आ पहुँचे, जिन्हें वेदकी राशि माना गया है; वे बलवान्, पराक्रमी, योगी तथा शास्त्रों (शास्त्रज्ञों)-के नेता हैं॥ २॥ यज्ञ उनका स्वरूप है, वे पुराणात्मा और पावन हैं, सामवेद उनका मस्तक है, ऋग्वेद उनकी पाँखें हैं, पक्षधारी गरुड़ पिङ्गलवर्णके हैं, उनकी आकृति जटिल दिखायी देती है॥ ३॥ उनकी चोंच ताँबेके समान लाल है। वे अमृतका हरण करनेवाले हैं। उन्होंने युद्धमें इन्द्रको जीत लिया था। उनका मस्तक विशाल है। वे सर्पोंके शत्रु हैं और साक्षात् दूसरे विष्णुकी भाँति कमलसदृश नेत्रोंसे सुशोभित होते हैं॥ ४॥ वे देवाधिदेव भगवान् विष्णुके वाहन तथा दानवपत्नियोंके गर्भका उच्छेद करनेवाले हैं। वे अपने पंखोंके बलसे राक्षसों और असुरोंके समूहपर विजय पाते हैं॥ ५॥

प्रादुरासीन्महावीर्यः केशवस्याग्रतस्तदा।
जानुभ्यामपतद् भूमौ नमो विष्णो जगत्पते॥ ६

नमस्ते देवदेवेश हरे स्वामिन्निति ब्रुवन्।
पस्पर्श पाणिना कृष्णः स्वागतं तार्क्ष्यपुङ्गवम्॥ ७

इत्युवाच तदा तार्क्ष्यं यास्ये कैलासपर्वतम्।
शूलिनं द्रष्टुमिच्छामि शङ्करं शाश्वतं शिवम्॥ ८

बाढमित्यब्रवीत् तार्क्ष्य आरुह्यैनं जनार्दनः।
तिष्ठध्वमिति होवाच यादवान् पार्श्ववर्तिनः॥ ९

ततो ययौ जगन्नाथो दिशं प्रागुत्तरां हरिः।
रवेण महता तार्क्ष्यस्त्रैलोक्यं समकम्पयत्॥ १०

सागरं क्षोभयामास पद्भ्यां पक्षी व्रजंस्तदा।
पक्षेण पर्वतान् सर्वान् वहन् देवं जनार्दनम्॥ ११

ततो देवाः सगन्धर्वा आकाशेऽधिष्ठितास्तदा।
तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षं वाग्भिरिष्टाभिरीश्वरम्॥ १२

जय देव जगन्नाथ जय विष्णो जगत्पते।
जयाजेय नमो देव भूतभावनभावन॥ १३

नमः परमसिंहाय दैत्यदानवनाशन।
जयाजेय हरे देव योगिध्येय परागत॥ १४

नारायण नमो देव कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
आदिकर्तः पुराणात्मन् ब्रह्मयोने सनातन॥ १५

नमस्ते सकलेशाय निर्गुणाय गुणात्मने।
भक्तिप्रियाय भक्ताय नमो दानवनाशन॥ १६

अचिन्त्यमूर्तये तुभ्यं नमस्ते सकलेश्वर।
इत्यादिभिस्तदा देवं वाग्भिरीशानमव्ययम्॥ १७

तुष्टुवुर्देवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः।
शृण्वन्नेवं जगन्नाथः स्तुतिवाक्यानि तानि च॥ १८

ययौ सार्धं सुरगणैर्मुनिभिर्वेदपारगैः।
यत्र पूर्वं स्वयं विष्णुस्तपस्तेपे सुदारुणम्॥ १९

उस समय महापराक्रमी गरुड़ भगवान् केशवके सम्मुख प्रकट हुए और घुटनोंके बल पृथ्वीपर पड़कर प्रणाम करते हुए बोले—'जगत्पते! विष्णो! आपको नमस्कार है। देवदेवेश्वर! हरे! स्वामिन्! आपके चरणोंमें मेरा प्रणाम है। भगवान् श्रीकृष्णने गरुड़-जातिके पक्षियोंमें प्रधान गरुड़का अपने हाथसे स्वागतपूर्वक स्पर्श किया और उनसे तत्काल कहा—'मैं कैलासपर्वतको चलूँगा। सनातन देवता कल्याणस्वरूप भगवान् शङ्करका दर्शन करना चाहता हूँ'॥ ६—८॥ तब गरुड़ने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। गरुड़पर आरूढ़ होकर भगवान् जनार्दनने आस-पास खड़े हुए यादवोंसे कहा—'तुम सब सतत सावधान रहना'॥ ९॥ तदनन्तर जगदीश्वर श्रीहरि पूर्वोत्तर दिशाकी ओर चले। गरुड़ने अपने महानादसे तीनों लोकोंको कम्पित कर दिया॥ १०॥ भगवान् श्रीकृष्णका भार वहन करके आगे बढ़ते हुए पक्षी गरुड़ने अपने पैरोंसे समुद्रको क्षुब्ध कर दिया और पंखोंकी हवासे समस्त पर्वतोंको कम्पित कर दिया॥ ११॥ उस समय गन्धर्वोंसहित देवता आकाशमें खड़े हो प्रिय वचनोंद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे थे॥ १२॥ (वे कहते थे—) 'जगन्नाथ! देव! आपकी जय हो! जगत्पते! विष्णो! आपकी जय हो! अजेय परमेश्वर! आपकी जय हो! देव! भूतभावनभावन! आपको नमस्कार है॥ १३॥ उत्तम नृसिंहरूपधारी आपको नमस्कार है। आप दैत्यों और दानवोंका नाश करनेवाले हैं। अजेय हरे! आपकी जय हो! देव! आप योगियोंके ध्येय और परमगतिस्वरूप हैं॥ १४॥ नारायण! कृष्ण! कृष्ण! हरे! हरे! आदिकर्तः! पुराणात्मन्! ब्रह्मयोने! सनातन देव! आपको नमस्कार है॥ १५॥ सर्वेश्वर! आपको नमस्कार है। आप निर्गुण एवं गुणस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप भक्तिप्रिय और भक्तस्वरूप हैं। दानवनाशन! आपको नमस्कार है॥ १६॥ सकलेश्वर! आपका स्वरूप अचिन्त्य है, आपको नमस्कार है।' इस प्रकारके वचनोंद्वारा देवताओं, गन्धर्वों, ऋषियों, सिद्धों और चारणोंने अविनाशी ईश्वर श्रीकृष्णका स्तवन किया। जगदीश्वर श्रीकृष्ण उन स्तुतिवचनोंको सुनते हुए वेदपारंगत मुनियों और देवताओंके साथ उस स्थानपर गये, जहाँ पूर्वकालमें

लोकवृद्धिकरः श्रीमाँल्लोकानां हितकाम्यया।
वर्षायुतं तपस्तप्तं विष्णुना प्रभविष्णुना॥ २०
यत्र विष्णुर्जगन्नाथस्तपस्तप्त्वा सुदारुणम्।
द्विधाकरोत् स्वमात्मानं नरनारायणाख्यया॥ २१
गङ्गा यत्र सरिच्छ्रेष्ठा मध्ये धावति पावनी।
यत्र शक्रः स्वयं हत्वा वृत्रं वेदार्थतत्त्वगम्॥ २२
ब्रह्महत्याविनाशार्थं तपो वर्षायुतं चरत्।
यत्र सिद्धाश्च सिद्धाः स्युर्ध्यात्वा देवं जनार्दनम्॥ २३
यत्र हत्वा रणे रामो रावणं लोकरावणम्।
एतच्छासनमिच्छंश्च तपो घोरमतप्यत॥ २४
देवाश्च मुनयश्चैव सिद्धिं यान्ति शुचिव्रताः।
यत्र नित्यं जगन्नाथः साक्षाद् वसति केशवः॥ २५
यत्र यज्ञाः प्रवर्तन्ते नित्यं मुनिगणैः सह।
यस्याः स्मरणमात्रेण नरः स्वर्गं गमिष्यति॥ २६
स्वर्गसोपानमिच्छन्ति यां पुण्यां मुनिसत्तमाः।
शत्रवो मित्रतां यान्ति यत्र नित्यं नृपोत्तम॥ २७
यामाहुः पुण्यशीलानां स्थानमुत्तमधर्मिणाम्।
यत्र विष्णुं समाराध्य देवाः स्वर्गं समाययुः॥ २८
सिद्धक्षेत्रमिदं प्राहुर्ऋषयो वीतमत्सराः।
विशालां बदरीं विष्णुस्तां द्रष्टुं सकलेश्वरः॥ २९
सायाह्ने चामरगणैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
प्रविवेश महापुण्यमृषिजुष्टं तपोवनम्॥ ३०
अग्निहोत्राकुले काले पक्षिव्याहारसंकुले।
नीडस्थेषु विहङ्गेषु दुह्यमानासु गोषु च॥ ३१
ऋषिष्वप्यथ तिष्ठत्सु मुनिवीरेषु सर्वतः।
समाधिस्थेषु सिद्धेषु चिन्तयत्सु जनार्दनम्॥ ३२
अधिश्रितेषु हविषु ज्वाल्यमानेषु चाग्निषु।
हूयमानेषु तत्रैव पावकेषु समन्ततः॥ ३३
अतिथौ पूज्यमाने च संध्याविष्टे जगन्मणौ।
स तस्यामथ वेलायां देवैः सह जनार्दनः॥ ३४

लोकवृद्धि करनेवाले साक्षात् भगवान् विष्णुने लोकहितकी कामनासे अत्यन्त कठोर तप किया था। प्रभावशाली भगवान् विष्णुने दस हजार वर्षोंतक वहाँ तपस्या की थी। जगदीश्वर विष्णुने अत्यन्त कठोर तप करके वहाँ अपने-आपको नर और नारायण नामसे विख्यात दो स्वरूपोंमें अभिव्यक्त किया था॥ १७—२१॥ उस क्षेत्रके मध्यभागमें सरिताओंमें श्रेष्ठ पावनी गङ्गा प्रखर गतिसे प्रवाहित होती रहती हैं। जहाँ इन्द्रने वेदार्थतत्त्वके ज्ञाता वृत्रासुरका वध करके लगी हुई ब्रह्महत्याका विनाश करनेके लिये दस हजार वर्षोंतक तप किया था। जहाँ भगवान् जनार्दनका ध्यान करनेसे ही सिद्ध पुरुषोंको सिद्धि प्राप्त हुई है। रणभूमिमें लोकको रुलानेवाले रावणका वध करके भगवान् श्रीरामने इन्द्रद्वारा पालित हुई शास्त्राज्ञाका पालन करनेकी इच्छासे जहाँ घोर तपस्या की थी॥ २२—२४॥ देवता और उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनि जहाँ सिद्धिको प्राप्त होते हैं और जहाँ जगदीश्वर केशव साक्षात् रूपसे नित्य निवास करते हैं॥ २५॥ जहाँ मुनियोंके साथ यज्ञ नित्य होते रहते हैं। जिसके स्मरणमात्रसे मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है॥ २६॥ नृपोत्तम! मुनिश्रेष्ठगण जिस पुण्यभूमिको स्वर्गकी सीढ़ी समझ उसे पानेकी इच्छा करते हैं तथा जहाँ शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। जिसे पुण्यशील उत्तम धर्मात्मा मनुष्योंका स्थान बताया गया है। जहाँ भगवान् विष्णुकी आराधना करके देवता स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं॥ २७-२८॥ मात्सर्यरहित ऋषि-मुनि जिसे सिद्ध पुरुषोंका क्षेत्र कहते हैं, उस विशाला बदरीका दर्शन करनेके लिये सर्वेश्वर श्रीकृष्णने सायंकालमें तत्त्वदर्शी मुनियों और देवताओंके साथ वहाँके परम पवित्र ऋषि-मुनिसेवित तपोवनमें प्रवेश किया॥ २९-३०॥ जिस समय सब ओर अग्निहोत्रकी आग प्रज्वलित हो चुकी थी, पक्षियोंके कलरवसे तपोवन गूँज रहा था, विहङ्गम अपने-अपने घोंसलोंमें आ बैठे थे, गौएँ दुही जा रही थीं, मुनियोंमें उत्साही ऋषि-महर्षि सब ओर खड़े थे, सिद्धलोग समाधिस्थ होकर भगवान् जनार्दनका चिन्तन करते थे, हवनीय घृत आगपर चढ़ा दिये गये थे, सब ओर अग्निहोत्रकी अग्नियाँ प्रज्वलित हो उठी थीं और उन अग्नियोंमें सब ओर आहुतियाँ दी जा रही थीं, अतिथियोंका सत्कार हो रहा था और जगत्‌को प्रकाशित करनेवाले सूर्य संध्याकालमें अस्त हो रहे थे, उसी वेलामें

विवेश बदरीं विष्णुर्मुनिजुष्टां तपोमयीम्।
आश्रमस्याथ मध्यं तु प्रविश्य हरिरीश्वरः॥ ३५
गरुडादवरुह्याथ दीपिकादीपिते तदा।
प्रदेशे पुण्डरीकाक्षः स्थितस्तावत् सहामरैः॥ ३६

देवताओंके साथ सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्णने मुनिसेवित तपोमयी बदरीतीर्थकी भूमिमें प्रवेश किया। बदरिकाश्रमके मध्यभागमें प्रवेश करके कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण दीपकोंसे प्रकाशित प्रदेशमें गरुड़से उतरकर देवताओंसहित खड़े हुए॥ ३१—३६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें कैलासयात्राविषयक छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७६॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

देवताओंसहित श्रीकृष्णका बदरिकाश्रममें ऋषियोंद्वारा आतिथ्य-सत्कार

वैशम्पायन उवाच

ततो मुनिगणा दृष्ट्वा देवदेवमुपस्थितम्।
समाप्य चाग्निहोत्राणि सम्पूज्यातिथिसत्तमान्॥ १

मुनयो दीर्घतपसः समाधौ कृतनिश्चयाः।
जटिनो मुण्डिनः केचिच्छिराधमनिसंतताः॥ २

निर्मज्जा नीरसाः केचिद् वेताला इव केचन।
अश्मकुट्टाशनपराः पर्णभक्षास्तथा परे॥ ३

वेदविद्याव्रतस्नाता निराहारा महातपाः।
स्मरन्तः सर्वदा विष्णुं तद्भक्तास्तत्परायणाः॥ ४

आसन्नमुक्तयः केचित् केचिद् ध्यानैकतत्पराः।
ध्यानेन मनसा विष्णुं दृष्टवन्तस्तपोधनाः॥ ५

संवत्सराशिनः केचित् केचिज्जलविचारिणः।
शक्रस्य भयदातारः श्रुतिस्मृतिपरायणाः॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर मुनिगण देवाधिदेव भगवान् श्रीकृष्णको उपस्थित हुआ देख अग्निहोत्र पूरा करके उनके पास आये और उन श्रेष्ठतम अतिथियोंके स्वागत-सत्कारमें लग गये॥ १॥ वे मुनि दीर्घकालतक तपस्या करनेवाले और समाधिमें दृढ़ निश्चयके साथ लगे रहनेवाले थे। किन्हींके सिरपर बड़ी-बड़ी जटाएँ थीं और बहुत-से मुनि मूँड़ मुड़ाये हुए थे। कितने ही इतने दुर्बल हो गये थे कि उनका सारा शरीर नस-नाड़ियोंसे व्याप्त दिखायी देता था (उसपर रक्त और मांसका आवरण नहीं था)॥ २॥ कितने ही रक्त और मज्जासे हीन थे। कितने ही वेतालोंके समान दृष्टिगोचर होते थे। कुछ लोग पत्थरसे कूट-कूटकर खाद्यपदार्थोंको खाते थे। बहुत-से मुनि पत्ते चबाकर रहते थे॥ ३॥ कितने ही वेदविद्याके व्रतको पूर्ण करके स्नातक हो चुके थे। कितने ही निराहार रहकर महान् तप करते थे। वे भगवान् विष्णुके भक्त थे और सदा उन्हींका स्मरण करते हुए उन्हींके भजन-चिन्तनमें तत्पर रहते थे॥ ४॥ किन्हींकी मुक्ति संनिकट थी। कितने ही एकमात्र ध्यानमें संलग्न रहते थे। कितने ही तपोधन ध्यानमग्नचित्तसे भगवान् विष्णुका साक्षात् दर्शन करते थे॥ ५॥ कोई एक वर्षपर आहार करनेवाले थे। कोई जलके भीतर निवास या जलमात्रका आहार करनेवाले थे। कोई श्रौत-स्मार्त शुभ कर्मोंमें तत्पर रहकर इन्द्रको भी भय प्रदान करते थे॥ ६॥

वसिष्ठो वामदेवश्च रैभ्यो धूम्रस्तथैव च।
जाबालिः कश्यपः कण्वो भरद्वाजोऽथ गौतमः॥ ७
अत्रिरश्वशिरा भद्रः शङ्खः शङ्खनिधिः कुणिः।
पाराशर्यः पवित्राक्षो याज्ञवल्क्यो महामनाः॥ ८
कक्षीवानङ्गिराश्चैव मुनिर्दीप्ततपास्तथा।
असितो देवलस्तात वाल्मीकिश्च महातपाः॥ ९
एते चान्ये च मुनयो द्रष्टुमीश्वरमव्ययम्।
आदायार्घ्यं यथायोगमुटजात् स्वात् समाययुः॥ १०
ते च गत्वा हरिं कृष्णं विष्णुमीशं जनार्दनम्।
भक्तिनम्रास्तदा देवं प्रणेमुर्भक्तवत्सलम्॥ ११
नमोऽस्तु कृष्ण कृष्णेति देवदेवेति केशवम्।
प्रणवात्मञ्जगन्नाथ नताः स्म शिरसा हरे॥ १२
कृष्ण विष्णो हृषीकेश केशवेति च सर्वदा।
प्रणामप्रवणा विप्राः प्राहुरित्थं जगत्पतिम्॥ १३
इदमर्घ्यमिदं पाद्यमिदं विष्टरमेव च।
कृतार्थाः सर्वदा देव प्रसन्नो नो जगत्पतिः॥ १४
किं कुर्मः किं नु नः कृत्यं कश्चिद् दोषःप्रभो हरे।
इति प्राञ्जलयः सर्वे प्राहुर्देवस्य पश्यतः॥ १५
कृष्णोऽपि तद् यथायोगमुपयुज्य सहामरैः।
कृतं सर्वं मुनिवरा वर्धतां तप उत्तमम्॥ १६
इति ब्रुवन् पुराणात्मा प्रीतस्तेन गरुत्मता।
आसनं लम्भयामास रात्रौ देवो जनार्दनः॥ १७
कुशलं पृष्टवान् भूयो मुनीनां भावितात्मनाम्।
अग्निहोत्रेषु तपसि तथा भृत्येषु सर्वतः॥ १८
एवमादि जगन्नाथः पृष्टवानीश्वरस्तदा।
सर्वत्र कुशलं तेऽत्र ब्रूयुः कृष्णस्य सर्वतः॥ १९
आतिथ्यं चक्रिरे ते तु नीवारैः फलमूलकैः।
देवानामथ सर्वेषां विष्णोः कृष्णस्य यत्नतः।
आतिथ्यमुपयुञ्जानस्ततः प्रीतोऽभवद्धरिः॥ २०

तात! वसिष्ठ, वामदेव, रैभ्य, धूम्र, जाबालि, कश्यप, कण्व, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, अश्वशिरा, भद्र, शङ्ख, शङ्खनिधि, कुणि, पाराशर्य, पवित्राक्ष, महामना याज्ञवल्क्य, कक्षीवान्, अङ्गिरा मुनि, दीप्ततपा, असित, देवल तथा महातपस्वी वाल्मीकि—ये और दूसरे मुनि अविनाशी ईश्वर श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये यथायोग्य अर्घ्य लिये अपनी-अपनी कुटियासे आये॥ ७—१० ॥ उन्होंने वहाँ जाकर उस समय भक्तिभावसे विनम्र हो पापहारी सर्वव्यापी ईश्वर भक्तवत्सल जनार्दनदेव श्रीकृष्णको प्रणाम किया॥ ११ ॥ 'श्रीकृष्ण! आपको नमस्कार है। देवदेव! कृष्ण! केशव! प्रणवात्मन्! जगन्नाथ! हरे! हम आपके चरणोंमें सिर झुकाकर नमस्कार करते हैं॥ १२॥ कृष्ण! विष्णो! हृषीकेश! केशव! आपको सर्वदा नमस्कार है।' इस प्रकार उन जगदीश्वरको प्रणाम करते हुए ब्राह्मणोंने उपर्युक्त बात कही॥ १३ ॥ तत्पश्चात् वे कहने लगे—'भगवन्! यह आपके लिये अर्घ्य है, यह पाद्य है और यह आसन है। देव! आपके दर्शनसे हम सदाके लिये कृतार्थ हो गये। आप जगदीश्वर हमपर प्रसन्न हैं॥ १४॥ हम आपकी क्या सेवा करें? हमारे लिये क्या कर्तव्य है? प्रभो! हरे! हमसे कोई अपराध तो नहीं बन गया।' इस प्रकार सबने भगवान्‌के सामने हाथ जोड़कर यह विनययुक्त बात कही॥ १५॥ देवताओंसहित श्रीकृष्णने भी उनके दिये हुए अर्घ्य आदिका यथायोग्य उपयोग करके कहा—'मुनिवरो! आपलोगोंने हमारा पूरा सत्कार कर दिया। आपलोगोंका उत्तम तप बढ़े'॥१६॥ इस प्रकार कहते हुए पुराणपुरुष जनार्दनदेव श्रीकृष्णने गरुड़जीके साथ प्रसन्नतापूर्वक रात्रिमें आसन ग्रहण किया॥ १७॥ फिर उन्होंने पवित्र अन्तःकरणवाले मुनियोंके अग्निहोत्र, तप और भृत्योंके भरण-पोषण आदि सभी कार्योंके विषयमें कुशल-समाचार पूछा॥ १८॥ इस तरह जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णने जब उनसे कुशल-मङ्गल पूछा, तब वे श्रीकृष्णसे बोले—'प्रभो! आपकी कृपासे हमें सर्वत्र कुशल है'॥ १९॥ तत्पश्चात् उन ऋषियोंने नीवार और फल, मूल आदिके द्वारा समस्त देवताओं तथा विष्णुस्वरूप श्रीकृष्णका यत्नपूर्वक आतिथ्य किया। उनका आतिथ्य ग्रहण करके भगवान् श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए॥ २०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्णका कैलासयात्राविषयक सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७७॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णकी समाधि, महान् कोलाहल और उनके पास भागते हुए मृग आदिका आगमन

वैशम्पायन उवाच

ततः स भगवान् विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभु।
यत्र पूर्वं तपस्तप्तमात्मना यादवेश्वरः॥ १

गङ्गायाश्चोत्तरे तीरे देशं द्रष्टुमुपागतः।
स्वयमेव हरिः साक्षात् प्रविवेश तपोवनम्॥ २

प्रविश्य सुचिरं देशं ददर्श च मनोरमम्।
निषसाद ततस्तस्मिन्नाश्रमे पुण्यवर्धनः॥ ३

समाधौ योजयामास मनः पद्मनिभेक्षणः।
किमप्येष जगन्नाथो ध्यात्वा देवेश्वरः स्थितः॥ ४

स्थिते देवगुरौ तत्र समाधौ दीपवद्धरौ।
तत्र शब्दो महाघोरः प्रादुरासीत् समन्ततः॥ ५

खाद खादत मोदेत यात यात मृगानिमान्।
प्रेषयेह पुनः सर्वान् प्रसादाच्छार्ङ्गधन्वनः॥ ६

एष विष्णुरयं कृष्णो हरिरीश इतोऽच्युतः।
नमोऽस्तु विष्णो देवेश स्वामिन् माधव केशव॥ ७

इत्यादिशब्दः सुमहानाविरासीत् तदा निशि।
ततश्च सुमहानादः सिंहानां मृगविद्विषाम्॥ ८

धावतां च शुनां राजन् मृगाननु विनर्दताम्।
मृगाणां भीतियुक्तानामृक्षाणां द्वीपिनां तथा॥ ९

गजानां नदतां राजन् बृंहितं च ततस्ततः।
महावातसमुद्धूतक्षुभितस्येव वारिधेः॥ १०

नादस्त्रैलोक्यवित्रासः प्रादुरासीत् तदा निशि।
श्रुत्वा शब्दं हरिर्देवस्तादृशं तत्र धिष्ठितः॥ ११

समाधिक्षोभमासाद्य विश्वस्य च जगत्पतिः।
ततः संचिन्तयामास कोऽयमेष महास्वनः॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर जिनकी गतिका ज्ञान होना कठिन है, वे सर्वसमर्थ सर्वव्यापी भगवान् यदुनाथ गङ्गाजीके उत्तर तटपर उस स्थानको देखनेके लिये गये, जहाँ उन्होंने पूर्वकालमें स्वयं तप किया था। उन श्रीहरिने स्वयं ही उस साक्षात् तपोवनमें प्रवेश किया॥ १-२॥ उसमें प्रवेश करके वे उस परम सुन्दर एवं मनोरम देशका दर्शन करने लगे। तदनन्तर पुण्यकी वृद्धि करनेवाले भगवान् उस आश्रममें बैठे॥ ३॥ बैठनेके पश्चात् उन कमलनयन श्रीकृष्णने अपने मनको समाधिमें लगाया। वे देवेश्वर जगन्नाथ किसी अनिर्वचनीय तत्त्वका चिन्तन करते हुए उस समाधिमें दृढ़तापूर्वक स्थित हो गये॥ ४॥ वायुशून्य स्थानमें निष्कम्पभावसे प्रज्वलित होनेवाले दीपकके समान जब वे देवगुरु श्रीहरि समाधिमें अविचलभावसे स्थित हो गये, तब वहाँ सब ओर बड़ा भयंकर शब्द प्रकट हुआ॥ ५॥ 'खाओ! खाओ! मौज उड़ाओ! जाओ! जाओ! इन मृगोंके पीछे। भगवान् श्रीहरिके प्रसादसे इन सबको फिर यहाँ हाँक लाओ॥ ६॥ ये भगवान् विष्णु हैं! ये श्रीकृष्ण हैं! ये हरि ईश्वर अच्युत इधर बैठे हैं। विष्णो! देवेश्वर! स्वामिन्! केशव! आपको नमस्कार है'॥ ७॥ इत्यादि रूपसे उस रातमें महान् कोलाहल होने लगा। तदनन्तर मृगद्रोही सिंह बड़े जोर-जोरसे दहाड़ने लगे॥ ८॥ राजन्! मृगोंके पीछे दौड़ते और भोंकते हुए कुत्तों, भयभीत मृगों, रीछों, व्याघ्रों और चिग्घाड़ते हुए हाथियोंका गर्जन चारों ओर इस प्रकार गूँजने लगा मानो प्रचण्ड वायुके वेगसे कम्पित एवं क्षुब्ध हुए महासागरका गम्भीर घोष सुनायी दे रहा हो॥ ९-१०॥ उस समय रात्रिमें तीनों लोकोंको भयभीत करनेवाला वह महानाद प्रकट हुआ। वैसे महान् कोलाहलको सुनकर वहाँ बैठे हुए सम्पूर्ण जगत्के अधिपति भगवान् श्रीकृष्णकी समाधि टूट गयी। वे सोचने लगे—'यह कैसा महान् कोलाहल हो रहा है?'॥ ११-१२॥

कस्यायमीदृशः शब्दः स्तुतियुक्तो मम त्विति।
अहोऽस्मिन् मृगयाशब्दः शुनां संचरतां वने॥ १३

मृगाणामथ सर्वेषां नादश्च सुमहानयम्।
व्यामिश्रस्तुतियुक्ताभिर्वाग्भिर्मम समन्ततः॥ १४

इति संचिन्त्य मनसा दिशो विप्रेक्ष्य सर्वतः।
तत आस्ते हरिस्तत्र ज्ञातुं तस्य समुद्भवम्॥ १५

ततो मृगाः समाधावन् यत्र तिष्ठति केशवः।
तांश्चैवानुचरो राजन् श्वगणः समपद्यत॥ १६

अथ वै दीपिका राजञ्छतशोऽथ सहस्रशः।
ततस्तमोऽपि व्यनशद् दिवेव समपद्यत॥ १७

ततो नु भूतसङ्घाश्च समदृश्यन्त तत्र ह।
पिशाचाश्च महाघोरा नदन्तो बहु विस्वनम्॥ १८

भक्षयन्तोऽथ पिशितं पिबन्तो रुधिरं बहु।
प्रादुरासन् महाघोराः पिशाचा विकृताननाः॥ १९

हन्यमाना हता राजन् पतन्तः पतिता मृगाः।
इतश्चेतश्च धावन्तो बाणैर्विद्धा मृगा द्विपाः॥ २०

ततो मृगसहस्राणि समुदीर्णानि भारत।
यत्रासौ तिष्ठते देवस्तत्र याता निरन्तरम्॥ २१

अन्तरीकृत्य देवेशं स्थितानीत्यनुशुश्रुम।
पिशाच्यो विकृताकाराः कराला रोमहर्षणाः॥ २२

पुत्रवत्यः समापेतुर्यत्र तिष्ठति केशवः।
श्वगणस्तत्र राजेन्द्र चरत्येवं ततस्ततः॥ २३

ततः स भगवान् विष्णुः सर्वमालोक्य वेष्टितः।
विस्मयं परमं गत्वा पश्यन्नास्ते स्म केशवः॥ २४

'यह किसका ऐसा शब्द सुनायी दिया है, जो मेरी स्तुतिसे युक्त है। अहो! इस वनमें दौड़ते हुए कुत्ते और भागते हुए समस्त मृगोंका यह महान् कोलाहल, शिकार खेलनेकी यह बड़ी भारी आवाज आश्चर्यकी वस्तु है। चारों ओर फैला हुआ यह कोलाहल मेरी स्तुतिसे मिश्रित वचनोंद्वारा व्याप्त है'॥ १३-१४॥ मन-ही-मन ऐसा सोचकर सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर दृष्टिपात करके उस महान् कोलाहलका कारण जाननेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ सावधान होकर बैठे॥ १५॥ राजन्! इतनेहीमें बहुत-से मृग भागते हुए उधर ही आ निकले, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान थे। साथ ही उनका पीछा करता हुआ कुत्तोंका झुंड भी आ पहुँचा॥ १६॥ राजन्! तदनन्तर सैकड़ों और हजारों मशालें जल उठीं, जिनसे सारा अन्धकार नष्ट हो गया और दिनके समान प्रकाश फैल गया॥ १७॥ तत्पश्चात् वहाँ भूतोंके समुदाय दिखायी दिये। महाभयंकर पिशाच गर्जते और भाँति-भाँतिके शब्द कर रहे थे। वे कच्चे मांस खाते और बहुत-सा रक्त पीते हुए वहाँ प्रकट हुए। उनका स्वरूप बड़ा भयंकर था। वे सभी पिशाच विकराल मुखवाले थे॥ १८-१९॥ राजन्! कितने ही मृग उन पिशाचोंद्वारा मारे गये और मारे जा रहे थे। कितने ही धराशायी हो चुके थे और बहुत-से तत्काल गिर रहे थे। बाणोंसे घायल हुए मृग और हाथी इधर-उधर भाग रहे थे॥ २०॥ भारत! तत्पश्चात् जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण विराज रहे थे, वहाँ सहस्रों मृग लगातार भागते चले आये और देवेश्वर श्रीकृष्णको घेरकर खड़े हो गये। यह बात हमारे सुननेमें आयी है। थोड़ी ही देरमें बहुत-सी विकृत आकारवाली विकराल पिशाचियाँ भी वहाँ आ पहुँचीं, जहाँ भगवान् केशव विराजमान थे। वे सब-की-सब पुत्रवती थीं, उनके दर्शनमात्रसे दूसरोंके रोंगटे खड़े हो जाते थे। राजेन्द्र! इसी प्रकार कुत्तोंका समुदाय भी वहाँ आकर इधर-उधर विचरने लगा। तत्पश्चात् उन मृगोंद्वारा घिरे हुए वे विष्णुस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण उन सबको वहाँ आया देख महान् आश्चर्यमें पड़कर उन सबकी ओर देखने लगे॥ २१—२४॥

कस्यैष विस्तृतो नादः कस्य वायं जनोऽपतत्।
को नु मां स्तौति भक्त्या वै भविष्ये प्रीतिमानहम्॥ २५
कस्य मुक्तिः समायाता प्रीते मयि सुदुर्लभा।
इति संचिन्त्य भगवानास्ते प्राकृतवद्धरिः॥ २६

वे सोचने लगे—'यह किसका महान् कोलाहल फैला हुआ है, अथवा यह किसका जन-समुदाय यहाँ आ पहुँचा है? कौन भक्तिभावसे मेरी स्तुति करता है? जिसके ऊपर मैं प्रसन्न होऊँगा॥ २५॥ आज मेरे प्रसन्न होनेपर किसको परम दुर्लभ मुक्ति प्राप्त होना चाहती है।' इस प्रकार भगवान् श्रीहरि साधारण मनुष्यके समान सोच-विचार करते हुए वहाँ बैठे रहे॥ २६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां अष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्णका कैलासयात्रा-विषयक अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७८॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णके समक्ष दो पिशाचोंका आगमन

वैशम्पायन उवाच

तेषामनु महाघोरौ पिशाचौ विकृताननौ।
प्रांशू पिङ्गलरोमाणौ दीर्घजिह्वौ महाहनू॥ १
लम्बकेशौ विरूपाक्षौ ही ही हा हेति वादिनौ।
खादन्तौ मांसपिटकं पिबन्तौ रुधिरं बहु॥ २
अन्त्रवेष्टितसर्वाङ्गौ दीर्घौ कृशकृतोदरौ।
लम्बमानमहाप्रान्तशूलप्रोतशिरोधरौ॥ ३
कर्षन्तौ शवयूथानि बाहुभ्यां तत्र तत्र ह।
हसन्तौ विविधं हासं स्वजातिसदृशं नृप॥ ४
वदन्तौ बहुरूपाणि वचांसि प्राकृतानि च।
कम्पयन्तौ महावृक्षानूरुपादप्रघट्टनैः॥ ५
सृक्किणी लेलिहन्तौ च दन्तान् कटकटायिनौ।
अस्थिस्नायुसमाकीर्णौ धमनीरज्जुसंततौ॥ ६
वदन्तौ कृष्ण कृष्णेति माधवेति च संततम्।
कदा नु द्रक्ष्यते विष्णुः स इदानीं क्व तिष्ठति॥ ७
स्वामिनः कुत्र वसतिः कुतो द्रष्टुं यतामहे।
अत्र वा कुत्र देवेशः कुतो नु स्थास्यते हरिः॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उन सबके पश्चात् दो महाभयंकर पिशाच वहाँ आये, जिनके मुख बड़े विकराल थे। वे दोनों ही ऊँचे कदके थे। उनके रोएँ पिङ्गलवर्णके थे। उनकी जिह्वाएँ बड़ी-बड़ी थीं और ठोड़ी बहुत चौड़ी थी॥ १॥ उन दोनोंके केश लम्बे और नेत्र भयंकर थे। वे 'हा-हा, ही-ही' करते हुए बात करते थे और मांसकी पिटारीरूप शवका भक्षण करते तथा बहुत-सा रक्त पीते थे॥ २॥ उनके सारे अङ्गोंमें दूसरे प्राणियोंकी आँतें लिपटी हुई थीं। वे विशालकाय थे; किंतु उनके पेट सटे हुए थे। वे लम्बे और फैले हुए शूलोंमें पिरोये हुए नरमुण्ड धारण किये हुए थे॥ ३॥ और भुजाओंद्वारा जहाँ-तहाँसे झुंड-के-झुंड मुर्दे खींचे ला रहे थे। नरेश्वर! वे दोनों पिशाच अपनी जातिके अनुरूप नाना प्रकारसे अट्टहास करते और भाँति-भाँतिके प्राकृत वचन बोलते थे। अपनी जाँघों और पैरोंकी टक्करसे वे बड़े-बड़े वृक्षोंको भी हिला देते थे, जबड़े चाटते और दाँत कटकटाते थे। उनका सारा शरीर हड्डियों और स्नायुजालसे व्याप्त था; नस-नाड़ियाँ रस्सीकी भाँति सर्वत्र फैली दिखायी देती थीं। वे दोनों निरन्तर 'कृष्ण! कृष्ण! माधव!' इत्यादि नामोंका कीर्तन करते थे। वे कहते थे—'हमें भगवान् विष्णुका दर्शन कब होगा? वे इस समय कहाँ होंगे? हमारे स्वामी श्रीहरिका निवासस्थान कहाँ है? हम किस तरह उनके दर्शनका प्रयत्न करें? इस तपोवनमें देवेश्वर श्रीहरि कहाँ होंगे?'॥ ४—८॥

कुतः पद्मपलाशाक्षः साक्षादिन्द्रानुजो हरिः।
यमाहुः पुण्डरीकाक्षं ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥ ९

तमजं पुरुषं विष्णुं द्रष्टुमभ्युद्यता वयम्।
अन्तकाले जगन्नाथं प्रविवेश जगत्त्रयम्॥ १०

तमजं विश्वकर्तारं कुतो द्रक्ष्याम साम्प्रतम्।
यस्य विस्तार एवैष लोकः प्राणिनिवासिनः॥ ११

तं द्रष्टुं देवमीशानं यतामः साम्प्रतं हरिम्।
दशा घोरतमा लोके विद्विष्टा सर्वजन्तुभिः॥ १२

पैशाचीयं समुत्पन्ना कथं नौ प्राविशद् बलात्।
नरमांसास्थिकलुषा सर्वभीतिप्रदायिनी॥ १३

अहो नौ दुष्कृतं कर्म प्राक्तने कर्मसंचये।
अत्रैव महती प्रीतिर्वर्तते सर्वदा तथा॥ १४

यावन्नौ दुष्कृतं कर्म तावत्स्थास्यति तादृशी।
दशा सा सर्वविद्विष्टा प्राणिपीडनकारिणी॥ १५

सर्वथा दुष्कृतं कर्म बहुभिर्जन्मसंचयैः।
तथा हि तत्फलं घोरमद्यापि न निवर्तते॥ १६

यताः स्म प्राणिनो हन्तुं श्वगणैः सह साम्प्रतम्।
तथा हि प्राणिनो लोके बाल्यमादौ समास्थिताः॥ १७

अज्ञानावृतचित्ताश्च कृत्याकृत्यं न जानते।
तथा यौवनिनो भ्रान्ता विषयैर्बहुलीकृताः॥ १८

यतन्ते श्रेयसे नैव ततो विषयसंस्थिताः।
विषयाविष्टचित्ता हि मनुष्या न विजानते॥ १९

'जो साक्षात् इन्द्रके छोटे भाई हैं तथा जिनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल हैं, वे श्रीहरि कहाँ मिलेंगे? जिन्हें भक्तजन पुण्डरीकाक्ष (कमलनयन) कहते हैं और ब्रह्मज्ञानी पुरुष ब्रह्म कहते हैं, उन्हीं अजन्मा एवं सर्वव्यापी परम पुरुषका दर्शन करनेके लिये हम उद्यत हुए हैं। प्रलयकालमें ये तीनों लोक जिन जगदीश्वरमें प्रवेश कर जाते हैं, उन अजन्मा विश्वस्रष्टा श्रीहरिका हम इस समय कैसे दर्शन करेंगे। जो समस्त प्राणियोंके निवासस्थान हैं, ये सम्पूर्ण लोक जिनका ही विस्तार (या विराट्रूप) है, उन्हीं सर्वेश्वर देव श्रीहरिका दर्शन करनेके लिये इस समय हमलोग प्रयत्नशील हैं। सम्पूर्ण जन्तु जिससे द्वेष रखते हैं, जो जगत्में सबसे अधिक भयंकर अवस्था है, वही यह पिशाचयोनि न जाने हमें कैसे प्राप्त हुई? और किस प्रकार बलपूर्वक हमारे भीतर प्रविष्ट हो गयी। यह मनुष्य और हड्डियोंको खानेके कारण कलुषित और सबको भय प्रदान करनेवाली है॥ ९—१३॥ अहो! हम दोनोंके पूर्वजन्मकी कर्मराशिमें केवल दुष्कर्मका ही संचय हुआ था, जिससे हमें यह कलङ्कित योनि प्राप्त हुई तो भी हमें इसीमें सदा परम प्रसन्नता बनी रहती है॥ १४॥ जबतक हम दोनोंका दुष्कर्म शेष है, तबतक हमारी उन कर्मोंके अनुरूप ही यह पिशाचावस्था बनी रहेगी, जिससे समस्त प्राणी द्वेष रखते हैं तथा जो दूसरे जीवोंको केवल पीड़ा देनेवाली ही होती है॥ १५॥ निश्चय ही हमलोगोंने बहुत-से जन्मोंमें केवल पापकर्मोंका ही संचय किया है, तभी तो उसका घोर फल आजतक भी निवृत्त नहीं हुआ है॥ १६॥ हम इस समय भी झुंड-के-झुंड कुत्ते साथ लिये प्राणियोंका वध करनेपर तुले हुए हैं। जगत्के प्राणी पहले बाल्यावस्थामें स्थित होते हैं, उस समय उनका चित्त अज्ञानसे आवृत होता है। इस कारण वे कर्तव्य और अकर्तव्यको नहीं जानते हैं। तदनन्तर जब वे युवावस्थामें प्रवेश करते हैं, उस समय विषयोंके आकर्षणसे उनकी बुद्धि भ्रान्त हो जाती है। साथ ही उनके पास विषयोंका संग्रह भी बढ़ जाता है। अतः विषयोंमें रचे-पचे रहकर वे कभी अपने कल्याणके लिये यत्न नहीं करते। जिनका चित्त विषयोंसे आविष्ट हो जाता है, वे मनुष्य यह नहीं समझ पाते कि कल्याणकारी कर्म क्या है?'॥ १७—१९॥

तथा च वृद्धभावे तु व्याधिभिर्बहुभिर्वृताः।
ज्वरादिभिर्महाघोरैर्नानादुःखविधायिभिः॥ २०

यतन्ते न हि वै श्रेयो विनष्टेन्द्रियगोचराः।
ततो मृता गर्भवासे वसन्ति सततं नराः॥ २१

विण्मूत्रकलिले घोरे दुःखैर्बहुभिराचिताः।
च्यवन्ते तु ततो घोराद् गर्भात् संसारमण्डले॥ २२

परस्परं विहिंसन्तः कुर्वन्तः कर्मसंचयम्।
महत्येवं सदा घोरे संसारे दुःखसंकुले॥ २३

पापानि बहुरूपाणि कुर्वतेऽज्ञानतस्तदा।
संसारस्यैष महिमा विस्तृतः सर्वजन्तुषु॥ २४

अच्छेद्यः शस्त्रसम्पातैरुपायैर्बहुभिः सदा।
एतस्मान्न निवर्तन्ते मर्त्याः प्राकृतबुद्धयः॥ २५

इमं हत्वा मनुष्येन्द्रमिदमस्माद्धराम्यहम्।
चोरयित्वा धनमिदं हरिष्याम्याददाम्यहम्॥ २६

निर्भर्त्स्यैनमिमं शान्तं हरिष्यामि धनं बली।
इत्यादिव्याकुला मूर्खा यतन्ते प्राणिपीडनम्॥ २७

अस्यैव दुःखमूलस्य संसारस्य सदा हरिः।
भेषजं सर्वथा देवः शङ्खचक्रगदाधरः।
आदिदेवः पुराणात्मा आत्मा ब्रह्मविदां सदा॥ २८

ते वयं सर्वयत्नेन द्रक्ष्यामः सर्वथा हरिम्।
इत्थं पिशाचौ भाषन्तौ प्रादुरास्तां हरेः पुरः॥ २९

'तत्पश्चात् जब वृद्धावस्था आती है, तब वे बहुत-सी व्याधियोंद्वारा घिर जाते हैं। नाना प्रकारके दुःख देनेवाले भयंकर ज्वर आदि रोग उन्हें धर दबाते हैं। फिर इधर-उधर भटकनेवाली इन्द्रियोंके वशीभूत होकर वे अपने कल्याणके लिये यत्न नहीं कर पाते॥ २०॥ तदनन्तर मृत्यु हो जानेपर वे जीव गर्भवासमें आते हैं और विष्ठा एवं मूत्रकी कीचसे भरे हुए घोर गर्भाशयमें अनेक प्रकारके दुःखोंसे आक्रान्त होकर निरन्तर निवास करते हैं। इसके बाद वे उस घोर गर्भसे च्युत होकर पुनः संसारचक्रमें पड़ जाते हैं। यहाँ भी वे एक-दूसरेकी हिंसा करते हुए पापकर्मोंके ही संचयमें लगे रहते हैं। इस प्रकार दुःखोंसे भरे हुए महाघोर संसारमें वे अज्ञानवश सदा नाना प्रकारके पापकर्म ही किया करते हैं। संसारकी यह महत्ता (बन्धनकारी प्रभाव) सभी प्राणियोंमें विस्तारपूर्वक व्याप्त है। शस्त्रोंके प्रहारसे तथा और भी बहुत-से लौकिक उपायोंद्वारा इस संसारका उच्छेद नहीं किया जा सकता। ओछी बुद्धिवाले (देहात्मवादी) मनुष्य इस संसारसे विरक्त नहीं होते हैं॥ २१—२५॥ वे सोचते हैं कि 'मैं इस नरेशका वध करके इससे यह धन हर लूँगा, इस धनको चुराकर घर ले जाऊँगा और उसे उपभोगमें लाऊँगा। यह शान्त और दुर्बल है और मैं बलवान् हूँ। मैं इसे डाँट-फटकारकर इसका धन हर लूँगा।' इन्हीं चिन्ताओंमें व्यग्र हुए मूर्ख मनुष्य दूसरे प्राणियोंको पीड़ा देनेका प्रयत्न करते रहते हैं॥ २६-२७॥ दुःखके मूल-कारण इस संसाररूपी रोगको सदाके लिये सब प्रकारसे मिटानेके निमित्त एकमात्र उत्तम ओषधि शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले, आदिदेव, पुराणपुरुष तथा ब्रह्मवेत्ताओंके आत्मा भगवान् श्रीहरि ही हैं॥ २८॥ 'अतः हमलोग सर्वथा सम्पूर्ण प्रयत्न करके श्रीहरिका दर्शन करेंगे।' इस प्रकारकी बातें करते हुए वे दोनों पिशाच भगवान् श्रीकृष्णके सामने प्रकट हुए॥ २९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायामेकोनाशीतितमोऽध्यायः॥ ७९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्णका कैलासयात्राविषयक उन्नासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७९॥

अशीतितमोऽध्यायः

घण्टाकर्ण और भगवान् श्रीकृष्णका एक-दूसरेको अपना परिचय देना तथा घण्टाकर्णद्वारा भगवान् विष्णुका स्तवन एवं समाधि-लाभ

वैशम्पायन उवाच

ततः स भगवान्विष्णुः पिशाचौ मांसभक्षकौ।
ददर्शाथ महाघोरौ दीपिकाधारिणौ हरिः॥ १

विलोकयाञ्चक्रतुस्तौ पिशाचौ देवकीसुतम्।
स्थितं सुखासने विष्णुं दृष्ट्वा लोकेश्वरेश्वरम्॥ २

तौ च गत्वा समुद्देशं पिशाचौ केशवस्य ह।
ततस्तावूचतुर्विष्णुमन्तरीकृत्य केशवम्॥ ३

को भवान्कस्य वा मर्त्य कुतश्चागम्यते त्वया।
किमर्थमिह सम्प्राप्तो वने घोरे मृगाकुले॥ ४

निर्मनुष्ये द्वीपिवृते पिशाचगणसेविते।
श्वापदैः सेव्यमाने च विपिने व्याघ्रसंकुले॥ ५

सुकुमारोऽनवद्याङ्गः साक्षाद् विष्णुरिवापरः।
पद्मपत्रेक्षणः श्यामः पद्माभः श्रीपतिः स्वयम्॥ ६

अस्मत्प्रीतिकरः साक्षात् प्राप्तो विष्णुरिवापरः।
देवो वा यदि वा यक्षो गन्धर्वः किन्नरोऽपि वा॥ ७

इन्द्रो वा धनदो वापि यमोऽथ वरुणोऽपि वा।
एकाकी विपिने घोरे ध्यानार्पितमना इव॥ ८

ब्रूहि मर्त्य यथातत्त्वं ज्ञातुमिच्छामि मानद।
एवं पृष्टः पिशाचाभ्यामाह विष्णुरुरुक्रमः॥ ९

क्षत्रियोऽस्मीति मामाहुर्मनुष्याः प्रकृतिस्थिताः।
यदुवंशे समुत्पन्नः क्षात्रं वृत्तमनुष्ठितः॥ १०

लोकानामथ पातास्मि शास्ता दुष्टस्य सर्वदा।
कैलासं गन्तुकामोऽस्मि द्रष्टुं देवमुमापतिम्॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर उन भगवान् श्रीकृष्णने उन दोनों महाभयंकर मांसभक्षी पिशाचोंकी ओर देखा, जो हाथमें विशाल मशाल लिये वहाँ आये हुए थे॥ १॥ उन दोनों पिशाचोंने भी सुखपूर्वक आसनपर बैठे हुए लोकेश्वरोंके भी ईश्वर देवकीनन्दन श्रीकृष्णको देखा। उन्हें देखकर वे दोनों पिशाच उन केशवके निकट गये और उन्हें अपने बीचमें करके उनसे इस प्रकार बोले—॥ २-३॥ 'मानवप्रवर! आप कौन हैं? किसके पुत्र हैं? कहाँसे आपका यहाँ शुभागमन हुआ है? वन्यपशुओंसे भरे हुए इस घोर वनमें आप किसलिये आये हैं?॥ ४॥ यह वन मनुष्योंसे रहित, चीतोंसे आवृत, पिशाचोंसे सेवित, हिंसक जन्तुओंका निवासस्थान तथा व्याघ्रोंसे भरा हुआ है (इसमें आप क्यों आये?)॥ ५॥ आप बड़े सुकुमार प्रतीत होते हैं। आपका प्रत्येक अङ्ग अनिन्द्य सौन्दर्यसे सम्पन्न है। आप साक्षात् दूसरे विष्णुके समान जान पड़ते हैं। आपके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके सदृश सुन्दर एवं विशाल हैं। आपकी अङ्गकान्ति श्याम है। आप नीलकमलके समान प्रकाशित होते हैं और साक्षात् श्रीपति-से प्रतीत होते हैं॥ ६॥ मानो हमें प्रसन्नता प्रदान करनेवाले साक्षात् भगवान् विष्णु दूसरा रूप धारण करके आपके रूपमें यहाँ पधारे हैं। आप देवता हैं या यक्ष, गन्धर्व हैं या किन्नर? इन्द्र हैं या कुबेर? अथवा यम हैं या वरुण? जो इस भयंकर वनमें मनको ध्यानस्थ-सा करके अकेले बैठे हैं॥ ७-८॥ दूसरोंको मान देनेवाले मानव! आप ठीक-ठीक बताइये, मैं यथार्थरूपसे आपका परिचय जानना चाहता हूँ।' उन दोनों पिशाचोंके इस प्रकार पूछनेपर महान् डगवाले भगवान् विष्णु बोले—'मैं क्षत्रिय हूँ। प्राकृत मनुष्य मुझे ऐसा ही कहते और जानते हैं। यदुकुलमें उत्पन्न हुआ हूँ, इसीलिये क्षत्रियोचित कर्मका अनुष्ठान करता हूँ॥ ९-१०॥ मैं तीनों लोकोंका पालक तथा सदा ही दुष्टोंपर शासन करनेवाला हूँ। इस समय भगवान् उमापति देवका दर्शन करनेके लिये कैलासपर्वतपर जाना चाहता हूँ'॥ ११॥

इत्येवं मम वृत्तान्तः कथ्यतां कौ युवामिति।
युवामिह समायातौ किमर्थं ब्राह्मणाश्रमम्॥ १२

एषा हि महती पुण्या नानाविप्रनिषेविता।
बदरीयं समाख्याता न क्षुद्रैराश्रिता क्वचित्॥ १३

तपस्विभिस्तपोयुक्तैर्जुष्टा सिद्धनिषेविता।
श्वगणा नात्र दृश्यन्ते पिशाचा मांसभोजनाः॥ १४

न हन्तव्या मृगाश्चात्र मृगया नात्र वर्तते।
न तु क्षुद्रैः प्रवेष्टव्या न कृतघ्नैर्न नास्तिकैः॥ १५

अहमस्य तु देशस्य रक्षिता नात्र संशयः।
व्यतिक्रमो यदि भवेत् तस्य शास्तास्मि यत्नतः॥ १६

कौ भवन्तौ क्व नु युवां कस्येयं महती चमूः।
नातः परं प्रवेष्टव्यमृषयस्त्वत्र संस्थिताः॥ १७

विघ्नस्तत्र प्रवर्तेत तपःसु च तपस्विनाम्।
इहैव स्थीयतां तावद् वक्तव्यं च ततः सुखम्॥ १८
अन्यथाहं निषेद्धा स्यां बलाद्वाक्यैस्तथैव च।

वैशम्पायन उवाच

एवं पृष्टौ पिशाचौ तु वक्तुमेवोपचक्रतुः॥ १९
तयोरेको महाघोरः पिशाचो दीर्घबाहुकः।
उवाच वचनं तत्र यथा हृदि समर्पितम्॥ २०

पिशाच उवाच

श्रूयतामभिधास्यामि समाहितमना भव।
नमस्कृत्य जगन्नाथं हरिं कृष्णं जगत्पतिम्॥ २१

आदिदेवमजं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम्।
वक्ष्यामि सकलं यद्वत् तथा शृणु यदीच्छसि॥ २२

घण्टाकर्णोऽस्मि नाम्नाहं पिशाचो घोरदर्शनः।
मांसादो विकृतो घोरः साक्षान्मृत्युरिवापरः॥ २३

धनदस्यानुगन्ताहं साक्षाद् रुद्रसखस्य च।
ममायमनुजः साक्षादन्तकस्यान्तको ह्ययम्॥ २४

'यही मेरा वृत्तान्त है, अब अपना परिचय दो, तुम दोनों कौन हो? यह तो ब्राह्मणका आश्रम है, यहाँ तुम किस लिये आये हो?॥ १२॥ यह महान् पुण्यमय स्थान है, इसे बदरी कहते हैं। बहुत-से ब्राह्मण यहाँ वास करते हैं, क्षुद्र स्वभाववाले दुष्टोंने कभी इस भूमिमें स्थान नहीं पाया है। सिद्ध पुरुषोंने सदा इसका सेवन किया है, तपस्यामें लगे हुए तपस्वी यहाँ सब ओर निवास करते हैं। यहाँ आजकी तरह झुंड-के-झुंड कुत्ते कभी नहीं देखे गये और न कभी मांसभक्षी पिशाचोंका ही दर्शन हुआ॥ १३-१४॥ यहाँ मृगोंको नहीं मारना चाहिये, क्योंकि यहाँ कभी मृगया नहीं होती है। जो क्षुद्रस्वभाववाले कृतघ्न और नास्तिक मनुष्य हैं, उन्हें इस तीर्थमें कदापि प्रवेश नहीं करना चाहिये॥ १५॥ मैं इस देशका रक्षक हूँ, इसमें संशय नहीं है। यदि किसीके द्वारा मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन हुआ तो मैं यत्नपूर्वक उसका शासन करूँगा॥ १६॥ तुम दोनों कौन हो? कहाँ रहते हो? यह विशाल सेना किसकी है? इससे आगे इस वनमें प्रवेश नहीं करना चाहिये, क्योंकि यहाँ ऋषि रहते हैं। उन तपस्वी ऋषियोंकी तपस्यामें विघ्न पड़ सकता है। सब लोग यहीं ठहर जायँ और सुखपूर्वक बातें करें, अन्यथा मैं वाणीद्वारा तथा बलद्वारा भी रोकूँगा'॥ १७-१८½॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार पूछे जानेपर उन दोनों पिशाचोंने उनके प्रश्नका उत्तर देना आरम्भ किया। उन दोनोंमेंसे एक पिशाच बड़ा भयंकर और विशाल भुजाओंसे युक्त था। उसके हृदयमें जैसी बात थी, उसीको वहाँ सुनाने लगा॥ १९-२०॥

पिशाच बोला—अच्छा! बताता हूँ, सुनिये और अपने चित्तको एकाग्र कर लीजिये। मैं पहले आदिदेव, अजन्मा, सर्वश्रेष्ठ, निष्पाप, पवित्र, पापहारी, जगदीश्वर, विश्वपालक, सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् विष्णुको नमस्कार करके अपना सारा वृतान्त आपको ठीक-ठीक बताऊँगा, यदि आप सुनना चाहते हों तो सुनिये॥ २१-२२॥ मैं घण्टाकर्ण नामसे प्रसिद्ध पिशाच हूँ, मेरी दृष्टि बड़ी भयंकर है। मैं मांसभक्षी, विकृताङ्ग, घोर तथा साक्षात् दूसरे कालके समान प्राणियोंका हिंसक हूँ॥ २३॥ भगवान् शङ्करके सखा साक्षात् कुबेरका मैं अनुचर हूँ। यह मेरा सगा छोटा भाई है, जो कालका भी काल है॥ २४॥

मृगयेयं सुमहती विष्णोः पूजार्थमित्युत।
ममेयं वर्तते सेना श्वगणोऽपि ममैव तु॥ २५

आगतोऽहं महाशैलात् कैलासाद् भूतसेवितात्।
अहं पिशाचवेषेण संविष्टः पापकर्मकृत्॥ २६

सततं दूषयन् विष्णुं घण्टामाबध्य कर्णयोः।
मम न प्रविशेन्नाम विष्णोरिति विचिन्तयन्॥ २७

अहं कैलासनिलयमासाद्य वृषभध्वजम्।
आराध्य तं महादेवमस्तुवं सततं शिवम्॥ २८

ततः प्रसन्नो मामाह वृणीश्वेति वरं हरः।
ततो मुक्तिर्मया तत्र प्रार्थिता देवसंनिधौ॥ २९

मुक्तिं प्रार्थयमानं मां पुनराह त्रिलोचनः।
मुक्तिप्रदाता सर्वेषां विष्णुरेव न संशयः॥ ३०

तस्माद् गत्वा च बदरीं तत्राराध्य जनार्दनम्।
मुक्तिं प्राप्नुहि गोविन्दान्नरनारायाणश्रमे॥ ३१

इत्युक्तो देवदेवेन शूलिना ज्ञातवानहम्।
तमेव परमं मत्वा गोविन्दं गरुडध्वजम्॥ ३२

तस्मात् प्रार्थयमानः सन्मुक्तिं देशममुं गतः।
अन्यच्च शृणु मे कार्यं यदि कौतूहलं तव॥ ३३

पुरी द्वारवती नाम पश्चिमस्योदधेस्तटे।
यदुवृष्णिसमाकीर्णां सागरोर्मिसमाकुलाम्॥ ३४

अध्यास्ते स हरिर्विष्णुस्तां पुरीं पुरुषोत्तमः।
द्रष्टुं लोकहितार्थाय वसन्तं द्वारकापुरे॥ ३५

निर्गतः साम्प्रतं मर्त्य वयमेतैः सहानुगैः।
विष्णुः सर्वेश्वरः साक्षाद् द्रष्टव्योऽस्माभिरद्य वै॥ ३६

लोकानां प्रभवः पाता कर्ता हर्ता जगत्पतिः।
आदिः स हि समस्तस्य प्रभवः कारणं हरिः॥ ३७

कर्ता समस्तस्य हरिः पुरातनः
प्रभुः प्रभूणामपि यः सदात्मकः।
तमादिदेवं वरदं वरेण्यं
द्रष्टुं हरिं सम्प्रति संयताः स्मः॥ ३८

यह जो बड़ा भारी शिकार खेला जा रहा है, इसका उद्देश्य है भगवान् विष्णुकी पूजा। यह सेना मेरी है और यह कुत्तोंको झुंड भी मेरा ही है॥ २५॥ मैं भूतोंसे सेवित महापर्वत कैलाससे यहाँ आया हूँ, पिशाचवेषसे घिरा हुआ पापकर्मी हूँ॥ २६॥ पहले मैं सदा विष्णुकी निन्दा करता था और कानोंमें घण्टा बाँधकर घूमता था कि कहीं मेरे इन कर्णकुहरोंमें विष्णुका नाम न प्रविष्ट हो जाय, मुझे सदा इसीकी चिन्ता बनी रहती थी॥ २७॥ एक दिन कैलासवासी भगवान् शङ्करके पास पहुँचकर मैंने महादेव शिवकी आराधना की और तभीसे मैं निरन्तर उनके स्तवनमें लगा रहा॥ २८॥ इससे प्रसन्न हो भगवान् शङ्करने मुझसे कहा—'तुम कोई वर माँगो।' तब मैंने महादेवजीके समीप मुक्तिके लिये प्रार्थना की॥ २९॥ मुक्तिके लिये प्रार्थना करते देख भगवान् त्रिलोचन फिर मुझसे बोले—'सबके लिये मुक्ति प्रदान करनेवाले तो केवल भगवान् विष्णु ही हैं। इसमें संशय नहीं है॥ ३०॥ अतः तुम बदरीतीर्थमें जाकर वहाँ नर-नारायणके आश्रममें श्रीजनार्दनकी आराधना करके उन्हीं गोविन्ददेवसे मोक्ष प्राप्त करो'॥ ३१॥ देवाधिदेव शूलधारी शिवके ऐसा कहनेपर मैंने गरुडध्वज गोविन्दके महत्त्वको समझा और उन्हींको सबसे श्रेष्ठ मानकर उनसे अपनी मुक्तिके लिये प्रार्थना करनेके उद्देश्यसे मैं इस देशमें आया हूँ। यदि तुम्हें कौतूहल हो तो मेरे दूसरे कार्यको भी सुनो। पश्चिम समुद्रके तटपर द्वारवती नामसे प्रसिद्ध एक पुरी है, जिसमें यदु एवं वृष्णिवंशके लोग रहते हैं। वह पुरी समुद्रकी लहरोंसे व्याप्त है। उसीमें इस समय पुरुषोत्तम भगवान् श्रीहरि निवास करते हैं। मर्त्य! लोकहितके लिये द्वारकापुरीमें निवास करनेवाले उन भगवान्का दर्शन करनेके उद्देश्यसे हम इन अनुचरोंके साथ इस समय निकले हैं। आज हमें साक्षात् सर्वेश्वर श्रीविष्णुका दर्शन करना है॥ ३२—३६॥ वे श्रीहरि ही सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्तिके कारण, पालक, कर्ता, हर्ता, जगदीश्वर, सबके आदिपुरुष, उद्गमस्थान और बीज हैं॥ ३७॥ जो श्रीहरि समस्त जगत्के कर्ता, पुराणपुरुष, प्रभुओंके भी प्रभु और सत्स्वरूप हैं, उन आदिदेव, वरदायक एवं वरेण्य भगवान् विष्णुका दर्शन करनेके लिये इस समय हम सब लोग उद्यत हैं॥ ३८॥

यस्य प्रसादाज्जगदेवमासीत्
सप्राणिगन्धर्वमहोरगौघम् ।
देवं जगद्योनिमजं जनार्दनं
द्रष्टुं हरिं सम्प्रति संयताः स्मः ॥ ३९

यस्योदराद् विश्वमिदं प्रभूतं
लयं च तस्मिन् समुपैति कल्पे।
तस्यैव साक्षाद् वशवर्ति विश्वं
द्रक्ष्याम देवं पुरुषोत्तमं हरिम् ॥ ४०

स्रष्टा च योऽसौ सकलस्य देवः
पाता च हर्ता च हरिः स एव।
द्रक्ष्याम नित्यं भुवनेश्वरं हरिं
पुराणमाद्यं प्रभविष्णुमव्ययम् ॥ ४१

अजस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता
भुवश्च कर्ता हरिरेक एव।
तं योगिनो योगविशुद्धबुद्धिं
लभेम तेनैव मतिः समाकुला ॥ ४२

निगीर्य विश्वं सकलं जगत्पतिः
शेते शिशुत्वं समवाप्य साक्षात्।
वटस्य पत्रे जगतां निवासः
पादौ च विक्षिप्य करौ विधुन्वन् ॥ ४३

यस्योदरे देवमुनिः पुरातनो
ददर्श लोकानखिलान् स मायया।
प्रविश्य विश्वं सकलं यथावद्
बहिर्यथाभूतमभूदिदं महत् ॥ ४४

निगीर्य विश्वं जगदादिकाले
शेते महात्मा जलधेर्जलौघे।
देव्या श्रिया चामरलोलहस्तया
निषेव्यमाणः पुरुषोत्तमस्तदा ॥ ४५

नाभेश्च यस्याविरभूत् सपत्रं
पद्मं महत्काञ्चनसप्रभं प्रभोः।
जन्मास्पदं लोकगुरोर्यदासी-
द्विस्तारि पद्मं जगदादिसृष्टौ ॥ ४६

जिनके कृपा-प्रसादसे प्राणियों, गन्धर्वों और बड़े-बड़े नागोंके समुदायसे युक्त यह जगत् इस रूपमें प्रकट हुआ था, उन जगत्की उत्पत्तिके कारणभूत अजन्मा देव जनार्दन हरिका दर्शन करनेके लिये इस समय हम सब लोग उद्यत हैं ॥ ३९ ॥ कल्पके आरम्भमें जिनके उदरसे यह विश्व प्रकट होता है और कल्पके अन्तमें पुनः उसीमें लीन हो जाता है। स्थितिकालमें भी यह सारा विश्व जिन साक्षात् श्रीहरिके ही अधीन रहता है, उन पुरुषोत्तमदेव श्रीहरिका हम दर्शन करेंगे ॥ ४० ॥ जो विष्णुदेव इस सम्पूर्ण जगत्के स्रष्टा हैं तथा जो श्रीहरि ही इसका पालन और संहार करनेवाले भी हैं, उन आदिपुरुष, पुरातन देवता, प्रभावशाली, अविनाशी, नित्यस्वरूप, भुवनेश्वर श्रीहरिका हम नित्य दर्शन करेंगे ॥ ४१ ॥ वे एकमात्र श्रीहरि ही अजन्मा ब्रह्माजीके भी उत्पादक, जगत्के रक्षक और भूतलके निर्माता हैं। योगसे विशुद्ध बुद्धिवाले उन परमेश्वरको हमलोग ध्यान-योगकी साधना करके प्राप्त करेंगे। हमारी चित्तवृत्ति उन्हींसे व्याप्त है ॥ ४२ ॥ जगत्के पालक और तीनों लोकोंके निवासस्थान श्रीहरि प्रलयकालमें सम्पूर्ण विश्वको अपने भीतर निगलकर साक्षात् शिशुभावको प्राप्त हो अक्षयवटके पत्रपर दोनों पैर फेंकते और हाथ हिलाते हुए शयन करते हैं ॥ ४३ ॥ जिनके उदरमें प्रवेश करके पुरातन देवर्षि मार्कण्डेयमुनिने उन्हींकी मायासे इन सम्पूर्ण लोकोंका दर्शन किया था। उस समय वहाँ यह सारा महान् विश्व यथावत् रूपसे उसी प्रकार स्थित था, जैसा कि पहले उनके उदरसे बाहर अनुभवमें आया था ॥ ४४ ॥ पूर्वकालमें इस सम्पूर्ण जगत्को अपने भीतर लीन करके वे महात्मा पुरुषोत्तम एकार्णवके जलप्रवाहमें शयन करते थे और देवी लक्ष्मी हाथसे चँवर डुलाती हुई उनकी सेवा कर रही थीं ॥ ४५ ॥ जगत्की सृष्टिके प्रारम्भकालमें जिन भगवान्की नाभिसे सुवर्णके समान कान्तिमान् एक विशाल कमल प्रकट हुआ, जो अपने दलोंके साथ सुशोभित होता था। वह विस्तृत कमल ही लोकगुरु ब्रह्माजीका जन्मस्थान था ॥ ४६ ॥

दधार यो भूतपतिर्महान्महीं
दंष्ट्राग्रसंस्थापितरूढमूलाम् ।
नादं महामेघ इवादिकाले
कुर्वन् वराहो मुनिगीतमूर्तिः ॥ ४७

हरिः पुराणः पुरुषोत्तमः प्रभुः
कर्ता समस्तस्य समस्तसाक्षी।
यज्ञात्मको यज्ञपतिर्जगत्पति-
र्द्रष्टुं तमीशं वयमुद्यताः स्मः ॥ ४८

केचिद् बहुत्वेन वदन्ति देव-
मेकात्मना केचिदिमं पुराणम्।
वेदान्तसंस्थापितसत्त्वयुक्तं
द्रष्टुं तमीशं वयमुद्यताः स्मः ॥ ४९

अनेकमेके बहुधा वदन्ति
श्रुतिस्मृतिन्यायनिविष्टचित्ताः ।
आहुर्यमात्मानमजं पुराविदो
द्रष्टुं तमीशं वयमुद्यताः स्मः ॥ ५०

यं प्राहुरीड्यं वरदं वरेण्य-
मेकान्ततत्त्वं मुनयः पुरातनाः।
यं सर्वगं देवमजं जनार्दनं
द्रष्टुं हरिं सम्प्रति संयताः स्मः ॥ ५१

यस्मिन् विश्वमिदं प्रोतमादिकाले जगत्पतौ।
तं द्रष्टुमभिसंवृत्ताः किं नु वक्ष्याम साम्प्रतम् ॥ ५२

गच्छामो वयमन्यत्र गच्छ त्वं काममन्यतः।
नियमोऽप्यस्ति नो मर्त्य यथेष्टं गच्छ साम्प्रतम् ॥ ५३

रात्रिमध्यमनुप्राप्तं नात्र कार्या विचारणा।
इत्युक्त्वा घोररूपोऽसौ पिशाचो विकृताननः ॥ ५४

तस्मिन्नेव समे देशे पीत्वा च रुधिरं बहु।
भक्षयित्वा यथाकामं मांसराशिं विचक्षणः ॥ ५५

अपःसंस्पृश्य तत्रैव पार्श्वे संस्थाप्य साधनम्।
अन्त्रपाशं महाघोरं संस्थाप्य विपुलं महत् ॥ ५६

आसनं कुशसंयुक्तं कृत्वा चाभ्युक्ष्य वारिणा।
उत्सार्य श्वगणान् सर्वान् यत्नेन महता तदा ॥ ५७

जिन महान् भूतनाथ विष्णुने आदिकालमें मुनियोंद्वारा प्रशंसित विग्रहवाले वराहरूप होकर महान् मेघके समान गर्जना करते हुए अपनी दाढ़के अग्रभागपर पृथ्वीके मूल भागको स्थापित करके उसे जलसे ऊपर उठाया था, जो पुराण-पुरुषोत्तम प्रभु श्रीहरि समस्त जगत्के कर्ता, साक्षी, यज्ञरूप एवं यज्ञके अधिपति हैं और समस्त जगत्का पालन करते हैं, उन्हीं परमेश्वरका दर्शन करनेके लिये हम उद्यत हुए हैं ॥ ४७-४८ ॥ कोई आराधक उन विष्णुदेवका इन्द्र आदि अनेक देवताओंके रूपमें वर्णन करते हैं और कोई उपासक इन पुराण-पुरुषका एक रूपमें ही चिन्तन करते हैं। वेदान्तशास्त्रमें प्रतिपादित विशुद्ध अद्वैत सत्तासे युक्त उन परमेश्वरका दर्शन करनेके लिये हमलोग उद्यत हुए हैं ॥ ४९ ॥ एक श्रेणीके विद्वान् श्रुति-स्मृति और न्यायमें अपने चित्तको लगाये रखकर जिन परमेश्वरका अनेक रूपोंमें अनेक प्रकारसे वर्णन करते हैं तथा पुराणवेत्ता पुरुष जिन्हें सबका आत्मा और अजन्मा बताते हैं, उन्हीं सर्वेश्वरका दर्शन करनेके लिये हम उद्यत हुए हैं ॥ ५० ॥ जिन्हें प्राचीन मुनि स्तुति करनेके योग्य, वरदायक, वरेण्य और परमतत्त्वरूप बताते हैं। साथ ही जिन्हें सर्वव्यापी और अजन्मा कहते हैं, उन्हीं जनार्दनदेव श्रीहरिका दर्शन करनेके लिये हमलोग इस समय उद्यत हुए हैं ॥ ५१ ॥ आदिकालमें जिन सूत्रस्वरूप जगदीश्वरमें यह सम्पूर्ण जगत् मनकेकी भाँति पिरोया गया था, उन्हीं भगवान् विष्णुका दर्शन करनेके लिये हम उद्यत हुए हैं। अब इस समय और क्या कहें ? ॥ ५२ ॥ मर्त्य! अब हम अन्यत्र जाते हैं। तुम भी इच्छानुसार और कहीं जा सकते हो। हमारे नित्य नियमका भी समय आ गया है; क्योंकि आधी रात हो गयी, अतः इस समय तुम इच्छानुसार जहाँ चाहो, चले जाओ। इस विषयमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। ऐसा कहकर उस विकराल मुखवाले घोररूपधारी विचक्षण पिशाचने उसी समतल प्रदेशमें बहुत-सा रक्त पीकर इच्छानुसार मांस-राशिका भक्षण किया। तत्पश्चात् जलका आचमन करके वहीं पार्श्वभागमें अपनी साधनसामग्री रख दी और अँतड़ियोंका महाभयंकर विशाल पाश भी वहीं बगलमें डाल दिया। इसके बाद कुशयुक्त आसन बिछाकर उसकी शुद्धिके लिये जल छिड़का और अपने सभी कुत्तोंको बड़े प्रयत्नसे दूर हटाया।

सुखासनं समास्थाय समाधौ यतते श्वपः।
एकचित्तस्तदा भूत्वा नमस्कृत्य च केशवम्।
इमं मन्त्रं पठन् घोरः पिशाचो भक्तवत्सलम्॥ ५८

नमो भगवते तस्मै वासुदेवाय चक्रिणे।
नमस्ते गदिने तुभ्यं वासुदेवाय धीमते॥ ५९

ॐ नमो नारायणाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
मम भूयान्मनःशुद्धिः कीर्तनात् तव केशव॥ ६०

जन्मेदमीदृशं घोरं मा भून्मम दुरासदम्।
देवदूतो भविष्यामि स्मरणात् तव गोपते॥ ६१

तव चक्रप्रहारेण कायो नश्यतु मामकः।
मम भूयो भवो मा भूदेषा मे प्रार्थना विभो॥ ६२

अर्थिनां कल्पवृक्षोऽसि दाता सर्वस्य सर्वदा।
यत्र यत्र भवेज्जन्म तत्र तत्र भवान् हृदि॥ ६३

वर्ततां मम देवेश प्रार्थनैषा ममापरा।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं भवत्वेवं सदा मम॥ ६४

निर्विघ्ना प्रार्थना देव नमस्तेऽस्तु सदा मम।
यदा मे मरणं भूयात् तदा मा भूत् स्मृतिभ्रमः॥ ६५

दिने दिने क्षणं चित्तं त्वयि संस्थं भवत्विति।
एवं प्रेरय मां देव मा भूत् ते चित्तमीदृशम्॥ ६६

नृशंसोऽयं पिशाचोऽयं दयास्मिन् का भवेदिति।
एवं चिन्तय मां देव भृत्यो मह्यमिति प्रभो॥ ६७

परपीडा न मत्तोऽस्तु नमस्ते भगवन् प्रभो।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु मा भूवन् साम्प्रतं हि मे॥ ६८

अन्तकाले ममाप्येवं प्रसादात् तव केशव।
पृथिवी यातु मे घ्राणं रसनां यातु मे पयः॥ ६९

सूर्यश्च यातु मे चक्षुः स्पर्शं यातु च मारुतः।
श्रोत्रमाकाशमप्येतु मनः प्राणं च गच्छतु॥ ७०

जलं मां रक्षतां नित्यं पृथिवी रक्षतां हरे।
सूर्यो मां रक्षतां विष्णो नमस्ते सूर्यतेजसे॥ ७१

वायुर्मां रक्षतां दुःखादाकाशं च जनार्दन।
न मनः सर्वगं देव रक्षतां विषयान्तरे॥ ७२

तदनन्तर सुखासनपर बैठकर वह कुत्तापालक पिशाच समाधिके लिये यत्न करने लगा। उस समय वह भयानक पिशाच एकचित्त हो भक्तवत्सल भगवान् केशवको नमस्कार करके इस मन्त्रमय स्तोत्रका पाठ करने लगा—॥ ५३—५८॥ 'उन चक्रधारी भगवान् वासुदेवको नमस्कार है, सबके भीतर निवास करनेवाले देवता आप बुद्धिमान् गदाधरको नमस्कार है॥ ५९॥ प्रभावशाली, सर्वव्यापी, सच्चिदानन्दघन नारायणदेवको नमस्कार है। केशव! आपके कीर्तनसे मेरे मनकी शुद्धि हो जाय॥ ६०॥ इन्द्रियोंके नियन्ता नारायण! अब पुनः मुझे ऐसा दुःखप्रद भयङ्कर जन्म न प्राप्त हो। मैं आपके स्मरणसे देवदूत हो जाऊँ॥ ६१॥ प्रभो! आपके चक्रके प्रहारसे मेरा यह शरीर नष्ट हो जाय और फिर मुझे यह संसारबन्धन प्राप्त न हो, यही मेरी प्रार्थना है॥ ६२॥ आप याचकोंके लिये कल्पवृक्ष हैं। सदा सबके दाता हैं। देवेश्वर! जहाँ-जहाँ मेरा जन्म हो, वहाँ-वहाँ आप मेरे हृदयमें विराजमान रहें। यह मेरी दूसरी प्रार्थना है। देव! आपको नमस्कार है! देव! आपको नमस्कार है!! इस प्रकार मेरी प्रार्थना सदा निर्विघ्न चलती रहे। देव! आपको सदा ही मेरा नमस्कार है। जब मेरा मरणकाल उपस्थित हो, उस समय मेरी स्मरणशक्तिमें भ्रम न उत्पन्न हो (मैं उस समय भी आपका ही स्मरण करता रहूँ)। देव! प्रतिदिन और प्रतिक्षण मेरा चित्त आपमें ही स्थिर रहे। आप मुझे ऐसी ही प्रेरणा देते रहें। आपके चित्तमें कभी ऐसा भाव न आये कि 'यह क्रूर है, पिशाच है। इसपर क्या दया हो सकती है?' प्रभो! देव! आप तो ऐसा ही विचार करें कि 'यह बेचारा मेरा सेवक है।' भगवन्! प्रभो! आपको नमस्कार है। आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरे द्वारा दूसरोंको पीड़ा न पहुँचे तथा अब मेरी इन्द्रियाँ विषयोंमें न फँसें॥ ६३—६८॥ केशव! अन्तकालमें आपकी कृपासे मेरी भी ऐसी स्थिति हो—पृथिवी मेरी घ्राणेन्द्रियको ग्रहण करे, जल मेरी रसनेन्द्रियको अपना ले, सूर्य मेरी नेत्रेन्द्रियको तथा वायु मेरी त्वचा अपनेमें संयुक्त कर ले। इसी तरह आकाश भी मेरी श्रवणेन्द्रियको अपनेमें मिला ले तथा प्राण (चन्द्रमा) मेरे मनसे संयुक्त हो॥ ६९-७०॥ हरे! जल सदा मेरी रक्षा करे। पृथिवी भी रक्षा करे। विष्णो! सूर्यदेव मेरी रक्षा करें। आप सूर्यके समान तेजस्वी हैं, आपको नमस्कार है॥ ७१॥ 'जनार्दन! वायु और आकाश दुःखसे मेरी रक्षा करें। देव! सर्वस्वरूप परमात्माके चिन्तनमें लगा हुआ मेरा मन विषय और भेद-बुद्धिकी रक्षा न करे (अर्थात्) वह न तो विषयपरायण हो, न भेद-बुद्धिको ही अपनाये॥ ७२॥

मनो विपर्यये घोरे पुरुषान् हन्ति नित्यशः।
पापेषु योजयेत् पुंसः परपीडात्मकेषु च॥ ७३

मनस्तद् रक्षतां देव भूयो भूयो जनार्दन।
मा भून्मनसि कालुष्यं मनो मे निर्मलं भवेत्॥ ७४

कलुषं तस्य यच्चित्तं नरके पातयत्यमुम्।
बाह्यानि निर्मलान्येवमिन्द्रियाणि भवन्त्युत॥ ७५

न तानि कार्यवन्तीह मनश्चेत् कलुषं भवेत्।
नाङ्गानां मुष्टिनामेध्यं गृहीत्वा यो व्यवस्थितः॥ ७६

बहिः प्रक्षालनं कुर्वन् किं भवेत् तस्य केशव।
व्यर्थो हि केवलं तस्य प्रग्रहो बाह्यगोचरः॥ ७७

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन चित्तं रक्ष जनार्दन।
बलवानिन्द्रियग्रामो वारयैनं जनार्दन॥ ७८

परीवादाज्जगन्नाथ वाचं रक्ष दुरुद्वहाम्।
परद्रव्यान्मनो रक्ष परदाराज्जनार्दन।
सर्वत्र मे दया भूयात् प्रसादात् तव केशव॥ ७९

त्वय्येव भक्तिरचला भूयाद् भूतेषु मे दया।
बहुनात्र किमुक्तेन शृणुष्वेदं वचो मम॥ ८०

सुखे दुःखे च रागे च भोजने गमने तथा।
जाग्रत्स्वप्नेषु सर्वत्र त्वय्येव रमतां मनः॥ ८१

मामकं देवदेवेश नमस्तेऽस्तु जनार्दन।
इति ब्रुवन् घोरतमो जात्या हीनो न चित्ततः॥ ८२

पिशाचो भगवद्भक्तः समाधिं समपद्यत।
दृढं बद्ध्वाऽऽत्मनः कायमान्त्रपाशेनमांसपः॥ ८३

निश्चलेनैव मनसा सुखमास्ते स्म संयतः।
ध्यायन् हरिं जगद्योनिं विष्णुं पीताम्बरं शिवम्॥ ८४

मुकुन्दमादिपुरुषमेकाकारमनामयम्।
नित्यं शुद्धं ज्ञानगम्यं कारणं सर्वदेहिनाम्॥ ८५

'इसके विपरीत यदि मन घोर विपर्यय (विषय-सेवन आदि)-में फँस जाय तो वह पुरुषोंका नाश कर डालता है। दूसरोंके पीडनरूप पापोंमें फँसा देता है॥ ७३॥ देव जनार्दन! आप मेरे उस मनकी बारम्बार रक्षा करें, मेरे मनमें मलिनता न रहे, मेरा मन निर्मल हो जाय॥ ७४॥ क्योंकि जीवका जो मलिन चित्त है, वह उसे नरकमें गिराता है। मनके शुद्ध होनेसे बाह्य इन्द्रियाँ भी निर्मल हो जाती हैं और यदि मन मलिन हो तो वे इन्द्रियाँ भी मलिन होनेके कारण इस जगत्‌में कोई सत्कार्य नहीं कर सकतीं। केशव! जो मनुष्य अपने अपवित्र मनको मुट्ठीमें किये बिना केवल अङ्गोंका बाहरसे प्रक्षालन करता है, उसे क्या लाभ होगा? उसका केवल बाहरसे शुद्धिके लिये आग्रह व्यर्थ ही है॥ ७५—७७॥ अतः जनार्दन! सम्पूर्ण प्रयत्नद्वारा आप मेरे चित्तकी रक्षा कीजिये। जीवोंकी याचना पूर्ण करनेवाले देव! इन्द्रियोंका समूह बड़ा बलवान् है, इसे रोकिये॥ ७८॥ जगन्नाथ! मेरी दुर्वह वाणीको आप परनिन्दासे बचाइये। जनार्दन! मेरे मनको पराये धन और परायी स्त्रीसे दूर रखिये। केशव! आपकी कृपासे मेरे मनमें सब प्राणियोंके प्रति दया हो॥ ७९॥ प्रभो! आपमें ही मेरी अविचल भक्ति हो और समस्त प्राणियोंके प्रति दया हो। इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ? मेरी यह एक ही बात सुन लीजिये॥ ८०॥ 'देवदेवेश्वर! जनार्दन! सुखमें, दुःखमें, राग और भोजनमें, चलने-फिरनेमें तथा जाग्रत् और स्वप्न-अवस्थाओंमें सर्वत्र आपमें ही मेरा मन रमण करे, आपको नमस्कार है।' इस तरह बोलता हुआ वह अत्यन्त भयङ्कर पिशाच, जो केवल जातिसे निम्नकोटिका था, हृदयसे नहीं, समाधिस्थ हो गया। वह महान् भगवद्भक्त था। वह मांसभक्षी पिशाच अपने शरीरको अँतड़ियोंके सुदृढ पाशसे बाँधकर निश्चलचित्तके द्वारा सुखपूर्वक संयतभावसे बैठ गया और जगत्‌की उत्पत्तिके कारणभूत, पीताम्बरधारी, मङ्गलकारी, सर्वव्यापी श्रीहरिका ध्यान करने लगा॥ ८१—८४॥ जो नित्य, शुद्ध, ज्ञानगम्य, समस्त देहधारियोंके कारण भूत, रोग-शोकसे रहित, एकाकार (अद्वितीय) और आदिपुरुष हैं, उन मुकुन्ददेवका चिन्तन करने लगा॥ ८५॥

नासिकाग्रं समालोक्य पठन् ब्रह्म सनातनम्।
निर्वातस्थो यथा दीपः प्रोच्चरन् प्रणतः सदा॥ ८६

प्रणवं वाचकं मत्वा वाच्यं ब्रह्मेति निश्चितः।
एकाग्रं सततं कृत्वा चित्तं विष्णौ समर्पितम्॥ ८७

विकल्परहितं चित्तं हृदि मध्ये न्यवेशयत्।
पुण्डरीके शुभदले समावेश्य जगत्पतिम्॥ ८८

आस्ते सुखं महायोगी पिशिताशस्तदा महान्।
त्रिधामानं जपंस्तत्र स्मरन् विष्णुं सनातनम्॥ ८९

नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाये सनातन ब्रह्मस्वरूप प्रणवका जप करते हुए, वायुशून्य प्रदेशमें जलनेवाले दीपककी भाँति अविचलभावसे स्थित हो, वह निरन्तर प्रणाम एवं मन्त्रपाठ करने लगा॥ ८६॥ प्रणवको वाचक मानकर और परब्रह्म परमात्माको उसका वाच्यार्थ निश्चित करके उसने अपने चित्तको निरन्तर एकाग्र रखते हुए उसे भगवान् विष्णुमें समर्पित कर दिया। उस विकल्परहित चित्तको हृदयकमलके भीतर दृढ़तापूर्वक स्थापित कर दिया। शुभ दलोंसे युक्त उस हृदयकमलके आसनपर जगदीश्वर श्रीहरिको प्रतिष्ठित करके वह महायोगी, महान् मांसभक्षी पिशाच वहाँ सुखपूर्वक बैठा रहा तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन रूपोंमें विराजमान सनातन विष्णुका स्मरण करता रहा॥ ८७—८९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां घण्टाकर्णचित्तसमाधावशीतितमोऽध्यायः॥ ८०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्णकी कैलासयात्राके प्रसङ्गमें घण्टाकर्णके चित्तका समाधिविषयक अस्सीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८०॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

पिशाचको समाधि-अवस्थामें भगवान् विष्णुका साक्षात्कार

वैशम्पायन उवाच

ततः स भगवान् विष्णुः पिशाचं दृष्टवांस्तदा।
चिन्तयन्तं स्वमात्मानं शुद्धबुद्धिसमन्वितम्॥ १

आत्मन्यवस्थितं साक्षात् पठन्तं प्रणवं सकृत्।
प्रार्थयन्तं स्वमात्मानमेकान्ते नियतं हरिः॥ २

अचिन्तयज्जगन्नाथः कारणं पुण्यसंचये।
ध्यात्वा तु सुचिरं विष्णुः कारणं पुण्यकर्मणः॥ ३

धनदस्योपदेशेन पठन् सुबहुशः क्षितौ।
वासुदेवेति कृष्णेति माधवेति च मां सदा॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर उन भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण)-ने उस समय उस पिशाचकी ओर देखा, जो अपने आत्मस्वरूप श्रीहरिका ही चिन्तन कर रहा था। वह शुद्ध बुद्धिसे सम्पन्न था॥ १॥ वह हृदयकमलमें स्थित हो साक्षात् प्रणवका प्रत्येक नाम या मन्त्रके साथ एक बार उच्चारण करता था और अपने आत्मस्वरूप विष्णुसे ही अभीष्ट मनोरथके लिये प्रार्थना करता था। इस प्रकार एकान्तमें नियमपूर्वक ध्यान लगाये घण्टाकर्णको श्रीहरिने देखा॥ २॥ उस समय उन जगदीश्वर श्रीहरिने सोचा कि इसके पुण्यसंचयमें क्या कारण है। उसके पुण्यकर्मके कारणके विषयमें चिरकालतक चिन्तन करके वे इस निश्चयपर पहुँचे॥ ३॥ यह कुबेरके उपदेशसे पृथ्वीपर अनेक बार वासुदेव, कृष्ण, माधव इत्यादि नाम ले-लेकर निरन्तर मेरा कीर्तन करता रहा है॥ ४॥

जनार्दन हरे विष्णो भूतभावनभावन।
नराकार जगन्नाथ नारायण परायण॥ ५

इति मां नामभिर्नित्यं पठत्येव दिवानिशम्।
स्वपञ्जाग्रंस्तथा तिष्ठन् भुञ्जन् गच्छंस्तथा वदन्॥ ६

भक्षयन् मांसपिटकं पिबञ्छोणितमेव वा।
बाधमानश्च सुचिरं हत्वा चापि मृगान् बहून्॥ ७

हनने भोजने चैष जाग्रत्स्वप्ने तथैव च।
सर्वेष्वपि च कार्येषु कर्ताहमिति मन्यते॥ ८

एतस्य कर्मणः पाक एष घोरस्य कर्मणः।
निश्चित्यैवं जगन्नाथः प्रीतस्तस्य बभूव ह॥ ९

अदर्शयत् स्वमात्मानमनन्यस्य जगत्पतिः।
शुद्धेऽन्तःकरणे तस्य पिशाचस्यापि भूमिप॥ १०

स च घोरः पिशाचोऽपि ददर्शात्मनि केशवम्।
पीतकौशेयवसनं पद्माक्षं श्यामलं हरिम्॥ ११

शङ्खिनं चक्रिणं विष्णुं स्त्रग्विणं गदिनं विभुम्।
किरीटिनं कौस्तुभिनं श्रीवत्साच्छादितोरसम्॥ १२

नीलमेघनिभं कान्तं गरुडस्थं प्रभञ्जनम्।
चतुर्भुजं शुभगिरं निश्चलं सर्वगं शिवम्॥ १३

अनादिनिधनं नित्यं मायाविनममायिनम्।
सत्ययुक्तं सदा शुद्धं बुद्धिगम्यं सदामलम्॥ १४

मनस्येवं जगन्नाथं दृष्ट्वा विष्णुमनेकधा।
अनुन्मील्यैव नयने कृतार्थोऽस्मीत्यमन्यत॥ १५

अथ दृष्टो हरिर्विष्णुः साक्षात् सर्वत्रगः शुभः।
प्रसन्नो हि हरिर्मह्यं तेनाहं दृष्टवान् हरिम्॥ १६

सिद्धं मे जन्मनः कृत्यं किमतः कृत्यमस्ति मे।
ग्रन्थयो मम निर्भिन्ना वश्यान्येवेन्द्रियाणि मे॥ १७

जनार्दन! हरे! विष्णो! भूतभावनभावन! नराकार! जगन्नाथ! नारायण! परायण! इत्यादि नामोंद्वारा नित्य दिन-रात मुझे ही पुकारता रहा है। सोते, जागते, खड़े होते, खाते-पीते, चलते-फिरते और बोलते समय मेरे ही नामोंका कीर्तन करता आया है॥ ५-६॥ पिटारी-की-पिटारी मांस खाते अथवा खून पीते समय भी यह मेरे नामोंकी रट लगाता रहा है। चिरकालतक प्राणियोंको कष्ट देकर और बहुत-से मृगोंका वध करके भी उनके हनन और भोजनके समय, जाग्रत् और स्वप्न-अवस्थाओंमें तथा सभी कार्योंमें यह मुझ वासुदेवको ही कर्ता मानता आया है। इसके इस घोर कर्मके परिपाक (विनाश)-का यह समय प्राप्त हुआ है। ऐसा निश्चय करके वे जगन्नाथ उसपर बहुत प्रसन्न हुए। राजन्! तदनन्तर जगदीश्वर श्रीहरिने उस अनन्यभक्त पिशाचको भी उसके शुद्ध अन्तःकरणमें अपने स्वरूपका दर्शन कराया॥ ७—१०॥ उस भयङ्कर पिशाचने भी अपने अन्तःकरणमें रेशमी पीताम्बरधारी, कमलनयन, श्यामसुन्दर पापहारी केशवका दर्शन किया॥ ११॥ वे भगवान् विष्णु हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा लिये हुए थे। उनके गलेमें वनमाला, मस्तकपर किरीट और वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणिकी शोभा हो रही थी। उनका हृत्प्रदेश श्रीवत्सकी आभासे आच्छादित हो रहा था॥ १२॥ वे नीलवर्णके मेघकी भाँति कमनीय कान्ति धारण करते थे। गरुड़की पीठपर विराजमान थे और भवभयभञ्जन करनेवाले थे। उनके चार भुजाएँ शोभा पाती थीं। उनकी वाणी मङ्गलमयी थी। वे सर्वव्यापी कल्याणस्वरूप प्रभु निश्चलभावसे खड़े थे॥ १३॥ उनका न कहीं आदि है न अन्त। वे नित्य मायावी (मायापति) हैं। उनपर किसीकी माया नहीं चलती है। वे सत्ययुक्त, सदा शुद्ध, बुद्धिगम्य तथा नित्य निर्मल हैं॥ १४॥ इस प्रकार हृदयके भीतर प्रकट हुए जगदीश्वर विष्णुका बारम्बार दर्शन करके आँख खोले बिना ही अपने-आपको कृतार्थ मानने लगा॥ १५॥ अहो! अब सर्वव्यापी, शुभस्वरूप, साक्षात् भगवान् विष्णु हरिने मुझे दर्शन दिया है, निश्चय ही वे श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हैं; इसीसे मैं उनका दर्शन पा सका हूँ॥ १६॥ मेरे जन्मका प्रयोजन सिद्ध हो गया, इससे बढ़कर मेरे लिये अब और कौन-से कर्तव्य शेष हैं। मेरी अज्ञानमयी गाठें खुल गयीं और इन्द्रियाँ भी वशमें हो ही गयीं॥ १७॥

प्रायेण जितमित्येव मनो मन्ये स्मृते हरौ।
एषणाश्च निरस्ता मे प्रसन्नोऽहं तथाभवम्॥ १८

एतेभ्योऽपि पिशाचेभ्यो निर्मुक्तः साम्प्रतं तथा।
योऽसौ ममानुजः साक्षात् स च भक्तस्तथा हरौ॥ १९

कालेन चैव निर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात्।
इत्येवं चिन्तयित्वा स आन्त्रपाशं विभिद्य च॥ २०

क्रमेण प्राणानुन्मुच्य विलोक्य च दिशस्तथा।
शरीरं सुगमं कृत्वा प्राविशत् स सुखेन ह॥ २१

श्रीहरिका स्मरण होनेपर मैं ऐसा मानता हूँ कि प्रायः मेरा मन जीत लिया गया। मेरी त्रिविध एषणाएँ (लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा) दूर हो गयीं और मैं पूर्ण प्रसन्न हो गया॥ १८॥ अब इन पिशाचोंसे भी सम्बन्ध छूट गया। वह जो मेरा सगा छोटा भाई है, वह भी भगवान् विष्णुका भक्त है; अतः समयानुसार मुक्त होकर वह भी विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेगा। ऐसा सोचकर उसने आँतोंका पाश काट डाला और क्रमशः प्राणोंको उन्मुक्त करके सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखकर शरीरको सुगम करके उसके भीतर सुखपूर्वक प्रविष्ट हुआ॥ १९—२१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पिशाचस्य विष्णुसाक्षात्कारे एकाशीतितमोऽध्यायः॥ ८१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्णकी कैलासयात्राके प्रसङ्गमें पिशाचको विष्णुका साक्षात्कारविषयक इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८१॥

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

घण्टाकर्णद्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति

वैशम्पायन उवाच

पिशिताशो जगन्नाथं ददर्शाथ जगद्गुरुम्।
समाधौ च यथा दृष्टं भूमौ चापि तथा हरिम्॥ १

अयं विष्णुरयं विष्णुरित्यूचे पिशिताशनः।
समाधौ च यथा दृष्टः सोऽयमत्रापि दृश्यते।
इत्युक्त्वा च पुनर्ब्रूते नृत्यन्निव हसन्निव॥ २

अयं स चक्री शरशार्ङ्गधन्वा
गदी रथी सध्वजतूणपाणिः।
सहस्रमूर्धा सकलामरेशो
जगत्प्रसूतिर्जगतां निवासः॥ ३

विष्णुर्जिष्णुर्जगन्नाथः पुराणः पुरुषोत्तमः।
विश्वात्मा विश्वकर्ता यः सोऽयमेष सनातनः॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर पिशाचने जगत्के स्वामी जगद्गुरु श्रीकृष्णका दर्शन किया। समाधि-अवस्थामें उसने श्रीहरिके रूपकी जैसी झाँकी की थी, उसी रूपमें उसने भूमिपर बैठे हुए श्रीकृष्णको देखा॥ १॥ उन्हें देखते ही वह मांसभक्षी पिशाच बोल उठा—'ये ही विष्णु हैं, ये ही विष्णु हैं; क्योंकि समाधिमें वे मुझे जिस रूपमें दिखायी दिये थे, उसी रूपमें यहाँ भी उनका दर्शन हो रहा है।' ऐसा कहकर वह पुनः नाचता और हँसता हुआ-सा कहने लगा—॥ २॥ 'ये ही वे चक्रधारी, शार्ङ्गधनुष और बाण ग्रहण करनेवाले, गदाधारी, रथारूढ़ तथा ध्वज एवं तरकस लिये रहनेवाले, सहस्र मस्तकवाले, सर्वदेवेश्वर, जगत्स्रष्टा तथा तीनों लोकोंके निवासस्थान श्रीहरि हैं॥ ३॥ जिन्हें विष्णु, जिष्णु, जगन्नाथ, पुराण-पुरुष, पुरुषोत्तम, विश्वात्मा और विश्वकर्ता कहा गया है, वे सनातन परमात्मा ये ही हैं'॥ ४॥

अस्यैव देवस्य हरेः स्तनान्तरे
विराजते कौस्तुभरत्नदीपः।
यस्य प्रसादाज्जगदेतदादौ
विराजते चन्द्रमसेव रात्रिः॥ ५
योऽसौ पृथ्वीं दधाराशु दंष्ट्रया जलसंचयात्।
योऽयमेव हरिः साक्षाद् वाराहं वपुरास्थितः॥ ६
बद्ध्वा तथा दानवमुग्रपौरुषं
ददौ च शक्राय ततोऽनुराज्यम्।
बलिं बलादेष हरिः स वामनः
स्तुतश्च भक्त्या मुनिभिः पुरातनैः॥ ७
दंष्ट्राकरालः सुमहान् हत्वा यो दानवान् रणे।
निःशोकमखिलं लोकं चकारासौ जनार्दनः॥ ८
आदौ दधारैकभुजेन मन्दरं
निर्जित्य सर्वानसुरान् महार्णवे।
ददौ च शक्राय सुधामयं महान्
स एष साक्षादिह मामवस्थितः॥ ९
यः शेते जलधौ नागे देव्या लक्ष्म्या सुखावहे।
हत्वा तौ दानवौ घोरौ मुधुकैटभसंज्ञितौ॥ १०
यमाहुराद्यं विबुधा जगत्पतिं
सर्वस्य धातारमजं जनित्रम्।
अणोरणीयांसमतिप्रमाणं
स्थूलात् स्थविष्ठं हरिमेव विष्णुम्॥ ११
यत्र स्थितमिदं सर्वं प्राप्ते लोकस्य नाशने।
आदौ यस्मात् समुत्पन्नं सोऽयं विष्णुरिति स्थितः॥ १२
यस्येच्छया सर्वमिदं प्रवृत्तं
प्रवर्तते चापि जनार्दनस्य।
अयं स विष्णुः पुरुषोत्तमः शिवः
प्रवर्तते मामिह यादवेश्वरः॥ १३
भृगोर्वंशे समुत्पन्नो जामदग्न्य इति श्रुतः।
शिष्यत्वं समवाप्यैव मृगव्याधस्य यः स्थितः॥ १४
जघान वीर्याद् बलिनं महारणे
कुठारशस्त्रेण गिरीशशिष्यः।
सहस्रबाहुं कृतवीर्यसम्भवं
हयैर्गजैश्चैव रथैश्च निर्गतम्॥ १५
कुरुक्षेत्रं समासाद्य यश्चकार पितृक्रियाम्।
निःक्षत्रियमिमं लोकं कृतवानेकविंशतिः॥ १६

'इन्हीं श्रीनारायणदेवके वक्षःस्थलमें कौस्तुभमणि-रूपी दीप उद्भासित होता है। जिसके प्रसादसे यह जगत् आदिकालसे ही चन्द्रमासे रात्रिकी भाँति प्रकाशित हो रहा है॥ ५॥ जो वाराहरूपमें प्रकट हुए थे तथा जिन्होंने पृथ्वीको अपनी दाढ़द्वारा एकार्णवकी जलराशिसे तत्काल बाहर निकाला और जलके ऊपर स्थापित किया, वे साक्षात् श्रीहरि ये ही हैं॥ ६॥ उग्र पुरुषार्थवाले दानव बलिको बलपूर्वक बाँधकर इन्हीं वामनरूपधारी श्रीहरिने देवराज इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य अर्पित किया। उस समय प्राचीन महर्षियोंने भक्तिभावसे इनकी स्तुति की थी॥ ७॥ इन्हीं जनार्दनने विकराल दाढ़वाले महान् नृसिंहरूप होकर रणभूमिमें दानवोंको मारा और समस्त संसारको शोकरहित कर दिया॥ ८॥ जिन्होंने आदिकालमें एक ही हाथसे मन्दराचलको धारण किया और महासागरके तटपर समस्त असुरोंको परास्त करके इन्द्रको अमृत प्रदान किया, वे ही ये साक्षात् महाविष्णु यहाँ मेरे निकट विराजमान हैं॥ ९॥ जो प्रलयकालमें एकार्णवके जलमें मधु और कैटभ नामक दो भयंकर दानवोंका वध करके शेषनागकी सुखदायिनी शय्यापर लक्ष्मीदेवीके साथ शयन करते हैं (वे भगवान् विष्णु ये ही हैं)॥ १०॥ देवता जिन्हें सबका आदि, जगदीश्वर, सबका धारण-पोषण करनेवाले, अजन्मा, जन्मदाता, अणुसे भी अत्यन्त अणु, परम महान्, स्थूलसे भी स्थूलतम, हरि एवं विष्णु कहते हैं (वे ये ही हैं)॥ ११॥ लोकका संहार प्राप्त होनेपर यह सारा विश्व जिनमें ही स्थित होता है तथा सृष्टिके प्रारम्भमें जिनसे इसकी उत्पत्ति हुई है, वे ही ये भगवान् विष्णु यहाँ विराजमान हैं॥ १२॥ जिन जनार्दनकी इच्छासे यह सारा जगत् अपने-अपने कर्मोंमें प्रवृत्त हुआ है और हो रहा है, वे शिवस्वरूप पुरुषोत्तम विष्णु ये यादवेश्वर श्रीकृष्ण ही हैं, जो यहाँ मेरे पास आये हैं॥ १३॥ जो भृगुकुलमें उत्पन्न हो 'जामदग्न्य' के नामसे विख्यात हुए तथा मृगव्याध नामक रुद्रदेवताका शिष्यत्व ग्रहण करके स्थित हैं। महादेवजीके शिष्यभूत जिन परशुरामजीने महासमरमें कुठारनामक शस्त्रद्वारा बलवान् कृतवीर्यकुमार सहस्रबाहु अर्जुनको जो हाथी, घोड़े और रथोंकी सेनाएँ साथ लेकर चढ़ आया था, बलपूर्वक मार डाला; तत्पश्चात् कुरुक्षेत्रमें आकर जिन्होंने पितरोंका श्राद्धकर्म सम्पन्न किया और इक्कीस बार इस जगत्को क्षत्रियोंसे सूना कर दिया (वे ये ही भगवान् श्रीकृष्ण हैं)'॥ १४—१६॥

रघोरथ कुले जातो रामो नाम जनार्दनः।
सीतया च श्रिया युक्तो लक्ष्मणानुचरः कृती॥ १७
कृत्वा च सेतुं जलधौ जनार्दनो
हत्वा च रक्षःपतिमाशुगैः शरैः।
दत्त्वा च राज्यं स विभीषणाय
दशाश्वमेधैरयजच्च योऽसौ॥ १८
वसुदेवकुले जातो वासुदेवेति शब्दितः।
गोकुले क्रीडते योऽसौ संकर्षणसहायवान्॥ १९
उत्तानशायी शिशुरूपधारी
पीत्वा स्तनं पूतनिकाप्रदत्तम्।
व्यसुं चकाराशु जनार्दनस्तदा
दनोः सुतां तामवसत् सुखं हरिः॥ २०
पयःपानं तथा कुर्वन् भक्षयन् दधिपिण्डकम्।
दाम्ना बद्धोदरो विष्णुर्मात्रा रुषितया दृढम्॥ २१
ततश्च दाम्ना सुदृढेन बद्धो
जघान योऽसौ यमलार्जुनौ च।
क्रीडन् हरिर्गोकुलवासवासी
गोपीभिरास्वाद्य मुखं स्तनं च॥ २२
वृन्दावने वसन् विष्णुर्गोपैर्गोकुलवासिभिः।
तत्र हत्वा हयं राजन् विरराजांशुमानिव॥ २३
यः क्रीडते नागफणौ जनार्दनो
निषेव्यमाणः सह गोपदारकैः।
महाह्रदे नागपतिं जगत्पति-
र्ममर्द वीर्यातिशयं प्रदर्शयन्॥ २४
यो धेनुकं तालवने तत्फलैः सममच्छिनत्।
हत्वा दानवमुग्रं तं गोपान् विस्मापयत्यसौ॥ २५
दधार यो गोधरमुग्रपौरुषान्
महामतिर्मेघसमागमे सति।
विडम्बयञ्छक्रबलं प्रमोदयन्
गोपांश्च गोपीश्च स गोकुलं हरिः॥ २६

'तदनन्तर जनार्दनदेव रघुकुलमें उत्पन्न हो 'राम' नामसे विख्यात हुए। 'सीता' नामवाली लक्ष्मी देवीके साथ इनका सम्बन्ध स्थापित हुआ। इनके छोटे भाई लक्ष्मण सदा इनके ही अनुगामी बने रहे। ये बड़े पुण्यात्मा एवं विद्वान् थे। इन रामरूपधारी जनार्दनने समुद्रमें सेतु बाँधकर अपने शीघ्रगामी बाणोंद्वारा राक्षसराज रावणका वध किया और विभीषणको राज्य देकर दस अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया (वे ही ये रामस्वरूप विष्णु यहाँ उपस्थित हैं)॥ १७-१८॥ तदनन्तर वे श्रीहरि वसुदेवकुलमें उत्पन्न हो वासुदेव नामसे विख्यात हुए और गोकुलमें भाँति-भाँतिकी लीलाएँ करने लगे। उस समय उनके बड़े भाई बलराम उनके सहायक थे॥ १९॥ जब वे शिशुरूप धारण करके खाटपर उतान सोये हुए थे, उस समय उन जनार्दनने पूतनाके दिये हुए स्तनको पीकर उस दानवीको तत्काल प्राणहीन कर दिया। फिर वे श्रीहरि वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे॥ २०॥ जब कुछ बड़े हुए, तब दूध पीते हुए छिपकर दही और माखनके लौंदे खा जाते थे। तब एक दिन रोषमें भरी हुई मैया यशोदाने उन भगवान् विष्णुकी कमरमें दृढ़तापूर्वक रस्सी बाँध दी॥ २१॥ उस सुदृढ़ बन्धनसे बँधे हुए उन दामोदरने जुड़वे अर्जुन नामक वृक्षोंको तोड़ डाला। गोकुलवासमें रहते हुए बालरूपधारी श्रीहरि गोपियोंके साथ खेलते हुए कभी उनका स्तन पीते और कभी मुखका आस्वादन कर लेते थे॥ २२॥ वृन्दावनमें गोकुलवासी गोपोंके साथ रहते हुए श्रीहरि वहाँ अश्वरूपधारी केशीका वध करके सूर्यके समान शोभा पाने लगे॥ २३॥ जो जगदीश्वर जनार्दन गोपबालकोंसे सेवित हो नागके फनोंपर क्रीडा करते थे तथा जिन्होंने अपने अतिशय पराक्रमका परिचय देते हुए यमुनाके महान् ह्रदमें नागराज कालियको रौंद डाला था (वे ही ये भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ उपस्थित हैं)॥ २४॥ जिन्होंने तालवनमें तालफलोंके साथ ही भयंकर दानव धेनुकासुरका उच्छेद कर डाला और उसका वध करके गोपोंको आश्चर्यमें डाल दिया (वे ही ये विष्णु यहाँ उपस्थित हैं)॥ २५॥ जिन परम बुद्धिमान् श्रीहरिने संवर्तक मेघोंके घिर आनेपर अपने उग्र पुरुषार्थसे गोवर्धनपर्वतको हाथपर उठा लिया और इन्द्रके बलकी विडम्बना करते हुए गोपों, गोपियों और गोकुलको आनन्दमग्न कर दिया (वे ये ही हैं)'॥ २६॥

गोपीनां स्तनमध्ये तु क्रीडते काममीश्वरः।
योऽसौ पिबंस्तदधरं मायामानुषदेहवान्॥ २७

गोपीभिरास्वाद्य मुखं विविक्ते
शेते स्म रात्रौ सुखमेव केशवः।
स्तनान्तरेष्वेव तदा च तासां
कामीव कान्ताधरपल्लवं पिबन्॥ २८

अक्रूरेण समाहूतस्तेन गच्छन् हि यामुने।
जले यो ह्यर्चितस्तेन नागलोके स एव हि॥ २९

ततश्च गच्छन् बलवाञ्जनार्दनो
हत्वा तमुग्रं रजकं बलात् पथि।
हृत्वा च वस्त्राणि यथेष्टमीश्वरो
ययौ सरामो मथुरां पुरीं हरिः॥ ३०

लब्ध्वा च दामानि बहूनि कामदो
दत्त्वा वरं माल्यकृते महान्तम्।
लब्ध्वानुलेपं सुरभिं च यादवः
कुब्जां चकाराशु महार्हरूपाम्॥ ३१

योऽसौ चापं समादाय मध्ये छित्त्वा महद् धनुः।
सिंहनादं महांश्चक्रे कल्पान्ते जलदो यथा॥ ३२

हत्वा गजं घोरमुदग्ररूपं
विषाणमादाय ततोऽनु केशवः।
ननर्त रङ्गे बहुरूपमीश्वरः
कंसस्य दत्त्वा भयमुग्रवीर्यः॥ ३३

योऽसौ हत्वा महामल्लं चाणूरं निहतद्विषम्।
यादवेभ्यो ददौ प्रीतिं कंसस्यैव तु पश्यतः॥ ३४

जघान कंसं रिपुपक्षघातिनं
पितृद्विषं यादवनामधेयम्।
संस्थाप्य राज्ये हरिरुग्रसेनं
सान्दीपनं काश्यमुपागतो यः॥ ३५

'मायासे मनुष्यरूप धारण करनेवाले जो परमेश्वर श्रीहरि गोपियोंके वक्ष:स्थलपर उनके अधरामृतका पान करते हुए इच्छानुसार क्रीडा करते थे (वे ये ही हैं)॥ २७॥ जो केशव रात्रिके समय वृन्दावनके एकान्त प्रदेशमें गोपियोंके साथ उनके मुखारविन्दका आस्वादन करते हुए सुखपूर्वक सोते थे और कामी पुरुषोंके समान कान्ता (प्रेयसी)-के अधर-पल्लव-रसका पान करते हुए उन गोपाङ्गनाओंके वक्ष:स्थलोंपर ही शयन करते थे (वे प्रभु ये ही हैं)॥ २८॥ कंसके बुलानेपर अक्रूरजीके साथ जाते हुए जिन श्रीहरिका यमुनाजीके जलमें प्रकट हुए नागलोकमें पूजन किया गया था और अक्रूरने यह बात प्रत्यक्ष देखी थी, वे ही ये भगवान् श्रीकृष्ण विराज रहे हैं॥ २९॥ तत्पश्चात् मथुराके मार्गपर चलते हुए बलरामसहित सर्वसमर्थ बलवान् जनार्दन श्रीहरिने उस उग्र स्वभाववाले धोबीको बलपूर्वक मारकर उसके हाथसे वस्त्र छीन लिये और उन्हें धारण करके मथुरापुरीमें प्रवेश किया॥ ३०॥ आगे जाकर उन्हें बहुत-से फूलोंके हार प्राप्त हुए, तब इच्छानुसार वर देनेवाले उन यदुनाथने मालीको महान् वर प्रदान किया। फिर कुब्जासे सुगन्धित अनुलेप पाकर उन्होंने शीघ्र ही उसे परम सुन्दर रूपवती बना दिया॥ ३१॥ जिन्होंने कंसका विशाल धनुष हाथमें लेकर उसे बीचसे ही तोड़ डाला और प्रलयकालके महान् मेघकी भाँति गम्भीर स्वरसे सिंहनाद किया (वे ये ही हैं)॥ ३२॥ तत्पश्चात् कुवलयापीड नामक प्रचण्ड रूपवाले भयंकर हाथीको मारकर उसके दाँत हाथमें लिये उग्र पराक्रमी भगवान् केशव कंसको भय देते हुए रङ्गशालामें नाना प्रकारसे नृत्य करने लगे॥ ३३॥ जिन्होंने शत्रुहन्ता चाणूर नामक महामल्लको कंसके सामने ही मारकर यादवोंको आनन्द प्रदान किया (वे ही ये श्रीहरि यहाँ उपस्थित हैं)॥ ३४॥ इसके बाद उन श्रीहरिने अपने पिताके साथ द्वेष रखनेवाले, शत्रुपक्षघाती, यादवनामधारी कंसको मार डाला और उसके राज्यपर उग्रसेनको स्थापित करके वे विद्याध्ययनके लिये उन सान्दीपनि मुनिके समीप गये, जिनका जन्म काश्यगोत्र अथवा काशि-जनपदमें हुआ था (परंतु जो अवन्तीपुरीमें रहते थे)॥ ३५॥

विद्यामवाप्य सकलां दत्त्वा पुत्रं महामुनेः।
साग्रजोऽथ जगामाशु मथुरां यादवीं पुरीम्॥ ३६

हत्वा निशुम्भं नरकं महामतिः
कृत्वा स घोरं कदनं जनार्दनः।
ररक्ष विप्रान् मुनिवीरसंघान्
देवांश्च सर्वाञ्जगतो जगत्पतिः॥ ३७

स एष भगवान् विष्णुरद्य दृष्टो जनार्दनः।
कृतकृत्योऽस्मि संजातः सायुज्यं प्राप्तवानहम्॥ ३८

येन दृष्टो हरिः साक्षात् तस्य मुक्तिः करे स्थिता।
सोऽयमेष हरिः साक्षात् प्रत्यक्षमिह वर्तते॥ ३९

नूनं जन्मान्तरे पूर्वं धर्मः संचित एव मे।
यस्य पाकः समुत्पन्नो येनासौ दृश्यते मया॥ ४०

सर्वथा पुण्यवानस्मि नष्टसंसारबन्धनः।
किमस्मै दीयते वस्तु किं नु वक्ष्यामि साम्प्रतम्।
करिष्ये किमहं विष्णो वदस्वाद्य यथेप्सितम्॥ ४१

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा विस्तरं नादं ननर्द बहुशस्तदा।
जहास विकृतं भूयो ननर्त पिशिताशनः॥ ४२

नमो नमो हरे कृष्ण यादवेश्वर केशव।
प्रत्यक्षं च हरेस्तत्र ननर्त विविधं नृप॥ ४३

उनसे सम्पूर्ण विद्या पाकर उन महामुनिको उनका मरा हुआ पुत्र वापस दे वे बड़े भाई बलरामसहित शीघ्र ही यादवोंकी राजधानी मथुरापुरीको लौट गये॥ ३६॥

'परम बुद्धिमान् जगत्पति जनार्दनने निशुम्भ और नरकासुरका वध करके राक्षसोंका घोर संहार मचाकर ब्राह्मणों, मुनिसमूहों, वीरसमुदायों, समस्त देवताओं तथा जगत्‌की रक्षा की॥ ३७॥ वे ही ये भगवान् विष्णु जनार्दन आज मुझे दिखायी दिये हैं। इनके दर्शनसे मैं कृतकृत्य हो गया। मुझे सायुज्य मोक्ष मिल गया॥ ३८॥ जिसने साक्षात् श्रीहरिका दर्शन कर लिया मुक्ति उसके हाथमें आ जाती है। यहाँ ये साक्षात् श्रीहरि प्रत्यक्ष विद्यमान हैं॥ ३९॥ निश्चय ही पहले जन्मोंमें मेरे द्वारा धर्मका संचय भी हुआ ही है, जिसके फलका उदय हुआ है, जिससे मुझे इनका दर्शन प्राप्त हो रहा है॥ ४०॥ मैं सर्वथा पुण्यात्मा हूँ, मेरे संसार-बन्धनका नाश हो गया। मैं इन्हें कौन-सी वस्तु उपहारके रूपमें दूँ तथा इस समय इनसे क्या कहूँ? विष्णो! मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आपकी जैसी इच्छा हो, उसे आज प्रकट कीजिये'॥ ४१॥

वैशम्पायनजी कहते हैं— जनमेजय! ऐसा कहकर वह पिशाच बारम्बार जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। उसने विकट अट्टहास किया, फिर वह नृत्य करने लगा॥ ४२॥ नरेश्वर! वहाँ भगवान् श्रीकृष्णके सामने ही वह 'यादवेश्वर! केशव! कृष्ण! हरे! आपको नमस्कार है! नमस्कार है!!' ऐसा कहकर नाना प्रकारसे नृत्य करने लगा॥ ४३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां घण्टाकर्णस्तुतौ द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्णकी कैलासयात्राके प्रसङ्गमें घण्टाकर्णद्वारा भगवान्‌का स्तुतिविषयक बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८२॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

घण्टाकर्णद्वारा भगवान् श्रीकृष्णको उपहार-समर्पण, भगवान्का उसे वर देना और एक मरे हुए ब्राह्मणको जीवित करना

वैशम्पायन उवाच

विहस्य विकृतं भूयः प्रनृत्य च यथाबलम्।
ब्राह्मणस्य हतस्याथ शवमादाय सत्वरः॥ १

द्विधा कृत्य महाघोरं पिशितं केशशाड्वलम्।
ततः खण्डं समादाय अद्भिरभ्युक्ष्य यत्नतः॥ २

विधाय पात्रे सुशुभे नमस्कृत्य जनार्दनम्।
इदं प्रोवाच देवेशं प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः॥ ३

गृहाण मे जगन्नाथ भक्ष्यं योग्यं तव प्रभो।
भवादृशैर्जगन्नाथ ग्राह्यं सर्वात्मना हरे॥ ४

भक्तिनम्रा वयं विष्णो नात्र कार्या विचारणा।
दत्तं यद् भक्तिनम्रेण ग्राह्यं तत् स्वामिना हरे॥ ५

नवं सुसंस्कृतं भक्ष्यं ब्रह्मण्यं शवमुत्तमम्।
अस्माकं पिशिताशानां शास्त्रे नियतमेव हि॥ ६

तस्माद् गृहाण भगवन् यदि दोषो न विद्यते।
इत्युक्त्वा विकृतं भूयो विहस्य स तु कामतः॥ ७

दातुमैच्छत् तदा खण्डमस्पृश्यं तु शवस्य ह।
ततः प्रीतोऽभवत् तस्मै मनसापूजयच्च तम्॥ ८

अहोऽस्य स्नेहकारुण्यं मयि सर्वत्र वर्तते।
इति संचिन्त्य मनसा प्रोवाच यदुपुङ्गवः॥ ९

अलमेतेन सर्वत्र पिशाच पिशिताशन।
अस्पृश्यं मादृशैरेतद् ब्राह्मण्यं शवमुत्तमम्॥ १०

ब्राह्मणः सर्वथा पूज्यो जन्तुभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः।
पिशाचा घोरकर्माणो यतन्ते ब्रह्महिंसने॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पुनः विकट अट्टहास और यथाशक्ति नृत्य करके वह पिशाच तुरंत ही एक मारे गये ब्राह्मणका शव लेकर आया॥ १॥ केशोंसे युक्त उस महाघोर मांसके दो टुकड़े करके एक टुकड़ेको लेकर उसने यत्नपूर्वक जलसे धोया, तत्पश्चात् उसे एक सुन्दर पात्रमें रखकर देवेश्वर जनार्दनको नमस्कार करके वह हाथ जोड़ प्रणतभावसे खड़ा हो गया और इस प्रकार बोला—॥ २-३॥ 'जगन्नाथ! प्रभो! यह भक्ष्य आपके योग्य है। इसे ग्रहण कीजिये। जगदीश्वर! हरे! आप-जैसे प्रभुओंको भक्तकी यह भेंट सम्पूर्ण हृदयसे स्वीकार करनी चाहिये॥ ४॥ 'विष्णो! हम भक्तिभावसे आपके प्रति विनम्र हैं, इस विषयमें आपको कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। हरे! भक्तिभावसे विनीत होकर सेवकने जो वस्तु अर्पित की है, उसे स्वामीको अवश्य ग्रहण करना चाहिये॥ ५॥ यह तुरंतका मारा हुआ, संस्कार-सम्पन्न, भक्षण करने योग्य, ब्राह्मणका उत्तम शव है। शास्त्रमें हम पिशाचोंके लिये इसके भोजनका विधान है ही॥ ६॥ 'अतः भगवन्! यदि कोई दोष न हो तो आप इसे ग्रहण करें।' ऐसा कहकर पुनः विकट अट्टहास करके उसने इच्छानुसार वह शवका न छूने योग्य टुकड़ा उस समय भगवान्को देनेकी इच्छा की, इससे भगवान् श्रीकृष्ण उसपर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मन-ही-मन उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—'अहो! इसके मनमें मेरे प्रति सर्वत्र स्नेह और करुणा विद्यमान है।' मनमें ऐसा सोचकर यदुकुलतिलक श्रीकृष्णने उससे कहा—॥ ७—९॥ 'कच्चा मांस खानेवाले पिशाच! सर्वत्र इस मांसका ही उपयोग या समर्पण व्यर्थ है। जिसे तुम ब्राह्मणका उत्तम शव बता रहे हो, यह मुझ-जैसे लोगोंके लिये छूने योग्य भी नहीं है॥ १०॥ धर्मकी अभिलाषा रखनेवाले जीवोंके लिये ब्राह्मण सर्वथा पूजनीय है। घोर कर्म करनेवाले पिशाच ही ब्राह्मणकी हिंसाके लिये प्रयत्न करते हैं'॥ ११॥

न हन्तव्याः सदा विप्रास्तद्धिंसा नरकावहा।
तस्मादस्पृश्यमस्माभिर्नात्र कार्या विचारणा॥ १२

भक्त्या प्रीतोऽस्मि भद्रं ते मनो निर्मलमेतया।
मनःशुद्ध्यै कृतो यत्नस्ततः प्रीतोऽस्मि मांसप॥ १३

अस्मत्संकीर्तनाच्छश्वच्छुद्धं हि करणं तव।
अतीव मनसा प्रीत इत्युक्त्वा भगवान् हरिः॥ १४

पस्पर्शाङ्गं तदा विष्णुः पिशाचस्याथ सर्वतः।
करेण मृदुना देवः पापान्निर्मोचयद्धरिः॥ १५

ततस्तस्याभवद् रूपं कामरूपसमप्रभम्।
दीर्घकुञ्चितकेशाढ्यो दीर्घबाहुः सुलोचनः॥ १६

समाङ्गुलिः समनखः समवक्त्रः समुन्नसः।
पद्माक्षः पद्मवर्णाभः पद्मकेशरभूषणः॥ १७

केयूरी चाङ्गदी चैव कौशेयवसनस्तदा।
ज्ञानवान् सत्त्वसम्पन्नः साक्षादिन्द्र इवापरः॥ १८

गन्धर्व इव गायंस्तु सिद्धः सिद्ध इव स्वयम्।
साक्षात् स्पृष्टं तदा विष्णोः करेण मृदुपूर्वकम्॥ १९

न नूनं तादृशं रूपमासीत् कालान्तरेष्वपि।
अद्यापि नैव मुनयो लभन्ते तादृशं वपुः॥ २०

कृत्वा सुबहुशो घोरं तपः परमदारुणम्।
यच्च लब्धं तदा तेन पिशाचेन नृपोत्तम॥ २१

को नु नाम जगन्नाथमाश्रितः सीदते नृप।
स हि सर्वत्र कल्याणो यो हि नित्यं जनार्दनम्॥ २२

'ब्राह्मणोंकी हिंसा कदापि नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वह नरकमें ले जानेवाली है, अतः यह शव हमारे लिये सर्वथा अस्पृश्य है। इस विषयमें तुम्हें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये॥ १२॥ मांस खानेवाले पिशाच! तुम्हारा भला हो! मैं तुम्हारी भक्तिसे बहुत प्रसन्न हूँ; क्योंकि इससे मन निर्मल हो जाता है। तुमने मनःशुद्धिके लिये यत्न किया है। इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हूँ॥ १३॥ मेरे नामोंका निरन्तर कीर्तन करनेसे तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हो गया। इसलिये मैं मनसे तुम्हारे ऊपर अधिक प्रसन्न हूँ।' ऐसा कहकर भगवान् विष्णु हरिने उस समय अपने कोमल हाथसे उस पिशाचके सारे अङ्गोंका स्पर्श किया। ऐसा करके उन नारायणदेवने उसे पापसे मुक्त कर दिया॥ १४-१५॥ उनके स्पर्श करते ही उस पिशाचका रूप कामदेवके समान कान्तिमान् हो गया। उसके सिरपर लम्बे-लम्बे घुँघराले केश शोभा देने लगे। भुजाएँ बड़ी-बड़ी और नेत्र सुन्दर हो गये॥ १६॥ अँगुलियाँ समान और सुन्दर हो गयीं। नख भी समानरूपसे सुन्दर दिखायी देने लगे। उसके समान और सुडौल मुखमें केवल नासिका ऊँची थी। आँखें प्रफुल्ल कमलके समान मनोहर दिखायी देती थीं। अङ्गकान्ति नील-कमलके समान श्याम थी। वह कमलकेसररूपी आभूषणोंसे विभूषित था॥ १७॥ उसकी भुजाओंमें केयूर और अङ्गद नामक आभूषण शोभा दे रहे थे। शरीरपर रेशमी पीताम्बर सुशोभित था। वह ज्ञानवान् और सत्त्वसम्पन्न होकर साक्षात् दूसरे इन्द्रके समान शोभा पाता था॥ १८॥ वह गन्धर्वके समान गायक तथा साक्षात् सिद्धके समान सिद्धियोंसे सम्पन्न था। उस समय साक्षात् भगवान् विष्णुके हाथका कोमल स्पर्श पाकर उस पिशाचका रूप जैसा अलौकिक हो गया था, वैसा रूप कालान्तरमें भी किसीका नहीं था और आज भी मुनियोंको भी वैसा शरीर नहीं प्राप्त होता है॥ १९-२०॥ नृपश्रेष्ठ! उस पिशाचने बारम्बार घोर एवं परम दारुण तप करके उस समय जो दिव्य रूप प्राप्त किया, वह अद्भुत था॥ २१॥ नरेश्वर! जगदीश्वर भगवान् जनार्दनका आश्रय लेकर कौन मनुष्य कष्ट पा सकता है। उसका सर्वत्र कल्याण ही होता है। भूपाल! जो प्रतिदिन उन भगवान् विष्णुका ध्यान,

ध्यायन् पठञ्जपन् वापि तस्य किं नास्ति भूपते।
ततः प्रोवाच भगवान् स्थितं काममिवापरम्॥ २३
अक्षयः स्वर्गवासस्ते यावदिन्द्रो वसिष्यति।
तावत् स्वर्गी भवानस्तु शासनान्मम नान्यतः॥ २४

नष्टे शक्रे ततः स्वर्गात् सायुज्यं मम गच्छतु।
योऽयं भ्राता तव स्वर्गी यावदिन्द्रो भवेत् तदा॥ २५

वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते।
दातास्मि सर्वं सर्वत्र नात्र कार्या विचारणा॥ २६

घण्टाकर्ण उवाच

यश्चेमं संगमं देव संस्मरेन्नियतात्मवान्।
भक्तिस्तस्याचला देव त्वयि भूयाज्जनार्दन॥ २७
मनःशुद्धिर्भवेत् तस्य मा भूत् कलुषता हरे।
कालुष्यं मनसस्तस्य मा भूदेष वरो मम॥ २८
एवमस्त्विति देवेशः स्वर्गं गच्छेति केशवः।
इन्द्रातिथिर्भवानस्तु त्वां प्रतीक्ष्य हरिः स्थितः॥ २९
इत्युक्त्वा भगवान् कृष्ण उत्थाप्य ब्राह्मणं तदा।
तेन स्तुतो जगन्नाथः पूजयित्वा च तं द्विजम्॥ ३०
ततो विसृज्य गोविन्दस्तस्माद् देशादुपागमत्।
यत्र ते मुनयः सिद्धा अग्निहोत्रसमन्विताः॥ ३१
स च स्वर्गी गतः स्वर्गमाज्ञया केशवस्य ह।
तस्मात् पठ सदा राजन् मनःशुद्धिं यदीच्छसि।
मनश्च शुद्धं भवति पठतस्ते जगत्पते॥ ३२

स्तोत्रपाठ अथवा मन्त्रजप करता है, उसे कौन-सी वस्तु सुलभ नहीं है। तब दूसरे कामदेवके समान खड़े हुए घण्टाकर्णसे भगवान्ने इस प्रकार कहा—'जबतक इन्द्र रहेंगे, तबतक स्वर्गलोकमें तुम्हारा अक्षय निवास बना रहेगा। तबतक तुम मेरे शासनसे स्वर्गमें ही रहो, अन्यत्र नहीं॥ २३-२४॥ इस इन्द्रके बदल जानेपर तुम स्वर्गसे ऊपर उठकर मेरा सायुज्य प्राप्त कर लोगे। यह जो तुम्हारा भाई है, यह भी जबतक इन्द्र रहेंगे, तबतक स्वर्गीय सुखका उपभोग करेगा॥ २५॥ तुम्हारा कल्याण हो! तुम्हारे मनमें जो कामना हो उसके अनुसार कोई वर माँगो। मैं सर्वत्र सब कुछ दे सकता हूँ, इस विषयमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये'॥ २६॥

घण्टाकर्ण बोला—देव! जनार्दन! जो अपने मनको संयममें रखकर हम दोनोंके इस समागमके प्रसङ्गका स्मरण करे, उसकी आपके प्रति अविचल भक्ति हो॥ २७॥ हरे! उसके मनकी शुद्धि हो जाय, उसमें मलिनता न रह जाय। उस पुरुषके मनका सारा कालुष्य मिट जाय, यह मेरा वर है॥ २८॥ यह सुनकर देवेश्वर केशवने कहा—'ऐसा ही होगा, अब तुम स्वर्गको जाओ, इन्द्रके अतिथि बनो, इन्द्रदेव तुम्हारी प्रतीक्षामें खड़े हैं'॥ २९॥ ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने उस समय उस मरे हुए ब्राह्मणको जिलाकर उठा दिया, तब उस ब्राह्मणने उनका स्तवन किया, फिर वे जगदीश्वर गोविन्द उस ब्राह्मणका आदर-सत्कार करके उसे विदा दे, उस स्थानसे वहीं लौट गये, जहाँ वे सिद्ध-मुनिगण अग्निहोत्रमें लगे हुए थे॥ ३०-३१॥ वह स्वर्गलोकका अधिकारी घण्टाकर्ण भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे स्वर्गलोकको चला गया। अतः राजन्! यदि तुम अपने मनकी शुद्धि चाहते हो तो सदा इस प्रसङ्गका पाठ करो। जगत्पते! इसका पाठ करनेसे तुम्हारा मन निश्चय ही शुद्ध हो जायगा॥ ३२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि घण्टाकर्णमुक्तिप्रदाने त्र्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें घण्टाकर्णको मुक्तिप्रदानविषयक तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८३॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका कैलासपर पहुँचकर वहाँ बारह वर्षोंके लिये कठोर तपस्यामें संलग्न होना

वैशम्पायन उवाच

ततः स भगवान् विष्णुर्मुनिभ्यस्तत्त्वमादितः।
कथयामास यद् वृत्तं पिशाचस्य महात्मनः॥ १

तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे विस्मयं परमं गताः।
अहोऽस्य कर्मणः पाकस्तव संदर्शनादिति॥ २

अर्चितो मुनिभिः सर्वैः प्रीतः प्रीतिमतां प्रियः।
ततः प्रभाते विमले सूर्ये चाभ्युदिते सति॥ ३

आरुह्य गरुडं विष्णुर्ययौ कैलासमुत्तमम्।
भवद्भिस्तत्र गन्तव्यमित्युक्त्वा मुनिसत्तमान्॥ ४

यत्र विश्वेश्वराः सिद्धास्तपस्यन्ति यतव्रताः।
यत्र वैश्रवणः साक्षादुपास्ते शंकरं सदा॥ ५

यत्र तन्मानसं नाम सरो हंसालयं महत्।
यत्र भृङ्गीरिटिर्देवमुपास्ते शंकरं शिवम्॥ ६

गाणपत्यमवाप्याथ हरपार्श्वचरः सदा।
यत्र सिंहा वराहाश्च द्विपद्वीपिमृगैः सह॥ ७

क्रीडन्ति वन्यरतयः परस्परहिते रताः।
यत्र नद्यः समुत्पन्ना गङ्गाद्याः सागरंगमाः॥ ८

यत्र विश्वेश्वरः शम्भुरच्छिनद् ब्रह्मणः शिरः।
यत्रोत्पन्ना महावेत्रा भूतानां दण्डतां ययुः॥ ९

उमया यत्र सहितः शंकरो नीललोहितः।
ऋषिभिः प्रार्थितः पूर्वं ददौ यत्र गिरिः सुताम्॥ १०

शंकराय जगद्धात्रे शिवाय जगतीपते।
यत्र लेभे हरिश्चक्रमुपास्य बहुभिर्दिनैः॥ ११

पुष्करैः शतपत्रैश्च नेत्रेण च जगत्पतिम्।
गुहां यत्र समाश्रित्य क्रीडन्ते सिद्धकिन्नराः॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने मुनियोंसे महात्मा पिशाचका जो वृत्तान्त था, उसको आरम्भसे ही ठीक-ठीक कह सुनाया॥ १॥ वह सुनकर सभी मुनियोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले—'प्रभो! आपके दर्शनसे इस पिशाचके कर्मका अद्भुत फल प्रकट हुआ'॥ २॥ तत्पश्चात् प्रीतिमानोंके प्रियतम श्रीहरिकी उन समस्त मुनियोंने अर्चना की, इससे वे बड़े प्रसन्न हुए। फिर निर्मल प्रभातकालमें सूर्योदय होनेपर वे भगवान् श्रीकृष्ण गरुड़पर आरूढ़ हो उत्तम कैलास पर्वतको चले गये। जाते समय वे उन श्रेष्ठ मुनियोंसे कह गये कि आपलोग भी वहाँ पधारियेगा॥ ३-४॥ जहाँ इस विश्वपर शासन करनेवाले सिद्ध पुरुष व्रतका पालन करते हुए तपस्या करते हैं, जहाँ साक्षात् कुबेर सदा भगवान् शङ्करकी उपासना करते हैं॥ ५॥ जहाँ वह हंसोंका निवासस्थान मानस नामक महान् सरोवर है। जहाँ भृङ्गीरिटि नामक शिवपार्षद अपने आराध्यदेव कल्याणस्वरूप भगवान् शङ्करकी उपासना करते हैं और गणपतिपद प्राप्त करके सदा महादेवजीके पास ही रहते हैं। जहाँ सिंह, सूअर, हाथी, बाघ और मृग सदा साथ-साथ खेलते और एक-दूसरेके हितमें तत्पर रहकर जंगलकी पैदावारपर ही संतोष करते हैं, जहाँ गङ्गा आदि समुद्रगामिनी नदियाँ प्रकट हुई हैं॥ ६—८॥ जहाँ विश्वनाथ भगवान् शङ्करने ब्रह्माजीके सिरका उच्छेद किया था, जहाँ उत्पन्न हुए बड़े-बड़े बेंत प्राणियोंके लिये दण्डका काम देते हैं॥ ९॥ जहाँ उमासहित नीललोहित भगवान् शङ्कर निवास करते हैं। पृथ्वीनाथ! जहाँ पूर्वकालमें ऋषियोंके प्रार्थना करनेपर गिरिराज हिमवान्ने कल्याणकारी जगद्धाता भगवान् शिवको अपनी पुत्री प्रदान की थी। जहाँ श्रीहरिने बहुत दिनोंतक कमलों, शतदलों तथा अपने नेत्रद्वारा भी जगदीश्वर शिवकी आराधना करके उनसे सुदर्शन चक्र प्राप्त किया था। जहाँ सिद्ध और किन्नरगण गुफाका आश्रय लेकर अपनी

प्रियाभिः सह मोदन्ते पिबन्ते मधु चोत्तमम्।
यमुद्धृत्य भुजैः सर्वैः पौलस्त्यो विरराम ह॥ १३

तमारुह्य महाशैलं देवकीनन्दनो हरिः।
मानसस्योत्तरं तीरं जगाम यदुनन्दनः॥ १४

तपश्चर्तुं किल हरिर्विष्णुः सर्वेश्वरः शिवः।
जटी चीरी जगन्नाथो मानुषं वपुरास्थितः॥ १५

तपसे धृतचित्तस्तु शुचौ भूमावुपाविशत्।
अवरुह्य ततो यानाद् गरुडाद् वेदसम्मितात्॥ १६

द्वादशाब्दं तपश्चर्तुं मनो दध्रे ततो हरिः।
फाल्गुनेन तु मासेन समारेभे जगत्पतिः॥ १७

शाकभक्षः कृतजपो वेदाध्ययनतत्परः।
किमुद्दिश्य जगन्नाथस्तपश्चरति मानवः॥ १८

तं न विद्मो यथाकामं दुर्ज्ञेयेश्वरचिन्तना।
तपस्यति तदा विष्णौ पर्वते भूतसेविते॥ १९

गरुडः कश्यपसुत इन्धनानि समाचिनोत्।
होमार्थं वासुदेवस्य चरतस्तप उत्तमम्॥ २०

चक्रराजोऽथ पुष्पाणि संचिनोति तदा हरेः।
दिक्षु सर्वासु सर्वत्र ररक्ष जलजस्तदा॥ २१

खड्ग आहृत्य यत्नेन कुशान् सुबहुशस्तदा।
गदा कौमोदकी चैव परिचर्यां चकार ह॥ २२

धनुःप्रवरमत्युग्रं शार्ङ्गं दानवभीषणम्।
स्थितं हि पुरतस्तस्य यथेष्टं भृत्यवत् स्वयम्॥ २३

जुहोति भगवान् विष्णुरेधोभिर्बहुभिः सदा।
आज्यादिभिस्तदा हव्यैरग्निं सम्पूज्य माधवः॥ २४

सप्तार्चिषः समाप्तिं च समस्तव्यस्ततः कृती।
एकस्मिन्नेकदा मासे भुञ्जानो नियतात्मवान्॥ २५

द्वितीये त्वथ पर्याये भुञ्जन्नेकेन केशवः।
एकस्मिन् वत्सरे भुञ्जंस्तथैवैकेन केनचित्॥ २६

प्रियतमाओंके साथ क्रीडा करते, आनन्दित होते और उत्तम मधु पीते थे। जिस पर्वतको अपनी सारी भुजाओंसे उठाकर रावण दिग्विजयसे विरत हो गया था, उस महाशैल कैलासपर आरूढ़ हो यदुकुलको आनन्दित करनेवाले देवकीनन्दन श्रीहरि मानससरोवरके उत्तर तटपर गये॥ १०—१४॥ वे सर्वेश्वर शिवस्वरूप विष्णु—हरि वहाँ तपस्या करनेके लिये गये थे। मानव-शरीरधारी जगन्नाथ श्रीकृष्ण सिरपर जटा और शरीरमें चीर (वस्त्र) धारण किये तपस्याके लिये दृढ़ निश्चय करके पवित्र भूमिपर बैठे। इस प्रकार वेदस्वरूप गरुड़ नामक वाहनसे उतरकर श्रीहरिने वहाँ बारह वर्षोंतक तपस्या करनेका विचार किया। जगदीश्वर श्रीकृष्णने वहाँ फाल्गुन माससे तपस्या आरम्भ की। वे शाक खाकर रहते, जप करते तथा वेदाध्ययनमें तत्पर रहते थे। राजन्! मानवरूपधारी जगदीश्वर श्रीहरि किस उद्देश्यसे इच्छानुसार तप करते थे, इसे हम नहीं जानते (सर्वसमर्थ ईश्वरके लिये पुत्रके उद्देश्यसे भी तपस्याकी कोई सङ्गति नहीं है)। वास्तवमें ईश्वरका संकल्प प्राणिमात्रके लिये दुर्ज्ञेय है—वे क्या सोचकर कौन-सा कार्य करते हैं, यह जानना सभीके लिये कठिन है। भूतोंसे सेवित कैलास पर्वतपर उन दिनों श्रीकृष्णके तपस्या करते समय कश्यपकुमार गरुड़जी उत्तम तपमें लगे हुए उन वासुदेवके हवन-कर्मकी सिद्धिके लिये समिधाएँ जुटाया करते थे॥ १५—२०॥ चक्रराज सुदर्शन श्रीहरिके लिये फूल चुनता था। पाञ्चजन्य शङ्ख सम्पूर्ण दिशाओंमें सर्वत्र उनकी रक्षा करता था। नन्दक खड्ग बड़े यत्नसे बहुसंख्यक कुश लाया करता था। कौमोदकी नामक गदा भी उनकी आवश्यक परिचर्या किया करती थी॥ २१-२२॥ धनुषोंमें श्रेष्ठ अत्यन्त उग्र शार्ङ्ग नामक धनुष, जो दानवोंको भयभीत करनेवाला था, सदा भगवान्के सामने भृत्यके समान इच्छानुसार स्वयं खड़ा रहता था॥ २३॥ भगवान् श्रीकृष्ण सदा बहुत-सी समिधाओंद्वारा आहुति देते थे। उस समय कर्मकुशल माधवने घृत आदि हवनीय पदार्थोंद्वारा अग्निका पूजन करके संक्षेप और विस्तारके साथ अग्निहोत्र कर्मको पूर्ण किया। पहले वे एक महीनेमें एक बार खाकर मनको संयम-नियममें रखते हुए तप करने लगे। फिर वे केशव प्रत्येक दूसरे महीनेपर एक बार अन्न ग्रहण करने लगे। इस तरह समय बढ़ाते हुए वे एक वर्षमें एक बार किसी एक ही अन्नका आहार करने लगे॥ २४—२६॥

समाप्य तत् तपः सर्वमेवमेव जगत्पतिः।
द्वादशाब्दे तथा पूर्णे ऊनमासे जगत्पतिः॥ २७

जुह्वन्नग्निं समास्थाय पठन् मन्त्रं जनार्दनः।
आरण्यकं पठन् विष्णुः साक्षात् सर्वेश्वरो हरिः।
आस्ते ध्यानपरस्तत्र पठन् प्रणवमुत्तमम्॥ २८

इसी नियमसे वह सारी तपस्या पूर्ण करके जब बारहवाँ वर्ष पूर्ण होनेमें केवल एक मासकी कमी रह गयी, तब वे जगदीश्वर जनार्दन सर्वव्यापी साक्षात् सर्वेश्वर श्रीहरि अग्निकी स्थापना करके मन्त्रपाठ-पूर्वक हवन करने लगे तथा आरण्यकका पाठ और उत्तम प्रणवका जप करते हुए भगवान् शिवके ध्यानमें मग्न हो गये॥ २७-२८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां श्रीकृष्णतपोवर्णने चतुरशीतितमोऽध्यायः॥ ८४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें कैलासयात्राके प्रसङ्गमें श्रीकृष्णकी तपस्याका वर्णनविषयक चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८४॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णके समीप इन्द्र आदि देवताओं तथा उमासहित भगवान् शिवका आगमन

वैशम्पायन उवाच

तत इन्द्रः स्वयं तत्र आरुह्य गजमुत्तमम्।
द्रष्टुं सर्वेश्वरं विष्णुं तपस्यन्तं समाययौ॥ १
ततो यमस्तु भगवानारुह्य महिषं वरम्।
किंकरैश्च स्वयं साक्षादाययौ नगमुत्तमम्॥ २
प्रचेता हंसमारुह्य वारुणैश्च समन्वितः।
श्वेतच्छत्रसमायुक्तः श्वेतव्यजनवीजितः॥ ३
ययौ कैलासशिखरं द्रष्टुं केशवमञ्जसा।
अन्ये चापि तथा देवा आदित्या वसवस्तथा॥ ४
रुद्राश्चैव तथा राजन् द्रष्टुं केशवमाययुः।
सिद्धाश्च मुनयश्चैव गन्धर्वा यक्षकिन्नराः॥ ५
सर्वाश्चाप्सरसो राजन् नृत्यगीतविशारदाः।
ततो देवगणः सर्वः कैलासं समपद्यत॥ ६
पर्वतो नारदश्चैव तथान्ये मुनिसत्तमाः।
विस्मयस्थितलोलाक्षाः सर्वदेवगणास्तथा॥ ७
आश्चर्यं खलु पश्यध्वं न भूतं न भविष्यति।
योगिध्येयः स्वयं कृष्णो यत् तप्यति गुरुः स्वयम्।
को न्वत्र समयो भूयादिति ते मेनिरे गणाः॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर साक्षात् इन्द्र अपने उत्तम हाथी ऐरावतपर आरूढ़ हो तपस्यामें लगे हुए सर्वेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये वहाँ आये॥ १॥ इसके बाद साक्षात् भगवान् यम श्रेष्ठ महिषपर आरूढ़ हो अपने किङ्करोंके साथ उस उत्तम पर्वतपर आये॥ २॥ श्वेत छत्रसे युक्त वरुण हंसपर आरूढ़ हो अपने सेवकोंके साथ वहाँ पधारे। उनके सेवक श्वेत चँवरसे उनके लिये हवा कर रहे थे॥ ३॥ वे वरुण भी तपस्वी केशवका दर्शन करनेके लिये कैलासशिखरपर गये थे। राजन्! इसी प्रकार दूसरे देवता आदित्य, वसु और रुद्र आदि भी केशवका दर्शन करनेके लिये वहाँ पधारे थे। राजन्! सिद्ध, मुनि, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर तथा नृत्य और गीतमें निपुण समस्त अप्सराएँ भी वहाँ आयीं। इस प्रकार सब देवता कैलास पर्वतपर आये। पर्वत, नारद तथा अन्य श्रेष्ठ मुनि एवं समस्त देवता आश्चर्यसे चकित-नेत्र होकर परस्पर कहने लगे—'यह आश्चर्यकी बात देखो! ऐसा न तो हुआ है और न होगा। जो योगियोंके ध्येय हैं, वे साक्षात् जगद्गुरु श्रीकृष्ण स्वयं ही तप कर रहे हैं।' इस तपस्याका क्या उद्देश्य हो सकता है, इसपर वे सभी समुदायोंके लोग विचार करने लगे॥ ४—८॥

ततः समाप्ते सकले जगत्पते-
र्व्रते समूले सकलेश्वरः शिवः।
द्रष्टुं हरिं लोकहितैषिणं प्रभुं
ययौ भवान्या सह भूतसंघैः॥ ९

सार्धं कुबेरेण सगुह्यकेन
सख्या प्रियेण प्रभुरीश्वरः शिवः।
स्वयं जटी भूतपिशाचसंवृतः
शरी च खड्गी शशिखण्डशेखरः॥ १०

करेण बिभ्रत्सहदर्भकुण्डिकां
करेण साक्षादपरेण दीपिकाम्।
अन्येन बिभ्रन्महतीं स डिण्डिमां
शूलं च बिभ्रन्नपरेण बाहुना॥ ११

गुणान् स रुद्राक्षकृतान् समुद्वह-
ञ्जटाभिरापिङ्गलताम्रमूर्तिः।
विराजमानः प्रभुरिन्दुशेखरो
वृषेण युक्तः स सितेन शंकरः॥ १२

उमास्तनद्वन्द्वसमर्पिताननः-
स्तया समाश्लिष्य निपीडिताधरः।
गङ्गाम्बुविक्षालितचन्द्रशेखर-
स्तां चापि वीक्षन् बहुशस्तदा शिवः॥ १३

भस्माङ्गरागैरनुलेपिताननो
महोरगैर्बद्धजटः सनातनः।
शिरःकपालैः परिशोभितस्तदा
द्रष्टुं हरिं केशवमभ्ययाच्छिवः॥ १४

यमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तं
पुरातनं सांख्यनिबद्धदृष्टयः।
यस्यापि देवस्य गुणान् समग्रां-
स्तत्त्वांश्चतुर्विंशतिमाहुरेके॥ १५

यमाहुरेकं पुरुषं पुरातनं
कणादनामानमजं महेश्वरम्।
दक्षस्य यज्ञं विनिहत्य यो वै
विनाश्य देवानसुरान् सनातनः॥ १६

तदनन्तर जब जगत्पति श्रीकृष्णका वह सारा व्रत मूलसहित परिपूर्ण हो गया, तब सकलेश्वर शिव पार्वती तथा भूतगणोंके साथ उन लोकहितैषी प्रभु श्रीहरिसे मिलनेके लिये गये॥ ९॥ उनके साथ गुह्यकोंसहित प्रिय सखा कुबेर भी थे। सर्वसमर्थ ईश्वर भगवान् शिव स्वयं सिरपर जटा धारण किये भूतों और पिशाचोंसे घिरे हुए थे, धनुष, बाण और खड्गसे युक्त थे। उनके मस्तकपर अर्धचन्द्र शोभा दे रहा था॥ १०॥ एक हाथमें कुशसहित कमण्डलु धारण किये, दूसरे हाथमें जलती मशाल लिये, तीसरे हाथमें विशाल डमरू धारण किये और चौथे हाथमें त्रिशूल लिये, गलेमें रुद्राक्षकी मालाएँ धारण किये, कुछ-कुछ पिङ्गल एवं ताम्रवर्णके शरीरवाले, जटाओंसे सुशोभित कल्याणकारी भगवान् चन्द्रशेखर श्वेत वृषभसे संयुक्त हो बड़ी शोभा पा रहे थे॥ ११-१२॥ उनके मुख-मण्डलकी दृष्टि देवी उमाके उरोजोंपर लगी हुई थी। भगवती उमा भी महादेवजीका आलिङ्गन करके उनका अधर-चुम्बन कर लेती थीं। भगवान् शिवका चन्द्रार्ध-शोभित मस्तक गङ्गाजीके जलसे प्रक्षालित होता था और वे भगवान् शङ्कर उस समय बारम्बार देवी उमाकी ओर देखते रहते थे॥ १३॥ उनके मुखपर भस्मस्वरूप अङ्गराग लगा हुआ था। बड़े-बड़े सर्पोंसे उनकी जटाएँ बँधी हुई थीं। नरमुण्डोंकी मालासे सुशोभित वे सनातन शिव उस समय भगवान् केशवको देखनेके लिये उनके पास गये॥ १४॥ जिन्हें सांख्यदर्शी विद्वान् श्रेष्ठ, महान् एवं पुरातन पुरुष कहते हैं, जिन महादेवजीके समस्त गुणोंको ही एक श्रेणीके विद्वान् चौबीस तत्त्व कहते हैं॥ १५॥ जिन्हें एकमात्र पुरातन पुरुष, कणाद नामसे प्रसिद्ध, अजन्मा महेश्वर कहा गया है, जिन सनातन महादेवने दक्षयज्ञका विध्वंस करके देवता और असुरोंको भी मार भगाया था॥ १६॥

यं विदुर्भूततत्त्वज्ञं भूतेशं भूतभावनम्।
वामदेवं विरूपाक्षमाहुस्तत्त्वविदो जनाः॥ १७
महादेवं सहस्राक्षं कालमूर्तिं चतुर्भुजम्।
रुद्रं रोदननामानमाहुर्विश्वेश्वरं शिवम्॥ १८
अप्रमेयमनाधारमाहुर्माहेश्वरा जनाः।
नग्नं नग्नपरीतं तु नागिनं त्वग्निवर्चसम्॥ १९
आहुर्विश्वेश्वरं शान्तं शिवमादिं सनातनम्।
तस्य मूर्तिरिमाः सर्वा धराद्याः सकला नृप॥ २०
भूमिरापोऽनलो वायुः खं सूर्यश्च तथा शशी।
अग्निश्च यजमानश्च प्रकृतिश्चैवमष्टधा॥ २१
महादेवो महायोगी गिरीशो नीललोहितः।
आदिकर्ता महाभर्ता शूलपाणिरुमापतिः।
द्रष्टुं विश्वेश्वरं विष्णुं भूतसंघैः समाययौ॥ २२

जिन्हें तत्त्ववेत्ता पुरुष सम्पूर्ण भूतोंका तत्त्वज्ञ जानते हैं और जिन्हें भूतनाथ, भूतभावन, वामदेव तथा विरूपाक्ष कहते हैं। महादेव, सहस्राक्ष, कालमूर्ति, चतुर्भुज, रुद्र, रोदन नामधारी और विश्वेश्वर शिव कहकर पुकारते हैं। जिन्हें शिवभक्त पुरुष अप्रमेय, आधाररहित, नग्न, नग्न पार्षदोंसे घिरा हुआ, नागयुक्त, अग्नितुल्य तेजस्वी, विश्वेश्वर, शान्तस्वरूप, आदि एवं सनातन शिव कहते हैं। राजन्! ये पृथ्वी आदि सारे तत्त्व उन्हींकी मूर्ति हैं॥ १७—२०॥ पृथ्वीरहित जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, यजमान और प्रकृति—ये महादेवजीके आठ विग्रह हैं॥ २१॥ वे महादेव, महायोगी, गिरीश, नील-लोहित, आदिकर्ता, महाभर्ता, शूलपाणि एवं उमावल्लभ शिव जगदीश्वर श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये भूत-समूहोंके साथ वहाँ आये॥ २२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां शिवागमनकथने पञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥ ८५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें कैलासयात्राके प्रसङ्गमें शिवजीके आगमनका कथनविषयक पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८५॥

षडशीतितमोऽध्यायः

पिशाचों, मुनियों और अप्सराओंके साथ उमासहित भगवान् शङ्करका श्रीकृष्णके समीप गमन

वैशम्पायन उवाच

तस्याग्रे समपद्यन्त भूतसंघाः सहस्रशः।
घण्टाकर्णो विरूपाक्षः कुण्डधारः कुमुद्वहः॥ १
दीर्घरोमा दीर्घभुजो दीर्घबाहुर्निरञ्जनः।
उरुनेत्रः शतमुखः शतग्रीवः शतोदरः॥ २
कुण्डोदरो महाग्रीवः स्थूलजिह्वो द्विबाहुकः।
पार्श्ववक्त्रः सिंहमुख उन्नतांसो महाहनुः॥ ३
त्रिबाहुः पञ्चबाहुश्च व्याघ्रवक्त्रः सिताननः।
एते चान्ये च बहवो दीर्घास्या दीर्घलोचनाः॥ ४
नृत्यन्तः प्रहसन्तश्च स्फोटयन्तः परस्परम्।
तथान्ये घोररूपाश्च तथान्ये विकृताननाः॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उस समय भगवान् शङ्करके आगे सहस्रों भूतसमूह चल रहे थे—घण्टाकर्ण, विरूपाक्ष, कुण्डधार, कुमुद्वह, दीर्घरोमा, दीर्घभुज, दीर्घबाहु, निरञ्जन, उरुनेत्र, शतमुख, शतग्रीव, शतोदर, कुण्डोदर, महाग्रीव, स्थूलजिह्व, द्विबाहु, पार्श्ववक्त्र, सिंहमुख, उन्नतांस, महाहनु, त्रिबाहु, पञ्चबाहु, व्याघ्रवक्त्र और सितानन—ये तथा दूसरे भी बहुत-से बड़े-बड़े मुख और विशाल नेत्रवाले भूत नाचते, हँसते और परस्पर ताल ठोंकते थे। इनके अतिरिक्त भी बहुत-से घोर रूप और विकृत मुखवाले भूत थे,

प्रेतभक्षाः प्रेतवाहा मांसशोणितभोजनाः।
शवानि सुबहून्याशु भक्षयन्तस्ततस्ततः॥ ६

पिबन्तो रुधिरं घोरं खण्डयन्तः शवान् बहून्।
कराला वितता दीर्घा धमनिस्नायुसंतताः॥ ७

नानाविधाः सुवीराश्च शूलाग्रप्रोतमानुषाः।
शिरोमालावृताः केचिदान्त्रपाशावपाशिताः॥ ८

डिण्डिमैरट्टहासैश्च नादयन्तो वसुन्धराम्।
कपालिनो भैरवाश्च जटिला मुण्डिनस्तथा॥ ९

एवं बहुविधा घोराः पिशाचा विकृताननाः।
तथान्ये मुनिवीराश्च ध्यायन्तः परमेश्वरम्॥ १०

पठन्तो वेदवाक्यानि साङ्गानि विविधानि च।
कुण्डिकास्थकराः केचित् केचित् कुशविचारिणः॥ ११

कौपीनवसनाः केचित् केचित् कार्पाससंवृताः।
स्तुवन्तः शंकरं भक्त्या स्तोत्रैर्माहेश्वरैस्तथा॥ १२

एकत्र ते मुनिगणा अपरत्र गणास्तथा।
अन्यत्र सिद्धगन्धर्वाः प्रियाभिः सह संगताः॥ १३

नृत्यन्ति नृत्यकुशला गायन्ति स्म च कन्यकाः।
विद्याधरास्तथान्यत्र स्तुवन्तः शंकरं शिवम्॥ १४

ननृतुस्तस्य पुरतो गच्छन्तोऽप्सरसां गणाः।
एवमेतैर्महाघोरैः पिशाचैर्भूतकिन्नरैः॥ १५

मुनिभिश्चैव प्रमथैः समं शर्वः समाययौ।
यत्र विश्वेश्वरो विष्णुस्तपस्तेपे सुदारुणम्॥ १६

यत्र ते लोकपालाश्च तिष्ठन्ति स्म दिदृक्षया।
उमया लोकभाविन्या गङ्गया चन्द्रशेखरः॥ १७

स सर्वलोकप्रभवो भवो विभु-
जटी च साक्षात् प्रणवात्मकः कृती।
द्रष्टुं हरिं विष्णुमुदारविक्रमो
ययौ यथेष्टं पिशिताशनैर्वृतः॥ १८

जो मुर्दे खाते, मुर्दोंको ढोकर ले जाते और मांस तथा रक्तका आहार करते थे। वे बहुत-से शव शीघ्रतापूर्वक इधर-उधरसे लाकर खाते थे, भयंकर रक्त पीते थे और बहुत-से शवोंके टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे। वे सब-के-सब विस्तृत, विशाल और विकराल थे। उनके शरीरमें व्याप्त हुई नस-नाड़ियाँ स्पष्ट दिखायी देती थीं। वे नाना प्रकारकी आकृतिवाले भूत बड़े वीर थे। उन्होंने अपने शूलोंके अग्रभागमें कितने ही मनुष्योंकी लाशें पिरो रखी थीं। कितने ही भूत नरमुण्डोंकी मालाओंसे अलंकृत थे। कितनोंने अपने-आपको अँतड़ियोंके पाशोंसे बाँध रखा था॥ १—८॥ कोई नगाड़े बजाते और कोई अट्टहास करते हुए पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते थे। कपाली, भैरव, जटिल और मुण्डी—ये भाँति-भाँतिके विकृत मुखवाले चार प्रकारके घोर पिशाच तथा अन्य मुनिवीर वहाँ परमेश्वरका ध्यान और अङ्गोंसहित वेदोंके विविध वाक्योंका पाठ करते थे। कोई कमण्डलुमें हाथ डाले हुए थे, कोई कुश लेकर विचर रहे थे, कितने ही वस्त्रकी जगह कौपीनमात्र धारण करते थे और कितनोंने सूती वस्त्रोंसे अपने अङ्गोंको ढक रखा था। वे सब-के-सब भक्तिभावसे शिवसम्बन्धी स्तोत्रोंद्वारा भगवान् शङ्करकी स्तुति करते थे। एक ओर तो मुनिगण थे और दूसरी ओर प्रमथगण। इसी तरह एक ओर सिद्ध और गन्धर्व अपनी प्रियतमाओंके साथ वहाँ आये थे॥ ९—१३॥ नृत्यकुशल गन्धर्वकन्याएँ नाचती और गाती थीं। अन्यत्र विद्याधरगण कल्याणकारी भगवान् शङ्करकी स्तुति करते थे॥ १४॥ उनके आगे-आगे चलती हुई अप्सराएँ नृत्य करती थीं। इस प्रकार इन महाभयंकर पिशाचों, भूतों, किन्नरों, मुनियों और प्रमथगणोंके साथ भगवान् शिव उस स्थानपर आये, जहाँ जगदीश्वर श्रीकृष्ण अत्यन्त कठोर तपस्या करते थे और जहाँ उनके दर्शनकी इच्छासे लोकपालगण खड़े थे। लोकभाविनी उमा और गङ्गाके साथ भगवान् चन्द्रशेखर वहाँ गये॥ १५—१७॥ सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्तिके कारणभूत सर्वव्यापी भगवान् भव साक्षात् प्रणवस्वरूप हैं। वे जटाधारी और कृतकृत्य हैं। उनका पराक्रम महान् है। वे पिशाचोंसे घिरकर यथेष्ट भावसे श्रीहरिका दर्शन करनेके लिये गये॥ १८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां महादेवागमने षडशीतितमोऽध्यायः॥ ८६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें कैलासयात्राके प्रसङ्गमें महादेवजीका आगमनविषयक छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८६॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा महादेवजीकी स्तुति

वैशम्पायन उवाच

एवं बहुविधैर्भूतैः पिशाचैरुरगैः सह।
आगत्य भगवान् रुद्रः शंकरो वृषवाहनः॥ १

ददर्श विष्णुं देवेशं तपन्तं तप उत्तमम्।
जुह्वानमग्निं विधिवद् द्रव्यैर्मेध्यैर्जगत्पतिम्॥ २

गरुडाहृतकाष्ठं तु जटिलं चीरवाससम्।
चक्रेणानीतकुसुमं खड्गानीतकुशं तथा॥ ३

गदाकृतसमाचारं देवदेवं जनार्दनम्।
इन्द्राद्यैर्देवसंघैश्च वृतं मुनिगणैः सह॥ ४

अचिन्त्यं सर्वभूतानां ध्यायन्तं किमपि प्रभुम्।
अवरुह्य वृषाच्छर्वो भगवान् भूतभावनः॥ ५

ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा ललाटाक्ष उमापतिः।
ततो भूतपिशाचाश्च राक्षसा गुह्यकास्तथा॥ ६

मुनयो विप्रवर्याश्च जयशब्दं प्रचक्रिरे।
जय देव जगन्नाथ जय रुद्र जनार्दन॥ ७

जय विष्णो हृषीकेश नारायण परायण।
जय रुद्र पुराणात्मञ्जय देव हरेश्वर॥ ८

आदिदेव जगन्नाथ जय शंकर भावन।
जय कौस्तुभदीप्ताङ्ग जय भस्मविराजित॥ ९

जय चक्रगदापाणे जय शूलिंस्त्रिलोचन।
जय मौक्तिकदीप्ताङ्ग जय नागविभूषण॥ १०

इति ते मुनयः सर्वे प्रणामं चक्रिरे हरिम्।
तत उत्थाय भगवान् दृष्ट्वा देवमवस्थितम्॥ ११

वृषध्वजं विरूपाक्षं शंकरं नीललोहितम्।
ततो हृष्टमना विष्णुस्तुष्टाव हरमीश्वरम्॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस तरह नाना प्रकारके भूतों, पिशाचों और सर्पोंके साथ आकर सबका कल्याण करनेवाले वृषभवाहन भगवान् रुद्रने उत्तम तपस्या करते हुए देवेश्वर विष्णु (कृष्ण)-को देखा। वे जगदीश्वर श्रीकृष्ण भाँति-भाँतिके पवित्र द्रव्योंद्वारा विधिपूर्वक अग्निमें आहुति देते थे॥ १-२॥ वे सिरपर जटा और अङ्गोंमें चीर वस्त्र धारण किये बैठे थे। गरुड़जी उनके लिये समिधा ला देते थे, चक्र फूल चुन लाता था, खड्ग कुशा लाया करता था तथा गदा भी उन देवाधिदेव जनार्दनकी आवश्यक परिचर्या करती थी। वे इन्द्र आदि देवसमूहों तथा मुनिगणोंसे घिरे हुए थे॥ ३-४॥ समस्त प्राणियोंके लिये अचिन्त्य वे भगवान् श्रीकृष्ण किसी अनिर्वचनीय ध्येय वस्तुका चिन्तन कर रहे थे। उन्हें देखते ही ललाटनेत्रधारी, प्रसन्नचित्त, उमावल्लभ, भूतभावन भगवान् शर्व अपने वाहन वृषभसे उतर पड़े। उस समय वे बड़े प्रसन्न थे। तदनन्तर भूत, पिशाच, राक्षस, गुह्यक तथा ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ मुनिगण वहाँ जय-जयकार करने लगे—'देव! जगन्नाथ! आपकी जय हो। रुद्रस्वरूप जनार्दन! आपकी जय हो॥ ५—७॥ इन्द्रियोंके प्रेरक, सर्वव्यापी, नारायण! आपकी जय हो। सबको आश्रय देनेवाले रुद्रदेव! आपकी जय हो! पुराणात्मन्! देव! हरेश्वर! आपकी जय हो॥ ८॥ आदिदेव! जगन्नाथ! आपकी जय हो। शङ्कर! सबके पालक एवं उत्पादक देव! आपकी जय हो। कौस्तुभमणिसे उद्भासित अङ्गवाले नारायण! आपकी जय हो। भस्ममय अङ्गरागसे विराजमान शिव! आपकी जय हो॥ ९॥ हाथोंमें चक्र और गदा धारण करनेवाले नारायण! आपकी जय हो। शूलधारी त्रिलोचन! आपकी जय हो। मोतियोंकी मालासे उद्भासित अङ्गवाले श्रीकृष्ण! आपकी जय हो। नागहारसे विभूषित महादेव! आपकी जय हो'॥ १०॥ इस प्रकार स्तुति करके उन समस्त मुनियोंने वहाँ श्रीहरिको प्रणाम किया। उस समय वृषभध्वज, विरूपाक्ष एवं नीललोहित रूपवाले, पापहारी, ईश्वर, शङ्करदेवको वहाँ उपस्थित देख श्रीकृष्णका चित्त हर्षसे खिल उठा और उन्होंने महादेवजीकी स्तुति आरम्भ की॥ ११-१२॥

श्रीभगवानुवाच

नमस्ते शितिकण्ठाय नीलग्रीवाय वेधसे।
नमस्ते शोचिषे अस्तु नमस्ते उपवासिने॥ १३

नमस्ते मीढुषे अस्तु नमस्ते गदिने हर।
नमस्ते विश्वतनवे वृषाय वृषरूपिणे॥ १४

अमूर्ताय च देवाय नमस्तेऽस्तु पिनाकिने।
नमः कुब्जाय कूपाय शिवाय शिवरूपिणे॥ १५

नमस्तुष्टाय तुण्डाय नमस्तुटितुटाय च।
नमः शिवाय शान्ताय गिरिशाय च ते नमः॥ १६

नमो हराय हिप्राय नमो हरिहराय च।
नमोऽघोराय घोराय घोराघोरप्रियाय च॥ १७

नमोऽघण्टाय घण्टाय नमो घटिघटाय च।
नमः शिवाय शान्ताय गिरिशाय च ते नमः॥ १८

नमो विरूपरूपाय पुराय पुरहारिणे।
नम आद्याय बीजाय शुचयेऽष्टस्वरूपिणे॥ १९

नमः पिनाकहस्ताय नमः शूलासिधारिणे।
नमः खट्वाङ्गहस्ताय नमस्ते कृत्तिवाससे॥ २०

नमस्ते देवदेवाय नम आकाशमूर्तये।
हराय हरिरूपाय नमस्ते तिग्मतेजसे॥ २१

भक्तप्रियाय भक्ताय भक्तानां वरदायिने।
नमोऽभ्रमूर्तये देव जगन्मूर्तिधराय च॥ २२

नमश्चन्द्राय देवाय सूर्याय च नमो नमः।
नमः प्रधानदेवाय भूतानां पतये नमः॥ २३

करालाय च मुण्डाय विकृताय कपर्दिने।
अजाय च नमस्तुभ्यं भूतभावनभावन॥ २४

श्रीभगवान् बोले—जिनके कण्ठमें हालाहल विष है, अतएव जो नीलग्रीव (नीलकण्ठ) कहे गये हैं। वेधा (जगत्के स्रष्टा), दीप्तिमान् तथा उपवास-व्रतमें तत्पर उन महादेवजीको नमस्कार है!॥ १३॥ हर! आप सेचन करनेमें समर्थ हैं, आपको नमस्कार है। आप गदाधारी हैं, आपको नमस्कार है। यह सम्पूर्ण विश्व आपका शरीर है, आपको नमस्कार है। आप वृषभरूपधारी धर्म हैं, आपको नमस्कार है॥ १४॥ आप अमूर्त देवता तथा पिनाकधारी हैं; आपको नमस्कार है। आप कुब्ज, कूपमें निवास करनेवाले और कल्याणस्वरूप शिव हैं, आपको नमस्कार है॥ १५॥ आप संतुष्ट रहनेवाले, मुखस्वरूप तथा दुष्टोंकी हिंसा करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप पर्वतपर शयन करनेवाले शान्तस्वरूप शिव हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है॥ १६॥ आप हर, हिप्र (रेचक एवं पूरकरूप) तथा हरिहरस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है नमस्कार है!! आप अघोर, घोर तथा घोराघोरप्रिय हैं, आपको नमस्कार है॥ १७॥ आप घण्टारहित, घण्टायुक्त तथा घटिघट (स्रष्टाके भी स्रष्टा) हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है। आप पर्वतपर शयन करनेवाले शान्तस्वरूप शिव हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है॥ १८॥ आप विरूपरूप धारण करनेवाले हैं, क्षेत्रस्वरूप तथा असुरोंके तीनों पुरोंका नाश करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप सबके आदि-बीज, परम पवित्र तथा अष्टमूर्तिधारी हैं, आपको नमस्कार है॥ १९॥ आपके हाथमें पिनाक शोभा पाता है, आपको नमस्कार है। आप शूल और खड्ग धारण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप अपने हाथमें खट्वाङ्ग धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। आप गजासुरके चर्मको वस्त्रके रूपमें ओढ़ते हैं, आपको नमस्कार है॥ २०॥ देवताओंके भी देवता आपको नमस्कार है। आकाशस्वरूप आपको नमस्कार है। हरिरूपधारी आप भगवान् हरको नमस्कार है। प्रचण्ड तेजवाले सूर्यतुल्य आपको नमस्कार है॥ २१॥ आप भक्तोंके प्रिय, स्वयं भी श्रीहरिके भक्त तथा भक्तोंको वर देनेवाले हैं। देव! आप मेघस्वरूप हैं तथा विश्वरूप धारण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है॥ २२॥ आप चन्द्रदेवको नमस्कार है। आप सूर्यदेवको भी बारम्बार नमस्कार है। आप प्रधान देवता तथा सम्पूर्ण भूतोंके अधिपति हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है॥ २३॥ आप विकराल रूपधारी, मूँड़ मुँड़ाये हुए संन्यासी, विकृतस्वरूप तथा जटा-जूटधारी हैं। भूतभावन-भावन! आप अजन्मा हैं, आपको नमस्कार है॥ २४॥

नमोऽस्तु हरिकेशाय पिंगलाय नमो नमः।
नमस्तेऽभीषुहस्ताय भीरुभीरुहराय च॥ २५

हराय भीतिरूपाय घोराणां भीतिदायिने।
नमो दक्षमखघ्नाय भगनेत्रापहारिणे॥ २६

उमापते नमस्तुभ्यं कैलासनिलयाय च।
आदिदेवाय देवाय भवाय भवरूपिणे॥ २७

नमः कपालहस्ताय नमोऽजमथनाय च।
त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्र्यक्षाय च शिवाय च॥ २८

वरदाय वरेण्याय नमस्ते चन्द्रशेखर।
नम इध्माय हविषे ध्रुवाय च कृशाय च॥ २९

नमस्ते शक्तियुक्ताय नागपाशप्रियाय च।
विरूपाय सुरूपाय भद्रपानप्रियाय च॥ ३०

श्मशानरतये नित्यं जयशब्दप्रियाय च।
खरप्रियाय खर्वाय खराय खररूपिणे॥ ३१

भद्रप्रियाय भद्राय भद्ररूपधराय च।
विरूपाय सुरूपाय महाघोराय ते नमः॥ ३२

घण्टाय घण्टभूषाय घण्टभूषणभूषिणे।
तीव्राय तीव्ररूपाय तीव्ररूपप्रियाय च॥ ३३

नग्नाय नग्नरूपाय नग्नरूपप्रियाय च।
भूतावास नमस्तुभ्यं सर्वावास नमो नमः॥ ३४

नमः सर्वात्मने तुभ्यं नमस्ते भूतिदायक।
नमस्ते वामदेवाय महादेवाय ते नमः॥ ३५

सूर्यकी किरणें आपके केश हैं, आपको नमस्कार है। आपकी अङ्गकान्ति पिङ्गलवर्णकी है, आपको बारम्बार नमस्कार है। आप ही मुझ श्रीकृष्णके रूपमें पार्थके सारथि बनकर हाथमें चाबुक लिये रहते हैं। आप भीरु-से-भीरु (अत्यन्त भयभीत) तथा हर (महान् संहारकारी) हैं, आपको नमस्कार है॥ २५॥ आप भीतिस्वरूप हर तथा भयंकर दैत्योंको भय देनेवाले हैं, दक्षके यज्ञका विध्वंस तथा भग देवताके नेत्रका अपहरण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है॥ २६॥ उमापते! आप कैलासवासी, आदि देवता, देवमय, जगत्स्वरूप तथा भवनामसे प्रसिद्ध हैं, आपको नमस्कार है॥ २७॥ आप हाथमें कपाल धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। आपने ब्रह्माजीके सिरको मथ डाला है, आपको नमस्कार है। आप त्रिनेत्रधारी होनेके कारण त्र्यम्बक और त्र्यक्ष कहलाते हैं, आप भगवान् शिवको नमस्कार है॥ २८॥ चन्द्रशेखर! आप वरदायक एवं वरणीय देवताको नमस्कार है, आप ही समिधा, हविष्य, ध्रुव एवं कृशरूप हैं, आपको नमस्कार है॥ २९॥ आप शक्तिसे संयुक्त, नागपाशको पसंद करनेवाले, विरूप एवं सुन्दर रूप धारण करनेवाले तथा भद्रपान (मङ्गलकारी पेय-रस)-के प्रेमी हैं, आपको नमस्कार है॥ ३०॥ आप श्मशानभूमिमें प्रसन्नताका अनुभव करते हैं, जय-जयकारका शब्द आपको सदा ही प्रिय है, खर नामक राक्षस आपकी प्रीतिका पात्र था, आपका स्वरूप खर्व (नाटा) है, आप खर (तीव्र या कर्कश स्वभाववाले) हैं, खर (गर्दभ या राक्षस) आपका ही रूप है, आपको नमस्कार है॥ ३१॥ आपको माङ्गलिक वस्तु प्रिय है, आप मङ्गलमय हैं, मङ्गलरूपधारी हैं, विरूप, सुन्दर रूपवाले तथा महाभयंकर हैं, आपको नमस्कार है॥ ३२॥ आप घण्टारूप हैं, घण्टासे विभूषित हैं और घण्टायुक्त भूषण धारण करते हैं। आप तीव्र हैं, तीव्र रूपधारी हैं तथा तीव्र रूपवाले पदार्थ आपको विशेष प्रिय हैं, आपको नमस्कार है॥ ३३॥ आप नग्न हैं, नग्नरूपधारी हैं तथा नग्नरूपवाले आपको विशेष प्रिय हैं। आप सम्पूर्ण भूतोंके आवासस्थान हैं, आपको नमस्कार है। सबके आश्रयभूत महेश्वर! आपको नमस्कार है, नमस्कार है॥ ३४॥ आप सर्वात्माको नमस्कार है। ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले रुद्रदेव! आपको नमस्कार है। आप वामदेव हैं, आपको नमस्कार है। आप महादेव हैं, आपको नमस्कार है॥ ३५॥

का नु वाक्स्तुतिरूपा ते को नु स्तोतुं प्रशक्नुयात्।
कस्य वा स्फुरते जिह्वा स्तुतौ स्तुतिमतां वर॥ ३६

भला कौन ऐसी वाणी है, जो आपकी स्तुतिके अनुरूप होगी (आपकी महिमा वाणीकी पहुँचसे बाहर है)? कौन पुरुष आपकी स्तुति कर सकता है? स्तुतिमानों (स्तवनीय महापुरुषों)-में श्रेष्ठ महेश्वर! किसकी जिह्वा आपकी स्तुतिके लिये सचेष्ट हो सकती है?॥ ३६॥

क्षमस्व भगवन् देव भक्तोऽहं त्राहि मां हर।
सर्वात्मन् सर्वभूतेश त्राहि मां सततं हर॥ ३७

रक्ष देव जगन्नाथ लोकान् सर्वात्मना हर।
त्राहि भक्तान् सदा देव भक्तप्रिय सदा हर॥ ३८

भगवन्! महादेव! मेरा अपराध क्षमा कीजिये। हर! मैं आपका भक्त हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये। सर्वात्मन्! सर्वभूतेश्वर हर! आप निरन्तर मेरा संरक्षण करें। देव! जगन्नाथ! हर! आप सम्पूर्ण लोकोंका सब प्रकारसे संरक्षण करें। देव! सदा अपने भक्तोंसे प्रेम करनेवाले हर! भक्तजनोंकी सदा रक्षा कीजिये॥ ३७-३८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां विष्णुकृतेश्वरस्तुतौ सप्ताशीतितमोऽध्यायः॥ ८७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें कैलासयात्राके प्रसङ्गमें श्रीकृष्णकृत महादेवस्तुतिविषयक सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८७॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

भगवान् शिवद्वारा श्रीविष्णुकी स्तुति

वैशम्पायन उवाच

ततो वृषध्वजो देवः शूली साक्षादुमापतिः।
करं करेण संस्पृश्य विष्णोश्चक्रधरस्य ह॥ १
प्रोवाच भगवान् रुद्रः केशवं गरुडध्वजम्।
शृण्वतां सर्वदेवानां मुनीनां भावितात्मनाम्॥ २
किमिदं देवदेवेश चक्रपाणे जनार्दन।
तपश्चर्या किमर्थं ते प्रार्थना तव का विभो॥ ३
स्वयं विष्णुर्भवान् नित्यस्तपस्त्वं तपसां हरे।
पुत्रार्थं यदि ते देव तपश्चर्या जनार्दन॥ ४
पुत्रो दत्तो मया देव पूर्वमेव जगत्पते।
शृणु तत्रापि भगवन् कारणं कारणात्मक॥ ५
तपश्चर्तुं प्रवृत्तोऽहं कुतश्चित् कारणाद्धरे।
वर्षायुतं महाघोरं पुरा कृतयुगे तदा॥ ६
भवानी तत्र मे देव परिचर्तुं तदाभवत्।
पित्रा नियुक्ता देवेश उमैषा वरवर्णिनी॥ ७

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर अपनी ध्वजामें वृषभका चिह्न धारण करनेवाले देवता, त्रिशूलधारी साक्षात् उमावल्लभ भगवान् रुद्र चक्रधारी श्रीकृष्णका हाथ अपने हाथमें लेकर समस्त देवताओं तथा पवित्र अन्तःकरणवाले मुनियोंके सुनते हुए गरुड़ध्वज केशवसे इस प्रकार बोले—॥ १-२॥ 'देवदेवेश्वर! चक्रपाणे! जनार्दन! आप यह क्या कर रहे हैं? आपकी यह तपश्चर्या किसलिये हो रही है? प्रभो! आपकी प्रार्थना क्या है?॥ ३॥ हरे! आप स्वयं नित्य-स्वरूप भगवान् विष्णु हैं, तपस्याओंकी भी तपस्या हैं। देव! जनार्दन! जगत्पते! यदि आपकी यह तपस्या पुत्रके लिये हो रही है तो मैंने पहलेसे ही आपको पुत्र दे रखा है। देव! भगवन्! कारणात्मक नारायण! इसमें जो कारण है, उसे आप सुनिये॥ ४-५॥ हरे! प्राचीन कालके कृतयुगकी बात है कि मैं उन दिनों किसी कारणवश दस हजार वर्षोंके लिये महाघोर तपस्यामें संलग्न हुआ था॥ ६॥ देव! देवेश्वर! उस समय वहाँ यह मेरी धर्मपत्नी परम सुन्दरी उमा अपने पिताकी आज्ञासे मेरी सेवा करती थी'॥ ७॥

भीत इन्द्रस्तदा देव मारं मां प्रेषयत्तदा।
मधुना सह संयुक्तो मारो मामागतस्तदा॥ ८

लक्ष्यं मामकरोत् तत्र बाणस्य प्रेषितस्य ह।
एषा मां सेवते तत्र दानात् पुष्पादिनां हरे॥ ९

ततः क्रुद्धोऽहमभवं दृष्ट्वा मारं तथाविधम्।
क्रुद्ध्यतो मम देवेश नेत्रादग्निः पपात ह॥ १०

सोऽयमग्निस्तदा मारं भस्मसात् कृतवान् हरे।
अचिन्तयं तदा विष्णो शक्रस्यैतच्चिकीर्षितम्॥ ११

ततः प्रभृति देवेश दया तं प्रति वर्तते।
ब्रह्मणा च नियुक्तोऽस्मि प्रीतस्तत्र जनार्दन॥ १२

नियुक्तः पुत्ररूपेण स ते देव जगत्पते।
ज्येष्ठस्तव सुतो देव प्रद्युम्नेत्यभिविश्रुतः॥ १३

स्मरं तं विद्धि देवेश नात्र कार्या विचारणा।
इत्युक्त्वा पुनराहेदं याथात्म्यं दर्शयन्निव॥ १४

मुनीनां श्रोतुकामानां याथात्म्यं तत्र सत्तमः।
अञ्जलिं सम्पुटं कृत्वा विष्णुमुद्दिश्य शंकरः॥ १५

उमया सार्धमीशानो याथात्म्यं वक्तुमैहत।
हरे कुर्वति तत्रैवमञ्जलिं कुरुसत्तम॥ १६
मुनयो देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह किन्नराः।
अञ्जलिं चक्रिरे विष्णौ देवदेवेश्वरे हरौ॥ १७

महेश्वर उवाच

यत्तत् कारणमाहुस्तत् सांख्याः प्रकृतिसंज्ञकम्।
ततो महान् समुत्पन्नः प्रकृतिर्यस्य कारणम्॥ १८

त्रिधा भूतं जगद्योनिं प्रधानं कारणात्मकम्।
सत्त्वं रजस्तमो विष्णो जगदण्डं जनार्दन॥ १९

तस्य कारणमाहुस्त्वां सांख्यप्रकृतिसंज्ञकम्।
तद्रूपेण भवान् विष्णो परिणम्याधितिष्ठति॥ २०

'देव! मेरी उस तपस्यासे इन्द्रको भय हुआ, अतः उस समय उन्होंने कामदेवको मेरे पास भेजा। तब कामदेव अपने सखा वसन्तको साथ लेकर मेरे समीप आया॥ ८॥ हरे! वहाँ पहुँचते ही कामदेवने मुझे अपने चलाये हुए बाणका निशाना बनाया। यह पार्वती वहाँ फूल आदि जुटानेके द्वारा मेरी सेवा करती थी॥ ९॥ देवेश्वर! कामदेवको अपने ऊपर बाण चलाते देख मैं उसके ऊपर कुपित हो उठा। क्रोध करनेपर मेरे ललाटस्थ नेत्रसे सहसा अग्निका प्रादुर्भाव हुआ॥ १०॥ सर्वव्यापी हरे! उस अग्निने उस समय कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया, तब मेरे ध्यानमें यह बात आयी कि यह सारी करतूत इन्द्रकी थी॥ ११॥ देवेश्वर! जनार्दन! तभीसे कामदेवके प्रति मुझे बड़ी दया आती है। मैं मन-ही-मन उसपर प्रसन्न हूँ। ब्रह्माजीने भी मुझे प्रेरित किया है कि मैं उसके लिये नूतन शरीर-धारणका अवसर दूँ॥ १२॥ देव! जगत्पते! अतः मैंने कामदेवको आपके पुत्ररूपसे नियुक्त किया है। देव! वह प्रद्युम्न नामसे विख्यात आपका ज्येष्ठ पुत्र होगा। देवेश्वर! आप उसे कामदेव ही समझें, इसमें अन्यथा विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है' ऐसा कहकर श्रीहरिके यथार्थ स्वरूपको सुननेकी इच्छावाले मुनियोंके समक्ष उनके यथावत् स्वरूपका परिचय देते हुए-से सत्पुरुषशिरोमणि सर्वेश्वर भगवान् शङ्कर उमादेवीके साथ श्रीकृष्णके लिये हाथ जोड़कर फिर इस प्रकार बोलने—उनकी यथात्मताका प्रतिपादन करनेको उद्यत हुए। कुरुश्रेष्ठ! वहाँ महादेवजीके इस प्रकार हाथ जोड़नेपर दूसरे-दूसरे मुनि, देवता, गन्धर्व, सिद्ध तथा किन्नरोंने भी उन सर्वव्यापी देवदेवेश्वर श्रीहरिके समीप हाथ जोड़ लिये॥ १३—१७॥

महेश्वर बोले—सांख्यशास्त्रके विद्वान् जिस प्रकृतिसंज्ञक कारणतत्त्वका वर्णन करते हैं, उससे 'महान्' (महत्तत्त्व या समष्टि बुद्धि) उत्पन्न हुआ, जिसका उपादान कारण प्रकृति है॥ १८॥ सर्वव्यापी जनार्दन! कारणस्वरूप जो प्रधान (प्रकृति) है, वही इस जगत्की योनि है। इसके तीन भेद हैं—सत्त्व, रज और तम। इस त्रिगुणमयी प्रकृतिसे ही यह विश्व-ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है। इसका कारणभूत जो सांख्य-प्रकृति है, उसे विद्वान् पुरुष आपका ही स्वरूप बताते हैं। विष्णो! उसके रूपमें आप ही परिणामको प्राप्त होकर उसके अधिष्ठाता बने रहते हैं॥ १९-२०॥

तस्मात्तु महतो घोरादहंकारो महानभूत्।
स त्वमादौ जगन्नाथ परिणामस्तथा हि सः॥ २१

अहंकारात् प्रभो देव कारणानि महान्ति च।
तन्मात्राणि तथा पञ्चभूतानि प्रभवन्त्युत॥ २२

तानि त्वामाहुरीशानं भूतानीह जगत्पते।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्॥ २३

चक्षुर्घ्राणं तथा स्पर्शो रसनं श्रोत्रमेव च।
मनः षष्ठं तथा देव प्रेरकं तत्र तत्र ह॥ २४

कर्मेन्द्रियाणि चान्यानि वागादीनि जनार्दन।
त्वमेव तानि सर्वाणि करोषि नियतात्मवान्॥ २५

स्वेषु स्वेषु जगन्नाथ विषयेषु तथा हरे।
निवेशयसि देवेश योग्यामिन्द्रियपद्धतिम्॥ २६

यदा त्वं रजसा युक्तस्तदा भूतानि सृष्टवान्।
यदा च सत्त्वयुक्तोऽसि तदा पाता जगत्त्रयम्॥ २७

यदा त्वं तमसाऽऽकृष्टस्तदा संहरसे जगत्।
त्रिभिरेव गुणैर्युक्तः सृष्टिरक्षाविनाशने॥ २८

वर्तसे त्रिविधां भूतिमादाय नियतात्मवान्।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु नियोजयसि माधव॥ २९
प्राणिनामुपभोगार्थमन्तः स्थित्वा जगद्गुरो।
तस्मात् सर्वत्र भूतेषु वर्तते सर्वभोगवान्॥ ३०

ब्रह्मा त्वं सृष्टिकाले तु स्थितौ विष्णुरसि प्रभो।
संहारे रुद्रनामासि त्रिधामा त्वमसि प्रभो॥ ३१

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
एताः प्रकृतयो देव भिन्नाः सर्वत्र ते हरे॥ ३२

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
सहस्रधारः साहस्री सहस्रात्मा दिवस्पतिः॥ ३३

भूमिं सर्वामिमां प्राप्य सप्तद्वीपां ससागराम्।
अणुः सर्वत्रगो भूत्वा अत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्॥ ३४

उस घोर महान् (महत्तत्त्व)-से महान् (समष्टिभूत) अहङ्कार प्रकट हुआ। जगन्नाथ! आदिकालमें प्रकट हुआ वह महत्तत्त्वका वैसा (अहंकारात्मक) परिणाम आप ही हैं॥ २१॥ प्रभो! देव! अहङ्कारसे 'तन्मात्र' नामक महान् कारण उत्पन्न हुए, जिनसे पञ्चमहाभूतोंका प्राकट्य हुआ है॥ २२॥ जगत्पते! इस जगत्में जो वे पाँचों महाभूत हैं, उन्हें भी आप सर्वेश्वरका ही स्वरूप बताते हैं। उनके नाम ये हैं—पृथ्वी, वायु आकाश, जल और पाँचवाँ भूत अग्नि॥ २३॥ देव! नेत्र, नासिका, त्वचा, रसना और कान—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इन्हींके साथ छठा मन है, जो उन इन्द्रियोंको विभिन्न विषयोंमें जानेके लिये प्रेरित करता है॥ २४॥ जनार्दन! वाक् आदि पाँच कर्मेन्द्रियाँ और हैं। जगन्नाथ! हरे! अपने मनको संयममें रखनेवाले आप परमात्मा ही उन सब इन्द्रियोंको अपने-अपने विषयोंमें नियुक्त करते हैं। देवेश्वर! आप ही योग्य इन्द्रिय-मार्गकी स्थापना करते हैं॥ २५-२६॥ जब आप रजोगुणसे संयुक्त हुए, तब आपने समस्त प्राणियोंकी सृष्टि की। जब आप सत्त्वगुणसे युक्त होते हैं, तब तीनों लोकोंका पालन करते हैं और जब तमोगुणसे आकृष्ट होते हैं, तब जगत्का संहार करते हैं। इस प्रकार आप नियतात्मा परमेश्वर तीनों ही गुणोंसे युक्त होकर अपनी त्रिविध ऐश्वर्य (शक्ति)-को साथ रखते हुए सृष्टि, रक्षा और संहारके कार्यमें सदा संलग्न रहते हैं। माधव! जगद्गुरो! आप प्राणियोंके अन्तःकरणमें स्थित होकर उनके उपभोगके लिये इन्द्रियोंको विषयोंमें लगाते हैं। इसलिये सम्पूर्ण भूतोंमें आप ही समस्त भोगोंसे सम्पन्न हैं॥ २७—३०॥ प्रभो! सृष्टिकालमें आप ही ब्रह्मा हैं, पालनकालमें विष्णु कहलाते हैं तथा संहारकालमें रुद्र नाम धारण करते हैं। भगवन्! इस प्रकार आप तीन धामवाले हैं॥ ३१॥ हरे! देव! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि (और अहङ्कार)—ये सर्वत्र उपलब्ध होनेवाली आठ भिन्न-भिन्न प्रकृतियाँ आपकी ही हैं॥ ३२॥ आप सहस्रों मस्तकोंसे सुशोभित विराट् पुरुष हैं। आपके सहस्रों नेत्र और सहस्रों पैर हैं, धारण करनेवाली भुजाएँ भी सहस्रों हैं। आपकी सभी वस्तुएँ सहस्रोंकी संख्यामें सुशोभित होती हैं। आपके सहस्रों रूप हैं और आप ही स्वर्गलोकके अधिपति इन्द्र हैं॥ ३३॥ सातों द्वीपों और समुद्रोंसे युक्त इस सारी पृथ्वीको व्याप्त करके आप सूक्ष्म एवं सर्वव्यापी होकर इस ब्रह्माण्डसे दस अङ्गुल ऊपर उठे हुए हैं॥ ३४॥

त्वमेवेदं जगत् सर्वं यद् भूतं यद् भविष्यति।
त्वत्तो विराट् प्रादुरभूत् सम्राट् चैव जनार्दन॥ ३५

तव वक्त्राज्जगन्नाथ ब्राह्मणो लोकरक्षकः।
प्रादुरासीत् पुराणात्मन् षट्कर्मनिरतः सदा॥ ३६

राजन्यस्तु तथा बाह्वोरासीत् संरक्षणे रतः।
ऊर्वोर्वैश्यस्तथा विष्णो पादाच्छूद्र उदाहृतः॥ ३७

एवं वर्णा जगन्नाथ तव देहाज्जनार्दन।
मनसस्तव देवेश चन्द्रमाः समपद्यत॥ ३८

सुखकृत् सर्वभूतानां शीतांशुरमितप्रभः।
अक्ष्णोः सूर्यः समुत्पन्नः सर्वप्राणिविलोचनः॥ ३९
यस्य भासा जगत् सर्वं भासते भानुमानसौ।
मुखादिन्द्रश्च अग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत॥ ४०

नाभेरभूदन्तरिक्षं तव देव जनार्दन।
द्यौरासीत् तु महाघोरा शिरसस्तव गोपते॥ ४१

पद्भ्यां भूमिः समुत्पन्ना दिशः श्रोत्राज्जगत्पते।
एवं सृष्ट्वा जगत् सर्वं व्याप्य सर्वं व्यवस्थितः॥ ४२

व्याप्य सर्वानिमाल्लँलोकान् स्थितः सर्वत्र केशव।
ततश्च विष्णुनामासि धातोर्व्याप्तेश्च दर्शनात्॥ ४३

नारा आपः समाख्यातास्तासामयनमादितः।
यतस्त्वं भूतभव्येश तन्नारायणशब्दितः॥ ४४

हरसि प्राणिनो देव ततो हरिरिति स्मृतः।
शंकरोऽसि सदा देव ततः शंकरतां गताः॥ ४५

बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च तस्माद् ब्रह्मेति शब्दितः।
मधुरिन्द्रियनामेति ततो मधुनिषूदनः॥ ४६

हृषीकाणीन्द्रियाण्याहुस्तेषामीशो यतो भवान्।
हृषीकेशस्ततो विष्णो ख्यातो देवेषु केशव॥ ४७
क इति ब्रह्मणो नाम ईशोऽहं सर्वदेहिनाम्।
आवां तवाङ्गसम्भूतौ तस्मात् केशवनामवान्॥ ४८

जो हुआ है और जो होनेवाला है, वह यह सम्पूर्ण जगत् आप ही हैं। जनार्दन! आपसे ही विराट् और सम्राट् (विराट्के अधिष्ठाता पुरुष)-की उत्पत्ति हुई है॥ ३५॥ पुराणात्मन्! जगन्नाथ! आपके मुखसे यजन-याजन आदि छः कर्मोंमें सदा तत्पर रहनेवाला लोकरक्षक ब्राह्मण प्रकट हुआ है॥ ३६॥ विष्णो! आपकी भुजाओंसे रक्षाकर्ममें रत रहनेवाले क्षत्रियकी, दोनों जाँघोंसे वैश्यकी तथा पैरोंसे शूद्रकी उत्पत्ति हुई बतायी गयी है॥ ३७॥ जगदीश्वर! जनार्दन! इस प्रकार चारों वर्ण आपके शरीरसे प्रकट हुए हैं। देवेश्वर! आपके मनसे समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाले अमित कान्तिमान् शीतरश्मि चन्द्रमाकी उत्पत्ति हुई है। आपके नेत्रोंसे समस्त प्राणियोंके नेत्रस्वरूप वे भानुमान् (अंशुमाली) सूर्य उत्पन्न हुए हैं, जिनकी प्रभासे सारा जगत् प्रकाशित होता है। आपके मुखसे इन्द्र और अग्नि तथा प्राणसे वायुदेवका प्राकट्य हुआ है॥ ३८—४०॥ देव! जनार्दन! आपकी नाभिसे अन्तरिक्ष प्रकट हुआ। गोपते! आपके मस्तकसे महाघोर द्युलोकका आविर्भाव हुआ है॥ ४१॥ जगत्पते! आपके पैरोंसे पृथ्वी और कानोंसे दिशाएँ उत्पन्न हुई हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करके आप सबको व्याप्त करके स्थित हैं॥ ४२॥ केशव! इन सम्पूर्ण लोकोंमें व्याप्त होकर आप सर्वत्र विराजमान हैं। इसलिये 'विष्' धातुके व्याप्तिरूप अर्थका दर्शन होनेसे आप 'विष्णु' नाम धारण करते हैं॥ ४३॥ भूत, वर्तमान और भविष्यके स्वामी विष्णुदेव! जलको नार कहते हैं, उस नारके आप आदिकालसे ही अयन (आश्रय) हैं, इसलिये 'नारायण' कहलाते हैं॥ ४४॥ देव! आप प्राणियों (-के पाप-ताप)-का हरण करते हैं, इसलिये 'हरि' कहे गये हैं। देव! आप सदा सबका 'शम्' (कल्याण) करते हैं, इसलिये 'शङ्कर' नामसे प्रसिद्ध हुए हैं॥ ४५॥ बृहत् तथा वर्धनशील होनेके कारण आपको 'ब्रह्म' कहते हैं। मधु नाम है इन्द्रियोंका, उनका दमन करनेके कारण आप 'मधुसूदन' कहलाते हैं॥ ४६॥ केशव! विष्णो! हृषीक कहते हैं इन्द्रियोंको। आप उनके ईश (स्वामी अथवा प्रेरक) हैं, इसलिये देवताओंमें 'हृषीकेश' नामसे विख्यात हैं॥ ४७॥ 'क'—यह ब्रह्माजीका नाम है और मैं समस्त देहधारियोंका 'ईश' हूँ। हम दोनों आपके शरीरसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये आप 'केशव' नाम धारण करते हैं॥ ४८॥

मा विद्या च हरे प्रोक्ता तस्या ईशो यतो भवान्।
तस्मान्माधवनामासि धवः स्वामीति शब्दितः ॥ ४९
गौरेषा तु यतो वाणी तां च वेद यतो भवान्।
गोविन्दस्तु ततो देव मुनिभिः कथ्यते भवान् ॥ ५०
त्रिरित्येव त्रयो वेदाः कीर्तिता मुनिसत्तमैः।
क्रमते तांस्तथा सर्वांस्त्रिविक्रम इति श्रुतः ॥ ५१
अणुर्वामननामासि यतस्त्वं वामनाख्यया।
मननान्मुनिरेवासि यमनाद् यतिरुच्यसे ॥ ५२
तपश्चरसि यस्मात् त्वं तपस्वीति च शब्दितः।
वसन्ति त्वयि भूतानि भूतावासस्ततो हरे ॥ ५३
ईशस्त्वं सर्वभूतानामीश्वरोऽसि ततो हरे।
प्रणवः सर्ववेदानां गायत्री छन्दसां प्रभो ॥ ५४
अक्षराणामकारस्त्वं स्फोटस्त्वं वर्णसंश्रयः।
रुद्राणामहमेवासि वसूनां पावको भवान् ॥ ५५
अश्वत्थो वृक्षजातीनां ब्रह्मा लोकगुरुर्भवान्।
मेरुस्त्वं पर्वतेन्द्राणां देवर्षीणां च नारदः ॥ ५६
दानवानां भवान् दैत्यः प्रह्लादो भक्तवत्सलः।
सर्पाणामेव सर्वेषां भवान् वासुकिसंज्ञितः ॥ ५७
गुह्यकानां च सर्वेषां भवान् धनद एव च।
वरुणो यादसां राजा गङ्गा त्रिपथभाग् भवान् ॥ ५८
आदिस्त्वं सर्वभूतानां मध्यमन्तस्तथा भवान्।
त्वत्तः समभवद् विश्वं त्वयि सर्वं प्रलीयते ॥ ५९
अहं त्वं सर्वगो देव त्वमेवाहं जनार्दन।
आवयोरन्तरं नास्ति शब्दैरर्थैर्जगत्पते ॥ ६०
नामानि तव गोविन्द यानि लोके महान्ति च।
तान्येव मम नामानि नात्र कार्या विचारणा ॥ ६१
त्वदुपासा जगन्नाथ सैवास्ति मम गोपते।
यश्च त्वां द्वेष्टि देवेश स मां द्वेष्टि न संशयः ॥ ६२

हरे! 'मा' कहते हैं विद्याको। आप उसके 'धव' (ईश्वर या स्वामी) हैं, इसलिये 'माधव' नामसे प्रसिद्ध हैं। धव-शब्द स्वामीका वाचक है ॥ ४९ ॥ देव! यह वाणी 'गौ' नामसे प्रसिद्ध है। उसे आप जानते हैं, इसलिये मुनिलोग आपको 'गोविन्द' कहते हैं ॥ ५० ॥ श्रेष्ठ मुनियोंने तीनों वेदोंको 'त्रि' नाम दिया है, आप उन तीनोंको क्रान्त (व्याप्त) करके स्थित हैं; इसलिये 'त्रिविक्रम' नामसे विख्यात हैं ॥ ५१ ॥ आप सूक्ष्म या लघु होनेसे 'वामन' नाम धारण करते हैं। आपके वामन नामसे प्रसिद्ध होनेका यही हेतु है। आप मनन करनेसे 'मुनि' हैं और यमका पालन करनेसे 'यति' कहलाते हैं ॥ ५२ ॥ अतः आप तपस्या करते हैं, इसलिये 'तपस्वी' नामसे प्रसिद्ध हैं। हरे! सम्पूर्ण भूत आपमें निवास करते हैं, इसलिये आप 'भूतावास' कहलाते हैं ॥ ५३ ॥ हरे! आप सम्पूर्ण भूतोंके ईश हैं, इसीलिये 'ईश्वर' कहे गये हैं। प्रभो! आप समस्त वेदोंमें प्रणव और सम्पूर्ण छन्दों-में 'गायत्री' हैं ॥ ५४ ॥ आप अक्षरोंमें अकार हैं। वर्णोंके आश्रित रहनेवाले स्फोट* हैं। रुद्रोंमें मैं अर्थात् शङ्कर हैं और वसुओंमें आप पावक हैं ॥ ५५ ॥ आप वृक्ष-जातियोंमें अश्वत्थ हैं। समस्त लोकोंके गुरु ब्रह्मा हैं। श्रेष्ठ पर्वतोंमें मेरु और देवर्षियोंमें नारद हैं ॥ ५६ ॥ आप दानवोंमें दैत्यनन्दन भक्तवत्सल प्रह्लाद हैं। समस्त सर्पोंमें आप ही वासुकि हैं ॥ ५७ ॥ आप समस्त गुह्यकोंमें धनदाता कुबेर हैं। जल-जन्तुओंके राजा वरुण और त्रिपथगामिनी गङ्गा भी आप ही हैं ॥ ५८ ॥ आप समस्त भूतोंके आदि, मध्य और अन्त हैं। आपसे इस विश्वका प्रादुर्भाव हुआ है और अन्तमें सारा जगत् आपमें ही लीन हो जाता है ॥ ५९ ॥ जनार्दन! देव! मैं ही आप सर्वव्यापी देवता हैं और आप ही मैं हूँ। जगत्पते! शब्द और अर्थसे भी हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है ॥ ६० ॥ गोविन्द! लोकमें जो आपके महान् नाम हैं, वे ही मेरे भी नाम हैं। इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ॥ ६१ ॥ जगन्नाथ! गोपते! आपकी जो उपासना है, वही मेरी भी है। देवेश्वर! जो आपसे द्वेष करता है, वह मुझसे भी द्वेष करता है, इसमें संशय नहीं ॥ ६२ ॥

* सर्वदर्शनसंग्रहके अनुसार नित्य शब्द, जिससे वर्णात्मक शब्दोंके अर्थका ज्ञान होता है, जैसे कमल शब्दमें क, म और ल—ये तीन वर्ण हैं और इन तीनोंके अलग-अलग उच्चारणसे कुछ भी अभिप्राय नहीं निकलता, परंतु तीनों वर्णोंका साथ-साथ उच्चारण करनेपर जो स्फोट होता है, उसीसे कमल शब्दका अभिप्राय जाना जाता है। कुछ लोग इसी स्फोट (नित्य शब्द)-को संसारका कारण मानते हैं।

त्वद्विस्तारो यतो देव अहं भूतपतिस्ततः।
न तदस्ति विना देव यत् ते विरहितं हरे॥ ६३

यदासीद् वर्तते यच्च यच्च भावि जगत्पते।
सर्वं त्वमेव देवेश विना किंचित्त्वया न हि॥ ६४

स्तुवन्ति देवाः सततं भवन्तं स्वैर्गुणैः प्रभो।
ऋक्च त्वं यजुरेवासि सामासि सततं प्रभो॥ ६५

किमुच्यते मया देव सर्वं त्वं भूतभावन।
नमः सर्वात्मना देव विष्णो माधव केशव॥ ६६

नमस्करोमि सर्वात्मन् नमस्तेऽस्तु सदा हरे।
नमः पुष्करनाभाय वन्दे त्वामहमीश्वर॥ ६७

देव! आपका ही विस्तार मैं हूँ, अतः आपहीकी भाँति मैं भी सम्पूर्ण भूतोंका अधिपति कहलाता हूँ। देव! हरे! ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो आपके बिना या आपसे रहित हो॥ ६३॥ जगत्पते! देवेश्वर! जो कुछ था, जो है और जो भविष्यमें होनेवाला है, वह सब आप ही हैं। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं, जो आपसे रहित हो॥ ६४॥ प्रभो! देवता सदा आपके निजी गुणोंका बखान करके आपकी स्तुति करते हैं। भगवन्! आप ही नित्य-निरन्तर ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद हैं॥ ६५॥ भूतभावन देव! मैं अधिक क्या कहूँ? आप ही सब कुछ हैं। देव! विष्णो! माधव! केशव! आपको सब प्रकारसे नमस्कार है॥ ६६॥ सर्वात्मन्! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हरे! आपको सदा ही नमस्कार है। आप पद्मनाभ हैं, आपको नमस्कार है। ईश्वर! मैं आपकी वन्दना करता हूँ॥ ६७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां शिवकृतविष्णुस्तुतौ अष्टाशीतितमोऽध्यायः॥ ८८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें कैलासयात्राके प्रसङ्गमें शिवकृत विष्णुकी स्तुतिविषयक अट्ठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८८॥

एकोननवतितमोऽध्यायः

भगवान् शङ्करका ऋषियोंको श्रीकृष्णतत्त्वका उपदेश देना

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशं मुनीनाह पुनः शिवः।
एवं जानीत हे विप्रा ये भक्ता द्रष्टुमागताः॥ १

एतदेव परं वस्तु नैतस्मात् परमस्ति वः।
एतदेव विजानीध्वमेतद् वः परमं तपः॥ २

एतदेव सदा विप्रा ध्येयं सततमानसैः।
एतद् वः परमं श्रेय एतद् वः परमं धनम्॥ ३

एतद् वो जन्मनः कृत्यमेतद् वस्तपसः फलम्।
एष वः पुण्यनिलय एष धर्मः सनातनः॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! देवदेवेश्वर श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर भगवान् शिवने पुनः मुनियोंसे कहा—'हे ब्राह्मणो! जो भक्तजन यहाँ श्रीहरिका दर्शन करनेके लिये आये हैं, वे सब यह जान लें॥ १॥ ये श्रीकृष्ण ही परम वस्तु हैं, तुमलोगोंके लिये इनसे बढ़कर और कोई दूसरी वस्तु नहीं है। ये ही तुम्हारी तपस्याके सर्वोत्तम फल हैं, इस बातको तुमलोग अच्छी तरह जान लो॥ २॥ विप्रगण! सदा एकाग्रचित्त होकर नित्य-निरन्तर इन्हीं श्रीकृष्णका ध्यान करना चाहिये। ये ही तुम्हारे परम कल्याण हैं और ये ही तुम्हारे परम धन हैं॥ ३॥ ये ही तुम्हारे जन्म और जीवनकी सफलता हैं। ये ही तुम्हारी तपस्याके फल हैं। ये ही तुम्हारे पुण्योंके भण्डार हैं और ये ही सनातन धर्म हैं॥ ४॥

एष वो मोक्षदाता च एष मार्ग उदाहृतः।
एष पुण्यप्रदः साक्षादेतद् वः कर्मणां फलम्॥ ५

एतदेव प्रशंसन्ति विद्वांसो ब्रह्मवादिनः।
एष त्रयीगतिर्विप्राः प्रार्थ्यो ब्रह्मविदां सदा॥ ६

एतदेव प्रशंसन्ति सांख्ययोगसमाश्रिताः।
एष ब्रह्मविदां मार्गः कथितो वेदवादिभिः॥ ७

एवमेव विजानीत नात्र कार्या विचारणा।
हरिरेकः सदा ध्येयो भवद्भिः सत्त्वमास्थितैः॥ ८

नान्यो जगति देवोऽस्ति विष्णोर्नारायणात् परः।
ओमित्येवं सदा विप्राः पठत ध्यात केशवम्॥ ९

ततो निःश्रेयसप्राप्तिर्भविष्यति न संशयः।
एवं ध्यातो हरिः साक्षात् प्रसन्नो वो भविष्यति॥ १०

भवनाशमयं देवः करिष्यति दृढं हरिः।
सदा ध्यात हरिं विप्रा यदीच्छा प्राप्तुमच्युतम्॥ ११

एष संसारविभवं विनाशयति वो गुरुः।
स्मरध्वं सततं विष्णुं पठध्वं त्रिशरीरिणम्॥ १२

मनःसंयमनं विप्राः कुरुध्वं यत्नतः सदा।
शुद्धेऽन्तःकरणे विष्णुः प्रसीदति तपोधनाः॥ १३

ध्यात्वा मां सर्वयत्नेन ततो जानीत केशवम्।
उपास्योऽहं सदा विप्रा उपास्येऽस्मिन् हरौ स्मृतः॥ १४

उपायोऽयं मया प्रोक्तो नात्र संदेह इत्यपि।
अयं मायी सदा विप्रा यतध्वमघनाशने॥ १५

यथा वो बुद्धिरखिला शुद्धा भवति यत्नतः।
तथा कुरुत विप्रेन्द्रा यथा देवः प्रसीदति॥ १६

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तास्ततः सर्वे मुनयः पुण्यशीलिनः।
यथावदुपगृह्णाना निरसन् संशयं नृप॥ १७

'ये ही तुम्हें मोक्ष देनेवाले हैं और ये ही गन्तव्य मार्ग बताये गये हैं। ये ही साक्षात् पुण्यदायक और ये ही तुम्हारे सत्कर्मोंके फल हैं॥ ५॥ ब्रह्मवादी विद्वान् सदा इनकी ही प्रशंसा करते हैं। ये ही तीनों वेदोंकी गति (आश्रय) हैं। ब्राह्मणो! ब्रह्मवेत्ता पुरुष सदा इन्हींकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना करते हैं॥ ६॥ सांख्य और योगका आश्रय लेनेवाले विद्वान् इन्हींके गुण गाते हैं। वेदवादी विद्वानोंने इन्हींको ब्रह्मवेत्ताओंका मार्ग बताया है॥ ७॥ विप्रवरो! तुम सदा ऐसा ही जानो। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। सत्त्वगुणका आश्रय लेनेवाले तुम-जैसे भक्तोंको सदा एकमात्र श्रीहरिका ही चिन्तन करना चाहिये॥ ८॥ संसारमें सर्वव्यापी नारायणसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। ब्राह्मणो! तुम सदा ओम्‌का जप और भगवान् केशवका ध्यान किया करो॥ ९॥ ऐसा करनेसे तुम्हें परम कल्याणकी प्राप्ति होगी। इसमें संशय नहीं है। इस प्रकार ध्यान करनेपर साक्षात् श्रीहरि तुमलोगोंपर प्रसन्न होंगे॥ १०॥ ये भगवान् विष्णु तुम्हारे संसारबन्धनका दृढ़तापूर्वक नाश कर डालेंगे। ब्राह्मणो! यदि भगवान् अच्युतको प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो सदा ही इन श्रीहरिका ध्यान करो॥ ११॥ ये ही तुम्हारे गुरु हैं। ये संसार-बन्धनका विस्तार करनेवाली मूल अविद्याका नाश कर डालेंगे, अतः तुमलोग ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवरूप त्रिविध शरीर धारण करनेवाले श्रीहरिका सदा स्मरण एवं कीर्तन किया करो॥ १२॥ ब्राह्मणो! तुमलोग सदा यत्नपूर्वक मनका संयम करो। तपोधनो! संयमसे अन्तःकरण शुद्ध हो जानेपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं॥ १३॥ ब्राह्मणो! तुम सम्पूर्ण यत्नसे मेरा चिन्तन करके फिर केशवका ज्ञान प्राप्त करो। इन उपास्यदेव श्रीहरिमें सदा मैं ही उपास्य माना गया हूँ॥ १४॥ विप्रगण! यह मैंने भगवान्‌की प्राप्तिका उपाय बताया, इसमें संदेह नहीं है। ये भगवान् मायाके अधिपति हैं, तुम सब लोग इन पापहारी हरिकी प्राप्तिके लिये सदा प्रयत्न करते रहो॥ १५॥ विप्रवरो! जिस प्रकारसे यत्न करनेपर तुम्हारी सारी बुद्धि शुद्ध हो जाय और जिससे भगवान् प्रसन्न हो जायँ, वैसा करो'॥ १६॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—नरेश्वर! भगवान् शङ्करके ऐसा कहनेपर उन समस्त पुण्यशील मुनियोंने यथावत् रूपसे उनके उपदेशको ग्रहण किया और अपने मनसे संशयको निकाल दिया॥ १७॥

एवमेवेति तं विप्राः प्राहुः प्राञ्जलयो हरम्।
छिन्नो नः संशयः सर्वो गृहीतोऽर्थः स तादृशः॥ १८

उन ब्राह्मणोंने हाथ जोड़कर महादेवजीसे कहा—'भगवन्! आपने जैसा कहा है, ऐसी ही बात है। हमारा सारा संशय नष्ट हो गया और हमने वैसा ही सिद्धान्त स्वीकार कर लिया॥ १८॥

एतदर्थं समायाता वयमद्य तवालयम्।
संगमाद् युवयोः सर्वो नष्टो मोहो महानिह॥ १९

प्रभो! हम इसीलिये आज आपके निवासस्थानपर आये थे। आप दोनोंके समागमसे यहाँ हमारा सारा महान् मोह नष्ट हो गया॥ १९॥

यथा वदसि देवेश तथा नः श्रेयसे परम्।
यथाऽऽह भगवान् रुद्रो यतामः सततं हरौ।
इति ते मुनयः प्रीताः प्रणेमुः केशवं हरिम्॥ २०

देवेश्वर! आप जैसा कहते हैं, वैसा करनेसे ही हमारा परम कल्याण होगा। आप भगवान् रुद्रने जैसा कहा है, उसके अनुसार हम सदा श्रीहरिकी प्राप्तिके लिये यत्न करते रहेंगे। ऐसा कहकर उन प्रसन्न हुए मुनियोंने श्रीकेशव हरिको प्रणाम किया॥ २०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां ऋष्युपदेशे एकोननवतितमोऽध्यायः॥ ८९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें कैलासयात्राके प्रसङ्गमें भगवान् शिवका ऋषियोंको उपदेशविषयक नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८९॥

नवतितमोऽध्यायः

भगवान् शंकरद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति और श्रीकृष्णका कैलाससे बदरिकाश्रममें लौटना

वैशम्पायन उवाच

ततः स भगवान् रुद्रः सर्वान् विस्मापयन्निव।
स्तुत्या प्रचक्रमे स्तोतुं विष्णुं विश्वेश्वरं हरिम्।
अर्थ्याभिस्तु तदा वाग्भिर्मुनीनां शृण्वतां तथा॥ १

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर भगवान् रुद्र सबको विस्मयमें डालते हुए-से सर्वव्यापी जगदीश्वर श्रीहरिकी स्तोत्रद्वारा स्तुति करनेको उद्यत हुए। उन्होंने उस समय मुनियोंके सुनते हुए अर्थयुक्त वाणीद्वारा इस प्रकार स्तुति आरम्भ की॥ १॥

महेश्वर उवाच

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमते।
यस्य भासा जगत् सर्वं भासते नित्यमच्युत॥ २
नमो भगवते देव नित्यं सूर्यात्मने नमः।
यः शीतयति शीतांशुर्लोकान् सर्वानिमान् विभुः॥ ३
नमस्ते विष्णवे देव नित्यं सोमात्मने नमः।
यः प्रजाः प्रीणयत्येको विश्वात्मा भूतभावनः॥ ४
नमः सर्वात्मने देव नमो वागात्मने हरे।
यो दधार करेणासौ कुशचीरादि यत् सदा॥ ५

महेश्वर बोले—आप परम बुद्धिमान् भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। अच्युत! देव! जिनके प्रकाशसे ही यह सारा जगत् सदा प्रकाशित होता है, उन सूर्यस्वरूप आप भगवान्को नित्य बारम्बार नमस्कार है। देव! जो शीतरश्मि भगवान् चन्द्रमा इन सम्पूर्ण लोकोंको शीतलता प्रदान करते हैं, उन सोमस्वरूप आप श्रीहरिको नित्य नमस्कार है! नमस्कार है!! देव! हरे! जो एकमात्र विश्वात्मा भूतभावन भगवान् समस्त प्रजाको तृप्ति प्रदान करते हैं, उन सर्वरूप और वाणीस्वरूप आपको बार-बार नमस्कार है। जो सदा अपने हाथसे कुश, चीर आदि धारण करते हैं तथा जिन्होंने

दधार वेदान् सर्वांश्च तुभ्यं ब्रह्मात्मने नमः।
सर्वान् संहरते यस्तु संहारे विश्वदृक् सदा॥ ६

क्रोधात्मासि विरूपोऽसि तुभ्यं रुद्रात्मने नमः।
सृष्टौ स्त्रष्टा समस्तानां प्राणिनां प्राणदायिने॥ ७

अजाय विष्णवे तुभ्यं स्त्रष्ट्रे विश्वसृजे नमः।
आदौ प्रकृतिमूलाय भूतानां प्रभवाय च॥ ८

नमस्ते देवदेवेश प्रधानाय नमो नमः।
पृथिव्यां गन्धरूपेण संस्थितः प्राणिनां हरे॥ ९

दृढाय दृढरूपाय तुभ्यं गन्धात्मने नमः।
अपां रसाय सर्वत्र प्राणिनां सुखहेतवे॥ १०

नमस्ते विश्वरूपाय रसाय च नमो नमः।
तेजसा भास्करो यस्तु घृणिर्जन्तुहितः सदा॥ ११

तस्मै देव जगन्नाथ नमो भास्कररूपिणे।
वायोः स्पर्शगुणो यत्र शीतोष्णसुखदुःखदः॥ १२

नमस्ते वायुरूपाय नमः स्पर्शात्मने हरे।
आकाशेऽवस्थितः शब्दः सर्वश्रोत्रनिवेशनः॥ १३

नमस्ते भगवन् विष्णो तुभ्यं सर्वात्मने नमः।
यो दधार जगत् सर्वं मायामानुषदेहवान्॥ १४

नमस्तुभ्यं जगन्नाथ मायिनेऽमायदायिने।
नम आद्याय बीजाय निर्गुणाय गुणात्मने॥ १५

अचिन्त्याय सुचिन्त्याय तस्मै चिन्त्यात्मने नमः।
हराय हरिरूपाय ब्रह्मणे ब्रह्मदायिने॥ १६

नमो ब्रह्मविदे तुभ्यं ब्रह्मब्रह्मात्मने नमः।
नमः सहस्त्रशिरसे सहस्त्रकिरणाय च॥ १७

नमः सहस्त्रवक्त्राय सहस्त्रनयनाय च।
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वकर्त्रे नमो नमः॥ १८

सम्पूर्ण वेदोंको धारण किया है, वे ब्रह्मा आप ही हैं। आपको नमस्कार है। जो विश्वद्रष्टा भगवान् संहारकालमें सदा समस्त लोकोंका संहार करते हैं, वे आप ही हैं। आप क्रोधरूप, विकरालरूप तथा रुद्रस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। जो सृष्टिकालमें स्त्रष्टा बनकर समस्त प्राणियोंको प्राणदान करते हैं, उन अजन्मा, विश्वस्त्रष्टा, विधाता आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है। देवदेवेश्वर! जो आदिमें मूल-प्रकृतिरूप है और गुणोंमें क्षोभ होनेपर क्रमशः पञ्चमहाभूतोंका उत्पादक होता है, उन प्रधानस्वरूप आपको बारम्बार नमस्कार है। प्राणियों (-के पापों)-का अपहरण करनेवाले हरे! आप पृथिवीमें गन्धरूपसे स्थित हैं। आप दृढ़ हैं, दृढ़ रूपधारी हैं तथा गन्धस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। जो प्राणियोंको सुख देनेके लिये सर्वत्र जलमें रस-रूपसे निवास करते हैं, उन विश्वरूपधारी रसस्वरूप आपको बारम्बार नमस्कार है। देव! जगन्नाथ! जो तेजसे सूर्यतुल्य, किरणोंसे प्रकाशित तथा सदा सभी जीवोंका हित करनेवाले हैं, उन भास्कररूप आपको नमस्कार है। हरे! जहाँ वायुका स्पर्श नामक गुण शीत, उष्ण एवं सुख-दुःख प्रदान करनेवाला है, वहाँ उस गुणके आश्रयभूत वायु आपके ही स्वरूप हैं। स्पर्श भी आपका ही रूप है, आपको नमस्कार है। भगवन्! विष्णो! आकाशस्वरूप आपमें स्थित शब्द सबके कानोंमें प्रवेश करता है। आप सर्वात्मा हैं, आपको नमस्कार है। जगन्नाथ! आपने मायामय मनुष्य-देह धारण करके भी सम्पूर्ण जगत्को स्वयं ही धारण कर रखा है। आप मायाके स्वामी हैं तथा मायारहित मोक्षतक प्रदान करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप सबके आदिकारण, निर्गुण, गुणस्वरूप, अचिन्त्य, सुचिन्त्य एवं चिन्त्यरूप हैं, उन आप परमात्माको नमस्कार है। आप हरिरूपधारी हर हैं, ब्रह्माको वेद प्रदान करनेवाले हैं, ब्रह्मवेत्ता तथा ब्रह्म और यज्ञरूप हैं, आपको नमस्कार है! नमस्कार है!! आपके सहस्त्रों मस्तक हैं। आप सहस्त्रों किरणोंसे प्रकाशित होते हैं। आपके मुख और नेत्र भी सहस्त्र (अनन्त) हैं, आपको नमस्कार है। आप विश्व, विश्वरूप और विश्वकर्ता हैं, आपको नमस्कार है! नमस्कार है!! आप सम्पूर्ण विश्वको

विश्ववक्त्रे नमो नित्यं भूतावास नमो नमः।
इन्द्रियायेन्द्ररूपाय विषयाय सदा हरे॥ १९
नमोऽश्वशिरसे तुभ्यं वेदाभरणरूपिणे।
अग्नयेऽग्निपते तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः॥ २०
सूर्याय सूर्यपुत्राय तेजसां पतये नमः।
नमः सोमाय सौम्याय नमः शीतात्मने हरे॥ २१
नमो वषट्कृते तुभ्यं स्वाहास्वधास्वरूपिणे।
नमो यज्ञाय इज्याय हविषे हव्यसंस्कृते।
नमः स्त्रुवाय पात्राय यज्ञाङ्गाय पराय च॥ २२
नमः प्रणवदेहाय क्षरायाप्यक्षराय च।
वेदाय वेदरूपाय शस्त्रिणे शस्त्ररूपिणे॥ २३
गदिने खड्गिने तुभ्यं शङ्खिने चक्रिणे नमः।
शूलिने चर्मिणे नित्यं वरदाय नमो नमः॥ २४
बुद्धिप्रियाय बुद्धाय प्रबुद्धाय सुखाय च।
हरये विष्णवे तुभ्यं नमः सर्वात्मने गुरो॥ २५
नमस्ते सर्वलोकेश सर्वकर्त्रे नमो नमः।
नमः स्वभावशुद्धाय नमस्ते यज्ञसूकर॥ २६
नमो विष्णो नमो विष्णो नमो विष्णो नमो हरे।
नमस्ते वासुदेवाय वासुदेवाय धीमते॥ २७
नमः कृष्णाय कृष्णाय सर्वावास नमो नमः।
नमो भूयो नमस्तेऽस्तु पाहि लोकाञ्जनार्दन॥ २८
इति स्तुत्वा जगन्नाथमुवाच मुनिसत्तमान्।
इदं स्तोत्रमधीयाना नित्यं व्रजत केशवम्॥ २९
शरण्यं सर्वभूतानां तत्र श्रेयो विधास्यति।
ये चेमं धारयिष्यन्ति स्तवं पापविमोचनम्॥ ३०
तेषां प्रीतः प्रसन्नात्मा पठतां शृण्वतां हरिः।
श्रेयो दास्यति धर्मात्मा नात्र कार्या विचारणा॥ ३१
अवश्यं मनसा ध्यात केशवं भक्तवत्सलम्।
श्रेयः प्राप्तुं यदीच्छन्ति भवन्तः शंसितव्रताः॥ ३२

उपदेश देनेवाले (जगद्गुरु) हैं, आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण भूतोंके आवासस्थान विष्णुदेव! आपको बारम्बार नमस्कार है। हरे! आप इन्द्रियरूप, विषयरूप और इन्द्ररूप हैं, आपको सदा नमस्कार है। वेद ही जिनका आभरण और रूप हैं, उन हयग्रीवरूपधारी आपको नमस्कार है। अग्निपते! आप अग्निरूप हैं, ग्रह-नक्षत्रोंके अधिपति हैं, सूर्य, सूर्यपुत्र तथा तेजके स्वामी हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है। हरे! आप सोम, सौम्य तथा शीतात्मा हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है। आप वषट्कार तथा स्वाहा-स्वधास्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप यज्ञ, यज्ञोंद्वारा पूजनीय तथा हविष्यरूप हैं, आपको नमस्कार है। हव्योंद्वारा संस्कृत आप परमात्माके प्रति नमस्कार है। आप स्त्रुव हैं, यज्ञपात्र हैं, यज्ञोंके अङ्गभूत उपकरण हैं और इन सबसे परे भी हैं, आपको नमस्कार है॥ २—२२॥ प्रणव आपका शरीर है। आप क्षर (सम्पूर्ण भूत) और अक्षर (कूटस्थ) हैं, आपको नमस्कार है। आप वेद हैं, वेदरूप हैं, शस्त्र ग्रहण करनेवाले और शस्त्ररूपधारी हैं, आपको नमस्कार है॥ २३॥ आप गदा, खड्ग, शङ्ख, चक्र, शूल और ढाल धारण करते हैं तथा सदा वर देनेवाले हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है॥ २४॥ गुरुदेव! आप बुद्धिप्रिय, बोधसम्पन्न, प्रबुद्धस्वरूप एवं सुखरूप हैं। आप ही सबके आत्मा पापहारी विष्णु हैं, आपको नमस्कार है॥ २५॥ सर्वलोकेश्वर! आप सबके कर्ता हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है। यज्ञवाराह! आप स्वभावसे ही शुद्ध हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है॥ २६॥ विष्णो! आपको नमस्कार है। विष्णो! आपको नमस्कार है। विष्णो! आपको नमस्कार है। हरे! आपको नमस्कार है। सबके भीतर निवास करनेवाले बुद्धिमान् देवता वसुदेवनन्दन! आपको नमस्कार है॥ २७॥ सबके आवासस्थान जनार्दन! आप नामसे कृष्ण हैं, वर्णसे भी कृष्ण ही हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है। आपको पुनः नमस्कार है! नमस्कार है!! आप सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा कीजिये॥ २८॥ इस प्रकार जगदीश्वर श्रीहरिकी स्तुति करके भगवान् शिवने उन श्रेष्ठ मुनियोंसे कहा—'इस स्तोत्रका नित्य पाठ करते हुए तुम सब लोग भगवान् केशवकी शरणमें जाओ। वे समस्त भूतोंको शरण देनेवाले हैं, अतः तुम्हारा कल्याण करेंगे। जो लोग इस पापनाशक स्तोत्रको अपने हृदयमें धारण करेंगे; उनपर भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होंगे। प्रसन्नचित्त हुए धर्मात्मा विष्णु इसका पाठ और श्रवण करनेवाले पुरुषोंको कल्याण प्रदान करेंगे। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है॥ २९—३१॥ यदि तुमलोग कल्याण प्राप्त करना चाहते हो तो उत्तम व्रतका पालन करते हुए निश्चय ही अपने मनसे भक्तवत्सल केशवका चिन्तन करो'॥ ३२॥

इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत।
सगणः शंकरः साक्षादुमया भूतभावनः॥ ३३
नेमुस्तं मुनयः सर्वे परां निर्वृतिमाययुः।
तमेव परमं तत्त्वं मत्वा नारायणं हरिम्।
विस्मयं परमं गत्वा मेनिरे स्वकृतार्थताम्॥ ३४
लोकपालास्तदा विष्णुं नमस्कृत्य हरिं मुदा।
जग्मुः स्वान्यथ वेश्मानि गणैः सर्वैर्नृपोत्तम॥ ३५
आरुह्य भगवान् विष्णुर्गरुडं पक्षिपुङ्गवम्।
शङ्खी चक्री गदी खड्गी शार्ङ्गी तूणी तनुत्रवान्॥ ३६
यथागतं जगन्नाथो ययौ बदरिकामनु।
सायाह्ने पुण्डरीकाक्षो नित्यं मुनिनिषेविताम्॥ ३७
तत्र गत्वा यथायोगं विनम्य हरिरीश्वरः।
अर्चितो मुनिभिः सर्वैर्निषसाद सुखासने॥ ३८

ऐसा कहकर उमासहित भूतभावन कल्याणकारी साक्षात् भगवान् रुद्र अपने गणोंके साथ वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ३३॥ सब मुनियोंने उन्हें नमस्कार किया और परम संतोष प्राप्त किया। पापहारी नारायणदेवको ही परम तत्त्व मानकर उन सबको बड़ा विस्मय हुआ और उन सबने अपने-आपको कृतकृत्य माना॥ ३४॥ नृपश्रेष्ठ! उस समय लोकपाल भी भगवान् विष्णु श्रीहरिको प्रसन्नतापूर्वक नमस्कार करके समस्त सेवकगणोंके साथ अपने-अपने निवासस्थानको चले गये॥ ३५॥ तदनन्तर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण पक्षिराज गरुड़पर आरूढ हो शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग, शार्ङ्गधनुष, तरकस और कवच धारण करके जैसे आये थे, उसी प्रकार सायंकालमें मुनिजनोंद्वारा नित्य सेवित विशाल बदरीतीर्थमें लौट आये॥ ३६-३७॥ वहाँ जाकर वे सर्वेश्वर श्रीहरि यथायोग्य मुनियोंको प्रणाम करके सब मुनियोंद्वारा पूजित हो सुखद आसनपर विराजमान हुए॥ ३८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां कृष्णप्रत्यागमने नवतितमोऽध्यायः॥ ९०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें कैलासयात्राके प्रसंगमें 'श्रीकृष्णका लौटना' विषयक नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९०॥

एकनवतितमोऽध्यायः

पौण्ड्रकका राजाओंकी सभाओंमें अपनेको शङ्ख, चक्र आदिसे युक्त वासुदेव घोषित करना और श्रीकृष्णको पराजित करनेका मनसूबा बाँधना

वैशम्पायन उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु पौण्ड्रो नृपवरोत्तमः।
बलवान् सत्त्वसम्पन्नो योद्धा विपुलविक्रमः॥ १
वृष्णिशत्रुस्तदा राजा कृष्णद्वेषी बलात् तदा।
नृपान् सर्वान् समाहूय प्रोवाच नृपसंसदि॥ २
जिता च पृथिवी सर्वा जिताश्च नृपसत्तमाः।
वृष्णयस्ते बलोन्मत्ताः कृष्णमाश्रित्य गर्विताः॥ ३
दास्यन्ति मे करं सर्वे न हि ते कृष्णसंश्रयात्।
स तु कृष्णश्चक्रबलान्मामवज्ञाय तिष्ठति॥ ४
अहं चक्रीति गर्वोऽभूत् तस्य गोपस्य सर्वदा।
शङ्खी चक्री गदी शार्ङ्गी शरी तूणी सहायवान्॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इसी समय राजाओंमें श्रेष्ठतम, बलवान्, सत्त्वसम्पन्न, महापराक्रमी योद्धा, वृष्णिवंशियोंसे शत्रुभाव रखनेवाला तथा श्रीकृष्णका द्वेषी पौण्ड्रक समस्त राजाओंको बलपूर्वक बुलाकर उनकी सभामें बोला—॥ १-२॥ 'मैंने सारी पृथ्वी जीत ली और बड़े-बड़े राजाओंको पराजित कर दिया। परन्तु बलोन्मत्त वृष्णिवंशी श्रीकृष्णका सहारा लेकर घमंडमें भर गये हैं॥ ३॥ कृष्णका आश्रय लेकर वे सब-के-सब मुझे कर नहीं देते हैं और वह कृष्ण अपने चक्रके बलसे मेरी अवहेलना करता रहता है॥ ४॥ उस ग्वालेको सदा इस बातका गर्व रहता है कि मैं चक्रधारी हूँ। मेरे पास शङ्ख, चक्र गदा, शार्ङ्गधनुष, बाण और तरकस हैं; मैं सहायतासे सम्पन्न हूँ।

एवमादिर्महागर्वस्तस्य सम्प्रति वर्तते।
लोके च मम यन्नाम वासुदेवेति विश्रुतम्॥ ६
अगृह्णान्मम तन्नाम गोपो मदबलान्वितः।
तस्य चक्रस्य यच्चक्रं ममापि निशितं महत्॥ ७
गर्वहन्तृ सदा तस्य नाम्ना चापि सुदर्शनम्।
सहस्रारं महाघोरं तस्य चक्रस्य नाशनम्॥ ८
अनेकमहतं चक्रं गोपजस्य नृपोत्तमाः।
ममाप्येतद् धनुर्दिव्यं शार्ङ्गं नाम महारवम्॥ ९
गदा कौमोदकी नाम ममेयं बृहती दृढा।
कालायससहस्रस्य भारेण सुकृता मया॥ १०
खड्गो नन्दकनामासौ ममायं विपुलो दृढः।
अन्तकस्यान्तको घोरस्तस्य खड्गस्य नाशकः॥ ११
तत्राहं च गदी खड्गी शङ्खी चक्री तनुत्रवान्।
युधि जेता च कृष्णस्य नात्र कार्या विचारणा॥ १२
मां च ब्रूत नृपाश्चैव गदिनं चक्रिणं तथा।
शङ्खिनं शार्ङ्गिणं वीरं ब्रूत नित्यं नृपोत्तमाः॥ १३
वासुदेवेति मां ब्रूत न तु गोपं यदूत्तमम्।
एकोऽहं वासुदेवो हि हत्वा तं गोपदारकम्॥ १४
सख्युर्मम बलाद्धन्ता नरकस्य महात्मनः।
मां तथा यदि न ब्रूत दण्ड्या भारशतैः शतम्॥ १५
सुवर्णस्य च निष्कस्य धान्यस्य बहुशस्तदा।
तथा ब्रुवति राजेन्द्रे मनसा दुस्सहं यथा॥ १६
केचिल्लज्जासमायुक्ता आसंस्ते बलवत्तराः।
रसज्ञा बलवीर्यस्य राजानस्ते सदा नृप॥ १७
अपरे तु नृपा राजन्नेवमेवेति चुक्रुशुः।
अन्ये बलमदोत्सिक्ता जेष्यामः केशवं रणे॥ १८

इस तरह इस समय उसका गर्व बहुत बढ़ा-चढ़ा है। लोकमें जो मेरा वासुदेव यह प्रसिद्ध नाम है, उसे उस मदमत्त एवं बलवान् गोपने ग्रहण कर लिया है। मेरे पास भी एक विशाल एवं तीखा चक्र है, जो उसके चक्रका नाश करनेवाला है। मेरा यह चक्र सदा उस (कृष्ण)-के गर्वको चूर्ण करनेमें समर्थ है, इसका नाम भी सुदर्शन है।' श्रेष्ठ राजाओ! मेरे इस चक्रमें एक सहस्र अरे लगे हुए हैं। यह महाभयंकर है और गोपबालक श्रीकृष्णके चक्रका नाश करनेवाला है। यह अनेक रूप धारण करनेमें समर्थ और कहीं भी प्रतिहत होनेवाला नहीं है। मेरा भी यह धनुष दिव्य है, सींगका बना हुआ है, इसलिये शार्ङ्गनामसे प्रसिद्ध है और बड़ी भारी टङ्कार-ध्वनि करता है। मेरी इस गदाका नाम भी कौमोदकी है। यह विशाल एवं सुदृढ़ है। मैंने एक सहस्र भार लोहेसे इसका निर्माण कराया है॥ ५—१०॥ मेरा यह विशाल खड्ग बहुत मजबूत है। इसका नाम नन्दक है। यह घोर खड्ग कालका भी काल और श्रीकृष्णके खड्गका नाश करनेवाला है॥ ११॥ इस प्रकार मैं गदा, खड्ग, शङ्ख, चक्र और कवचसे युक्त होकर युद्धमें श्रीकृष्णको जीत लूँगा। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है; अतः श्रेष्ठ नरपतियो! अब तुमलोग मुझे ही सदा गदाधर, चक्रपाणि, शङ्खधारी एवं शार्ङ्गधनुर्धर वीर कहा करो॥ १२-१३॥ मुझे ही वासुदेव कहो, उस यदुश्रेष्ठ गोपको नहीं। उस गोपबालकको मारकर एकमात्र मैं ही वासुदेव रहूँगा॥ १४॥ महामनस्वी नरकासुर मेरा मित्र था, उसको इस गोपने बलपूर्वक मार डाला है (इसलिये मैं भी इसका वध करूँगा); अतः यदि तुमलोग मुझे वासुदेव नहीं कहोगे तो मैं तुमपर दस हजार भार सुवर्ण एवं निष्कका तथा बहुत-सी धान्यराशिका दण्ड लगाऊँगा'। राजाधिराज पौण्ड्रकके इस तरह मनको असह्य लगनेवाली बात कहनेपर कुछ प्रबल नरेश लज्जित होकर चुप रह गये। राजन्! वे सब नरेश बल-वीर्यके रसज्ञ थे॥ १५—१७॥ राजन्! दूसरे चापलूस नरेश 'ठीक है! ठीक है!!' ऐसा कोलाहल करने लगे तथा बलके मदसे उन्मत्त हुए अन्य राजा कहने लगे कि हम युद्धमें श्रीकृष्णको अवश्य जीतेंगे॥ १८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकोक्तौ एकनवतितमोऽध्यायः॥ ९१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पौण्ड्रकका गर्वोक्तिविषयक इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९१॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

पौण्ड्रकके यहाँ नारदजीका आगमन और उसके साथ उनकी बातचीत

वैशम्पायन उवाच

ततः कैलासशिखरान्निर्गतो मुनिसत्तमः।
नारदः सर्वलोकज्ञः पौण्ड्रस्य नगरं प्रति॥ १

अवतीर्य नभोभागात् प्रत्यागम्य नरोत्तमम्।
द्वाःस्थेन च समाज्ञप्तः प्रविवेश गृहोत्तमम्॥ २

अर्घ्यादिसमुदाचारं नृपाल्लब्ध्वा महामुनिः।
निषसादासने शुभ्रे ह्यास्तृते शुभवाससा॥ ३

कुशलं पृष्टवान् भूयो नृपः स मुनिसत्तमम्।
उवाच नारदं भूयः पौण्ड्रको बलगर्वितः॥ ४

भवान् सर्वत्र कुशलः सर्वकार्येषु पण्डितः।
प्रथितो देवसिद्धेषु गन्धर्वेषु महात्मसु॥ ५

सर्वत्रगो निराबाधो गत्वा सर्वत्र सर्वदा।
अगम्यं तव विप्रेन्द्र ब्रह्माण्डे न हि किंचन।
नारदेदं वद त्वं हि यत्र यत्र गतो भवान्॥ ६

तत्र तत्र तपःसिद्धो लोके प्रथितवीर्यवान्।
पौण्ड्र एव च विख्यातो वासुदेवेति शब्दितः॥ ७

शङ्खी चक्री गदी शार्ङ्गी खड्गी तूणी तनुत्रवान्।
विजेता राजसिंहानां दाता सर्वस्य सर्वदा॥ ८

भोक्ता राज्यस्य सर्वस्य शास्ता राजा बलाद् बली।
अजेयः शत्रुसैन्यानां रक्षिता स्वजनस्य च॥ ९

योऽद्य गोपकनामासौ वासुदेवेति शब्दितः।
तस्य वीर्यबले न स्तो नाम्नोऽस्य मम धारणे॥ १०

स हि गोपो वृथा बाल्याद् धारयत्येव नाम मे।
इदं निश्चिनु विप्रेन्द्र एक एव भवाम्यहम्॥ ११

वासुदेवो जगत्यस्मिन् निर्जित्य बलिनं यदुम्।
वृष्णीन् सर्वान् बलात् क्षिप्त्वा निहनिष्ये च तां पुरीम्॥ १२

द्वारकां विष्णुनिलयां योद्धा चाहं महामते।
एते च बलिनः सर्वे नृपा मम समागताः॥ १३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर सम्पूर्ण लोकोंके ज्ञाता मुनिश्रेष्ठ नारद कैलासशिखरसे निकलकर पौण्ड्रकके नगरकी ओर चल दिये॥ १॥ आकाशसे उतरकर द्वारपालसे राजाज्ञा प्राप्त करके उन्होंने राजाके उत्तम भवनमें प्रवेश किया और वे उस नरश्रेष्ठ पौण्ड्रकसे मिले॥ २॥ राजासे अर्घ्य आदि अतिथि-सत्कार पाकर वे महामुनि सुन्दर वस्त्र बिछे हुए शुभ्र आसनपर विराजमान हुए॥ ३॥ तत्पश्चात् बलके घमंडमें भरे हुए राजा पौण्ड्रकने पहले तो मुनिश्रेष्ठ नारदसे कुशल-समाचार पूछा, फिर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ ४॥ 'विप्रवर! आप सर्वत्र कुशल हैं, समस्त कार्योंमें पण्डित हैं। देवताओं, सिद्धों और महात्मा गन्धर्वोंमें आपकी ख्याति है। आप बिना किसी बाधाके सर्वत्र जा सकते हैं। सदा सब जगह आपकी पहुँच है। इस ब्रह्माण्डमें कोई भी स्थान आपके लिये अगम्य नहीं है। नारदजी! यह तो बताइये, आप जहाँ-जहाँ गये हैं, वहाँ-वहाँ यह तपःसिद्ध और लोकमें विख्यात बलशाली पौण्ड्रक ही 'वासुदेव' नामसे विख्यात है न?॥ ५—७॥ मैं ही शङ्खधारी, चक्रपाणि, गदाधर और शार्ङ्गधनुर्धर हूँ। तलवार और तरकस लेकर कवच धारण करके अनेकानेक राजसिंहोंपर विजय पानेवाला मैं ही हूँ। मैं ही सदा सबको सब कुछ देनेवाला हूँ॥ ८॥ मैं समस्त राज्यका भोक्ता और बलपूर्वक शासन करनेवाला बलवान् राजा हूँ, शत्रुसैनिकोंके लिये अजेय तथा स्वजनोंका रक्षक हूँ॥ ९॥ आजकल जो वह गोप वासुदेव नामसे विख्यात हो रहा है, उसमें इतना बल और पराक्रम नहीं है, जिससे वह मेरा नाम धारण कर सके॥ १०॥ वह ग्वाला अज्ञानवश व्यर्थ ही मेरा नाम धारण करता है। विप्रवर! आप निश्चितरूपसे यह जान लीजिये कि मैं उस बलवान् यादवको जीतकर अकेला ही इस जगत्‌में वासुदेव रहूँगा। समस्त वृष्णिवंशियोंको बलपूर्वक पराजित करके श्रीकृष्णकी निवासभूता द्वारकापुरीको नष्ट कर डालूँगा। महामते! मैं स्वयं तो युद्ध करूँगा ही, ये समस्त बलवान् राजा भी मेरी ओरसे युद्धके लिये आये हैं'॥ ११—१३॥

अश्वाश्च वेगिनः सन्ति रथा वायुजवा मम।
उष्ट्रा मत्ताः सहस्त्रं च गजा नियुतमेव च॥ १४

एतेनाहं बलेनाजौ हनिष्ये केशवं रणे।
तस्मादेवं सदा विप्र वद ब्रह्मन् पुरे मम॥ १५

इन्द्रस्यापि सदा विप्र वद नारद साम्प्रतम्।
प्रार्थनैषा मम विभो नमस्ये त्वां तपोधन॥ १६

'मेरे पास बहुत-से वेगशाली अश्व हैं, वायुके समान वेगशाली रथ हैं, सहस्त्रों मतवाले ऊँट और लाखों मदमत्त हाथी हैं। इस विशाल सेनाके साथ रणभूमिमें मैं श्रीकृष्णका वध कर डालूँगा। विप्रवर! ब्रह्मन्! आप प्रत्येक नगरमें मेरे लिये सदा ऐसी ही बात कहें। नारद बाबा! इस समय इन्द्रके समक्ष भी आपको सदा मेरे बल-पराक्रमकी ही बात करनी चाहिये। विभो! तपोधन! यही मेरी प्रार्थना है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ'॥ १४—१६॥

नारद उवाच

सर्वत्रगः सदा चास्मि यावद् ब्रह्माण्डसंस्थितिः।
आचार्यः सर्वकार्येषु गमने केनचिन्नृप॥ १७

किं नु वक्तुं तथा राजन्नुत्सहे नृपसत्तम।
महीं शासति देवेशे चक्रपाणौ जनार्दने॥ १८

विष्णौ सर्वत्रगे देवे दुष्टान् हत्वा सबान्धवान्।
वासुदेवेति को नाम तिष्ठत्यस्मिन् हराविति॥ १९

को नाम वक्तुमेवेदं कृष्णे शासति गोमती।
अज्ञानाद् वक्तुमेवं च समर्थाः प्राकृता जनाः॥ २०

हरिः सर्वत्रगो विष्णुर्दर्पं ते व्यपनेष्यति।
अचिन्त्यविभवो विष्णुः शार्ङ्गधन्वा गदाधरः॥ २१

आदिदेवः पुराणात्मा दर्पं ते व्यपनेष्यति।
हास्यमेतन्महाराज यच्च वै तत्र संस्थितम्॥ २२

शार्ङ्गं खड्गं तथा राजन् महाघोरं न दाप्यते।
अतीव ह्रासकालोऽयं तव सम्प्रति वर्तते॥ २३

नारदजीने कहा—नरेश्वर! जहाँतक ब्रह्माण्डकी स्थिति है, मैं सदा सर्वत्र जा सकता हूँ। किसी भी पुरुषको अपने समस्त कार्योंके लिये मेरी शरण लेनी चाहिये। सर्वत्र जानेकी कलामें तो मैं आचार्य ही हूँ॥ १७॥ राजन्! नृपश्रेष्ठ! तुम जैसा चाहते हो, वैसी बात कहनेका उत्साह मैं कैसे कर सकता हूँ! जबतक बन्धु-बान्धवोंसहित समस्त दुष्टोंका वध करके सर्वत्र जा सकनेवाले सर्वव्यापी देव, देवेश्वर, चक्रपाणि जनार्दन इस पृथ्वीका शासन कर रहे हैं, तबतक उन श्रीहरिके रहते हुए दूसरा कौन वासुदेव कहला सकता है॥ १८-१९॥ सूर्य-किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले द्युलोक और भूलोकपर जबतक श्रीकृष्णका शासन चल रहा है, तबतक कौन मनुष्य ऐसी बात कह सकता है कि 'पौण्ड्रक वासुदेव है'। तुम्हारे-जैसे मूढ़ मनुष्य ही अज्ञानवश ऐसी बात कहनेमें समर्थ हो सकते हैं॥ २०॥ सर्वत्र जानेकी क्षमता रखनेवाले, अचिन्त्य वैभवशाली, पापहारी, सर्वव्यापी, शार्ङ्गधन्वा, गदाधर विष्णु तुम्हारे घमंडको दूर कर देंगे॥ २१॥ महाराज! आदिदेव, पुराणपुरुष श्रीकृष्ण तुम्हारे दर्पका दलन कर देंगे। तुम जो कुछ सोचते या कहते हो, यह उपहासकी बात है। राजन्! श्रीकृष्णके पास जो शार्ङ्ग-धनुष और महाभयंकर खड्ग है, उनका तुम्हारे इन अस्त्रोंसे उच्छेद नहीं हो सकता। इस समय तुम्हारे लिये यह महान् ह्रासका समय आ पहुँचा है॥ २२-२३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकनारदसंवादे द्विनवतितमोऽध्यायः॥ ९२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पौण्ड्रक और नारदका संवादविषयक बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९२॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

नारदजीका श्रीकृष्णके पास जाना और पौण्ड्रकका द्वारकापर आक्रमण

वैशम्पायन उवाच

ततः क्रुद्धो महाराज पौण्ड्रो मदबलान्वितः।
नारदं विप्रवर्यं तं प्रोवाच नृपसंसदि॥ १

किमिदं प्राह विप्रर्षे राजाहं च द्विजैः सह।
गच्छ त्वं काममथ वा मुने शापप्रदः सदा॥ २

भीतस्त्वत्तो महाबुद्धे गच्छ त्वं काममद्य हि।
इत्युक्तो नृपवर्येण तूष्णीमेव स नारदः॥ ३

जगामाकाशगमनो यत्र तिष्ठति केशवः।
स गत्वा विष्णुसंकाशं विष्णोः सर्वं शशंस ह॥ ४

तच्छ्रुत्वा भगवान् विष्णुर्यथेष्टं वदतामिति।
दर्पं तस्यापनेष्यामि श्वोभूते द्विजसत्तम॥ ५

इत्युक्त्वा विररामैव तस्मिन् बदरिकाश्रमे।
ततः पौण्ड्रो महाबाहुर्बलैर्बहुभिरीश्वरः॥ ६

अश्वैरनेकसाहस्रैर्गजैर्बहुभिरन्वितः।
शस्त्रकोटिसमायुक्तः स राजा सत्यसंगरः॥ ७

अनेकशतसाहस्त्रैः पत्तिभिश्च समन्वितः।
एकलव्यप्रभृतिभी राजभिश्च समन्ततः॥ ८

अष्टौ रथसहस्राणि नागानामयुतं तथा।
अर्बुदं पत्तिसंघानां तद्बलं समपद्यत॥ ९

एतेन च बलेनाजौ प्रस्फुरन् नृपसत्तमः।
विरराज महाराज उदयस्थो महारविः॥ १०

स ययौ मध्यरात्रेण नगरीं द्वारकामनु।
पत्तयो दीपिकाहस्ता रात्रौ तमसि दारुणे॥ ११

ययुर्विविधशस्त्रौघाः सम्पतन्तो महाबलाः।
द्वारकां वीर्यसम्पन्नां महाघोरां नृपोत्तमाः॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज! तदनन्तर बलके मदसे उन्मत्त रहनेवाला पौण्ड्रक कुपित हो उस राजसभामें विप्रवर नारदजीसे बोला—॥ १॥ 'ब्रह्मर्षे! आप यह क्या कहते हैं? मैं राजा हूँ और इन ब्राह्मणोंके साथ हूँ। मुने! आप सदा शाप देनेवाले हैं, अतः अपनी इच्छाके अनुसार यहाँसे चले जाइये। महाबुद्धे! मैं आपसे डरता हूँ, अतः चाहें तो अभी चले जाइये'। नृपश्रेष्ठ पौण्ड्रकके ऐसा कहनेपर आकाशचारी नारदजी चुपचाप वहाँसे उस स्थानको चले गये, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण थे। श्रीकृष्णके पास जाकर उन्होंने उनसे उसकी सारी बातें कह सुनायीं। उन्हें सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'द्विजश्रेष्ठ! पौण्ड्रक जैसा चाहे बकता रहे, कल मैं उसका घमंड दूर कर दूँगा'॥ २—५॥ ऐसा कहकर उस बदरिकाश्रममें भगवान् श्रीकृष्ण चुप हो रहे। इधर सामर्थ्यशाली महाबाहु पौण्ड्रकने बहुत-सी सेनाओंके साथ द्वारकापुरीको प्रस्थान किया॥ ६॥ अनेक सहस्र अश्वों, बहुसंख्यक हाथियों और करोड़ों अस्त्र-शस्त्रोंसे संयुक्त हुआ वह सत्यप्रतिज्ञ राजा द्वारकाकी ओर प्रस्थित हुआ॥ ७॥ उसके साथ कई लाख पैदल सैनिक थे। एकलव्य आदि राजा उसे सब ओरसे घेरकर चलते थे॥ ८॥ आठ हजार रथ, दस हजार हाथी और एक अर्बुद (दस करोड़) पैदल सैनिकोंसे वह सारी सेना सम्पन्न थी॥ ९॥ महाराज! इस विशाल सेनासे युद्ध-स्थलमें प्रकाशित होनेवाला नृपश्रेष्ठ पौण्ड्रक उदय-गिरिपर प्रकाशमान महासूर्यके समान शोभा पा रहा था॥ १०॥ उसने आधी रातके समय द्वारकापुरीपर धावा किया। रातके उस भयंकर अन्धकारमें पैदल सैनिकोंने हाथोंमें जलती हुई मशालें ले रखी थीं॥ ११॥ वे महाबली श्रेष्ठ नरेश नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न हो पराक्रमशालिनी महाघोर द्वारकापुरीपर आक्रमण करनेके लिये जा रहे थे॥ १२॥

रथं महान्तमारुह्य शस्त्रौघैश्च समावृतम्।
पट्टिशासिसमाकीर्णं गदापरिघसंकुलम्॥ १३
शक्तितोमरसंकीर्णं ध्वजमालासमाचितम्।
किङ्किणीजालसंयुक्तं शरासिप्राससंयुतम्॥ १४
महाघोरं महारौद्रं युगान्तजलदोपमम्।
धनुर्गदासमाकीर्णं महावाद्योपमं महत्॥ १५
अग्न्यर्कसदृशाकारं ययौ द्वारवतीमनु।
गृहीतदीपिको राजा वीर्यवान् बलवान् नृप॥ १६
हन्तुमैच्छज्जगन्नाथं वृष्णींश्चैव समन्ततः।
आकर्षन् बलमुख्यांस्तान् राज्ञः सर्वान् महाद्युतिः॥ १७
पुरद्वारं समासाद्य बलं संस्थाप्य यत्नतः।
इदं प्रोवाच राजा तु नृपान् सर्वानवस्थितान्॥ १८
ताड्यतामत्र भेरी तु नाम विश्राव्य मामकम्।
युध्यतां युध्यतामत्र देयं वा प्रतिदीयताम्॥ १९
आगतः पौण्ड्रको राजा युद्धार्थी वीर्यवत्तरः।
हन्तुकामः समग्रान् वः कृष्णबाहुबलाश्रयान्॥ २०
इति ते प्रेषिताः सर्वे समीयुः सूचकान् बहून्।
दीपिकाश्च प्रदीप्यन्ते बह्व्यः शतसहस्रशः॥ २१
इतश्चेतश्च राजानो युध्यन्ते युद्धलालसाः।
पुरीं ते पुरतस्तत्र क्षत्रियाः शस्त्रिणस्तदा॥ २२
सिंहनादं प्रकुर्वन्तः शस्त्रधारासमाकुलाः।
कुतोऽयं वृष्णिप्रवरः कुतो राजा जगत्पतिः॥ २३
कुतोऽयं सात्यकिर्वीरः कुतो हार्दिक्य एव च।
कुतो नु बलभद्रश्च सर्वयादवसत्तमः।
इत्येवं कथयन्तो वै राजानः सर्व एव ते॥ २४
आदाय शस्त्राणि बहूनि सर्वतः
शरांश्च चापानि बहूनि सर्वे।
युद्धाय सन्नाहनिबद्धशो ययु-
र्हरेः पुरीं द्वारवतीं नृपोत्तमाः॥ २५

नरेश्वर! पराक्रमी एवं बलवान् राजा पौण्ड्रक भी मशालें साथ लेकर एक विशाल रथपर आरूढ़ हो द्वारकापुरीकी ओर प्रस्थित हुआ। वह रथ नाना प्रकारके शस्त्रसमूहोंसे भरा हुआ था। पट्टिश, खड्ग, गदा और परिघोंसे परिपूर्ण था, शक्ति, तोमर, बाण, खड्ग और प्राससे सम्पन्न था, अनेक ध्वज उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। घुँघुरू लगी हुई झालरोंसे उस रथको सजाया गया था। उसमें धनुष और गदाएँ यथास्थान रखी गयी थीं। वह महाघोर महारौद्र विशाल रथ प्रलयकालीन मेघ एवं महावाद्यके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाला था। उसका स्वरूप अग्नि और सूर्यके तुल्य प्रकाशमान था॥ १३—१६॥ महातेजस्वी राजा पौण्ड्रक जगदीश्वर श्रीकृष्णको तथा उनके चारों ओर खड़े होनेवाले वृष्णिवंशी वीरोंको मार डालना चाहता था। वह अपनी सेनाके मुख्य-मुख्य सभी राजाओंको अपने साथ खींच ले गया और नगरद्वारपर पहुँचकर वहाँ सेनाको यत्नपूर्वक स्थापित करके सब ओर खड़े हुए समस्त नरेशोंसे इस प्रकार बोला—॥ १७-१८॥ "वीरो! रणभेरी बजाओ और मेरा नाम सुनाकर कहो—'यादवो! यहाँ आकर युद्ध करो! युद्ध करो!! अथवा देने योग्य राजकीय कर प्रदान करो। महान् पराक्रमी राजा पौण्ड्रक युद्धके लिये पधारे हैं और श्रीकृष्णके बाहुबलका आश्रय लेनेवाले तुम समस्त यादवोंका वध करना चाहते हैं"॥ १९-२०॥ इस प्रकार भेजे गये वे समस्त नरेश बहुसंख्यक सूचकों (बाहर-भीतरके वृत्तान्तको जाननेवाले यादव भटों)-से मिले। उस समय बहुतेरी मशालें लाखोंकी संख्यामें जल रही थीं। युद्धकी लालसा रखनेवाले राजाओंने इधर-उधर युद्ध छेड़ दिया था। वहाँ पुरीके द्वारपर शस्त्रधारी क्षत्रिय सिंहनाद करते हुए शस्त्रोंकी धारा बरसा रहे थे और कहते थे 'कहाँ है वृष्णिवंशका श्रेष्ठ वीर? कहाँ है राजा जगदीश्वर? कहाँ है वीर सात्यकि? कहाँ है कृतवर्मा और कहाँ है सर्वयादवशिरोमणि बलभद्र?' ऐसा कहते हुए वे समस्त श्रेष्ठ राजा सब ओरसे बहुतेरे अस्त्र-शस्त्र, बाण और बहुसंख्यक धनुष ले युद्धके लिये कमर कसकर श्रीहरिकी द्वारकापुरीपर धावा बोलने लगे॥ २१—२५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकस्य द्वारकागमने त्रिनवतितमोऽध्यायः॥ ९३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमेंपौण्ड्रकका द्वारकापर आक्रमणविषयक तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९३॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

यादववीरोंद्वारा पौण्ड्रककी सेनाका और एकलव्यद्वारा यादवसेनाका संहार

वैशम्पायन उवाच

ततश्च यादवाः सर्वे दृष्ट्वा सैनिकसंचयम्।
रात्रौ च व्यसनं प्राप्तं महाशस्त्रसमाकुलम्॥ १

महावातसमुद्धूतं कल्पान्ते सागरोपमम्।
संनद्धाः समपद्यन्त शस्त्रिणो युद्धलालसाः॥ २

गृहीतदीपिकाः सर्वे यादवाः शस्त्रयोधिनः।
सात्यकिर्बलभद्रश्च हार्दिक्यो निशठस्तथा॥ ३

उद्धवोऽथ महाबुद्धिरुग्रसेनो महाबलः।
अन्ये च यादवाः सर्वे कवचप्रग्रहे रताः॥ ४

समस्तयुद्धकुशला रात्रौ सन्नाहयोधिनः।
शस्त्रिणः खड्गिनश्चैव सर्वे शस्त्रसमाकुलाः॥ ५

युद्धाय समपद्यन्त बहवो बाहुशालिनः।
रथिनो गजिनश्चैव सादिनः सायुधास्तथा॥ ६

नित्ययुक्ता महात्मानो धन्विनः पुरुषोत्तमाः।
निर्ययुर्नगरात् तूर्णं दीपिकाभिः समन्ततः॥ ७

कुतः पौण्ड्रक इत्येवं वदन्तः सर्वसात्वताः।
दीपिकादीपितो देशो निस्तमाः समपद्यत॥ ८

ततो वितिमिरो देशः समन्तात् प्रत्यपद्यत।
युद्धं समभवद् घोरं वृष्णिभिः शत्रुभिः सह॥ ९

ततो महान् समभवत् संनादो रोमहर्षणः।
हया हयैः समायुक्ताः गजाश्च गजयूथपैः॥ १०

रथा रथैः समायुक्ताः सादिभिः सादिनस्तथा।
खड्गिनः खड्गिभिः सार्धं गदिभिर्गदिनस्तथा॥ ११

परस्परव्यतीकारो रण आसीत् सुदारुणः।
महाप्रलयसंक्षोभः शब्दस्तेषां महात्मनाम्॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर समस्त यादवोंने देखा कि शत्रुसैनिकोंका बड़ा भारी जमाव हो रहा है। वे सब-के-सब महान् अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न हैं और प्रचण्ड वायुसे उमड़े हुए प्रलयकालके समुद्रकी भाँति दिखायी देते हैं। विशेषतः रात्रिके समय यह महान् संकट प्राप्त हुआ है। यह देख और सोचकर वे समस्त यादव युद्धकी लालसासे अस्त्र-शस्त्र लेकर कमर कसकर तैयार हो गये। उन सभी शस्त्रयोधी यादवोंने अपने हाथोंमें मशालें ले रखी थीं। सात्यकि, बलभद्र, हार्दिक्य (कृतवर्मा), निशठ, परम बुद्धिमान् उद्धव, महाबली उग्रसेन तथा अन्य सब यादववीर कवच बाँधने लगे॥ १—४॥ ये सब-के-सब सम्पूर्ण युद्धोंमें कुशल, रातमें भी कमर कसकर जूझनेवाले, शस्त्रधारी और खड्गधारी थे। सभी सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न थे॥ ५॥ वे बहुसंख्यक बाहुशाली वीर युद्धके लिये उद्यत हो गये। उनके साथ रथी, हाथीसवार, घुड़सवार और शस्त्रधारी पैदल योद्धा भी थे॥ ६॥ वे नित्य उद्यत रहनेवाले, महामनस्वी, धनुर्धर, पुरुष-प्रवर वीर सब ओरसे मशालोंके साथ तुरंत नगरसे बाहर निकले॥ ७॥ वे समस्त यादव यह कहते हुए निकले कि 'कहाँ है पौण्ड्रक?' मशालोंसे प्रकाशित हुआ वह देश सर्वथा अन्धकाररहित हो गया॥ ८॥ तत्पश्चात् वह स्थान सब ओरसे अन्धकारशून्य हो गया। उस समय वहाँ शत्रुओंके साथ वृष्णिवंशियोंका घोर युद्ध आरम्भ हो गया॥ ९॥ फिर तो महान् कोलाहल होने लगा, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। घोड़े घोड़ोंसे, गजराज गजराजोंसे, रथ रथोंसे और सवार सवारोंसे भिड़ गये। खड्गधारी वीर खड्गधारियोंसे और गदाधारी गदाधारियोंसे लड़ने लगे। उस रणभूमिमें उभयपक्षके सैनिकोंका परस्पर बड़ा भयंकर घोल-मेल हो गया। उन महामनस्वी वीरोंके गर्जन-तर्जनका शब्द महाप्रलयके समय उमड़े हुए समुद्रोंकी गर्जनाके समान जान पड़ता था॥ १०—१२॥

धावन्तः प्रहरन्त्येतान् घ्नन्त्येतान् सर्वतो नृपान्।
अयमेष महाबाहुः खड्गी पतति वीर्यवान्॥ १३

अयमेष शरो घोरो वर्ततेऽतिसुदारुणः।
गदी चायं महावीर्यः सर्वान् नो बाधते नृपः॥ १४

अयं रथी शरी चापी गदी तूणी तनुत्रवान्।
पट्टिशी सर्वतो याति कुन्तपाणिरयं बली॥ १५

अयमत्र महाशूली संश्रितः सर्वतो दिशम्।
गजोऽयं सविषाणाग्रो वर्तते सर्वतः प्रति॥ १६

अतिसर्वत्रगः शूरो वेगवान् वातसंनिभः।
शराञ्छरैः समाहन्ति दण्डान् दण्डैर्जगत्पते॥ १७

कुन्तान् कुन्तैः समाजघ्नुर्गदाभिश्च गदास्तथा।
परिघान् परिघैः सार्धं शूलाञ्छूलैः समन्ततः॥ १८

एवं तेषां महाराज कुर्वतां रणमुत्तमम्।
संग्रामः सुमहानासीच्छब्दश्चापि महानभूत्॥ १९

भूतानि सुबहून्याजौ शब्दवन्ति महान्ति च।
प्रादुरासन् सहस्राणि शङ्खानां भीमनिःस्वनः॥ २०

रात्रौ प्रादुरभूच्छब्दः संग्रामे रोमहर्षणः।
वर्तमाने महायुद्धे वृष्णीनां चैव तैः सह॥ २१

केचिद् ग्रस्ताः समापेतुः पृथिव्यां पृथिवीक्षितः।
केचिच्च पतिताः श्लिष्टाः विप्रकीर्णशिरोरुहाः॥ २२

पेतुरुर्व्यां महावीर्या राजानः शस्त्रपाणयः।
केचित् तु भिन्नवर्माणः समापेतुः सहस्रधा॥ २३

परस्परं समाश्रित्य परस्परवधैषिणः।
न्यस्तशस्त्रा महात्मानः समन्तात् क्षतविग्रहाः॥ २४

पेतुर्गतासवः केचिद् यमराष्ट्रविवर्धनाः।
एवं ते निहता राजन् योधिताः सर्व एव तु॥ २५

एतस्मिन्नन्तरे शूर एकलव्यो निषादपः।
धनुर्गृह्य महाघोरं कालान्तकयमोपमः॥ २६

दोनों ओरके योद्धा धावा करके विपक्षी सैनिकोंपर प्रहार करते और इन समस्त नरेशोंको घायल करते थे। (वहाँ आपसमें इस प्रकारकी चर्चाएँ होती थीं) 'यह खड्गधारी महाबाहु पराक्रमी वीर धराशायी हो रहा है। यह अत्यन्त दारुण बाण बड़ा ही भयंकर है। यह गदाधारी महापराक्रमी नरेश हम सब लोगोंको पीड़ा दे रहा है॥ १३-१४॥ यह धनुष, बाण, गदा, तरकस, कवच, पट्टिश और कुन्त धारण करनेवाला बलवान् रथी वीर रणभूमिमें सब ओर विचर रहा है॥ १५॥ यह महाशूलधारी योद्धा यहाँ सारी दिशाओंमें चक्कर लगाता है। यह हाथी अपने दाँतोंका अग्रभाग सामने किये सब ओर दौड़ लगाता है'॥ १६॥ राजन्! कोई-कोई वेगशाली शूरवीर वायुके समान अत्यन्त तीव्र गतिसे सर्वत्र जा पहुँचता और अपने बाणोंसे शत्रुओंके बाणोंका तथा दण्डोंसे उनके दण्डोंका नाश कर देता था॥ १७॥ कितने ही योद्धा कुन्तों (भालों)-से कुन्तोंका, गदाओंसे गदाओंका, परिघोंसे परिघोंका, साथ ही सब ओर शूलोंसे शूलोंका उच्छेद कर डालते थे॥ १८॥ महाराज जनमेजय! इस प्रकार उत्तम युद्ध करते हुए उन योद्धाओंमें बड़ा भारी संग्राम छिड़ गया और महान् कोलाहल होने लगा॥ १९॥ उस युद्धस्थलमें बहुत-से बड़े-बड़े प्राणी भाँति-भाँतिके शब्द करते हुए सहस्रोंकी संख्यामें प्रकट हो गये। वहाँ होनेवाली शङ्खोंकी ध्वनि बड़ी भयंकर प्रतीत होती थी॥ २०॥ रात्रिमें उस संग्रामके भीतर बड़ा रोमाञ्चकारी शब्द प्रकट होने लगा। शत्रुओंके साथ होनेवाले वृष्णिवंशियोंके उस महायुद्धमें कितने ही भूपाल कालके ग्रास बनकर पृथ्वीपर गिर पड़े। कितने ही महापराक्रमी राजा हाथमें शस्त्र लिये ही एक-दूसरेसे सटे हुए गिरते और सिरके बाल बिखेरे धराशायी हो जाते थे। कितने ही योद्धा कवच विदीर्ण हो जानेके कारण सहस्रों टुकड़े होकर गिर पड़ते थे। एक-दूसरेके वधकी इच्छावाले कितने ही महामनस्वी योद्धा परस्पर अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करके सब ओरसे शरीरके क्षत-विक्षत हो जानेपर प्राणशून्य होकर गिर पड़ते और यमराजके राष्ट्रकी वृद्धि करते थे। राजन्! इस प्रकार युद्धमें भाग लेनेवाले वे सब नरेश वहाँ मारे गये॥ २१—२५॥ इसी बीचमें निषादोंका अधिपति शूरवीर एकलव्य, जो काल, अन्तक

शरैरनेकसाहस्त्रैरर्दयामास यादवान्।
परं शतैः शराणां तु निशितैर्मर्मभेदिभिः ॥ २७
वृष्णीनां च बलं सर्वं पोथयामास सर्वतः।
युद्ध्यतः शस्त्रपाणींश्च क्षत्रियान् वीर्यवत्तरान्॥ २८

निशठं पञ्चविंशत्या शराणां नतपर्वणाम्।
सारणं दशभिर्विद्ध्वा हार्दिक्यं पञ्चभिः शरैः ॥ २९

उग्रसेनं नवत्याशु वसुदेवं च सप्तभिः।
उद्धवं दशभिश्चैव ह्यक्रूरं पञ्चभिः शरैः ॥ ३०

एवमेकैकशः सर्वे निहता निशितैः शरैः।
विद्राव्य यादवीं सेनां नाम विश्राव्य वीर्यवान्॥ ३१

एकलव्यो यदुवृषान् वीर्यवान् बलवानहम्।
इदानीं सात्यकिर्वीरः क्व यास्यति महाबलः ॥ ३२

मदमत्तो हली साक्षात् क्व यातीह गदाधरः।
इत्याह सिंहनादेन सिंहान् विस्मापयन्निव॥ ३३

और यमके समान भयंकर था, महाघोर धनुष लेकर सहस्रों बाणोंद्वारा यादवोंको पीड़ा देने लगा। उसने सैकड़ों तीखे और मर्मभेदी बाणोंसे वृष्णिवंशियोंकी सारी सेनाको मार गिराया। हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लेकर जूझनेवाले अत्यन्त बलशाली क्षत्रियोंको भी धराशायी कर दिया॥ २६—२८॥ उसने झुकी हुई गाँठवाले पच्चीस बाणोंसे निशठको, दस बाणोंसे सारणको, पाँचसे कृतवर्माको, नब्बे बाणोंसे उग्रसेनको तथा सात सायकोंद्वारा वसुदेवको भी उग्रतापूर्वक घायल करके दस बाणोंसे उद्धवको और पाँच सायकोंसे अक्रूरको भी बींध डाला॥ २९-३०॥ इस प्रकार एक-एक करके उस पराक्रमी वीरने तीखे बाणोंद्वारा सभी यादव-वीरोंको घायल कर दिया तथा यादवी सेनाको भगाकर वह अपना नाम सुनाते हुए इस प्रकार कहने लगा— ॥ ३१॥ 'मैं बलवान् एवं पराक्रमी वीर एकलव्य हूँ। इस समय महाबली वीर सात्यकि मुझसे बचकर कहाँ जायँगे? बलके मदसे उन्मत्त रहनेवाले साक्षात् हलधर हाथमें गदा लिये कहाँ जा रहे हैं?' इस प्रकार वह यदुकुलके श्रेष्ठ वीरोंको ललकारकर कहता और अपने सिंहनादसे सिंहोंको भी विस्मित-सा किये देता था॥ ३२-३३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकवधे रात्रियुद्धे चतुर्नवतितमोऽध्यायः॥ ९४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पौण्ड्रक-वधके प्रसङ्गमें रात्रिकालका युद्धविषयक चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९४॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

पौण्ड्रकद्वारा पूर्वद्वारके परकोटोंको तोड़नेका प्रयत्न, सात्यकि आदि यादववीरोंका रक्षाके लिये पहुँचना, सात्यकिका वायव्यास्त्रद्वारा पौण्ड्रकसैनिकोंको भगाकर पौण्ड्रकको युद्धके लिये ललकारना और पौण्ड्रककी गर्वोक्ति

वैशम्पायन उवाच

निवृत्तेष्वथ सैन्येषु वृष्णिवीरेषु चैव हि।
भीतेष्वथ महाराज हतेषु युधि सर्वतः॥ १
दीपिकासु प्रशान्तासु निःशब्दे सति सर्वतः।
जितमित्येव यन्मत्वा वृष्णीनां बलमुत्तमम्॥ २
ततः पौण्ड्रो महावीर्यो बभाषे सैनिकान् स्वकान्।
शीघ्रं गच्छत राजेन्द्राष्टङ्कैः कुन्तैः पुरीमिमाम्॥ ३
कुठारैः कुन्तलैश्चैव पाषाणैः सर्वतोदिशम्।
कर्षणस्थैः सुपाषाणैः सर्वतो यात भूमिपाः॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज जनमेजय! जब यादवोंकी सारी सेना और वृष्णिवंशी वीर युद्धमें घायल और भयभीत होकर सब ओरसे लौट गये, सारी मशालें बुझ गयीं और चारों ओर सन्नाटा छा गया, तब यह समझकर कि वृष्णिवंशियोंकी उत्तम सेना पराजित हो गयी, महापराक्रमी पौण्ड्रक अपने सैनिकोंसे बोला—'राजेन्द्रगण! शीघ्र जाओ और टङ्कों तथा कुन्तोंसे इस पुरीको खोद डालो॥ १—३॥ भूमिपालो! कुठार, कुन्तल (हल), पाषाण तथा पत्थर फेंकनेवाले यन्त्रोंपर रखे गये बड़े-बड़े प्रस्तर-खण्ड लेकर इस पुरीके चारों ओर चले जाओ'॥ ४॥

भिद्यन्तां प्राकारचयाः प्रासादाश्च समन्ततः।
गृह्यन्तां कन्यकाः सर्वा दास्यश्चैव समन्ततः॥ ५
गृह्यन्तां वसुमुख्यानि धनानि सुबहून्यथ।
ते तथेति महात्मानो राजानः सर्व एव तु॥ ६
कुठारैः सर्वतश्चैव चिच्छिदुः पौण्ड्रकाज्ञया।
प्राकारांश्चैव सर्वत्र प्रासादान् नरसंचयान्॥ ७
अथ तत्र महाशब्दः प्रादुरासीत् समन्ततः।
टङ्केषु पात्यमानेषु प्राकारेषु महाबलैः॥ ८
पूर्वद्वारे महाराज भिन्नाः प्राकारसंचयाः।
श्रुत्वा शब्दं महाघोरं सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः॥ ९
मयि सर्वं समारोप्य केशवो यादवेश्वरः।
गतः कैलासशिखरं द्रष्टुं शंकरमव्ययम्॥ १०
अवश्यं हि मया रक्ष्या पुरी द्वारवती त्वियम्।
इति संचिन्त्य मनसा धनुरादाय सत्वरम्॥ ११
रथं महान्तमारुह्य दारुकस्य महात्मनः।
पुत्रेण संस्कृतं घोरं यन्ता च स्वयमेव हि॥ १२
धनुर्महत् तदादाय शरांश्चाशीविषोपमान्।
आमुच्य कवचं घोरं शस्त्रसम्पातदुःसहम्॥ १३
अङ्गदी कुण्डली तूणी शरी चापी गदासिमान्।
ययौ युद्धाय शैनेयः संस्मरन् कैशवं वचः॥ १४
दीपिकादीपिते देशे ययौ सात्यकिरुत्तमः।
तथैव बलदेवोऽपि रथमारुह्य भास्वरम्॥ १५
गदी शरी महावीर्यः प्रायाद् रणचिकीर्षया।
सिंहनादं प्रकुर्वन्तो मुञ्चन्तो भैरवं रवम्॥ १६
उद्धवोऽपि बली साक्षाद् गजमारुह्य सत्वरम्।
मत्तं महारवं घोरं संग्रामे नीतिमत्तरः॥ १७
ययौ नीतिं विचिन्वानः परां प्रीतिं महाबलः।
अन्ये च वृष्णयः सर्वे ययुः संग्रामलालसाः॥ १८
रथान् गजान् समारुह्य हार्दिक्यप्रमुखास्तथा।
दीपिकाभिश्च सर्वत्र पुरोवृत्ताभिरीश्वराः॥ १९

'इस पुरीके परकोटे विदीर्ण कर डालो, महलोंको भी सब ओरसे गिरा दो, समस्त यादव-कन्याओं और दासियोंको भी अपने अधिकारमें कर लो॥ ५॥ मुख्य-मुख्य रत्न और बहुत-सी धनराशियोंको लूट लो।' तब 'बहुत अच्छा' कहकर वे सभी महामनस्वी नरेश पौण्ड्रककी आज्ञासे कुठारोंद्वारा सब ओरसे पुरीके परकोटोंको तथा सब ओर मनुष्योंके समुदायसे भरे हुए महलोंको छिन्न-भिन्न करने लगे॥ ६-७॥ उन महाबली वीरोंद्वारा जब परकोटोंपर टङ्क गिराये जाने लगे, उस समय चारों ओर बड़ा भारी शब्द होने लगा॥ ८॥ महाराज! पूर्वद्वारपर जो बहुत-से परकोटे थे, वे प्रायः विदीर्ण कर दिये गये। परकोटोंके गिराये जानेका महाभयंकर शब्द सुनकर सात्यकि क्रोधसे मूर्च्छित हो गये॥ ९॥ उन्होंने सोचा—'यदुनाथ केशव इस पुरीकी रक्षाका सारा भार मुझपर ही रखकर अविनाशी भगवान् शंकरका दर्शन करनेके लिये कैलासपर्वतके शिखरपर गये हैं। अतः इस समय इस द्वारकापुरीकी रक्षा मुझे अवश्य करनी चाहिये।' मन-ही-मन ऐसा सोचकर वे तुरंत धनुष लेकर एक विशाल एवं भयंकर रथपर आरूढ़ हुए, जिसे महात्मा दारुकके पुत्रने सजाया था और वह स्वयं ही उसका सारथि बना था॥ १०—१२॥ वे वह विशाल धनुष और विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाण लेकर शस्त्रोंका प्रहार जिसकी टंकारको कठिनतासे सह सके, ऐसे भयंकर कवचको धारण करके बाजूबंद, कुण्डल, तरकस, बाण, धनुष, गदा और खड्गसे संयुक्त हो सात्यकि भगवान् श्रीकृष्णके वचनोंको स्मरण करते हुए युद्धके लिये चल दिये॥ १३-१४॥ जो स्थान मशालोंसे प्रकाशित था, वहीं उत्तम वीर सात्यकि गये। उसी प्रकार महापराक्रमी बलदेव भी युद्ध करनेकी इच्छासे गदा और धनुष-बाण ले तेजस्वी रथपर आरूढ़ हो वहाँ तीव्र गतिसे गये। उनके साथके सभी सैनिक भयंकर सिंहनाद करते हुए आगे बढ़ रहे थे॥ १५-१६॥ नीतिमानोंमें श्रेष्ठ, महापराक्रमी बलवान् उद्धव भी उत्तम नीति और प्रीतिका अनुसंधान करते हुए महान् गर्जन करनेवाले भयंकर मतवाले हाथीपर आरूढ़ हो तुरंत ही संग्रामभूमिकी ओर चल दिये। अन्य सब वृष्णिवंशी योद्धा भी संग्रामकी लालसा लेकर वहाँ गये॥ १७-१८॥ कृतवर्मा आदि प्रधान-प्रधान सामर्थ्यशाली योद्धा भगवान् श्रीकृष्णके वचनोंका स्मरण करके रथों और हाथियोंपर आरूढ़ हो सर्वत्र अपने आगे मशालोंको

सिंहनादं प्रकुर्वन्तः स्मरन्तः कैशवं वचः।
पूर्वद्वारं समागम्य वृष्णयो युद्धलालसाः॥ २०
ते समेत्य यथायोगं स्थितास्तत्र महाबलाः।
स्थिते सैन्ये महाघोरे दीपिकादीपिते पथि॥ २१
शिनिर्वीरः शरी चापी गदी तूणीरवान् विभो।
वायव्यास्त्रं समादाय योजयित्वा महाशरम्॥ २२
आकर्णं तूर्णमाकृष्य धनुःप्रवरमुत्तमम्।
मुमोच परसैन्येषु शिनिर्वीरः प्रतापवान्॥ २३
वायव्यास्त्रेण ते सर्वे तत्रस्था नरसत्तमाः।
विजिता ह्यस्त्रवीर्येण यत्र तिष्ठति पौण्ड्रकः॥ २४
तत्र गत्वा स्थिताः सर्वे निर्धूता वातरंहसा।
यत्र पूर्वं स्थिताः सर्वे विद्रुता राजसत्तमाः॥ २५
तत्र स्थित्वा च शैनेयः शरमादाय सत्वरम्।
निशितं सर्पभोगाभं बभाषे सात्यकिस्तदा॥ २६
क्व इदानीं महाबुद्धिः पौण्ड्रको राजसत्तमः।
स्थितोऽस्मि व्यवसायेन शरी चापी महाबलः॥ २७
यदि द्रष्टा दुरात्मानं ततो हन्ता नृपाधमम्।
भृत्योऽस्मि केशवस्याहं जिघांसुः पौण्ड्रकं स्थितः॥ २८
छित्त्वा शिरस्तु तस्यास्य सर्वक्षत्रस्य पश्यतः।
बलिं दास्यामि गृध्रेभ्यः श्वभ्यश्चैव दुरात्मनः॥ २९
को नाम ईदृशं कर्म चौरवच्च समाचरेत्।
सुप्तेषु निशि सर्वत्र यादवेषु महात्मसु॥ ३०
चौरोऽयं सर्वथा राजा न हि राजा बलान्वितः।
यदि शक्तो न कुर्याच्च चौर्यमेवं नृपाधमः॥ ३१
अहोऽस्य बलिनो राज्ञश्चौरकार्यं प्रकुर्वतः।
सर्वथाऽऽगमनं तस्य न हि पश्यामि साम्प्रतम्॥ ३२
इत्युक्त्वा सात्यकिर्वीरः प्रजहास महाबलः।
विस्फार्य सुदृढं चापं संदधे कार्मुके शरम्॥ ३३
आकर्ण्य वचनं वीरः सात्यकेस्तस्य धीमतः।
क्व नु कृष्णः क्व गोपालः कुतः सोऽथ प्रवर्तते॥ ३४
स्त्रीहन्ता पशुहन्ता च क्व च स्वामीति सेवितः।
स इदानीं क्व वर्तेत गृहीत्वा मम नाम तत्॥ ३५

जलवाकर सिंहनाद करते हुए चले। पूर्वद्वारपर आकर युद्धकी इच्छावाले महाबली वृष्णिवंशी योद्धा यथायोग्य एक-दूसरेसे मिलकर युद्धकी लालसासे वहाँ डट गये। राजन्! मशालोंसे प्रकाशित हुए पथपर जब वह महाभयंकर सेना खड़ी हो गयी, तब धनुष, बाण, तरकस और गदासे युक्त हो वीरवर प्रतापी सात्यकिने वायव्यास्त्र लेकर उसके द्वारा अपने महान् बाणको संयुक्त करके उस उत्तम एवं श्रेष्ठ धनुषको पूरे कानतक खींचकर वह अस्त्र शत्रुओंकी सेनापर छोड़ दिया॥ १९—२३॥ वहाँ खड़े हुए शत्रुपक्षके सभी श्रेष्ठ योद्धा वायव्यास्त्रसे पीड़ित हो उस अस्त्रकी शक्तिसे पराजित हो वहीं जा पहुँचे, जहाँ पौण्ड्रक खड़ा था॥ २४॥ वायुके वेगसे कम्पित हो वे सभी श्रेष्ठ नरेश भागकर उसी स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ पहले खड़े थे॥ २५॥ पूर्वद्वारपर खड़े हुए शिनिवंशी सात्यकि तुरंत ही एक सर्पाकार तीखा बाण ले बोले—॥ २६॥ 'राजाओंमें श्रेष्ठ परम बुद्धिमान् पौण्ड्रक इस समय कहाँ है? मैं महाबली सात्यकि धनुष-बाण लेकर उसके साथ युद्धके निश्चयसे यहाँ खड़ा हूँ। यदि उस दुरात्मा नीच नरेशको मैं देख लूँगा तो बिना मारे नहीं रहूँगा। मैं भगवान् श्रीकृष्णका सेवक हूँ और पौण्ड्रकका वध करनेके लिये यहाँ खड़ा हूँ॥ २७-२८॥ मैं समस्त क्षत्रियोंके देखते-देखते उस दुरात्माका सिर काटकर गीधों और कुत्तोंको उसकी बलि दे दूँगा॥ २९॥ रातमें जब सर्वत्र महात्मा यादव सो रहे हों, कौन श्रेष्ठ पुरुष इस तरह चोरकी भाँति जघन्य कर्म कर सकता है? यह बलवान् राजा नहीं, सर्वथा चोर है। यदि इस नीच नरेशमें शक्ति होती तो यह इस तरह चोरी न करता॥ ३०-३१॥ अहो! चोरका काम करनेवाले इस बलवान् राजाका मेरे सामने किसी तरह आगमन नहीं हो रहा है। मैं उस चोरको इस समय देख नहीं पा रहा हूँ'॥ ३२॥ ऐसा कहकर महाबली वीर सात्यकि जोर-जोरसे हँसने लगे। उन्होंने अपने सुदृढ़ धनुषको कानतक खींचकर उसपर बाणका संधान किया॥ ३३॥ बुद्धिमान् वीर सात्यकिका यह वचन सुनकर वीर पौण्ड्रक बोल उठा—'कहाँ है कृष्ण! कहाँ है वह ग्वाला? स्त्री और पशुकी हत्या करनेवाला कृष्ण इस समय कहाँ है? जो यहाँ स्वामी बनकर सेवा लेता है, वह मेरा शत्रु कहाँ है? मेरा नाम ग्रहण करके वह अब कहाँ छिपा हुआ है?'॥ ३४-३५॥

हन्ता सख्युर्महावीर्यो नरकस्य महात्मनः।
ममैव तात युद्धेऽस्मिन् हते तस्मिन् दुरात्मनि॥ ३६

गच्छ त्वं कामतो वीर योद्धुं न क्षमते भवान्।
अथवा तिष्ठ किंचित् तु ततो द्रष्टासि मे बलम्॥ ३७

शिरस्ते पातयिष्यामि शरैर्घोरैर्दुरासदैः।
हतस्य तव वीरेह भूमिः पास्यति शोणितम्॥ ३८

श्रोष्यते स तथा गोपो हतः सात्यकिरित्यपि।
यो गर्वस्तस्य गोपस्य सर्वदा वर्तते महान्॥ ३९

विनश्यति स तु क्षिप्रं हते त्वयि यदूत्तम।
त्वयि रक्षां समादिश्य गोपः कैलासपर्वतम्॥ ४०

गत इत्येवमस्माभिः श्रुतं पूर्वं महामते।
शरं गृहाण निशितं यदि शक्तोऽसि सात्यके।
इत्युक्त्वा बाणमादाय ययौ योद्धुं व्यवस्थितः॥ ४१

'उसने मेरे ही मित्र महात्मा नरकासुरका वध किया है, इसीलिये वह महापराक्रमी बना फिरता है। तात! इस युद्धमें उस दुरात्माके मारे जानेपर मेरा क्रोध शान्त होगा॥ ३६॥ वीर! तुम इच्छानुसार लौट जाओ। तुममें मेरे साथ युद्ध करनेकी क्षमता नहीं है। अथवा थोड़ी देर ठहर जाओ, फिर स्वयं ही मेरा बल देख लोगे॥ ३७॥ वीर! मैं भयंकर दुर्जय बाणोंद्वारा तुम्हारा सिर काट गिराऊँगा! इस रणभूमिमें मेरेद्वारा मारे जानेपर यहाँकी भूमि तुम्हारा रक्तपान करेगी॥ ३८॥ वह ग्वाला भी सुन लेगा कि सात्यकि मारा गया। यदुश्रेष्ठ! उस गोपको जो सदा महान् गर्व बना रहता है, वह तुम्हारे मारे जानेपर शीघ्र ही नष्ट हो जायगा। महामते! हमलोगोंने पहलेसे ही सुन रखा है कि वह गोप तुम्हारे ऊपर नगरकी रक्षाका भार रखकर कैलासपर्वतपर गया है। सात्यके! यदि तुममें शक्ति हो तो कोई तीखा बाण हाथमें लो।' ऐसा कहकर पौण्ड्रक बाण लेकर आगे बढ़ा और युद्धके लिये डट गया॥ ३९—४१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकवधे रात्रियुद्धे सात्यकिपौण्ड्रकभाषणे पञ्चनवतितमोऽध्यायः॥ ९५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पौण्ड्रक-वधके प्रसंगमें रात्रियुद्धके समय सात्यकि और पौण्ड्रकका संवादविषयक पंचानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९५॥

षण्णवतितमोऽध्यायः

पौण्ड्रक और सात्यकिका युद्ध

वैशम्पायन उवाच

ततः क्रुद्धो महाराज सात्यकिर्वृष्णिपुङ्गवः।
उवाच वचनं राजन् वासुदेवं स्मरन्निव॥ १

अवोचदीदृशं वाक्यं वासुदेवं नृपाधमः।
को नाम जगतां नाथमित्थं ब्रूयाज्जिजीविषुः॥ २

मृत्युस्त्वां सर्वथा याति वदन्तं तादृशं वचः।
जिह्वा ते शतधा दीर्याद् वदतस्तादृशं वचः॥ ३

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज जनमेजय! तदनन्तर वृष्णिकुलके श्रेष्ठ वीर सात्यकिने कुपित होकर भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए-से इस प्रकार कहा—॥ १॥ 'पौण्ड्रक! तू राजाओंमें अधम है। इसीलिये भगवान् वासुदेवके प्रति तूने ऐसी बात कह डाली है। अपने जीवनकी इच्छा रखनेवाला कौन ऐसा पुरुष होगा, जो जगन्नाथ श्रीकृष्णके प्रति ऐसी बात कह सकेगा?॥ २॥ वैसी कठोर बात कहते हुए तेरे पीछे-पीछे सर्वथा मृत्यु चल रही है। इस तरहकी अनुचित बात कहते समय तेरी जिह्वाके सौ-सौ टुकड़े हो जाने चाहिये'॥ ३॥

एष ते पातयिष्यामि शिरः कायाच्च पौण्ड्रक।
यन्नाम वासुदेवेति तव सम्प्रति वर्तते॥ ४

यावत् पतति कायात् ते शिरस्तावत् प्रवर्तते।
स एव श्वो न भगवान् वासुदेवो भविष्यसि॥ ५

एक एव जगन्नाथः कर्ता सर्वस्य सर्वगः।
दुरात्मन् सर्वथा देवो भविष्यति न संशयः॥ ६

एष तेऽहं शिरः कायात् पातयिष्यामि राजक।
यदसौ भगवान् विष्णुर्नागमिष्यति साम्प्रतम्॥ ७

अस्त्रवीर्यं बलं चैव सर्वं दर्शय साम्प्रतम्।
नातः परतरं राजन् वीर्यं च तव वर्तते॥ ८

सर्वं दर्शय यत्नेन स्थितोऽस्मि व्यवसायवान्।
शरी चापी गदी खड्गी सर्वथाहमुपस्थितः॥ ९

नैतन्नगरमायासीः सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्।
सर्वथा कृतकृत्योऽस्मि दृष्ट्वा त्वां वासुदेवकम्॥ १०

तवाङ्गं तिलशः कृत्वा श्वभ्यो दास्यामि राजक।
इत्युक्त्वा बाणमादाय वासुदेवं महाबलः॥ ११

आकर्णपूर्णमाकृष्य विव्याध निशितं शरम्।
स तेन विद्धो यदुना वासुदेवः प्रतापवान्॥ १२

वमञ्छोणितमत्युष्णमङ्गान्नेत्रान्नृपोत्तम।
ततश्चुक्रोध नृपतिर्वासुदेवः प्रतापवान्॥ १३

नवभिर्दशभिश्चैव शरैः संनतपर्वभिः।
विव्याध सात्यकिं राजा नदंश्च बहुधा किल॥ १४

ततो नाराचमादाय निशितं यमसंनिभम्।
धनुराकृष्य भगवान् वासुदेवो नृपोत्तम॥ १५

विव्याध सात्यकिं भूयो निशि प्रह्लादयन् स्वकान्।
नाराचेन समाविद्धः सात्यकिः सत्यसङ्गरः॥ १६

ललाटे सुदृढं वीरो वृष्णीनामग्रणीस्तदा।
निषसाद रथोपस्थे निश्चेष्ट इव सत्तमः॥ १७

ततः स पौण्ड्रको राजा विद्ध्वा दशभिराशुगैः।
सारथिं पञ्चविंशत्या हयांश्च चतुरो नृप॥ १८

'पौण्ड्रक! मैं अभी तेरा सिर धड़से काट गिराऊँगा। इस समय जिनका वासुदेव नाम तेरे साथ जुड़ा हुआ है, वह तभीतक है, जबतक कि धड़से तेरा सिर नीचे नहीं गिर जाता। अब कलसे तू भगवान् वासुदेव नहीं रह जायगा (कालका ग्रास बन जायगा)॥ ४-५॥ दुरात्मन्! जो सबके कर्ता और सर्वव्यापी हैं, वे एकमात्र जगदीश्वर श्रीकृष्ण ही सर्वथा वासुदेव बने रहेंगे—इसमें संशय नहीं है॥ ६॥ तुच्छ नरेश! मैं अभी तेरे मस्तकको शरीरसे काट गिराता हूँ। इस समय वे भगवान् श्रीकृष्ण जबतक लौटकर नहीं आ जाते, तबतक ही तू अपना सारा अस्त्रबल और पराक्रम दिखा ले। राजन्! इससे बढ़कर तुझे अपने बल-पराक्रमको प्रकट करनेका अवसर नहीं मिलेगा॥ ७-८॥ मैं युद्धका निश्चय लेकर खड़ा हूँ। तू यत्नपूर्वक अपनी सारी शक्ति दिखा। मैं धनुष, बाण, गदा और खड्गसे युक्त हो सर्वदा तेरा सामना करनेके लिये उपस्थित हूँ॥ ९॥ मैं सच कहता हूँ, तू आजसे पहले इस नगरमें नहीं आया था। तुझ-जैसे वासुदेवके पुतलेको देखकर मैं कृतकृत्य हो गया हूँ॥ १०॥ अधम नरेश! तेरे शरीरके तिलके बराबर टुकड़े-टुकड़े करके कुत्तोंको बाँट दूँगा।' वासुदेव नामधारी पौण्ड्रकसे ऐसा कहकर महाबली सात्यकिने एक तीखा बाण लेकर उसे कानतक खींचकर छोड़ा और पौण्ड्रकको घायल कर दिया। नृपश्रेष्ठ! यदुवंशी वीर सात्यकिके द्वारा बाणसे घायल किये जानेपर प्रतापी वीर वासुदेव अपने अङ्गों और नेत्रोंसे अत्यन्त गरम-गरम रक्त बहाने लगा। तब प्रतापी राजा वासुदेव भी कुपित हो उठा। उसने बारम्बार सिंहनाद करते हुए झुकी हुई गाँठवाले नौ-दस बाणोंसे सात्यकिको घायल कर दिया॥ ११—१४॥ नृपश्रेष्ठ! तत्पश्चात् तथाकथित भगवान् वासुदेव पौण्ड्रकने धनुष खींचकर उसपर यमराजके समान भयंकर तीखे नाराचका संधान किया और उस रातमें अपने सैनिकोंका हर्ष बढ़ाते हुए पुनः सात्यकिको घायल कर दिया। ललाटमें उस नाराचकी गहरी चोट खाकर वृष्णिवंशके अग्रगण्य वीर सत्यप्रतिज्ञ सात्यकि, जो सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे, अपने रथके पिछले भागमें निश्चेष्टकी भाँति बैठ गये॥ १५—१७॥ नरेश्वर! तदनन्तर राजा पौण्ड्रकने दस शीघ्रगामी बाणोंद्वारा सारथिको और पच्चीस बाणोंसे सात्यकिके चारों घोड़ोंको क्षत-विक्षत कर दिया॥ १८॥

ते हया रुधिराक्ताङ्गाः सारथिश्च समन्ततः।
विह्वलाः समपद्यन्त वासुदेवस्य पश्यतः॥ १९

वासुदेवो रथे चापि सिंहनादं समाददे।
तेन नादेन तत्राभूद् विबुद्धः सात्यकिर्नृप॥ २०

विद्धान् हयांस्तथा दृष्ट्वा सारथिं च तथागतम्।
शैनेयोऽथ महावीर्यो रुषितो नृपसत्तम॥ २१

अलं द्रक्ष्यामि ते वीर्यमित्युक्त्वा बाणमाददे।
विव्याध तेन बाणेन वक्षस्येनं महाबलः॥ २२

ततश्चचाल तेनाजौ वासुदेवः शरेण ह।
सुस्राव रुधिरं घोरमत्युष्णं वक्षसो नृप॥ २३

रथोपस्थे पपाताशु निःश्वसन्नुरगो यथा।
कृत्यं चापि न जानाति केवलं निषसाद ह॥ २४

सात्यकिस्तु रथं विद्ध्वा दशभिः सायकैस्तथा।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन वासुदेवस्य वृष्णिपः॥ २५

हयांश्च चतुरो हत्वा बाणैः सारथिमेव च।
युयुधानोऽथ राजेन्द्र पौण्ड्रकस्य च पश्यतः॥ २६

सारथेश्च शिरः कायादहरत् स रथात् तदा।
रथग्रन्थिं च चिच्छेद हयाश्च व्यसवोऽभवन्॥ २७

चक्रं च तिलशः कृत्वा बाणैर्दशभिरञ्जसा।
जहास विपुलं राजन् वासुदेवं महाबलः॥ २८

ततः परं महत्प्रायं सात्यकिर्वृष्णिनन्दनः।
शब्दं कृत्वा बली साक्षात् सर्वक्षत्रस्य पश्यतः॥ २९

शरैः सप्ततिसंख्याकैरर्दयामास सत्वरम्।
ते शराः शलभाकारा निपेतुः सर्वशस्तदा॥ ३०

शिरस्तः पार्श्वतश्चैव पृष्ठतः पुरतस्तथा।
केवलं धैर्यनिचयस्तृषार्तः शरवान् यथा॥ ३१

यथा मनस्वी रिक्तश्च तथा तिष्ठति पौण्ड्रकः।
ततश्चुक्रोध बलवान् वासुदेवः प्रतापवान्॥ ३२

वे घोड़े और सारथि सब ओरसे घायल हो खूनसे लथपथ हो गये और वासुदेवके सामने ही अत्यन्त व्याकुल हो उठे॥ १९॥ नरेश्वर! वासुदेव अपने रथपर बैठा हुआ जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगा। उसकी उस गर्जनासे सात्यकि मूर्च्छासे जग उठे॥ २०॥ नृपश्रेष्ठ! अपने घोड़ों और सारथिको इस प्रकार घायल हुआ देख महापराक्रमी सात्यकि रोषसे भर गये॥ २१॥ वे बोले—'अब देखूँगा कि तुझमें कितना बल है।' ऐसा कहकर महाबली सात्यकिने बाण हाथमें लिया और उसके द्वारा पौण्ड्रककी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी॥ २२॥ राजन्! उस बाणसे घायल होकर वासुदेव युद्धस्थलमें काँप उठा और उसकी छातीसे अत्यन्त गरम-गरम भयंकर रक्तकी धारा बहने लगी। वह फुफकारते हुए सर्पके समान लम्बी साँस खींचता हुआ तुरंत रथकी बैठकमें गिर पड़ा। उसे कर्तव्यका भी ज्ञान न रहा। वह केवल रथपर बैठा रहा॥ २३-२४॥ इधर वृष्णिवंशके पालक वीर सात्यकिने दस बाणोंसे रथको छिन्न-भिन्न करके एक भल्लसे वासुदेवकी ध्वजा काट डाली॥ २५॥ राजेन्द्र! इसके बाद सात्यकिने पौण्ड्रकके देखते-देखते बाणोंद्वारा उसके चारों घोड़ों और सारथिको घायल करके सारथिके सिरको धड़से अलग करके रथसे नीचे गिरा दिया। रथकी ग्रन्थियोंको काट डाला, पौण्ड्रकके घोड़े भी प्राणहीन हो गये॥ २६-२७॥ तदनन्तर दस बाणोंसे अनायास ही रथके पहियोंको तिल-तिल करके काट डाला। राजन्! यह सब करके महाबली सात्यकि वासुदेवपर जोर-जोरसे हँसने लगे॥ २८॥ इसके बाद वृष्णिनन्दन बलवान् वीर सात्यकिने जोर-जोरसे सिंहनाद करके सम्पूर्ण क्षत्रियोंके देखते-देखते सत्तर बाण मारकर मिथ्या वासुदेवको तुरंत पीड़ित कर दिया। वे बाण टिड्डियोंके समान सब ओरसे उसपर पड़ने लगे। सिरपर, अगल-बगलमें, पीठपर और सामनेसे उन बाणोंकी चोट खाता हुआ वह केवल धैर्यके सहारे प्याससे पीड़ित पुरुषकी भाँति बाणोंसे बिंधा हुआ खड़ा रहा। जैसे उदार पुरुष निर्धन हो जाय और किसीको कुछ दे न सके, इसी प्रकार पौण्ड्रक प्रतीकारशून्य होकर वहाँ चुपचाप खड़ा रहा। इसके बाद बलवान् एवं प्रतापी वीर वासुदेवने कुपित

अर्धचन्द्रं समादाय विव्याध युधि सात्यकिम्।
विद्ध्वा सप्तभिरायान्तं क्रोधेन प्रस्फुरन्निव॥ ३३
विद्धोऽथ सात्यकिस्तेन शरैः पञ्चभिराशुगैः।
चापं चिच्छेद पौण्ड्रस्य सिंहनादं व्यनीनदत्॥ ३४

वासुदेवो गदां गृह्य भ्रामयित्वा पदात्पदम्।
त्वरितं पातयामास सात्यकेर्वक्षसि प्रभो॥ ३५

सव्येन तां समाकृष्य करेण यदुनन्दनः।
शरं प्रगृह्य विव्याध सात्यकिर्युधि पौण्ड्रकम्॥ ३६

तमन्तरे गृहीत्वाशु वासुदेवः प्रतापवान्।
शक्तिभिर्दशभिश्चैव सात्यकिं निजघान ह॥ ३७

ताभिर्विद्धो रणे वीरः सात्यकिः सत्यसंगरः।
अपास्य धनुरन्यत् तद् धनुरादाय सत्वरम्।
आजघान तदा वीरो वृष्णीनामग्रणीर्नृप॥ ३८

हो अर्धचन्द्र लेकर युद्धस्थलमें सात्यकिको घायल कर दिया। उस समय वासुदेव क्रोधसे उद्दीप्त-सा हो रहा था। उसने अपने सामने आते हुए सात्यकिको सात बाणोंसे बींध डाला। उसके द्वारा घायल किये गये सात्यकिने पाँच शीघ्रगामी बाणोंद्वारा पौण्ड्रकके धनुषको काट डाला और बड़े जोरसे सिंहनाद किया॥ २९—३४॥ प्रभो! तब वासुदेवने गदा हाथमें लेकर उसे पग-पगपर घुमाते हुए तुरंत सात्यकिकी छातीपर दे मारा॥ ३५॥ यदुनन्दन सात्यकिने उस गदाको बायें हाथसे खींचकर एक बाण हाथमें ले उसके द्वारा पौण्ड्रकको युद्धमें घायल कर दिया॥ ३६॥ इसी बीचमें प्रतापी वासुदेवने सात्यकिको लक्ष्य करके शीघ्र ही दस शक्तियोंद्वारा प्रहार किया॥ ३७॥ राजन्! उन शक्तियोंसे बिंधे हुए सत्यप्रतिज्ञ वीर सात्यकिने उस धनुषको फेंककर तुरंत दूसरा धनुष हाथमें ले लिया और उसके द्वारा वृष्णिवंशके उस अग्रणी वीरने उस समय शत्रुओंको घायल करना आरम्भ किया॥ ३८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि **कैलासयात्रायां पौण्ड्रकसात्यकियुद्धे षण्णवतितमोऽध्यायः॥ ९६॥**

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्णकी कैलासयात्राके प्रसङ्गमें पौण्ड्रक और सात्यकिका युद्धविषयक छियानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९६॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

सात्यकि और पौण्ड्रकका युद्ध

वैशम्पायन उवाच

ततः क्रुद्धो गदापाणिः सात्यकिर्वृष्णिनन्दनः।
वासुदेवं जघानाशु गदया तीक्ष्णया नृप॥ १

सात्यकिं वासुदेवस्तु गदयाभ्यहनद् बली।
तावुद्यतगदौ वीरौ शुशुभाते सुदारुणौ॥ २

दृप्तौ वने यथा सिंहौ परस्परवधैषिणौ।
ततः स सात्यकिः क्रुद्धः सव्यं मण्डलमागमत्॥ ३

दक्षिणं वासुदेवस्तु तं जघान स्तनान्तरे।
युयुधानोऽथ वीरस्तु बाह्वोर्मध्यमताडयत्॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर वृष्णिकुलको आनन्दित करनेवाले सात्यकिने कुपित हो गदा हाथमें ले ली और उस दुःसह गदासे शीघ्र ही वासुदेवपर आघात किया॥ १॥ इसी तरह बलवान् वीर वासुदेवने भी सात्यकिपर गदासे प्रहार किया। गदा उठाये वे दोनों अत्यन्त भयंकर वीर वनमें एक-दूसरेके वधकी इच्छावाले दो बलाभिमानी सिंहोंके समान शोभा पा रहे थे। तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए सात्यकिने बायें पैंतरेका आश्रय लिया और वासुदेवने दाहिने पैंतरेका। उसने सात्यकिकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी। साथ ही वीर सात्यकिने भी उसकी दोनों भुजाओंके मध्यभाग (वक्षःस्थल)-में गदासे आघात किया॥ २—४॥

दृढं स ताडितो वीरो जानुभ्यामपतद् भुवि।
तत उत्थाय वीरस्तु ललाटेऽभ्यहनद् गदाम्॥ ५
विषण्णः किंचिदास्थाय तत उत्थाय सत्वरम्।
गदयाभ्यहनद् वीरः सात्यकिः पौण्ड्रसत्तमम्॥ ६
वासुदेवो बली वीरः साक्षान्मृत्युरिवापरः।
जघान गदया वृष्णिं निर्दहन्निव चक्षुषा॥ ७
स तया ताडितो वृष्णिर्गदया बाहुमुक्तया।
आलम्ब्य भूमिं सहसा मृत्योरङ्कगतो यथा॥ ८
संज्ञां पुनः समालम्ब्य पाणिभ्यां दृढमेव च।
गदां तस्य महाराज गृहीत्वा प्रग्रहेण ह॥ ९
द्विधा कृत्वा महागुर्वीं गदां कालायसीं शुभाम्।
उत्सृज्य सहसा वीरः सिंहनादं व्यनीनदत्॥ १०
तत उत्सृज्य राजा तु वासुदेवो महाबलः।
सव्येन सात्यकिं गृह्य दक्षिणेन करेण ह॥ ११
मुष्टिं कृत्वा महाघोरां वासुदेवः प्रतापवान्।
ताडयामास मध्ये तु स्तनयोः सात्यकेर्नृप॥ १२
शैनेयो वृष्णिवीरस्तु गदामुत्सृज्य सत्वरम्।
तलेनाभ्यहनद् वीरो वासुदेवं रणाजिरे॥ १३
तलेन वासुदेवोऽपि सात्यकिं सत्यसंगरम्।
तयोरेवं महाघोरं तलयुद्धं प्रवर्तत॥ १४
जानुभ्यां मुष्टिभिश्चैव बाहुभ्यां शिरसा तदा।
उरसोरः समाहत्य जानुभ्यां जानुनी तथा॥ १५
कराभ्यां करमाहत्य तौ युद्धं सम्प्रचक्रतुः।
तालयोस्तत्र राजेन्द्र वृक्षयोः संनिकर्षयोः॥ १६
वने यथा निरुत्पन्नस्तथैवाभून्महास्वनः।
तावाजौ प्रथितौ वीरावुभौ पौण्ड्रकसात्यकी॥ १७
निशि स्तिमितमूकायां शस्त्रं त्यक्त्वा महाबलौ।
युयुधाते महारङ्गे मल्लौ द्वाविव विश्रुतौ॥ १८
उभे सेने महाराज्ञोः संशयं जग्मतुस्तदा।
किं नु स्यात् सात्यकिर्वीरो हतस्तेन भविष्यति॥ १९

उस गदाकी गहरी चोट खाकर वीर वासुदेव घुटनोंके बल गिर पड़ा। फिर उठकर उस वीरने सात्यकिके ललाटपर गदा मारी। सात्यकि भी कुछ पीड़ित हो बैठे रह गये, फिर तुरंत उठकर वीर सात्यकिने पौण्ड्रदेशके उस श्रेष्ठ योद्धा वासुदेवपर गदासे चोट की॥ ५-६॥ वीर वासुदेव बड़ा बलवान् था। वह साक्षात् दूसरे मृत्युके समान प्रतीत होता था। वह सात्यकिकी ओर इस तरह देख रहा था, मानो अपने नेत्रोंसे उन्हें दग्ध कर डालेगा। उसने गदासे सात्यकिपर चोट की॥ ७॥ उसकी भुजाओंद्वारा छोड़ी गयी उस गदासे आहत हो सात्यकिने सहसा धरतीका सहारा ले लिया, मानो वह मृत्युके अङ्कमें पहुँच गये हों॥ ८॥ महाराज! फिर होशमें आकर उन्होंने शत्रुकी चलायी हुई गदाको उछलकर दोनों हाथोंसे दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया और काले लोहेकी बनी हुई उस सुन्दर एवं बड़ी भारी गदाके सहसा दो टुकड़े करके उसे दूर फेंक दिया। इसके बाद वीर सात्यकिने बड़े जोरसे सिंहनाद किया॥ ९-१०॥ नरेश्वर! तब महाबली एवं प्रतापी राजा वासुदेवने उस गदाको त्यागकर सात्यकिको बायें हाथसे पकड़ लिया और दाहिने हाथसे बड़ी भयंकर मुट्ठी बाँधकर सात्यकिके दोनों स्तनोंके बीचमें प्रहार किया॥ ११-१२॥ तब वृष्णिवीर सात्यकिने भी तुरंत अपनी गदा नीचे डाल दी और समराङ्गणमें वासुदेवको एक तमाचा जड़ दिया॥ १३॥ फिर वासुदेवने भी सत्यप्रतिज्ञ सात्यकिको थप्पड़से मारा। इस प्रकार उन दोनोंमें बड़ा भयंकर थप्पड़ोंका युद्ध आरम्भ हो गया॥ १४॥ राजेन्द्र! घुटनोंसे, मुक्कोंसे, भुजाओंसे और मस्तकसे भी उस समय उनमें युद्ध होने लगा। वे छातीसे छातीपर, घुटनोंसे घुटनोंपर और हाथोंसे हाथोंपर आघात करते हुए युद्ध करते थे। जैसे वनमें दो निकटवर्ती तालवृक्षोंके टकरानेका शब्द होता है, उसी प्रकार उन दोनोंके युद्धमें बड़ी भारी आवाज हो रही थी। उस नीरव एवं निस्तब्ध निशामें समराङ्गणमें वे दोनों प्रख्यात वीर महाबली पौण्ड्रक और सात्यकि अपना-अपना शस्त्र त्यागकर विशाल अखाड़ेमें उतरे हुए दो सुप्रसिद्ध पहलवानोंकी भाँति युद्ध कर रहे थे॥ १५—१८॥ महाराज उग्रसेन और पौण्ड्रक दोनोंकी सेनाएँ उस समय संशयमें पड़ गयी थीं कि 'क्या वीर सात्यकि वासुदेवके द्वारा मारे जायँगे

आहोस्विद् वासुदेवस्तु हतस्तेन महात्मना।
अद्य वै तौ महावीरौ परस्परवधैषिणौ॥ २०
युध्यमानौ महावीरौ तदा स्वर्गं गमिष्यतः।
अन्यथा नोपरम्येतां युद्धाद् वीरौ सुनिश्चितौ॥ २१
अहो वीर्यमहो धैर्यमेतयोर्बलशालिनोः।
एतौ महाबलौ लोके एतौ प्रकृतिसत्तमौ॥ २२
नैवं युद्धं महाघोरमासीद् देवासुरेष्वपि।
न श्रुतो न च वा दृष्टः संग्रामोऽयं कदाचन॥ २३
एते वै सैनिका ब्रूयुः सेनयोरुभयोरपि।
रात्रौ निशीथे मेघौघे दृष्ट्वा युद्धं सुदारुणम्॥ २४
अथ तौ बाहुभिर्वीरौ संनिपेततुरञ्जसा।
दशभिर्मुष्टिभिर्जघ्ने सात्यकिः पौण्ड्रकं तदा॥ २५
पञ्चभिः सात्यकिं पौण्ड्रः समाजघ्ने महाबलः।
तयोश्चटचटाशब्दो ब्रह्माण्डक्षोभणो महान्।
प्रादुरासीत् तु सर्वत्र सर्वान् विस्मापयन्निव॥ २६

अथवा वासुदेव ही उस महात्माके द्वारा मार डाला जायगा। आज वे दोनों महावीर एक-दूसरेका वध करनेकी इच्छासे युद्ध करते हुए निश्चय ही स्वर्गलोकको चले जायँगे, अन्यथा ये दोनों दृढ़ निश्चयवाले वीर युद्धसे विरत नहीं होंगे॥ १९—२१॥ अहो! इन बलशाली वीरोंका धैर्य और पराक्रम अद्भुत है। ये ही दोनों इस जगत्‌में महाबली हैं और ये ही स्वभावतः श्रेष्ठ पुरुष हैं। देवताओं और असुरोंमें भी कभी ऐसा महाभयंकर युद्ध नहीं हुआ था। ऐसा संग्राम न तो कभी सुना गया था और न कभी देखनेमें आया था'॥ २२-२३॥ इस प्रकार दोनों सेनाओंके सैनिक मेघोंकी घटासे घिरे हुए रात्रिके निशीथकालमें उस भयंकर युद्धको देखकर उपर्युक्त बातें कहते थे॥ २४॥ तदनन्तर वे दोनों वीर अनायास ही परस्पर बाहुयुद्ध करने लगे। उस समय सात्यकिने पौण्ड्रकको दस मुक्के मारे॥ २५॥ महाबली पौण्ड्रकने सात्यकिको पाँच मुक्के मारे। उन दोनोंके मुक्कोंका महान् चट-चट शब्द समूचे ब्रह्माण्डको क्षुब्ध किये देता था। वह शब्द सबको विस्मयमें डालता हुआ सा सर्वत्र प्रकट होता (सुनायी पड़ता) था॥ २६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकसात्यकियुद्धे सप्तनवतितमोऽध्यायः॥ ९७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पौण्ड्रक और सात्यकिका युद्धविषयक सत्तानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९७॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

बलभद्र और एकलव्यका युद्ध तथा बलभद्रद्वारा निषादोंका संहार

वैशम्पायन उवाच

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्ध एकलव्यो निषादपः।
बलभद्रमभि क्षिप्रं धनुरादाय सत्वरम्॥ १
नाराचैर्दशभिर्विद्ध्वा बाणैश्च दशभिः परैः।
चिच्छेद धनुरर्धं तत् सर्वक्षत्रस्य पश्यतः॥ २
सूतं दशभिराहत्य रथं त्रिंशद्भिरेव च।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन निषादस्य जगत्पतिः॥ ३
ततः परं महच्चापं निषादो वीर्यसम्मतः।
दृढमौर्व्या समायुक्तं दशतालप्रमाणतः॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इसी बीचमें निषादराज एकलव्य कुपित हो तुरंत धनुष लेकर बलभद्रजीके सामने गया॥ १॥ उसने दस नाराचोंसे उन्हें घायल करके दूसरे दस बाणोंसे क्षत्रियोंके देखते-देखते उनके धनुषको बीचसे काट डाला॥ २॥ तब जगदीश्वर बलरामजीने दस बाणोंसे निषादके सारथिको आहत करके तीस बाणोंसे उसके रथको जगह-जगहसे तोड़ डाला॥ ३॥ तत्पश्चात् पराक्रमी निषादने एक विशाल धनुष, जिसकी लम्बाई लगभग साढ़े चार हाथकी थी तथा जो सुदृढ़ प्रत्यञ्चासे युक्त था, लेकर

कामपालं शरेणाशु जघान जनमध्यतः।
बलदेवो महावीर्यः सर्पः शेष इव श्वसन्॥ ५
दशभिस्तद्धनुर्दिव्यं शरैः सर्पसमैर्बलः।
चिच्छेद मुष्टिदेशे तु माधवो माधवाग्रजः॥ ६
एकलव्यो निषादेशः खड्गमादाय सत्वरः।
प्राहिणोद् बलमादाय निशितं घोरविग्रहम्॥ ७
तमन्तरे पटुर्वीरो वृष्णिवीरः प्रतापवान्।
तिलशः पञ्चभिर्बाणैश्चकार यदुनन्दनः॥ ८
ततोऽपरं महत् खड्गं सर्वकालायसं शुभम्।
प्राहिणोत् सारथेः कायमालोक्याथ निषादजः॥ ९
तं चापि दशभिर्वीरो माधवो यदुनन्दनः।
बाह्वोरन्तरयोश्चैव निर्बिभेद महारणे॥ १०
ततः शक्तिं समादाय घण्टामालाकुलां नृपः।
निषादो बलदेवाय प्रेषयित्वा महाबलः॥ ११
सिंहनादं महाघोरमकरोत् स निषादपः।
सा शक्तिः सर्वकल्याणी बलदेवमुपागमत्॥ १२
उत्पतन्तीं महाघोरां बलभद्रः प्रतापवान्।
आदायाथ निषादेशं सर्वान् विस्मापयन्निव॥ १३
तयैव तं जघानाशु वक्षोदेशे च माधवः।
स तया ताडितो वीरः स्वशक्त्याथ निषादपः॥ १४
विह्वलः सर्वगात्रेषु निपपात महीतले।
प्राणसंशयमापन्नो निषादो रामताडितः॥ १५
निषादास्तस्य राजेन्द्र शतशोऽथ सहस्रशः।
अष्टाशीतिसहस्राणि निषादास्तस्य योधिनः॥ १६
गदिनः खड्गिनश्चैव महेष्वासा महाबलाः।
शरैरनेकसाहस्रैः शक्तिभिश्च परश्वधैः॥ १७
गदाभिः पट्टिशैः शूलैः परिघैः प्रासतोमरैः।
कुन्तैरथ कुठारैश्च यादवानां महौजसाम्॥ १८
शलभा इव राजेन्द्र दीप्यमानं हुताशनम्।
ते शरैः पातयाञ्चक्रू रामं राममिवापरम्॥ १९
केचित् कुठारैराजघ्नुः केचित् कुन्तैः परश्वधैः।
गदाभिः केचिदाघ्नन्ति शक्तिभिश्च तथा परे॥ २०

तुरंत ही एक बाणद्वारा उस जनसमुदायके मध्यभागमें बलभद्रजीको घायल कर दिया। तब श्रीकृष्णके बड़े भाई मधुवंशी महापराक्रमी बलदेवजीने फुफकारते हुए शेषनागके समान लम्बी साँस खींचकर दस सर्पाकार बाणोंद्वारा एकलव्यके दिव्य धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट डाला॥ ४—६॥ यह देख निषादराज एकलव्यने बड़ी उतावलीके साथ एक तेज धारवाली भयंकर तलवार लेकर उसे बलदेवजीपर दे मारा॥ ७॥ युद्ध करनेमें कुशल प्रतापी वृष्णिवीर शौर्यसम्पन्न यदुनन्दन बलरामने पाँच बाणोंद्वारा बीचमें ही उस तलवारको तिल-तिल करके काट डाला॥ ८॥ तदनन्तर निषादपुत्रने बलभद्रजीके सारथिके शरीरको लक्ष्य करके एक दूसरा विशाल खड्ग चलाया, जो सब-का-सब काले लोहेका बना हुआ और सुन्दर था॥ ९॥ परंतु यदुनन्दन वीर माधवने उस महासमरमें उसकी दोनों भुजाओंके बीचमें ही दस बाण मारकर उस खड्गके टुकड़े-टुकड़े कर दिये॥ १०॥ तब महाबली निषादराजने घण्टा-मालाओंसे सुशोभित एक शक्ति हाथमें लेकर उसे बलदेवजीपर चलाया और बड़ा भयंकर सिंहनाद किया। वह सर्वकल्याणी शक्ति जब बलदेवजीके पास आयी, तब प्रतापी बलभद्रजीने ऊपरको उठती हुई उस महाघोर शक्तिको हाथसे पकड़ लिया। फिर सबको विस्मयमें डालते हुए-से माधवने उसी शक्तिसे निषादराजकी छातीमें तत्काल गहरी चोट पहुँचायी। अपनी ही शक्तिसे ताड़ित होकर वीर निषादराजका सारा शरीर व्याकुल हो उठा और वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। बलरामद्वारा आहत हुआ निषाद एकलव्य प्राण-संशयकी स्थितिमें पहुँच गया था॥ ११—१५॥ राजेन्द्र! उस निषादके सैकड़ों और हजारों निषाद सहायक थे। उसकी सेनामें अट्ठासी हजार निषाद योद्धा मौजूद थे॥ १६॥ राजाधिराज! जैसे पतिंगे जलती हुई आगपर टूट पड़ते हैं, उसी प्रकार वे महाबली महाधनुर्धर निषाद गदा और खड्गसे युक्त हो अनेक सहस्र बाणों, शक्तियों, फरसों, गदाओं, पट्टिशों, शूलों, परिघों, प्रासों, तोमरों, कुन्तों और कुठारोंद्वारा महाबली यादवोंके बीचमें खड़े हुए दूसरे श्रीरामचन्द्रजीके समान पराक्रमी बलरामपर प्रहार करने लगे। उन्होंने उनपर बहुत-से बाण मारे॥ १७—१९॥ प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित होनेवाले बलरामपर कुछ निषादोंने कुठारोंसे प्रहार किया, कुछ निषादोंने कुन्तों और फरसोंद्वारा आघात किया। कोई गदासे चोट करते थे तो कोई शक्तियोंसे।

निजघ्नुः सहसा रामं स्फुरन्तं पावकं यथा।
ततः क्रुद्धो हली साक्षाद्धलमुद्यम्य सत्वरम्॥ २१
सर्वानाकर्षयामास मुसलेन हि पीडयन्।
ते हन्यमाना राजेन्द्र निषादाः पर्वताश्रयाः॥ २२
निपेतुर्धरणीपृष्ठे शतशोऽथ सहस्रशः।
क्षणेन तन्महाराज हत्वा सर्वान् महाबलान्॥ २३
सिंहवद् व्यनदंस्तत्र तस्थौ रामो महाबलः।
ततो रात्रौ महाघोराः पिशाचाः पिशिताशनाः॥ २४
आकृष्य मांसयूथानि भक्षयन्तः समासते।
पिबन्तः शोणितं कोष्ठात् संछिद्य च शवं बहु॥ २५

इस प्रकार उन्होंने सहसा प्रहार आरम्भ कर दिया। तब क्रोधमें भरे हुए हलधर साक्षात् हल उठाकर उसके द्वारा तुरंत ही सबको खींचने और मुसलसे मारने लगे। राजेन्द्र! उनके मुसलकी मार खाकर सैकड़ों और हजारों पर्वतवासी निषाद पृथ्वीपर गिरने लगे। महाराज! क्षणभरमें उन समस्त महाबली निषादोंका वध करके महापराक्रमी बलराम सिंहके समान गर्जना करते हुए वहाँ खड़े हो गये। तदनन्तर रातमें बड़े भयंकर मांसभक्षी पिशाच ढेर-के-ढेर मांस खींचकर खाने लगे। वे मरे हुए वीरोंके कोष्ठसे रक्त पीते और बहुत-से मुर्दोंको काट-काटकर खाते थे॥ २०—२५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकलव्यसैन्यवधे अष्टनवतितमोऽध्यायः॥ ९८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें एकलव्यकी सेनाका वधविषयक अट्ठानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९८॥

नवनवतितमोऽध्यायः

बलभद्र और एकलव्यका तथा पौण्ड्रक और सात्यकिका युद्ध

वैशम्पायन उवाच

क्रव्यादाः सर्व एवाशु भक्षयन्तस्तदा शवम्।
हसन्तो विविधं घोरं नादयन्तो वसुंधराम्॥ १
राक्षसाश्च पिशाचाश्च पिबन्तः शोणितं बहु।
आशिखं भुञ्जते राजञ्छवस्य पिशिताशनाः॥ २
नृत्यन्ति स्म तदा राजन् नगर्यां रणतोषिताः।
काका बलाका गृध्राश्च श्येना गोमायवस्तथा॥ ३
भक्षयन्तः प्रवर्तन्ते राक्षसाश्चैव दारुणाः।
एतस्मिन्नन्तरे वीरो निषादो लब्धसंज्ञकः॥ ४
हतान् सर्वान् समालोक्य निषादान् नगचारिणः।
गदामादाय कुपितो राममेव जगाम ह॥ ५
जघान गदया राजञ्जत्रुदेशे निषादपः।
ततो रामो गदी राजन् निषादं बाहुशालिनम्॥ ६
आजघ्ने गदया क्रूरं मदमत्तो हलायुधः।
तयोश्च तुमुलं युद्धं गदाभ्यां समवर्तत॥ ७
आकाशे शब्द आसीत् तु तयोर्युद्धे महाभुज।
समुद्राणां यथा घोषः सर्वेषां संनिगच्छताम्॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! समस्त मांसभक्षी जीव उस समय शीघ्रतापूर्वक मृतकोंका मांस खाते और नाना प्रकारका घोर अट्टहास करते हुए पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते थे॥ १॥ राजन्। कच्चा मांस खानेवाले राक्षस और पिशाच बहुत-सा रक्त पीते और नखसे शिखतक मृतकोंका मांस खाकर तृप्त होते थे॥ २॥ नरेश्वर! उस नगरीमें उस युद्धसे संतुष्ट हुए कौए, बक, गृध्र, श्येन और गीदड़ उस समय नृत्य करते थे। भयानक राक्षस भी मृतकोंके मांस-भक्षणमें लगे थे। इसी बीचमें वीर निषाद एकलव्यको चेतना प्राप्त हुई, समस्त पर्वतवासी निषादोंको मारा गया देख, कुपित हो गदा लेकर वह बलरामजीकी ओर चला॥ ३—५॥ राजन्! उस निषादराजने बलरामजीकी हँसलीपर गदासे आघात किया। तब गदाधारी मदमत्त हलधर बलरामने उस बाहुशाली क्रूरकर्मा निषादको गदासे गहरी चोट पहुँचायी। फिर तो उन दोनोंमें गदाओंद्वारा तुमुल युद्ध होने लगा। महाबाहो! उन दोनोंके युद्धमें परस्पर मिलते हुए समस्त समुद्रोंके गम्भीर घोषकी भाँति आकाशमें बड़ा भारी शब्द होने लगा॥ ६—८॥

कल्पक्षये महाराज शब्दः सुतुमुलोऽभवत्।
क्षोभितो नागराजश्च नागाः क्षोभं समाययुः॥ ९
पृथिवी चान्तरिक्षं च सर्वं शब्दमयं बभौ।
ततः स पौण्ड्रको राजा सात्यकिं वृष्णिनन्दनम्॥ १०
गदयैव जघानाशु सत्वरं रणकोविदः।
युयुधानो बली राजन् वासुदेवं जघान ह॥ ११
तयोश्च तुमुलः शब्दः प्रादुरासीन्महारणे।
चतुर्णां युध्यतां राजन् परस्परवधैषिणाम्॥ १२
ब्रह्माण्डक्षोभणो राजञ्छब्द आसीत् सुदारुणः।
ततो रजः प्रादुरभूत् तस्मिन् संग्राममूर्धनि॥ १३
तारका निष्प्रभा राजंस्तमस्येवं क्षयं गते।
उषसि प्रतिबुद्धायां ततो निःशेषतां ययौ॥ १४
उदितो भगवान् सूर्यश्चन्द्रश्च क्षयमाययौ।
तेषां युद्धं प्रादुरभूच्चतुर्णां बाहुशालिनाम्।
देवासुरसमं राजन्नुदिते भास्करे महत्॥ १५

महाराज! प्रलयकालमें समुद्रोंका जो तुमुल घोष होता है, वैसा ही शब्द होने लगा। उससे नागराज शेष भी क्षुब्ध हो उठे और दिग्गजोंको भी महान् क्षोभ प्राप्त हुआ॥ ९॥ पृथ्वी और आकाश—ये सब-के-सब शब्दमय ही प्रतीत होने लगे। इसी बीचमें रणकुशल राजा पौण्ड्रकने तुरंत ही वृष्णिनन्दन सात्यकिपर गदासे आघात किया। राजन्! तब बलवान् सात्यकिने भी मिथ्या वासुदेवपर गदाका प्रहार किया॥ १०-११॥

राजन्! उन दोनोंके महासमरमें बड़ा भयंकर शब्द प्रकट होने लगा। एक-दूसरेके वधकी इच्छावाले इन चारों योद्धाओंका अत्यन्त भयानक शब्द समूचे ब्रह्माण्डमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला था। राजन्! तदनन्तर उस संग्रामके मुहानेपर प्रात:कालकी लाली प्रकट हुई, तारे प्रकाशहीन हो गये। इसी तरह अन्धकार क्षीण होने लगा। उषःकालके जाग्रत् होनेपर अन्धकार पूर्णतः मिट गया। भगवान् सूर्यका उदय हुआ और चन्द्रमा क्षीण हो चले। राजन्! भगवान् भास्करका उदय होनेपर उन चारों बाहुशाली वीरोंका महान् युद्ध होने लगा, जो देवताओं और असुरोंके संग्राम-सा प्रतीत होता था॥ १२—१५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकयुद्धे नवनवतितमोऽध्यायः॥ ९९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पौण्ड्रकयुद्धविषयक निन्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९९॥

शततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका द्वारकामें आगमन और पौण्ड्रकसे उनकी बातचीत

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रभाते विमले भगवान् देवकीसुतः।
गन्तुमैच्छज्जगन्नाथः पुरं बदरिकाश्रमात्॥ १
नमस्कृत्य मुनीन् सर्वान् ययौ द्वारवतीं नृप।
आरुह्य गरुडं विष्णुर्वेगेन महता प्रभुः॥ २
सुमहाञ्छुश्रुवे शब्दस्तेषां युद्धं प्रकुर्वताम्।
गच्छता देवदेवेन पुरीं द्वारवतीं नृप॥ ३
अचिन्तयज्जगन्नाथः को न्वयं शब्द उत्थितः।
संग्रामसम्भवो घोर आर्यशैनेयसंयुतः॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर निर्मल प्रभातकाल आनेपर देवकीनन्दन भगवान् जगन्नाथने बदरिकाश्रमसे अपनी द्वारकापुरीको जानेकी इच्छा की॥ १॥ नरेश्वर! समस्त मुनियोंको नमस्कार करके भगवान् श्रीकृष्ण गरुड़पर आरूढ़ हो बड़े वेगसे द्वारकापुरीकी ओर चल दिये॥ २॥ राजन्! द्वारकापुरीकी ओर जाते हुए देवाधिदेव श्रीकृष्णने वहाँ युद्ध करते हुए उन समस्त योद्धाओंका महान् कोलाहल सुना॥ ३॥ उसे सुनकर जगदीश्वर श्रीकृष्ण सोचने लगे— 'यह कैसा युद्धजनक घोर शब्द प्रकट हो रहा है, जिसमें भैया बलराम और सात्यकिकी भी गर्जना मिली हुई है'॥ ४॥

व्यक्तमागतवान् पौण्ड्रो नगरीं द्वारकामनु।
तेन युद्धं समभवत् पौण्ड्रकेण दुरात्मना॥ ५
यदूनां वृष्णिवीराणां युद्ध्यतामितरेतरम्।
शब्दोऽयं सुमहान् व्यक्तो नात्र कार्या विचारणा॥ ६
इत्येवं चिन्तयित्वा तु दध्मौ शङ्खं महारवम्।
पाञ्चजन्यं हरिः साक्षात् प्रीणयन् वृष्णिपुङ्गवान्॥ ७
रोदसी पूरयामास तेन शब्देन केशवः।
यादवा वृष्णयश्चैव श्रुत्वा शङ्खस्य ते रवम्॥ ८
व्यक्तमायाति भगवान् पाञ्चजन्यरवो ह्ययम्।
इति ते मेनिरे राजन् वृष्णयो यादवास्तथा॥ ९
निर्भयाः समपद्यन्त वृष्णयो यादवाश्च ते।
तस्मिन्नेव क्षणे दृष्टस्तार्क्ष्यश्च पततां वरः॥ १०
ततश्च देवकीसूनुर्दृष्टस्तैर्यादवेश्वरः।
सूताश्च मागधाश्चैव पुरो यान्ति जगत्पतेः॥ ११
स्तुत्या स्तुतं हरिं विष्णुमीश्वरं कमलेक्षणम्।
गताश्च यादवाः सर्वे परिवव्रुर्जनार्दनम्॥ १२
कृष्णस्तु गरुडं भूयो गच्छ त्वं नाकमुत्तमम्।
इत्युक्त्वा गरुडं विष्णुर्विसृज्य यदुनन्दनः॥ १३
दारुकं पुनराहेदं रथमानय मे प्रभो।
स तथेति प्रतिज्ञाय रथमादाय सत्वरम्॥ १४
रथोऽयं भगवन् देव किमतः कृत्यमस्ति मे।
इत्युक्त्वा रथमादाय प्रणम्याग्रे स्थितो हरेः॥ १५
गतेऽथ गरुडे विष्णू रथमारुह्य सत्वरम्।
यत्र युद्धं समभवत् तत्र याति स्म केशवः॥ १६
तत्र गत्वा महाराज युध्यतां च महात्मनाम्।
पाञ्चजन्यं महाशङ्खं दध्मौ यदुवृषोत्तमः॥ १७
पौण्ड्रोऽथ वासुदेवस्तु कृष्णं दृष्ट्वा रणोत्सुकम्।
सात्यकिं पृष्ठतः कृत्वा वासुदेवमुपागमत्॥ १८
क्रुद्धोऽथ सात्यकी राजन् वारयामास पौण्ड्रकम्।
न गन्तव्यमितो राजन्नैष धर्मः सनातनः॥ १९
जित्वा मां गच्छ राजेन्द्र परं योद्धुं महारणे।
क्षत्रियोऽसि महावीर स्थिते मयि रणोत्सुके॥ २०

'निश्चय ही पौण्ड्रकने द्वारकापुरीपर आक्रमण किया है। उसी दुरात्मा पौण्ड्रकके साथ यादवों एवं वृष्णिवीरों-का युद्ध हो रहा है। परस्पर युद्ध करनेवाले इन्हीं योद्धाओंका यह महान् शब्द प्रकट हो रहा है। इसमें कोई अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है'॥ ५-६॥ ऐसा सोचकर साक्षात् श्रीहरिने वृष्णिशिरोमणि वीरोंको प्रसन्न करते हुए महान् शब्द करनेवाले पाञ्चजन्य शङ्खको बजाया॥ ७॥ केशवने उस शङ्खध्वनिसे पृथ्वी और आकाशको परिपूर्ण कर दिया। उस शङ्खनादको सुनकर यादव और वृष्णिवंशी परस्पर कहने लगे—'निश्चय ही भगवान् श्रीकृष्ण पधार रहे हैं। यह पाञ्चजन्यकी ही ध्वनि सुनायी पड़ती है'। राजन्! यादवों और वृष्णिवंशियोंको इस बातका दृढ़ निश्चय हो गया। वे वृष्णि और यादव निर्भय हो गये। उसी क्षण पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ दिखायी दिये। तदनन्तर यादवेश्वर देवकीनन्दन श्रीकृष्णका दर्शन हुआ। सूत और मागधजन उन जगदीश्वरके सामने गये॥ ८—११॥ जिनकी स्तुति की गयी थी, उन कमलनयन सर्वव्यापी ईश्वर जनार्दन हरिके पास समस्त यादव गये और उन्हें घेरकर खड़े हो गये॥ १२॥ इसके बाद यदुनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने पुनः गरुड़से कहा—'तुम उत्तम स्वर्गलोकको जाओ' ऐसा कहकर उन्होंने गरुड़को तो बिदा कर दिया और पुनः दारुकसे कहा—'सामर्थ्यशाली सारथे! तुम मेरा रथ ले आओ'। तब 'बहुत अच्छा' कहकर सारथि तुरंत रथ ले आया और बोला— 'भगवन्! देव! यह रथ उपस्थित है। इसके अतिरिक्त मेरे लिये क्या आज्ञा है?' ऐसा कहकर दारुक रथ ले आया और भगवान्को प्रणाम करके उनके सामने खड़ा हो गया॥ १३—१५॥ गरुड़के चले जानेपर केशव श्रीकृष्ण तुरंत रथपर आरूढ़ हुए और जहाँ युद्ध हो रहा था, वहाँ गये॥ १६॥ महाराज! वहाँ जाकर यदुकुलतिलक श्रीकृष्णने उन जूझते हुए महामनस्वी वीरोंके बीचमें पाञ्चजन्य नामक महान् शङ्ख बजाया॥ १७॥ पौण्ड्रक वासुदेव श्रीकृष्णको युद्धके लिये उत्सुक देख सात्यकिको पीछे करके उन वसुदेवनन्दनके समीप चला॥१८॥ राजन्! यह देख क्रोधमें भरे हुए सात्यकिने पौण्ड्रकको रोका और कहा—'राजन्! तुम्हें यहाँसे नहीं जाना चाहिये। यह सनातन धर्म नहीं है॥ १९॥ राजेन्द्र! इस महासमरमें मुझे परास्त करके तुम दूसरेसे युद्ध करनेके लिये जाओ। महावीर! तुम क्षत्रिय हो, जबतक मैं युद्धके लिये उत्सुक हूँ, तबतक तुम्हें अन्यत्र नहीं जाना चाहिये॥ २०॥

एष ते गर्वमखिलं नाशयिष्यामि संयुगे।
इत्युक्त्वा चाग्रतस्तस्थौ गच्छतो यादवेश्वरः॥ २१

पौण्ड्रस्य शिनिनप्ता तु पश्यतः केशवस्य ह।
अवज्ञाय शिनेः पौत्रं कृष्णमेव जगाम ह॥ २२

निर्भर्त्स्य सहसा भूयः सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः।
गदया प्राहरत् पौण्ड्रं वासुदेवस्य पश्यतः॥ २३

यथाप्राणं यथायोगं सात्यकिः सत्यविक्रमः।
दृष्ट्वाथ भगवानेवं सात्यकिं प्रशशंस ह॥ २४

निवार्य सात्यकिं कृष्णो यथेष्टं क्रियतामसौ।
उपारमद् यथायोगं सात्यकिः कृष्णवारितः॥ २५

स ततः पौण्ड्रको राजा वासुदेवमुवाच ह।
भो भो यादव गोपाल इदानीं क्व गतो भवान्॥ २६

त्वां द्रष्टुमथ सम्प्राप्तो वासुदेवोऽस्मि साम्प्रतम्।
हत्वा त्वां सबलं कृष्ण बलैर्बहुभिरन्वितः॥ २७

अहमेको भविष्यामि वासुदेवो महीतले।
यच्चक्रं तव गोविन्द प्रथितं सुप्रभं महत्॥ २८

अनेन मम चक्रेण पीडितोऽस्मि च तद्रणे।
चक्रमस्तीति तद्वीर्यं तव माधव साम्प्रतम्॥ २९

नाशयिष्यामि तत् सर्वं सर्वक्षत्रस्य पश्यतः।
शार्ङ्गीति मां विजानीहि न त्वं शार्ङ्गीति शिष्यसे॥ ३०

शङ्खमस्तीति तद्वीर्यं तव माधव साम्प्रतम्।
शङ्खी चाहं गदी चाहं चक्री चाहं जनार्दन॥ ३१

मामेव हि सदा ब्रूयुर्जानन्तो वीर्यशालिनः।
आदौ त्वं बलवद् वृद्धान् हत्वा स्त्रीबालकान् बहून्॥ ३२

गाश्च हत्वा महागर्वस्तव सम्प्रति वर्तते।
तत् तेऽहं व्यपनेष्यामि यदि तिष्ठसि मत्पुरः॥ ३३

मैं अभी युद्धस्थलमें तुम्हारा सारा घमंड चूर किये देता हूँ'। ऐसा कहकर शिनिके पोते यादवेश्वर सात्यकि श्रीकृष्णके देखते-देखते जाते हुए पौण्ड्रकके आगे खड़े हो गये तो भी वह सात्यकिकी अवहेलना करके श्रीकृष्णकी ओर चल दिया॥ २१-२२॥ तब क्रोधसे भरे हुए सात्यकिने सहसा उसे डाँटकर भगवान् श्रीकृष्णके देखते-देखते पुनः पौण्ड्रकपर गदासे प्रहार किया॥ २३॥ सत्यपराक्रमी सात्यकिने पूरी सावधानी और शक्तिका उपयोग करके पौण्ड्रकपर गदा चलायी थी। यह देखकर भगवान् श्रीकृष्णने सात्यकिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की॥ २४॥ तत्पश्चात् 'वह जैसा चाहे वैसा ही करे' यह कहकर श्रीकृष्णने सात्यकिको रोक दिया। श्रीकृष्णके रोकनेपर सात्यकि यथावसर युद्धसे विरत हो गये॥ २५॥ तदनन्तर राजा पौण्ड्रकने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'ओ यादव! ओ गोपाल! इस समय तुम कहाँ चले गये थे?॥ २६॥ मैं इस समय तुमसे ही मिलने आया हूँ। आजकल मैं ही वासुदेव नामसे विख्यात हूँ। श्रीकृष्ण! मैं बहुत-सी सेनाओंके साथ हूँ। इस समय सेनासहित तुम्हारा वध करके मैं अकेला ही इस भूतलपर वासुदेव रहूँगा। गोविन्द! तुम्हारा जो विख्यात, उत्तम प्रभासे युक्त और महान् चक्र है, उसका मेरे इस चक्रसे अभी नाश हो जायगा। इसके लिये मुझे खेद है। माधव! परंतु रणभूमिमें अब तुम्हें 'मेरे पास चक्र है' ऐसा सोचकर उसके बलका घमंड नहीं होना चाहिये; क्योंकि आज मैं समस्त क्षत्रियोंके देखते-देखते तुम्हारे उस सारे बलका नाश कर डालूँगा। 'जनार्दन! तुम मुझे शार्ङ्गी भी समझो। केवल तुम्हीं शार्ङ्गी नामसे यहाँ शेष हो,' ऐसा न समझो। माधव! मेरे पास शङ्ख है—ऐसा समझकर तुम्हें अब उसके बलका भी घमंड नहीं करना चाहिये; क्योंकि मैं शङ्खी भी हूँ, गदाधर भी हूँ और चक्रपाणि भी हूँ॥ २७—३१॥ जगत्में जो पराक्रमशाली और ज्ञानी पुरुष हैं, वे अब सदा मुझे ही शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाला कहेंगे। पहलेकी बात है, तुमने बलवानोंमें बढ़े-चढ़े कुछ कंसके अनुचरोंका, स्त्री (पूतना)-का तथा बहुत-से बालकोंका (छः गर्भोंका कंसद्वारा) वध करके कुछ गौओं (वत्सासुर, अरिष्टासुर आदि)-का भी वध किया था। इसीसे तुम्हें अपनी वीरतापर बड़ा गर्व है। यदि मेरे सामने खड़े रह गये तो तुम्हारे उस गर्वको मैं चूर्ण कर दूँगा॥ ३२-३३॥

शस्त्रं गृहाण गोविन्द यदि योद्धुं व्यवस्थितः।
इत्युक्त्वा बाणमादाय तस्थौ पार्श्वे जगत्पतेः॥ ३४

एतद् वचनमाकर्ण्य वासुदेवेन भाषितम्।
स्मितं कृत्वा हरिः कृष्णो बभाषे पौण्ड्रकं नृपम्॥ ३५

कामं वद नृप त्वं हि पातक्यस्मि सदा नृप।
गोघाती बालघाती च स्त्रीहन्ता सर्वथा नृप॥ ३६

चक्री भव गदी राजञ्छार्ङ्गी च सततं भव।
नामधेयं वृथा मह्यं वासुदेवेति च प्रभो॥ ३७

शार्ङ्गी चक्री गदी शङ्खीत्येवमादि वृथा मम।
किं तु वक्ष्यामि किंचित् तु शृणुष्व यदि मन्यसे॥ ३८

क्षत्रिया बलिनो ये तु स्थिते मयि जगत्पतौ।
तथानुब्रुवते त्वां हि जीवत्येव मयि प्रभो॥ ३९

यन्मे चक्रं महाघोरमसुरान्तकरं महत्।
तत्तुल्यं तव चक्रं तु वृत्ततो न तु वीर्यतः।
आयुधेष्वथ सर्वत्र शब्दसादृश्यमस्ति ते॥ ४०

गोपोऽहं सर्वदा राजन् प्राणिनां प्राणदः सदा।
गोप्ता सर्वेषु लोकेषु शास्ता दुष्टस्य सर्वदा॥ ४१

कत्थनं सर्वकार्यं हि जित्वा शत्रून् नृपाधम।
अजित्वा किं भवान् ब्रूते स्थिते मयि च शस्त्रिणि॥ ४२

हत्वा मां ब्रूहि राजेन्द्र यदि शक्तोऽसि पौण्ड्रक।
स्थितोऽहं चक्रमाश्रित्य रथी चापी गदासिमान्॥ ४३

रथमारुह्य युद्धाय सन्नद्धो भव मानद।
इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुः सिंहनादं व्यनीनदत्॥ ४४

'गोविन्द! यदि तुम युद्धके लिये खड़े हो तो अस्त्र ग्रहण करो।' ऐसा कहकर पौण्ड्रक बाण हाथमें लेकर जगदीश्वर श्रीहरिके पास खड़ा हो गया॥ ३४॥ मिथ्या वासुदेवके इस कथनको सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराये और उस पौण्ड्रक नरेशसे इस प्रकार बोले— 'नरेश्वर! तुम इच्छानुसार जो-जो चाहो कहो। मैं सदा पातकी ही हूँ। मैंने सर्वथा गोहत्या, बालहत्या और स्त्रीहत्या की है॥ ३५-३६॥ राजन्! तुम सदा चक्र, गदा और शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले बने रहो। प्रभो! मेरा वासुदेव यह मिथ्या नाम भी लिये रहो॥ ३७॥ शार्ङ्गी, चक्री, गदी और शङ्खी आदि जो मेरे नाम हैं, उनका भी व्यर्थ भार लिये रहो; परंतु मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ, यदि ठीक समझो, तो सुनो॥ ३८॥ प्रभो! मुझ जगदीश्वरके जीते-जी ही बलवान् क्षत्रिय तुम्हें वैसे (मेरे-जैसे) नामोंद्वारा पुकारते हैं॥ ३९॥ मेरा जो असुरोंका अन्त करनेवाला महाघोर एवं महान् चक्र है, तुम्हारा चक्र केवल गोलायीमें उसकी समानता करता है, शक्तिमें नहीं। तुम्हारे सम्पूर्ण आयुधोंमें भी मुझसे नाममात्रकी समता है, शक्तितः नहीं॥ ४०॥ राजन्! मैं सर्वदा गोप हूँ, अर्थात् प्राणियोंका सदा प्राणदान करनेवाला हूँ, सम्पूर्ण लोकोंका रक्षक तथा सर्वदा दुष्टोंका शासक हूँ॥ ४१॥ नृपाधम! तुम्हें शत्रुओंको जीतकर ही सब प्रकारसे बड़ी-बड़ी बातें बनानी चाहिये। जब मैं शस्त्र लेकर तुम्हारे सामने खड़ा हूँ, तब तुम मुझे पराजित किये बिना ऐसी बातें क्यों कहते हो?॥ ४२॥ राजेन्द्र पौण्ड्रक! यदि तुममें शक्ति हो तो मुझे मारकर अपनी प्रशंसा करो। मैं रथ, धनुष, गदा और खड्गसे युक्त हो चक्र लेकर तुम्हारे सामने खड़ा हूँ॥ ४३॥ मानद! रथपर आरूढ़ हो युद्धके लिये तैयार हो जाओ।' ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे॥ ४४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि श्रीकृष्णपौण्ड्रकयुद्धे शततमोऽध्यायः॥ १००॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्ण और पौण्ड्रकका युद्धविषयक सौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १००॥

एकाधिकशततमोऽध्यायः

पौण्ड्रक और श्रीकृष्णका युद्ध तथा पौण्ड्रकका वध

वैशम्पायन उवाच

ततः शरं समादाय वासुदेवः प्रतापवान्।
पौण्ड्रं जघान सहसा निशितेन शरेण ह॥ १
पौण्ड्रोऽथ वासुदेवस्तु शरैर्दशभिराशुगैः।
वासुदेवं जघानाशु वार्ष्णेयं वृष्णिनन्दनम्॥ २
दारुकं पञ्चविंशत्या हयान् दशभिरेव च।
सप्तत्या वासुदेवं तु यादवं वासुदेवकः॥ ३
ततः प्रहस्य सुचिरं केशवः केशिसूदनः।
धृष्टोऽसाविति मनसा सम्पूज्य यदुनन्दनः॥ ४
आकृष्य शार्ङ्गं बलवान् संधाय रिपुसूदनः।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन ध्वजं चिच्छेद केशवः॥ ५
सारथेश्च शिरः कायादाहृत्य यदुनन्दनः।
अश्वांश्च चतुरो हत्वा चतुर्भिः सायकोत्तमैः॥ ६
रथं राज्ञः समाहत्य तदोभौ पार्ष्णिसारथी।
चक्रे च तिलशः कृत्वा हसन् किंचिदिव स्थितः॥ ७
पौण्ड्रको वासुदेवस्तु रथादुत्प्लुत्य सत्वरः।
आदाय निशितं खड्गं प्राहिणोत् केशवाय सः॥ ८
स खड्गं शतधा कृत्वा तूष्णीमासीच्च केशवः।
ततः परं महाघोरं परिघं कालसम्मितम्॥ ९
गृहीत्वा वासुदेवाय वासुदेवः प्रतापवान्।
प्राहिणोद् वृष्णिवीराय सर्वक्षत्रस्य पश्यतः॥ १०
तद् द्विधा जगतां नाथश्चकार यदुनन्दनः।
ततश्चक्रं महाघोरं सहस्त्रारं महाप्रभम्॥ ११
त्रिंशद्भारसमायुक्तमायसास्यममित्रहा।
आदायाथ महाराज केशवं वाक्यमब्रवीत्॥ १२
पश्येदं निशितं घोरं तव चक्रविनाशनम्।
अनेन तव गोविन्द दर्पं दर्पवतां वर॥ १३
अपनेष्यामि वार्ष्णेय सर्वक्षत्रस्य पश्यतः।
त्वामुद्दिश्य महाघोरं कृतमन्यद् दुरासदम्॥ १४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर प्रतापी भगवान् वासुदेवने बाण लेकर सहसा उस पैने बाणके द्वारा पौण्ड्रकपर प्रहार किया॥ १॥ पौण्ड्रक वासुदेवने भी दस शीघ्रगामी बाणोंद्वारा वृष्णिवंशी एवं वृष्णिकुलनन्दन वासुदेवपर शीघ्र ही आघात किया॥ २॥ उस मिथ्या वासुदेवने दारुकको पच्चीस, घोड़ोंको दस और यदुकुलतिलक श्रीकृष्णको सत्तर बाण मारे॥ ३॥ तब केशिहन्ता यदुनन्दन केशवने देरतक हँसकर मन-ही-मन उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—'पौण्ड्रक बड़ा ढीठ है'॥ ४॥ उसके बाद शत्रुसूदन बलवान् केशवने शार्ङ्गधनुषको खींचकर उसपर तीखे नाराचका संधान किया और उसके द्वारा पौण्ड्रककी ध्वजा काट डाली॥ ५॥ तत्पश्चात् यदुनन्दन श्रीहरिने उसके सारथिके सिरको धड़से अलग करके चार उत्तम सायकोंद्वारा चारों घोड़ोंको मारकर उस राजाके रथको भी तोड़-फोड़ डाला तथा दोनों पार्श्वरक्षकोंको घायल करके उसके रथके पहियोंको तिल-तिल करके काट डाला और वे कुछ मुसकराते हुए-से खड़े हो गये॥ ६-७॥ तब पौण्ड्रक वासुदेव तुरंत ही रथसे कूद पड़ा और एक तीखी तलवार लेकर उसने भगवान् केशवपर चला दी॥ ८॥ भगवान् केशव उस तलवारके सौ टुकड़े करके चुपचाप रथपर बैठे रहे। तत्पश्चात् प्रतापी पौण्ड्रक वासुदेवने एक कालके समान महाघोर परिघ लेकर समस्त क्षत्रियोंके देखते-देखते उसे वृष्णिवीर भगवान् वासुदेवपर चला दिया॥ ९-१०॥ तब जगदीश्वर यदुनन्दनने उस परिघके दो टुकड़े कर दिये। महाराज! तत्पश्चात् शत्रुसूदन पौण्ड्रकने महाघोर परम कान्तिमान् सहस्रों अरोंसे युक्त तीस भार लोहेके बने हुए क्षेपणीय चक्रको हाथमें लेकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—॥ ११-१२॥ 'दर्पवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ गोविन्द! देखो, यह भयंकर एवं तीखा चक्र तुम्हारे चक्रका विनाश करनेवाला है। वार्ष्णेय! मैं इसी चक्रसे समस्त क्षत्रियोंके देखते-देखते तुम्हारा सारा घमंड चूर्ण कर दूँगा। हरे! कृष्ण! तुम्हारे उद्देश्यसे ही मैंने यह महाभयंकर दूसरा दुर्जय चक्र तैयार कराया है।

यदि शक्तो हरे कृष्ण दारयेदं महास्पदम्।
इत्युक्त्वा तच्छतगुणं भ्रामयित्वा महाबलः ॥ १५

चिक्षेपाथ महावीर्यः पौण्ड्रको नृपसत्तमः।
अवप्लुत्य ततो देशात् तदुत्सृज्य महाबलः ॥ १६

सिंहनादं महाघोरं व्यनदद् वीर्यवांस्तदा।
ततो विस्मयमापन्नो भगवान् देवकीसुतः ॥ १७

अहो वीर्यमहो धैर्यमस्य पौण्ड्रस्य दुःसहम्।
इति मत्वा जगन्नाथ उत्थितश्च रथोत्तमात् ॥ १८

ततः शिलां समादाय प्रेषयामास केशवम्।
तां शिलां प्रेषयामास तस्मै यदुकुलोद्वहः ॥ १९

पौण्ड्रेण सुचिरं कालं विक्रीड्य भगवान् हरिः।
ततश्चक्रं समादाय निशितं रक्तभोजनम् ॥ २०

दैत्यमांसप्रदिग्धाङ्गं नारीगर्भविमोचनम्।
शातकुम्भमयं घोरं दैत्यदानवनाशनम् ॥ २१

सहस्रारं शतारं तदद्भुतं दैत्यभीषणम्।
ऐश्वर्यवर्म परमं नित्यं सुरगणार्चितम् ॥ २२

विष्णुः कृष्णस्तथा शार्ङ्गी नित्ययुक्तः सदा हरिः।
जघान तेन गोविन्दः पौण्ड्रकं नृपसत्तमम् ॥ २३

तस्य देहं विदार्याशु चक्रं पिशितभोजनम्।
कृष्णस्याथ करं भूयः प्राप सर्वेश्वरस्य ह ॥ २४

ततः स पौण्ड्रको राजा गतासुः प्रापतद् भुवि।
निहत्य भगवान् विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः।
प्रतिपेदे सुधर्मां तु यादवैः पूजितो हरिः ॥ २५

यदि तुममें शक्ति हो तो इस विशाल चक्रको विदीर्ण करो'। ऐसा कहकर महाबली महापराक्रमी नृपश्रेष्ठ पौण्ड्रकने उस चक्रको सौ बार घुमाकर श्रीकृष्णपर चला दिया। तब महाबली और पराक्रमशाली श्रीकृष्ण उस स्थानसे नीचे उतर गये और उस चक्रको विफल करके महाघोर सिंहनाद करने लगे। पहले तो भगवान् देवकीनन्दन उसका साहस देखकर विस्मित हो उठे और यह कहने लगे कि 'अहो! पौण्ड्रकका दुःसह पराक्रम और धैर्य अद्भुत है'। यही सब सोचकर जगन्नाथ श्रीकृष्ण अपने उत्तम रथसे उतर पड़े थे। तदनन्तर पौण्ड्रकने एक शिलाखण्ड लेकर भगवान् श्रीकृष्णपर चलाया, किंतु यदुकुलतिलक श्रीकृष्णने वह शिला फिर उसीपर दे मारी॥ १३—१९॥ इस प्रकार भगवान् श्रीहरिने पौण्ड्रकके साथ चिरकालतक युद्धका खेल करके अपना तीखा चक्र हाथमें लिया, जो दैत्योंके रक्तका आहार करनेवाला था॥ २०॥ उस चक्रका अङ्ग-प्रत्यङ्ग दैत्योंके मांससे पुष्ट हुआ था। वह दैत्यनारियोंके गर्भ गिरा देनेवाला था। उसका निर्माण सुवर्णसे हुआ था। वह घोर चक्र दैत्यों और दानवोंका नाश करनेवाला था। उसके अरे कभी सहस्रोंकी संख्यामें प्रकट होते थे और कभी सैकड़ोंकी। ऐश्वर्य ही उसका कवच था। वह देवगणोंद्वारा पूजित उत्तम अस्त्र नित्य अद्भुत तथा दैत्योंको भयभीत करनेवाला था॥ २१-२२॥ सर्वव्यापी शार्ङ्गधनुर्धर पापहारी श्रीकृष्ण सदा उस अस्त्रसे युक्त रहते हैं। गोविन्दने उसी अस्त्रसे नृपश्रेष्ठ पौण्ड्रकको मार डाला॥ २३॥ उसके शरीरको विदीर्ण करके वह मांसभोजी चक्र पुनः शीघ्र ही सर्वेश्वर श्रीकृष्णके हाथमें आ गया॥ २४॥ तदनन्तर वह राजा पौण्ड्रक प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। जिनके स्वरूपको समझना अत्यन्त कठिन है, वे सर्वसमर्थ भगवान् विष्णु हरि पौण्ड्रकका वध करके यादवोंसे पूजित हो सुधर्मा नामक सभामें चले गये॥ २५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पौण्ड्रकवासुदेववधे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्णकी कैलासयात्राके प्रसङ्गमें पौण्ड्रक वासुदेवका वधविषयक एक सौ एकवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०१॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

एकलव्यका द्वीपान्तरगमन, भगवान् श्रीकृष्णका यादवोंको अपनी यात्राका संक्षिप्त वृत्तान्त बताना तथा अन्तःपुरमें रुक्मिणी और सत्यभामासे मिलकर उन्हें संतोष देना

वैशम्पायन उवाच

निषादेशं ततो रामः शक्त्या वीर्यवतां वरः।
आजघान स्तनद्वन्द्वे सिंहनादं व्यनीनदत्॥ १
ततः क्रुद्धो निषादेशो रामं मत्तं महाबलम्।
गदया लोकविख्यातो जघान स्तनवक्षसि॥ २
आहतः स तु तेनाशु बलभद्रो महाबलः।
उभाभ्यां चैव रामस्तु कराभ्यां वृष्णिपुङ्गवः॥ ३
गदां गृह्य महाघोरामायान्तीं प्राणहारिणीम्।
दुद्रावाथ निषादेशः समुद्रं मकरालयम्॥ ४
धावत्येवं तदा राज्ञि एकलव्ये निषादपे।
धावत्येवं च रामोऽपि यत्र यातो निषादपः॥ ५
सागरं स प्रविश्याशु गत्वा योजनपञ्चकम्।
भीत एव तदा राजन्नेकलव्यो निषादपः॥ ६
कंचिद् द्वीपान्तरं राजन् प्रविश्य न्यवसत् तदा।
इत्थं रामो निषादेशं जिगाय यदुनन्दनः॥ ७
तां सभां मणिरत्नाढ्यां प्रविवेश हलायुधः।
सात्यकिर्युद्धसंसक्तस्तां सभां प्रविवेश ह॥ ८
अन्ये च यादवा राजन् यथायोगमुपस्थिताः।
आसीनेषु च सर्वेषु वृष्णिवीरेषु सर्वतः॥ ९
अभिवाद्य यथायोगं वृष्णीन् सर्वांश्च केशवः।
उवाच वचनं काले भगवान् देवकीसुतः॥ १०
दृष्टं कैलासशिखरं शंकरो नीललोहितः।
स तु मह्यं यदुवराः प्रीतिमांश्च ददौ वरम्॥ ११
तत्र देवाः समायाता मुनयश्च तपोधनाः।
दृष्ट्वा मां शंकरश्चैव प्रीतः स्तुत्वा समाययौ॥ १२
अत्यद्भुतं मया दृष्टं रात्रौ यादवसत्तमाः।
पिशाचौ द्वौ महाघोरौ वदन्तौ मामिकां कथाम्॥ १३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामजीने शक्तिसे निषादराज एकलव्यकी छातीमें प्रहार किया और फिर सिंहके समान गर्जना की॥ १॥ तब क्रोधमें भरे हुए लोकविख्यात निषादराजने महाबली एवं बलके मदसे उन्मत्त हुए बलरामजीकी छातीमें गदासे चोट पहुँचायी॥ २॥ उसके द्वारा आहत होकर महाबली वृष्णिपुङ्गव वीर बलभद्र एवं बलरामने दोनों हाथोंसे अपनी ओर आती हुई उस प्राणहारिणी महाभयंकर गदाको पकड़कर एकलव्यपर आक्रमण किया। यह देखकर निषादराज एकलव्य मगर आदि जलजन्तुओंके निवासस्थान समुद्रकी ओर भागा॥ ३-४॥ निषादराज एकलव्यके इस प्रकार भागनेपर बलरामजी भी उसका पीछा करने लगे। वह जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ वे भी गये॥ ५॥ राजन्! समुद्रमें घुसकर निषादराज एकलव्य पाँच योजन दूर चला गया और वहाँ बलभद्रजीसे डरता हुआ ही निवास करने लगा॥ ६॥ नरेश्वर! किसी दूसरे द्वीपमें प्रवेश करके वह वहीं रहने लगा; इस प्रकार यदुनन्दन बलरामजीने निषादराजपर विजय पायी॥ ७॥ तदनन्तर हलायुध बलरामजीने मणि तथा रत्नोंसे विभूषित उस सुधर्मा-सभामें प्रवेश किया। युद्धमें फँसे हुए सात्यकि भी उससे विरत हो सभामें लौट आये॥ ८॥ राजन्! अन्य यादव भी यथावसर वहाँ उपस्थित हुए। जब सभी वृष्णिवंशी वीर वहाँ सब ओर बैठ गये, तब देवकीनन्दन भगवान् केशवने योग्यताके अनुसार सभी वृष्णिवंशियोंका अभिवादन करके उस समय यह बात कही—॥ ९-१०॥ 'यदुवरो! मैंने कैलासशिखरका दर्शन किया। वहाँ नीललोहित भगवान् शङ्करने मुझे प्रसन्न होकर वर दिया है॥ ११॥ वहाँ देवता और तपोधन मुनि भी पधारे थे। भगवान् शङ्कर मुझसे मिलकर प्रसन्न हुए और मेरी स्तुति करके लौट गये॥ १२॥ यादवशिरोमणियो! इस यात्रामें रातके समय मैंने एक बड़ी अद्भुत बात देखी थी।'

मृगयां चक्रतुस्तौ तु चिन्तयन्तौ तु मां सदा।
दृष्ट्वा मां तौ तु राजेन्द्राः प्रीतिमन्तौ तपस्विनौ॥ १४

भक्तिनम्रौ महात्मानौ प्रणामं चक्रतुस्तदा।
ततोऽहं सर्वथा प्रीतस्तौ नीतौ स्वर्गमुत्तमम्॥ १५
तोषयित्वा महादेवं मया चाद्य समागतम्।

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते वृष्णयः सर्वे देवदेवं शशंसिरे॥ १६
सर्वथा कृतकृत्यास्ते वृष्णयः केशवाश्रयाः।
यादवाः सर्व एवैते स्वं स्वं जग्मुर्यथालयम्॥ १७

अभ्यन्तरे जगन्नाथः प्रविश्य हरिरीश्वरः।
रुक्मिणीसत्यभामाभ्यामाचचक्षे यथाभवत्॥ १८

ते प्रीते प्रीतियुक्तेन केशवेन समन्विते।
एतत् ते सर्वमाख्यातं केशवस्य विचेष्टितम्॥ १९

शशास पृथिवीं कृत्स्नां दुष्टान् हत्वा महाबलान्।
नरकं घोरकर्माणं पौण्ड्रकं नृपसत्तमम्॥ २०

हयग्रीवं निशुम्भं च तथा सुन्दोपसुन्दकौ।
ररक्ष विप्रान् देवेशो मुनीन् मुनिवरार्चितः॥ २१

विप्रेभ्यश्च ददौ वित्तं गाश्च दत्त्वा स केशवः।
अग्निहोत्रं प्रयुञ्जानो ब्राह्मणांश्च सुतर्पयन्॥ २२

मुनींश्च ब्रह्मचर्येण देवान् यज्ञैरनेकधा।
स्वधया च पितॄन् सर्वान् प्रीणयन्नेव सर्वदा॥ २३

तस्मिञ्छासति देवेशे राज्यं निष्कण्टकं प्रभो।
सुखमेव प्रजाः सर्वा जीवन्ति ब्राह्मणादयः॥ २४

'दो महाभयंकर पिशाच मेरी ही कथा कहते और सदा मेरा ही चिन्तन करते हुए शिकार खेल रहे थे। राजेन्द्रगण! वे दोनों तपस्वी मुझे देखकर बड़े प्रसन्न हुए। वे महात्मा थे, उन्होंने भक्तिभावसे नम्र होकर मुझे प्रणाम किया। तब मैंने सर्वथा प्रसन्न होकर उन दोनोंको उत्तम स्वर्गलोकमें भेज दिया। इसके बाद तपस्याद्वारा महादेवजीको संतुष्ट करके आज मैं यहाँ आया हूँ'॥ १३—१५ $\frac{1}{2}$ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तब उन सभी वृष्णिवंशियोंने देवाधिदेव भगवान् श्रीकृष्णकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। श्रीकेशवका आश्रय लेकर वे वृष्णिवंशी सर्वथा कृतकृत्य हो गये। तत्पश्चात् वे सभी यादव अपने-अपने घरको चले गये॥ १६-१७॥ फिर जगन्नाथ सर्वेश्वर श्रीहरिने भी अन्तःपुरमें प्रवेश करके रुक्मिणी और सत्यभामासे जो जैसे घटित हुई थीं, वे सारी बातें बतायीं॥ १८॥ वे दोनों प्रीतियुक्त केशवके साथ वह सब सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं। इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान् श्रीकृष्णकी सारी लीलाएँ कह सुनायीं॥ १९॥ श्रीकृष्णने महाबली दुष्टोंका वध करके सारी पृथ्वीका शासन किया। बड़े-बड़े मुनियोंसे पूजित हुए उन देवेश्वरने घोर कर्म करनेवाले नरकासुरको, नृपश्रेष्ठ पौण्ड्रकको, हयग्रीव और निशुम्भको तथा सुन्द और उपसुन्दको मारकर मुनियों एवं ब्राह्मणोंकी रक्षा की॥ २०-२१॥ भगवान् केशव ब्राह्मणोंको गौएँ देकर उनके लिये धन भी देते थे, अग्निहोत्र करते और ब्राह्मणोंको भोजन आदिसे तृप्त करते थे॥ २२॥ ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक वेदोंके स्वाध्यायसे मुनियोंको, अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा देवताओंको तथा स्वधाकर्म (श्राद्ध-तर्पण)-से समस्त पितरोंको सदा तृप्त करते रहते थे॥ २३॥ प्रभो! देवेश्वर श्रीकृष्णके निष्कण्टक राज्य शासन करते समय ब्राह्मण आदि सारी प्रजाएँ सुखपूर्वक ही जीवन-निर्वाह करती थीं॥ २४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पौण्ड्रकवधसमाप्तौ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १०२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्णकी कैलासयात्राके प्रसङ्गमें पौण्ड्रकवधका समाप्तिविषयक एक सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०२॥

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

हंस और डिम्भकके विषयमें जनमेजयका प्रश्न

जनमेजय उवाच

भूय एव द्विजश्रेष्ठ शङ्खचक्रगदाभृतः।
चरितं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन॥ १

न हि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतः कैशवीं कथाम्।
को नु नाम हरेर्विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः॥ २

शृण्वंस्तथा रमन् वापि तृप्तिं याति दिवानिशम्।
पुरुषार्थोऽयमेवैको यत्कथाश्रवणं हरेः॥ ३

कथमासीज्जगद्धेतोर्हंसस्य डिम्भकस्य च।
समितिः सर्वभूतानां सदा विस्मयदायिनी॥ ४

विचक्रस्य कथं युद्धं दानवस्य महात्मनः।
स तयोर्मित्रतां यात इत्येवमनुशुश्रुम॥ ५

तौ सुतौ वीर्यसम्पन्नौ शिष्यौ भृगुसुतस्य ह।
सर्वास्त्रकुशलौ वीरौ हराल्लब्धवरौ किल॥ ६

संग्रामः सुमहानासीदित्युक्तं भवता पुरा।
तयोश्च नृपयोर्विप्र केशवस्य जगत्पतेः॥ ७

कस्य पुत्रौ समुत्पन्नौ यथाभूद् विग्रहो महान्।
अष्टाशीतिसहस्राणि दानवानां तरस्विनाम्॥ ८

बलान्यथ विचक्रस्य शितशूलधराणि च।
आसन् युद्धे महाराज दानवस्य जयैषिणः॥ ९

यदूनामन्तरं प्रेप्सुर्यदूनां युद्धकाङ्क्षया।
देवासुरे महायुद्धे देवाञ्जयति दुर्धरः।
तद्वधार्थं सदा यत्नमकरोच्चैव केशवः॥ १०

जनमेजयने कहा—द्विजश्रेष्ठ! तपोधन! मैं शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रको पुनः विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ॥ १॥ भगवान् केशवकी कथा सुनते हुए यहाँ मुझे कभी तृप्ति नहीं होती। कौन ऐसा पुरुष होगा, जो देवाधिदेव चक्रपाणि विष्णु हरिके नाम और यशको दिन-रात सुनता और उसीमें रमण करता हुआ कभी तृप्तिका अनुभव करेगा? (उसे न सुनना चाहेगा?) भगवान् श्रीहरिकी कथाका जो श्रवण है, यही एकमात्र पुरुषार्थ माना गया है॥ २-३॥ जगत्के लिये हंस और डिम्भककी कैसी समिति संगठित हुई थी, जो समस्त प्राणियोंको सदा ही विस्मय प्रदान करनेवाली थी?॥ ४॥ महामनस्वी दानव विचक्रका युद्ध किस प्रकार हुआ था? सुननेमें आया है कि वह उन दोनोंका मित्र हो गया था॥ ५॥ वे दोनों राजकुमार बल-पराक्रमसे सम्पन्न तथा मुनिवर भार्गवके शिष्य थे। कहते हैं कि उन दोनोंने भगवान् शङ्करसे वर प्राप्त किये थे। वे दोनों वीर सम्पूर्ण अस्त्रोंमें कुशल थे॥ ६॥ विप्रवर! आपने पहले कहा था कि जगदीश्वर श्रीकृष्णका उन दोनों राजाओं (हंस और डिम्भक)-के साथ बड़ा भारी संग्राम हुआ था॥ ७॥ वे दोनों किसके पुत्र होकर उत्पन्न हुए थे, जिससे उनके साथ महान् युद्ध हुआ। महाराज! सुना है कि विजयकी अभिलाषा रखनेवाले दानव विचक्रके पास युद्धके लिये अट्ठासी हजार वेगशाली दानवोंकी सेनाएँ थीं। वे सब-के-सब दानव तीखे शूल धारण करते थे॥ ८-९॥ दानव विचक्र दुर्जय वीर था। वह युद्धकी इच्छासे यादवोंकी त्रुटि या दुर्बलता देखा करता था। देवताओं और असुरोंके महायुद्धमें वह देवताओंपर विजय पाता था और भगवान् श्रीकृष्ण उसके वधके लिये सदा प्रयत्नशील रहते थे॥ १०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने जनमेजयवाक्ये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १०३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस और डिम्भकके उपाख्यानके प्रसङ्गमें जनमेजयका वाक्यविषयक एक सौ तीनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०३॥

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

राजा ब्रह्मदत्तको भगवान् शङ्करकी आराधनासे हंस और डिम्भक नामक पुत्रोंकी प्राप्ति तथा राजसखा विप्रवर मित्रसहको भगवान् विष्णुकी उपासनासे जनार्दन नामक पुत्रका लाभ

वैशम्पायन उवाच

आसीच्छाल्वेषु राजेन्द्र ब्रह्मदत्तो नृपोत्तमः।
नाम्ना राजन् स पूतात्मा सर्वभूतदयापरः॥ १

पञ्चयज्ञपरो नित्यं जितात्मा विजितेन्द्रियः।
ब्रह्मविद् वेदविच्चैव सदा यज्ञमयः शिवः॥ २

तस्य भार्ये महीपाल रूपौदार्यगुणान्विते।
बभूवतुः सुसम्पन्ने अनपत्ये नृपोत्तम॥ ३

स ताभ्यां मुमुदे राजा शच्या शक्र इवाम्बरे।
नाम्ना मित्रसहो नाम सखा चासीद् द्विजोत्तमः॥ ४

तस्य राज्ञो महायोगी वेदवेदान्ततत्परः।
अनपत्यः स विपेन्द्रो यथा राजा बभूव ह॥ ५

स राजा सहितस्ताभ्यामर्चयामास शंकरम्।
पुत्रार्थं शूलिनं शर्वं दश वर्षाण्यनन्यधीः॥ ६

स विप्रो वैष्णवं सत्रं पुत्रार्थे समयोजयत्।
अर्चितस्तेन राजेन्द्र शंकरो नीललोहितः॥ ७

आत्मानं दर्शयामास स्वप्ने राजानमब्रवीत्।
प्रीतोऽस्मि तव भद्रं ते वरं वरय सुव्रत॥ ८

अथ राजा जगन्नाथमुवाचेदं स्मयन्निव।
पुत्रौ मम भवेतां हि तथेत्युक्त्वा वृषध्वजः॥ ९

अन्तर्धानं गतः शम्भुः प्रतिबुद्धस्ततो नृपः।
सोऽपि मित्रसहो विद्वान् देवं केशवमव्ययम्॥ १०

पञ्चवर्षं जगन्नाथमर्चयामास भक्तितः।
अर्चितस्तेन विप्रेण देवदेवो जनार्दनः॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजेन्द्र! शाल्वदेशमें ब्रह्मदत्त नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ राजा राज्य करते थे। राजन्! उनका हृदय बड़ा ही पवित्र था। वे सम्पूर्ण भूतोंपर दयाभाव बनाये रखते थे॥ १॥ सदा पञ्चयज्ञका अनुष्ठान करते तथा मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते थे। वे ब्रह्मवेत्ता और वेदवेत्ता थे तथा सदा यज्ञके अनुष्ठानमें लगे रहते थे। राजा ब्रह्मदत्त सबके लिये कल्याणकारी थे॥ २॥ महीपाल! नृपश्रेष्ठ! उनके रूप और उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न दो पत्नियाँ थीं, उनमें सारे गुण होनेपर भी उन दोनोंके कोई संतान नहीं हुई॥ ३॥ जैसे स्वर्गमें इन्द्र शचीके साथ आनन्दपूर्वक रहते हैं, उसी प्रकार राजा ब्रह्मदत्त उन दोनों पत्नियोंके साथ सदा आनन्दमग्न रहते थे। राजाके एक श्रेष्ठ ब्राह्मण मित्र थे, जिनका नाम था मित्रसह। वे महान् योगी तथा वेद और वेदान्तके अनुशीलनमें तत्पर रहनेवाले थे। वे ब्राह्मणशिरोमणि भी राजाके ही समान संतानहीन थे॥ ४-५॥ राजाने अपनी दोनों पत्नियोंके साथ रहकर पुत्र-प्राप्तिके उद्देश्यसे एकाग्रचित्त हो दस वर्षोंतक शूलधारी भगवान् शङ्करकी आराधना की॥ ६॥ राजेन्द्र! ब्राह्मण मित्रसहने पुत्रके लिये वैष्णवयागका अनुष्ठान किया। राजा ब्रह्मदत्तके द्वारा पूजित हुए नीललोहित भगवान् शङ्करने स्वप्नमें उन्हें अपने दिव्य रूपका दर्शन कराया और कहा—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले नरेश! तुम्हारा कल्याण हो! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम कोई वर माँगो॥ ७-८॥ राजाने मुसकराते हुए-से भगवान् विश्वनाथसे यह बात कही—'प्रभो! मेरे दो पुत्र हों।' तब 'तथास्तु' (ऐसा ही हो) यह कहकर वृषभध्वज भगवान् शङ्कर अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् राजाकी नींद खुल गयी। विद्वान् मित्रसहने भी अविनाशी जगदीश्वर भगवान् केशवकी पाँच वर्षोंतक बड़े भक्तिभावसे आराधना की। उन ब्राह्मणसे पूजित हो देवाधिदेव जनार्दन

पुत्रमेकं ददौ तस्मै स्वात्मना सदृशं हरिः।
ते भार्ये गर्भमाधत्तां तेजसा शंकरस्य ह॥ १२

विप्रभार्या महाराज वैष्णवं तेज आदधत्।
महिष्यौ ते महावीर्यौ पुत्रौ शंकरनिर्मितौ॥ १३

असूयेतां महीपाल क्रमेणैव नृपस्य ह।
स तयोश्च महाराज नामकर्मादिकाः क्रियाः॥ १४

चकार विधिवत् सर्वा विप्रेभ्योऽदान्महद्धनम्।
स च विप्रो विनीतात्मा पुत्रमेकं हि लब्धवान्॥ १५
साक्षादिव जगन्नाथं स्थितं पुत्रात्मना नृप।
जातकर्मादिकं सर्वं ब्राह्मणः स चकार ह॥ १६

तौ कुमारावयं चैव त्रयः सवयसोऽभवन्।
वेदानधीत्य ते सर्वाञ्छ्रुत्वा चान्वीक्षिकीं तथा॥ १७

धनुर्वेदे तथाऽस्त्रे च निपुणास्तेऽभवंस्तदा।
हंसो ज्येष्ठो नृपसुतो डिम्भकोऽनन्तरोऽभवत्॥ १८

स च विप्रसुतो राजन् जनार्दन इति स्मृतः।
अन्योन्यं मित्रतां याताः सर्वे चैव कुमारकाः॥ १९

हरिने उन्हें अपने ही-जैसा एक पुत्र प्रदान किया। महाराज! राजाकी उन दोनों पत्नियोंने भगवान् शंकरके तेजसे गर्भ धारण किया और ब्राह्मणकी पत्नीने वैष्णव तेजको ही गर्भके रूपमें धारण किया। महीपाल! राजाकी उन दो रानियोंने भगवान् शंकरकी कृपासे प्राप्त हुए दो महापराक्रमी पुत्रोंको क्रमशः जन्म दिया था। महाराज जनमेजय! ब्रह्मदत्तने उन दोनों पुत्रोंके नाम-कर्म आदि सारे संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न किये और ब्राह्मणोंको बहुत धन दिया। नरेश्वर! विनयशील हृदयवाले ब्राह्मण मित्रसहने भी एक पुत्र प्राप्त किया, जिसके रूपमें मानो साक्षात् जगन्नाथ श्रीहरि ही उनके घरमें आ गये हों। ब्राह्मणने भी पुत्रके जातकर्म आदि सभी संस्कार पूर्ण किये॥ ९—१६॥ वे दोनों राजकुमार और यह ब्राह्मणपुत्र तीनों ही समवयस्क थे। उन्होंने सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन करके आन्वीक्षिकी विद्या (वेदान्त आदि)-का अनुशीलन करनेके पश्चात् धनुर्वेद तथा सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञानमें निपुणता प्राप्त की। ज्येष्ठ राजकुमारका नाम हंस था और उससे छोटा डिम्भक नामसे प्रसिद्ध हुआ। राजन्! ब्राह्मणपुत्रका नाम जनार्दन रखा गया था। वे सभी कुमार एक-दूसरेके प्रति मित्रभाव रखते थे॥ १७—१९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोत्पत्तौ चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥ १०४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस और डिम्भकका उत्पत्तिविषयक एक सौ चारवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०४॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

हंस और डिम्भककी तपस्या, वरप्राप्ति, जनार्दनसहित उन दोनोंका विवाह तथा तीनों कुमारोंकी धर्मनिष्ठा

वैशम्पायन उवाच

हंसश्च डिम्भकश्चैव तपश्चर्तुं महामती।
मनश्चक्रतुरात्मांशौ शंकरस्य नृपोत्तम॥ १

गत्वा तु हिमवत्पार्श्वं तपश्चक्रतुरञ्जसा।
उद्दिश्य शंकरं शर्वं नीलग्रीवमुमापतिम्॥ २

वीर्यास्त्रे चैव नौ स्यातामित्याधाय तु मानसे।
एकाग्रौ प्रयतौ भूत्वा वाय्वम्बुप्राशिनौ नृप॥ ३

वैशम्पायनजीने कहा—नृपश्रेष्ठ! राजकुमार हंस और डिम्भक भगवान् शंकरके अपने अंशसे उत्पन्न और परम बुद्धिमान् थे। उन दोनोंने तपस्या करनेका विचार किया॥ १॥ नरेश्वर! हिमालयके पास जाकर वायु और जलका आहार करते हुए वे दोनों एकाग्र एवं संयतचित्त हो मनमें यह संकल्प लेकर कि 'हमें दिव्य पराक्रम और अस्त्र प्राप्त हो जायँ' कल्याणकारी कष्टहारी नीलकण्ठ भगवान् उमापतिकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे सानन्द तपस्या करने लगे॥ २-३॥

नमस्ते देवदेवेति शंकरेति दिवानिशम्।
हर शर्व शिवानन्द नीलग्रीव उमापते॥ ४

वृषध्वज विरूपाक्ष हर्यक्ष जगतां पते।
भक्तप्रिय गिरीशेश वासुदेव शिवाच्युत॥ ५

सद्योजात महादेव देवदेव गुहाशय।
भूतभावन देवेश प्रणवात्मन् सदाशिव॥ ६

इत्यादिनामभिर्नित्यं स्तुवन्तौ शंकरं भवम्।
हृदि कृत्वा विरूपाक्षं तपस्तेपतुरञ्जसा॥ ७

निर्ममौ निरहंकारौ मौनव्रतसमास्थितौ।
वर्षाणीह तदा राजन् पञ्च चक्रतुरोजसा॥ ८

ततः प्रीतोऽभवच्छर्वस्ताभ्यां संयमनेन च।
स ददौ दर्शनं नैजं व्याघ्रचर्माम्बरो हरः॥ ९

त्रियक्षः शंकरः शर्वः शूलपाणिरुमापतिः।
अग्रतः संस्थितं शर्वं चन्द्रार्धकृतशेखरम्।
तौ दृष्ट्वा प्रीतमनसौ नमश्चक्रतुरञ्जसा॥ १०

श्रीभगवानुवाच

वरं वरय भद्रं वां यथेच्छा वां तथास्तु वै।
तावूचतुस्तदा राजन् प्रीतस्त्वं भगवन् यदि॥ ११

देवासुरचमूमुख्यैर्यक्षगन्धर्वदानवैः।
आवामजय्यौ सर्वात्मन्नेष नौ प्रथमो वरः॥ १२

द्वितीयो नौ विरूपाक्ष रौद्रास्त्राणां च संग्रहः।
माहेश्वरं तथा रौद्रमस्त्रं ब्रह्मशिरो महत्॥ १३

अभेद्यं कवचं दिव्यमच्छेद्यं चापि कार्मुकम्।
परशुं च तथा शर्व सदा रक्षार्थमेव च॥ १४

सहायौ द्वौ महादेव भूतौ युद्धे हि गच्छताम्।
एवमस्त्विति देवेश आह भृङ्गिरिटी हरः॥ १५

कुण्डोदरं विरूपाक्षं सर्वप्राणिहिते रतम्।
युवामथ च भूतेशौ सहायौ सततं रणे॥ १६

संग्रामं गच्छतां घोरमेतयोर्बलशालिनोः।
इत्युक्त्वा भगवाञ्छर्वस्तत्रैवान्तरधीयत॥ १७

वे दिन-रात देवाधिदेव! शंकर! हर! शर्व! शिवानन्द! नीलग्रीव! उमापते! वृषभध्वज! विरूपाक्ष! हर्यक्ष! जगत्पते! भक्तप्रिय! गिरीश! ईश! वासुदेव! शिव! अच्युत! सद्योजात! महादेव! देवदेव! अन्तर्यामीरूपसे हृदयगुहामें शयन करनेवाले! भूतभावन! देवेश्वर! ओङ्कारस्वरूप! सदाशिव! आपको नमस्कार है, इत्यादि रूपसे भगवान्‌के नामोंद्वारा नित्य-निरन्तर कल्याणकारी भगवान् भवकी स्तुति करते हुए उन्हीं भगवान् विरूपाक्ष (शिव)-को हृदयमें धारण करके सुखपूर्वक तपस्यामें लगे रहे॥ ४—७॥ राजन्! उनमें ममता और अहंकारका अभाव हो गया। वे मौनव्रतका आश्रय लेकर उन दिनों पाँच वर्षोंतक उत्साहपूर्वक तपस्यामें लगे रहे। उन दोनोंके तप और संयमसे भगवान् शंकरको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उन दोनोंको अपने स्वरूपका दर्शन दिया। उस समय उनके श्रीअङ्गोंपर व्याघ्रचर्ममय वस्त्र शोभा पा रहा था। वे पापहारी, त्रिनेत्रधारी और कल्याणकारी उमावल्लभ भगवान् शिव हाथमें त्रिशूल लिये वहाँ उपस्थित थे। चन्द्रार्धशेखर भगवान् शिवको अपने सामने खड़ा देख वे दोनों प्रसन्नचित्त हो उन्हें बारम्बार नमस्कार करने लगे॥ ८—१०॥

तब श्रीभगवान् बोले—राजकुमारो! तुम दोनोंका कल्याण हो! तुम कोई वर माँगो! तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वह पूर्ण हो। राजन्! यह सुनकर वे दोनों बोले—'भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं तो हम आपकी कृपासे देवताओं और असुरोंके मुख्य-मुख्य सेनापतियों, यक्षों, गन्धर्वों और दानवोंके लिये भी अजेय हो जायँ। सर्वात्मन्! यही हम दोनोंका पहला वर है॥ ११-१२॥ 'विरूपाक्ष! हमारा दूसरा वर यह है कि हमारे पास सभी भयंकर अस्त्रोंका संग्रह हो। माहेश्वरास्त्र, रौद्रास्त्र तथा महान् ब्रह्मशिर नामक अस्त्र हमें उपलब्ध हों॥ १३॥ शर्व! अभेद्य कवच, दिव्य एवं अच्छेद्य धनुष और परशु—ये सदा हमें रक्षाके लिये सुलभ हों॥ १४॥ महादेव! युद्धमें आपके दो-दो भूत हमारी सहायताके लिये जाया करें।' तब देवेश्वर हरने 'ऐसा ही होगा', यह कहकर अपने दो पार्षद भृङ्गि और रिटिसे तथा कुण्डोदर एवं समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले विरूपाक्षसे कहा—'तुम दोनों दो-दो करके दो भूतेश्वर हो, तुम युद्धके अवसरपर सदा घोर-से-घोर संग्राममें इन दोनों बलशाली वीरोंकी सहायताके लिये अवश्य पहुँच जाना।' ऐसा कहकर भगवान् शर्व वहीं अन्तर्धान हो गये॥ १५—१७॥

ततस्तौ वीर्यसम्पन्नौ हंसो डिम्भक एव च।
कृतास्त्रौ शस्त्रसम्पन्नौ चापिनौ वीर्यवत्तरौ॥ १८

आमुक्तकवचौ वीरावजय्यौ देवदानवैः।
अत्यन्तभक्तौ देवेशे शंकरे नीललोहिते॥ १९

नित्योत्सवकरौ देवे भस्मोद्धूलनशोभिनौ।
कृतत्रिपुण्ड्रकौ नित्यं जटायुक्तशिरोधरौ॥ २०

रुद्राक्षार्पितसर्वाङ्गौ व्याघ्रचर्माम्बरावृतौ।
नमः शिवाय शान्ताय महादेवाय धीमते॥ २१

इत्यादिभिर्महादेवं स्तुवन्तौ नामभिः शिवम्।
साक्षादिव महादेवौ रेजतुर्जलधारिणौ॥ २२

ततः स्वभवनं गत्वा पितुः पादावगृह्यताम्।
पितुश्च सख्युर्बलिनौ मातुश्च चरणौ तदा॥ २३

जनार्दनोऽपि धर्मात्मा कालेन महता नृप।
विद्यापारं महाबुद्धिर्युक्तेनासावुपेयिवान्॥ २४

स च विष्णुं हृषीकेशं पीतकौशेयवाससम्।
ब्रह्मतत्त्वपरो नित्यमुपास्ते विजितेन्द्रियः॥ २५

हंसश्च डिम्भकश्चैव कृतदारो बभूवतुः।
जनार्दनोऽपि धर्मात्मा कृतदारो बभूव ह॥ २६

सर्वे ते यज्ञनिरताः पञ्चयज्ञपरास्तथा।
स्वदारनिरताः सर्वे गुरुशुश्रूषणे रताः।
धर्म एव परं श्रेय इति ते मेनिरे नृप॥ २७

तदनन्तर बल और पराक्रमसे सम्पन्न हंस और डिम्भक सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता, अस्त्र-शस्त्रोंके सञ्चयसे युक्त, धनुर्धर एवं अत्यन्त बलवान् हो गये॥ १८॥ कवच बाँधकर वे दोनों वीर जब युद्धमें खड़े होते, उस समय देवता और दानवोंके लिये भी उन्हें जीतना असम्भव हो जाता था। नीललोहित भगवान् शंकरमें उन दोनोंकी बड़ी भक्ति थी॥ १९॥ वे महादेवजीके लिये नित्य उत्सव रचाते, अपने अङ्गोंमें भस्म लगाकर सुशोभित होते, ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाते और सदा सिरपर जटाएँ धारण करते थे॥ २०॥ सारे अङ्गोंमें रुद्राक्ष धारण करते, अपने अङ्गोंको व्याघ्रचर्मसे आच्छादित करते और 'परमबुद्धिमान् शान्तस्वरूप महान् देव शिवको नमस्कार है' इत्यादि नामोंद्वारा महादेव शिवकी स्तुति करते थे। इस प्रकार वे दोनों अपनी भीगी जटाओंमें जल धारण करके साक्षात् गङ्गाधर महादेवके दो विग्रहोंके समान शोभा पाते थे॥ २१-२२॥ तदनन्तर उन दोनों बलवान् वीरोंने अपने घर जाकर पिताके चरण पकड़े, पिताके सखा मित्रसहके पैर छुये और माताके चरणोंमें प्रणाम किया॥ २३॥ नरेश्वर! परम बुद्धिमान् धर्मात्मा जनार्दनने भी दीर्घकालतक अध्ययन करके योगयुक्त होकर सम्पूर्ण विद्याओंमें पारङ्गत योग्यता प्राप्त की॥ २४॥ वह अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके ब्रह्मतत्त्वके चिन्तनमें तत्पर रहकर नित्य-निरन्तर इन्द्रियोंके प्रेरक, रेशमी पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुकी उपासना करता था॥ २५॥ हंस और डिम्भकके विवाह हो गये, फिर धर्मात्मा जनार्दनने भी पत्नीका पाणिग्रहण किया॥ २६॥ वे सब-के-सब यज्ञमें तत्पर, पञ्चयज्ञपरायण और अपनी ही पत्नीमें अनुरक्त रहकर गुरुजनोंकी सेवामें संलग्न रहते थे। नरेश्वर! वे यह मानते थे कि 'धर्म ही परम कल्याण करने वाला है'॥ २७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस और डिम्भकका उपाख्यानविषयक एक सौ पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०५॥

षडधिकशततमोऽध्यायः

हंस और डिम्भककी मृगया

वैशम्पायन उवाच

ततः कदाचित् तौ वीरौ मृगयामाटतुः किल।
जनार्दनेन सहितौ रथैरश्वैर्गजैरपि॥ १
वनं गत्वा तु तौ वीरौ सिंहव्याघ्रांश्च जघ्नतुः।
शितैर्बाणैर्महाराज वराहानथ सर्वशः॥ २
व्यालानन्यान् मृगान् हिंस्राञ्छ्वभिश्च सहितौ नृप।
एष आयाति विपुलो वराहो दीर्घलोचनः॥ ३
एनं बाणेन संछिन्धि याति चायं मृगाधिपः।
अयमन्योऽथ महिषः शृङ्गप्रोतसरीसृपः॥ ४
एते खलु मृगाः सार्धं शावैर्बाधन्ति सर्वशः।
एतद् भ्रमति सर्वत्र भीतं शशकुलं महत्॥ ५
शावं स्तनं पिबत्साधु न हन्तव्यमिदं शुभम्।
ग्रहीतव्यमिदं सर्वं निरुध्य श्वगणैरिह॥ ६
इत्यादिशब्दः सुमहान् मृगयां कुर्वतां नृप।
क्षत्रियाणां नृपश्रेष्ठ व्याधानां चैव धावताम्॥ ७
हत्वा मृगान् सुबहुशो व्याघ्रान् सिंहान् नृपोत्तमौ।
श्रमं च जग्मतुर्वीरौ मध्यं याते दिवाकरे॥ ८
अलं हि मृगयास्माकं श्रमः समुपजायते।
इत्यूचतुर्महाराज पुष्करं जग्मतुः सरः॥ ९
सरःसमीपमागम्य मुनिसिद्धनिषेवितम्।
वीजन् मारुतसानूपं श्रमात् तत्र सुखस्थितौ॥ १०
ततो जनाः सरः सर्वे विगाह्य श्रमकर्षिताः।
बिसान् प्रवालान् पद्मानां भक्षयामासुरार्तवत्॥ ११
जनार्दनेन सहितौ हंसो डिम्भक एव च।
सरः क्वचित् समाश्रित्य श्रमं संत्यज्य तिष्ठतः॥ १२
विश्रम्य सरसस्तीरे तदाऽऽसाते सुखं नृपौ।
अशृण्वातां परं ब्रह्म मुनिमुख्यैः समीरितम्॥ १३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर किसी समय वे दोनों वीर हंस और डिम्भक जनार्दनको साथ ले रथ, हाथी और अश्वोंद्वारा शिकार खेलनेके लिये गये॥ १॥ महाराज! वनमें जाकर वे दोनों वीर अपने पैने बाणोंद्वारा सिंहों, व्याघ्रों और वराहोंका सब प्रकारसे वध करने लगे॥ २॥ नरेश्वर! सर्पों तथा अन्यान्य हिंसक पशुओंका कुत्तोंके साथ रहकर उन दोनों भाइयोंने वध किया। नृपश्रेष्ठ! उस समय शिकार खेलते हुए इधर-उधर दौड़नेवाले क्षत्रियों और व्याधोंका यह महान् शब्द सब ओर सुनायी देता था, 'यह बड़े-बड़े नेत्रोंवाला विशाल वराह आ रहा है। यह सिंह जा रहा है, इसे बाणद्वारा काट डालो। यह दूसरा भैंसा जा रहा है, इसके सींगमें सर्प गुँथ गया है। ये मृग अपने बच्चोंके साथ बाधाका अनुभव करते हुए भाग रहे हैं। यह खरगोशोंका महान् समुदाय भयभीत होकर सर्वत्र भटक रहा है। यह छोटा बच्चा स्तन पी रहा है, इसे नहीं मारना चाहिये, ऐसा करनेमें ही भलाई है। इन सबको कुत्तोंसे घेरकर जीवित ही पकड़ लेना चाहिये' इत्यादि॥ ३—७॥ नृपश्रेष्ठ वीर हंस और डिम्भक दोपहर होते-होते बहुत-से हिंसक पशुओं, व्याघ्रों और सिंहोंको मारकर अधिक श्रमके कारण थक गये॥ ८॥ महाराज! वे दोनों बोले—'अब शिकार बंद किया जाय, हमें थकावट हो रही है।' यों कहकर वे पुष्कर सरोवरकी ओर चले गये॥ ९॥ सरोवरके तटपर आकर वे दोनों परिश्रमके कारण वहाँ सुखपूर्वक बैठ गये। वह स्थान मुनियों और सिद्धोंसे सेवित था तथा उस सजल प्रदेशमें मंद-मंद वायु इस प्रकार चल रही थी मानो व्यजन डुला रही हो॥ १०॥ तदनन्तर परिश्रमसे थके हुए सब लोग उस सरोवरमें स्नान करके भूखसे पीड़ित हुएकी भाँति भसीड़ और कमलगट्टा खाने लगे॥ ११॥ जनार्दनसहित हंस और डिम्भक भी उस सरोवरके किसी तटका आश्रय लेकर अपना परिश्रम दूर करके बैठे हुए थे॥ १२॥ सरोवरके तटपर विश्राम लेकर वे दोनों नरेश वहाँ सुखपूर्वक बैठे ही थे कि उसी समय प्रधान-प्रधान मुनियोंद्वारा उच्चारित उत्तम वेदवाणी उन्हें सुनायी दी॥ १३॥

मध्यंदिनं तथा सर्वैः सवनं सस्वरं नृपौ।
ततः प्रीतौ नृपौ भूत्वा श्रुत्वा वेदध्वनिं तदा॥ १४
ऐच्छेतां तौ तदा द्रष्टुं यज्ञं मुनिकृतं तदा।
स्थापयित्वा ततः सेनां सर्वां मृगसमन्विताम्॥ १५
आदाय च महाचापे शरान् कतिचिदेव च।
जनार्दनस्तदा वीरौ हंसो डिम्भक एव च॥ १६
पदातिनौ महाराज जग्मतुश्चाश्रमं किल।
महर्षेः काश्यपस्याथ सत्रं वैष्णवसंज्ञकम्।
यजतो मुनिभिः सार्धं जपहोमपरायणैः॥ १७

उन राजकुमारोंने मध्यंदिन सवनके समय सबके साथ सस्वर वेदपाठ सुना। उस समय उस वेदध्वनिको सुनकर वे दोनों नरेश बड़े प्रसन्न हुए और मुनियों-द्वारा किये गये उस यज्ञको देखनेकी इच्छा करने लगे। महाराज! तदनन्तर मृगोंसहित उस सारी सेनाको वहीं ठहराकर स्वयं दो बड़े-बड़े धनुष और कुछ बाण लेकर जनार्दनसहित वे दोनों वीर हंस और डिम्भक पैदल ही उन महर्षि काश्यपके आश्रममें गये, जो जप और होममें तत्पर रहनेवाले मुनियोंके साथ वैष्णव सत्रका अनुष्ठान कर रहे थे॥ १४—१७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने मृगयावर्णने षडधिकशततमोऽध्यायः॥ १०६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसंगमें हंस और डिम्भककी मृगयाका वर्णनविषयक एक सौ छठा अध्याय पूरा हुआ॥ १०६॥

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

सेनासहित हंस और डिम्भकका पुष्कर-तटपर विश्राम, महर्षि कश्यपके वैष्णवसत्रका दर्शन तथा दुर्वासा आदि यतियोंके समुदायमें जाकर उनके प्रति अपनी अश्रद्धाका प्रदर्शन

वैशम्पायन उवाच

जनार्दनश्च धर्मात्मा हंसो डिम्भक एव च।
सदः प्रविश्य सत्रस्य नमश्चक्रुर्मुनीश्वरान्॥ १
तानागतान् महात्मानो मुनयः शिष्यसंयुताः।
अर्घ्यपाद्यासनादीनि चक्रुः पूजां प्रयत्नतः॥ २
तौ नृपौ स च विप्रेन्द्रः सपर्यां प्रतिगृह्य च।
प्रीतात्मानो महात्मान आसते ससुखं नृप॥ ३
ततो हंसो बभाषे तान् मुनीन् संयतवाङ्नृप।
पिता हि नौ मुनिश्रेष्ठा यष्टुमैच्छत् ससाधनम्॥ ४
गन्तव्यं तत्र युष्माभिः सत्रान्ते मुनिसत्तमाः।
राजसूयेन यज्ञेन कृत्वा दिग्विजयं वयम्॥ ५
याजयिष्यामहे विप्राः पितरं धार्मिकं नृपम्।
आयान्तु तत्र विप्रेन्द्राः सशिष्याः सपरिच्छदाः॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उस समय धर्मात्मा जनार्दन, हंस और डिम्भकने उस यज्ञमण्डपमें प्रवेश करके उन मुनीश्वरोंको प्रणाम किया॥ १॥ शिष्यों-सहित उन महात्मा मुनियोंने अर्घ्य, पाद्य तथा आसन आदि देकर वहाँ पधारे हुए उन अतिथियोंका यत्नपूर्वक सत्कार किया॥ २॥ नरेश्वर! वे दोनों राजकुमार और वह विप्रवर जनार्दन तीनों महामनस्वी पुरुष वह सत्कार ग्रहण करके मन-ही-मन प्रसन्न होकर वहाँ सुखपूर्वक बैठे॥ ३॥ राजन्! तत्पश्चात् वाणीको संयममें रखनेवाले हंसने उन मुनियोंसे कहा—'मुनिश्रेष्ठगण! हम दोनोंके पिता साधनसहित राजसूय यज्ञ करनेकी इच्छा रखते हैं॥ ४॥ मुनिवरो! इस सत्रके अन्तमें आपलोगोंको मेरे पिताके उस यज्ञमें पधारना चाहिये। ब्राह्मणो! हमलोग दिग्विजय करके अपने पिता धर्मात्मा नरेशसे राजसूय यज्ञका अनुष्ठान करायेंगे। उसमें शिष्यों तथा अग्निहोत्र आदि सामग्रियोंसहित आप सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण अवश्य पधारें॥ ५-६॥

वयमद्यैव सहितौ दिशो जेष्यामहे वयम्।
शक्ता वयमिहैवैतत् कर्तुं सैनिकसंचयैः॥ ७

आवयोः पुरतः स्थातुं न शक्ता देवदानवाः।
कैलासनिलयाद् देवाद् वरं लब्धाः स्म यत्नतः॥ ८

अजय्यौ शत्रुसंघानामस्त्राणि विविधानि च।
इत्युक्त्वा विररामैव हंसो मदबलान्वितः॥ ९

मुनय ऊचुः

यदि स्यात् तत्र गच्छामो वयं शिष्यैर्नृपोत्तम।
आस्महे वान्यथा राजन्नित्यूचुः किल तापसाः॥ १०

वैशम्पायन उवाच

ततो देशान् महाराज गन्तुं निश्चितमानसौ।
पुष्करस्योत्तरं तीरं दुर्वासा यत्र तिष्ठति॥ ११

यतयो नियता भूत्वा मन्त्रब्रह्मनिषेविणः।
ब्रह्मसूत्रपदे सक्तास्तदर्थालोकतत्पराः॥ १२

निर्ममा निरहंकाराः कौपीनाच्छादनव्रताः।
तमात्मानं जगद्योनिं विष्णुं विश्वेश्वरं विभुम्॥ १३

ब्रह्मरूपं शुभं शान्तमक्षरं सर्वतोमुखम्।
वेदान्तमूर्तिमव्यक्तमनन्तं शाश्वतं शिवम्॥ १४

नित्ययुक्तं विरूपाक्षं भूताधारमनामयम्।
ध्यायन्तः सर्वदा देवं मनसा सर्वतोमुखम्॥ १५

दुर्वाससा सदोपास्यं वेदान्तैकरसं गुरुम्।
तर्कनिश्चिततत्त्वार्था ज्ञाननिर्मलचेतसः॥ १६

हंसाः परमहंसाश्च शिष्या दुर्वाससः प्रभो।
गत्वा तत्र महात्मानौ तौ दृष्ट्वा तूर्ध्वरेतसम्॥ १७

'हम दोनों भाई सदा एक साथ रहनेवाले हैं। हमारे साथ जनार्दनजी भी हैं। हम तीनों आज ही दिग्विजय प्रारम्भ कर देंगे। यों तो अपने सैनिकसमूहोंद्वारा हमलोग ही इस यज्ञका अनुष्ठान कर सकते हैं; क्योंकि हमारे सामने युद्धमें दानव और देवता भी नहीं ठहर सकते। हमने कैलासवासी महादेवजीसे यत्नपूर्वक वर प्राप्त किया है। हम शत्रुसमूहोंके लिये अजेय हैं और हमारे पास नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र हैं।' ऐसा कहकर बलके मदसे उन्मत्त हुआ हंस चुप हो गया॥ ७—९॥

मुनि बोले—नृपश्रेष्ठ! यदि आपका यज्ञ होगा तो हम शिष्योंसहित उसमें अवश्य चलेंगे। राजन्! अन्यथा (यदि वह यज्ञ नहीं हुआ तो) हम यहीं रहेंगे। ऐसा उन तपस्वी मुनियोंने उत्तर दिया॥ १०॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज! तदनन्तर उस स्थानसे जानेका निश्चय करके वे दोनों पुष्करके उत्तर तटपर गये, जहाँ दुर्वासामुनि रहते थे॥ ११॥ वहाँ यतिगण शौच-संतोष आदि नियमोंमें तत्पर रहकर मन्त्रमय ब्रह्म (प्रणव)-का जप एवं उसके अर्थका चिन्तन करते थे। ब्रह्मसूत्रके पदोंके स्वाध्यायमें संलग्न रहकर उनके अर्थ (ब्रह्म)-के साक्षात्कारके लिये यत्नशील रहते थे॥ १२॥ उनमें ममता और अहंकारका सर्वथा अभाव था। वे नियमपूर्वक कौपीन तथा आच्छादन वस्त्र धारण करते थे। जो सबके आत्मा, जगत्की उत्पत्तिके कारण, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण विश्वके नियन्ता, विभु, ब्रह्मस्वरूप, शुभ, शान्त, अक्षर (अविनाशी), सब ओर मुखवाले, वेदान्तस्वरूप, अव्यक्त, अनन्त, सनातन, कल्याणमय, नित्ययुक्त, विरूपाक्ष (रुद्ररूप), सम्पूर्ण भूतोंके आधार, अनामय, सर्वतोमुख, दुर्वासाजीके द्वारा सदा उपासनीय, वेदान्तैक-रस तथा गुरुस्वरूप हैं, उन परमात्मदेवका वे यतिगण अपने मनसे सदा ही चिन्तन करते थे। प्रभो! वे हंस और परमहंससंज्ञक संन्यासी मुनिवर दुर्वासाके शिष्य थे। उन्होंने तर्कयुक्त बुद्धिके द्वारा परमार्थका निश्चय कर लिया था और ज्ञानके आलोकसे उनका अन्तःकरण निर्मल हो गया था। उन दोनों महामनस्वी राजकुमारोंने वहाँ पहुँचकर ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) परम बुद्धिमान्

दुर्वाससं महाबुद्धिं विचिन्वानं परं पदम्।
क्रुद्धो यदि स दुर्वासा दग्धुं लोकानिमान् क्षमः ॥ १८

देवा अपि च यं द्रष्टुं क्रुद्धं वै न क्षमाः सदा।
रोषमूर्तिः सदा यस्तु रुद्रात्मा विश्वरूपधृक् ॥ १९

रक्तकौपीनवसनो हंसः परम एव च।
दृष्ट्वैनं च तयोरेवं बुद्धिरासीन्महामते ॥ २०

को नामासौ महाभूतः काषायी वर्णवित्तमः।
कश्चायमाश्रमो नाम विहाय च गृहाश्रमम् ॥ २१

गृहस्थ एव धर्मात्मा गृहस्थो धर्मवित्तमः।
गृहस्थो धर्मरूपस्तु गृहस्थो वर्ण एव च ॥ २२

गृहस्थश्च सदा माता प्राणिनां जीवनं सदा।
तं विनान्येन रूपेण वर्तते योऽतिमूर्खवत् ॥ २३

उन्मत्तोऽयं विरूपोऽयमथवा मूर्ख एव च।
ध्यायन्निव सदा चायमास्ते वञ्चयितापि वा ॥ २४

किमेते प्राकृतज्ञाना ध्यायन्त इति किंचन।
वयमेतान् दुरारोहानाश्रमान्तरकल्पकान् ॥ २५

स्थापयिष्यामहे सर्वान् मन्दबुद्धीनिमान् गृहे।
बलादेव द्विजानेतान् मूढविज्ञानतत्परान् ॥ २६

असद्ग्राहगृहीतांश्च बालिशान् दुर्मतीनिमान्।
एषां शास्ता च को मूढो न विप्रो वयमत्र ह ॥ २७

धर्म्ये वर्त्मनि संस्थाप्य पुनर्यास्याव निर्वृतौ।
इति संचिन्त्य तौ वीरौ विप्रेण सहितौ नृप ॥ २८

जनार्दनेन राजानौ मोहाद् भाग्यक्षयान्नृप।
समीपं तस्य राजेन्द्र यतेः संयतचेतसः ॥ २९

गत्वा च प्रोचतुरुभौ दुर्वाससमतीन्द्रियम्।
यतींश्च नियतान् क्रुद्धौ राजानौ राजसत्तम ॥ ३०

एवं परमपदके अनुसंधानमें लगे हुए दुर्वासामुनिका दर्शन किया। वे दुर्वासामुनि यदि कुपित हो जायँ तो इन सम्पूर्ण लोकोंको दग्ध करनेमें समर्थ हैं। कुपितावस्थामें देवता भी उनका दर्शन करनेका कभी साहस नहीं कर सकते। वे सदा रोषमूर्ति माने गये हैं। उन्हें विश्वरूपधारी रुद्रात्मा बताया गया है॥ १३—१९ ॥ वे गेरुए रंगका कौपीन वस्त्र धारण किये हुए थे और परमहंसस्वरूपमें स्थित थे। महामते! उनका दर्शन करके उन दोनों राजकुमारोंके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ— ॥ २० ॥ 'यह कौन महाभूत है, जो काषायवस्त्र पहने हुए है, वर्ण-विभागके विद्वानोंमें यह श्रेष्ठ जान पड़ता है (क्योंकि इसमें किसी भी वर्णके चिह्न नहीं हैं!) तथा गृहस्थाश्रमको छोड़कर यह आश्रम भी कौन-सा है?॥ २१ ॥ गृहस्थ ही धर्मात्मा होता है, गृहस्थ ही धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ है, गृहस्थ ही धर्मस्वरूप है तथा गृहस्थ ही चातुर्वर्ण्यमय है॥ २२ ॥ गृहस्थ सदा सभी प्राणियोंका माताके समान पालन करनेवाला और सर्वदा उनके जीवनकी रक्षा करनेवाला है। उस आश्रमको छोड़कर जो दूसरे रूपसे बर्ताव करता है, वह अत्यन्त मूर्खके समान है॥ २३ ॥ यह तो कोई पागल, विचित्र रूपधारी अथवा मूर्ख ही है। यह ध्यान करता हुआ-सा बैठा है; परंतु ठग ही जान पड़ता है॥ २४ ॥ ये प्राकृत ज्ञानवाले मनुष्य क्यों कुछ ध्यान-सा कर रहे हैं, इनके लिये उन्नतिके पथपर आरूढ़ होना सर्वथा कठिन है। ये दूसरे आश्रमोंकी कल्पना करनेवाले हैं। हम इन समस्त मन्दबुद्धि द्विजोंको, जो मूढ़ ज्ञानमें तत्पर हैं, बलपूर्वक गृहस्थाश्रमके भीतर स्थापित करेंगे॥ २५-२६ ॥ क्योंकि ये मूर्ख लोग दुराग्रहसे गृहीत हैं और इनकी बुद्धि खोटी है। इन सबको उपदेश देनेवाला यह कौन मूर्ख बैठा है? यह ब्राह्मण तो नहीं है! अब हमलोग यहाँ आ गये हैं तो पहले इनके इस गुरुको ही धर्मके मार्गपर स्थापित करके फिर संतोषपूर्वक यहाँसे घरको जायँगे।' नरेश्वर! ऐसा निश्चय करके ब्राह्मण जनार्दनके साथ वे दोनों वीर राजा मोह अथवा भाग्यक्षयके कारण उन संयतचित्त यतिके पास गये। राजेन्द्र! नृपशिरोमणे! वहाँ जाकर क्रोधमें भरे हुए उन दोनों राजाओंने इन्द्रियातीत दुर्वासा तथा नियमपरायण यतियोंसे इस प्रकार कहा॥ २७—३० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानविषयक एक सौ सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०७॥

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

हंस और डिम्भकद्वारा संन्यासकी निन्दा तथा जनार्दनद्वारा संन्यास-आश्रमका मण्डन

हंसडिम्भकावूचतुः

ज्ञानलेशाद् विहीनात्मन् किं ते व्यवसितं द्विज।
कश्चायमाश्रमो विप्र भवता यः समाश्रितः॥ १

गृहमेधं परित्यज्य किं त्वया साधितं पदम्।
दम्भ एव भवान् व्यक्तं शङ्के नास्त्यत्र कारणम्॥ २

लोकांश्चेमान् सदा मूढ नाशयिष्यसि निर्वृतः।
एतान् सर्वान् विनेतासि नरके पातयिष्यसि॥ ३

स्वयं नष्टः परान् मूर्ख नाशयिष्यसि यत्नतः।
अहो शास्ता कथं नास्ति तव मन्दमतेर्द्विज॥ ४

सर्वथा त्वद्विनेता च पापो नास्त्यत्र संशयः।
त्यक्त्वेममाश्रमं विप्र गृही भव यतात्मवान्॥ ५

पञ्च यज्ञान् सदा विप्र कुरु यत्नपरो भव।
ततः स्वर्गं परं गत्वा स्वर्गे हि सुमहत् सुखम्॥ ६

एष श्रेयःपथो विप्र जीविते चेत् स्पृहा तव।
इत्युक्तवन्तौ धर्मात्मा श्रुत्वा विप्रो जनार्दनः॥ ७

उवाच च यतिं दृष्ट्वा प्रणम्यासौ सुनीतवत्।
मा ब्रूतामीदृशं वाक्यं राजानौ मन्दतेजसौ॥ ८

अश्राव्यमीदृशं घोरं लोकयोरुभयोरपि।
को वक्तुमीशो मन्दात्मा यदि जीवेत् सबान्धवः॥ ९

सर्वथा काल एवायं युवयोर्मन्दचेतसोः।
समाप्त आयुषः शेषो ब्रह्मदण्डहतौ युवाम्॥ १०

हंस और डिम्भक बोले—ओ द्विज! यह तूने क्या करनेका निश्चय किया है? तेरा अन्तःकरण तो लेशमात्र ज्ञानसे भी शून्य जान पड़ता है। विप्र! तूने जिसका आश्रय लिया है, यह कौन-सा आश्रम है?॥ १॥ गृहस्थाश्रमको त्यागकर तूने किस अभिलषित वस्तुकी सिद्धि प्राप्त कर ली है; मुझे संदेह है कि 'तू स्पष्ट ही मूर्तिमान् दम्भ है', इसके सिवा इस त्यागमें दूसरा कोई कारण नहीं है॥ २॥ मूढ़! तू सदा इन सब लोगोंका नाश करेगा और इसीमें सुख मानेगा। इन सबका शिक्षक बना हुआ है, अतः अपने साथ इन्हें भी नरकमें गिरायेगा॥ ३॥ मूढ़ ब्राह्मण! तू स्वयं तो नष्ट हो ही गया है, दूसरोंका भी यत्नपूर्वक नाश करेगा। अहो! तुझ मन्दबुद्धि द्विजका कोई शासन क्यों नहीं करता है? जिसने तुझे ऐसी शिक्षा दी है, वह भी सर्वथा पापी है; इसमें संशय नहीं है। विप्र! इस आश्रमको छोड़कर गृहस्थ हो जा और मनको संयममें रख। ब्रह्मन्! पाँच महायज्ञोंका अनुष्ठान कर और इसीके लिये निरन्तर प्रयत्नशील बना रह। तदनन्तर उत्तम स्वर्गलोकमें जाकर सुखी हो जा; क्योंकि स्वर्गलोकमें महान् सुख प्राप्त होता है। बाबाजी! यही कल्याणका मार्ग है; यदि तुझे जीनेकी इच्छा हो तो यही कर। धर्मात्मा ब्राह्मण जनार्दनने उन दोनोंकी कही हुई ऐसी बात सुनकर यति दुर्वासाकी ओर देखा और अत्यन्त विनीतकी भाँति उनके चरणोंमें प्रणाम करके अपने मित्रोंसे कहा— 'राजाओ! तुम दोनोंकी बुद्धि और तेज दोनों मंद हो गये हैं। मित्रो! ऐसी बात मुँहसे न निकालो। ऐसा घोर अमङ्गलकारी वचन इहलोक और परलोकमें भी सुननेयोग्य नहीं है; कौन मन्दबुद्धि मानव यदि वह बन्धु-बान्धवोंसहित जीवित रहना चाहता हो तो ऐसी बात कह सकता है?॥ ४—९॥ ये महात्मा तुम दोनों मन्दबुद्धि राजाओंके लिये सर्वथा कालरूप ही हैं! जान पड़ता है तुम्हारी शेष आयु भी आज समाप्त हो गयी। तुम दोनों ब्रह्मदण्डद्वारा मारे गये'॥ १०॥

एते हि यतयः शुद्धा ज्ञानदीपितचेतसः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति॥ ११

ऋते वामीदृशं वाक्यं कः समर्थो ह्यनुब्रुवन्।
सर्वथा ज्ञातमस्माभिः समाप्तमिह जीवितम्॥ १२

चत्वार आश्रमाः पूर्वमृषिभिर्विहिता नृपौ।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः॥ १३

तेषामग्रश्चतुर्थोऽयमाश्रमो भिक्षुकः स्मृतः।
आस्ते तस्मिन् महाबुद्धिः स हि पुण्यतरः स्मृतः॥ १४

नोपासिता भवद्भ्यां च वृद्धाः सम्यग् विनीतवत्।
ज्ञानं नाप्तं तपस्विभ्यस्तथा चैवं वदेत कः॥ १५

अश्राव्यमीदृशं घोरं मया प्राणभृता नृप।
किं करिष्यामि मन्दात्मन् मित्रत्वाद् भवतो नृप॥ १६

ज्ञानं यदाप्तं भवता गुरुभ्य-
स्तदत्र दुःखाय हि केवलं नृप।
ज्ञानं हि धर्मप्रभवं यथेष्टं
बलाद्धि पापस्य विधातृरूपम्॥ १७

युवां विहाय यास्ये वा पतेयं वा शिलातलम्।
पिबेयं वा विषं घोरं पतेयं वा महोर्मिषु॥ १८

आत्मानं वात्र संत्यक्ष्ये पश्यतां शृण्वतां पुनः।
इत्युक्त्वा विललापैवं मा ब्रूतमिति तौ वदन्॥ १९

'ये सब-के-सब शुद्ध हृदयवाले यति (संन्यासी) हैं। इनका अन्तःकरण ज्ञानके तेजसे प्रकाशित है। इन्होंने ज्ञानाग्निके द्वारा अपनी सारी संचित कर्मराशि दग्ध कर डाली है और ये अब अपने प्राणोंका ही प्राणस्वरूप अग्नियोंमें होम करते हैं॥ ११॥ ऐसे महात्माओंके प्रति तुम दोनोंको छोड़कर दूसरा कौन मनुष्य बारम्बार ऐसी अनुचित बात कहनेमें समर्थ है? हमने सर्वथा समझ लिया, तुम दोनोंकी जीवनलीला यहीं समाप्त हो गयी॥ १२॥ नरेश्वरो! मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने पूर्वकालसे ही चार आश्रमोंका विधान किया है। उनके नाम इस प्रकार हैं—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक (संन्यासी)॥ १३॥ इनमें सबसे श्रेष्ठ यह चौथा आश्रम, जिसका नाम भिक्षु या संन्यास है, माना गया है। उस आश्रममें जिसकी महत्त्वपूर्ण बुद्धि है, वह महान् पुण्यात्मा बताया गया है॥ १४॥ तुम दोनोंने भलीभाँति विनीत पुरुषके समान कभी वृद्ध पुरुषोंकी उपासना या सेवा नहीं की है तथा तपस्वी मुनियोंसे ज्ञान नहीं प्राप्त किया है, यह बात स्पष्ट हो गयी; अन्यथा उस प्रकार सत्सङ्ग एवं ज्ञान प्राप्त करनेवाला कौन पुरुष ऐसी बात कह सकता है?॥ १५॥ राजा हंस! मैं प्राण रहते ऐसा घोर अनुचित शब्द नहीं सुन सकता; किंतु क्या करूँ? मन्दात्मन्! तू मेरा मित्र है, इसलिये कुछ करते नहीं बनता॥ १६॥ नरेश्वर! तूने गुरुजनोंसे जो ज्ञान प्राप्त किया था, वह तो यहाँ केवल दुःखका ही जनक हुआ। जो ज्ञान धर्माचरणसे प्राप्त होता है, वही यथेष्ट फलकी प्राप्ति करानेवाला है। बल अथवा हठसे प्राप्त किया हुआ ज्ञान तो पापका ही विधायक होता है॥ १७॥ मैं तुम दोनोंको छोड़कर चला जाऊँ या ऊँचेसे पत्थरपर कूद पड़ूँ अथवा घोर विष पी लूँ किंवा महासागरकी तरङ्गोंमें गिर जाऊँ॥ १८॥ अथवा तुम सबके देखते-सुनते आत्महत्या कर लूँ।' ऐसा कहकर जनार्दन उन दोनों राजाओंसे 'ऐसी बात न कहो, न कहो' यह कहता हुआ इस प्रकार विलाप करने लगा॥ १९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने अष्टाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस और डिम्भकका उपाख्यानविषयक एक सौ आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०८॥

नवाधिकशततमोऽध्यायः

दुर्वासाका रोष, हंसद्वारा उनका तिरस्कार, दुर्वासाद्वारा उन दोनोंके लिये शाप और जनार्दनके लिये वरदान

वैशम्पायन उवाच

ततः क्रुद्धोऽथ दुर्वासा धक्ष्यन्निव तयोरसून्।
एकेनाक्ष्णाथ दुर्वासा रौद्रेणाग्नियुजा सदा॥ १

पश्यंस्तौ च दुरात्मानौ रोषव्याकुलितेन्द्रियः।
कुर्वन्निव तदा लोकान् भस्मभूतानिमान् नृप॥ २

ब्राह्मणं चक्षुषा पश्यन् सौम्येनान्येन केवलम्।
उवाच वचनं राजन् ध्वंसत ध्वंसतेतरान्॥ ३

इतो गच्छत राजानौ किं विलम्बत मा चिरम्।
न वां वचनसम्भूतं रोषं धारयितुं क्षमे॥ ४

अन्यथा वो महीपालान् सर्वान् दग्धुमहं क्षमः।
किमतः साहसं वक्तुं कश्च शक्नोति मत्परः॥ ५

दर्पं वां लोकविख्यातः शङ्खचक्रगदाधरः।
व्यपनेष्यति मन्दज्ञौ किं वां वक्ष्यामि साम्प्रतम्॥ ६

तत उत्थाय धर्मात्मा गन्तुमैच्छद् यतीश्वरः।
ततो निषेद्धुं हंसस्तं यतते स्म यतीश्वरम्॥ ७

तस्य बाहुं समादाय हंसो नृपवरोत्तम।
कौपीनं चिच्छिदे क्रूरः कृतान्त इव सत्तम॥ ८

यतयोऽन्ये पलायन्ति दिशो दश विचेतसः।
कष्टं हेति वदन् विप्रो मित्रभावाज्जनार्दनः॥ ९

न्यवारयद् यथाशक्ति किमिदं साहसं त्विति।
दुर्वासाः सत्यधर्मस्तु हन्तुमीशोऽपि तं ततः॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए दुर्वासाने सदा रौद्र अग्निसे युक्त एक नेत्रद्वारा इस प्रकार उन राजकुमारोंकी ओर देखा, मानो उन दोनोंके प्राणोंको दग्ध कर डालेंगे॥ १॥ नरेश्वर! उनकी इन्द्रियाँ रोषसे व्याकुल हो रही थीं। वे उस समय उन दुरात्मा राजकुमारोंकी ओर इस तरह देख रहे थे मानो इन सम्पूर्ण लोकोंको जलाकर भस्म कर देंगे॥ २॥ साथ ही वे उस ब्राह्मण जनार्दनकी ओर दूसरे नेत्रसे, जो केवल सौम्यभावसे युक्त था, देख रहे थे। राजन्! इस तरह देखते हुए वे उन राजाओंसे बोले—'अरे! अपने स्वजनोंके पास भाग जाओ! भाग जाओ!!॥ ३॥ यहाँसे जाओ! क्यों विलम्ब करते हो! शीघ्र भाग जाओ! राजाओ! तुम दोनोंकी बातोंसे जो रोष प्रकट हुआ है, उसे मैं अपने भीतर रोक रखनेमें असमर्थ हूँ॥ ४॥ चले जाओ! नहीं तो मैं तुम सभी भूपालोंको जलाकर भस्म कर डालनेमें समर्थ हूँ। इससे बढ़कर दुःसाहसकी बात और क्या होगी? कौन मेरे सामने ऐसी बात कह सकता है?॥ ५॥ मन्दबुद्धि राजकुमारो! इस समय तुम दोनोंसे क्या कहूँ? तुम्हारे बढ़े हुए घमण्डको शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले लोकविख्यात भगवान् श्रीकृष्ण चूर्ण कर देंगे'॥ ६॥ यह कहकर धर्मात्मा यतिराज दुर्वासा वहाँसे उठकर अन्यत्र जानेकी इच्छा करने लगे। तब हंस उन यतीश्वरको रोकनेका प्रयत्न करने लगा॥ ७॥ राजाओंमें श्रेष्ठ जनमेजय! साधुशिरोमणे! कृतान्तके समान क्रूर हंसने दुर्वासाकी बाँह पकड़कर उनका कौपीन फाड़ डाला॥ ८॥ यह देख दूसरे यति होश-हवाश खोकर दसों दिशाओंमें भागने लगे। ब्राह्मण जनार्दन मित्रताके कारण 'हाय! बड़े कष्टकी बात है' ऐसा कहता हुआ विलाप करने लगा। उसने यथाशक्ति रोका और कहा—'यह क्या दुःसाहस कर रहे हो?' सत्यधर्मपरायण दुर्वासा उसे मार डालनेमें समर्थ होते हुए भी उस समय हंस और

मन्दं मन्दमुवाचेदं हंसं डिम्भकमेव च।
शापेनाहं समर्थोऽपि हन्तुं राजकुलाधमौ॥ ११
तथापि न करोम्यन्तं यतयो ह्यत्र ते वयम्।
यो हि देवो जगन्नाथः केशवो यादवेश्वरः॥ १२

शङ्खचक्रगदापाणिर्गर्वं वां व्यपनेष्यति।
लोके तस्मिन् यदुश्रेष्ठे रक्षत्येवं जगत्पतौ॥ १३

युवयोः सर्वथा जीवः सज्जीव इति मे मतिः।
जरासंधोऽपि वां बन्धुः स च वक्तुं न चेच्छति॥ १४

ईदृशं लोकविद्विष्टं स हि धर्मपथे सदा।
एतावता स वां बन्धुर्न हि भूयो भविष्यति॥ १५

विद्वेषो ह्यस्तु वां तस्य मागधस्य महीपतेः।
श्रुत्वेदं घोररूपं तु स हि बन्धुः सहेत चेत्॥ १६

धर्मनाशो भवेत् तस्य नात्र कार्या विचारणा।
इत्युक्त्वा गच्छ गच्छेति हंसं प्राह पुनः पुनः॥ १७
जनार्दनमुवाचेदं दुर्वासा यतिसत्तमः।
स्वस्त्यस्तु तव विप्रेन्द्र भक्तिरस्तु जनार्दने॥ १८

संसृतिस्तव तस्यास्तु शङ्खचक्रगदाभृतः।
अद्य श्वो वा परश्वो वा साधुरेव सदा भवान्॥ १९

न हि साधोर्विनाशोऽस्ति लोकयोरुभयोरपि।
गच्छ सर्वं पितुर्ब्रूहि ज्ञात्वा वृत्तं यथाखिलम्॥ २०

डिम्भकसे धीरे-धीरे इस प्रकार बोले— 'राजवंशके नीच पुरुषो! मैं शापद्वारा तुम दोनोंको मार डालनेमें समर्थ हूँ, तो भी तुम्हारा विनाश नहीं कर रहा हूँ; क्योंकि यहाँ हमलोग यतिधर्ममें प्रतिष्ठित हैं। जो सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, यदुकुलके नायक तथा हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वे ही तुम दोनोंके दर्पका दलन करेंगे। वे यदुश्रेष्ठ जगदीश्वर जब जगत्में इस प्रकार संरक्षण-कार्य कर रहे हैं, तब तुम दोनोंका पृथक्-पृथक् जीव सर्वथा श्रेष्ठ जीव है; ऐसा मेरा विश्वास है (क्योंकि उनके हाथसे मारे जानेपर तुम दोनों-की सद्गति होगी)। तुम दोनोंका सहायक बन्धु जरासंध भी कभी ऐसी लोकनिन्दित बात मुँहसे नहीं निकालना चाहता है। वह सदा धर्मके मार्गपर स्थित रहता है। तुम्हारे इस अपराधके कारण जरासंध अब फिर तुम्हारा बन्धु नहीं रह जायगा। उस मगधनरेशके साथ तुम्हारा विद्वेष हो जायगा। यदि तुम्हारे इस भयंकर अपराधको सुनकर भी वह बन्धुभावसे चुपचाप सह लेगा तो उसके भी धर्मका नाश हो जायगा। इसमें अन्यथा विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।' ऐसा कहकर दुर्वासाने पुनः हंससे बारम्बार कहा—'चले जाओ! चले जाओ!!' तदनन्तर यतिश्रेष्ठ दुर्वासा जनार्दनसे इस प्रकार बोले—'विप्रवर! तुम्हारा कल्याण हो! भगवान् जनार्दनमें तुम्हारी भक्ति बनी रहे। शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले उन भगवान्के साथ आज, कल या परसोंतक तुम्हारा समागम होगा। तुम सदा साधुस्वभावके ही बने रहोगे॥ ९—१९॥ साधु पुरुषका दोनों लोकोंमें कभी विनाश नहीं होता। जाओ, सारी बातें जानकर अपने पिताको बताओ'॥ २०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने दुर्वासोभाषणे नवाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसंगमें दुर्वासाका भाषणविषयक एक सौ नौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०९॥

दशाधिकशततमोऽध्यायः

दुर्वासा आदि मुनियोंका द्वारकागमन

वैशम्पायन उवाच

ततस्तौ हंसडिम्भकौ क्रुद्धौ कालेन चोदितौ।
शिक्यं कमण्डलुं चैव द्विदलं दारुमेव च॥ १

दण्डान् पात्रविशेषांश्च छित्त्वा भित्त्वा च सर्वशः।
तस्मिन् देशे महाराज व्याधैर्मांसान्यदीदहन्॥ २

भक्षयित्वा ततो देशात् स्वपुरीं तौ प्रजग्मतुः।
जनार्दनश्च धर्मात्मा स्नेहादनुययौ तयोः॥ ३

नष्टाविमाविति तदा स मेने दुःखितः परम्।
गतेषु तेषु सर्वेषु दुर्वासा यतिसत्तमः॥ ४

पलायनपरान् सर्वानिदं प्राह यतीश्वरान्।
इतो देशाद् विनिर्गत्य पुष्करात् पुण्यसंयुतात्॥ ५

मन्दं मन्दं समाश्वस्य विश्रम्य च ततस्ततः।
प्रविश्य द्वारकां देवं शङ्खचक्रगदाधरम्॥ ६

दृष्ट्वा च तस्मै प्रभवे वक्ष्यामो यतिसत्तमाः।
स हि रक्षञ्जगदिदं धर्मवर्त्मनि संस्थितः॥ ७

आद्यो लोकगुरुर्विष्णुर्यतात्मा तत्त्ववित्प्रियः।
उद्धृत्य कण्टकान् सर्वाञ्छशास पृथिवीमिमाम्॥ ८

स च पापान् महाघोरान् सर्वान् पापकृतान् प्रभुः।
रक्षेन्नः सकलान् सर्वाञ्ज्ञानेषु नियतात्मनः॥ ९

इदमद्य क्षमं विप्रा यानमद्य विधीयताम्।
साहसं यत्कृतं ताभ्यां पात्रभेदादि सत्तमाः॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज जनमेजय! तदनन्तर कालसे प्रेरित हो क्रोधमें भरे हुए हंस और डिम्भकने उन यतियोंके छींके, कमण्डलु, दो दलोंसे युक्त काष्ठमय भोजनपात्र, दण्ड और दूसरे-दूसरे विभिन्न पात्रोंको तोड़-फोड़कर उसी स्थानमें व्याधोंद्वारा मांस पकवाये॥ १-२॥ उन्हें खाकर वे दोनों उस स्थानसे अपने नगरको गये। धर्मात्मा जनार्दन भी स्नेहवश उन दोनोंका अनुसरण करता रहा॥ ३॥ उसने अत्यन्त दुःखित होकर यह विश्वास कर लिया कि अब इन दोनोंके नष्ट होनेमें कोई संदेह नहीं है। उन सबके चले जानेपर यतियोंमें श्रेष्ठ दुर्वासाने यहाँसे पलायन करनेवाले समस्त यतीश्वरोंसे इस प्रकार कहा— 'यतिश्वरो! इस पुण्ययुक्त देश पुष्करसे निकलकर धीरे-धीरे सुस्ताते और यत्र-तत्र विश्राम करते हुए द्वारकापुरीमें प्रवेश करके हमलोग शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णसे मिलेंगे और उनसे अपनी सारी कष्ट-कथा कहेंगे। वे इस सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करते हुए धर्मके मार्गपर स्थित हैं। वे ही आदिपुरुष, लोकगुरु, सर्वव्यापी, मनको वशमें रखनेवाले और तत्त्ववेत्ताओंके प्रिय हैं। उन्होंने सारे कण्टकोंका उन्मूलन करके इस पृथ्वीका शासन किया है॥ ४—८॥ वे ही प्रभु समस्त महाभयंकर, पापजन्मा पापियोंका उच्छेद करके अमानित्व और अदम्भित्व आदि ज्ञानसाधनोंमें नियतरूपसे मन लगानेवाले हम सम्पूर्ण यतियोंकी रक्षा करेंगे॥ ९॥ ब्राह्मणो! इस समय यही हमारे योग्य है; अतः अब द्वारकाकी यात्रा करो। साधुशिरोमणियो! हंस और डिम्भकने जो हमारे पात्रोंके तोड़ने-फोड़ने आदिका दुःसाहस किया है,

एतत् सर्वमशेषेण दर्शयाम जनार्दनम्।
तथेति ते प्रतिज्ञाय यतयो ज्ञानचक्षुषः॥ ११

छिन्नं ताभ्यां समादाय शिक्यं दारुमयं तथा।
द्विदलं कर्पटं चैव कौपीनमथ वल्कलम्॥ १२

कमण्डलुं तथा राजन्नर्धप्रोतकपालकम्।
एतानन्यान् समादाय द्रष्टुं केशवमाययुः॥ १३

पञ्च चैव सहस्राणि पुरस्कृत्य महामुनिम्।
दुर्वाससं तपोयोनिमीश्वरस्यात्मसम्भवम्॥ १४

अहोरात्रेण ते सर्वे द्वारकां कृष्णपालिताम्।
ययुर्दान्ता महात्मानो लोमशाः केशवर्जिताः॥ १५

प्रातः प्रविश्य राजेन्द्र वापिकायां यतीश्वराः।
स्नात्वोपस्पृश्य ते सर्वे यत्नेन महता तदा॥ १६

द्रष्टुमभ्युद्यता विष्णुं कण्टकोद्धृतितत्परम्।
एकरूपं समास्थाय सुधर्मायामवस्थितम्॥ १७

ये सारी वस्तुएँ हमलोग भगवान् जनार्दनको दिखायें'। तब 'बहुत अच्छा' कहकर वे सब ज्ञानदर्शी संन्यासी हंस और डिम्भकद्वारा छिन्न-भिन्न किये गये छींके, लकड़ीके बने हुए द्विदल (दो दलोंसे युक्त भोजन-पात्र, जो गौके कानकी-सी आकृतिका बना होता है), गेरुए वस्त्र, कौपीन, वल्कल तथा कमण्डलुका आधा टुकड़ा (जो पूरे कमण्डलुको बीचसे चीर डालनेके कारण दो खण्डोंमें विभक्त हो गया था)— इन सबको तथा अन्य सब तोड़ी-फोड़ी गयी वस्तुओंको साथ लेकर भगवान् श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये आये॥ १०—१३॥ उनकी संख्या पाँच हजार थी, वे जितेन्द्रिय महात्मा सिरके केश मुड़ाये रहते थे और उनके शेष शरीर रोमावलियोंसे युक्त थे। वे यतिगण भगवान् शङ्करके अंशसे उत्पन्न हुए तपोयोनि महामुनि दुर्वासाको आगे करके दिन-रात चलते हुए श्रीकृष्णपालित द्वारकापुरीमें जा पहुँचे॥ १४-१५॥ राजेन्द्र! प्रातःकाल पुरीमें प्रवेश करके वे यतीश्वरगण वहाँकी एक बावड़ीमें स्नान और आचमन करके बड़े प्रयत्नसे उन भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये उद्यत हुए, जो एकरूप धारण करके सुधर्मा-सभामें विराजमान हो जगत्के कण्टकोंको उखाड़ फेंकनेके प्रयत्नमें लगे हुए थे॥ १६-१७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने यतीनां द्वारकागमने दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसंगमें यतियोंका द्वारकागमनविषयक एक सौ दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११०॥

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णकी गोलक्रीडा, सुधर्मा-सभामें दुर्वासा आदि मुनियोंका आगमन तथा यादवों और श्रीकृष्णद्वारा उनका सत्कार, श्रीकृष्णका उनसे वहाँ आनेका कारण पूछना, दुर्वासाका भगवान्‌की स्तुति एवं उपालम्भपूर्वक उनके प्रश्नका प्रतिवाद करके अपनी दुर्दशाका वृत्तान्त सुनाना

वैशम्पायन उवाच

अथ सर्वेश्वरो विष्णुः पद्मकिंजल्कलोचनः।
श्यामः पीताम्बरः श्रीमान् प्रलम्बाम्बरभूषणः॥ १

किरीटी श्रीपतिः कृष्णो नीलकुञ्चितमूर्धजः।
अव्यक्तःशाश्वतो देवःसकलो निष्कलःशिवः॥ २

क्रीडाविहारोपगतः कदाचिदभवद्धरिः।
कुमारैरपरैः सार्धं सात्यकिप्रमुखैर्नृप॥ ३

वैशम्पायनजी कहते हैं—नरेश्वर! जो सबके ईश्वर और सर्वव्यापी हैं, जिनके नेत्र कमलदलके समान सुन्दर हैं, जो श्यामसुन्दर, पीताम्बरधारी, श्रीसम्पन्न, लटकते हुए लम्बे वस्त्रों और आभूषणोंसे विभूषित, मुकुटमण्डित और लक्ष्मीके अधिपति हैं, जिनके मस्तकपर काले-काले घुँघराले केश शोभा पाते हैं, जो अव्यक्त, सनातनदेव, सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त, कलातीत एवं कल्याणमय हैं, वे भगवान् श्रीकृष्ण किसी समय सात्यकि आदि अन्य कुमारोंके साथ क्रीडा-विहारमें लगे हुए थे॥ १—३॥

गोलक्रीडां सुधर्मायां मध्ये यादवसत्तमः।
चकार प्रियकृत् कृष्णो युयुधानेन केशवः॥ ४

ममायं प्रथमो गोलस्तव पश्चाद् भविष्यति।
इति ब्रुवंस्तदा विष्णुः सात्यकिं कमलेक्षणः॥ ५

पार्श्वस्था यादवास्तस्य वसुदेवपुरोगमाः।
उद्धवप्रमुखा राजन्नासेदुः क्वचिदत्र वै॥ ६

अन्यव्यापाररहितो भूतात्मा भूतभावनः।
विजहार यथा रामः सुग्रीवेण पुरा नृप॥ ७

मध्यंदिने महाविष्णुः शैनेयेन सहाच्युतः।
विक्रीड्य सुचिरं कृष्ण उपारंसीत् स यादवः॥ ८

द्वाःस्थेन वारिताः पूर्वं द्वार्येव च समास्थिताः।
इदमन्तरमित्येव विविशुस्तां सभां नृप॥ ९

यतयो दीर्घतपसः पुरस्कृत्य तपोधनम्।
दुर्वाससं सुमनसो ददृशुर्यादवेश्वरम्॥ १०

गोलक्रीडासमासक्तं करसंस्थितगोलकम्।
पद्मपत्रविशालाक्षं विष्णुं तं सात्यकिं हरिम्॥ ११

एकेनाक्ष्णा ह्लादयन्तं परेणान्येन गोलकम्।
यतयश्च महाराज प्रत्यदृश्यन्त तत्पुरः॥ १२

वृष्णिपः पुण्डरीकाक्षः सात्यकिर्बलभद्रकः।
वसुदेवस्तथाक्रूर उग्रसेनस्तथा नृप॥ १३

अन्ये च यादवाः सर्वे सम्भ्रमं प्रतिपेदिरे।
इदं किमिदमित्येवं व्याशङ्कमनसोऽभवन्॥ १४

पृष्ठतोऽप्यनुगच्छन्ति दिधक्षन्तं जगत्त्रयम्।
अर्धकौपीनवसनं स्मरन्तं कमपि द्विजम्॥ १५

अन्तस्तापसमायुक्तं छिन्नदण्डधरं यतिम्।
अन्तर्ज्वलन्तं रोषेण हंसासादितकल्मषम्॥ १६

नेत्रोत्थितमहावह्निं प्रेक्षन्तं यादवेश्वरम्।
दुर्वाससं ते ददृशुर्भीता यादवसत्तमाः॥ १७

सुधर्मा-सभाके मध्यभागमें विराजमान हो सबका प्रिय करनेवाले यादवशिरोमणि केशव कृष्ण सात्यकिके साथ गोलक्रीडा कर रहे थे॥ ४॥ उस समय कमलनयन श्रीकृष्ण सात्यकिसे यह कह रहे थे कि 'यह पहला गोल मेरा है, तुम्हारा पीछे होगा'॥ ५॥ राजन्! उनके पार्श्वभागमें वसुदेव तथा उद्धव आदि प्रमुख यादव यथोचित स्थानपर बैठे थे॥ ६॥ नरेश्वर! जैसे पूर्वकालमें भगवान् श्रीराम अपने सखा सुग्रीवके साथ क्रीडा-विहार करते थे, उसी प्रकार जब दूसरा व्यापार (कार्य) नहीं रहता, तब भूतात्मा भूत-भावन भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने सुहृदोंके साथ मनोरञ्जन करते थे॥ ७॥ उस दिन दोपहरके समय महाविष्णुस्वरूप अच्युत श्रीकृष्ण सात्यकिके साथ देरतक गोलक्रीडा करके यादवोंसहित उससे विरत हो गये॥ ८॥ राजन्! जिन्हें द्वारपालने पहले भीतर आनेसे रोक दिया था और द्वारपर ही आदरपूर्वक बिठा रखा था, वे मुनि 'यह भीतर प्रवेश करनेका अवसर है' ऐसा जानकर उस समय उस सभामें प्रविष्ट हुए॥ ९॥ दीर्घकालसे तपस्या करनेवाले उन शुद्धचेता यतियोंने तपोधन दुर्वासाको आगे करके यादवेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन किया, जो पहले गोलक्रीडामें आसक्त थे और उस समय भी जिनके हाथमें गोल मौजूद था। वे प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल नेत्रवाले श्रीविष्णु हरि एक नेत्रसे सात्यकिको आनन्द प्रदान करते थे और दूसरेसे उस गोलकी ओर देख रहे थे। महाराज! इसी समय वे यति उनके सामने दिखायी दिये॥ १०—१२॥ वृष्णि-पालक कमलनयन श्रीकृष्ण सात्यकि, बलभद्र, वसुदेव, अक्रूर, उग्रसेन तथा अन्य सब यादव उन यतियोंको देखकर बड़ी घबराहटमें पड़ गये और शङ्कितचित्त होकर एक-दूसरेसे पूछने लगे—'यह क्या है? कैसी बात है?'॥ १३-१४॥ वे यादव उन अद्भुत प्रभावशाली ब्राह्मण दुर्वासाके पीछे-पीछे चलने लगे, जो मानो तीनों लोकोंको जलाकर भस्म कर देना चाहते थे। उनके कौपीनका आधा ही वस्त्र शेष था। वे बार-बार किसीको याद करते थे, उनके मनमें बड़ा संताप था। उन्होंने टूटा हुआ दण्ड धारण कर रखा था। राजा हंसने उन्हें बहुत कष्ट पहुँचाया था, अतः वे भीतर-ही-भीतर रोषसे जल रहे थे। उनके नेत्रसे महाभयंकर अग्नि प्रकट हो रही थी। वे यादवेश्वर श्रीकृष्णकी ओर देख रहे थे। इस अवस्थामें संन्यासी दुर्वासाको उन यादवशिरोमणियोंने भयभीत होकर देखा॥ १५—१७॥

किं करिष्यत्यसौ क्रुद्धः किं वा वक्ष्यति नः प्रभुः।
इति प्राञ्जलयः सर्वे यादवाः प्रतिपेदिरे॥ १८

इदमासनमित्येवं किंचिदूचुश्च वृष्णयः।
ततः कृष्णो हृषीकेशः किंचिदुत्प्लुत्य तत्पुरः॥ १९

इदमासनमित्येवं स्थीयतामिह निर्वृतः।
अहमद्य स्थितो विप्र किंकरोऽस्मीति चाब्रवीत्॥ २०

ततः किंचिदिवासीन आसने यतिविग्रहः।
आसने संस्थिते तस्मिन् यतयो वीतमत्सराः॥ २१

आसनानि यथायोगं भेजिरे निर्वृताः किल।
अर्घ्यादिसमुदाचारं चक्रे कृष्णः किरीटभृत्॥ २२

आह भूयो हृषीकेशो यतिं दुर्वाससं प्रभुम्।
किमर्थं ब्रूहि विप्रेन्द्र अस्मिन् प्रत्यागमो हि वः॥ २३

दृष्टं वा ह्यथवा किंचित् कारणं चास्ति वो महत्।
संन्यासिनो द्विजश्रेष्ठा यूयं विगतकल्मषाः॥ २४

निःस्पृहाश्च सदा यूयमस्मत्तो द्विजपुङ्गवाः।
प्रार्थ्यं नाम न चैवास्ति स्पृहा नैवास्ति वो यतः॥ २५

स्पृहाप्रेरितकर्माणः क्षत्रियान् यान्ति सुव्रताः।
निरूप्यमाणमस्माभिर्विप्र किंचिन्न दृश्यते॥ २६

न जाने कारणं ब्रह्मन् युष्मदागमनं प्रति।
एतावता चानुमेयं किंचित्कारणमस्ति वै॥ २७

तद् ब्रूहि यदि विद्येत त्वत्तो ज्ञास्यामहे वयम्।
इत्युक्तवति देवेशे चक्रपाणौ जनार्दने॥ २८

तस्यापि राजन् विप्रस्य भूयः कोपो महानभूत्।
तस्मादभ्यधिकः पूर्वात् कोपः संजायते महान्॥ २९

दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीन् भक्षयन्निव पश्यतः।
रोषरक्तेक्षणः क्रुद्धो हसन्निव दहन्निव॥ ३०

वे मन-ही-मन सोचने लगे—'पता नहीं, यह कुपित होकर क्या करेंगे? और हमारे स्वामी श्रीकृष्ण इनसे क्या कहेंगे।' ऐसा विचार करते हुए वे समस्त यादव और वृष्णिवंशी हाथ जोड़कर उनकी सेवामें उपस्थित हुए और कुछ मन्द स्वरमें बोले—'भगवन्! आपके लिये यह आसन है।' इसी समय इन्द्रियोंके नियन्ता भगवान् श्रीकृष्ण कुछ उछलकर दुर्वासाके आगे चले आये और बोले—'विप्रवर! यह आसन है, इसपर सुखपूर्वक बैठिये। आज मैं आपकी सेवामें खड़ा हूँ, मैं आपका किङ्कर हूँ'॥ १८—२०॥ तब वे संन्यासीरूपधारी दुर्वासा उस आसनपर कुछ बैठ-से गये। उनके आसन ग्रहण कर लेनेपर अन्य मात्सर्यरहित संन्यासियोंने भी संतोषपूर्वक यथायोग्य आसन स्वीकार किये। किरीटधारी श्रीकृष्णने अर्घ्य आदिके क्रमसे उनका उत्तम आतिथ्य-सत्कार किया, फिर वे भगवान् हृषीकेश उन प्रभावशाली यति दुर्वासासे इस प्रकार बोले— 'विप्रवर! बताइये, इस नगरमें आपलोगोंका शुभागमन किसलिये हुआ है? अथवा आपलोगोंको यहाँ आनेमें कोई महान् कारण दिखायी दिया है? आपलोग द्विजोंमें श्रेष्ठ एवं निष्पाप संन्यासी हैं; विप्रवरो! आपलोग हम-जैसे गृहस्थोंसे सदा निःस्पृह रहते हैं। आपके लिये कोई प्रार्थनीय वस्तु ही नहीं है; क्योंकि आपलोगोंके हृदयमें किसी वस्तुकी कामना ही नहीं होती है। जो लोग किसी स्पृहासे प्रेरित होकर कर्म करनेवाले हैं वे उत्तम व्रतधारी ब्राह्मण अपनी अभीष्ट वस्तु माँगनेके लिये क्षत्रियोंके पास जाते हैं। किंतु विप्रवर! हमारे बहुत सोचने-विचारनेपर भी कोई ऐसी बात दिखायी नहीं देती, जिसके लिये आपलोगोंका यहाँतक आना सम्भव हो। ब्रह्मन्! फिर आपके आगमनका क्या कारण है, यह मेरी समझमें नहीं आता। आप यहाँतक पधारे हैं, इतनेसे ही यह अनुमान होता है कि आपके शुभागमनका कोई-न-कोई कारण अवश्य है। यदि है तो आप उसे बताइये। हम आपसे ही उसका ज्ञान प्राप्त करेंगे। राजन्! देवेश्वर चक्रपाणि जनार्दनके ऐसा कहनेपर उन ब्राह्मण दुर्वासाका महान् कोप और भी बढ़ गया। पहलेका जो क्रोध था, उससे अधिक और महान् कोप प्रकट होने लगा, मानो वे तीनों लोकोंको जला देना और अपनी ओर देखनेवाले लोगोंको खा जाना चाहते हों। क्रोधसे मूर्च्छित हुए दुर्वासा रोषसे लाल आँखें करके क्रोधपूर्वक हँसते और जलाते हुए-से

उवाच वचनं विष्णुं दुर्वासा क्रोधमूर्च्छितः।
न जाने इति कस्मात् त्वं ब्रूषे नो यादवेश्वर॥ ३१

जानामि त्वां महादेवं वञ्चयन्निव भाषसे।
पुरातना वयं विष्णो पूर्ववृत्तान्तवेदिनः॥ ३२

यथा हि देवदेवोऽसि मायामानुषदेहवान्।
निगूहसे प्रभुरतः कस्मान्नो जगतीपते॥ ३३

सोऽसि ब्रह्मविदां मूर्तिस्तवैतत् परमं पदम्।
यदभ्यर्च्य पुरा ब्रह्मा यच्च ज्ञाना वयं पुरा॥ ३४

यतो विश्वमिदं भूतं तदेतत् परमं पदम्।
यच्च स्थूलं विजानन्ति पुरा तत्त्वेन चेतसा॥ ३५

पुराविदोऽथ विश्वेश यदेतत् परमं वपुः।
कर्मणा प्राप्यते यत् तु यत् स्मृत्वा निर्वृता वयम्॥ ३६

प्रत्यक्षमपि यद्रूपं नैव जानन्ति मानुषाः।
न हि मूढधियो देव न वयं तादृशा हरे॥ ३७

न जाने इति यद् ब्रूषे किमतः साहसं वचः।
ये हि मूलं विजानन्ति तेषां तु प्रविवेचनम्॥ ३८

कुर्वतः किं फलं देव तव केशिनिषूदन।
वेदान्ते प्रथितं तेजस्तव चेदं विचार्यते॥ ३९

ये च विज्ञानतृप्तास्तु योगिनो वीतकल्मषाः।
पश्यन्ति हृत्सरोजेऽपि तदेवेदं वपुः प्रभो॥ ४०

वेदैर्यद् गीयते तेजो ब्रह्मेति प्रतिपाद्य वै।
तदेवेदं विजानेऽहं रूपमैश्वरमेव च॥ ४१

उस समय श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले—'यादवेश्वर! आप हमसे ऐसी बात क्यों कहते हैं कि आपके आगमनका कारण मेरी समझमें नहीं आता' मैं आपको जानता हूँ। आप महान् देव विष्णु हैं; फिर भी हमें ठगते हुए-से बात करते हैं। विष्णो! हम बहुत पुराने हैं और पूर्वकालके वृत्तान्तोंको जानते हैं, जिसके अनुसार हम कहते हैं कि आप देवताओंके भी देवता हैं और आपने मायासे मानवशरीर धारण किया है। जगदीश्वर! अतः आप हमारे स्वामी होकर हमसे अपने-आपको क्यों छिपा रहे हैं?॥ २१—३३॥ आप ही ब्रह्मवेत्ताओंके आत्मा हैं। यह परमपद आपका ही स्वरूप है, पूर्वकालमें जिसकी आराधना करके ब्रह्माजी ज्ञानवान् हुए और हम भी जिसकी उपासना करके ज्ञानी हुए हैं॥ ३४॥ जिससे यह सम्पूर्ण जगत् प्रकट हुआ है, वही आपका यह परम-पद है। विश्वेश्वर! जिसे पूर्वकालमें पुराणवेत्ता पुरुष तत्त्वनिष्ठ चित्तसे स्थूल (विराट्)-रूपसे जानते थे, यह भी आपका ही सर्वोत्कृष्ट स्वरूप है। जो भगवदर्थ कर्म (भगवान्‌के समर्पणपूर्वक किये गये यज्ञ आदिके अनुष्ठान अथवा भजन-साधन)-से प्राप्त होता है, जिसका स्मरण करके हम वीतराग संन्यासी भी परमानन्दमें निमग्न हो जाते हैं तथा प्रेमी भक्तोंको जिसका प्रत्यक्ष दर्शन होता है, आपके उस सगुण-साकार (सच्चिदानन्दघन) विग्रहको मूढ-बुद्धि मनुष्य नहीं जानते हैं। देव! हरे! हम वैसे (अज्ञानी) नहीं हैं (हम आपको जानते और पहचानते हैं)! अतः आप हमारे सामने जो यह कहते हैं कि 'हम आपके आनेका कारण नहीं जानते हैं,' इससे अधिक साहसपूर्ण बात और क्या हो सकती है? देव! केशिनिषूदन! जो जड-मूलकी बातें जानते हैं, उनके सामने इस प्रकार ऊपर-ऊपरकी बातोंका विवेचन करनेसे आपको क्या लाभ होगा? वेदान्त-शास्त्र (उपनिषद् आदि)-में भी आपके इसी विख्यात तेजोमय स्वरूपका ब्रह्म आदि नामोंसे विचार किया जाता है। प्रभो! जो विज्ञानसे तृप्त निष्पाप योगी जन हैं, वे भी अपने हृदयकमलमें आपके इसी स्वरूपका दर्शन करते हैं॥ ३५—४०॥ वेदोंद्वारा ब्रह्म कहकर जिस तेजोमय परमतत्त्वका गान किया जाता है, आपका यह ऐश्वर्यशाली रूप वही है (उस परब्रह्मसे अभिन्न ही है), ऐसा मैं जानता हूँ'॥ ४१॥

वैष्णवं परमं तेज इति वेदेषु पठ्यते।
अवगच्छाम्यहं विष्णो तदेवेदं वपुस्तव॥ ४२

य ओमित्युच्यते शब्दो यस्य वागिति गीयते।
स एवासि प्रभो विष्णो न जाने इति मा वद॥ ४३

परोक्षं यदि किंचित् स्यात् तव वक्तुं प्रयुज्यते।
न जाने इति गोविन्द मा वादीः साहसं हरे॥ ४४

विश्वं यतः प्रादुरासीद् यस्मिँल्लीनं क्षये सति।
इदं तदैश्वरं तेजस्त्ववगच्छामि केशव॥ ४५

कर्ता त्वं भूतभव्येश प्रतिभासि सदा हृदि।
यद् यद् रूपं स्मरे नित्यं तत् तदेवासि मे हृदि॥ ४६

वायुरेव यदा विष्णुरिति मे धीयते मतिः।
तदा तद्रूप एवासि हृन्मध्ये संस्थितो विभो॥ ४७

आकाशो विष्णुरित्येव कदाचिद्धीयते मतिः।
तदा तद्रूप एवासि हृन्मध्ये संस्थितो विभो॥ ४८

पृथिवी विष्णुरित्येतत् कदाचिद्धीयते मतिः।
तदा पार्थिवरूपस्त्वं प्रतिभासि सदा मम॥ ४९

रसोऽयं देव इत्येव कदाचिच्चिन्त्यते मया।
तदा रसात्मना विष्णो हृन्मध्ये संस्थितो विभो॥ ५०

यदा त्वां तेज इत्येवं स्मर्ता स्यां पुरुषोत्तम।
तदा तद्रूपसम्पन्नः प्रतिभासि सदा हृदि॥ ५१

चन्द्रमा हरिरित्येवं तदा चान्द्रमसं वपुः।
निरीक्ष्य चक्षुषा देव ततः प्रीतोऽस्मि केशव॥ ५२

यदा सौरं वपुरिति स्मर्ता स्यां जगतीपते।
तदा तद्भावनायोगात् सूर्य एव विराजसे॥ ५३

तस्मात् सर्वं त्वमेवासि निश्चिता मतिरीदृशी।
अतो न जानेऽहमिति वक्तुं नेशो जनार्दन॥ ५४

'विष्णो! वेदोंमें '**तद्विष्णोः परमं पदम्**' इत्यादिरूपसे विष्णुके जिस परम तेजोमय तत्त्वका प्रतिपादन किया जाता है, वही आपका यह स्वरूप है—यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ॥ ४२॥ प्रभो! विष्णो! जिस ॐ शब्दका उच्चारण होता है, वह जिनकी वाणीके रूपमें गाया जाता है, वे ही परमात्मा आप हैं; अतः आप यह न कहिये कि 'मैं आपके आनेका कारण नहीं जानता'॥ ४३॥ गोविन्द! हरे! यदि आपके लिये कोई भी वस्तु परोक्ष होती तो आपका ऐसा कहना उचित हो सकता था; अतः 'मैं नहीं जानता' यह साहसपूर्ण वचन आप मत कहिये॥ ४४॥ केशव! पूर्वकालमें यह विश्व जिससे प्रकट हुआ था और संहारकालमें यह फिर जिसमें लीन हो जायगा, वही आपका यह ईश्वरीय तेजोमय विग्रह है, ऐसा मैं जानता हूँ॥ ४५॥ भूत, वर्तमान और भविष्यके स्वामी हरे! आप ही सबके कर्ता हैं और सदा मेरे हृदयमें प्रकाशित होते रहते हैं। मैं जिस-जिस रूपका स्मरण करता हूँ, आप सदा उसी-उसी रूपसे मेरे हृदयमें विद्यमान हैं॥ ४६॥ विभो! जब मेरी बुद्धि ऐसा निश्चय करती है कि वायु ही विष्णु हैं, तब आप वायुरूपसे ही मेरे हृदयमें विराजमान होते हैं॥ ४७॥ प्रभो! जब मेरी बुद्धि कभी इस निश्चयपर पहुँचती है कि आकाश ही विष्णु है, तब आप उसी रूपमें मेरेमें प्रतिष्ठित होते हैं॥ ४८॥ जब कभी मेरी बुद्धिका यह निश्चय होता है कि 'पृथिवी ही विष्णु है', तब आप सदा मुझे पार्थिवरूप ही प्रतीत होते हैं॥ ४९॥ प्रभो! विष्णो! जब कभी मैं यह सोचता हूँ कि 'यह रस ही नारायणदेव है', तब आप रसरूपसे मेरे हृदयमें प्रतिष्ठित होते हैं॥ ५०॥ पुरुषोत्तम! जब मैं आपका तेजोरूपसे स्मरण करता हूँ, तब आप सदा उसी रूपसे सम्पन्न होकर मेरे हृदयमें प्रकाशित होते हैं॥ ५१॥ देव! केशव! जब मैंने ऐसा निश्चय किया कि 'चन्द्रमा ही श्रीहरि हैं,' तब मैं चन्द्रमाके रूपमें ही आपके स्वरूपका नेत्रोंद्वारा दर्शन करके प्रसन्न होता हूँ॥ ५२॥ पृथ्वीनाथ! जब मैं ऐसा चिन्तन करता हूँ कि 'यह सूर्यमण्डल ही आपका स्वरूप है,' तब आप मेरी उस भावनाके योगसे सूर्यरूप होकर ही विराजमान होते हैं॥ ५३॥ अतः सब कुछ आप ही हैं, यह मेरी बुद्धिका निश्चय है; इसलिये जनार्दन! आप यह नहीं कह सकते कि 'मैं आपलोगोंके आनेका कारण नहीं जानता'॥ ५४॥

इत्यर्थे संस्थितो विष्णो पीडां नो नैव चिन्त्यसे।
अत्यन्तदुःखिता विष्णो वयं त्वामनुसंस्थिताः ॥ ५५

ईदृशीयमवस्था नो नैतां स्मरसि केशव।
एतत् पुनर्भाग्यमतो नष्टमित्येव चिन्तये ॥ ५६

मन्दभाग्या वयं विष्णो यतो नो न स्मरेः प्रभो।
कौचित् क्षत्रियदायादौ गिरीशवरगर्वितौ ॥ ५७

नाम्ना च हंसडिम्भकौ बाधेते नो जनार्दन।
गार्हस्थ्यं हि सदा श्रेयो वदन्ताविति केशव ॥ ५८

इतस्ततश्च धावन्तौ वदन्तौ बहु किल्बिषम्।
अयुक्तं बहु भाषन्तौ धर्षयन्तौ च नः सदा ॥ ५९

इदमन्यत् कृतं देव असह्यं पापमुच्यते।
पश्येदं बहुधा देव भिन्नं भिन्नं सहस्रशः ॥ ६०

शक्यं च दारवं पात्रं द्विदलान् वेणुकान् बहून्।
इदमप्यपरं पश्य तयोः साहसचेष्टितम् ॥ ६१

कौपीनं बहुधा छिन्नं तदस्माकं महद्धनम्।
कृतं कपालमात्रेण कमण्डलु जगत्प्रभो ॥ ६२

त्वं तु नो रक्षसे नित्यं क्षात्रं वै व्रतमास्थितः।
चित्रं चित्रमिदं देव रक्षस्यसि सदानिशम् ॥ ६३

किं करिष्यामि मन्दात्मा मन्दभाग्या वयं विभो।
किं नः शरणमद्यैव तद् ब्रूहि जगतां पते ॥ ६४

जीवन्तौ तौ यदि स्यातां नष्टा लोका इमे त्रयः।
न विप्रा न च राजानो न वैश्या न च पादजाः ॥ ६५

अत्यन्तबलिनौ मत्तौ तीक्ष्णदण्डधरौ नृप।
न तयोः पुरतः स्थातुं शक्ता देवाः सवासवाः ॥ ६६

'विष्णो! इस सिद्धान्तमें प्रतिष्ठित होकर भी आप हमारी पीड़ाका कुछ विचार नहीं कर रहे हैं। भगवन्! हम अत्यन्त दुःखित होकर आपकी शरणमें आये हैं ॥ ५५ ॥ केशव! हमारी तो ऐसी दुर्दशा हो रही है और आप इसकी ओर ध्यान ही नहीं देते हैं; इससे हम बार-बार यही सोचते हैं कि हमारा भाग्य ही नष्ट हो गया है। प्रभो! विष्णो! हमलोग बड़े भाग्यहीन हैं, क्योंकि आप हमारा स्मरण नहीं करते हैं। जनार्दन! कोई दो क्षत्रियकुमार हैं, जो भगवान् शङ्करका वर पाकर घमंडमें भर गये हैं। उन दोनोंके नाम हंस और डिम्भक हैं। केशव! वे दोनों यह कहते हुए कि गृहस्थ आश्रम ही सदा श्रेयस्कर है, हमें सताने लगे हैं ॥ ५६—५८ ॥ वे इधर-उधर दौड़ते, बहुत-सी पापपूर्ण बातें मुँहसे निकालते और बहुत-सा अनुचित भाषण करते हुए सदा हमारा तिरस्कार करते हैं ॥ ५९ ॥ देव! उन दोनोंने जो दूसरा असह्य अपराध किया है, उसे बताया जाता है— देखिये! ये जो हमारे सहस्रों छींके, लकड़ीके पात्र, द्विदल और बहुत-से बाँसके पिटारे आदि हैं, इन सबके उन्होंने अनेकानेक टुकड़े कर डाले हैं। उन दोनोंकी यह दूसरी दुःसाहसपूर्ण चेष्टा देखिये—हमारा जो कौपीन था, उसके भी उन्होंने चीथड़े-चीथड़े कर डाले हैं; वह कौपीन ही हमारा महान् धन है। जगदीश्वर! उन्होंने हमारे कमण्डलुको भी तोड़-फोड़कर कपाल (खपड़े या खप्पर)-का रूप दे दिया है। आप क्षत्रियधर्मका आश्रय लेकर सदा हम सबकी रक्षा करते हैं तो भी हमारी यह दशा हो गयी। देव! यह बड़ी विचित्र और अद्भुत बात है। आप निरन्तर रक्षा करते हैं और सदा सर्वत्र विद्यमान भी हैं तो भी हमारी रक्षा न हो सकी ॥ ६०—६३ ॥ प्रभो! मेरी बुद्धि मन्द है। मैं क्या करूँ? हम सबलोग बड़े भाग्यहीन हैं। जगत्पते! इस समय हम किसकी शरणमें जायँ, यह बताइये ॥ ६४ ॥ यदि वे दोनों जीवित रह गये तो ये तीनों लोक नष्ट हो जायँगे। न ब्राह्मण बचेंगे न क्षत्रिय, न वैश्य रह जायँगे और न शूद्र ॥ ६५ ॥ नरेश्वर! वे दोनों अत्यन्त बलवान्, मदमत्त और कठोर दण्ड धारण करनेवाले हैं; उन दोनोंके सामने इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी टिक नहीं सकते' ॥ ६६ ॥

न च भीष्मो न वा राजा बाह्लीको भीमविक्रमः।
यो हि वीरो जरासंधः क्षत्रियाणां भयंकरः॥ ६७

नैव च प्रायशः स्थातुं गिरीशवरदर्पिणोः।
तयोः कृष्ण हरे शक्तो नित्यमप्रतिसङ्गिनोः॥ ६८

तस्मात् त्वं जहि तौ वीरौ रक्ष लोकानिमान् प्रभो।
अन्यथा रक्षसीत्येवं व्यर्थः शब्दोऽत्र जायते॥ ६९

बहुनात्र किमुक्तेन रक्ष रक्ष जगत्त्रयम्।
इत्युक्त्वा विररामैव दुर्वासाः क्रोधमूर्च्छितः॥ ७०

'न भीष्म और न भयंकर पराक्रमी राजा बाह्लीक ही उन दोनोंका सामना कर सकते हैं। श्रीकृष्ण! हरे! क्षत्रियोंके लिये भयंकर जो वीर जरासंध है, वह भी प्रायः उन दोनोंके सामने नहीं ठहर सकता; क्योंकि भगवान् शङ्करके वरदानसे उनका गर्व बहुत बढ़ गया है। वे सदा एक-दूसरेके साथ रहते हैं। उनमें कभी पार्थक्य अथवा विरोध नहीं होता॥ ६७-६८॥ प्रभो! इसलिये आप ही उन दोनों वीरोंका वध कीजिये और इन तीनों लोकोंको विनाशसे बचाइये; अन्यथा 'आप रक्षा करते हैं' यह कथन यहाँ व्यर्थ हो रहा है॥ ६९॥ यहाँ अधिक कहनेसे क्या लाभ? आप तीनों लोकोंकी रक्षा कीजिये! रक्षा कीजिये!!' ऐसा कहकर क्रोधसे मूर्च्छित हुए दुर्वासा चुप हो गये॥ ७०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने दुर्वासःसमागमे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः॥ १११॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें श्रीकृष्ण और दुर्वासाका समागमविषयक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १११॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णकी हंस और डिम्भकके वधके लिये प्रतिज्ञा तथा क्षमाप्रार्थनापूर्वक उनका यतियोंको भोजन कराना

वैशम्पायन उवाच

यतेर्वचनमाकर्ण्य मन्दमुच्छ्वस्य केशवः।
दुर्वाससं समालोक्य बभाषे यादवेश्वरः॥ १

क्षन्तव्यं भवता सर्वं दोष एष ममैव हि।
शृणु वाक्यं ममैतत् तु श्रुत्वा शान्तिपरो भव॥ २

जेष्यामि तौ रणे विप्र हंसं डिम्भकमेव च।
गिरीशो वा वरं दद्याच्छक्रो वा धनदोऽपि वा॥ ३

यमो वा वरुणो वापि ब्रह्मा वाथ चतुर्मुखः।
सबलौ सानुजौ हत्वा पुनर्दास्यामि वो रतिम्॥ ४

सत्येनैव शपाम्यद्य मा रोषवशगो भव।
रक्षां वोऽहं करिष्यामि हत्वा तौ च नृपाधमौ॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यतिका यह वचन सुनकर यादवेश्वर श्रीकृष्णने धीरेसे उच्छ्वास लेकर दुर्वासाकी ओर देखा और इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ १॥ 'भगवन्! अब जो कुछ हो गया, उस सबके लिये आप क्षमा करें; वास्तवमें यह मेरा ही दोष है। आप मेरी यह बात सुनें और सुनकर शान्त हो जायँ॥ २॥ विप्रवर! मैं हंस और डिम्भकको युद्धमें पराजित करूँगा। उन्हें भगवान् शङ्कर, इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण अथवा चतुर्मुख ब्रह्मा कोई भी वर क्यों न दे, मैं सेना और बन्धु-बान्धवोंसहित उन दोनोंका वध करके पुनः आपलोगोंको प्रसन्नता प्रदान करूँगा॥ ३-४॥ आज मैं सत्यकी ही शपथ लेकर कहता हूँ कि आप रोषके वशीभूत न होइये। मैं उन दोनों नीच नरेशोंका वध करके आपलोगोंकी रक्षा करूँगा'॥ ५॥

जानामि तौ दुरात्मानौ युष्मद्दोषकरौ हि तौ।
श्रुतं च पूर्वमस्माभिस्तीक्ष्णदण्डधराविति॥ ६

अत्यन्तबलिनौ मत्तौ गिरीशवरदर्पितौ।
नाल्पप्रयत्नसंसाध्यौ जरासंधहितैषिणौ॥ ७

प्राणानपि तयो राजा दास्यत्येव न संशयः।
जरासंधो न भूपालो विना तौ जयते महीम्॥ ८

जये तयोर्विप्रवर्य तत्र श्रेयो भवेत् ततः।
यत्र यत्र तु तौ गत्वा स्थितावित्यनुशुश्रुम॥ ९

तत्र तत्र च हन्ताहं नात्र कार्या विचारणा।
गच्छध्वं यतयः स्वैरं निजकार्यपरायणाः॥ १०

अचिरेणैव कालेन जेष्यामि रणपुङ्गवौ।
ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा यादवेश्वरमाह सः॥ ११

स्वस्त्यस्तु भवते कृष्ण जगतां स्वस्ति कुर्वते।
किं नु नाम जगन्नाथ दुःसाध्यं तव केशव॥ १२

त्रिलोकेश त्रिधामासि सर्वसंहारकारकः।
देवानामपि देवेशः सर्वत्र समदर्शनः॥ १३

विष्णो देव हरे कृष्ण नमस्ते चक्रपाणये।
नमः स्वभावशुद्धाय शुद्धाय नियताय च॥ १४

शब्दगोचर देवेश नमस्ते भक्तवत्सल।
अज्ञानादथवा ज्ञानाद् यन्मयोक्तं क्षमस्व तत्॥ १५

त्वमेवाहं जगन्नाथ नावयोरन्तरं पृथक्।
अतः क्षमस्व भगवन् क्षमासारा हि साधवः॥ १६

'मैं उन दोनों दुरात्माओंको जानता हूँ, उन्हीं दोनोंने आपलोगोंका अपराध किया है। मैंने पहलेसे ही सुन रखा है कि वे दोनों कठोर दण्ड धारण करनेवाले हैं, अत्यन्त बलवान् और मदमत्त हैं। भगवान् शङ्करका वर पानेसे उनका घमंड बढ़ा हुआ है। थोड़े-से प्रयत्नद्वारा उन्हें वशमें नहीं किया जा सकता। वे जरासंधके हितैषी हैं॥ ६-७॥ इसमें संदेह नहीं कि राजा जरासंध उन दोनोंके लिये अपने प्राण भी दे डालेगा; क्योंकि उन दोनोंके बिना राजा जरासंध इस पृथ्वीपर विजय नहीं पा सकता॥ ८॥ विप्रवर! उन दोनोंको पराजित करते समय उन्हें वहाँ जरासंधकी ओरसे श्रेष्ठ सहायता प्राप्त हो सकती है तो भी वे दोनों जहाँ-जहाँ जाकर खड़े होंगे और इसका समाचार हम सुन लेंगे, वहाँ-वहाँ पहुँचकर मैं उन दोनोंका वध करूँगा, इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। संन्यासियो! आपलोग अपने कर्तव्य-पालनमें तत्पर रहकर जहाँ चाहें इच्छानुसार जायँ। मैं थोड़े ही समयमें उन रणकुशल वीरोंको परास्त करूँगा।' तब प्रेमपूर्वक प्रसन्नचित्त हो दुर्वासाने यादवेश्वर श्रीकृष्णसे कहा—'श्रीकृष्ण! तीनों लोकोंका कल्याण करनेवाले आपका मङ्गल हो। जगन्नाथ! केशव! कौन-सा ऐसा कार्य है, जो आपके लिये दुष्कर हो॥ ९—१२॥ त्रिलोकीनाथ! आप त्रिधामा हैं। आप ही सबका संहार करनेवाले हैं, देवताओंके भी देवेश्वर हैं। आपकी सर्वत्र समान दृष्टि है॥ १३॥ विष्णो! देव! हरे! कृष्ण! हाथमें चक्र धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है। आप स्वभावसे शुद्ध हैं, शुद्धस्वरूप हैं तथा शौच, संतोष आदि नियमोंसे सम्पन्न एवं सर्वव्यापी हैं॥ १४॥ देवेश्वर! आप ही वैदिक शब्दोंके चरम तात्पर्य हैं। भक्तवत्सल! आपको मेरा नमस्कार है। मैंने जानकर अथवा अनजानमें जो अनुचित बात कह दी हो, उसके लिये आप मुझे क्षमा करें॥ १५॥ जगन्नाथ! मैं आपका ही स्वरूप हूँ। हम दोनोंमें कोई भेद या पार्थक्य नहीं है। अतः भगवन्! आप मुझे क्षमा करें; क्योंकि साधुपुरुषोंका सारतत्त्व क्षमा ही है'॥ १६॥

श्रीभगवानुवाच

क्षन्तव्यं भवता विप्र क्षमासारा वयं सदा।
संन्यासिनः क्षमासाराः क्षमा तेषां परं बलम्॥ १७

क्षमा मोक्षकरी नित्यं तत्त्वज्ञानमिव द्विज।
क्षमा धर्मः क्षमा सत्यं क्षमा दानं क्षमा यशः॥ १८

क्षमा स्वर्गस्य सोपानमिति वेदविदो विदुः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन क्षमां पालयत स्वकाम्॥ १९

प्रत्यक्षज्ञानसंयुक्ता यूयं सर्वे यतीश्वराः।
य एते यतयो विप्राः पूजनीया मयाद्य वै॥ २०
भोक्तव्या यतयो विप्रा भिक्षुकाः सर्व एव हि।

तथेति ते प्रतिज्ञाय भोक्तुमैच्छन् हरेर्गृहे॥ २१

ततः स्वभवनं विष्णुः प्रविश्य हरिरीश्वरः।
चतुर्विधं तथाऽऽहारं कारयित्वा यथाविधि॥ २२

भोजयामास तान् सर्वान् यतीन् यतिवरार्चितः।
छित्त्वा छित्त्वा च देवेशो दुकूलानि मृदूनि सः॥ २३
ददौ तेभ्यस्तदा विष्णुः सर्वेभ्यो जनमेजय।
ते च प्रीता यथायोगं यथापूर्वं ततो गताः॥ २४

श्रीभगवान् बोले—विप्रवर! क्षमा तो आपको करनी चाहिये। हमलोग तो सदा आप महापुरुषोंकी ही क्षमाका आश्रय लेनेवाले हैं। संन्यासियोंका सारतत्त्व क्षमा ही है। क्षमा ही उनका उत्तम बल है॥ १७॥ ब्रह्मन्! क्षमा तत्त्वज्ञानकी भाँति सदा ही मोक्ष प्रदान करनेवाली है। क्षमा धर्म, क्षमा सत्य, क्षमा दान और क्षमा यश है। वेदज्ञ पुरुष ऐसा मानते हैं कि क्षमा ही स्वर्गकी सीढ़ी है। अतः आपलोग पूरा प्रयत्न करके अपने क्षमाधर्मका पालन करें॥ १८-१९॥ यतीश्वरो! आप सब लोग प्रत्यक्ष ज्ञानसे संयुक्त हैं। यहाँ जो यति-ब्राह्मण पधारे हैं, उन सबका आज मुझे पूजन करना है। यतिधर्ममें तत्पर रहनेवाले इन सभी भिक्षु ब्राह्मणोंको भोजन भी कराना है। तब 'बहुत अच्छा' कहकर उन सबने भगवान्‌के भवनमें भिक्षा ग्रहण करनेका विचार किया। तदनन्तर सर्वेश्वर विष्णु हरिने अपने भवनके भीतर प्रवेश करके विधिपूर्वक चार* प्रकारकी भोजन-सामग्री तैयार करायी और उन समस्त यतियोंको भोजन कराया। उस समय यतिश्रेष्ठ दुर्वासाने श्रीकृष्णका सम्मान किया। जनमेजय! देवेश्वर श्रीकृष्णने उस समय कोमल वस्त्र फाड़-फाड़कर उन सब संन्यासियोंके लिये कौपीन आदि बनानेके लिये दिया। वे उन्हें पूर्ववत् यथायोग्य पाकर बहुत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् सब लोग वहाँसे चले गये॥ २०—२४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने यतिभोजने द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें यतियोंका भोजनविषयक एक सौ बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११२॥

---

* खाने, पीने, चाटने और चूसनेके भेदसे चार प्रकारकी भोजन-सामग्री होती है।

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

जनार्दनका हंसको समझाना; किंतु हंसका उनकी बात न मानकर उन्हें दूत बनाकर द्वारकाको भेजना

वैशम्पायन उवाच

दुर्वासास्त्वथ तत्रैव नारदेन महात्मना।
चिन्तयन् ब्रह्मणस्तत्त्वं विजहार यथासुखम्॥ १

भगवानपि गोविन्दस्तयोर्वासममन्यत।
ततस्तौ हंसडिम्भकौ तस्मिन् काले महीपतिम्॥ २

ब्रह्मदत्तं महीपालं पितरं वीर्यशालिनम्।
प्रावोचतामिदं वाक्यं समन्ताज्जनसंसदि॥ ३

राजसूयं महायज्ञं पितः कुरु सुयत्नतः।
अस्मिन् मासि नृपश्रेष्ठ यतावो यज्ञसिद्धये॥ ४

आवां तेऽद्य महाराज दिशां विजयतत्परौ।
यतिष्यावो बलैः सार्धं गजैरश्वै रथैरपि॥ ५

सम्भारा यज्ञसिद्ध्यर्थमानेतव्या नृपोत्तम।
तथेति स महाबाहो ब्रह्मदत्तोऽब्रवीत् तदा॥ ६

जनार्दनस्तु विप्रेन्द्रो दृष्ट्वा साहसतत्परौ।
अशक्यमिति मन्वानो वयस्यं हंसमब्रवीत्॥ ७

शृणु हंस वचो मह्यं श्रुत्वा निश्चित्य वीर्यवान्।
आयुष्मन् साहसं कर्तुमुद्यतोऽसि नृपोत्तम॥ ८

स्थिते भीष्मे जरासंधे बाह्लीके च नृपोत्तमे।
किं च वीरेषु सर्वेषु यादवेषु नृपोत्तम॥ ९

भीष्मो हि बलवान् वृद्धः सत्यसंधो जितेन्द्रियः।
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं यो जिगाय भृगूत्तमः॥ १०

तं युद्धे जितवान् भीष्मः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः।
जरासंधस्य यद् वीर्यं तद् भवान् वेत्ति संयुगे॥ ११

वृष्णिवीरास्तु ते सर्वे कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः।
तत्र कृष्णो हृषीकेशो जितशत्रुः कृती सदा॥ १२

जरासंधेन सहितः सदा युद्धे जितश्रमः।
प्रमुखे तस्य न स्थातुं शक्तो जीवन् नृपोत्तमः॥ १३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! दुर्वासा मुनि वहीं महात्मा नारदजीके साथ ब्रह्मतत्त्वका चिन्तन करते हुए सुखपूर्वक विचरण करने लगे॥ १॥ भगवान् गोविन्दने भी वहाँ उन दोनोंको रहनेकी अनुमति दे दी। तदनन्तर दोनों भाई हंस और डिम्भक उस समय अपने पराक्रमशाली पिता महाराज ब्रह्मदत्तके पास जाकर सब ओरसे भरे हुए दरबारमें उनसे इस प्रकार बोले—॥ २-३॥ 'पिताजी! आप यत्नपूर्वक राजसूय महायज्ञका अनुष्ठान कीजिये। नृपश्रेष्ठ! हम दोनों इसी मासमें आपके इस यज्ञकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करेंगे॥ ४॥ महाराज! हम दोनों भाई आपके लिये दिग्विजय करनेके लिये तत्पर हैं। हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी चतुरङ्गिणी सेनाएँ साथ लेकर हम सम्पूर्ण दिशाओंपर विजय पानेका प्रयत्न करेंगे। नृपश्रेष्ठ! आपको यज्ञकी सिद्धिके लिये सामग्रियोंका संग्रह कराना चाहिये।' महाबाहु जनमेजय! तब राजा ब्रह्मदत्तने 'तथास्तु' कहकर उन दोनोंकी बात मान ली। उन दोनोंको दुःसाहसमें तत्पर होते देख, उनके प्रयासको असम्भव मानकर विप्रवर जनार्दन अपने मित्र हंससे कहा—'हंस! पहले मेरी बात सुनो, सुनकर उसपर भलीभाँति विचार करके किसी निश्चयपर पहुँचो और उसके अनुसार पराक्रमपूर्वक कार्य करो। आयुष्मन्! नृपश्रेष्ठ! भीष्म, जरासंध, नृपशिरोमणि बाह्लीक तथा समस्त यादववीरोंके रहते हुए तुम दुःसाहसपूर्ण कार्य करनेके लिये उद्यत हुए हो॥ ५—९॥ 'भीष्मजी बलवान्, वृद्ध, सत्यप्रतिज्ञ और जितेन्द्रिय हैं। जिन भृगुकुलतिलक परशुरामने इक्कीस बार पृथ्वीपर विजय पायी है, उन्हें भीष्मने सम्पूर्ण क्षत्रियोंके देखते-देखते युद्धमें जीत लिया था। जरासंधका युद्धमें जो पराक्रम है, उसे तुम अच्छी तरह जानते हो। समस्त वृष्णिवंशी वीर भी अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता तथा युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले हैं। उनमें जो भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वे सबकी इन्द्रियोंके नियन्ता, शत्रुविजयी तथा सदा ही रणकुशल हैं॥ १०—१२॥ जरासंधके साथ सदा युद्ध करके उन्होंने परिश्रमको जीत लिया है। कोई भी श्रेष्ठ नरेश उनके सामने जीते-जी नहीं ठहर सकता'॥ १३॥

बलभद्रस्तथा मत्तः क्रुद्धो यदि भवेद् बली।
लोकानिमान् समाहर्तुं शक्नोतीति मतिर्मम॥ १४

तथा च सात्यकिर्वीरः शक्तो जेतुं रणे रिपून्।
तथान्ये यादवाः सर्वे कृष्णमाश्रित्य दंशिताः॥ १५

अस्माभिश्च कृतः पूर्वं विरोधो यतिभिः सह।
दुर्वासा यतिभिः सार्धं गतो द्रष्टुं स केशवम्॥ १६

इति श्रुतं नृपश्रेष्ठ ब्राह्मणाद् भोक्तुमागतात्।
तथा सति यथा सिद्ध्येत् तथा चिन्त्यं च मन्त्रिभिः॥ १७
ततः पश्चाद् विधास्यामो राजसूयं महाक्रतुम्।

हंस उवाच

को नाम भीष्मो मन्दात्मा वृद्धो हीनबलः सदा॥ १८

आवयोः पुरतः स्थातुं शक्तः स किल वृद्धकः।
यादवा इति चित्रं नः शक्ताः स्थातुं रणे द्विज॥ १९

कश्च कृष्णः पुरः स्थातुं बलदेवश्च मत्तकः।
शैनेयश्चापि विप्रेन्द्र स्थातुं न इति चिन्तय॥ २०

जरासंधस्तु धर्मात्मा बन्धुरेव सदा मम।
गच्छ प्रिय यदुश्रेष्ठं ब्रूहि मद्वचनात् त्वरन्॥ २१

दीयतां करसर्वस्वं यज्ञार्थं सुन्दरं बहु।
लवणानि बहून्यद्य गृह्य केशव मा चिरम्॥ २२

आगच्छ त्वरितं कृष्ण न ते कार्यं विलम्बनम्।
इति ब्रूहि यदुश्रेष्ठं याहि त्वरितविक्रमः॥ २३

न ब्रूयाश्चोत्तरं विप्र शपेयं त्वां प्रियोऽसि मे।
मित्रभावादिदं ब्रूहि पश्यामि त्वां पुनः पुनः॥ २४

इति संचोदितो विप्रो नोत्तरं प्रत्यभाषत।
मित्रभावात् तथा राजन् स्नेहाच्च जनमेजय॥ २५

जनार्दनस्तु धर्मात्मा नित्यं गन्तुं समुद्यतः।
अद्य श्वो वा परश्वो वा गच्छामीति यतेत सः॥ २६

'बलवान् बलभद्रजी बलके मदसे उन्मत्त रहते हैं, वे यदि कुपित हो जायँ तो अकेले ही इन तीनों लोकोंका संहार कर सकते हैं, ऐसा मेरा विश्वास है॥ १४॥ इसी तरह वीर सात्यकि भी रणभूमिमें शत्रुओंको जीतनेकी शक्ति रखते हैं। अन्य सब यादव भी श्रीकृष्णका आश्रय लेकर सदा युद्धके लिये कवच बाँधे रहते हैं॥ १५॥ हमलोगोंने पहले यतियोंके साथ विरोध किया था। उन सब यतियोंके साथ दुर्वासा मुनि भगवान् श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये गये हैं॥ १६॥ नृपश्रेष्ठ! यह बात मैंने अपने घर भोजन करनेके लिये आये हुए एक ब्राह्मणसे सुनी है। ऐसी अवस्थामें जिस प्रकार अपना कार्य सिद्ध हो, उस उपायका मन्त्रियोंके साथ विचार करना चाहिये। इसके बाद हम राजसूय नामक महायज्ञका अनुष्ठान करेंगे'॥ १७$\frac{१}{२}$॥

हंस बोला—मन्दबुद्धि बूढ़ा और सदाका बलहीन भीष्म कौन-सा वीर है? क्या वह बूढ़ा हम दोनोंके सामने ठहर सकता है? ब्रह्मन्! युद्धमें यादव हमारे सामने ठहर सकते हैं, यह तुम्हारी बात भी विचित्र ही है। वह कृष्ण और मतवाला बलभद्र भी कौन ऐसे वीर हैं, जो हमारे सामने ठहर सकें। विप्रवर! तुम यह निश्चय समझो कि सात्यकि भी हम दोनोंके सामने नहीं ठहर सकता॥ १८—२०॥ धर्मात्मा जरासंध तो सदा हमलोगोंका हितैषी बन्धु ही है। विप्रवर! तुम यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णके पास जाओ और मेरी आज्ञासे तुरंत यह बात उनसे कहो—॥ २१॥ 'केशव! तुम यज्ञके लिये बहुत सुन्दर सामग्री तथा करके रूपमें अपना सारा धन दे दो, साथ ही बहुत-से नमकका संग्रह करके शीघ्र आओ। श्रीकृष्ण! तुम्हें इस कार्यमें विलम्ब नहीं करना चाहिये।' ब्रह्मन्! तुम शीघ्रतापूर्वक जाओ और यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णसे मेरा यह संदेश सुना दो। विप्र! मैं शपथ दिलाता हूँ, तुम मेरी बातका कोई उत्तर न देना। तुम मेरे प्रिय मित्र हो, मित्रभावसे ही यह बात जाकर कहो। मैं बारम्बार तुम्हारी ओर देखता हूँ॥ २२—२४॥ राजन्! जनमेजय! हंससे इस प्रकार प्रेरित होकर ब्राह्मणने मित्रभाव तथा स्नेहके कारण उसे कोई उत्तर नहीं दिया॥ २५॥ सदा धर्ममें मन लगाये रखनेवाले जनार्दन श्रीकृष्णके पास जानेके लिये उद्यत हो गये। 'आज, कल या परसों मैं अवश्य जाऊँगा' ऐसा कहकर वे जानेकी तैयारी करने लगे॥ २६॥

देवं द्रष्टुं जगद्योनिं शङ्खचक्रगदाधरम्।
एक एव च धर्मात्मा हयमारुह्य सत्वरम्॥ २७

प्रातरेव जगामाशु द्रष्टुं द्वारवतीं द्विजः।
हरिं कृष्णं हृषीकेशं मनसा संस्मरन् द्विजः॥ २८

धर्मात्मा जनार्दन शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले जगत्कारण श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये अकेले ही तीव्रगामी अश्वपर आरूढ़ हो प्रातःकाल ही द्वारकाके लिये शीघ्रतापूर्वक चल दिये। उनकी यात्राका एक ही उद्देश्य था—इन्द्रियोंके प्रेरक सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीहरिका दर्शन। ब्राह्मण जनार्दन उन्हींका मन-ही-मन स्मरण करते हुए चले॥ २७-२८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस और डिम्भकका उपाख्यानविषयक एक सौ तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११३॥

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

जनार्दनकी भगवद्-दर्शनविषयक उत्कण्ठा

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रायाद्धरिं विष्णुं ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः।
हयेनैकेन राजेन्द्र त्वरितं स ययौ नृप॥ १

यथा निदाघसमये सूर्यांशुपरिपीडितः।
पान्थो याति जलं दृष्ट्वा त्वरितं तत्पिपासया॥ २

धावत्येव तथा विप्रो हरिं द्रष्टुं जनार्दनः।
गच्छन् स चिन्तयामास चोदयन् हयमुत्तमम्॥ ३

हंस एव प्रियो मह्यं कुर्यात् प्रियहितं मम।
तथा हि प्रेषितस्तेन हरिं पश्याम्यहं प्रभुम्॥ ४

अहमेव सदा धन्यो मत्तो ह्यभ्यधिको न हि।
यतो द्रक्ष्याम्यहं विष्णुं वसन्तं द्वारकापुरे॥ ५

सा हि मे जननी धन्या हरिं दृष्ट्वा पुनर्गतम्।
कृतार्थं सर्वदा देवी द्रक्ष्यत्येषा मनस्विनी॥ ६

मुखमुन्निद्रहेमाब्जकिञ्जल्कसदृशप्रभम्।
द्रक्ष्यामि देवदेवस्य चक्रिणः शार्ङ्गधन्वनः॥ ७

वपुर्द्रक्ष्याम्यहं विष्णोर्नीलोत्पलदलच्छवि।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवनमालाविभूषितम्॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजेन्द्र! नरेश्वर! तदनन्तर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण जनार्दन एक अश्वपर सवार हो तुरंत भगवान् विष्णु हरिके पास चल दिये॥ १॥ जैसे ग्रीष्म-ऋतुमें सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे पीड़ित हुआ पथिक कहीं दूर जल देखकर उसे पीनेकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक उसके पास जाता है, उसी प्रकार ब्राह्मण जनार्दन भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये दौड़ते हुए ही चले। वे अपने उत्तम अश्वको हाँकते हुए मन-ही-मन इस प्रकार सोचने लगे—॥ २-३॥ 'वास्तवमें हंस ही मेरा प्रिय मित्र है। वही मेरा प्रिय और हित कर सकता है; क्योंकि उसीने मुझे द्वारका भेजा है, जहाँ मैं भगवान् श्रीहरिका दर्शन करूँगा॥ ४॥ मैं ही सदा धन्य हूँ, मुझसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि मैं द्वारकापुरीमें निवास करनेवाले भगवान् विष्णुका दर्शन करूँगा॥ ५॥ मेरी वह माता धन्य है, जो मनस्विनीदेवी भगवान्का दर्शन करके सदाके लिये कृतार्थ होकर लौटे हुए मुझ अपने पुत्रको पुनः देखेगी॥ ६॥ मैं शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले देवाधिदेव श्रीकृष्णके उस मुखका दर्शन करूँगा, जो विकसित सुवर्णमय कमलके केसरकी-सी कान्तिसे प्रकाशित होता है॥ ७॥ मैं श्रीकृष्णके नीलकमलदलकी-सी कान्तिवाले उस श्यामसुन्दर शरीरका दर्शन करूँगा, जो शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और वनमालासे विभूषित है'॥ ८॥

नेत्रे ते देवदेवस्य पद्मकिञ्जल्कसप्रभे।
पश्याम्यहमदीनात्मा नष्टदुःखोऽस्मि निर्वृतः॥ ९

अपि द्रक्ष्यति योगात्मा सौम्येनैव स्वचक्षुषा।
अपि वा मत्प्रियं ब्रूयात् स्वस्ति चेति च वा वदेत्॥ १०

द्रक्ष्यामि चक्रिणो वर्ष्म ततस्त्रैलोक्यसंनिभम्।
पादाब्जं चक्रिणो द्रष्टुं त्वरत्येव च मे मनः॥ ११

वक्षःस्थलं सदा विष्णोः स्फुरद्रत्नप्रभायुतम्।
पश्यन्निव च गच्छामि स्मरंश्चानिशमीश्वरम्॥ १२

पीतकौशेयवसनं लम्बहारविभूषितम्।
ईषत्स्मिताधरं विष्णुं पश्यामि च पुनः पुनः॥ १३

स्मरतश्च हरे रूपं रोमहर्षोऽयमीदृशः।
गच्छतश्च पुरो भाति शङ्खचक्रगदासिमान्॥ १४

यातीव च पुरो भाति मह्यं देवो जगद्गुरुः।
एषोऽयमिति मे वक्तुं जिह्वा प्रस्फुरतीव तम्॥ १५

इदं दुःखतरं मन्ये करं देहीति मद्वचः।
इदं तत्साहसं मन्ये तद्वचस्तस्य भूपतेः॥ १६

हंसस्य करदो विष्णुस्तदाज्ञापरिचारकः।
तस्य सर्वं पुरो गत्वा वक्ताहं किल निर्दयः॥ १७

मूढानामग्रणीरस्मि निर्लज्जश्च तथा वदन्।
करं देहि हरे विष्णो हंसस्य यदुपुङ्गव॥ १८

लवणानि बहून्याशु दातव्यानि करात्मना।
इति वक्तुं न मे युक्तं पुरतस्तस्य शार्ङ्गिणः॥ १९

तथापि मित्रभावात् तु वक्तव्यं घोरमीदृशम्।
कष्टो ह्ययं मित्रभावो मनुष्याणां कृतात्मनाम्॥ २०

'मैं देवाधिदेव श्रीकृष्णके उन दोनों नेत्रोंका दर्शन करूँगा, जो विकसित कमलदलके समान कान्तिमान् हैं। उस समय मेरे हृदयका सारा दैन्य दूर हो जायगा, दुःख मिट जायँगे और मैं परमानन्दमें निमग्न हो जाऊँगा॥ ९॥ क्या योगात्मा भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सौम्यदृष्टिसे ही मेरी ओर देखेंगे, अथवा मुझे प्रिय लगनेवाली बातें कहेंगे या 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसी वाणीका प्रयोग करेंगे?॥ १०॥ वहाँ चलकर मैं चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्णके उस विग्रहका दर्शन करूँगा, जो तीनों लोकोंको अपने भीतर रखनेके कारण त्रिलोकीके समान है। मेरा मन उन चक्रपाणिके चरणारविन्दोंका दर्शन करनेके लिये उतावला हो उठा है॥ ११॥ मैं भगवान् विष्णुके उस वक्षःस्थलको देखता हुआ-सा चलता हूँ, जो सदा उद्दीप्त कौस्तुभमणिकी प्रभासे प्रकाशित होता है तथा उन्हीं परमेश्वरका निरन्तर स्मरण करता हुआ उनकी सेवामें चल रहा हूँ॥ १२॥ जो रेशमी पीताम्बर धारण करते हैं, नीचेतक लटकी हुई विशाल वनमालासे विभूषित हैं तथा जिनके अधरोंपर मन्द मुसकानकी छटा छायी रहती है, उन भगवान् श्रीकृष्णका आज मैं बारम्बार दर्शन करूँगा॥ १३॥ श्रीहरिके उस रूपका स्मरण करते ही मेरे शरीरमें यह इस तरह रोमाञ्च हो रहा है। चलते समय मेरे सामने शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये भगवान् खड़े जान पड़ते हैं॥ १४॥ देव जगद्गुरु श्रीकृष्ण मेरे आगे-आगे जाते हुए-से प्रतीत होते हैं। मेरी जिह्वा बार-बार यह कहनेके लिये उद्यत-सी होती है कि 'ये रहे मेरे भगवान्'॥ १५॥ मैं जो उनके सामने यह कहनेके लिये जा रहा हूँ कि 'मुझे कर दीजिये', अपनी इस बातको मैं अत्यन्त दुःखजनक मानता हूँ तथा मैं इसे राजा हंसका अत्यन्त दुःसाहसपूर्ण वचन समझता हूँ॥ १६॥ भगवान् विष्णु हंसको कर दें, उसकी आज्ञाका पालन और सेवा करें, ये सारी बातें मुझे उनके सामने जाकर कहनी पड़ेंगी। निश्चय ही मैं बड़ा निर्दय हूँ॥ १७॥ 'हरे! विष्णो! यदुपुङ्गव! आप हंसको कर दीजिये' ऐसी बात कहता हुआ मैं मूर्खोंका अगुआ और निर्लज्ज समझा जाऊँगा॥ १८॥ 'आपको कररूपमें शीघ्र ही बहुत-सा नमक देना होगा' शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णके सामने ऐसी बात कहना मेरे लिये कदापि उचित न होगा॥ १९॥ तथापि मित्रताके कारण मुझे ऐसा घोर वचन कहना होगा। पवित्रात्मा पुरुषोंके लिये यह मित्र-भाव भी कष्टप्रद ही होता है'॥ २०॥

अथवा सर्वविद् विष्णुः सर्वस्य हृदि संस्थितम्।
जानात्येव सदा भावं प्राणिनां शोभने रतः॥ २१

तथा सति न मे दोषो मित्रभावो यतो ह्ययम्।
सर्वथा रक्षतां विष्णुर्घोरं वक्तुं यतस्य मे॥ २२

द्रक्ष्याम्यहं जगन्नाथं नीलकुञ्चितमूर्धजम्।
कम्बुग्रीवधरं विष्णुं श्रीवत्साच्छादितोरसम्॥ २३

स्फुरत्पद्ममहाबाहुं रत्नच्छायाविराजितम्।
द्रक्ष्यामि केशवं विष्णुं चक्रिणं यादवेश्वरम्॥ २४

अचिन्त्यविभवं देवं भूतभव्यभवत्प्रभुम्।
आत्मेच्छया जगद्रक्षं द्रक्ष्यामि जलशायिनम्॥ २५

कृतार्थः सर्वथा चाहं भवामि विगतज्वरः।
अद्य मे सफलं जन्म साक्षाद् दृष्टवतो हरिम्॥ २६

अद्य मे सफला यज्ञाः साक्षात्कृतवतो हरिम्।
नेत्रे मे सफले विष्णुं पश्यतश्च जगन्मयम्॥ २७

प्रीतिमानस्तु मे विष्णुर्वक्तुर्घोरस्य कर्मणः।
उन्मिषन्नेत्रयुग्मेन द्रक्ष्यामि सकृदीश्वरम्॥ २८

आमूलमसकृद् विष्णुं पश्यामि च पुनः पुनः।
पिबामि नेत्रयुग्मेन वपुः कृष्णस्य केवलम्॥ २९

धारयिष्याम्यहं पांसुं तत्पादप्रभवं शिवम्।
ततः कृतार्थतां यास्ये स्वर्गमार्गो हि तद्रजः॥ ३०

मेघगम्भीरनिर्घोषं श्रोष्यामि च हरेः स्वरम्।
पादाब्जं चक्रिणो विष्णोः पश्यामि च जगत्पतेः॥ ३१

पश्यामि च हरेर्वक्त्रं पूर्णेन्दुसदृशप्रभम्।
हरेरिदं जगद् रूपं पश्यामीव च सर्वतः॥ ३२

'अथवा भगवान् विष्णु सर्वज्ञ हैं। वे सबके हार्दिक भावको सदा जानते हैं और प्राणियोंके कल्याणमें तत्पर रहते हैं॥ २१॥ ऐसी दशामें मेरा कोई दोष नहीं है; क्योंकि यह मित्रता ही मुझसे ऐसा कार्य कराती है। मैं जो घोर बात कहनेके लिये उद्यत हुआ हूँ, उसके लिये भगवान् विष्णु सर्वथा मेरी रक्षा करें॥ २२॥ जो सम्पूर्ण जगत्के स्वामी और रक्षक हैं, जिनके सिरपर काले घुँघराले केश शोभा पाते हैं, जो शङ्खके समान ग्रीवा धारण करते हैं तथा जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्स-चिह्नसे आच्छादित है, उन भगवान् विष्णुका मैं दर्शन करूँगा॥ २३॥ जिनकी विशाल भुजाओंमें पद्मरागमणिके आभूषण शोभा पाते हैं तथा जो कौस्तुभ आदि रत्नोंकी कान्तिसे प्रकाशित होते हैं, उन सर्वव्यापी, चक्रधारी, यादवेश्वर श्रीकृष्णका मैं दर्शन करूँगा॥ २४॥ जिनका वैभव अचिन्त्य है, जो भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी हैं, जो अपनी ही इच्छासे जगत्की रक्षामें तत्पर रहते हैं, उन एकार्णवके जलमें शयन करनेवाले श्रीनारायणदेवका मैं दर्शन करूँगा॥ २५॥ उनका दर्शन करके मैं सर्वथा कृतार्थ हो जाऊँगा। मेरी सारी चिन्ताएँ तथा व्याधियाँ दूर हो जायँगी। आज श्रीहरिका साक्षात् दर्शन कर लेनेपर मेरा जन्म सफल हो जायगा॥ २६॥ आज श्रीहरिका साक्षात्कार करनेपर मेरे यज्ञ सफल हो जायँगे। जगन्मय विष्णुका दर्शन करनेसे मेरे दोनों नेत्र भी सफल हो जायँगे॥ २७॥ मैं भयंकर कर्मके लिये प्रस्ताव करनेवाला हूँ। उस समय भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न रहें। क्या मैं अपनी खुली हुई दोनों आँखोंसे एक बार उन जगदीश्वरका दर्शन करूँगा॥ २८॥ मैं नीचेसे ऊपरतक बारम्बार भगवान् विष्णुका दर्शन करूँगा, दोनों नेत्रोंसे केवल श्रीकृष्णके शरीरकी रूपमाधुरीका पान करूँगा॥ २९॥ तदनन्तर उनके चरणोंसे प्रकट हुई कल्याणमयी धूलको सिरपर धारण करूँगा। ऐसा करके कृतार्थ हो जाऊँगा, क्योंकि उनकी चरणरज स्वर्गका सोपान है॥ ३०॥ मैं श्रीहरिके मेघकी गम्भीर गर्जनाके समान स्वरको सुनूँगा और चक्रधारी जगदीश्वर विष्णुके चरणारविन्दका दर्शन करूँगा॥ ३१॥ पूर्ण चन्द्रमाके समान जो श्रीकृष्णका मनोहर मुख है, उसका अवलोकन करूँगा। यह सारा जगत् श्रीहरिका ही रूप है, इस रूपमें मैं सब ओर उन्हींका दर्शन-सा कर रहा हूँ।

प्रसीदतु सदा विष्णुरयुक्तं वक्तुमिच्छतः।
आलोलकुण्डलयुतं हरिचन्दनचर्चितम्॥ ३३

स्फुरत्केयूररत्नार्चिर्बाहुद्वयविराजितम्।
सव्ये द्योतन्महाशङ्खं रश्मिजालविराजितम्॥ ३४

प्रोद्यद्भास्करवर्णाभं चक्रज्वालाविराजितम्।
प्रोज्ज्वलत्कङ्कणयुतं तप्तजाम्बूनदाङ्गदम्॥ ३५

पीतकौशेयवसनं विस्तीर्णोरस्कमच्युतम्।
कदा द्रक्ष्यामि देवेशमिदानीमथवान्यदा॥ ३६

सर्वथा कृतकृत्योऽहं यद्वपुर्द्रष्टुमुद्यतः।
नमो मह्यं नमो मह्यं यतो द्रष्टुमहं हरिम्॥ ३७

उद्यतोऽस्मि जगन्नाथं बलभद्रकृतास्पदम्।
द्रक्ष्याम्यवश्यमद्यैव जिष्णुं विष्णुं जगद्गुरुम्॥ ३८

श्रीकौस्तुभोद्भवरुचि स्फुरितोरुवक्षः
पीताम्बरं मकरकुण्डलपङ्कजाक्षम्।
कृष्णं किरीटवरचक्रगदोर्ध्वहस्तं
तेजोमयं मम हरेर्वपुरस्तु भूत्यै॥ ३९

वेदोदधौ विशदशास्त्रमहाहियोगे
निष्णातशुद्धमतिमन्दरमथ्यमाने।
उद्योतमानममरैरनिशं निषेव्यं
नारायणाख्यममृतं प्रपिबामि वाद्य॥ ४०

ध्येयं मुमुक्षुभिरमेयमनाद्यनन्तं
स्थूलं सुसूक्ष्मतरमेकमनेकमाद्यम्।
ज्योतिस्त्रिलोकजनकं त्रिदशैकवन्द्य-
मक्ष्णोर्ममास्तु सततं हृदयेऽच्युताख्यम्॥ ४१

चिन्तयन्निति विप्रेन्द्रो ययौ द्वारवतीं पुरीम्।
मत्वा कृतार्थमात्मानं वाहयन् हयमुत्तमम्॥ ४२

अनुचित बात कहनेकी इच्छावाले मुझ सेवकके ऊपर भगवान् विष्णु सदा प्रसन्न रहें। जिनके कानोंमें हिलते हुए कुण्डल जगमगा रहे हैं, जो हरिचन्दनसे चर्चित हैं, चमकीले बाजूबंदोंमें जड़े गये रत्नोंकी प्रभासे उद्भासित दोनों भुजाओंसे जिनकी विशेष शोभा होती है, जिनके बायें हाथमें महान् पाञ्चजन्य शङ्ख देदीप्यमान है, जो किरणजालसे प्रकाशित हैं, उदयकालके सूर्यके समान जिनकी सुनहरी कान्ति शोभा पाती है, जो सुदर्शन चक्रकी ज्वालामालाओंसे उद्भासित हैं, जिनके हाथोंमें जगमगाते हुए कङ्कण तथा तपे हुए सुवर्णके बने बाजूबंद शोभा पाते हैं, जो रेशमी पीताम्बर धारण करते हैं तथा जिनकी छाती चौड़ी है, उन देवेश्वर अच्युतका मैं इस समय अथवा दूसरे समयमें कब दर्शन करूँगा॥ ३२—३६॥ मैं सर्वथा कृतकृत्य हूँ; क्योंकि आज मैं श्रीहरिके साक्षात् शरीरका दर्शन करनेके लिये उद्यत हुआ हूँ। मैं श्रीहरिका दर्शन करनेको कटिबद्ध हूँ, इसलिये मुझे नमस्कार है! मुझे नमस्कार है!!॥ ३७॥ शेषस्वरूप बलभद्रपर शयन करनेवाले जगदीश्वर श्रीकृष्णके दर्शनके लिये आज मैं उद्यत हूँ। उन विजयशील सर्वव्यापी जगद्गुरु श्रीकृष्णका अवश्य आज ही मैं दर्शन करूँगा॥ ३८॥ जो श्रीकौस्तुभमणिकी प्रभासे प्रकाशित है, जिसका विशाल वक्षःस्थल उसी कौस्तुभ एवं श्रीवत्सकी शोभासे उद्दीप्त हो रहा है, जिसने पीताम्बर धारण कर रखा है, जो मकराकार कुण्डल तथा कमलसदृश नेत्रोंसे सुशोभित है, जिसके मस्तकपर उत्तम किरीट और ऊपर उठे हुए हाथोंमें चक्र एवं गदा विराजमान हैं, श्रीहरिका वह श्यामवर्णमय तेजस्वी विग्रह मेरा कल्याण करनेवाला हो॥ ३९॥ विशद शास्त्ररूपी महान् सर्प (वासुकि)-से जुड़े हुए निष्णात शुद्धबुद्धिरूपी मन्दराचलद्वारा मथे जानेवाले वेदरूपी समुद्रसे जिसका प्राकट्य हुआ है तथा अमरगण निरन्तर जिसका सेवन करते हैं, उस नारायण नामक अमृतका आज मैं अपने नेत्रोंद्वारा पान करूँगा॥ ४०॥ जो मुमुक्षुओंके द्वारा चिन्तन करनेके योग्य, अप्रमेय, अनादि, अनन्त, स्थूल, अत्यन्त सूक्ष्म, एक, अनेक, आद्य, त्रिभुवनका जनक तथा देवताओंद्वारा एकमात्र वन्दनीय है, वह अच्युत नामक तेज सदा मेरे नेत्रोंके समक्ष और हृदयमें प्रकाशित होता रहे'॥ ४१॥ इस प्रकार सोचते हुए विप्रवर जनार्दन अपनेको कृतार्थ मानकर उस उत्तम अश्वको हाँकते हुए द्वारकापुरीमें जा पहुँचे॥ ४२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने विप्रस्य द्वारवतीगमने चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसंगमें ब्राह्मणका द्वारकागमनविषयक एक सौ चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११४॥

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

जनार्दनका सुधर्मा-सभामें जाकर भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे संतुष्ट हो उनकी आज्ञासे भगवत्स्तवनपूर्वक हंस और डिम्भकका संदेश सुनाना और उसे सुनकर यादवोंका उपहास करना

वैशम्पायन उवाच

स निवेदितसर्वस्वो द्वाःस्थेन हि जनार्दनः।
अथ प्रविश्य धर्मात्मा सुधर्मां वै द्विजोत्तमः॥ १

अपश्यद् देवदेवेशं सुधर्माकृतिसंस्थितम्।
बलभद्रेण संयुक्तमध्यासितमहासनम्॥ २

अग्रतः स्थितशैनेयं पार्श्वतः स्थितनारदम्।
दुर्वाससा कृतकथमुग्रसेनपुरस्कृतम्॥ ३

गायद्गन्धर्वमुख्यैश्च नृत्यदप्सरसां गणैः।
सेव्यमानं महाराज सूतमागधवन्दिभिः॥ ४

उद्गीयमानयशसं माधवं मधुसूदनम्।
उद्गीयमानं विप्रैश्च सामभिः सामगैर्हरिम्॥ ५

दृष्ट्वा प्रीतमना विष्णुं प्रोद्भूतपुलकच्छविः।
नाम्ना जनार्दनोऽस्मीति ननाम चरणौ हरेः।
बलभद्रं ततो देवं ववन्दे शिरसा द्विजः॥ ६

दूतोऽस्मि देवदेवेश हंसस्य डिम्भकस्य च।
इति ब्रुवाणं विप्रेन्द्रमिदमाह स माधवः॥ ७

आस्स्वेदं विष्टरं पूर्वं पश्चाद् ब्रूहि प्रयोजनम्।
तथेति चाब्रवीद् विप्रो महदासनमास्थितः॥ ८

वाचा सम्पूज्य विप्रेन्द्रमपृच्छत् कुशलं हरिः।
ब्रह्मदत्तस्य राजेन्द्र हंसस्य डिम्भकस्य च॥ ९

श्रुतं चापि तयोर्वीर्यं प्रयोजनमतो द्विज।
अपि वा कुशलं विप्र पितुस्तव जनार्दन॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था, उन द्विजश्रेष्ठ धर्मात्मा जनार्दनने द्वारपालकी सहायतासे सुधर्मा-सभामें प्रवेश करके देवदेवेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन किया, जो वहाँ उत्तम धर्ममय स्वरूपसे विराजमान थे और बलभद्रजीके साथ ऊँचे सिंहासनपर बैठे हुए थे॥ १-२॥ उनके सामने सात्यकि खड़े थे तथा उनके पार्श्वभागमें नारदजी विराजमान थे। भगवान् श्रीकृष्ण दुर्वासामुनिसे बातचीत कर रहे थे। राजा उग्रसेन उनके सामने थे॥ ३॥ महाराज! गाते हुए मुख्य-मुख्य गन्धर्व, नाचती हुईं झुंड-की-झुंड अप्सराएँ तथा सूत, मागध एवं वन्दीजन योग्यतानुसार उनकी सेवा कर रहे थे॥ ४॥ वहाँ माधव मधुसूदनके यशका उच्चस्वरसे गान हो रहा था तथा सामगान करनेवाले ब्राह्मण भी साममन्त्रोंद्वारा श्रीहरिका गुणगान करते थे॥ ५॥ भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन पाकर जनार्दनका मन प्रसन्न हो गया। अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो उठा। 'मैं जनार्दन हूँ' ऐसा कहकर उन्होंने श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम किया। तत्पश्चात् ब्राह्मण जनार्दनने भगवान् बलभद्रको मस्तक झुकाया और श्रीकृष्णसे कहा—'देवदेवेश्वर! मैं हंस और डिम्भकका दूत हूँ।' इस तरह कहते हुए विप्रवर जनार्दनसे भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'ब्रह्मन्! पहले आप इस आसनपर बैठिये, इसके बाद अपने आगमनका प्रयोजन बताइये।' तब ब्राह्मणने 'बहुत अच्छा' कहा और वे एक महान् आसनपर विराजमान हुए॥ ६—८॥ राजेन्द्र! भगवान् श्रीकृष्णने वाणीद्वारा विप्रवर जनार्दनका स्वागत-सत्कार करके फिर उनसे ब्रह्मदत्त, हंस और डिम्भकका कुशल-समाचार पूछा॥ ९॥ वे बोले—'विप्र जनार्दन! मैंने हंस और डिम्भकका पराक्रम और प्रयोजन पहलेसे सुन रखा है। तुम्हारे पिताजी तो कुशलपूर्वक हैं न?'॥ १०॥

जनार्दन उवाच

कुशलं ब्रह्मदत्तस्य पितुश्च मम केशव।
तयोरेव जगन्नाथ हंसस्य डिम्भकस्य च॥ ११

श्रीभगवानुवाच

किमाहतुर्महीपालौ तौ हंसडिम्भकौ नृपौ।
ब्रूहि सर्वमशेषेण नात्र शङ्का द्विजोत्तम॥ १२

वाच्यं वाप्यथवावाच्यं कर्तव्यमथ चेतरत्।
श्रुत्वा तस्य विधास्यामो युक्तरूपं द्विजोत्तम॥ १३

दूतोऽसि सर्वथा विप्र न वाच्यावाच्यकल्पना।
यत् कर्मकारनिर्दिष्टं तद् वाच्यं दूतजन्मना॥ १४

नात्र शङ्का त्वया कार्या वक्तव्यस्येतरस्य च।
अतो वद यथा प्रोक्तं ताभ्यामिह जनार्दन॥ १५

केशवेनैवमुक्तस्तु प्रोवाच स जनार्दनः।
अजानन्निव किं ब्रूषे सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान्॥ १६

न चास्ति ते परोक्षं तु जगद्वृत्तान्तमच्युत।
सर्वं हि मनसा पश्यन् किं त्वमात्थ वदेति माम्॥ १७

विद्वद्भिर्गीयसे विष्णुस्त्वमेव जगतीपते।
इच्छया सर्वमाप्नोषि दृष्टादृष्टविवेचनम्॥ १८

त्वमेवेदं जगत् सर्वं जगच्च त्वयि तिष्ठति।
न त्वया रहितो ह्येकः पदार्थः सचराचरः॥ १९

नास्ति किंचिदवेद्यं ते सर्वगोऽसि जगत्पते।
त्वमिन्द्रः सर्वभूतानां रुद्रः संहारकर्मकृत्॥ २०

रक्षितासि सदा विष्णुः सर्वलोकस्य माधव।
संसारस्य भवान् स्रष्टा किं त्वमात्थ वदेति माम्॥ २१

विद्वद्भिर्गीयसे नित्यं ज्ञानात्मेति च माधव।
प्राणं प्राणविदः प्राहुस्त्वामेव पुरुषोत्तम॥ २२

शब्दं शब्दविदः प्राहुस्त्वामेव पुरुषोत्तम।
तथा सति हृषीकेश किं त्वमात्थ वदेति माम्॥ २३

जनार्दनने कहा—केशव! राजा ब्रह्मदत्त और मेरे पिताजी सकुशल हैं। जगन्नाथ! दोनों भाई हंस और डिम्भक भी कुशलसे ही हैं॥ ११॥

श्रीभगवान् बोले—द्विजश्रेष्ठ! राजा हंस और डिम्भकने क्या संदेश दिया है? आप सारी बातें विस्तारपूर्वक बतायें। इसके लिये आपके मनमें कोई शङ्का नहीं होनी चाहिये॥ १२॥ विप्रवर! उन्होंने जो कुछ कहा हो, वह कहने योग्य हो या न कहने योग्य हो, करने योग्य हो या न करने योग्य हो, उसे पूरा-पूरा सुनकर हमलोग उसका उचित उत्तर देंगे॥ १३॥ ब्रह्मन्! आप दूत हैं। आपके लिये वाच्य और अवाच्यका विचार सर्वथा अनावश्यक है। भेजनेवालेने जो कुछ जैसे कहा हो, दूतको वह सब उसी प्रकार कहना चाहिये॥ १४॥ जनार्दनजी! आपको वाच्य और अवाच्यकी शङ्का नहीं करनी चाहिये। अतः हंस और डिम्भकने जैसा कहा है, वैसा ही यहाँ कहिये॥ १५॥ भगवान् केशवके ऐसा कहनेपर जनार्दन बोले—'भगवन्! आप अनजानकी भाँति क्यों बात कर रहे हैं? आप तो सब कुछ प्रत्यक्ष देखनेवाले हैं॥ १६॥ अच्युत! जगत्का कोई भी वृत्तान्त आपकी आँखोंसे ओझल नहीं है। आप अपने मनसे सब कुछ देखते हुए भी मुझसे क्यों कहते हैं कि 'तुम बताओ'॥ १७॥ पृथ्वीनाथ! विद्वान् पुरुष आपको ही विष्णु कहते हैं। आप इच्छा करते ही दृष्ट और अदृष्ट वस्तुका पूर्ण विवेक प्राप्त कर लेते हैं॥ १८॥ आप ही यह सम्पूर्ण जगत् हैं, आपमें ही इस जगत्की स्थिति है। एक भी ऐसा कोई चर या अचर पदार्थ नहीं है, जो आपसे रहित हो॥ १९॥ जगदीश्वर! आप सर्वज्ञ एवं सर्वव्यापी हैं, आपके लिये कुछ भी अज्ञेय नहीं है। आप ही समस्त भूतोंके इन्द्र हैं और आप ही संहार-कर्म करनेवाले रुद्र हैं॥ २०॥ माधव! सदा सम्पूर्ण लोककी रक्षा करनेवाले विष्णु आप ही हैं। आप ही जगत्स्रष्टा ब्रह्मा हैं। फिर आप मुझसे क्यों कहते हैं कि 'तुम बताओ'॥ २१॥ माधव! विद्वान् पुरुष सदा आपको ही ज्ञानात्मा कहते हैं। पुरुषोत्तम! प्राणवेत्ता पुरुष आपको ही प्राण कहते हैं॥ २२॥ पुरुषोत्तम! शब्दशास्त्रके ज्ञाता वैयाकरण आपको ही शब्द कहते हैं। हृषीकेश! ऐसी दशामें आप मुझसे क्यों कहते हैं कि 'तुम अपने राजाका संदेश कहो'॥ २३॥

तथापि श्रृणु देवेश चोदितोऽस्मि यतस्त्वया।
वदेत्यसकृदेवैतत् तस्माद् वक्ष्यामि माधव॥ २४

राजसूयेन यज्ञेन ब्रह्मदत्तोऽद्य यक्ष्यते।
तदर्थं प्रेषितस्ताभ्यां हंसेन डिम्भकेन च॥ २५

करार्थं यदुमुख्येभ्यस्तव चामन्त्रणाय हि।
लवणं बहु देयं ते यज्ञार्थं तस्य केशव॥ २६

इत्यर्थं प्रेषितस्ताभ्यां करं देहि तदाज्ञया।
इदं त्वमपरं ताभ्यामुक्तं श्रृणु जगत्पते॥ २७

लवणानि बहून्याशु प्रगृह्य त्वरितं भवान्।
आगच्छतु तयो राज्ञोः सेयं केशव वाग् विभो॥ २८

इत्युक्तवति विप्रेन्द्रे दूते तत्र तयोर्नृप।
प्रहस्य सुचिरं कृष्णो बभाषे दूतमीश्वरः॥ २९

श्रृणु दूत वचो मह्यं युक्तमुक्तं द्विजोत्तम।
करं ददामि ताभ्यां तु करदोऽस्मि यतो नृपः॥ ३०

धार्ष्ट्यमेतत् तयोर्विप्र मत्तो यस्तु करग्रहः।
अहो धार्ष्ट्यमहो धार्ष्ट्यं तयोः क्षत्रियबीजयोः॥ ३१

इदमश्रुतपूर्वं मे मत्तो यस्तु करग्रहः।
इत्युक्त्वा केशवो दूतमिदमाह स्म यादवान्॥ ३२

हास्यमेतद् यदुश्रेष्ठा मत्तो यस्तु करग्रहः।
यष्टासौ राजसूयस्य ब्रह्मदत्तो महीपतिः॥ ३३

तौ तु याजयितारौ हि हंसो डिम्भक एव च।
वोढा किल यदुश्रेष्ठो लवणस्य दुरात्मनः॥ ३४

करदो वासुदेवो हि जितोऽस्मि यदुसत्तमाः।
हास्यं हास्यमिदं भूयः श्रृणुध्वं यादवा वचः॥ ३५

इत्युक्तवति देवेशे बलभद्रपुरोगमाः।
यादवाः सर्व एवैते हासाय समवस्थिताः॥ ३६

करदः कृष्ण इत्येवं ब्रुवन्तः सर्वसात्वताः।
हासं मुमुचुरत्यर्थं तलं दत्त्वा परस्परम्॥ ३७

'देवेश्वर माधव! तथापि सुनिये। आपने मुझे बारम्बार कहनेके लिये प्रेरित किया है। इसलिये मैं कहूँगा॥ २४॥ भगवन्! राजा ब्रह्मदत्त अब राजसूय यज्ञ करेंगे। उसीके लिये हंस और डिम्भकने मुझे आपके पास भेजा है॥ २५॥ उसने मुख्य-मुख्य यादवोंसे कर लेने और आपको आमन्त्रित करनेके लिये मुझे यहाँतक आनेके लिये विवश किया है। केशव! आपको उसके यज्ञके लिये बहुत-सा नमक देना है॥ २६॥ जगत्पते! उन दोनोंने इसीलिये मुझे यहाँ भेजा है कि आप उनकी आज्ञासे उनके लिये कर दीजिये। उन दोनोंने जो यह दूसरी बात कही है, उसे भी सुन लीजिये॥ २७॥ 'आप शीघ्र ही बहुत-सा नमक लेकर मेरे यहाँ आइये।' प्रभो! केशव! यही उन दोनों राजाओंका आपके लिये संदेश है'॥ २८॥ नरेश्वर! उन दोनोंके दूत विप्रवर जनार्दन जब इस प्रकार कह चुके, तब भगवान् श्रीकृष्णने बहुत देरतक जोर-जोरसे हँसकर उस दूतसे कहा—॥ २९॥ 'दूत! द्विजश्रेष्ठ! तुम मेरी कही हुई यह युक्तियुक्त बात सुनो। मैं उन दोनोंको कर दूँगा; क्योंकि मैं उन्हें कर देनेवाला नरेश हूँ॥ ३०॥ विप्रवर! मुझसे जो कर लेनेका संकल्प है, यह उन दोनों भाई हंस और डिम्भककी बहुत बड़ी धृष्टता है। अहो! क्षत्रियके बीजसे उत्पन्न हुए उन दोनोंकी यह कैसी अद्भुत धृष्टता है! यह कैसी आश्चर्यजनक ढिठाई है॥ ३१॥ मुझसे कर लेनेकी बात पहले-पहल सुननेमें आयी। इससे पूर्व कभी ऐसी बात नहीं सुनी गयी थी।' दूतसे ऐसा कहकर भगवान् केशवने यादवोंसे कहा—॥ ३२॥ 'यदुवरो! मुझसे जो कर-ग्रहणकी माँग है, यह कैसी उपहासास्पद बात है। राजा ब्रह्मदत्त राजसूय यज्ञ करेंगे और इस यज्ञके करानेवाले हैं उन्हींके बेटे हंस और डिम्भक। यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण उस दुरात्माके यहाँ नमक ढोकर ले जायँगे॥ ३३-३४॥ यदुश्रेष्ठ वीरो! मुझ वासुदेवको उसने कर देनेवाला कह दिया, मानो उसने मुझे युद्धमें पराजित कर दिया। यादवो! यह कितनी हँसीकी बात है, इसे तुमलोग फिर सुनो'॥ ३५॥ देवेश्वर श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर बलभद्र आदि समस्त यादव हंस-डिम्भकके उस कथनकी हँसी उड़ानेके लिये खड़े हो गये॥ ३६॥ 'श्रीकृष्ण कर देनेवाले हैं' ऐसा कहते हुए समस्त यादव परस्पर ताली बजाकर या एक-दूसरेका हाथ पकड़कर जोर-जोरसे हँसने लगे॥ ३७॥

तलशब्दो हासशब्दो रोदसी पर्यपूरयत्।
स च विप्रो नृपश्रेष्ठ निन्दयन् मित्रमात्मनः॥ ३८

अहो कष्टमहो कष्टं दौत्यं यत् कृतवानहम्।
इति लज्जासमाविष्टस्तूष्णीमासीदवाङ्मुखः॥ ३९

ताली बजाने और हँसनेकी गम्भीर ध्वनि पृथ्वी और आकाशमें गूँज उठी। नृपश्रेष्ठ! ब्राह्मण जनार्दन अपने मित्र हंसकी निन्दा करते हुए मन-ही-मन कहने लगे—'अहो! मैंने जो दूतका कार्य किया, यह बड़े कष्टकी बात है! बड़े कष्टकी बात है' ऐसा कहकर लज्जित हो वे नीचे मुख करके चुपचाप बैठे रहे॥ ३८-३९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने वासुदेववाक्ये पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११५॥

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका जनार्दनको संदेश देकर लौटाना

वैशम्पायन उवाच

हासं कुर्वत्सु तेष्वेवं केशवः केशिसूदनः।
उवाच वचनं दूतं गच्छ मद्वचनाद् द्विज॥ १

तावित्थं हंसडिम्भकौ ब्रूहि त्वरितविक्रमः।
बाणैर्दास्यामि निशितैः शार्ङ्गमुक्तैः शिलाशितैः॥ २

असिना वाथ दास्यामि निशितेन महात्मनोः।
शिरो वा छेत्स्यते चक्रं मत्करप्रहितं बलिम्॥ ३

यो वरं दत्तवान् रुद्रो युवयोर्धार्ष्ट्यकारणम्।
स एव रक्षिता वां स्यात् तं जित्वा वां निहन्म्यहम्॥ ४

देशोऽयं संविधातव्यो यत्र नः संगतिर्भवेत्।
तत्र गन्ता तथा चास्मि सबलः सहवाहनः॥ ५

भवन्तौ निर्भयौ भूत्वा गच्छेतां सबलौ नृपौ।
पुष्करे वा प्रयागे वा मथुरायामथापि वा॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब यादव इस प्रकार उपहास कर रहे थे, उस समय केशिहन्ता भगवान् केशवने दूतसे इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन्! आप मेरा संदेश लेकर जाइये॥ १॥ शीघ्रगतिसे वहाँ जाकर उन हंस और डिम्भकसे इस प्रकार कहिये—मैं शार्ङ्ग धनुषद्वारा छोड़े गये और शिलापर तेज किये गये पैने बाणोंद्वारा तुम दोनोंको कर दूँगा॥ २॥ अथवा उन महामनस्वी राजाओंको अपनी तीखी तलवारसे कर समर्पित करूँगा। अथवा मेरे हाथसे छोड़ा गया चक्र उनका सिर काट लेगा और उसीको करके रूपमें समर्पित करेगा॥ ३॥ भगवान् रुद्रने तुम दोनोंको जो वर दिया है, वही तुम दोनोंकी ढिठाईका कारण है। यदि वे रुद्रदेव ही तुम दोनोंके रक्षक हो जायँ तो मैं उनको भी जीतकर तुम दोनोंको मार डालूँगा॥ ४॥ राजाओ! कोई ऐसा स्थान निश्चित कर लेना चाहिये, जहाँ हमलोगोंका समागम हो। मैं सेना और सवारियोंसहित वहाँ उस स्थानमें आ जाऊँगा॥ ५॥ नरेश्वरो! तुम दोनों वीर भी निर्भय होकर सेनासहित वहाँ आ जाना। पुष्करमें या प्रयागमें अथवा मथुरामें जहाँ तुम्हारी इच्छा हो,

तत्राहं सबलो याता नात्र कार्या विचारणा।
अथवा मित्रभावाच्च वक्तुमेवं न ते क्षमम्॥ ७

न शक्यं यत् त्वया वक्तुं तच्च वक्ष्यति सात्यकिः।
त्वया सह ततो गत्वा साक्षिभूतो भव द्विज॥ ८

इदं च जाने विप्रेन्द्र स्नेहो मयि सदा तव।
तेन त्वं विजयी भूत्वा संसारे दुःखसंकुले।
मत्कथापरमो नित्यं सदा भव जनार्दन॥ ९

वहीं मैं सेनासहित आ जाऊँगा, इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं। अथवा मित्रताके नाते आपसे ऐसी बात कहलाना उचित न होगा। आप जिसे नहीं कह सकेंगे, उसे आपके साथ जाकर यह सात्यकि कहेंगे। ब्रह्मन्! आप केवल साक्षी बने रहें॥ ६—८॥ विप्रेन्द्र! मैं यह भी जानता हूँ कि आपका सदा मेरे ऊपर स्नेह बना रहता है। अतः जनार्दनजी! आप दुःखोंसे भरे हुए इस संसारमें विजयी होकर सदा नित्य-निरन्तर मेरी कथा-वार्तामें लगे रहिये'॥ ९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने षोडशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस और डिम्भकका उपाख्यानविषयक एक सौ सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११६॥

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिसहित जनार्दनका शाल्वनगरमें जाना, हंससे मिलना तथा हंसका जनार्दनसे कार्यसिद्धिके विषयमें पूछना

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा ब्राह्मणं कृष्णः सात्यकिं पुनराह सः।
गत्वा शैनेय विप्रेण ब्रूहि मद्वचनात् तयोः॥ १

यन्मयोक्तमशेषेण वद गत्वा तयोः पुरः।
यथा नः संगतिर्युद्धे तथा वद बलात् तदा॥ २

धनुरादाय गच्छ त्वं बद्धगोधाङ्गुलित्रवान्।
एकेनाश्वेन गच्छ त्वमसहायो यदूत्तम॥ ३

सात्यकिस्तं तथेत्युक्त्वा हयमारुह्य शीघ्रगम्।
गन्तुमैच्छत् ततो राजन्नसहायः स सात्यकिः॥ ४

जनार्दनं विसृज्याशु दूतं तं यादवेश्वरः।
अहो धाष्टर्यमहो धाष्टर्यमित्युवाच जनार्दनः॥ ५

नमस्कृत्य तदा दूतो माधवं माधवेश्वरम्।
स ययौ शाल्वनगरं शैनेयेन समन्वितः॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! ब्राह्मणसे ऐसा कहकर श्रीकृष्णने सात्यकिसे फिर कहा— 'शिनिनन्दन! तुम इन ब्राह्मण देवता जनार्दनके साथ जाकर मेरे कथनानुसार उन दोनों भाई हंस और डिम्भकसे कहो॥ १॥ मैंने जो कुछ कहा है, वह सब उन दोनोंके सामने जाकर कहो, जिससे हमलोगोंका युद्ध-स्थलमें शीघ्र समागम हो। उक्त उद्देश्यकी सिद्धिके लिये तुम बलपूर्वक भी बात कर सकते हो॥ २॥ यदुकुलतिलक सात्यके! तुम धनुष लेकर जाओ; हाथमें गोहके चमड़ेके बने दस्तानेको भी बाँध लेना, एकमात्र अश्वके साथ जाना, दूसरे किसी सहायकको साथ न लेना'॥ ३॥ सात्यकिने 'बहुत अच्छा' कहकर एक शीघ्रगामी अश्वपर आरूढ़ हो वहाँसे जानेका विचार किया। राजन्! उन्होंने कोई दूसरा सहायक साथ नहीं लिया था॥ ४॥ जनार्दन नामक दूतको शीघ्र ही बिदा करके यादवेश्वर जनार्दन बोले— 'अहो! हंस और डिम्भककी धृष्टता अद्भुत है, उनकी ढिठाई आश्चर्यजनक है'॥ ५॥ उस समय माधवेश्वर माधवको नमस्कार करके दूत जनार्दन सात्यकिके साथ शाल्वनगरको गये॥ ६॥

ततः प्रविश्य धर्मात्मा ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः।
आसनं महदास्थाय विसृज्य यादवे पुनः॥ ७

आस्ते सुखं यदा विप्रः शैनेयेन समन्वितः।
अथ तं हंसडिम्भयोर्दर्शयामास सात्यकिम्॥ ८

दूतोऽयं सात्यकिः प्राप्तः सव्यो बाहुरयं हरेः।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा हंसः प्राह वचस्तदा॥ ९

श्रुतः समागमः पूर्वमद्य दृष्टो मया त्वसौ।
धनुर्वेदे च वेदे च शास्त्रे शस्त्रे तथैव च॥ १०

निपुणोऽयं सदा धीर इत्येवमनुशुश्रुम।
अथो दृष्टिपथं प्राप्तः प्रीतिं नौ विदधात्यसौ॥ ११

कुशलं वासुदेवस्य बलभद्रस्य वा पुनः।
कुशलाः सात्वताः सर्वे उग्रसेनपुरोगमाः॥ १२

तथेति सात्यकिः प्राह मन्दमुन्मथिताननः।
ततो जनार्दनं प्राह हंसो वाक्यविशारदः॥ १३

अपि दृष्टस्त्वया चक्री सिद्धं नः कार्यमीहितम्।
वद सर्वमशेषेण मा वृथा कालमत्यगाः॥ १४

ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा ब्राह्मण जनार्दन वहाँ राजसभामें प्रवेश करके सात्यकिको एक महान् आसन देकर जब स्वयं भी उस श्रेष्ठ आसनपर उनके साथ सुखपूर्वक बैठ गये, तब उन्होंने हंस और डिम्भकसे सात्यकिको मिलाया॥ ७-८॥ उस समय वे बोले— 'राजन्! यह सात्यकि द्वारकासे दूत होकर आये हैं। ये भगवान् श्रीकृष्णकी दाहिनी* भुजाके समान हैं।' जनार्दनकी यह बात सुनकर हंस बोला—॥ ९॥ 'पहले इसके समागम होनेकी बात सुननेमें आयी थी, आज मुझे इसका दर्शन हो गया। हमने सुना है कि यह वीर सात्यकि वेद, धनुर्वेद, शास्त्र-विद्या और शस्त्र-विद्यामें सदा निपुण एवं धीर है। अब हमारी दृष्टिपथमें आकर यह हम दोनों भाइयोंको प्रीति प्रदान कर रहा है॥ १०-११॥ सात्यके! वासुदेव श्रीकृष्ण और बलभद्र कुशलसे तो हैं न? उग्रसेन आदि सभी यादव सकुशल हैं न?'॥ १२॥ तब सात्यकिने मन्दस्वरमें कहा—'जी हाँ! सब लोग सकुशल हैं।' उस समय उनका मुख रोषसे तमतमा उठा था। तदनन्तर बातचीत करनेमें कुशल हंसने जनार्दनसे कहा—॥ १३॥ 'ब्रह्मन्! क्या तुम चक्रधारी श्रीकृष्णसे मिले थे? क्या हमारा अभीष्ट कार्य सिद्ध हुआ? वहाँका सब समाचार पूर्णरूपसे बताओ, व्यर्थ समय न बिताओ'॥ १४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हंसवाक्ये सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें हंसका वाक्यविषयक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११७॥

---

* 'सव्य' शब्दका अर्थ बायाँ और दाहिना भी है। देखिये संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ।

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

जनार्दनका हंसको श्रीकृष्णदर्शनजनित अपना उल्लास बताना, द्वारकामें हंसके संदेशकी प्रतिक्रियाका वर्णन करके उसे राजसूय न करनेकी सलाह देना, हंसका उसे रोषपूर्वक तिरस्कृत करके चले जानेके लिये कहना, फिर सात्यकिका हंसको श्रीकृष्णका संदेश सुनाते हुए फटकारना

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्तवति हंसे च धर्मात्माथ जनार्दनः।
उवाच प्रहसन् वीरः स्तुवन् नारायणं सदा॥ १

अद्राक्षमद्राक्षमहं जनार्दनं
हस्तस्थशङ्खं वरचक्रधारिणम्।
आतप्तजाम्बूनदभूषिताङ्गदं
स्फुरत्प्रभाद्योतितरत्नधारिणम्॥ २

अद्राक्षमेनं यदुभिः पुरातनैः
संसेव्यमानं मुनिवृन्दमुख्यैः।
संस्तूयमानं प्रभुभिः समागधैः
स्मितप्रवालाधरपल्लवारुणम्॥ ३

अद्राक्षमेनं कविभिः पुरातनै-
र्विविच्य वेद्यं विधिवत्सहामरैः।
प्रफुल्लनीलोत्पलशोभितं श्रिया
विनिद्रहेमाब्जविराजितोदरम्॥ ४

भूयोऽहमद्राक्षमजं जगद्गुरुं
प्रमोदयन्तं वचनेन यादवान्।
निरूपयन्तं विधिवन्मुनीश्वरैः
प्रवृत्तवेदार्थविधिं पुरातनैः॥ ५

अद्राक्षमद्राक्षमहं पुनः पुनः
समस्तलोकैकहितैषिणं हरिम्।
वसन्तमस्मिञ्जगतो हिताय
जगन्मयं तान् परिभूय शत्रून्॥ ६

भूयोऽप्यपश्यं सह यादवेश्वरै-
र्विक्रीडमानं च विहारकाले।
रमन्तमीड्यं रमयन्तमीश्वरान्
यदूत्तमान् यादवमुख्यमीश्वरम्॥ ७

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! हंसके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा वीर जनार्दनने, जो नारायण-स्वरूप श्रीकृष्णकी सदा स्तुति करता था, हँसते हुए कहा— ॥ १ ॥ 'हाँ! मैंने उन जनार्दनका दर्शन किया है! दर्शन किया है!! जिनके एक हाथमें शङ्ख शोभा पाता है तथा जो दूसरे हाथमें श्रेष्ठ चक्र धारण करते हैं, जिनका बाजूबन्द तपाये हुए जाम्बूनद नामक सुवर्णसे भूषित है तथा जो झलमलाती हुई प्रभासे प्रकाशित रत्न (कौस्तुभमणि) धारण करते हैं ॥ २ ॥ मैंने इन भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन किया है, जिनकी सेवामें पुरातन यादव-वीर तथा मुख्य-मुख्य मुनिवृन्द उपस्थित रहते हैं, मागधोंसहित बहुत-से राजा भी इनकी स्तुति करते हैं, मूँगे तथा नूतन पल्लवके समान इनका अरुण अधर मन्द मुसकानकी आभासे प्रकाशित होता रहता है ॥ ३ ॥ प्राचीन विद्वान् ऋषि-मुनि देवताओंके साथ बैठकर जिनके स्वरूपका विधिपूर्वक विवेचन करके उसे जाननेके योग्य बताते हैं, जो खिले हुए नीलकमलके समान श्यामकान्तिसे सुशोभित हैं तथा जिनका उदर विकसित सुवर्णमय कमलसे सुशोभित होता है, उन्हीं पद्मनाभस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका मैंने दर्शन किया है ॥ ४ ॥ मैंने बारम्बार उन अजन्मा जगद्गुरुका दर्शन किया, जो अपनी वाणीद्वारा यादवोंको आनन्द प्रदान कर रहे थे और प्राचीन मुनीश्वरोंके साथ प्रवृत्तिमार्ग-सम्बन्धी वेदार्थके विधानका विधिपूर्वक निरूपण करते थे ॥ ५ ॥ मैंने समस्त लोकोंके एकमात्र हितैषी उन जगन्मय श्रीहरिका बारम्बार दर्शन किया है, जो जगत्के हितके लिये इसके समस्त शत्रुओंको पराजित करके इस भूलोकमें निवास करते हैं ॥ ६ ॥ यादवकुलके प्रधान पुरुष तथा स्तवनीय ईश्वररूप उन श्रीकृष्णका मैंने अनेक बार दर्शन किया है, जो विहारकालमें यादवेश्वरोंके साथ नाना प्रकारकी क्रीडाएँ करते हैं तथा स्वयं तो क्रीडाओंमें रत रहते ही हैं, सामर्थ्यशाली यादवशिरोमणियोंको भी उनमें प्रवृत्त करते रहते हैं' ॥ ७ ॥

भूयोऽप्यपश्यं सरसीरुहेक्षणं
समेतया भीष्मतनूजया हरिम्।
वसन्तमम्भोनिधिशायिनं विभुं
भक्तप्रियं भक्तजनास्पदं शिवम्॥ ८

अद्राक्षमद्राक्षमहं सुनिर्वृतः
पिबन् पिबंस्तस्य वपुः पुरातनम्।
नेत्रेण मीलद्विवरेण केवलं
धन्योऽहमस्मीति तदा व्यचिन्तयम्॥ ९

अद्राक्षमम्भोजयुगं दधानं
प्रभुं विभुं भूतमयं विभावनम्।
आद्यं ककुद्मानमुरुं विभावसुं
संस्मृत्य संस्मृत्य तमेव निर्वृतः॥ १०

अद्राक्षं जगतामीशं वक्षोराजितकौस्तुभम्।
वीज्यमानं हरिं कृष्णं चामराणां शतैः सदा॥ ११

युवां विद्वेषयुक्तेन चेतसा यादवेश्वरम्।
स्मरन्तं सर्वदा विष्णुं क्व चैवं क्व च वेत्ति कः॥ १२

क्व च द्रक्ष्यामि तौ मन्दौ कुतो वा मत्पुरो गतौ।
ध्यायन्तमित्थं देवेशं करे शङ्खवहं सदा॥ १३

हसन्तमेनमद्राक्षं करदं हास्यतत्परम्।
वदन्तं नारदे वाचं दुर्वाससि यतीश्वरे॥ १४

ब्रह्मसूत्रपदां वाणीं दापयन्तं मुनीश्वरम्।
दृष्ट्वाहं तं हरिं देवं पुनः पुनरचिन्तयम्॥ १५

असाध्यमिदमारब्धं ताभ्यामिति नृपोत्तम।
नारब्धव्यमिदं कार्यमितःप्रभृति भूमिप॥ १६

निवृत्ता सा कथा हंसाचिन्तयद् ग्रहणं तव।
तद् वृत्तमखिलं सर्वं वदिष्यति हि सात्यकिः।
एतद् वचनमाकर्ण्य हंसः क्रुद्धोऽब्रवीद् वचः॥ १७

'मैंने पुनः उन कमलनयन श्रीहरिका दर्शन किया, जो पत्नीरूपमें प्राप्त हुई भीष्मनन्दिनी रुक्मिणीदेवीके साथ द्वारकामें निवास करते हैं, नारायणरूपसे समुद्रके जलमें सोते हैं तथा जो वैभवशाली, भक्तप्रिय, भक्तजनोंके आश्रय तथा कल्याणस्वरूप हैं॥ ८॥ मैंने अत्यन्त आनन्दमग्न होकर बारम्बार भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन किया है और अपलक नेत्रके द्वारा उनके पुरातन श्रीअङ्गकी शोभाका पान किया है। उस समय मैं अपने विषयमें केवल यही सोचता रहा कि 'मैं धन्य हो गया'॥ ९॥ मैंने देखा कि वे सर्वसमर्थ, सर्वव्यापी, भूतमय तथा सबका पालन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण अपने हाथोंमें दो कमल लिये हुए थे। मैं उन्हीं माहात्म्यशाली, प्रकाशमान, आदि पुरुष एवं महान् ईश्वरका बारम्बार स्मरण करके आनन्दमग्न हो रहा हूँ॥ १०॥ जिनके वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि प्रकाशित होती है तथा जिनपर सौ-सौ चँवर डुलाये जाते हैं, उन जगदीश्वर श्रीकृष्ण हरिका मैंने दर्शन किया है॥ ११॥ वे यादवेश्वर विष्णु विद्वेषयुक्त चित्तसे सदा तुम दोनोंका स्मरण करते थे और जानना चाहते थे कि वे दोनों कहाँ हैं? तथा कहाँ और कौन उन्हें जानता है?॥ १२॥ उन दोनों मूर्खोंको मैं कब देखूँगा? वे किस उपायसे मेरे सामने उपस्थित होंगे? हाथमें शङ्ख लिये हुए वे देवेश्वर निरन्तर ऐसी ही बात सोच रहे थे॥ १३॥ अपनेको करदाता सुनकर वे हँसने लगे और तुम्हारे उपहासमें तत्पर हो गये, उस अवस्थामें मैंने उन्हें देखा था। वे देवर्षि नारद तथा यतीश्वर दुर्वासासे बात करते थे॥ १४॥ वे मुनीश्वर दुर्वासाको ब्रह्मसूत्रके पदोंसे युक्त वेदान्तमयी वाणीका शिष्योंको उपदेश देने या पढ़ानेके लिये अनुमति दे रहे थे। उस समय उन भगवान् श्रीहरिका दर्शन करके मैंने बारम्बार इस प्रकार विचार किया॥ १५॥ 'मेरे उन मित्रोंने यह असाध्य कार्य आरम्भ किया है। नृपश्रेष्ठ! भूमिपाल! अबसे आप दोनोंको इस कार्यका आरम्भ नहीं करना चाहिये॥ १६॥ श्रीकृष्णसे कर लेना है, यह तुम्हारी बात जब वहाँ समाप्त हो गयी, तब भगवान् श्रीकृष्णने तुम्हें कैद करनेकी बात सोची थी। यह सारा वृत्तान्त सात्यकि ही तुम्हें बतायेंगे।' जनार्दनकी यह बात सुनकर हंसने कुपित होकर कहा॥ १७॥

हंस उवाच

अरे ब्राह्मणदायाद का नाम तव वागियम्।
आवयोः पुरतो वक्तुं त्रैलोक्यं जेतुमिच्छतोः॥ १८

मायया त्वां भ्रामयति कृष्णो लीलाविधानवित्।
तं दृष्ट्वा भ्रम एवैष तव संजायते महान्॥ १९

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवनमालाविभूषितम्।
वृष्णिवीरं समावेक्ष्य समुच्छ्रितयशोधरम्॥ २०

सूतमागधसंस्तावप्रकटद्बाहुवीर्यकम्।
अत्यद्भुतयशोराशिं विक्रमाल्लोकमण्डनम्॥ २१

चतुर्भुजं बलाक्रान्तं वृष्णियादवसम्मतम्।
अहोऽद्य भ्रम एवैष दर्शनात् तस्य चक्रिणः॥ २२

इदानीं च महाराज भ्रामयत्येव दुर्मतिः।
त्वामेव विप्र मन्दात्मन्निन्द्रजालिकता हि या॥ २३

चापल्यमिदमेवैतत् तव विप्र भ्रमोद्भवम्।
अहो हि खलु सादृश्यं वक्तव्यं भवता मम॥ २४

अहमेव त्वया विप्र मर्षये प्रोदितं वचः।
सखिभावाद् द्विजश्रेष्ठ अन्यथा कः सहेदिदम्॥ २५

गच्छ मन्दमते विप्र यथेष्टं साम्प्रतं तव।
द्विज गच्छ यथेष्टं त्वं पृथिवीं पृथिवी तव॥ २६

जित्वा गोपालदायादं हत्वा यादवकान् बहून्।
एष नः प्रथमः कल्पो जेष्याम इति यादवान्॥ २७

गच्छ गच्छेति विप्र त्वं धृष्टं परुषवादिनम्।
शत्रुपक्षस्तुतिपरं सह युक्त्वा सदा मया॥ २८

न मे विप्रवधः कार्यः कष्टादपि हि सर्वतः।
इत्युक्त्वा ब्राह्मणं भूयो हंसः सात्यकिमब्रवीत्॥ २९

भो भो यादवदायाद किमर्थं प्राप्तवानिह।
किमब्रवीन्नन्दसुतः किं वासौ मेऽदिशत् करम्॥ ३०

हंस बोला—अरे ओ ब्राह्मणके बेटे! यह तुम्हारे मुखसे कैसी बात निकल रही है। तीनों लोकोंको जीतनेकी इच्छा करनेवाले हम दोनों वीरोंके आगे कहनेके लिये क्या तुम्हें यही बात मिली है॥ १८॥ लीलाविधानके ज्ञाता श्रीकृष्ण तुम्हें मायासे चक्करमें डाल रहे हैं। उनका दर्शन करके तुम्हारे मनमें यह महान् भ्रम ही उत्पन्न हो गया है॥ १९॥ जो शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और वनमालासे विभूषित हैं, सब ओर फैले हुए यशको धारण करते हैं। सूतों और मागधोंद्वारा की गयी स्तुतिमात्रसे जिनके बाहुबलका कुछ पता चलता है। जो अत्यन्त अद्भुत यशकी राशि हैं और अपने पराक्रमसे लोकको अलंकृत करते हैं। जिनके चार भुजाएँ हैं। जो सेनाओंसे घिरे हुए तथा वृष्णि और यादवकुलके सम्मानित पुरुष हैं, उन वृष्णिवीर श्रीकृष्णका दर्शन करके तुम चक्करमें पड़ गये हो। अहो! उस चक्रपाणिके दर्शनसे आज तुम्हें भ्रम ही हो गया॥ २०—२२॥ महाराज! मन्दमते विप्र! इस समय भी यह दुर्बुद्धि कृष्ण तुम्हें चक्करमें ही डाले हुए है। उसकी जो इन्द्रजालिकता (बाजीगरी) है, वह तुमपर ही प्रभाव डालती है॥ २३॥ विप्र! यह तुम्हारा भ्रमजनित चापल्य ही प्रकट हुआ है। अहो! तुम्हें मेरी और उनकी समानता बतानी चाहिये थी (किंतु तुमने हमारी लघुता व्यक्त की है)॥ २४॥ ब्रह्मन्! द्विजश्रेष्ठ! एक मैं ही हूँ, जिसने मित्रताके कारण तुम्हारी इस अनुचित बातको सह लिया, अन्यथा कौन ऐसी बात सह सकता है?॥ २५॥ मन्दबुद्धि ब्राह्मण! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो चले जाओ, इस समय सारी पृथ्वी तुम्हारे लिये खुली हुई है। द्विज! तुम भूतलपर चाहे जहाँ जा सकते हो॥ २६॥ मैं उस ग्वालबालको जीतकर और बहुत-से यादवोंका संहार करके अपना यज्ञ करूँगा। हमारा पहला संकल्प यही है कि 'हम यादवोंको जीतेंगे'॥ २७॥ ब्राह्मण! जाओ! जाओ!! तुम धृष्ट और कटुवादी हो! सदा मेरे साथ रहकर भी शत्रुपक्षकी स्तुतिमें लगे रहे हो (इसलिये मैंने तुम्हें त्याग दिया)॥ २८॥ सब ओरसे कष्ट प्राप्त होनेपर भी मुझे ब्राह्मणका वध नहीं करना चाहिये (इसीलिये तुम्हें जीवित छोड़ रहा हूँ)। ब्राह्मणसे ऐसा कहकर हंसने फिर सात्यकिसे कहा—॥ २९॥ 'ओ यादवकुमार! तुम किसलिये यहाँ आये हो? उस नन्दपुत्रने तुमसे क्या कहा है? अथवा उसने मेरे लिये कौन-सा कर प्रदान किया है?'॥ ३०॥

सात्यकिरुवाच

इदं सत्यं वचो हंस शङ्खचक्रगदाभृतः।
शरैर्निशितधाराग्रैः शार्ङ्गमुक्तैः शिलाशितैः॥ ३१

दास्यामि करसर्वस्वमसिना निशितेन ते।
शिरश्छेत्स्यामि ते हंस करदानस्य संग्रहम्॥ ३२

धाष्टर्यं हि तव मन्दात्मन् किमतोऽपि नृपाधम।
देवदेवाज्जगन्नाथात् करमिच्छति यो नृपः॥ ३३

तस्यैष करसंक्षेपो जिह्वाच्छेदो नराधम।
तस्य शार्ङ्गरवं श्रुत्वा शङ्खस्य च हरेः पुनः॥ ३४

को नाम जीवितं काङ्क्षेत् तिष्ठेदानीं त्वमद्य वै।
गिरीशवरदर्पेण को ब्रूयादीदृशं वचः॥ ३५

सहाया वयमेवैते बलभद्रपुरोगमाः।
प्रथमो बलभद्रोऽसौ द्वितीयोऽहं च सात्यकिः॥ ३६

कृतवर्मा तृतीयस्तु चतुर्थो निशठो बली।
पञ्चमोऽथ च बभ्रुस्तु षष्ठश्चैवोत्कलः स्मृतः॥ ३७

सप्तमस्तारणो धीमानस्त्रशस्त्रविशारदः।
अष्टमस्त्वथ सारङ्गो नवमो विपृथुस्तथा॥ ३८

दशमश्चोद्धवो धीमान् वयमेते बलान्विताः।
त एते पुरतो गोप्तुः शङ्खचक्रगदाभृतः॥ ३९

देवदेवस्य युद्धेषु तिष्ठन्त्येव दिवानिशम्।
यौ हि वीरौ सुतौ तस्य नासत्यसदृशौ बले॥ ४०

तावेव वां क्षमौ युद्धे हन्तुं बलमदान्वितौ।
यो गिरीशो गिरां देवो वरं दत्त्वा स तिष्ठति॥ ४१

युवां हि किंबलौ युद्धे तिष्ठतः सशरं धनुः।
गृहीत्वा शत्रुभिः सार्धं युद्धं कर्तुं समुद्यतौ॥ ४२

ईदृशेष्वथ भृत्येषु युद्धं कुर्वत्सु शत्रुभिः।
त्रैलोक्यं रक्षतस्तस्मात् करमिच्छन् व्रजेत कः॥ ४३

हनिष्यत्येव वां युद्धे त्रैलोक्यं यो हि रक्षति।
शरेण निशितेनाजौ शार्ङ्गमुक्तेन केवलम्॥ ४४

क्व नः संग्राम इत्येवं पुनराह जगत्पतिः।
पुष्करे पुण्यदे नित्यमुत गोवर्धने गिरौ॥ ४५

सात्यकि बोले—हंस! शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले श्रीकृष्णका यह सत्य वचन सुनो। उनका कहना है कि 'मैं शार्ङ्ग धनुषसे छूटे हुए, शिलापर तेज किये गये और पैनी धारवाले बाणोंद्वारा तुम्हारा सारा कर चुका दूँगा। हंस! अपनी तीखी तलवारसे तेरा सिर काट लूँगा', यह तेरे लिये करदानका अच्छा संग्रह होगा'॥ ३१-३२॥ मन्दात्मन्! नृपाधम! इससे बढ़कर तेरी धृष्टता क्या हो सकती है? नराधम! जो राजा देवाधिदेव जगन्नाथसे कर लेना चाहता है, उसकी जीभ काट ली जाय, यही उसके करको समाप्त करनेका उपाय है। श्रीहरिके शार्ङ्ग धनुषकी टङ्कार और पाञ्चजन्य शङ्खका हुंकार सुनकर कौन जीवित रहनेकी आशा कर सकता है। तू अब हमारे सामने खड़ा तो हो। भगवान् शङ्करसे मिले वरके घमंडमें आकर कौन पुरुष भगवान् श्रीकृष्णसे ऐसी बात कह सकता है, जैसी तूने कही है। बलभद्र आदि हम सभी वीर श्रीकृष्णके सहायक हैं। प्रथम तो बलभद्रजी हैं, दूसरा मैं सात्यकि हूँ, तीसरा कृतवर्मा है, चौथा बलवान् निशठ है, पाँचवाँ बभ्रु, छठा उत्कल, सातवाँ अस्त्र-शस्त्रविशारद बुद्धिमान् तारण, आठवाँ सारङ्ग, नवाँ विपृथु और दसवें बुद्धिमान् उद्धवजी हैं। ये हम सभी सहायक बल-पराक्रमसे सम्पन्न हैं। ये सभी वीर समस्त युद्धोंमें अपने रक्षक शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवाधिदेव श्रीकृष्णके आगे ही खड़े होते हैं। उनके जो दो विख्यात पुत्र (प्रद्युम्न और साम्ब) हैं, वे दोनों बलमें अश्विनीकुमारोंके समान हैं। केवल वे दोनों ही युद्धमें बलके मदसे उन्मत्त हुए तुम दोनों भाइयोंको मार सकते हैं। वाणीके देवता जो गिरीश शिव हैं, वे तो वर देकर अलग खड़े हैं। तुम दोनों किसके बलका सहारा लेकर युद्धमें खड़े हुए हो और धनुष-बाण लेकर शत्रुओंके साथ जूझनेको तैयार हुए हो?॥ ३३—४२॥ जिनके हम-जैसे सेवक शत्रुओंके साथ युद्ध कर रहे हों, त्रिलोकीकी रक्षा करनेवाले उन जगदीश्वरसे कर लेनेकी इच्छा रखकर कौन जीवित लौट सकता है?॥ ४३॥ जो तीनों लोकोंकी रक्षा करते हैं, वे भगवान् श्रीकृष्ण युद्धस्थलमें केवल शार्ङ्ग धनुषसे छूटे हुए पैने बाणसे तुम दोनोंको अवश्य मार डालेंगे॥ ४४॥ उन जगदीश्वरने फिर यह पूछा था कि हमलोगोंका यह संग्राम कहाँ होगा? सदा ही पुण्य प्रदान करनेवाले पुष्करमें, गोवर्धन पर्वतपर,

मथुरायां प्रयागे वा दर्शयन्तो बलानि मे।
शङ्खचक्रधरे देवे जगत्पालनतत्परे॥ ४६

राजसूयं महायज्ञं कर्तुमिच्छति कः स्वयम्।
वदन् वा स्वस्तिमान् मर्त्यस्त्वां विना को व्रजेत् सुखम्॥ ४७

इदमिच्छसि चेन्मूढ हास्यतां यासि भूतले।
इत्युक्त्वा सात्यकिर्वीरो हसन्निव भुवि स्थितः॥ ४८

मथुरामें अथवा प्रयागमें। जहाँ इच्छा हो मुझे अपना बल दिखानेके लिये आ जायँ। शङ्ख और चक्र धारण करनेवाले श्रीकृष्ण जब जगत्‌के पालनमें तत्पर हों, उस समय कौन उनकी आज्ञा लिये बिना स्वयं राजसूय नामक महायज्ञका अनुष्ठान करना चाहेगा? अथवा तुम्हारे सिवा दूसरा कौन मनुष्य है, जो ऐसी बात कहकर सकुशल एवं सुखपूर्वक घरको जा सकता है?॥ ४५—४७॥ मूढ! यदि तू ऐसा चाहता है तो इस भूतलपर उपहासका पात्र बनेगा। ऐसा कहकर वीर सात्यकि हँसते हुए-से भूतलपर खड़े हो गये॥ ४८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने सात्यकिवाक्ये अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें सात्यकिका वाक्यविषयक एक सौ अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११८॥

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

हंस और डिम्भकके सात्यकिके प्रति रोषपूर्ण वचन तथा सात्यकिका उन्हें वैसा ही उत्तर देकर द्वारकाको प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

ततः क्रुद्धौ महाराज हंसो डिम्भक एव च।
इदं वै प्रोचतुर्वाक्यं रोषव्याकुलितेक्षणौ॥ १

दिधक्षन्तौ दिशः सर्वाः सर्वान् वीक्ष्य नृपोत्तमान्।
करेण निष्पीड्य करं स्मरन्तौ तद्वचो महत्॥ २

क्व नु क्व वा नन्दसूनुः क्व वा रामो बलोत्कटः।
इति ब्रुवाणौ साक्षेपौ सात्यकिं सत्यसंगरम्॥ ३

अरे यादवदायाद किं ब्रूषे नः पुरो गतः।
इतो निर्गच्छ मन्दात्मन् दूतस्त्वमसि साम्प्रतम्॥ ४

अन्यथा वध्य एव त्वं प्रलपन् परुषं वचः।
सत्यं निर्लज्ज एवासि यद् ब्रूया ईदृशं वचः॥ ५

आवामिदं जगत् सर्वं शासितुं संयतौ नृपौ।
को नाम मानुषे लोके करदो नैव जीवति॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज! सात्यकिकी यह बात सुन कर हंस और डिम्भक कुपित हो उठे। उनके नेत्र रोषसे चञ्चल हो उठे। वे सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर इस प्रकार देखने लगे, मानो उन्हें जलाकर भस्म कर देना चाहते हैं। उन्होंने समस्त श्रेष्ठ नरेशोंकी ओर देखकर और एक हाथसे दूसरे हाथको दबाकर सात्यकिके उस महान् वचनका स्मरण करते हुए इस प्रकार कहा—॥ १-२॥ 'कहाँ है? कहाँ है? वह नन्दका बेटा, और कहाँ है वह बलोन्मत्त बलराम' सत्यप्रतिज्ञ सात्यकिपर आक्षेप करके ऐसी बातें कहते हुए वे दोनों फिर बोले—॥ ३॥ 'अरे ओ यादवके बच्चे! हमारे सामने आकर तू यह क्या बक रहा है? मन्दात्मन्! तू यहाँसे निकल जा। इस समय दूत बनकर आया है, नहीं तो ऐसा कठोर वचन कहनेके कारण तू मार डालनेके योग्य था। 'सचमुच तू निर्लज्ज ही है, जो ऐसी बातें बक रहा है। हम दोनों नरेश इस सम्पूर्ण जगत्‌पर शासन करनेके लिये उद्यत हैं। मनुष्यलोकमें कौन ऐसा पुरुष है, जो हमें कर न देकर जीवित रह सके?'॥ ४—६॥

हत्वा गोपालकान् सर्वान् बद्ध्वा यादवकान् बहून्।
गृह्णीमः करसर्वस्वं ततो गच्छ नराधम॥ ७

अवध्यो दूततां प्राप्तो बह्वबद्धं प्रभाषसे।
ईश्वरो नौ वरं दाता ह्यस्त्राणामपि च प्रभुः॥ ८

रक्षितारौ महाभूतौ संग्रामं गच्छतोश्च नौ।
पितरं याजयिष्यावो जित्वा गोपालकं रणे॥ ९

एते प्रोक्ता भृशं युद्धे कातराः सर्व एव ते।
हत्वा तान् सबलान् युद्धे पुनर्जेष्यामि केशवम्॥ १०

संहर्तव्या महासेना प्रगृहीतशरासना।
गृहीतप्रासमुशला गृहीतकवचा सदा॥ ११

आरूढरथसाहस्त्रा गदापरिघसंकुला।
सुप्रभूतेन्धनवती प्रभूतबलसाधना॥ १२

चाल्यतां वाहिनी घोरा बलाध्यक्षाः समन्ततः।
अवध्य एव गच्छ त्वं न ते मरणतो भयम्॥ १३

संग्रामः पुष्करेऽस्माकं श्वः परश्वोऽपि वा नृप।
ततो ज्ञास्यामहे वीर्यं केशवस्य बलस्य च।
ये त्वयोक्ता नृपाः संख्ये तेषामपि च यद् बलम्॥ १४

सात्यकिरुवाच

हंसागच्छामि वां हन्तुं श्वः परश्वोऽपि वा नृप।
अद्यैव हि मया वध्यौ न चेद् दूतो भवाम्यहम्॥ १५

न हि श्वो वा परश्वो वा युवां कटुकभाषिणौ।
दौत्ये हि दुःखमतुलं वहाम्येव सदा नृणाम्॥ १६

अन्यथाहं युवां हत्वा ततो यास्यामि निर्वृतिम्।
स्ववीर्यं बाहुदर्पं च दर्शयन् वां नृपाधमौ॥ १७

'हम समस्त ग्वालों और बहुसंख्यक यादवोंको कैद करके उनका सर्वस्व करके रूपमें ग्रहण करेंगे। अतः नराधम! तू यहाँसे चला जा॥ ७॥ तू बहुत अंट-संट बक रहा है, किंतु क्या किया जाय, दूत बनकर आया है, इसलिये अवध्य है। भगवान् शङ्करने हम दोनोंको वर दिया है और वे ही हमारे अस्त्रोंके भी दाता हैं। संग्राममें जाते समय दो महाभूत हम दोनोंकी रक्षा करते हैं। हमलोग उस ग्वालेको जीतकर अपने पितासे राजसूय यज्ञ करायेंगे॥ ८-९॥ तुमने जिन सहायकोंके नाम बताये हैं, वे सब-के-सब युद्धमें अत्यन्त ही कायर हैं। मैं रणभूमिमें सेनासहित उन सबको मारकर फिर केशवको पराजित करूँगा'॥ १०॥ 'इस समय धनुष-बाण धारण करनेवाली विशाल सेनाका संग्रह करना है। वह प्रास, मुसल, कवच आदिसे सम्पन्न होगी। उसमें सहस्रों रथ होंगे, जिनमें रथी वीर आरूढ़ रहेंगे। वह सेना गदा और परिघ आदि अस्त्रोंसे भरी-पूरी होगी, उसके पास बहुत-से ईंधन होंगे तथा वह प्रचुर बल एवं साधनसे सम्पन्न होगी। ऐसी भयङ्कर वाहिनी युद्धके लिये कूँच करे। सेनानायकगण चारों ओरसे इसकी देख-रेख करें, तू अवध्य रहकर ही चला जा। तुझे यहाँ मृत्युसे भय नहीं है॥ ११—१३॥ नरेश्वर! कल-परसोंतक हमलोगोंका पुष्करमें संग्राम होगा। उस समय हम समझ लेंगे कि श्रीकृष्ण और बलराममें कितना बल है। तूने जिन नरेशोंके नाम बताये हैं, उनमें भी युद्धके मुहानेपर कितना बल है, इसका पता लग जायगा'॥ १४॥

सात्यकि बोले—राजा हंस! मैं तुम दोनों भाइयोंका वध करनेके लिये कल या परसों भी आऊँगा। यदि मैं दूत न होता तो आज ही तुम दोनों मेरे हाथसे मार डाले जाते॥ १५॥ तुम दोनों कटुभाषियोंको मैं कल या परसोंके लिये जीवित नहीं छोड़ता। मनुष्योंको दूत बननेपर भी सदा अनुपम दुःखका सामना करना पड़ता है। मैं भी उस महान् दुःखका भार ढो रहा हूँ॥ १६॥ अन्यथा नीच नरेशो! मैं अपने पराक्रम और बाहुबलका घमंड दिखाता हुआ तुम दोनों भाइयोंको मारकर परम संतोष प्राप्त करता॥ १७॥

शङ्खचक्रगदापाणिः शार्ङ्गधन्वा किरीटभृत्।
नीलकुञ्चितकेशाढ्यो लम्बबाहुः श्रिया वृतः॥ १८

स सर्वलोकप्रभवो विश्वरूपः सुरूपवान्।
दैत्यदानवहन्तासौ योगिध्येयः पुरातनः॥ १९

पद्मकिञ्जल्कनयनः श्यामलः सिंहविक्रमः।
सृष्टिस्थितिलयेष्वेकः कर्ता त्रिजगतो गुरुः॥ २०

शरेण निशितेनाजौ दर्पं वां व्यपनेष्यति।
इत्युक्त्वा रथमारुह्य प्रययौ सात्यकिः किल॥ २१

जो अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग धनुष धारण करते हैं, जिनके मस्तकपर मुकुट शोभा पाता है, जो काले-काले घुँघराले केशोंसे अलङ्कृत हैं, जिनकी भुजाएँ बहुत बड़ी हैं, जो अनुपम शोभासे सम्पन्न हैं, सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिके कारण हैं, सम्पूर्ण विश्व जिनका रूप है, जो परम सुन्दररूपसे सुशोभित हैं, योगीजन जिनका ध्यान करते हैं, जो दैत्यों और दानवोंका वध करनेवाले पुराणपुरुष हैं, जिनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान सुन्दर हैं, जिनकी अङ्गकान्ति श्याम है, जो सिंहके समान बल-विक्रमशाली तथा सृष्टि, पालन और संहारके एकमात्र कर्ता हैं, वे तीनों लोकोंके गुरु भगवान् श्रीकृष्ण युद्धस्थलमें तीखे बाणोंसे तुम दोनों भाइयोंका घमंड चूर करेंगे। ऐसा कहकर सात्यकि रथपर आरूढ़ हो चले गये॥ १८—२१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने सात्यकिप्रतिप्रयाणे एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ ११९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें सात्यकिका प्रत्यागमनविषयक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११९॥

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्ण तथा यादवसेनाका पुष्करतीर्थमें जाकर हंस और डिम्भककी प्रतीक्षा करना

वैशम्पायन उवाच

प्रविश्य स पुरं विष्णोः सात्यकिः शिनिपुङ्गवः।
आचचक्षेऽथ कृष्णाय यथा वृत्तं तयोस्तथा॥ १
ततः प्रभाते विमले केशवः केशिसूदनः।
बलाध्यक्षानुवाचेदं चक्रपाणिर्गदाधरः॥ २
संनह्यतां बलं सर्वं रथकुञ्जरवाजिमत्।
अनेकभेरीपणवं प्रासासिपरिघाकुलम्॥ ३
सध्वजं सपताकं च सालंकारपरिच्छदम्।
ते तथेति प्रतिज्ञाय सर्वं चक्रुरधीनगाः॥ ४
आदाय सुदृढं चापं रथमारुह्य दंशिताः।
अग्रतो जग्मुरत्यर्थं सेनायाः पुरुषोत्तमाः॥ ५
सात्यकिश्च तथा राजन् प्रगृहीतशरासनः।
बभौ क्रोधसमायुक्तो जगामाग्रे महाबलः॥ ६
अन्ये च यादवाः शूराः प्रगृहीतमहायुधाः।
सिंहनादं प्रकुर्वन्तो जग्मुरत्यर्थमुत्तमाः॥ ७

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! शिनिवंश-शिरोमणि सात्यकिने श्रीकृष्णपुरीमें प्रवेश करके उनसे हंस और डिम्भकका सारा समाचार ज्यों-का-त्यों कह सुनाया॥ १॥ तदनन्तर निर्मल प्रातःकाल आनेपर हाथमें चक्र और गदा धारण करनेवाले केशिहन्ता केशवने समस्त सेनापतियोंसे इस प्रकार कहा—॥ २॥ 'रथ, हाथी और घोड़ोंसे युक्त सारी सेनाको युद्धके लिये तैयार करो। उसके साथ अनेकानेक भेरी, पणव आदि बाजे भी होने चाहिये। प्रास, खड्ग और परिघ आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे वह सेना सम्पन्न होनी चाहिये। ध्वजा, पताका, अलङ्कार तथा अन्य आवश्यक उपकरणोंसे सारी सेनाको सुसज्जित किया जाय'। तब 'बहुत अच्छा' कहकर श्रीकृष्णके अधीन रहनेवाले उन सेनापतियोंने सब कुछ उसी प्रकार किया। वे पुरुषप्रवर वीर कवच धारण करके रथपर आरूढ़ हो सुदृढ़ धनुष ले सेनाके आगे-आगे तीव्रगतिसे चलने लगे॥ ३—५॥ राजन्! महाबली सात्यकि भी धनुष हाथमें लेकर अद्भुत शोभा पाने लगे। वे क्रोधमें भरकर आगे-आगे चले॥ ६॥ अन्य श्रेष्ठ एवं शूरवीर यादव भी महान् आयुध लेकर सिंहनाद करते हुए तीव्रगतिसे चल दिये॥ ७॥

हरिस्तु रथमारुह्य संस्कृतं दारुकेण ह।
शार्ङ्गं भारसहं घोरं गृहीत्वा सशरं धनुः॥ ८

चक्रपाणिस्तदा शङ्खी गदाशरवरासिमान्।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणः पीतवासा जनार्दनः॥ ९

पद्ममालावृतोरस्को नवजीमूतसंनिभः।
ययौ रथगतो विप्रैः स्तूयमानो मुदान्वितैः॥ १०

सूतैर्मागधपुत्रैश्च गीयमानस्ततस्ततः।
आनीय सेनां सकलां ययौ काष्ठामथोत्तराम्॥ ११

पाञ्चजन्यं मुखे न्यस्य सर्वप्राणेन केशवः।
दध्मौ महारवं कुर्वञ्छत्रूणां भयवर्धनम्॥ १२

आध्मातस्तेन हरिणा स चक्रे शङ्खराड् ध्रुवम्।
रवः स रोदसी राजन् पूरयामास सर्वतः॥ १३

तस्मिञ्छङ्खे तथाऽऽध्माते दध्मुः शङ्खान् सहस्रशः।
भेर्यश्चापि समाध्माता मृदङ्गा बहवो नृप॥ १४

नेदुरत्यर्थमतुलं घर्मान्ते जलदा यथा।
अथाययुर्महाराज पुष्करं पुण्यवर्धनम्॥ १५

सरसस्तस्य राजेन्द्र पुष्करस्य नृपोत्तमाः।
प्रतीक्ष्य हंसडिम्भकौ युद्धाय समवस्थिताः॥ १६

निवेशं कारयामासुर्यादवाः सर्व एव हि।
स्वं स्वं ययुः सुखं राजन् प्रगृहीतकुटीमठम्॥ १७

भगवानपि गोविन्दः सरो दृष्ट्वा सुशोभनम्।
उपस्पृश्य जले तस्मिन् प्रणम्य यतिपुङ्गवान्॥ १८

तयोरागमनं लिप्सुरास्ते तीरे यथासुखम्।
शृण्वन् वेदध्वनिं विष्णुर्ब्राह्मणानां समन्ततः॥ १९

भगवान् श्रीकृष्ण दारुकके द्वारा सुसज्जित किये गये रथपर आरूढ़ हो, भार सहन करनेमें समर्थ भयङ्कर शार्ङ्ग धनुष और बाण लेकर प्रस्थित हुए॥ ८॥ उस समय उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, बाण और उत्तम खड्ग शोभा पाते थे। उन्होंने हाथोंमें गोह-चर्मके बने दस्ताने भी बाँध रखे थे। वे पीताम्बरधारी जनार्दन नूतन जलधरके समान श्याम कान्तिसे सुशोभित थे। उनका वक्षःस्थल कमलपुष्पोंकी मालासे आच्छादित था। वे रथपर बैठकर आनन्दमग्न ब्राह्मणोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए जा रहे थे॥ ९-१०॥ जहाँ-तहाँ सूत, मागध और बन्दीजन उनके गुण गाते रहते थे। उन्होंने सारी सेनाको एकत्रित करके उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान किया॥ ११॥ पाञ्चजन्य शङ्खको अपने मुखपर रखकर केशवने सम्पूर्ण प्राणशक्ति लगाकर उसे बड़े जोरसे बजाया। उसका महान् शब्द प्रकट करके वे शत्रुओंके भयकी वृद्धि करने लगे॥ १२॥ राजन्! श्रीहरिके बजानेपर उस शङ्खराज पाञ्चजन्यने महानाद किया। उसका वह शब्द पृथ्वी और आकाशमें सब ओर व्याप्त हो गया॥ १३॥ नरेश्वर! पाञ्चजन्य शङ्खके उस प्रकार बजाये जानेपर दूसरे-दूसरे वीरोंने भी सहस्रों शङ्ख बजाये। बहुत-सी भेरियाँ और मृदङ्ग भी बज उठे॥ १४॥ महाराज! वर्षा-ऋतुमें जोर-जोरसे गर्जना करनेवाले मेघोंकी भाँति वे मृदङ्ग आदि बाजे अनुपम गम्भीर स्वरमें बजने लगे। इस प्रकार समस्त यादव सैनिक पुण्यवर्धक पुष्करतीर्थमें आ पहुँचे॥ १५॥ राजेन्द्र! वे नृपश्रेष्ठ यादव वीर युद्धके लिये हंस और डिम्भककी प्रतीक्षा करते हुए उस पुष्कर सरोवरके तटपर ठहर गये॥ १६॥ राजन्! सभी यादवोंने वहाँ सेनाकी छावनी डाल दी। सब लोग अपने-अपने लिये स्वीकृत कुटी और मठ आदिमें सुखपूर्वक गये॥ १७॥ उस शोभाशाली सरोवरको देखकर भगवान् गोविन्दने भी उसके जलमें आचमन किया और वहाँ रहनेवाले श्रेष्ठ यतियोंको नमस्कार करके हंस और डिम्भकके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए उसके तटपर सुखपूर्वक बैठे। वे भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ सब ओर ब्राह्मणोंकी वेद-ध्वनि सुन रहे थे॥ १८-१९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने कृष्णपुष्करप्रवेशे विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस और डिम्भकके उपाख्यानके प्रसङ्गमें श्रीकृष्णका पुष्करमें प्रवेशविषयक एक सौ बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२०॥

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

हंस और डिम्भककी सेनाओंका पुष्करतीर्थमें प्रवेश

वैशम्पायन उवाच

अथ तौ हंसडिम्भकौ जगमतुः पुष्करं प्रति।
प्रगृहीतमहाचापौ सरथौ सध्वजौ नृप॥ १
पुरःसरमहाभूतौ संहरन्ताविवोल्बणौ।
प्रकुर्वन्तौ सिंहरवं भस्मना परिलेपितौ॥ २
त्रिपुण्ड्रकललाटान्तौ रुद्राक्षपरिशोभितौ।
अन्यौ द्वाविव रुद्रौ तौ लोकसंहारकारकौ॥ ३
ततोऽनुजग्मुः शतशः सैन्यानि नृपसत्तम।
अक्षौहिण्यो दशैवासंस्तयोरथ समागताः॥ ४
विचक्रस्तु महाराज दानवो नगसंनिभः।
तयोरेव सखा पूर्वमासीच्च बलशालिनोः॥ ५
शक्रो यस्य पुरःसरः स्थातुं शक्तो न वज्रभृत्।
यो हि वीरो महाराज देवदैत्यसमागमे॥ ६
देवान् निघ्नंस्तथा राजन् देवेन्द्रमजयन्महान्।
अकरोच्च पुरा युद्धं विष्णुना प्रभविष्णुना॥ ७
यो हि द्वारवतीं प्राप्य बबाधे यदुपुङ्गवान्।
स तदानीं महाराज श्रुत्वा युद्धमुपस्थितम्॥ ८
अनेकशतसाहस्त्रैर्दानवैः परिघायुधैः।
वृतः समभवद् दैत्यो वृष्णिद्वेषान् नृपोत्तम॥ ९
हंसस्य डिम्भकस्याथ साहाय्यं कर्तुमुद्यतः।
विचक्रस्याथ दैत्यस्य हिडिम्बो राक्षसेश्वरः॥ १०
अतीव मित्रतां यातो दद्यात् प्राणांश्च संयति।
राक्षसैरपरैः सार्धं शिलाशूलासिपाणिभिः॥ ११
ययौ तस्य सहायार्थं हिडिम्बः पुरुषादकः।
अष्टाशीति सहस्त्राणि राक्षसास्तस्य चाभवन्॥ १२
अनुयाता महाराज शिलापरिघबाहवः।
तयोस्तत्र महासैन्यं गच्छतोः केशवं प्रति॥ १३
मिश्रितं दैत्यसंघैश्च राक्षसैश्च समन्ततः।
अत्यद्भुतं महारौद्रं त्रैलोक्यभयदायकम्॥ १४

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर हंस और डिम्भक भी विशाल धनुष लिये रथ और ध्वजसहित पुष्करतीर्थमें गये॥ १॥ उन दोनोंके आगे दो बड़े-बड़े भूत चल रहे थे। वे इतने भयङ्कर थे कि संहार करनेके लिये उद्यत-से जान पड़ते थे। उन्होंने अपने सारे अङ्गोंमें भस्म रमा रखा था तथा वे जोर-जोरसे सिंहनाद करते थे॥ २॥ उनके ललाटके प्रान्तभागोंतक फैली हुई त्रिपुण्ड्रकी रेखा शोभा पाती थी। वे दोनों रुद्राक्षकी मालाओंसे सुशोभित थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो दो दूसरे रुद्र सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेके लिये आ गये हों॥ ३॥ नृपश्रेष्ठ! उन दोनोंके पीछे-पीछे सैकड़ों सैनिक चल रहे थे। हंस और डिम्भककी दस अक्षौहिणी सेनाएँ वहाँ आ गयी थीं॥ ४॥ महाराज! उन दोनोंके साथ विचक्र नामक पर्वताकार दानव भी था, जो उन बलशाली बन्धुओंका पहलेसे ही मित्र था॥ ५॥ वज्रधारी इन्द्र भी उसके आगे आकर ठहर नहीं सकते थे। महाराज जनमेजय! देवताओं और दैत्योंके संग्राममें उस महान् वीरने देवताओंपर चोट करते हुए वहाँ देवराज इन्द्रको भी पराजित कर दिया था। पूर्वकालमें इस विचक्रने प्रभावशाली भगवान् विष्णुके साथ युद्ध किया था और द्वारकापुरीमें जाकर श्रेष्ठ यादवोंको बड़ा कष्ट दिया था। महाराज नृपश्रेष्ठ! उस समय युद्ध उपस्थित हुआ सुनकर कई लाख परिघधारी दानवोंसे घिरा हुआ वह दैत्य वृष्णिवंशियोंसे द्वेष रखनेके कारण हंस और डिम्भककी सहायता करनेके लिये उद्यत हो गया। उन दिनों राक्षसराज हिडिम्ब विचक्र नामक दैत्यका बड़ा भारी मित्र हो गया था। वह युद्धमें उसके लिये प्राण भी दे सकता था। राक्षसराज हिडिम्ब शिला, शूल और खड्ग धारण करनेवाले दूसरे नरभक्षी राक्षसोंके साथ विचक्रकी सहायताके लिये वहाँ गया। महाराज! अपने हाथोंमें शिला और परिघ लिये अट्ठासी हजार राक्षस उस हिडिम्बके अनुगामी होकर वहाँ गये थे। भगवान् श्रीकृष्णपर चढ़ाईके लिये जाते हुए हंस और डिम्भककी विशाल सेना वहाँ सब ओरसे दैत्यसमूहों तथा राक्षसोंसे मिश्रित हो गयी। वह अत्यन्त अद्भुत और महाभयंकर सेना तीनों लोकोंको भय देनेवाली थी॥ ६—१४॥

दैत्येन सहितौ तौ हि जग्मतुः पुष्करं प्रति।
तावेतौ हंसडिम्भकौ हन्तुं केशवमञ्जसा॥ १५
ततः श्रुत्वा जरासंधो विग्रहं यदुभिः सह।
नाकरोन्नृपसाहाय्यं पापं मे भवितेति ह॥ १६
गच्छतोः समितिं राजन् हंसस्य डिम्भकस्य च।
अतित्वरितविक्रान्तास्ते ययुः पुष्करं प्रति॥ १७
सिंहनादं विमुञ्चन्तः कथयन्तः परस्परम्।
अहमेव नृपा युद्धं करोमि प्रथमं हरेः॥ १८
इत्यब्रुवन् नृपा राजञ्छतशः केशवं प्रति।
सम्प्राप्तास्ते नृपश्रेष्ठाः पुष्करं पुण्यवर्धनम्॥ १९
मुनिजुष्टं तपोवृद्धैर्ऋषिभिश्च निषेवितम्।
अत्यन्तभद्रं लोकेषु पुष्करं प्रथमं नृप॥ २०
पुष्करं पुण्डरीकाक्षो द्वावेव जगतीपते।
दर्शनात् स्पर्शनाच्चैव किल्बिषच्छेदिनौ नृप॥ २१
पुष्करं पुण्डरीकाक्षो द्वावेव नृपसत्तम।
सेव्यमानौ मुनिश्रेष्ठैरमरौघैर्महात्मभिः॥ २२
द्वावेव हि नृपश्रेष्ठ सर्वपापप्रणाशकौ।
तावुभौ यत्र सहितौ तत्र ते संस्थिता नृपाः॥ २३
दृष्टवन्तो हरिं विष्णुं विष्टरश्रवसं परम्।
पुष्करं पुण्यनिलयं तीर्थं ब्रह्मनिषेवितम्॥ २४
ताभ्यां कुरु नमस्कारं मनसा नृपसत्तम।
अहो निःशेषमभवत् तत्र भूयो न संशयः॥ २५
सैन्यं तत्र च सम्प्राप्तं दैत्यरक्षःसमाकुलम्।
अनेकभेरीपणवझर्झरीडिण्डिमाकुलम् ॥ २६
नानापणवसम्मिश्रं रक्षोनादविनादितम्।
प्रविश्य सरसस्तीरं पुष्करस्य विशाम्पते।
दर्शयामास देवेशं युद्धाय समुपस्थितम्॥ २७

विचक्र नामक दैत्यके साथ ये दोनों हंस और डिम्भक श्रीकृष्णका अनायास वध करनेके लिये पुष्करतीर्थको गये॥ १५॥ तदनन्तर यादवोंके साथ हंस और डिम्भकके युद्धका समाचार सुनकर जरासंधने उन दोनों नरेशोंकी सहायता नहीं की। उसने सोचा कि ऐसा करनेसे मुझे पाप लगेगा*॥ १६॥ राजन्! युद्धमें जाते हुए हंस और डिम्भकके साथ वे शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले नरेशगण भी पुष्करको गये॥ १७॥ वे सब-के-सब सिंहनाद करते हुए परस्पर कहते थे कि 'राजाओ! पहले मैं ही श्रीकृष्णके साथ युद्ध करूँगा'॥ १८॥ राजन्! इस तरह सैकड़ों नरेशोंने श्रीकृष्णसे युद्ध करनेकी बात कही। इस प्रकार बातचीत करते हुए वे श्रेष्ठ नरेश पुण्यवर्धक पुष्करतीर्थमें जा पहुँचे॥ १९॥ नरेश्वर! तपस्यामें बढ़े-चढ़े ऋषि-मुनि उस तीर्थका सेवन करते हैं। पुष्कर ही वह प्रथम तीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें अत्यन्त कल्याणकारी बताया गया है॥ २०॥ पृथ्वीनाथ! राजा जनमेजय! पुष्करतीर्थ और पुण्डरीकाक्ष भगवान् श्रीकृष्ण—ये दो ही ऐसे हैं, जो दर्शन और स्पर्शसे सारे पापोंका उच्छेद करनेवाले हैं॥ २१॥ नृपश्रेष्ठ! पुष्कर और पुण्डरीकाक्ष—इन दोका ही श्रेष्ठ मुनि तथा महामनस्वी देववृन्द सेवन करते हैं॥ २२॥ नृपश्रेष्ठ! वे दो ही सब पापोंका नाश करनेवाले हैं। वे दोनों जहाँ एक साथ हो गये थे, वहाँ वे सब नरेश उपस्थित हुए॥ २३॥ उन सबने वहाँ विस्तृत यशवाले परम पुरुष भगवान् विष्णु हरिका तथा ब्रह्माजीके द्वारा सेवित पुण्य-स्थान पुष्करतीर्थका दर्शन साथ ही किया॥ २४॥ नृपश्रेष्ठ जनमेजय! तुम भी अपने मनसे पुष्करतीर्थ और भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करो। अहो! वहाँ दैत्यों और राक्षसोंसे भरी हुई जो सेना पहुँची थी, वह सारी-की-सारी फिर नष्ट हो गयी, इसमें संशय नहीं है। वह सेना अनेकानेक भेरी, पणव, झाँझ और नगाड़ोंकी ध्वनिसे व्याप्त थी, नाना प्रकारके वाद्योंकी ध्वनिसे मिश्रित राक्षसोंके सिंहनादसे गूँज रही थी। प्रजानाथ! उस सेनाने पुष्कर-सरोवरके तटपर पहुँचकर युद्धके लिये उपस्थित हुए देवेश्वर श्रीकृष्णका एक-दूसरेको दर्शन कराया॥ २५—२७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने युद्धार्थं हंसडिम्भकसैन्यानां पुष्करागमने एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें युद्धके लिये हंस और डिम्भककी सेनाका पुष्करतीर्थमें आगमनविषयक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२१॥

---

* शास्त्रकी आज्ञा है कि 'परासक्तः परेण न हन्तव्यः' (दूसरेके साथ युद्धमें फँसे हुए पुरुषको दूसरा न मारे), हंसकी सहायतामें जानेसे जरासंधको उक्त शास्त्राज्ञाके उल्लङ्घनजनित दोषकी प्राप्ति होती, इसीलिये वह नहीं गया।

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

उभयपक्षकी सेनाओंका घमासान युद्ध

वैशम्पायन उवाच

द्वे सेने संगते राजन् सध्वजे सपरिच्छदे।
महापरिघसंकीर्णे गदाशक्तिसमाकुले॥ १
भेरीझर्झरसम्पूर्णे डिण्डिमारावसंकुले।
प्रगृहीतमहाशस्त्रशूलासिवरकार्मुके ॥ २
परस्परकृतोत्साहे चक्राते युद्धमुल्बणम्।
ते शराः कार्मुकोत्सृष्टा निर्भिद्याथ शरीरिणाम्॥ ३
शरीराणि महाराज जग्मुर्दूरं सहस्रशः।
भटबाहुविनिर्मुक्ताः खड्गा निर्भिद्य वक्षसि॥ ४
स्फुरन्तश्च तथा राजञ्छिरांस्याहृत्य खं ययुः।
परिघाश्च तथा राज्ञां बाहुभिः परिचोदिताः॥ ५
तिलशश्चक्रुरतुलं शरीरं नृपरक्षसाम्।
दैत्यानां कुर्वतां नादमन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम्॥ ६
दैत्या रक्षांसि राजेन्द्र राजानश्च समन्ततः।
अन्योन्यं परिघैर्जघ्नुश्चापमुक्तैः शिलाशितैः॥ ७
शरैश्च भोगिभोगाभैस्तीक्ष्णमन्ये महाबलाः।
राक्षसा दानवाश्चान्ये मत्तमातङ्गविक्रमाः॥ ८
अन्योन्यं जघ्निरे राजंश्चापमुक्तैर्महाशरैः।
नागा नागैर्महाराज हया अश्वैः समन्ततः॥ ९
रथा रथैः समाजग्मुः सादिनः सादिभिस्तथा।
पट्टिशासिशरव्रातैः कुन्तैः सायककर्षणैः॥ १०
सशक्तिपरिघप्रासपरश्वधसमाकुलैः ।
भिन्दिपालैर्महारौद्रैर्जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ ११
अन्योन्यं जघ्निरे राजंश्चापमुक्तैः शिलाशितैः।
राक्षसा दानवा राजन् क्षत्रियाश्च समन्ततः।
इतश्चेतश्च धावन्तः कुर्वन्तो विस्वरं रवम्॥ १२
हताः केचिन्महाराज पेतुरुर्व्यां महासिभिः।
केचिन्मथितमस्तिष्का गदाभिर्वीर्यवत्तमाः॥ १३

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! वे दोनों ओरकी सेनाएँ वहाँ एक-दूसरीसे मिल गयीं। वे ध्वज तथा अन्य उपकरणोंसे सम्पन्न थीं। दोनों ही दलोंमें बड़े-बड़े परिघ सञ्चित थे। दोनों ही सेनाएँ गदा और शक्तियोंसे भरी-पूरी थीं॥ १॥ दोनोंमें भेरी और झाँझकी ध्वनि हो रही थी। दोनों ही डिंडिम-घोषसे व्याप्त थीं। दोनों ही दलोंके सैनिकोंने बड़े-बड़े शस्त्र, शूल, खड्ग और श्रेष्ठ धनुष ले रखे थे॥ २॥ महाराज! दोनों सेनाएँ एक-दूसरीको जीतनेका उत्साह रखती थीं। दोनों भयंकर युद्ध करने लगीं। उनके धनुषोंसे छूटे हुए सहस्रों बाण देहधारियोंके शरीरोंको विदीर्ण करके दूरतक चले जाते थे। राजन्! योद्धाओंकी भुजाओंसे छूटे हुए खड्ग शत्रुकी छातीमें घाव करके जब उछलते, तब उनके सिर काटकर आकाशमें चले जाते। क्षत्रियोंकी भुजाओंद्वारा फेंके गये परिघ राजाओं तथा राक्षसोंके अनुपम शरीरको तिल-तिल करके काट डालते थे तथा एक-दूसरेके वधकी इच्छासे गर्जना करनेवाले दैत्योंके भी टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे॥ ३—६॥ राजेन्द्र! दैत्य, राक्षस और राजा लोग सब ओर एक-दूसरेपर परिघोंद्वारा प्रहार करते थे तथा अन्य महाबली वीर शिलापर तेज करके धनुषसे छोड़े गये सर्पाकार बाणोंद्वारा गहरा आघात करते थे। राजन्! मतवाले हाथियोंके समान पराक्रमी राक्षस और अन्य दानव धनुषसे छोड़े गये महान् बाणोंद्वारा परस्पर चोट पहुँचाते थे। महाराज! वहाँ सब ओर हाथी हाथियोंसे, घोड़े घोड़ोंसे, रथ रथोंसे और सवार सवारोंसे भिड़ गये। पट्टिश, खड्ग, बाणसमूह, सायकोंको भी काट गिरानेवाले कुन्त, शक्ति, परिघ, प्रास और फरसोंसहित महाभयंकर भिन्दिपाल आदि अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा सभी योद्धा रणभूमिमें एक-दूसरेको मारने लगे॥ ७—११॥ राजन्! इधर-उधर दौड़ते और विकट गर्जना करते हुए राक्षस, दानव तथा क्षत्रिय शिलापर तेज कर धनुषसे छोड़े गये बाणोंद्वारा सब ओर परस्पर प्रहार करते थे॥ १२॥ महाराज! कोई बड़ी-बड़ी तलवारोंसे मारे जाकर पृथ्वीपर गिर पड़े। कितने ही महापराक्रमी वीरोंके मस्तक गदाओंके आघातसे चूर-चूर हो गये॥ १३॥

भिन्नग्रीवा महाराज परिघैः परिघायुधैः।
यमराष्ट्रं गताः केचित् केचित् स्वर्गं समाययुः॥ १४

अप्सरोभिः समासेदुः पश्यन्तः स्वं कलेवरम्।
केचित् स्वांश्च परांश्चैव हत्वा भ्रान्ता इवाभवन्॥ १५

एतस्मिन्नन्तरे राजञ्छङ्खा भेर्यः सहस्रशः।
सस्वनुः सर्वतः सैन्ये मृदङ्गा बहवस्तथा॥ १६

मध्यंदिनगते सूर्ये तापं दधति घोरवत्।
ततः पिशाचा विकृताः करालविततोदराः॥ १७

राक्षसाश्च महाघोराः पिशितं केशशाद्वलम्।
मुदिता भक्षयामासुः पिबन्तः शोणितं बहु॥ १८

संचितानि शवान्यासन् कबन्धाः खड्गपातिताः।
विभज्य देशं बहुशो युद्धभूमौ शवाशिनः॥ १९

अथ श्येना मृगाश्चैव कङ्का गृध्रास्तथा परे।
तुण्डैः शवान् विनिष्कृष्य भक्षयन्ति ततस्ततः॥ २०

सप्ताशीतिसहस्राणि हता नागा नृपोत्तम।
त्रिंशत्सहस्रमयुतं निहता हयसत्तमाः॥ २१

हतं लक्षं महाराज रथानां रथिभिः सह।
त्रिंशत्कोट्यो हतास्तत्र सादिनः सायुधा भृशम्॥ २२

मध्यंदिनगते सूर्ये हताः केचन निर्गताः।
केचिच्च तृषिता राजन् विविशुः पुष्करं सरः॥ २३

केचिद् भूमिं समालिङ्ग्य भीता इत्यब्रुवन् रणे।
मुक्तकेशाः पतन्ति स्म रथान् संत्यज्य केचन॥ २४

संदष्टौष्ठपुटाः केचित् सादिनः पुरतो हताः।
अत्यद्भुतं महायुद्धमासीत् पुष्करतीर्थके।
यथा देवासुरं युद्धमासीत् पूर्वं नृपोत्तम॥ २५

महाराज! कितने ही परिघधारी योद्धाओंने अपने परिघोंद्वारा शत्रुओंकी गर्दनें तोड़ डालीं, उन मारे शत्रुओंमेंसे कुछ तो यमराजके राज्यमें गये और कुछ स्वर्गलोकमें जा पहुँचे॥ १४॥ वे अपने मृत शरीरको देखते हुए अप्सराओंसे जा मिले। कितने ही योद्धा परायों तथा अपनोंको भी मारकर भ्रान्त-से हो गये थे॥ १५॥ राजन्! इसी बीचमें सहस्रों शङ्खों और भेरियोंकी ध्वनि होने लगी। सेनामें सब ओर बहुत-से मृदङ्ग बजने लगे॥ १६॥ सूर्य मध्याह्नकालमें पहुँचकर जब घोर ताप देने लगे, उस समय विशाल एवं विकराल पेटवाले विकृताकार पिशाच और महाघोर राक्षस आकर बड़ी प्रसन्नताके साथ बहुत-सा रक्त पीने और केशयुक्त मांस खाने लगे॥ १७-१८॥ वहाँ ढेर-की-ढेर लाशें पड़ी थीं, खड्गोंद्वारा गिराये हुए बिना सिरके धड़ एकत्र हो गये थे। वे शवका भक्षण करनेवाले पिशाच युद्धभूमिमें परस्पर बहुत-से देशका विभाजन करके मृतकोंके मांस खाते थे॥ १९॥ तदनन्तर बहुत-से बाज, हिंसक जन्तु, कंक, गृध्र तथा अन्य पक्षी इधर-उधरसे आकर अपनी चोंचोंसे मुर्दोंको खींच-खींचकर खाने लगे॥ २०॥ नृपश्रेष्ठ! उस युद्धमें सत्तासी हजार हाथी मारे गये तथा तीस करोड़ अच्छे घोड़ोंका संहार हुआ॥ २१॥ महाराज! रथियोंसहित एक लाख रथ नष्ट हुए तथा वहाँ तीस करोड़ शस्त्रधारी घुड़सवार गहरी चोट खाकर मारे गये थे॥ २२॥ राजन्! सूर्यके मध्याह्नकालमें पहुँचते-पहुँचते कितने ही योद्धा घायल होकर रणभूमिसे निकल गये और कितने ही प्याससे पीड़ित हो पुष्कर-सरोवरमें घुस गये॥ २३॥ कितने ही सैनिक पृथ्वीका आलिङ्गन करके पड़ गये और रणभूमिमें अपनेको भयभीत बताने लगे। कितने ही योद्धा केश खोले हुए रथोंको छोड़कर पृथ्वीपर गिर पड़ते थे॥ २४॥ कितने ही घुड़सवार दाँतोंसे ओठ दबाये सामने मारे गये। नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार पुष्करतीर्थमें अत्यन्त अद्भुत महान् युद्ध हुआ। पूर्वकालमें जिस प्रकार देवासुर-संग्राम हुआ था, वैसा ही वह भी था॥ २५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने संकुलयुद्धे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें संकुल-युद्धविषयक एक सौ बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२२॥

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और विचक्रका घोर युद्ध तथा विचक्रका वध

वैशम्पायन उवाच

एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्वन्द्वयुद्धमवर्तत।
विचक्रं योधयामास शार्ङ्गधन्वा गदाधरः॥ १

बलभद्रोऽथ हंसेन डिम्भकेन च सात्यकिः।
वसुदेवोग्रसेनाभ्यां हिडिम्बः पुरुषादकः॥ २

शेषाश्च शेषै राजेन्द्र चक्रुर्युद्धमदीनगाः।
वासुदेवस्त्रिसप्तत्या दैत्यं वक्षस्यताडयत्॥ ३

शरैर्निशितधाराग्रैर्विस्मयं दर्शयन् रणे।
दानवो देवदेवेशं दृढेन निशितेन च॥ ४

शरेणाकर्णमाकृष्य धनुःप्रवरमीश्वरम्।
जघान स्तनमध्ये च पश्यतस्तु शचीपतेः॥ ५

तेन विद्धोऽथ भगवान् वक्षोदेशे जनार्दनः।
अवमच्छोणितं विष्णुरादिकाले यथा प्रजाः॥ ६

ततः क्रुद्धो हृषीकेशः क्षुरप्रेणाहनद् ध्वजम्।
अश्वांश्च चतुरो हत्वा सारथिं च शरैस्त्रिभिः॥ ७

ततो दध्मौ महाशङ्खं यथा तारामये रणे।
रथादुत्प्लुत्य सहसा दानवः क्रोधमूर्च्छितः॥ ८

गदां गृह्य महाघोरां दुःसहां वीर्यशालिनीम्।
तया जघान दैत्येन्द्रः किरीटे केशवस्य ह॥ ९

ललाटे च पुनर्विष्णुं सिंहनादं व्यनीनदत्।
ततः शिलां च महतीं प्रगृह्य दनुजः किल॥ १०

भ्रामयित्वा दशगुणं प्राहरत् केशवोरसि।
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य हस्तेनादाय केशवः॥ ११

जघान च तया दैत्यं स पपातार्दितः क्षितौ।
गतासुरिव संजज्ञे श्वसन्निव पपात ह॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इसी बीचमें वहाँ द्वन्द्वयुद्ध होने लगा। शार्ङ्गधन्वा गदाधारी श्रीकृष्णने विचक्रके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया॥ १॥ बलभद्रने हंसके साथ और सात्यकिने डिम्भकके साथ लोहा लिया। नरभक्षी हिडिम्ब वसुदेव तथा उग्रसेनके साथ युद्ध करने लगा॥ २॥ राजेन्द्र! किसीके सामने दीनता न प्रकट करनेवाले शेष वीर शेष योद्धाओंके साथ जूझने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने दैत्यकी छातीमें तिहत्तर बाण मारे॥ ३॥ उन बाणोंकी धार बड़ी तीखी थी। उन्होंने रणभूमिमें विस्मय प्रकट करते हुए उस दैत्यपर प्रहार किया था। तब उस दानवने भी अपने श्रेष्ठ धनुषको कानतक खींचकर एक सुदृढ़ और पैने बाणसे देवदेवेश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी छातीमें शचीपति इन्द्रके देखते-देखते प्रहार किया॥ ४-५॥ वक्षःस्थलमें उसके बाणकी चोट खाकर भगवान् जनार्दन विष्णु रक्त वमन करने लगे, ठीक उसी तरह जैसे सृष्टिके आदिकालमें उन्होंने प्रजावर्गको अपने मुखसे प्रकट किया था॥ ६॥ तदनन्तर कुपित हुए भगवान् हृषीकेशने एक क्षुरप्रसे उस दानवकी ध्वजा काट डाली, फिर उसके चारों घोड़ोंको मारकर तीन बाणोंसे सारथिको भी कालके गालमें डाल दिया। तदनन्तर तारकामय संग्रामकी भाँति उन्होंने अपना महान् शङ्ख बजाया। तब क्रोधसे मूर्च्छित हुए उस दानवने सहसा रथसे उछलकर एक दुःसह शक्तिशालिनी एवं महाभयंकर गदा हाथमें ले ली और उसके द्वारा उस दैत्यराजने पहले तो श्रीकृष्णके किरीटपर आघात किया, फिर उनके ललाटमें चोट पहुँचायी। तत्पश्चात् वह जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगा। इसके बाद उस दानवने एक बहुत बड़ी शिला उठायी और उसे दस बार घुमाकर भगवान् श्रीकृष्णकी छातीपर दे मारा। उस शिलाको अपनी ओर आते देख भगवान् श्रीकृष्णने हाथसे पकड़ लिया और उसीसे उस दैत्यपर आघात किया। उस प्रहारसे पीड़ित हो वह दैत्य प्राणहीन-सा हो गया और लम्बी साँस-सा खींचता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ७—१२॥

प्राप्त संज्ञां ततो दैत्यः क्रोधाद् द्विगुणमाबभौ।
आदाय परिघं घोरमिदमाह जनार्दनम्॥ १३

अनेन तव गोविन्द दर्पजातं निहन्म्यहम्।
विक्रमज्ञस्तदा चासि मम देवासुरे रणे॥ १४

तावेव विपुलौ बाहू स एवास्मि जनार्दन।
तथापि युध्यसे वीर ज्ञात्वा त्वं मामकं बलम्॥ १५

वारयैनं महाबाहो परिघं बाहुनिःसृतम्।
इत्युक्त्वा देवदेवेशं शङ्खचक्रगदाधरम्।
चिक्षेप दैत्यो लोकेशं सर्वलोकस्य पश्यतः॥ १६

तं गृह्य बाहुना कृष्णो हतोऽसीति वदन् हरिः।
खण्डशः कारयामास खड्गेन निशितेन ह॥ १७

उत्पाट्य वृक्षं दैत्येशः शतशाखं महाशिखम्।
तेन सम्पोथयामास विष्टरश्रवसं विभुम्॥ १८

छित्त्वा तं चापि खड्गेन तिलशश्च चकार ह।
विक्रीड्य सुचिरं विष्णुस्तेन दैत्येन माधवः॥ १९

हन्तुमैच्छत् तदा दैत्यमादाय निशितं शरम्।
आग्नेयास्त्रेण संयोज्य जघानैनं महान् हरिः॥ २०

संदह्य स शरो दैत्यं सर्वलोकस्य पश्यतः।
यथापूर्वं जगामाशु करं भगवतः पुनः॥ २१

हतशिष्टास्ततो दैत्याः पलायन्तो दिशो दश।
अद्यापि न निवर्तन्ते गच्छन्तो वै महोदधिम्॥ २२

तदनन्तर होशमें आकर वह दैत्य कुपित हो उठा। क्रोधसे उसकी आभा दुगुनी हो गयी। उसने भयंकर परिघ लेकर भगवान् जनार्दनसे इस प्रकार कहा— ॥ १३ ॥ 'गोविन्द! इस परिघसे मैं तुम्हारा सारा घमंड चूर्ण किये देता हूँ। उन दिनों जब देवासुर-संग्राम हो रहा था, तुम मेरा पराक्रम जान चुके हो॥ १४॥ जनार्दन! वे ही दोनों मेरी विशाल भुजाएँ हैं और वही मैं हूँ। वीर! तुम मेरे बलको जान चुके हो तो भी मुझसे युद्ध करते हो। महाबाहो! मेरी भुजाओंसे छूटे हुए इस परिघको रोको तो सही। ऐसा कहकर उस दैत्यने सब लोगोंके देखते-देखते शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवदेवेश्वर जगदीश्वर श्रीकृष्णपर वह परिघ चला दिया॥ १५-१६॥ भगवान् श्रीकृष्णने उस परिघको हाथसे पकड़ लिया और 'अब तू शीघ्र ही मारा जायगा' ऐसा कहते हुए उन्होंने अपनी तीखी तलवारसे उस परिघके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ १७॥ तब उस दैत्यराजने सौ शाखा और बहुत ऊँची शिखावाले एक विशाल वृक्षको उखाड़कर उसे विस्तृत यशवाले भगवान् श्रीकृष्णपर दे मारा॥ १८॥ माधव श्रीकृष्णने अपनी तलवारसे उस वृक्षको भी तिल-तिल करके काट डाला। इस प्रकार उस दैत्यके साथ चिरकालतक क्रीड़ा करके भगवान् महाविष्णुने उस समय उसे मार डालनेकी इच्छा की और एक तीखा बाण हाथमें लेकर उसे आग्नेयास्त्रसे संयुक्त करके उसके द्वारा उस दैत्यपर आघात किया॥ १९-२०॥ उस बाणने सब लोगोंके देखते-देखते दैत्यको जलाकर भस्म कर दिया और पहलेकी भाँति वह शीघ्र ही भगवान्‌के हाथमें चला गया॥ २१ ॥ फिर मरनेसे बचे हुए दैत्य दसों दिशाओंमें भागते हुए महासागरको चले गये। वे अब भी वहाँसे लौट नहीं रहे हैं॥ २२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने कृष्णस्योत्कर्षे त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें श्रीकृष्णका विजयविषयक एक सौ तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२३॥

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

हंस और बलभद्रका युद्ध

वैशम्पायन उवाच

बलदेवस्तु धर्मात्मा धनुरादाय सत्वरम्।
जघान हंसं दशभिर्बाणैर्बाणभृतां वर॥ १
तं प्रत्यविध्यन्नाराचैर्हंसः पञ्चभिराशुगैः।
तानन्तरे हली छित्त्वा नाराचैर्दशभिः पुनः।
नाराचेनाशु विव्याध ललाटे हंसमोजसा॥ २
दृढं पतन् स नाराचस्तस्य संज्ञां समाददे।
रथोपस्थे चिरं स्थित्वा तूणाद् बाणं समाददे॥ ३
लब्ध्वा हंसः स संज्ञां तु विद्ध्वा तेन यदूत्तमम्।
सिंहवद् व्यनदद्धंसो देवान् विस्मापयन् रणे॥ ४
ततः क्रुद्धो हली विद्धस्तेन बाणेन माधवः।
वमञ्छोणितमत्युष्णं निःश्वसंश्च रणाजिरे॥ ५
लोहिताविष्टगात्रस्तु कुंकुमार्द्र इवाभवत्।
नाराचैः शतसाहस्रैरर्दयामास माधवः॥ ६
हंसं हंसगतिं वीरं नीलवासा हलायुधः।
ते मुक्ता निशिता घोरा नाराचाश्च सुवाजिनः॥ ७
रथे ध्वजे तथा चापे चक्रे तूणीद्वये नृप।
पतिताः सर्वतो राजन् व्यथां चैव तथा ददुः॥ ८
ततः क्रुद्धो महाराज हंसो वीर्यमदान्वितः।
शरेण हलिनं विद्ध्वा ध्वजं चिच्छेद कालवित्॥ ९
शरैश्चतुर्भिरश्वांश्च सूतं प्रेताधिपे ददौ।
ततः क्रुद्धो हली तस्मै गदां गृह्य महारणे॥ १०
आपपात महाबाहुर्हंसं शेष इव श्वसन्।
तया रथं ध्वजं चक्रमश्वान् सूतं हलायुधः।
बभञ्ज तिलशः सर्वं ननाद च पुनः पुनः॥ ११
भूयश्च गदया हंसं चिक्षेप च बली किल।
सोऽपि हंसो गदां गृह्य रथात् तस्मादवापतत्॥ १२
ततस्तौ हंसहलिनौ युयुधाते महारणे।
महारथौ महाबाहू लोके प्रथिततेजसौ॥ १३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! बाणधारियोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा बलदेवजीने तुरंत धनुष लेकर दस बाणोंसे हंसको घायल कर दिया॥ १॥ हंसने भी बदलेमें पाँच शीघ्रगामी नाराचोंद्वारा उनपर प्रहार किया; परंतु हलधरने पुनः दस नाराच मारकर बीचमें ही उन्हें काट दिया और शीघ्र ही एक नाराचसे हंसके ललाटमें बलपूर्वक आघात किया॥ २॥ उस नाराचने गहरी चोट पहुँचाकर हंसको अचेत कर दिया। वह देरतक रथके पिछले भागमें बैठा रहा। इसके बाद होशमें आकर हंसने तरकससे बाण निकाला और उससे यदुश्रेष्ठ बलभद्रको घायल करके रणभूमिमें देवताओंको विस्मयमें डालते हुए उसने सिंहके समान गर्जना की॥ ३-४॥ उसके बाणसे आहत होकर माधव हलधर कुपित हो उठे और समराङ्गणमें अत्यन्त उष्ण रक्त वमन करते हुए लम्बी साँस खींचने लगे॥ ५॥ उनका शरीर रक्तसे रञ्जित हो कुङ्कुमसे भीगा हुआ-सा प्रतीत होने लगा। तब नीलवस्त्रधारी हलधर माधवने हंसके समान गतिवाले वीर हंसको लाखों नाराचोंसे पीड़ित कर दिया। राजन्! उनके धनुषसे छूटे हुए वे सुन्दर पंखवाले तीखे और भयंकर नाराच हंसके रथ, ध्वज, धनुष, चक्र और दोनों तरकसपर पड़कर सब ओरसे पीड़ा देने लगे॥ ६—८॥ महाराज! तब बल-पराक्रमके मदसे उन्मत्त हुए और समयका ज्ञान रखनेवाले हंसने कुपित होकर एक बाणसे हलधरको घायल करके उनकी ध्वजा काट डाली; फिर चार बाणोंसे चारों घोड़ोंको मारकर एक बाणसे उनके सारथिको भी यमराजके हवाले कर दिया। तब क्रोधमें भरे हुए महाबाहु हलधर उस महान् समरमें गदा लेकर फुफकारते हुए शेषनागके समान हंसपर टूट पड़े। हलधर बलरामजीने उस गदाके द्वारा हंसके रथ, ध्वज, चक्र, अश्व तथा सारथि सबको तिल-तिल करके काट डाला और बारम्बार गर्जना की॥ ९—११॥ बलवान् वीर बलभद्रने पुनः गदाद्वारा हंसको चोट पहुँचायी। यह देख हंस भी गदा लेकर अपने रथसे कूद पड़ा॥ १२॥ तदनन्तर लोकमें विख्यात तेजवाले महाबाहु महारथी हंस और हलधर उस महासमरमें युद्ध करने लगे॥ १३॥

अत्यद्भुतं सुविक्रान्तौ परस्परवधैषिणौ।
कृतश्रमौ महायुद्धे हंसविक्रान्तगामिनौ॥ १४

यथा देवासुरे युद्धे शक्रवृत्रौ पुराम्बरे।
उभौ संसिक्तसर्वाङ्गौ शोणितेन महारणे॥ १५

अत्यन्तखेदिनौ युद्धे परस्परबलेन ह।
ततश्च दक्षिणं मार्गं बलभद्रोऽन्वगच्छत॥ १६

सव्यं तु हंसो राजेन्द्र व्यगृह्णात् स्वयमेव हि।
पोथयाञ्चक्रतुर्युद्धे गदाभ्यां गजविक्रमौ॥ १७

यथाप्राणं महाबाहू जघ्नतुर्मरणाय तौ।
अतिप्रवृद्धं संग्रामं देवासुररणोपमम्॥ १८

विदधाते महारङ्गे पश्यतां त्रिदिवौकसाम्।
देवाश्च मुनयश्चैव विस्मयं परिजग्मिरे॥ १९

अहो खल्वीदृशं युद्धं दृष्टं पूर्वं न च श्रुतम्।
इत्यूचुर्विस्मयवशाद् देवगन्धर्वकिन्नराः॥ २०

परस्परकृतोत्साहौ चक्रतुर्युद्धमुत्तमम्।
अथ हंसो महारङ्गे दक्षिणं दक्षिणोत्तमः।
व्यचरन्मार्गमत्यर्थं सव्यं तु बलवान् बलः॥ २१

निकुञ्च्य जानुनी पूर्वं चक्रतुर्गदया भृशम्।
रणे रणविदां श्रेष्ठौ पश्यतां त्रिदिवौकसाम्॥ २२

वे दोनों परम पराक्रमी, एक-दूसरेके वधकी इच्छा रखनेवाले, महायुद्धके लिये परिश्रम करनेवाले और हंसके समान चलनेवाले थे। उनमें अत्यन्त अद्भुत युद्ध होने लगा॥ १४॥ जैसे पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर इन्द्र और वृत्रासुर आकाशमें जूझते थे, उसी प्रकार वे हंस और बलभद्र भी परस्पर युद्ध कर रहे थे। उस महासमरमें दोनोंके सारे अङ्ग खूनसे रँग गये थे॥ १५॥ उस युद्धस्थलमें एक-दूसरेके बलसे दोनोंको अत्यन्त खेद हो रहा था। तदनन्तर बलभद्रने दाहिने मार्गका अनुसरण किया॥ १६॥ राजेन्द्र! हंसने स्वयं ही बायें पैंतरेको अपनाया। हाथीके समान पराक्रम प्रकट करनेवाले उन दोनों वीरोंने युद्धमें एक-दूसरेको गदाद्वारा घायल किया॥ १७॥ उन महाबाहु वीरोंने पूरा बल लगाकर एक-दूसरेके वधके लिये परस्पर प्रहार किया। उस महान् समराङ्गणमें समस्त देवताओंके देखते-देखते वे दोनों वीर देवासुर-संग्रामके समान बड़ा भारी युद्ध करने लगे। देवता और मुनि भी बड़े विस्मयको प्राप्त हुए। देवता, गन्धर्व और किन्नर विस्मयके वशीभूत होकर इस प्रकार कहने लगे—'अहो! ऐसा युद्ध हमने न तो पहले कभी देखा है और न सुना ही है'॥ १८—२०॥ एक-दूसरेको जीतनेका उत्साह मनमें लिये वे दोनों वीर उत्तम युद्ध कर रहे थे। तदनन्तर उदार पुरुषोंमें श्रेष्ठ हंसने उस महासमरमें दाहिने पैंतरेपर विचरना आरम्भ किया और बलवान् बलभद्र बायें पैंतरेपर अत्यन्त तीव्र गतिसे विचरने लगे॥ २१॥ युद्धकी कला जाननेवाले विद्वानोंमें श्रेष्ठ बलभद्र और हंसने देवताओंके देखते-देखते पहले दोनों घुटनोंको मोड़कर रणभूमिमें एक-दूसरेको गदाद्वारा गहरी चोट पहुँचायी॥ २२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हंसबलभद्रयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें हंस और बलभद्रका युद्धविषयक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२४॥

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकि और डिम्भकका युद्ध

वैशम्पायन उवाच

युद्धं चक्रतुरत्यर्थं ततो डिम्भकसात्यकी।
तावुभौ बलिनौ वीरौ विख्यातौ क्षत्रियेषु च॥ १
कृतश्रमौ महायुद्धे सततं वृद्धसेविनौ।
सात्यकिर्दशभिर्वीरो डिम्भकं वेदपारगम्॥ २
अविध्यन्निशितैर्बाणैः स्तने वक्त्रे तथोरसि।
स तेन विद्धो बलिना डिम्भकः क्षत्रियोत्तमः॥ ३
नाराचैः पञ्चसाहस्रैर्विव्याध युधि गर्वितः।
तानन्तरे वृष्णिवीरो निषिद्धन् निनदन् ब्रुवन्॥ ४
अथ क्रुद्धो नृपवरो विद्धः सप्तभिराशुगैः।
पुनः शतसहस्रेण प्रत्यविध्यत सात्यकिम्॥ ५
सात्यकिस्त्वथ विक्रान्तो धनुश्चिच्छेद तस्य तत्।
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन डिम्भकस्य स यादवः॥ ६
आजघ्ने डिम्भको वीरश्चापमादाय चापरम्।
क्षुरप्रेणाथ रौद्रेण तैलधौतेन विक्रमी॥ ७
स तेन विद्धो बाणेन वमञ्छोणितकं नृप।
अतीव शुशुभे राजन् वसन्ते किंशुको यथा॥ ८
धनुश्चिच्छेद भूयस्तु गृहीतं यत् पुनर्महत्।
ततोऽन्यद् धनुरादाय डिम्भको यादवेश्वरम्॥ ९
जघान निशितैर्बाणैः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः।
स धनुः पुनरत्युग्रं चिच्छेद युधि सात्यकिः॥ १०
शरेण तीक्ष्णपुङ्खेन डिम्भकस्य दुरात्मनः।
ततोऽन्यद् धनुरादाय सत्वरं स नृपोत्तमः॥ ११
धनुषा तेन राजेन्द्र सात्यकिं विव्यधे पुनः।
एवं धनूंषि राजेन्द्र शतं पञ्च च पञ्च च॥ १२
छित्त्वा ननाद शैनेयः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः।
धनुषी तौ परित्यज्य वीरौ डिम्भकसात्यकी॥ १३
खड्गौ प्रगृह्य चात्युग्रौ युद्धाय समुपस्थितौ।
तौ हि खड्गविदां श्रेष्ठौ वीरौ डिम्भकसात्यकी॥ १४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर डिम्भक और सात्यकि अत्यन्त घोर युद्ध करने लगे। वे दोनों बलवान् वीर क्षत्रियोंमें विख्यात थे॥ १॥ उन्होंने महायुद्धमें बड़ा परिश्रम किया था। वे दोनों सदा वृद्ध पुरुषोंका सेवन करनेवाले थे। वीर सात्यकिने वेदोंके पारङ्गत विद्वान् डिम्भकके स्तन, मुख और छातीमें दस पैने बाणोंसे प्रहार किया। उस बलवान् वीरके द्वारा घायल किये गये क्षत्रियशिरोमणि डिम्भकने जिसे युद्धमें अपने पराक्रमपर बड़ा गर्व था, सात्यकिको पाँच हजार नाराचोंद्वारा चोट पहुँचायी, परंतु वृष्णिवीर सात्यकिने उन नाराचोंको बीचमें ही गर्जना करके तथा बोलकर हुंकारमात्रसे ही खण्डित कर दिया॥ २—४॥ तब सात शीघ्रगामी बाणोंसे घायल होकर कुपित हुए नृपश्रेष्ठ डिम्भकने पुनः एक लाख बाणोंसे सात्यकिको क्षत-विक्षत कर दिया॥ ५॥ तत्पश्चात् पराक्रमी यादव वीर सात्यकिने एक तीखे अर्धचन्द्राकार बाणसे डिम्भकके उस धनुषको काट डाला॥ ६॥ तब पराक्रमी वीर डिम्भकने दूसरा धनुष लेकर तेलसे धुले हुए भयंकर क्षुरप्रके द्वारा सात्यकिको गहरी चोट पहुँचायी॥ ७॥ राजन्! उस बाणसे घायल हो रक्त-वमन करते हुए सात्यकि वसन्तमें खिले हुए पलाशके समान बड़ी शोभा पाने लगे॥ ८॥ तब उन्होंने पुनः डिम्भकके उस विशाल धनुषको काट डाला, जिसको उसने दुबारा हाथमें लिया था। तदनन्तर डिम्भकने पुनः दूसरा धनुष हाथमें लेकर समस्त क्षत्रियोंके देखते-देखते यादवेश्वर सात्यकिको पैने बाणोंसे घायल करना आरम्भ किया। सात्यकिने युद्धस्थलमें दुरात्मा डिम्भकके उस अत्यन्त भयंकर धनुषको तीखे पंखवाले बाणसे पुनः काट डाला। राजेन्द्र! फिर नृपश्रेष्ठ डिम्भकने तुरंत दूसरा धनुष लेकर उसके द्वारा सात्यकिको पुनः बींधना आरम्भ किया। राजाधिराज जनमेजय! इस प्रकार सात्यकिने सब क्षत्रियोंके देखते-देखते डिम्भकके एक सौ दस धनुष काटकर बड़े जोरसे गर्जना की। तब डिम्भक और सात्यकि दोनों वीर अपने धनुषोंको त्यागकर अत्यन्त भयंकर खड्ग हाथमें ले परस्पर युद्धके लिये उपस्थित हुए। वे दोनों वीर खड्गयुद्धके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ थे॥ ९—१४॥

दौःशासनिर्महाभागः सौमदत्तिस्तथैव च।
अभिमन्युश्च विक्रान्तो नकुलश्च तथैव च॥ १५
एते खड्गविदां श्रेष्ठाः कीर्तिता युधि सत्तमाः।
एतेष्वेतौ नृपश्रेष्ठौ षट्सु वै नृपसत्तम॥ १६
तावेतावसिना युद्धं चक्रतुर्युद्धलालसौ।
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धं प्रविद्धं बाहुनिःसृतम्॥ १७
आकरं विकरं भिन्नं निर्मर्यादममानुषम्।
संकोचितं कुलचितं सव्यजानु विजानु च॥ १८
आहिकं चित्रकं क्षिप्तं कुसुम्बं लम्बनं धृतम्।
सर्वबाहु विनिर्बाहु सव्येतरमथोत्तरम्॥ १९
त्रिबाहु तुङ्गबाहुत्वं सव्योन्नतमुदासि च।
पट्टिकं मौष्टिकं चैव यौधिकं प्रथितं तथा॥ २०
इति प्रकारान् द्वात्रिंशच्चक्रतुः खड्गयोधिनौ।
पुनः पुनः प्रहरन्तौ न च श्रममुपेयतुः॥ २१
पुष्करस्थौ महाराज युद्धाय कृतनिश्चयौ।
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः॥ २२
तुष्टुवुस्तौ महाराज जये कृतपरिश्रमौ।
अहो वीर्यमहो धैर्यमनयोर्बाहुशालिनोः॥ २३
एतावेव रणे शक्तौ खड्गे धनुषि पारगौ।
एकः शिष्यो गिरीशस्य द्रोणस्यान्यो हि धीमतः॥ २४
अर्जुनः सात्यकिश्चैव वासुदेवो जगत्पतिः।
त्रय एते महावीराः प्रथिताः सङ्गरे सदा॥ २५
डिम्भकः शक्तिभृच्छर्वस्त्रय एते महारथाः।
प्रसिद्धाः सर्व एवैते वीर्येषु च बलेषु च॥ २६
इति ते देवगन्धर्वाः सिद्धा यक्षा महोरगाः।
दिविस्थिताः समं ब्रूयुर्युद्धदर्शनलालसाः॥ २७

महाभाग दुःशासनकुमार, सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा, पराक्रमी अभिमन्यु तथा नकुल (और डिम्भक, सात्यकि)—ये युद्धस्थलके छः श्रेष्ठतम वीर खड्गयुद्धके ज्ञाताओंमें उत्कृष्ट माने गये हैं। नृपश्रेष्ठ! इन छहोंमें भी ये दोनों श्रेष्ठ नरेश सर्वोत्तम कहे गये हैं। वे ही दोनों युद्धकी लालसा लेकर खड्गद्वारा परस्पर जूझने लगे। भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, प्रविद्ध, बाहुनिःसृत, आकर, विकर, भिन्न, निर्मर्याद, अमानुष, संकोचित, कुलचित, सव्यजानु, विजानु, आहिक, चित्रक, क्षिप्त, कुसुम्ब, लम्बन, धृत, सर्वबाहु, विनिर्बाहु, दक्षिण, उत्तर, त्रिबाहु, तुङ्गबाहु, सव्योन्नत, उदासि, पट्टिक, मौष्टिक, यौधिक और प्रथित—ये खड्गयुद्धके बत्तीस पैंतरे हैं। खड्गयुद्धमें लगे हुए उन दोनों वीरोंने ये सभी पैंतरे वहाँ प्रकट किये। वे बारम्बार प्रहार करते हुए भी थकते नहीं थे। महाराज! पुष्करमें रहकर उन दोनों वीरोंने युद्धके लिये दृढ़ निश्चय कर लिया था। जनमेजय! तदनन्तर देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि विजयके लिये परिश्रम करनेवाले उन दोनों वीरोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे—। 'अहो! बाहुबलसे सुशोभित होनेवाले इन दोनों वीरोंका धैर्य और पराक्रम अद्भुत है। ये ही दोनों युद्धमें समर्थ हैं तथा खड्गविद्या और धनुर्वेदके पारङ्गत विद्वान् हैं। इनमेंसे एक तो भगवान् शङ्करका शिष्य है और दूसरा बुद्धिमान् द्रोणाचार्यका॥ १५—२४॥ अर्जुन, सात्यकि और जगदीश्वर भगवान् वासुदेव —ये तीन सदा ही युद्धस्थलमें 'महावीर' के नामसे विख्यात हैं॥ २५॥ 'डिम्भक, कुमार कार्तिकेय और भगवान् शिव—ये तीन मुख्य 'महारथी' हैं। ये सभी बल और वीर्यमें विख्यात हैं'॥ २६॥ इस प्रकार वे देवता, गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष और बड़े-बड़े नाग युद्ध देखनेकी इच्छासे खड़े होकर एक साथ उपर्युक्त बातें कर रहे थे॥ २७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने सात्यकिडिम्भकयुद्धे पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें सात्यकि और डिम्भकका युद्धविषयक एक सौ पच्चीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२५॥

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

हिडिम्बके साथ वसुदेव और उग्रसेनका युद्ध तथा बलभद्रके द्वारा हिडिम्बका वध

वैशम्पायन उवाच

वसुदेवोग्रसेनौ च वृद्धौ युद्धे सुनिर्वृतौ।
जराजरितसर्वाङ्गौ पलिताङ्गशिरोरुहौ॥ १

ज्ञानविज्ञानसम्पन्नौ राजमार्गविशारदौ।
युयुधाते महारङ्गे राक्षसेन दुरात्मना॥ २

शरैरनेकसाहस्रैरर्दयामासतू रणे।
राक्षसेन्द्रं दुरात्मानं हिडिम्बं पुरुषादकम्॥ ३

हिडिम्बो राक्षसेन्द्रस्तु भक्षयन् सर्वतो नरान्।
अतिप्रवृद्धो दुष्टात्मा लम्बबाहुर्महाहनुः॥ ४

लम्बोदरो विरूपाक्षः पिङ्गकेशो विलोचनः।
श्येननासो महारौद्र ऊर्ध्वरोमा महाभुजः॥ ५

पर्वताकारवर्ष्मा च दीर्घदंष्ट्रः शिवाननः।
लम्बोदरो दीर्घदन्तो जगद्ग्रासपरस्तथा॥ ६

उत्तुङ्गांसो महोरस्को दीर्घग्रीवो गजोपमः।
भक्षयन् मांसपिटकं पिबञ्शोणितसंचयम्॥ ७

गजान् नागैः समाहत्य हयैरश्वान् नृपोत्तम।
रथान् रथैः समाहत्य सादिनः सादिभिस्तथा॥ ८

मनुष्यान् स पुरो दृष्ट्वा नास्यग्रासं चकार सः।
कांश्चिद्धत्वा महाराज वृष्णिपालान् समन्ततः॥ ९

भक्षयामास सहसा हिडिम्बः पुरुषादकः।
यान् पश्यन् पुरतो रक्षस्ताञ्जघान विरूपधृक्॥ १०

भक्षयन्नपरान् वृष्णीन् यादवान् राक्षसेश्वरः।
चिक्षेप सहसा कांश्चिद्धिडिम्बः पुरुषादकः॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वसुदेव और उग्रसेन बूढ़े होनेपर भी युद्धमें परम सुख माननेवाले थे। उनके सारे अङ्ग जरासे जीर्ण हो गये थे, शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयी थीं और सिरके बाल सफेद हो गये थे॥ १॥ वे ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न तथा राजमार्ग (क्षत्रियधर्म—युद्ध)-में चतुर थे। ये दोनों उस महासमरमें दुरात्मा राक्षस हिडिम्बके साथ युद्ध करने लगे॥ २॥ उन दोनोंने अनेक सहस्र बाणोंद्वारा रणभूमिमें नरभक्षी राक्षसराज दुरात्मा हिडिम्बको पीडित कर दिया॥ ३॥ राक्षसराज हिडिम्ब सब ओरसे मनुष्योंको खाता हुआ अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट हो गया था। उसकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी और ठोड़ी विशाल थी। वह बड़ा दुष्टात्मा था। उसका पेट लम्बा और नेत्र विकराल थे। सिरके बाल पिंगल वर्णके दिखायी देते थे। उसकी आँखें विकृत थीं। नासिका बाजकी चोंचके समान जान पड़ती थी। वह महाभयंकर और विशाल भुजाओंसे युक्त था। उसके रोम ऊपरको उठे हुए थे॥ ४-५॥ शरीर पर्वताकार दिखायी देता था। दाढ़ें बड़ी-बड़ी थीं और मुँह गीदड़के समान प्रतीत होता था। लम्बे पेट और बड़े-बड़े दाँतोंवाला वह राक्षस सम्पूर्ण जगत्‌को अपना ग्रास बना लेनेके लिये तत्पर जान पड़ता था॥ ६॥ उसके कंधे ऊँचे, छाती चौड़ी और गर्दन लम्बी थी। वह देखनेमें हाथी-जैसा जान पड़ता था। वह पिटारी भर मांस खाता और संचित करके रखे हुए घड़ों रक्त पी जाता था॥ ७॥ नृपश्रेष्ठ! वह हाथियोंसे हाथियोंको, घोड़ोंसे घोड़ोंको, रथोंसे रथोंको और सवारोंसे सवारोंको मारकर कुचल देता था॥ ८॥ वह मनुष्योंको अपने सामने देखकर उन्हें नासिकाका ग्रास बना लेता था—नसकी तरह श्वासमार्गसे भीतर खींच लेता था। महाराज! नरभक्षी हिडिम्बने सब ओरसे आक्रमण करके कुछ वृष्णिपालक योद्धाओंको मारकर सहसा अपना आहार बना लिया। उस विकराल रूपधारी राक्षसने जिन्हें सामने देखा, उन्हींका वध कर डाला॥ ९-१०॥ पुरुषभक्षी राक्षसराज हिडिम्बने कितने ही वृष्णियों और यादवोंको खाते हुए उनमेंसे कुछको उठाकर सहसा दूर फेंक दिया॥ ११॥

अन्तकाले यथा क्रुद्धो रुद्रः प्राणभृतो नृप।
क्षणेनैकेन सर्वांस्तान् भक्षयामास राक्षसः॥ १२

केचिद् भीता दिशः प्रापुर्वृष्णयो वीर्यशालिनः।
केचित् तु भक्षितास्तेन रक्षसा वृष्णिपुङ्गवाः॥ १३

कुम्भकर्णो यथा राजन् भक्षयामास वानरान्।
निःशेषं वृष्णिसैन्यं तु चकार पुरुषादकः॥ १४

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धौ वृद्धौ यादवपुङ्गवौ।
धनुर्गृह्य महाघोरं राक्षसस्य पुरः स्थितौ॥ १५

यथा क्रुद्धस्य सिंहस्य मृगौ वृद्धतमाविव।
व्यादायास्यं महारक्षस्तौ वृद्धावभ्यधावत॥ १६

चिखादिषुर्विरूपाक्षः पातालतलसंनिभः।
ततो रक्षः पर्यधावत् खादत् खादत् कलेवरम्॥ १७

पूरयामासतुर्वीरौ शरैर्यदुवृषौ नृप।
हिडिम्बस्य महाघोरं व्यादितास्यमिवान्तकम्॥ १८

सर्वांस्तान् वारयामास देवशत्रुर्विरूपधृक्।
धावति स्म ततो रक्षो व्यादितास्यं भयानकम्॥ १९

तयोर्गृहीत्वा धनुषी बभञ्ज युधि सत्वरम्।
बाहू प्रसार्य दुष्टात्मा राक्षसो विकृताननः॥ २०

वसुदेवं महीपालं राजानं वृद्धसेविनम्।
ग्रहीतुं राक्षसश्रेष्ठो यतते नृपसंसदि॥ २१

हिडिम्ब उवाच

एष वां भक्षयिष्यामि वसुदेवं त्वया सह।
उग्रसेन किमर्थं त्वं तिष्ठसे मत्पुरोगमः॥ २२
आगच्छ प्रविशास्यं मे ग्रासभूतौ तु वां मम।
विधिना निर्मितो वृद्धो वसुदेवो हरेः पिता॥ २३
बुभुक्षितः श्रमार्तश्च युद्धे त्वरितविक्रमः।
मन्मुखान्नैव गच्छेतां प्रविशेतां त्वरान्वितौ॥ २४
युवयोः शोणितं पीत्वा तृप्तिं यास्यामि निर्वृतः।
खादामि च पुनर्मांसं वृद्धयोर्युवयोः सुखम्॥ २५

नरेश्वर! जैसे कुपित हुए रुद्रदेव अन्तकालमें प्राणियोंका संहार कर डालते हैं, उसी प्रकार उस राक्षसने एक ही क्षणमें उन सबका भक्षण कर लिया॥ १२॥ कुछ पराक्रमशाली वृष्णिवंशी भयभीत हो विभिन्न दिशाओंमें भाग गये तथा कितने ही वृष्णिवंशके श्रेष्ठ योद्धा उस राक्षसके आहार बन गये॥ १३॥ राजन्! जैसे कुम्भकर्ण वानरोंको खा गया था। उसी प्रकार उस नरभक्षी निशाचरने वृष्णिवंशकी सेनाको समाप्त-सी कर दिया॥ १४॥ इसी बीचमें बूढ़े यादवशिरोमणि वसुदेव और उग्रसेन कुपित हो महाभयंकर धनुष हाथमें लेकर उस राक्षसके सामने खड़े हुए, मानो क्रोधमें भरे हुए सिंहके समक्ष दो अत्यन्त वृद्ध मृग आ गये हैं। उस समय वह महाराक्षस मुँह बाकर उन दोनों बूढ़ोंको खा जानेकी इच्छासे उनकी ओर दौड़ा। उसके नेत्र बड़े भयंकर थे। वह अपने खुले हुए मुखसे पाताल-तलके समान प्रतीत होता था। नरेश्वर! तदनन्तर मनुष्यके शरीरको बारम्बार चबाता हुआ वह राक्षस उन दोनोंकी ओर वेगपूर्वक दौड़ा। उस समय उन युद्धश्रेष्ठ वीरोंने अपने बाणोंद्वारा हिडिम्बके महाभयंकर खुले हुए मुखको, जो मुँह बाये हुए यमराजके समान जान पड़ता था, अपने बाणोंसे भर दिया॥ १५—१८॥ तब उस विकराल रूपधारी देवद्रोही भयानक राक्षसने उन सब बाणोंका निवारण कर दिया और पुनः मुँह फैलाकर उनपर धावा किया॥ १९॥ उसने उन दोनोंके धनुष छीनकर तुरंत उस युद्धस्थलमें ही तोड़ डाले; फिर वह विकराल मुखवाला दुष्टात्मा राक्षस अपनी दोनों बाहें फैलाकर वृद्धसेवी भूपाल राजा वसुदेवको उस राजसमाजमें ही पकड़नेकी चेष्टा करने लगा। वह राक्षसोंमें श्रेष्ठ समझा जाता था॥ २०-२१॥

हिडिम्ब बोला—उग्रसेन! तुम किस लिये मेरे सामने खड़े हो। मैं अभी तुम दोनोंको खा जाऊँगा। तुम्हारे साथ वसुदेवको भी चट कर जाऊँगा॥ २२॥ आओ! मेरे मुखमें प्रवेश करो। तुम दोनों मेरे ग्रासस्वरूप हो। जिसे विधाताने श्रीकृष्णका पिता बना दिया है, वह बूढ़ा वसुदेव भूखसे पीड़ित है, परिश्रमसे कष्ट पाता है और युद्धमें शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करता है। अब तुम दोनों मेरे मुँहसे छूटकर नहीं जा सकते, तुरंत ही मेरे मुखके भीतर प्रवेश करो॥ २३-२४॥ तुम दोनोंका रक्त पीकर मैं तृप्त होऊँगा और संतोष प्राप्त करूँगा। इसके बाद तुम दोनों वृद्धोंके मांसको मैं सुखपूर्वक खाऊँगा॥ २५॥

इति ब्रुवंस्तथा रक्षो व्यादितास्यो महाहनुः।
धावति स्म तदा क्षिप्रं हिडिम्बो राक्षसेश्वरः॥ २६
वसुदेवोग्रसेनौ च भीतौ विप्रेक्ष्य सर्वतः।
दिशोऽभ्यभजतां राजन् निःशस्त्रौ वृष्णिपुङ्गवौ॥ २७
एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा बलभद्रः प्रतापवान्।
दृष्ट्वा च तौ तथाभूतौ वसुदेवोग्रसेनकौ॥ २८
वासुदेवे समादिश्य हंसं युध्यन्तमीश्वरे।
निर्गत्य चान्तरं तस्य राक्षसस्य दुरात्मनः॥ २९
मा कृथाः साहसं रक्षो मुञ्चैतौ राजसत्तमौ।
स्थितोऽस्मि युध्यतां रक्षो मया शत्रूञ्जिघांसता॥ ३०
अहमेव हनिष्ये त्वां का चेयं तव भीषिका।
इति ब्रुवाणं हलिनं तौ विसृज्य महारणे॥ ३१
महानयमसौ दुष्टो भक्षयाम्येनमग्रतः।
विदार्य पूर्ववद् वक्त्रं बलभद्रमुपाद्रवत्॥ ३२
विसृज्य सशरं चापं राक्षसस्य पुरः स्थितः।
मुष्टिं प्रगृह्य बलवान् स्फोटयन् बाहुमुत्तमम्॥ ३३
हिडिम्बस्त्वथ दुष्टात्मा मुष्टिं कृत्वा भयानकम्।
जघान वक्षो रामस्य व्यादितास्य इवान्तकः॥ ३४
क्रुद्धोऽथ बलभद्रस्तु मुष्टिना तेन ताडितः।
जघान मुष्टिना तेन राक्षसेशमनिन्दितः॥ ३५
मुष्टियुद्धं समभवन्नरराक्षसवीरयोः।
युद्ध्यतोर्युद्धरङ्गेऽथ नरराक्षससिंहयोः॥ ३६
तयोश्चटचटाशब्दः प्रादुरासीद् भयानकः।
अथ राक्षसराजस्तु मुष्टिना राममाहवे॥ ३७
जघान वक्षोदेशे तु वज्रेणेव पुरंदरः।
अथ रामो बली साक्षान्मुष्टिं संवर्त्य यत्नतः॥ ३८
हिडिम्बं ताडयामास वक्षस्यमरविद्विषम्।
तलाभ्यामथ रामस्तु वक्त्रे हत्वा स राक्षसम्॥ ३९
आहतस्तलघातेन हिडिम्बो राक्षसेश्वरः।
जानुभ्यामपतद् भूमौ गतासुर्वीरराक्षसः॥ ४०

ऐसा कहता हुआ विशाल ठोड़ीवाला राक्षसराज निशाचर हिडिम्ब उस समय मुँह बाकर उनकी ओर दौड़ा॥ २६॥ राजन्! तब शस्त्रहीन हुए वृष्णिशिरोमणि वसुदेव और उग्रसेन भयभीत हो सब ओर देखकर विभिन्न दिशाओंमें भागने लगे॥ २७॥ इसी बीचमें प्रतापी बलभद्रने वसुदेव और उग्रसेनको वैसी अवस्थामें पड़ा देख, जूझते हुए हंसका भार बलवान् श्रीकृष्णको सौंप दिया और स्वयं वे उस दुरात्मा राक्षसके बीचमें आकर इस प्रकार बोले—॥ २८-२९॥ 'ओ राक्षस! ऐसा दुःसाहस न कर। इन दोनों भूपशिरोमणियोंको छोड़ दे। मैं खड़ा हूँ। शत्रुओंके वधकी इच्छासे यहाँ आये हुए मुझ बलभद्रके साथ तू युद्ध कर। केवल मैं ही तुझे मार डालूँगा, यह क्या तेरी विभीषिका है!' इस तरह बोलते हुए हलधरकी बात सुनकर हिडिम्बने उस महासमरमें वसुदेव और उग्रसेनको तो छोड़ दिया और सोचा—'यह महान् दुष्ट है, अतः पहले इसीको खा जाऊँ' ऐसा विचारकर पूर्ववत् मुँह फैलाये हुए उसने बलभद्रपर धावा किया॥ ३०—३२॥ बलवान् बलभद्र बाणसहित धनुषको त्यागकर अपनी उत्तम भुजापर ताल ठोंकते हुए उस राक्षसके आगे मुट्ठी बाँधकर खड़े हो गये॥ ३३॥ दुष्टात्मा हिडिम्बने भी मुँह बाये हुए यमराजकी भाँति भयंकर मुट्ठी बाँधकर बलरामके वक्षःस्थलपर प्रहार किया॥ ३४॥ उसके मुक्केकी मार खाकर अनिन्द्य बलशाली बलभद्रजी कुपित हो उठे। फिर उन्होंने भी उस राक्षसराजको मुक्केसे मारा॥ ३५॥ फिर तो उन नर और निशाचर-वीरोंमें मुक्केसे ही युद्ध होने लगा। युद्धकी रङ्गभूमिमें जूझते हुए नरसिंह बलभद्र और राक्षससिंह हिडिम्बके मुक्कोंका भयंकर चट-चट शब्द प्रकट होने लगा। तदनन्तर राक्षसराज हिडिम्बने समराङ्गणमें बलरामके वक्षःस्थलपर मुक्केसे प्रहार किया, मानो देवराज इन्द्रने किसी पर्वतपर वज्रसे आघात किया हो। इसके बाद साक्षात् बलवान् बलरामने यत्नपूर्वक मुट्ठी बाँधकर देवद्रोही हिडिम्बके वक्षःस्थलपर बड़े जोरसे आघात किया। तत्पश्चात् उन्होंने उस राक्षसके मुँहपर दो तमाचे जड़ दिये॥ ३६—३९॥ उनके तमाचेकी मार खाकर वीर निशाचर राक्षसराज हिडिम्ब प्राणहीन-सा होकर घुटनोंके बल पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४०॥

तत उत्पत्य रामस्तु दोर्भ्यां संगृह्य राक्षसम्।
आदाय बहुवेगेन भ्रामयित्वा पदात् पदम्॥ ४१
व्याविध्यत् सुचिरं रामो दर्शयन्नात्मनो बलम्।
उत्क्षिप्य राक्षसेन्द्रं तं सर्वलोकस्य पश्यतः॥ ४२
गव्यूतिमात्रं चिक्षेप ततो देशाद्धलायुधः।
गतासू राक्षसश्रेष्ठस्ततो देशान्निराक्रमत्॥ ४३
ये केचिद् राक्षसास्तत्र हतशेषा महारणे।
बलभद्रात् ततो भीता जग्मुश्चैवं दिशो दश॥ ४४
अथांशुमाली भगवान् दिनेशः
संहृत्य तेजांसि सहस्त्ररश्मिः।
अस्तं ययौ चक्षुरपि प्रजाना-
मीषत्तमश्चापि समाविवेश॥ ४५
तस्मिन् प्रविष्टेऽथ समुद्रतोयं
प्रजापतौ विश्वमुखे जगद्गुरौ।
नक्षत्रनाथः समुपाजगाम
संध्यातमोऽपि व्यनशन्नृपोत्तम॥ ४६
प्रभातकाले नृप सत्तमो रणो
गोवर्धने किन्नरगीतनादिते।
इति ब्रुवन्तो नृपसत्तमास्तदा
व्युपारमंस्तत्र रणोत्सवे नृप॥ ४७

फिर बलरामजीने उछलकर उस राक्षसको दोनों हाथोंसे पकड़ लिया और उसे उठाकर पग-पगपर बड़े वेगसे घुमाया। इस तरह अपना बल दिखाते हुए बलरामजी देरतक उसे घुमाते रहे। फिर सब लोगोंके देखते-देखते हलधरने उस राक्षसराजको उछालकर वहाँसे दो कोस दूर फेंक दिया। इस प्रकार राक्षस-प्रवर हिडिम्ब प्राणशून्य होकर उस स्थानसे दूर निकल गया*॥ ४१—४३॥ उस महासमरमें जो कोई भी राक्षस वहाँ मरनेसे बचे हुए थे, वे बलभद्रजीसे भयभीत हो वहाँसे दसों दिशाओंमें भाग गये॥ ४४॥ तदनन्तर सहस्त्रों किरणोंसे सुशोभित दिनके स्वामी अंशुमाली भगवान् सूर्य अपने तेज समेटकर अस्ताचलको चले गये और प्रजाजनोंके नेत्रोंमें कुछ-कुछ अन्धकारका समावेश हो गया॥ ४५॥ नृपश्रेष्ठ जनमेजय! सम्पूर्ण विश्वके मुखस्वरूप प्रजापालक जगद्गुरु सूर्यदेवके समुद्रके जलमें प्रवेश कर जानेपर नक्षत्रनाथ चन्द्रमाका उदय हुआ, जिससे संध्याकालका अन्धकार भी नष्ट हो गया॥ ४६॥ जनमेजय! उस समय हंसकी सेनामें जो श्रेष्ठ नरेश थे, वे यह कहते हुए वहाँ समरोत्सवसे विरत हो गये कि 'राजन्! कल प्रातःकालका युद्ध किन्नरोंके गीतसे गूँजते हुए गोवर्धनपर्वतपर हो तो अच्छा होगा' (ऐसा कहकर वे सब नरेश वहाँसे भागकर गोवर्धनपर्वतपर चले गये)॥ ४७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हिडिम्बपराभवे षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें हिडिम्बका पराभवविषयक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२६॥

---

* पाण्डव भीमसेनने एकचक्रा नगरीमें जानेसे पूर्व जिस हिडिम्ब नामक राक्षसको मारा था, वह इससे भिन्न था और वह इससे पहले ही मारा जा चुका था। यह दूसरा हिडिम्ब बलभद्रजीके हाथों मारा गया।

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोवर्धन पर्वतके समीप हंस और डिम्भकके साथ यादवोंका युद्ध, श्रीकृष्णद्वारा भूतेश्वरोंकी पराजय तथा श्रीकृष्ण और हंसका घोर युद्ध

वैशम्पायन उवाच

उभौ तौ हंसडिम्भकौ रात्रावेव महागिरिम्।
जग्मतुः सहितौ राजन् गोवर्धनमथो नृप॥ १
अथ प्रभाते विमले सूर्ये चाभ्युदिते सति।
गोवर्धनं जगामाशु केशवः केशिसूदनः॥ २
शैनेयो बलभद्रश्च यादवाः सारणादयः।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नादितं बहुधा गिरिम्॥ ३
जग्मुस्ते सहिता राजन् गोवर्धनमथो गिरिम्।
गोधनैरथ सैन्यैश्च नादितं बहुधा गिरिम्॥ ४
तस्योत्तरं नृपश्रेष्ठ पार्श्वं सम्प्राप्य यादवाः।
निकषा यमुनां राजंस्ततो युद्धमवर्तत॥ ५
विव्याध हंसडिम्भकौ वसुदेवश्च सप्तभिः।
सारणः पञ्चविंशत्या दशभिः कङ्क एव च॥ ६
हंसेन डिम्भकेनाथ यादवैश्च समन्ततः।
उग्रसेनस्त्रिसप्तत्या शराणां नतपर्वणाम्॥ ७
विराटस्त्रिंशता राजन् सात्यकिश्चापि सप्तभिः।
अशीत्या विपृथू राजन्नुद्धवो दशभिः शरैः॥ ८
प्रद्युम्नस्त्रिंशता राजन् साम्बश्चापि च सप्तभिः।
अनाधृष्टिस्त्वेकषष्ट्या शराणां नतपर्वणाम्॥ ९
एवं ते सहिता राजंश्चक्रुर्युद्धमदीनवत्।
अत्यद्भुतं महाघोरं यादवाः सर्व एव हि॥ १०
चक्रुस्ताभ्यां महायुद्धं वासुदेवस्य पश्यतः।
सर्वानपि महाराज यादवान् बलदर्पितान्॥ ११
तावुभौ हंसडिम्भकौ नृपांस्तान् प्रत्यविध्यताम्।
प्रत्येकं दशभिर्विद्ध्वा बाणैर्निशितनिर्मलैः॥ १२
जघ्नतुश्च शरैस्तीक्ष्णैरत्यर्थं यादवेश्वरान्।
व्यथिताः सर्व एवैते वमन्तः शोणितं बहु॥ १३

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! नरेश्वर! तदनन्तर वे दोनों भाई हंस और डिम्भक रातमें ही एक साथ महागिरि गोवर्धन पर्वतको चल दिये॥ १॥ जब निर्मल प्रभातकाल आनेपर सूर्यदेवका उदय हुआ, तब केशिहन्ता भगवान् केशव भी शीघ्रतापूर्वक गोवर्धन पर्वतकी ओर चले॥ २॥ सात्यकि, बलभद्र और सारण आदि यादव भी गन्धर्वों और अप्सराओंके नाना प्रकारके गीतोंसे निनादित गोवर्धन पर्वतपर गये॥ ३॥ राजन्! वे सब लोग एक साथ गोवर्धन पर्वतपर जा पहुँचे। वह पर्वत गोधनों और सेनाओंके नाना प्रकारके शब्दोंसे प्रतिध्वनित हो रहा था॥ ४॥ नृपश्रेष्ठ! राजन्! जब यादव उस पर्वतके उत्तर तटपर पहुँच गये, तब यमुनाके निकट पुनः युद्ध आरम्भ हुआ॥ ५॥ वसुदेवने सात बाणोंसे हंस और डिम्भकको घायल कर दिया। सारणने पच्चीस और कङ्कने दस बाण मारे॥ ६॥ इस प्रकार हंस और डिम्भकके साथ यादवोंका सब ओरसे युद्ध छिड़ गया। उग्रसेनने झुकी हुई गाँठवाले तिहत्तर बाण मारे॥ ७॥ राजन्! विराटने तीस, सात्यकिने सात, विपृथुने अस्सी तथा उद्धवने दस बाणोंका प्रहार किया॥ ८॥ जनमेजय! प्रद्युम्नने तीस, साम्बने सात और अनाधृष्टिने झुकी हुई गाँठवाले इकसठ बाणोंद्वारा शत्रुओंको घायल कर दिया॥ ९॥ राजन्! इस प्रकार वे समस्त यादव एक साथ होकर उत्साहसम्पन्न पुरुषकी भाँति अत्यन्त अद्भुत और महाघोर युद्ध करने लगे॥ १०॥ महाराज! भगवान् श्रीकृष्णके देखते-देखते समस्त यादवोंने हंस और डिम्भकके साथ महान् युद्ध छेड़ दिया। दोनों भाई हंस और डिम्भकने भी उन समस्त यादवनरेशोंको अपने बाणोंद्वारा घायल कर दिया। उन दोनोंने तेज धारवाले चमचमाते हुए दस-दस बाणोंद्वारा प्रत्येकको घायल करके पैने बाणोंसे समस्त यादवेश्वरोंको गहरी चोट पहुँचायी। राजन्! उन बाणोंसे व्यथित हो ये सब-के-सब मुँहसे बहुत-सा रक्त वमन करते हुए

माधवे किंशुका राजन् पुष्पिता इव ते बभुः।
भीताश्च यादवा राजन् पलायनपरायणाः॥ १४

एतस्मिन्नन्तरे राजन् वसुदेवात्मजो नृप।
वासुदेवो हली युद्धे प्रमुखे धन्विनौ तयोः॥ १५

चक्रतुर्युद्धमतुलं स्कन्दशक्राविवाम्बरे।
तयोरेव सगन्धर्वाः सिद्धा यक्षा महर्षयः॥ १६

विमानस्थाश्च ददृशुर्युद्धं देवासुरोपमम्।
ततः प्रादुरभूतां तौ दूतौ भूतेश्वरौ नृप॥ १७

शूलिना प्रेषितौ युद्धे रक्षार्थं बलिनोस्तयोः।
हंसोऽथ वासुदेवश्च युद्धं चक्रतुरीश्वरौ॥ १८

रामश्च डिम्भकश्चैव संयुक्तौ युद्धकाङ्क्षया।
विक्रान्ताः सर्व एवैते ह्यस्त्रे शस्त्रे तथा बले॥ १९

शङ्खान् दध्मुः पृथक् ह्लादं स्वे स्वे सर्वे रथे स्थिताः।
अथ कृष्णो हृषीकेशः पाञ्चजन्यं महारवम्॥ २०

दध्मौ पद्मपलाशाक्षः सर्वान् विस्मापयन्निव।
अथ भूतौ महाघोरौ लम्बोदरशरीरिणौ॥ २१

दुद्रुवतुर्महाराज शूलमादाय केशवम्।
शूलेन पोथयां राजञ्चक्रतुर्यादवेश्वरम्॥ २२

ताभ्यां समाहतो विष्णुर्देवगन्धर्वसंनिधौ।
ईषत्स्मिताधरो देवः किंचिदुत्प्लुत्य सत्वरम्॥ २३

रथाद् रथिवरश्रेष्ठस्तौ प्रगृह्य जनार्दनः।
भ्रामयित्वा शतगुणमलातमिव केशवः॥ २४

कैलासं च समुद्दिश्य प्रचिक्षेप ततो हरिः।
तावुपेत्य गिरेः शृङ्गं कैलासस्य महामते॥ २५

दृष्ट्वा तत्कर्म देवस्य विस्मयं जग्मतुः परम्।
हंसश्च दृष्ट्वा तत्कर्म रोषताम्रायतेक्षणः॥ २६

उवाच वचनं हंसः शृण्वतां त्रिदिवौकसाम्।
किमर्थं राजसूयस्य विघ्नं चरसि केशव॥ २७

ब्रह्मदत्तो महीपालो यष्टा तस्य महाक्रतोः।
करं दिश यथायोगं यदि प्राणान् हि रक्षसि॥ २८

वसन्त-ऋतुमें खिले हुए पलाशवृक्षोंके समान शोभा पाने लगे। राजन्! उस समय यादव-सैनिक भयभीत होकर भागने लगे। महाराज जनमेजय! इसी बीचमें वसुदेवके पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण और हलधर बलराम धनुष हाथमें लिये युद्धके मुहानेपर उन दोनोंके सामने आकर उसी तरह अनुपम संग्राम करने लगे, जैसे इन्द्र और कार्तिकेय आकाशमें खड़े होकर असुरोंसे युद्ध करते हैं। उस समय विमानोंपर बैठे हुए गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष और महर्षि देवासुर-संग्रामके समान उन दोनोंका युद्ध देखने लगे। नरेश्वर! तदनन्तर वहाँ युद्धमें उन दोनों बलवान् वीर हंस और डिम्भककी रक्षा करनेके लिये महादेवजीके भेजे हुए वे दोनों भूतेश्वर दूत प्रकट हुए। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण और हंस दोनों सामर्थ्यशाली वीर एक-दूसरेके साथ युद्ध करने लगे। उधर बलराम और डिम्भक भी युद्ध करनेकी इच्छासे परस्पर उलझ गये। ये सब-के-सब अस्त्र, शस्त्र और बलमें पराक्रमी थे। इन सबने अपने-अपने रथमें स्थित होकर पृथक्-पृथक् शङ्ख बजाना आरम्भ किया। तदनन्तर इन्द्रियोंके प्रेरक कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने सबको विस्मयमें डालते हुए-से महान् शब्द करनेवाले पाञ्चजन्य शङ्खको बजाया। महाराज! इतनेमें ही लम्बे पेट और विशाल शरीरवाले उन महाभयंकर भूतोंने शूल लेकर भगवान् श्रीकृष्णपर आक्रमण किया। राजन्! उन दोनोंने यादवेश्वर श्रीकृष्णपर एक साथ ही शूलसे प्रहार किया। देवताओं और गन्धर्वोंके समीप उन दोनोंके आघातसे आहत हो भगवान् श्रीकृष्णके अधरपर मन्द मुसकानकी छटा बिखर गयी। वे रथियोंमें श्रेष्ठ भगवान् जनार्दन कुछ उछलकर तुरंत रथसे कूद पड़े और दोनों भूतेश्वरोंको पकड़कर उन्हें अलातचक्रके समान सौ बार घुमानेके पश्चात् उन केशव हरिने कैलासपर्वतकी ओर फेंक दिया। महामते! वे दोनों कैलासपर्वतके शिखरपर पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्णका वह पराक्रम देख बड़े विस्मयमें पड़ गये। श्रीकृष्णका वह कर्म देखकर हंसके बड़े-बड़े नेत्र रोषसे लाल हो गये। उसने समस्त देवताओंके सुनते हुए यह बात कही— केशव! हमारे राजसूय-यज्ञमें क्यों विघ्न डाल रहे हो? महाराज ब्रह्मदत्त उस महायज्ञका अनुष्ठान करेंगे। यदि अपने प्राणोंकी रक्षा चाहते हो तो उसमें यथायोग्य कर दो॥ ११—२८॥

अथवा त्वं क्षणं तिष्ठ ततो ज्ञात्वा परं बहु।
ददासि त्वं नन्दपुत्र ततो यष्टा स मे गुरुः॥ २९

ईश्वरोऽहं सदा राज्ञां देवानामिव शूलभृत्।
एष ते वीर्यमतुलं नाशयिष्यामि संयुगे॥ ३०

इत्युक्त्वा सशरं चापं शालतालोपमं नृप।
आकृष्य च यथाप्राणं नाराचेन च केशवम्॥ ३१

ललाटे चिक्षिपे हंसो ललाम इव सोऽभवत्।
उवाच सात्यकिं कृष्णो रथं वाहय मे प्रभो॥ ३२

दारुकं पृष्ठवाहं तं कृत्वा देशं तमीश्वरः।
अथ तेन समादिष्टः सात्यकिर्वाहयन् रथम्॥ ३३

मण्डलानि बहून्याजौ दर्शयामास सत्वरम्।
अथ विद्धो दृढं तेन शरेण हरिरीश्वरः॥ ३४

आग्नेयमस्त्रं संयोज्य शरे कस्मिंश्चिदव्ययः।
उवाच हंसं राजेन्द्र सात्यकिं प्रेरयन् रणे॥ ३५

अनेन त्वां दहे पाप यदि शक्तोऽसि वारय।
अलं ते बह्वबद्धेन क्षत्रियोऽसि सदा शठ॥ ३६

मत्तश्चेत् करमिच्छेस्त्वं दर्शयाद्य पराक्रमम्।
यतयो बाधिता हंस पुष्करे संस्थितास्त्वया॥ ३७

शास्ता त्वं खलु विप्राणां स्थिते मयि नराधम।
स्थिते मयि जगन्नाथे हत्वा क्षत्रियकण्टकान्॥ ३८

शास्तास्म्यथो सतां लोके दुष्टानां ब्रह्मविद्विषाम्।
शापेन यतिमुख्यानां हत एव नराधम॥ ३९

मृत्यवे त्वां निवेद्याद्य रक्षिता ब्राह्मणानहम्।
इति ब्रुवंस्तदस्त्रं तु मुमोच युधि केशवः॥ ४०

तदस्त्रं वारुणेनाथ हंसोऽपि प्रत्यषेधयत्।
वायव्यमथ गोविन्दो मुमोच युधि हंसके॥ ४१

तदस्त्रं वारयामास माहेन्द्रेण नृपोत्तमः।
अथ माहेश्वरं कृष्णो मुमोचात्युग्रमाहवे॥ ४२

'अथवा नन्दपुत्र! तुम क्षणभर मेरे सामने खड़े रहो, फिर मेरी श्रेष्ठताको जानकर स्वयं ही बहुत-सा कर प्रदान करोगे; फिर मेरे पिता यज्ञका आरम्भ करेंगे॥ २९॥ जैसे देवताओंके ईश्वर शूलधारी महादेव हैं; उसी प्रकार सदा समस्त राजाओंका ईश्वर मैं हूँ। इस युद्धमें मैं तुम्हारे अनुपम बलको अभी नष्ट किये देता हूँ'॥ ३०॥ नरेश्वर! ऐसा कहकर हंसने शाल और तालके समान विशाल धनुष और बाण ले उसे बलपूर्वक खींचकर उस नाराचके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णके ललाटमें प्रहार किया। वह नाराच उनके लिये मनोहर आभूषण-सा प्रतीत हो रहा था। तब भगवान् श्रीकृष्णने सात्यकिसे कहा—'प्रभावशाली वीर! तुम मेरा रथ हाँको।' भगवान्‌ने जब सात्यकिको इस प्रकार आदेश दिया, तब वे दारुकको पीछे करके उस स्थानपर बैठकर उनका रथ हाँकने लगे॥ ३१—३३॥ राजेन्द्र! सात्यकिने युद्धस्थलमें शीघ्रता-पूर्वक रथके बहुत-से पैंतरे दिखाये। उधर हंसके बाणसे गहरी चोट खाकर अविनाशी भगवान् श्रीकृष्णने किसी बाणपर आग्नेयास्त्रका आधान करके सात्यकिको रण-भूमिमें आगे बढ़नेके लिये प्रेरित करते हुए हंससे कहा—॥ ३४-३५॥ 'पापी! शठ! मैं इस बाणसे तुझे अभी दग्ध किये देता हूँ, यदि शक्ति हो तो इसे रोक। अब तेरे लिये बहुत-सी असङ्गत बातें बकनेसे कोई लाभ न होगा। तू क्षत्रिय है, सदा अपने कर्तव्यका पालन कर॥ ३६॥ यदि मुझसे कर लेना चाहता है तो आज दिखा अपना पराक्रम! हंस! तूने पुष्करमें रहनेवाले यतियोंको सताया है॥ ३७॥ नराधम! मैं इस सम्पूर्ण जगत्‌का ईश्वर हूँ। तू मेरे रहते ब्राह्मणोंपर शासन करता है। मैं तुझ-जैसे क्षत्रियरूपी कण्टकोंका वध करके सत्पुरुषोंके जगत्‌में ब्रह्मद्रोही दुष्टोंका शासन करनेवाला हूँ। नराधम! तू मुख्य-मुख्य यतियोंके शापसे ही मर चुका है। आज तुझे मृत्युके हवाले करके मैं ब्राह्मणोंकी रक्षा करूँगा'। ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने युद्धमें हंसपर उस आग्नेयास्त्रको छोड़ दिया; तब हंसने भी वारुणास्त्रसे उस अस्त्रका निवारण कर दिया। यह देख गोविन्दने रणभूमिमें हंसपर वायव्यास्त्र चलाया, किंतु नृपश्रेष्ठ हंसने माहेन्द्रास्त्रसे उसका वारण कर दिया। तत्पश्चात् श्रीकृष्णने युद्धस्थलमें अत्यन्त भयंकर माहेश्वरास्त्रका

रौद्रेण तत् ततो हंसो वारयामास तत्क्षणात्।
गान्धर्वं राक्षसं चैव पैशाचमथ केशवः॥ ४३

ब्रह्मास्त्रमथ कौबेरमासुरं याम्यमेव च।
चत्वार्येतानि हंसस्तु मुमोच युधि सत्वरम्॥ ४४

वारणार्थं तदस्त्राणां चतुर्णां माधवस्य ह।
अथ ब्रह्मशिरो नाम घोरमस्त्रं विनाशकम्॥ ४५

मुमोच हंसमुद्दिश्य देवदेवो जनार्दनः।
योजयामास तद्धंसे महाघोरपराक्रमम्॥ ४६

अथ भीतो महारौद्रमस्त्रं दृष्ट्वा नृपोत्तमः।
हंसोऽपि तेन राजेन्द्र वारयामास तं शरम्॥ ४७

यमुनाप उपस्पृश्य देवदेवो जनार्दनः।
अस्त्रं वैष्णवमादाय शरे स निशिते हरिः॥ ४८

योजयामास भूतात्मा भूतभावनभावनः।
येन देवा रणे हत्वा राज्यमापुः पुरासुरान्।
तदस्त्रं योजयामास वधार्थं तस्य भूपतेः॥ ४९

प्रयोग किया, परंतु हंसने रौद्रास्त्र-द्वारा तत्काल उसका निवारण कर दिया। तब श्रीकृष्णने लगातार गान्धर्व, राक्षस और पैशाच अस्त्र छोड़े (पूर्वोक्त माहेश्वर अस्त्रको लेकर ये चार हुए)। माधवके उन चारों अस्त्रोंका निवारण करनेके लिये हंसने युद्धस्थलमें तुरंत ही ब्रह्मास्त्र, कौबेरास्त्र, आसुरास्त्र और याम्यास्त्र—ये चार अस्त्र छोड़े। तदनन्तर देवाधिदेव जनार्दनने ब्रह्मशिर नामक महान् विनाशकारी भयानक अस्त्र हंसपर छोड़ा। उन्होंने महान् एवं घोर पराक्रमवाले उस अस्त्रका हंसके लिये ही प्रयोग किया था॥ ३८—४६॥ राजेन्द्र! उस महाभयंकर अस्त्रको देखकर नृपश्रेष्ठ हंस भयभीत हो उठा; फिर उसने भी उसी अस्त्रसे उस बाणका वारण किया॥ ४७॥ तदनन्तर सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति और पालन करनेवाले भूतात्मा देवाधिदेव जनार्दन हरिने यमुनाजीके जलका आचमन करके एक तीखे बाणपर वैष्णवास्त्रकी संयोजना की॥ ४८॥ पूर्वकालमें देवताओंने रणभूमिमें जिसके द्वारा असुरोंका वध करके अपना राज्य प्राप्त किया था, उसी अस्त्रका राजा हंसके वधके लिये श्रीकृष्णने प्रयोग किया॥ ४९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हंसकेशवयुद्धे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें हंस और श्रीकृष्णका युद्धविषयक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२७॥

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णद्वारा हंसका वध

वैशम्पायन उवाच

अथ भीतो महारौद्रमस्त्रं दृष्ट्वा नृपोत्तम।
हंसो राजा महाराज निश्चेष्ट इव सम्बभौ॥ १

उत्प्लुत्य स रथात् तस्माद् यमुनामभ्यधावत।
यत्र कृष्णो हृषीकेशः कालियाहिं ममर्द ह॥ २

महाह्रदं महारौद्रं यावत्पातालसंस्थितम्।
तावद्दीर्घं महानीलं कालाञ्जननिभं हि यत्॥ ३

तस्मिन् ह्रदे महाघोरे पपाताथ स हंसकः।
हंसे पतति तस्मिंस्तु महान् रावो बभूव ह॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—नृपश्रेष्ठ! महाराज! उस महाभयंकर अस्त्रको देखकर राजा हंस भयके मारे निश्चेष्ट-सा प्रतीत होने लगा॥ १॥ वह उस रथसे उछलकर यमुनाजीकी ओर भागा, जहाँ पूर्वकालमें हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णने कालियनागका मर्दन किया था॥ २॥ वह महान् ह्रद बड़ा भयंकर और पातालपर्यन्त गहरा था। उसका विस्तार भी उतना ही था। वह काली अञ्जनराशि (अथवा कोयले)-के समान महानील (या काला) प्रतीत होता था॥ ३॥ उसी महाघोर कालियह्रदमें हंस कूद पड़ा। उसके कूदनेपर वहाँ बड़ा भारी धमाकेका-सा शब्द हुआ,

गिरीणां पात्यमानानां समुद्र इव वज्रिणा।
रथादुत्प्लुत्य कृष्णोऽपि तस्योपरि पपात ह॥ ५

देवदेवो जगन्नाथो जगद् विस्मापयन्निव।
प्राहरत् तं महाबाहुः पादाभ्यामथ केशवः॥ ६

पादक्षेपं नृपस्तस्माल्लब्ध्वा हंसो नृपोत्तम।
ममार च नृपश्रेष्ठ केचिदेवं वदन्ति हि॥ ७

अन्ये पातालमायातो भक्षितः पन्नगैरिति।
अद्यापि नैव राजेन्द्र दृष्ट इत्यनुशुश्रुम॥ ८

यथापूर्वं जगन्नाथो रथं समुपजग्मिवान्।
हते तस्मिन् महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ९

अकरोद् राजसूयं च तव पूर्वपितामहः।
यदि जीवेदसौ हंसः को नमस्यति तं क्रतुम्॥ १०

स च सर्वास्त्रविन्नित्यं रुद्राल्लब्धवरः प्रभो।
क्षणादेव महाराज वार्तेयं गामगाहत॥ ११

हतो हंसो हतो हंसः कृष्णेन रिपुमर्दिना।
जगुर्गन्धर्वपतयो देवलोके दिवानिशम्॥ १२

कृष्णेन लोकनाथेन विष्णुना प्रभविष्णुना।
यमुनाया ह्रदे घोरे हंसो निहत इत्यपि॥ १३

मानो इन्द्रके द्वारा समुद्रमें गिराये जाते हुए पर्वतोंका कोलाहल प्रकट हुआ हो। तब जगदीश्वर देवाधिदेव श्रीकृष्ण भी सम्पूर्ण जगत्को विस्मयमें डालते हुए-से रथसे उछलकर उस कुण्डमें हंसके ऊपर कूद पड़े। उस समय महाबाहु केशवने उसपर दोनों पैरोंसे प्रहार किया। नृपश्रेष्ठ जनमेजय! श्रीकृष्णके चरणोंका प्रहार पाकर राजा हंस मर गया—ऐसा कुछ लोग कहते हैं॥ ४—७॥ राजेन्द्र! दूसरोंका कहना है कि वह पातालमें धँस गया और वहाँ सर्प उसे खा गये। वह अबतक वहाँसे लौटा नहीं देखा गया—ऐसा उसके विषयमें हमने सुना है॥ ८॥ तदनन्तर जगदीश्वर श्रीकृष्ण पूर्ववत् रथपर आ गये। महाराज! हंसके मारे जानेपर ही तुम्हारे पूर्वपितामह धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया था। यदि हंस जीवित होता तो कौन उस यज्ञके सामने मस्तक झुकाता॥ ९-१०॥ प्रभो! वह भगवान् रुद्रसे वर पाकर सदाके लिये सम्पूर्ण अस्त्रोंका ज्ञाता हो गया था। महाराज! क्षणभरमें यह समाचार भूमण्डलमें फैल गया। 'शत्रुओंका मान-मर्दन करनेवाले श्रीकृष्णने हंसको मार डाला, हंसको मार डाला'—यह गन्धर्वराजगण देवलोकमें दिन-रात गान करने लगे॥ ११-१२॥ 'सम्पूर्ण जगत्के स्वामी प्रभावशाली विष्णुस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने यमुनाके भयंकर ह्रदमें हंसको मार डाला।' इस प्रकार उनके यशका सर्वत्र गान होने लगा॥ १३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हंसवधे अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस-डिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें हंसका वधविषयक एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२८॥

एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

डिम्भककी आत्महत्या

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा निहतमत्युग्रं भ्रातरं वीर्यशालिनम्।
बलदेवं परित्यज्य युध्यमानं महारणे॥ १

डिम्भको वीर्यसम्पन्नो यमुनामनुजग्मिवान्।
तमन्वधावद् वेगेन बलभद्रो हलायुधः॥ २

हंसो हि यत्र पतितस्तत्रासौ निपपात ह।
यमुनायां महाराज विलोड्य जलसंचयम्॥ ३

अथ क्रुद्धः स डिम्भको भ्रामयित्वा जलं बहु।
उन्मज्ज्योन्मज्ज्य सहसा निमज्ज्य च पुनः पुनः॥ ४

न ददर्श तदा राजन् भ्रातरं वीर्यशालिनम्।
उन्मज्ज्याथ महाबाहुर्वासुदेवं विलोक्य च॥ ५

उवाच वचनं राजन् डिम्भको वीर्यवत्तमः।
अरे गोपकदायाद क्वासौ हंस इति स्थितः॥ ६

वासुदेवोऽपि धर्मात्मा यमुनां पृच्छ राजक।
इत्यब्रवीत् प्रसन्नात्मा वासुदेवः प्रतापवान्॥ ७

तच्छ्रुत्वा यमुनां भूयः प्रविश्य डिम्भकः किल।
बहुप्रकारमुद्वीक्ष्य भ्रातरं भ्रातृवत्सलः॥ ८

विललाप ततो राजा डिम्भको भ्रान्तमानसः।
क्व नु गच्छसि राजेन्द्र विहायैनमबान्धवम्॥ ९

कुतो भ्रातरितो गच्छेः परित्यज्यैव मामिह।
विलप्यैवं नृपश्रेष्ठ डिम्भको भ्रातृवत्सलः॥ १०

आत्मत्यागे मनः कुर्वन् यमुनाया महाह्रदे।
निमज्ज्योन्मज्ज्य सहसा मरणे कृतनिश्चयः॥ ११

हस्तेन जिह्वामाकृष्य भूयो भूयो विलप्य च।
ततः समूलामाकृष्य जिह्वां साहसकृत् स्वयम्॥ १२

ममारान्तर्जले राजन् डिम्भको नरकाय वै।
एवं तु निहते हंसे डिम्भके वीर्यशालिनि॥ १३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अपने पराक्रमशाली भाई अत्यन्त उग्र हंसको उस महासमरमें मारा गया सुनकर बलवान् डिम्भक जूझते हुए बलभद्रको वहीं छोड़कर यमुनाजीके तटपर गया। उस समय हलधर बलभद्रने बड़े वेगसे उसका पीछा किया॥ १-२॥ महाराज! हंस जहाँ यमुनाजीमें कूदा था, वहीं डिम्भक भी कूद पड़ा। उसने यमुनाकी जलराशिको मथ डाला॥ ३॥ क्रोधमें भरा हुआ डिम्भक उस जलमें चक्कर लगाकर सहसा गोता लगाता और ऊपरको निकल आता था। राजन्! इस प्रकार बारम्बार डुबकी लगानेपर भी उसने अपने पराक्रमशाली भाईको वहाँ नहीं देखा। राजन्! तब बलवानोंमें श्रेष्ठ महाबाहु डिम्भक जलसे ऊपर आकर वासुदेव श्रीकृष्णको सामने देख उनसे इस प्रकार बोला—'अरे गोपपुत्र! वह हंस कहाँ है?' धर्मात्मा वासुदेवने भी उत्तर दिया—'नीच नरेश! यमुनाजीसे पूछ'। प्रतापी वासुदेवने जब प्रसन्नचित्त होकर इस प्रकार कहा, तब भ्रातृवत्सल डिम्भकने उनकी बात सुनकर पुनः यमुनामें प्रवेश किया और नाना प्रकारसे अपने भाईकी खोज करके भ्रान्तचित्त हुआ वह राजा विलाप करने लगा। 'राजेन्द्र! इस बन्धुहीन डिम्भकको छोड़कर कहाँ जा रहे हो? भैया! मुझे यहीं छोड़कर यहाँसे कहाँ चले जा रहे हो?'। नृपश्रेष्ठ जनमेजय! इस प्रकार विलाप करके भ्रातृवत्सल डिम्भकने यमुनाजीके महान् कुण्डमें अपने शरीरको त्याग देनेका विचार किया। सहसा गोता लगाकर वह जलसे ऊपरको उठा और मरनेका निश्चय करके बारम्बार विलाप करनेके पश्चात् स्वयं दुःसाहस करनेवाला वह डिम्भक हाथसे जिह्वाको जड़सहित बाहर खींचकर जलके भीतर मर गया। राजन्! उसका यह दुर्मरण नरककी प्राप्ति करानेवाला था। इस प्रकार पराक्रमशाली हंस और डिम्भकके मारे जानेपर

आगमत् पुण्डरीकाक्षो भूतान् विस्मापयन्निव।
ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा वासुदेवः प्रतापवान्॥ १४
गोवर्धनेऽथ विश्रम्य बलभद्रसहायवान्।
कंचित् कालं महाराज पूर्वभुक्तमुवास ह॥ १५

कमलनयन श्रीकृष्ण सम्पूर्ण भूतोंको विस्मयमें डालते हुए-से लौट आये। महाराज! इससे प्रीतियुक्त और प्रसन्नचित्त हुए प्रतापी भगवान् वासुदेवने बलभद्रजीके साथ गोवर्धन पर्वतपर विश्राम करके अपने पूर्वभुक्त स्थानपर कुछ कालतक निवास किया॥ ४—१५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि डिम्भकमरणे एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १२९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें डिम्भकका मरणविषयक एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२९॥

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

गोप-गोपियोंसहित यशोदा और नन्दका गोवर्धन पर्वतपर आकर श्रीकृष्ण और बलभद्रसे मिलना

वैशम्पायन उवाच

यशोदा नन्दगोपश्च कृष्णदर्शनलालसौ।
गोवर्धनगतं श्रुत्वा वासुदेवं सहाग्रजम्॥ १
नवनीतं च दधि च पायसं कृसरं तथा।
वन्यं पुष्पं महाराज मयूराङ्गदमेव च॥ २
बल्लवैरपरैः सार्धं गोपिभिश्च समन्ततः।
जग्मतुः सहसा प्रीतौ गोवर्धनमथो नृप॥ ३
क्वचिद् वृक्षे समासक्तं कृष्णं कृष्णमृगेक्षणम्।
ददर्शतुर्महाबाहुं वासुदेवं सहाग्रजम्॥ ४
प्रणेमतुः सुसंहृष्टौ तत्र दृष्ट्वा महाबलौ।
दर्शयामासतुर्देवौ पायसानि महान्ति च॥ ५
तात मातर्व्रजे गोष्ठे कुशलं वा स्वगोधनम्।
अपि गावः क्षीरवत्यो वत्सा वत्सतराः पितः॥ ६
अपि वा सुशुभं क्षीरमपि गावः सुशोभनाः।
अपि वा दारका मातर्वत्सपालाः पिबन्ति च॥ ७
बहूनि चापि दामानि कीलका अपि वा बहु।
तृणानि बहुरूपाणि किं वा सन्ति पितः सदा॥ ८
शकटानि सुगन्धीनि किं वा सन्ति पितर्ध्रुवम्।
अपि गोप्यः पुत्रवत्यो दारकान् किमजीजनन्॥ ९

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज जनमेजय! यशोदा और नन्दगोपके मनमें श्रीकृष्णको देखनेके लिये बड़ी लालसा थी। जब उन्होंने सुना कि श्रीकृष्ण अपने बड़े भाईके साथ गोवर्धन पर्वतपर आये हैं, तब वे दोनों सहसा बड़े प्रसन्न हुए और मक्खन, दही, खीर, खिचड़ी, जंगली फूल तथा मोरपंखके बाजूबंद लेकर सब ओरसे एकत्र हुए दूसरे गोपों और गोपियोंके साथ गोवर्धन पर्वतपर गये॥ १—३॥ वहाँ उन्होंने कृष्णमृगके समान विशाल नेत्रवाले वसुदेवनन्दन महाबाहु श्रीकृष्णको अपने बड़े भाईके साथ कहीं वृक्षके नीचे उससे सटकर बैठे देखा॥ ४॥ उन्हें देखकर नन्द और यशोदा बड़े प्रसन्न हुए, फिर उन महाबली देवता श्रीकृष्ण-बलदेवने नन्द और यशोदाको प्रणाम किया। इसके बाद यशोदा और नन्दने खीर आदि महत्त्वपूर्ण उपहार उनके सामने प्रस्तुत किया॥ ५॥ उस समय श्रीकृष्णने पूछा—'बाबा! मैया! व्रजके गोष्ठमें अपने सभी गोधन सकुशल तो हैं न? पिताजी! गौएँ दूध देती हैं न? उनके बड़े-छोटे बछड़े सुखी हैं न?'॥ ६॥ 'क्या व्रजकी गौओंका दूध शुद्ध एवं मङ्गलकारी होता है? क्या अपने यहाँ सुन्दर शोभामयी गौएँ हैं? मैया! छोटे-छोटे बच्चे और बछड़े चरानेवाले बालक भरपूर दूध पीते हैं न?॥ ७॥ 'बाबा! क्या अपने यहाँ बहुत-सी रस्सियाँ, बहुतेरे खूँटे तथा अनेक प्रकारकी घासें सदा प्रस्तुत रहती हैं?'॥ ८॥ 'पिताजी! क्या छकड़े सदा गोरससे सुगन्धित रहते हैं? क्या गोपियाँ पुत्रवती हुई हैं? क्या उन्होंने बच्चोंको जन्म दिया है?'॥ ९॥

घटाः किं बहवो मातरभिन्नाः सर्वतो व्रजे।
किं गावः क्षीरमतुलं स्रवन्त्यहरहः पितः॥ १०

हैयङ्गवीनं क्षीराणि दधि वा किमजीजनन्।
गोधनं सर्वमेवेदं नीरोगं प्रतिपद्यते॥ ११

नन्द उवाच

सर्वमेतद् यदुश्रेष्ठ नीरोगं बहुशः प्रभो।
कुशलं गोधनस्यैव सर्वकालेषु केशव॥ १२

रक्षणात् तव देवेश सदा कुशलिनो वयम्।
सगोधनाः सवत्साश्च नीरोगा इव केशव॥ १३

एकमेव सदा दुःखं न त्वां द्रक्ष्यामि केशव।
यदेतत् केवलं दुःखमिति धीः शीर्यते सदा॥ १४

वैशम्पायन उवाच

एवमादि विलप्यन्तं गच्छेत्याह स केशवः।
यशोदां पुनराहेदं मातर्गच्छ गृहं प्रति॥ १५

ये च त्वां कीर्तयिष्यन्ति ते च स्वर्गमवाप्नुयुः।
ये केचित् त्वां नमस्यन्ति ते मे प्रियतराः सदा॥ १६

मद्भक्ताः सर्वदा सन्तु गच्छेत्याह च तां हरिः।
इत्युक्त्वा पितरौ देवो वासुदेवः सनातनः॥ १७

गाढमालिङ्ग्य तौ प्रीतौ प्रेषयामास केशवः।
यशोदा नन्दगोपश्च जग्मतुः स्वगृहं प्रति॥ १८

ततः कृष्णो हृषीकेशो यादवैः सह वृष्णिभिः।
गन्तुमैच्छत् तदा विष्णुः पुरीं द्वारवतीं किल॥ १९

य एतच्छृणुयान्नित्यं पठेद् वापि समाहितः।
पुत्रवान् धनवांश्चैव अन्ते मोक्षं च गच्छति॥ २०

'मैया! क्या व्रजमें सब ओर बिना फूटे हुए बहुत-से घड़े हैं? बाबा? क्या गौएँ प्रतिदिन अतुलनीय दुग्ध प्रदान करती हैं?॥ १०॥ 'क्या अपनी गौओंने दूध-दही और मक्खनकी उपज बढ़ायी हैं? अपना सारा गोधन नीरोग तो है न?'॥ ११॥

नन्द बोले—प्रभो यदुश्रेष्ठ! अपना यह सारा गोधन प्रायः नीरोग ही है। केशव! गोधन तो सदा ही सकुशल है॥ १२॥ देवेश्वर! तुम्हारे संरक्षणसे हमलोग सदा कुशलपूर्वक रहते हैं। केशव! हम गोधन और बछड़ोंसहित नीरोग-से ही हैं॥ १३॥ श्रीकृष्ण! मुझे तो सदा एक ही दुःख बना रहता है कि मैं तुम्हें भर आँख देख नहीं पाता हूँ। यह जो एक ही दुःख है, इससे सदा मेरा अन्तःकरण व्यथित रहता है॥ १४॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस तरह विलाप करते हुए नन्दसे भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'बाबा! रोओ मत! अपने घरको जाओ।' फिर उन्होंने यशोदासे कहा—'मैया! तुम भी घर जाओ'॥ १५॥ 'जो लोग तुम्हारा कीर्तन करेंगे, वे स्वर्गलोकमें जायँगे तथा जो कोई तुम्हें नमस्कार करेंगे, वे सदा-सर्वदा मेरे परम प्रिय भक्त होंगे।' ऐसा कहकर श्रीहरिने मैयासे कहा—'तुम जाओ'। माता-पितासे ऐसा कहकर सनातन भगवान् वासुदेवने प्रसन्नतापूर्वक उनके गलेसे लगकर उन्हें विदा किया। तत्पश्चात् यशोदा और नन्दगोप अपने घरको लौट गये॥ १६—१८॥ तदनन्तर इन्द्रियोंके प्रेरक विष्णुस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने यादवों तथा वृष्णिवंशियोंके साथ द्वारकापुरीको लौट जानेकी इच्छा की॥ १९॥ जो एकाग्रचित्त हो सदा इस प्रसंगको सुनता अथवा पढ़ता है, वह इस लोकमें पुत्रवान् और धनवान् होता है तथा अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ २०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि यशोदानन्दगोपबलभद्रकृष्णसमागमे त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें यशोदा, नन्दगोप, बलभद्र और श्रीकृष्णका समागमविषयक एक सौ तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३०॥

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

द्वारका जाते हुए श्रीकृष्णका पुष्करमें ऋषियोंसे मिलना तथा ऋषियोंद्वारा उनका स्तवन

वैशम्पायन उवाच

गच्छन्नथ महाविष्णुः पुष्करं प्राप्य यादवैः।
अपश्यन्मुनिमुख्यांस्तु पुस्करस्थान् नृपोत्तम॥ १

ते समेत्य महादेवमृषयो वीतमत्सराः।
अर्घ्यादिसमुदाचारं कृत्वैनं यादवोत्तमम्॥ २

प्रोचुर्विश्वेश्वरं विष्णुं भूतभव्यभवत्प्रभुम्।
अत्यद्भुतमिदं विष्णो तव वीर्यं जनार्दन॥ ३

येन तौ निहतौ युद्धे हंसो डिम्भक एव च।
यो विचक्रो दुराधर्षो देवैरपि सुदुःसहः॥ ४

संगरे निहतो देव दुःसाध्य इति नो मतिः।
क्षेमो नः सर्वकार्येषु चरतां तप उत्तमम्॥ ५

निष्कल्मषा भविष्यामस्तव संस्मरणाद्धरे।
त्वं हि सर्वस्य दुःखस्य हर्ता त्वां ध्यायतां सदा॥ ६

त्वदनुस्मरणं जन्तोः सदा पुण्यप्रदं प्रभो।
त्वं हि नः सततं धाता विधाता तपसो हरे॥ ७

त्वमोंकारो वषट्कारस्त्वं यज्ञस्त्वं पितामहः।
त्वं ज्योतिर्ब्रह्मणो मूर्तिस्त्वं ब्रह्मा रुद्र एव च॥ ८

प्राणस्त्वं सर्वभूतानामन्तरात्मेति कथ्यते।
उपास्यः सर्वभूतानां यज्ञैर्दानैर्जगत्पते॥ ९

नमो विश्वसृजे देव नमस्ते विश्वमूर्तये।
पाहि लोकमिमं देव हत्वा ब्रह्मद्विषः सदा॥ १०

स तथेति हरिर्विष्णुर्ययौ द्वारवतीं पुरीम्।
अवसद् वृष्णिभिः सार्धं स्तूयमानः स मागधैः॥ ११

इयं च देवदेवस्य चेष्टा हि जनमेजय।
प्रोक्ता ते पृच्छते राजन् किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—नृपश्रेष्ठ जनमेजय! वहाँसे जाते हुए महाविष्णुस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने यादवोंके साथ पुष्करमें पहुँचकर वहाँ रहनेवाले श्रेष्ठ मुनियोंका दर्शन किया॥ १॥ उन मात्सर्यरहित ऋषियोंने इन यदुकुल-तिलक महान् देव श्रीकृष्णसे मिलकर उन्हें अर्घ्य आदि निवेदन करनेके पश्चात् भूत, वर्तमान और भविष्यके स्वामी जगदीश्वर श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा— 'विष्णो! जनार्दन! आपका यह बल-पराक्रम अत्यन्त अद्भुत है, जिससे आपने युद्धमें हंस और डिम्भकको मार डाला। 'देव! जो देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुःसह था। उस दुर्जय वीर विचक्रको भी आपने युद्धस्थलमें मार डाला! उसे पराजित करना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन था। ऐसा हमारा विश्वास है'। 'अब उत्तम तपका आचरण करनेवाले हमलोगोंके सभी कार्योंमें क्षेम सुलभ हो गया। हरे! हम आपके स्मरणसे सर्वथा निष्पाप हो जायँगे। 'जो सदा आपका ध्यान करते हैं, उनके सभी दुःखोंको आप हर लेते हैं। प्रभो! आपका बारम्बार चिन्तन प्राणिमात्रके लिये सदा पुण्य प्रदान करनेवाला है'। 'हरे! आप ही सदा हमारी तपस्याके धारण-पोषण करनेवाले हैं। आप ही ओंकार हैं। आप ही वषट्कार हैं। आप ही यज्ञ हैं और आप ही पितामह हैं। 'आप ही ज्योति हैं। आप ही ब्रह्ममूर्ति हैं। आप ही ब्रह्मा और रुद्र हैं। आप ही सम्पूर्ण भूतोंके प्राण हैं। आप ही अन्तरात्मा कहलाते हैं। जगत्पते! यज्ञों और दानोंद्वारा समस्त प्राणियोंके लिये उपासना करने योग्य आप ही हैं'॥ २—९॥ 'देव! आप विश्वकी सृष्टि करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्व आपकी मूर्ति है, आपको नमस्कार है। देव! आप ब्रह्मद्रोहियोंका वध करके सदा इस विश्वका पालन कीजिये'॥ १०॥ तब 'बहुत अच्छा' कहकर श्रीविष्णु हरि द्वारकापुरीको गये और मागधोंसे अपनी स्तुति सुनते हुए वृष्णिवंशियोंके साथ वहाँ निवास करने लगे॥ ११॥ राजा जनमेजय! तुम्हारे पूछनेपर मैंने देवाधिदेव श्रीकृष्णकी यह लीला तुम्हें बतायी है। तुम और क्या सुनना चाहते हो?॥ १२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि द्वारकायां कृष्णस्य प्रत्यागमने एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्णका द्वारकामें प्रत्यागमनविषयक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३१॥

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

महाभारत और हरिवंशके श्रवणकी विधि और फल, वाचकके गुण, प्रत्येक पर्वपर दान देने योग्य वस्तु, एकसे लेकर दस पारणाओंकी महत्ता तथा महाभारत एवं हरिवंशका माहात्म्य

जनमेजय उवाच

भगवन् केन विधिना श्रोतव्यं भारतं बुधैः।
फलं किं के च देवाश्च पूज्या वै पारणेष्विह॥ १

देयं समाप्ते भगवन् किं च पर्वणि पर्वणि।
वाचकः कीदृशश्चात्र यष्टव्यस्तद् ब्रवीहि मे॥ २

वैशम्पायन उवाच

शृणु राजन् विधिमिमं फलं यच्चापि भारतात्।
श्रुताद् भवति राजेन्द्र यत् त्वं मामनुपृच्छसि॥ ३
दिवि देवा महीपाल क्रीडार्थमवनिं गताः।
कृत्वा कार्यमिदं चैव ततश्च दिवमागताः॥ ४
हन्त यत् ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व समाहितः।
ऋषीणां देवतानां च सम्भवं वसुधातले॥ ५
अत्र रुद्रास्तथा साध्या विश्वेदेवाश्च शाश्वताः।
आदित्याश्चाश्विनौ देवौ लोकपाला महर्षयः॥ ६
गुह्यकाश्च सगन्धर्वा नागा विद्याधरास्तथा।
सिद्धा धर्मः स्वयम्भूश्च मुनिः कात्यायनो वरः॥ ७
गिरयः सागरा नद्यस्तथैवाप्सरसां गणाः।
ग्रहाः संवत्सराश्चैव अयनान्यृतवस्तथा॥ ८
स्थावरं जङ्गमं चैव जगत् सर्वं सुरासुरम्।
भारते भरतश्रेष्ठ एकस्थमिह दृश्यते॥ ९
तेषां श्रुतिप्रतिष्ठानां नामकर्मानुकीर्तनात्।
कृत्वापि पातकं घोरं सद्यो मुच्येत मानवः॥ १०
इतिहासमिमं श्रुत्वा यथावदनुपूर्वशः।
संयतात्मा शुचिर्भूत्वा पारं गत्वा च भारते॥ ११
तेषां शृणु त्वं श्राद्धानि श्रुत्वा भारत भारतम्।
ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या भक्त्या च भरतर्षभ॥ १२
महादानानि देयानि रत्नानि विविधानि च।
गावः कांस्योपदोहाश्च कन्याश्चैव स्वलंकृताः॥ १३

जनमेजयने पूछा—भगवन्! विद्वान् पुरुषोंको महाभारतका श्रवण किस विधिसे करना चाहिये? इसका फल क्या है? तथा इसकी समाप्तिपर किन-किन देवताओंका पूजन करना चाहिये?॥ १॥ भगवन्! प्रत्येक पर्वके समाप्त होनेपर क्या दान देना चाहिये? तथा इसमें कैसे वाचकका पूजन करना चाहिये? यह सब मुझे बताइये॥ २॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! महाभारत सुननेकी इस विधिको सुनिये। राजेन्द्र! महाभारत श्रवण करनेसे जो फल होता है, जिसके विषयमें तुम मुझसे पूछ रहे हो, वह भी बताता हूँ, सुनो॥ ३॥ महीपाल! स्वर्गके देवता लीलाके लिये पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए थे। वे यह (अवतार-) कार्य करके वहाँसे देवलोकको लौट आये॥ ४॥ जनमेजय! मैं प्रसन्नतापूर्वक तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसे एकाग्रचित्त होकर सुनो। भूतलपर ऋषियों और देवताओंका प्रादुर्भाव हुआ था॥ ५॥ भरतश्रेष्ठ! रुद्र, साध्य, सनातन विश्वेदेव, आदित्य, दोनों अश्विनीकुमार नामक देवता, लोकपाल, महर्षि, गुह्यक, गन्धर्व, नाग, विद्याधर, सिद्ध, धर्म, स्वयम्भू ब्रह्माजी, श्रेष्ठ कात्यायन मुनि, पर्वत, सागर, नदियाँ, अप्सराएँ, ग्रह, संवत्सर, अयन, ऋतु, स्थावर-जङ्गमरूप सारा जगत्, देवता और असुर—ये इस महाभारतमें एकत्र स्थित देखे जाते हैं॥ ६—९॥ श्रुतिमें प्रतिष्ठित हुए इन सबके नाम और कर्मोंका बारम्बार कीर्तन करनेसे मनुष्य घोर पातक करनेपर भी उससे तत्काल मुक्त हो जाता है॥ १०॥ भारत! मनुष्य संयतचित्त एवं पवित्र हो इस इतिहासको क्रमशः यथावत् रूपसे सुनकर समूचे महाभारतके पार जाकर भारतयुद्धमें काम आये हुए वीरोंके किस प्रकार श्राद्ध करने चाहिये, यह बताता हूँ सुनो। भरतश्रेष्ठ! महाभारत सुनकर यथाशक्ति भक्तिपूर्वक उनके लिये ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके रत्न एवं बड़े-बड़े दान देने चाहिये। गौएँ, काँसके दुग्धपात्र तथा वस्त्राभूषणोंसे विभूषित कन्याएँ देनी चाहिये॥ ११—१३॥

सर्वकामगुणोपेता यानानि विविधानि च।
भाजनानि विचित्राणि भूमिर्वासांसि काञ्चनम्॥ १४

वाहनानि च देयानि हया मत्ताश्च वारणाः।
शयनं शिबिकाश्चैव स्यन्दनाश्च स्वलंकृताः॥ १५

यद् यद् गृहे वरं किंचिद् यद् यदस्ति महद्वसु।
तत् तद् देयं द्विजातिभ्य आत्मा दाराश्च सूनवः॥ १६

श्रद्धया परया दद्यात् क्रमशस्तस्य पारगः।
शक्तितः सुमना हृष्टः शुश्रूषुरविकम्पनः॥ १७

सत्यार्जवरतो यत्तः शुचिः शौचपरायणः।
श्रद्दधानो जितक्रोधो यथा सिद्ध्यति तच्छृणु॥ १८

शुचिः शीलान्विताचारः शुक्लवासा जितेन्द्रियः।
संस्कृतः सर्वशास्त्रज्ञः श्रद्दधानोऽनसूयकः॥ १९

रूपवान् सुभगो दान्तः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दानमानग्रहीता च कार्यो भवति वाचकः॥ २०

अविलम्बमनायस्तमद्रुतं घोरमूर्जितम्।
असंसक्ताक्षरपदं न च भावसमन्वितम्॥ २१

त्रिषष्टिवर्णसंयुक्तमष्टस्थानसमीरितम्।
वाचयेद् वाचकः स्वस्थः स्वाधीनः सुसमाहितः॥ २२

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥ २३

वे कन्याएँ सम्पूर्ण कमनीय गुणोंसे सम्पन्न हों। इनके सिवा नाना प्रकारके वाहन, विचित्र पात्र, पृथ्वी, वस्त्र एवं सुवर्णका दान करना चाहिये॥ १४॥ वाहन, घोड़े, मतवाले हाथी, शय्या, शिविका और सजे-सजाये रथ भी देने चाहिये॥ १५॥ अपने घरमें जो-जो कोई श्रेष्ठ वस्तु हो और जो-जो महान् धन हो, उसका ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये। अपने स्त्री-पुत्र और शरीरको भी उनकी सेवामें अर्पण कर देना चाहिये॥ १६॥ क्रमशः महाभारतको समाप्त करनेवाला पुरुष शुद्ध हृदयसे हर्षपूर्वक मनमें सेवाभाव रखते हुए स्थिरतापूर्वक बड़ी श्रद्धाके साथ यथाशक्ति पूर्वोक्त वस्तुओंका दान करे॥ १७॥ सत्य और सरलतामें तत्पर, प्रयत्नशील, पवित्र, शौचाचारपरायण, क्रोधको जीतनेवाले तथा श्रद्धालु श्रोताको जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त होती है, वह बताता हूँ, उसे सुनो॥ १८॥ जो शुद्ध, सुशील, सदाचारी, श्वेतवस्त्रधारी, जितेन्द्रिय, संस्कारसम्पन्न, सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञाता, श्रद्धालु, अदोषदर्शी, रूपवान्, सौभाग्यशाली, मन और इन्द्रियोंका दमन करनेवाला, सत्यवादी, इन्द्रियविजयी तथा दान-मानको ग्रहण करनेवाला हो, ऐसे विद्वान् पुरुषको ही वाचक बनाना चाहिये॥ १९-२०॥ स्वस्थ वाचक स्वाधीन और एकाग्रचित्त हो इस तरह कथा बाँचे कि विलम्बसे या रुक-रुककर शब्द न निकले (धारावाहिकरूपसे कथा चलती रहे), कठोर अक्षरका उच्चारण न करे, जल्दबाजी न करे, अस्पष्ट रूपसे शब्दोंका उच्चारण न करे—इस तरह बोले कि कोई अक्षर या पद टूटने न पाये, मनमें कोई विशेष अभिप्राय (लोभ आदि) रखकर कथा न बाँचे। आठ[१] स्थानोंसे उच्चरित होनेवाले [२]तिरसठ वर्णोंसे युक्त महाभारतका इस तरह पाठ करे कि प्रत्येक वर्णका स्पष्टतः विवेक होता रहे॥ २१-२२॥ वाचक पहले अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्यसखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (इतिहास, पुराण एवं महाभारत)-का पाठ आरम्भ करे॥ २३॥

१-कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ, नासिका, जिह्वामूल और हृदय—ये वर्णोंके उच्चारणके आठ स्थान हैं। २-पाणिनीय शिक्षामें तिरसठ वर्णोंकी गणना इस प्रकार दी गयी है—इक्कीस स्वर, पच्चीस स्पर्श, आठ यादि, चार यम, अनुस्वार, विसर्ग, क, प तथा दुःस्पृष्ट—ये सब मिलाकर तिरसठ वर्ण हैं। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—'अ इ उ ऋ' ये चार स्वर ह्रस्व, दीर्घ और प्लुतके भेदसे तीन-तीन तरहके माने गये हैं, अतः ये बारह हुए। लृकारका केवल ह्रस्वरूप ही ग्रहण किया गया है—इस प्रकार ये तेरह स्वर हुए। इनके सिवा, 'ए ओ ऐ औ' ये दीर्घ और प्लुतके भेदसे दो-दो प्रकारके हैं, अतः आठ हुए। पूर्वोक्त १३ और ये ८ मिलकर २१ स्वर होते हैं। 'क' से लेकर 'म' तकके २५ अक्षर स्पर्श कहलाते हैं। इनको मिलानेसे ४६ अक्षर हुए। 'य' से लेकर 'ह' तकके आठ अक्षरोंको जोड़ लेनेपर इनकी संख्या ५४ होती है। प्रतिशाख्यके अनुसार चार यम होते हैं। यथा—'पलिक्क्नी' 'चख्ख्नतुः', 'अग्गिनः', 'घ्घ्नन्ति' इन उदाहरणोंमें क् ख् ग् घ् से परे जो इन्हींके सदृश वर्ण हैं, इन्हींकी 'यम' संज्ञा है। इन चार यमोंको जोड़ लेनेसे अक्षरोंकी संख्या ५८ तक पहुँचती है। इनके सिवा, अनुस्वार (अं), विसर्ग (अः) क (जिह्वामूलीय), प (उपध्मानीय) तथा दुःस्पृष्टवर्ण (दो स्वरोंके मध्यमें वर्तमान लकार)—ये पाँच अक्षर और हैं। इन सबका योग तिरसठ होता है। ये ही तिरसठ अक्षर हैं।

ईदृशाद् वाचकाद् राजञ्छ्रुत्वा भारत भारतम्।
नियमस्थः शुचिः श्रोता शृण्वन् स फलमश्नुते॥ २४

पारणं प्रथमं प्राप्य द्विजान् कामैश्च तर्पयेत्।
अग्निष्टोमस्य यागस्य फलं वै लभते नरः॥ २५

अप्सरोगणसंकीर्णं विमानं लभते महत्।
प्रहृष्टः स तु देवैश्च दिवं याति समाहितः॥ २६

द्वितीयं पारणं प्राप्य अतिरात्रफलं लभेत्।
सर्वरत्नमयं दिव्यं विमानमधिरोहति॥ २७

दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धविभूषितः।
दिव्याङ्गदधरो नित्यं देवलोके महीयते॥ २८

तृतीयं पारणं प्राप्य द्वादशाहफलं लभेत्।
वसत्यमरसंकाशो वर्षाण्ययुतशो दिवि॥ २९

चतुर्थे वाजपेयस्य पञ्चमे द्विगुणं फलम्।
उदितादित्यसंकाशं ज्वलन्तमनलोपमम्॥ ३०

विमानं विबुधैः सार्धमारुह्य दिवि गच्छति।
वर्षायुतानि भवने शक्रस्य दिवि मोदते॥ ३१

षष्ठे द्विगुणमस्तीति सप्तमे त्रिगुणं फलम्।
कैलासशिखराकारं वैदूर्यमणिवेदिकम्॥ ३२

परिक्षिप्तं च बहुधा मणिविद्रुमभूषितम्।
विमानं समधिष्ठाय कामगं साप्सरोगणम्॥ ३३

सर्वाल्लँोकान् विचरते द्वितीय इव भास्करः।
अष्टमे राजसूयस्य पारणे लभते फलम्॥ ३४

चन्द्रोदयनिभं रम्यं विमानमधिरोहति।
चन्द्ररश्मिप्रतीकाशैर्हयैर्युक्तं मनोजवैः॥ ३५

सेव्यमानो वरस्त्रीणां चन्द्रकान्ततरैर्मुखैः।
मेखलानां निनादेन नूपुराणां च निःस्वनैः॥ ३६

राजन्! भरतनन्दन! जो श्रोता शौच, संतोष आदि नियमोंके पालनमें तत्पर एवं पवित्र रहकर ऐसे वाचकसे महाभारत सुनता है, वह उसके पूर्ण फलको प्राप्त कर लेता है॥ २४॥ प्रथम बार नियमपूर्वक हरिवंशान्त महाभारतका श्रवण पूरा करके ब्राह्मणोंको उनके इच्छानुसार वस्तुओंसे तृप्त करे। ऐसा करनेवाला मनुष्य अग्निष्टोम यागका फल पाता है॥ २५॥ उसे अप्सराओंसे भरा हुआ महान् विमान प्राप्त होता है और वह हर्षसे उत्फुल्ल एवं एकाग्रचित्त होकर देवताओंके साथ स्वर्गलोकमें जाता है॥ २६॥ दूसरी बार हरिवंशान्त महाभारतका श्रवण कर लेनेपर श्रोताको अतिरात्रयज्ञका फल मिलता है तथा वह सम्पूर्ण रत्नोंसे बने हुए दिव्य विमानपर आरूढ़ होता है॥ २७॥ वहाँ वह दिव्य माला और वस्त्र धारण करके दिव्य गन्धसे विभूषित हो, दिव्य अङ्गद आदि आभूषण पहनकर सदा देवलोकमें सम्मानित होता है॥ २८॥ तीसरी पारणा पूरी करनेपर उसे द्वादशाह यज्ञका फल प्राप्त होता है तथा वह देवताओंके समान तेजस्वी रूप धारण करके दस हजार वर्षोंतक देवलोकमें निवास करता है॥ २९॥ चौथी पारणापर वाजपेय यज्ञका और पाँचवींपर उससे दूना फल मिलता है। वह उदयकालके सूर्य तथा प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी विमानपर देवताओंके साथ आरूढ़ हो देवलोकमें जाता है और वहाँ इन्द्रभवनमें दस हजार वर्षोंतक आनन्द भोगता है॥ ३०-३१॥ छठी पारणामें इससे दूना अर्थात् चार वाजपेय यज्ञोंका फल पाता है। सातवेंमें तीन गुने अर्थात् बारह वाजपेय यज्ञोंके फलकी प्राप्ति होती है। वह कैलासशिखरके समान उज्ज्वल एवं विशाल वैदूर्यमणिकी वेदीसे विभूषित, अनेक प्रकारके मण्डलाकार मार्गोंसे युक्त, मणियों और मूँगोंसे अलंकृत, अप्सराओंसे परिपूर्ण तथा इच्छानुसार चलनेवाले विमानपर बैठकर दूसरे सूर्यके समान सम्पूर्ण लोकोंमें विचरता है। आठवीं पारणा पूरी होनेपर उसे राजसूय यज्ञका फल मिलता है। वह चन्द्रोदयके समान रमणीय विमानपर आरूढ़ होता है। जिसमें चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल और मनके समान वेगशाली घोड़े जुते होते हैं॥ ३२—३५॥ वह देवसुन्दरियोंके चन्द्रमासे भी अधिक कमनीय मुखोंसे, उनकी मेखलाओंकी ध्वनिसे तथा नूपुरोंकी झनकारोंसे

अङ्के परमनारीणां सुखं सुप्तो विबुध्यते।
नवमं क्रतुराजस्य वाजिमेधस्य भारत॥ ३७

काञ्चनस्तम्भनिर्व्यूहं वैदूर्यकृतवेदिकम्।
जाम्बूनदमयैर्दिव्यैर्गवाक्षैः सर्वतो वृतम्॥ ३८

सेवितं चाप्सरःसंघैर्गन्धर्वैर्दिविचारिभिः।
विमानं समधिष्ठाय श्रिया परमया ज्वलन्॥ ३९

दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यचन्दनभूषितः।
मोदते दैवतैः सार्धं दिवि देव इवापरः॥ ४०

दशमं पारणं प्राप्य द्विजातीनभिवन्द्य च।
किङ्किणीजालनिर्घोषं पताकाध्वजशोभितम्॥ ४१

रत्नवेदिकसंकाशं वैदूर्यमणितोरणम्।
हेमजालपरिक्षिप्तं प्रवालवलभीमुखम्॥ ४२

गन्धर्वैर्गीतकुशलैरप्सरोभिर्निषेवितम्।
विमानं सुकृतावासं सुखेनैवोपपद्यते॥ ४३

मुकुटेनार्कवर्णेन जाम्बूनदविभूषणः।
दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गो दिव्यमाल्यविभूषितः॥ ४४

दिव्याँल्लोकान् प्रचरति दिव्यैर्भोगैः समन्वितः।
विबुधानां प्रसादेन श्रिया परमया युतः॥ ४५

अथ वर्षगणानेवं स्वर्गलोके महीयते।
ततो गन्धर्वसहितः सहस्राण्येकविंशतिः॥ ४६

पुरंदरपुरे रम्ये शक्रेण सह मोदते।
दिव्ययानविमानेषु लोकेषु विविधेषु च॥ ४७

दिव्यनारीगणाकीर्णो निवसत्यमरो यथा।
ततः सूर्यस्य भवने चन्द्रस्य भवने तथा॥ ४८

शिवस्य भवने राजन् विष्णोर्याति सलोकताम्।
एवमेतन्महाराज नात्र कार्या विचारणा॥ ४९

श्रद्दधानेन वै भाव्यमेवमाह गुरुर्मम।
वाचकस्य तु दातव्यं मनसा यद् यदिच्छति॥ ५०

सेवित हो दिव्याङ्गनाओंके अङ्कमें सुखपूर्वक सोता और जागता है। भरतनन्दन! नवीं पारणा पूर्ण करके श्रोता यज्ञोंके राजा अश्वमेधका फल पाता है। वह सोनेके खम्भों और कँगूरोंसे सुशोभित, वैदूर्यमणिकी वेदीसे अलंकृत, सब ओर बने हुए सुवर्णमय दिव्य गवाक्षोंसे आवृत तथा स्वर्गमें विचरनेवाले गन्धर्वों और अप्सराओंसे सेवित विमानपर बैठकर अपनी उत्कृष्ट प्रभासे प्रकाशित होता है तथा दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण करके दिव्य चन्दनसे चर्चित हो दूसरे देवताकी भाँति देवलोकमें देवगणोंके साथ आनन्द भोगता है॥ ३६—४०॥ दसवीं पारणा पूरी करके ब्राह्मणोंको प्रणाम करे, ऐसा करके श्रोता पुण्यात्माओंके आवासस्थान दिव्य विमानको सुखपूर्वक पा लेता है। उस विमानमें छोटी-छोटी घंटियोंसे युक्त झालरें लगी होती हैं, जिनसे मधुर ध्वनि होती रहती है। ध्वजा और पताकाएँ उस विमानकी शोभा बढ़ाती हैं। वह रत्नमयी वेदिकाओंसे प्रकाशित होता है। उसमें वैदूर्यमणिके फाटक लगे होते हैं। वह सब ओरसे सोनेकी जालीसे घिरा रहता है। उसके छज्जोंका मुखभाग मूँगोंसे अलंकृत होता है तथा गीतकुशल गन्धर्व और अप्सराएँ उस विमानपर सेवाके लिये उपस्थित रहती हैं॥ ४१—४३॥ वह पुरुष अपने मस्तकपर सूर्यके समान प्रकाशमान मुकुटसे सुशोभित हो जाम्बूनद (सुवर्ण)-के आभूषण धारण करके सारे अङ्गोंमें दिव्य चन्दनसे चर्चित और दिव्य मालाओंसे विभूषित हो, दिव्य भोगों तथा उत्कृष्ट शोभासे सम्पन्न होकर, देवताओंके प्रसादसे दिव्य लोकोंमें विचरता है॥ ४४-४५॥ इस प्रकार बहुत वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर गन्धर्वोंके साथ रमणीय पुरन्दरपुरी अमरावतीमें रहकर इक्कीस हजार वर्षोंतक इन्द्रके साथ आनन्द भोगता है॥ इसके बाद नाना प्रकारके पुण्यलोकोंमें दिव्य यानों और विमानोंपर दिव्य नारियोंसे घिरा रहकर वहाँ देवताके समान निवास करता है। राजन्! तत्पश्चात् वह क्रमशः सूर्यभवनमें, चन्द्रलोकमें तथा भगवान् शिवके धाममें निवास करके अन्तमें भगवान् विष्णुका सालोक्य प्राप्त कर लेता है। महाराज! यह ठीक ऐसी ही बात है। इस विषयमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। इसपर श्रद्धा करनी चाहिये। यह मेरे गुरु व्यासजीका कथन है। वाचकको वह मनसे जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करे, वही देनी चाहिये।

हस्त्यश्वरथयानादि वाहनं च विशेषतः।
कटके कुण्डले चैव ब्रह्मसूत्रं तथापरम्॥ ५१
वस्त्रं चैव विचित्रं च गन्धं चैवं विशेषतः।
देववत् पूजयेत् तं तु विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥ ५२
अतः परं प्रवक्ष्यामि यानि देयानि भारते।
वाच्यमानेऽथ विप्रेभ्यो राजन् पर्वणि पर्वणि॥ ५३
जातिं देशं च सत्यं च माहात्म्यं भरतर्षभ।
धर्मवृत्तिं च विज्ञाय ब्राह्मणानां नराधिप॥ ५४
स्वस्ति वाच्यं द्विजैरादौ ततः कार्यं प्रवर्तयेत्।
समाप्तपर्वणि ततः स्वशक्त्या तर्पयेद् द्विजान्॥ ५५
आदौ तु वाचकं चैव वस्त्रगन्धसमन्वितम्।
विधिवद् भोजयेद् राजन् मधुपायससंयुतम्॥ ५६
ततो मूलफलप्रायं पायसं मधुसर्पिषा।
आस्तीके भोजयेद् राजन् दद्याच्चैव गुडौदनम्॥ ५७
अपूपैश्चैव पूपैश्च मोदकैश्च समन्वितम्।
सभापर्वणि राजेन्द्र हविष्यं भोजयेद् द्विजान्॥ ५८
आरण्यके मूलफलैस्तर्पयेच्च द्विजोत्तमान्।
अरणीपर्व आसाद्य जलकुम्भान् प्रदापयेत्॥ ५९
तर्पणानि च मुख्यानि वन्यमूलफलानि च।
सर्वकामगुणोपेतं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदापयेत्॥ ६०
विराटपर्वणि तथा वासांसि विविधानि च।
उद्योगे भरतश्रेष्ठ सर्वकामगुणान्वितम्॥ ६१
भोजनं भोजयेद् विप्रान् गन्धमाल्यैरलंकृतान्।
भीष्मपर्वणि राजेन्द्र दत्त्वा यानमनुत्तमम्।
ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात् सुसंस्कृतम्॥ ६२
द्रोणपर्वणि विप्रेभ्यो भोजनं परमार्चितम्।
शराश्च देया राजेन्द्र चापान्यसिवरांस्तथा॥ ६३
कर्णपर्वण्यपि तथा भोजनं सार्वकामिकम्।
विप्रेभ्यः संस्कृतं सम्यग् दद्यात् संयतमानसः॥ ६४
शल्यपर्वणि राजेन्द्र मोदकैः सगुडौदनैः।
अपूपैस्तर्पयेच्चैव सर्वमन्नं प्रदापयेत्॥ ६५
गदापर्वण्यपि तथा मुद्गमिश्रं प्रदापयेत्।
स्त्रीपर्वणि तथा रत्नैस्तर्पयेत् तु द्विजोत्तमान्॥ ६६
घृतौदनं पुरस्ताच्च ऐषीके दापयेत् पुनः।
ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात् सुसंस्कृतम्॥ ६७

विशेषतः हाथी, घोड़े, रथ और शिविका आदि वाहनका दान करना उचित है। उसके लिये कड़े, कुण्डल, नूतन यज्ञोपवीत, विचित्र वस्त्र तथा विशेषतः गन्ध आदि देकर देवताके समान उनकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है॥ ४६—५२॥

राजन्! अब मैं यह बता रहा हूँ कि जब महाभारतका पारायण आरम्भ हो जाय, तब प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर ब्राह्मणोंके लिये किन-किन वस्तुओंका दान देना चाहिये॥ ५३॥ भरतश्रेष्ठ! नरेश्वर! पर्वके आरम्भमें ब्राह्मणोंकी जाति, देश, सत्य, माहात्म्य तथा धर्मवृत्तिको जानकर पहले उनके द्वारा स्वस्तिवाचन कराना चाहिये। तदनन्तर कार्य (कथा-श्रवण) आरम्भ करे। फिर उस पर्वकी समाप्ति होनेपर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको तृप्त करे॥ ५४-५५॥ राजन्! आदिपर्वके अनुक्रमणिकापर्वमें पहले वाचककी वस्त्र और गन्ध आदिसे पूजा करके उसे मधुयुक्त खीरका विधिवत् भोजन कराये॥ ५६॥ नरेश्वर! तदनन्तर आस्तीकपर्वमें प्रायः फल-मूल तथा मधु और घीसे युक्त खीर भोजन कराये तथा गुड़ और चावलका दान करे॥ ५७॥ राजेन्द्र! फिर सभापर्वमें पूप (पुआ), अपूप (मालपुआ) और मोदक (लड्डू)-के साथ खीर ब्राह्मणोंको भोजन कराये॥ ५८॥ आरण्यक (वन) पर्वमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको फल-मूलसे तृप्त करे। अरणीपर्वमें पहुँचकर जलसे भरे हुए घड़ोंका दान करे॥ ५९॥ तृप्तिके मुख्य साधन, जंगली फल-मूल तथा मनोवाञ्छित गुणोंसे सम्पन्न अन्नका ब्राह्मणोंको दान करे॥ ६०॥ विराटपर्वमें भाँति-भाँतिके वस्त्र दान करे। भरतश्रेष्ठ! उद्योगपर्वमें ब्राह्मणोंको गन्ध और मालाओंसे अलंकृत करके उन्हें मनोवाञ्छित गुणोंसे सम्पन्न अन्नका भोजन कराये। राजेन्द्र! भीष्मपर्वमें परम उत्तम शिबिकाका दान करके अच्छी तरह छौंक-बघारकर तैयार किये गये सर्वगुण-सम्पन्न अन्नका दान करे॥ ६१-६२॥ राजेन्द्र! द्रोणपर्वमें ब्राह्मणोंको परम उत्तम भोजन अर्पित करे तथा उन्हें धनुष, बाण एवं उत्तम खड्ग दे॥ ६३॥ कर्णपर्वमें भी मनको संयममें रखकर ब्राह्मणोंको सबकी रुचिके अनुकूल उत्तम संस्कारयुक्त भोजन दे॥ ६४॥ महाराज! शल्यपर्वमें लड्डू, गुडमिश्रित ओदन और पूओंसे ब्राह्मणोंको तृप्त करे तथा उन्हें सब प्रकारके अन्नका दान दे॥ ६५॥ गदापर्वमें भी मूँग मिलायी हुई खिचड़ीका दान करे। स्त्रीपर्वमें उत्तम ब्राह्मणोंको रत्नोंद्वारा तृप्त करे॥ ६६॥ ऐषीकपर्वमें पहले घी मिलाये हुए भातका दान करे। तत्पश्चात् अच्छी तरह छौंक-बघारकर बनाया हुआ सर्वगुण-सम्पन्न अन्नका दान दे॥ ६७॥

शान्तिपर्वण्यपि गते हविष्यं भोजयेद् द्विजान्।
आश्वमेधिकमासाद्य भोजनं सार्वकामिकम्॥ ६८

तथाऽऽश्रमनिवासे तु हविष्यं भोजयेद् द्विजान्।
मौसले सार्वगुणिकं गन्धमाल्यानुलेपनम्॥ ६९

महाप्रास्थानिके तद्वत् सर्वकामगुणान्वितम्।
स्वर्गपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेद् द्विजान्॥ ७०

हरिवंशसमाप्तौ तु सहस्रं भोजयेद् द्विजान्।
गामेकां निष्कसंयुक्तां ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ ७१

तदर्धेनापि दातव्या दरिद्रेणापि पार्थिव।
प्रतिपर्वसमाप्तौ तु पुस्तकं वै विचक्षणः॥ ७२

सुवर्णेन च संयुक्तं वाचकाय निवेदयेत्।
हरिवंशे पर्वणि च पायसं तत्र भोजयेत्॥ ७३

श्लोकं वा श्लोकपादं वा अक्षरं वा नृपात्मज।
शृणुयादेकचित्तस्तु स विष्णुदयितो भवेत्॥ ७४

व्यासं चैव सपत्नीकं पूजयेच्च यथाविधि।
लक्ष्मीनारायणं देवं पूजितं तं च पूजयेत्॥ ७५

वाचकं पूजयेद् यस्तु भूमिवस्त्रसुधेनुभिः।
विष्णुः सम्पूजितस्तेन स साक्षाद् देवकीसुतः॥ ७६

पारणे पारणे राजन् यथावद् भरतर्षभ।
समाप्य सर्वाः प्रयतः संहिताः शास्त्रकोविदः॥ ७७

शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्राभिसंवृतः।
शुक्लाम्बरधरः श्रीमाञ्छुचिर्भूत्वा स्वलंकृतः॥ ७८

अर्चयेत् तं यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक् पृथक्।
संहितापुस्तकान् राजन् प्रयतः शिष्टसम्मतः॥ ७९

भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च कामैश्च विविधैः शुभैः।
हिरण्यं गां च वस्त्रं च दक्षिणामथ दापयेत्॥ ८०

सर्वत्र त्रिपलं स्वर्णं दातव्यं प्रणतात्मना।
तदर्धं पादशेषं वा वित्तशाठ्यविवर्जितम्॥ ८१

शान्तिपर्व पूर्ण होनेपर ब्राह्मणोंको हविष्यका भोजन कराये। फिर आश्वमेधिकपर्वमें पहुँचकर सबकी रुचिके अनुकूल भोजन दे॥ ६८॥ आश्रमवासिकपर्वमें ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन कराये। मौसलपर्वमें सर्वगुणसम्पन्न अन्न तथा गन्ध, माला और अनुलेपनका दान करे॥ ६९॥ उसी प्रकार महाप्रस्थानिकपर्वमें समस्त मनोवाञ्छित गुणोंसे सम्पन्न अन्नका तथा स्वर्गारोहणपर्वमें हविष्यका ब्राह्मणोंको भोजन कराये॥ ७०॥ हरिवंशकी समाप्ति होनेपर एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा स्वर्णपदकसे युक्त एक गौका ब्राह्मणको दान करे॥ ७१॥ पृथ्वीनाथ! दरिद्रको भी पूरा नहीं तो आधा दान अवश्य करना चाहिये। बुद्धिमान् मनुष्य प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर वाचकको सुवर्णयुक्त पुस्तक अर्पित करे। हरिवंशपर्वमें ब्राह्मणोंको खीर भोजन कराये। राजकुमार! जो एकाग्रचित्त होकर हरिवंशके एक श्लोक, एक चरण अथवा एक अक्षरका भी श्रवण करता है, वह भगवान् विष्णुका प्रिय भक्त होता है॥ ७२—७४॥ कथावाचक व्यासकी उसकी पत्नीके साथ विधिवत् पूजा करे। इससे भगवान् लक्ष्मीनारायणका पूजन हो जाता है। फिर पूर्वपूजित भगवान् लक्ष्मी-नारायणकी भी पूजा करे॥ ७५॥ जो भूमि, वस्त्र और उत्तम धेनु देकर वाचककी पूजा करता है, उसके द्वारा साक्षात् विष्णुस्वरूप देवकीनन्दन श्रीकृष्णका पूजन सम्पन्न हो जाता है॥ ७६॥ राजन् भरतवंशावतंस जनमेजय! शास्त्रज्ञ पुरुष इन्द्रिय-संयमपूर्वक यथोचित रूपसे सम्पूर्ण महाभारत-संहिताको (हरिवंशसहित) पूर्ण करके प्रत्येक पारणामें वाचकको शुभ स्थानमें बैठाकर रेशमी वस्त्र अथवा शुद्ध श्वेत वस्त्र धारण करके शोभा-सम्पन्न, पवित्र एवं अलंकृत हो यथोचित रीतिसे पृथक्-पृथक् गन्ध, माल्य आदि अर्पित करके उस वाचककी पूजा करे। राजन्! संयतचित्त एवं शिष्ट पुरुषोंद्वारा सम्मानित पुरुष संहिताकी पुस्तकोंका भी पूजन करे॥ ७७—७९॥ वाचकको उत्तमोत्तम भक्ष्य-भोज्य पदार्थ, पेय रस आदि तथा नाना प्रकारकी शुभ मनोवाञ्छित वस्तुओंके साथ सुवर्ण, गौ, वस्त्र तथा दक्षिणा समर्पित करे॥ ८०॥ सभी पारणाओंमें प्रणतभावसे तीन पल (तीन भर) सुवर्ण देना चाहिये। इतना सम्भव न हो तो सवा दो भर या डेढ़ भर अवश्य दे। धन रहते हुए कंजूसी न करे॥ ८१॥

यद् यदेवात्मनोऽभीष्टं तत् तद् देयं द्विजातये।
सर्वथा तोषयेद् भक्त्या वाचकं गुरुमात्मनः।
देवताः कीर्तयेत् सर्वा नरनारायणौ तथा॥ ८२

ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलंकृतद्विजोत्तमान्।
तर्पयेद् विविधैः कामैर्दानैश्चोच्चावचैस्तथा॥ ८३

अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः।
प्राप्नुयाच्च क्रतुफलं तथा पर्वणि पर्वणि॥ ८४

वाचको भरतश्रेष्ठ व्यक्ताक्षरपदस्वरः।
भविष्यं श्रावयेद् विप्रान् भारतं भरतर्षभ॥ ८५

भुक्तवत्सु द्विजेन्द्रेषु यथावत् सम्प्रदापयेत्।
वाचकं भरतश्रेष्ठ भोजयित्वा स्वलंकृतम्॥ ८६

वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा।
ब्राह्मणेषु च तुष्टेषु प्रसन्नाः सर्वदेवताः॥ ८७

ततो हि भरणं कार्यं द्विजानां भरतर्षभ।
सर्वकामैर्यथान्यायं साधुभिश्च यथाक्रमम्॥ ८८

इत्येष विधिरुद्दिष्टो मया ते द्विपदां वर।
श्रद्दधानेन वै भाव्यं यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥ ८९

भारतश्रवणे राजन् पारणे च नृपोत्तम।
सदा यत्नवता भाव्यं श्रेयस्तु परमिच्छता॥ ९०

भारतं शृणुयान्नित्यं भारतं परिकीर्तयेत्।
भारतं भवने यस्य तस्य हस्तगतो जयः॥ ९१

भारतं परमं पुण्यं भारते विविधाः कथाः।
भारतं सेव्यते देवैर्भारतं परिकीर्तयेत्॥ ९२

भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ।
भारतात् प्राप्यते मोक्षस्तत्त्वमेतद् ब्रवीमि ते॥ ९३

महाभारतमाख्यानं क्षितिं गां च सरस्वतीम्।
ब्राह्मणं केशवं चापि कीर्तयन् नावसीदति॥ ९४

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥ ९५

जो-जो वस्तु अपनेको अभीष्ट हो, उसी-उसीका ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये। वाचक अपना गुरु है, अतः भक्ति-भावसे उसको सर्वथा संतुष्ट करे। उस समय सम्पूर्ण देवताओंका तथा नर-नारायणका कीर्तन करे॥ ८२॥ तदनन्तर गन्ध, माल्य आदिसे भलीभाँति अलंकृत किये गये श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार नाना प्रकारके कमनीय पदार्थ तथा अनेक प्रकारके छोटे-बड़े दान देकर तृप्त करे॥ ८३॥ ऐसा करनेवाला मनुष्य अतिरात्र यज्ञका फल पाता है। प्रत्येक पर्वपर ऐसा करनेसे यज्ञ-फलकी प्राप्ति होती है॥ ८४॥ भरतकुलतिलक जनमेजय! वाचकको चाहिये कि वह सुस्पष्ट अक्षर, पद एवं स्वरके साथ ब्राह्मणोंको भविष्यपर्व एवं भारतका श्रवण कराये॥ ८५॥ भरतश्रेष्ठ! श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके भोजन कर लेनेपर वाचकको भी भोजन कराकर उसे भलीभाँति अलंकृत करके यथोचित रूपसे दक्षिणा दे॥ ८६॥ वाचकके संतुष्ट होनेपर परम उत्तम मङ्गलमयी प्रीति प्राप्त होती है। अन्य ब्राह्मणोंके संतुष्ट होनेपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होते हैं॥ ८७॥ भरतभूषण! तत्पश्चात् यथोचित रूपसे सब प्रकारके उत्तम, मनोवाञ्छित पदार्थ देकर क्रमशः सभी द्विजोंका भरण-पोषण करना चाहिये॥ ८८॥ नरश्रेष्ठ! तुमने मुझसे जो पूछा था, उसके अनुसार मैंने तुमसे महाभारत और हरिवंश सुननेकी यह विधि बतायी है। तुम्हें इसपर श्रद्धा करनी चाहिये॥ ८९॥ राजन्! नृपश्रेष्ठ! जो परम कल्याणकी इच्छा रखता हो, उसे हरिवंशसहित महाभारत सुनने और उसकी पारणा पूरी करनेके लिये सदा यत्नशील रहना चाहिये॥ ९०॥ प्रतिदिन भारतका श्रवण करे। नित्य-प्रति भारतका कीर्तन करे। जिसके घरमें महाभारतकी पुस्तक है, उसके हाथमें विजय है॥ ९१॥ भारत परम पुण्यमय ग्रन्थ है। भारतमें नाना प्रकारकी कथाएँ हैं। देवतालोग भी भारतका सेवन करते हैं, अतः भारतका अवश्य कीर्तन करे॥ ९२॥ भरतश्रेष्ठ! भारत सम्पूर्ण शास्त्रोंमें उत्तम है। भारतके अनुशीलनसे मोक्ष प्राप्त होता है। यह मैं तुम्हें तत्त्वकी बात बता रहा हूँ॥ ९३॥ जो महाभारत इतिहास, पृथ्वी, गौ, सरस्वती, ब्राह्मण और भगवान् श्रीकृष्णका कीर्तन करता है, वह कभी कष्टमें नहीं पड़ता॥ ९४॥ भरतभूषण! वेद, रामायण तथा पवित्र महाभारतके आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र श्रीहरिका गान किया जाता है॥ ९५॥

यत्र विष्णुकथा दिव्याः श्रुतयश्च सनातनाः।
तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता॥ ९६

एतत् पवित्रं परममेतद् धर्मनिदर्शनम्।
एतत् सर्वगुणोपेतं श्रोतव्यं भूतिमिच्छता॥ ९७

क्रियतेऽसारसंसारे वाञ्छितस्यैव कारणम्।
हरिवंशस्य श्रवणमिति द्वैपायनोऽब्रवीत्॥ ९८

अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा।
यत् फलं प्राप्यते पुंभिस्तद्धरेर्वंशपारणात्॥ ९९

अजरममरमेकं ध्येयमाद्यन्तशून्यं
सगुणमगुणमाद्यं स्थूलमत्यन्तसूक्ष्मम्।
निरुपममनुमेयं योगिनां ज्ञानगम्यं
त्रिभुवनगुरुमीशं त्वां प्रपन्नोऽस्मि विष्णो॥ १००

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वेषां वाञ्छिता अर्था भवन्त्वस्य च पारणात्॥ १०१

जो इस लोकमें परम पदकी इच्छा रखता हो, उस मनुष्यको चाहिये कि जिसमें भगवान् विष्णुकी दिव्य कथाएँ और सनातन श्रुतियाँ हैं, उस महाभारत एवं हरिवंशका वह श्रवण करे॥ ९६॥ यह परम पवित्र है। यह धर्मका निरूपण करनेवाला शास्त्र है तथा यह समस्त उत्तम गुणोंसे युक्त है। अतः कल्याणकामी पुरुषको इसका श्रवण करना चाहिये॥ ९७॥ इस असार संसारमें हरिवंशका श्रवण सभी मनोरथोंकी पूर्ति करनेवाला है, इसलिये श्रेष्ठ पुरुष इसका श्रवण करते हैं। ऐसा द्वैपायन वेदव्यासका कथन है॥ ९८॥ एक हजार अश्वमेध और एक सौ वाजपेय यज्ञ करनेसे मनुष्योंको जो फल प्राप्त होता है, वह हरिवंशका पारायण करनेमात्रसे प्राप्त हो जाता है॥ ९९॥ विष्णो! आप अजर, अमर, एक (अद्वितीय), ध्यान करने योग्य, अनादि, अनन्त, सगुण, निर्गुण, सबके आदिकारण, स्थूल, अत्यन्त सूक्ष्म, उपमारहित, अनुमानके योग्य, योगियोंके लिये ज्ञानगम्य, तीनों लोकोंके गुरु तथा ईश्वर हैं, अतः मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ १००॥ इस ग्रन्थके नियमपूर्वक पठन एवं श्रवणसे सब लोग दुर्गम संकटोंसे पार हो जायँ, सब कल्याणका दर्शन करें तथा सबके मनोवाञ्छित अर्थ सिद्ध हो जायँ॥ १०१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि श्रवणफलकथने द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें महाभारत और हरिवंशके श्रवणके फलका वर्णनविषयक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३२॥

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रिपुर-वधकी कथा

जनमेजय उवाच

त्र्यक्षाद् वधमहं ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
त्रयाणां पुरसंज्ञानां खेचराणां समासतः॥ १

वैशम्पायन उवाच

शृणु विस्तरतः सर्वं यन्मां पृच्छसि नैधनम्।
दैत्यानां बाहुबलिनां सर्वप्राणिविरोधिनाम्॥ २

शंकरेण वधं राजन् शूलैस्त्रिभिरजिह्मगैः।
कृतं पुरासुरेन्द्राणां सर्वभूतवधैषिणाम्॥ ३

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! दैत्योंके जो आकाशमें विचरनेवाले तीन पुर थे, उनका त्रिनेत्रधारी महादेवजीके हाथसे किस प्रकार वध हुआ? इस प्रसङ्गको मैं ठीक-ठीक और संक्षेपसे सुनना चाहता हूँ॥ १॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! जो समस्त प्राणियोंके विरोधी थे, उन बाहुबलशाली दैत्योंका भगवान् शङ्करके हाथ किस प्रकार निधन हुआ? यह जो तुम मुझसे पूछते हो, यह सारा प्रसङ्ग विस्तारपूर्वक सुनो—पूर्वकालमें सम्पूर्ण प्राणियोंके वधकी इच्छावाले उन असुरेन्द्रोंका वध भगवान् शिवने अपने सीधे जानेवाले तीन शूलोंद्वारा किया था॥ २-३॥

त्रिपुरं पुरुषव्याघ्र बृहद्धातुसमीरितम्।
विक्रामति नभोमध्ये मेघवृन्दमिवोत्थितम्॥ ४

प्राकारेण प्रवृद्धेन काञ्चनेन विराजता।
मणिभिश्च प्रकाशद्भिः सर्वरत्नैश्च तोरणैः॥ ५

बभासे नभसो मध्ये श्रिया परमया ज्वलत्।
गन्धर्वाणामिवोदग्रं कर्मणा साधितं पुरम्॥ ६

वाजिनः पक्षसंयुक्ता वहन्ति बलदर्पिताः।
पुरं प्रभाकरश्रेष्ठं मनोभिः कामबृंहणैः॥ ७

धावन्ति ह्रेषमाणास्ते विक्रमैः प्राणसम्भृतैः।
आहूयत इवाकाशं खुरैः श्यामदलप्रभैः॥ ८

वायुवेगसमैर्वेगैः कालयन्त इवाम्बरम्।
असुराः समदृश्यन्त चक्षुर्भिर्विदितात्मभिः॥ ९

ऋषिभिर्ज्वलनप्रख्यैस्तपसा दग्धकिल्बिषैः।
गीतवादित्रबहुलं गन्धर्वनगरोपमम्॥ १०

चित्रायुधसमाकीर्णैः प्रतप्तकनकप्रभैः।
भवनैर्बहुभिश्चैव प्रांशुभिः समलंकृतैः॥ ११

देवेन्द्रभवनाकारैः शुशुभे तन्महाद्युति।
प्रासादाग्रैः प्रवृद्धैश्च कैलासशिखरप्रभैः॥ १२

शुशुभे दैत्यनगरं बहुसूर्यमिवाम्बरम्।
वराट्टालकसम्पन्नं तप्तकाञ्चनसप्रभम्॥ १३

प्रदीप्तमिव तेजोभी रराजाथ महाप्रभो।
क्ष्वेडितोत्कृष्टबहुलं सिंहनादविनादितम्॥ १४

बभौ वल्गुजनाकीर्णं वनं चैत्ररथं यथा।
समुच्छ्रितपताकं तदसिभिश्च विराजितम्॥ १५

रराज त्रिपुरं राजन् महाविद्युदिवाम्बरे।
सूर्यनाभश्च दैत्येन्द्रश्चन्द्रनाभश्च भारत॥ १६

तथान्ये च महावीर्या दानवा बलदर्पिताः।
ममृदुश्च बभञ्जुश्च मोहिताः परमेष्ठिना॥ १७

नरव्याघ्र! वे तीनों पुर बृहद् (बहुमूल्य एवं महान्) धातुओंसे निर्मित हुए थे। वे आकाशमें उमड़े हुए मेघसमूहोंकी भाँति प्रकट होकर सर्वत्र विचरते थे॥ ४॥ सुवर्णनिर्मित ऊँचे विशाल एवं प्रकाशमान परकोटेसे उद्दीप्त होनेवाली मणियोंसे तथा सर्वरत्नमय फाटकोंसे वे तीनों पुर आकाशमण्डलमें चमकते रहते थे। वे अपनी उत्कृष्ट प्रभासे प्रज्वलित हो रहे थे। तपस्यारूपी कर्मसे साधित हुए वे भयंकर पुर गन्धर्वोंके नगर-से जान पड़ते थे॥ ५-६॥ बलके अभिमानसे युक्त, पङ्खवाले घोड़े सूर्यसे भी अधिक प्रकाशमान उस पुरको इच्छानुसार बढ़नेवाले मनके तुल्य वेगसे ढोया करते थे॥ ७॥ सारी प्राणशक्ति लगाकर संचित किये गये बल-विक्रमसे जब वे घोड़े हिनहिनाते हुए दौड़ते थे, उस समय उनकी काली टापोंसे आकाश आहूत होता-सा प्रतीत होता था॥ ८॥ जिन्होंने तपस्यासे सारे पापोंको दग्ध कर दिया था तथा जो अग्निके समान तेजस्वी थे, वे आत्मज्ञानी महर्षि ही अपने नेत्रोंद्वारा उन असुरोंको देख पाते थे। वे वायुके समान वेगसे समूचे आकाशको अपना ग्रास बनाते हुए-से जान पड़ते थे। उन पुरोंमें प्रायः गीत और वाद्यके समारोह होते रहते थे। वे गन्धर्वनगरके समान प्रतीत होते थे। विचित्र आयुधोंसे भरे हुए, तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान् तथा विविध अलंकारोंसे अलंकृत बहुसंख्यक ऊँचे भवन, जो देवराज इन्द्रके भवनकी भाँति सुशोभित होते थे, उन महातेजस्वी पुरोंकी शोभा बढ़ाते थे। कैलासके शृङ्गोंकी भाँति प्रकाशित होनेवाले बड़े-बड़े प्रासादशिखरोंसे युक्त दैत्योंका वह नगर अनेक सूर्योंसे प्रकाशित आकाशके समान सुशोभित होता था। महाराज! बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओंसे सम्पन्न, तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान् तथा तेजसे प्रज्वलित-सा वह दैत्यनगर बड़ी शोभा पाता था। वहाँ गर्जना और कोलाहल अधिक होते थे। वह नगर वीरोंके सिंहनादसे गूँजता रहता था। मनोहर स्त्री-पुरुषोंसे भरा होनेके कारण वह चैत्ररथ नामक वनके समान सुशोभित होता था। राजन्! ऊँची-ऊँची पताकाओंसे सुशोभित तथा चमचमाती हुई तलवारोंसे प्रकाशित वह त्रिपुर नामक नगर आकाशमें विशाल विद्युत्के समान उद्भासित होता था। भारत! उस नगरमें दैत्यराज सूर्यनाभ, चन्द्रनाभ तथा अन्य महापराक्रमी बलाभिमानी दानव रहते थे। भारत! वे अभिमानसे मोहित होकर ब्रह्माजीके बनाये हुए

पन्थानं देवगमनं पितृयानं च भारत।
तैरेवमसुराग्रैश्च प्रगृहीतशरासनैः ॥ १८
दानवैर्नरशार्दूल देवयाने महापथे।
पितृवह्निबलोपेते हृते भरतसत्तम ॥ १९
ब्रह्माणमभ्यधावन्त सर्वे सुरगणास्तथा।
विवर्णवदना दीनाश्छिन्ने वै गतिकर्मणि ॥ २०
अब्रुवंश्च गताः स्थित्वा स्वरेणार्तनिनादिना।
हन्यामहे शत्रुगणैर्भागोच्छेदेन भागद ॥ २१
तेषां चैव वधोपायं वदस्व वदतां वर।
यं ज्ञात्वा बाहुबलिनो बाधेम समरे परान् ॥ २२
सान्त्वयित्वा तु वरदो ब्रह्मा प्रोवाच देवताः।
शृणुध्वं देवताः सर्वाः शत्रुप्रतिकृतिं पराम् ॥ २३
अवध्या दानवाः सर्वे ऋते शंकरमव्ययम्।
प्रतिगृह्य च तद् वाक्यं मनोभिर्वाग्भिरेव च ॥ २४
भूमौ प्रपेदिरे सर्वे सह रुद्रैश्च भारत।
विन्ध्यपादे च मेरौ च मध्ये च पृथिवीतले ॥ २५
तपसोग्रेण योगज्ञाः सर्वे ते मुनयोऽभवन्।
काश्यपेयं हरं प्राप्ता जपन्तो ब्रह्मसंहिताम् ॥ २६
तेषां च परदाराणामभवद् वन्ध्यता जने।
विन्यस्तदर्भनिचये ताम्रलोहं च भूषणम् ॥ २७
परिधानानि चर्माणि मृदूनि च शुभानि च।
स्वयं मृतानां कृष्णानां मृगाणां कुरुसत्तम ॥ २८
गृहीतानि विमुक्तानि देहेभ्यो वनचारिणाम्।
अन्तरिक्षमथोपेत्य विविशुर्मायया ऽऽवृताः ॥ २९
हरालयं सुराः सर्वे व्याघ्रचर्मनिवासिनः।
प्रणिपत्याथ ते दीना भगवन्तं जगत्पतिम् ॥ ३०
सुव्यक्तेनाभिधानेन प्रभाषन्त हरं ततः।
हविर्दत्तमविज्ञानाद् भस्मच्छन्नेषु वह्निषु ॥ ३१
वरदानं वृथास्मासु भगवन् विमुखे त्वयि।
यथादेशं यथाकालं क्रियतां ब्रह्मणो वचः ॥ ३२
यदुक्तं देवदेवेन खेचराणां समीपतः।
एवं देववचोभिश्च भाविनोऽर्थस्य वैभवात् ॥ ३३

देवयान और पितृयान मार्गको तोड़ने-फोड़ने एवं नष्ट करने लगे। पुरुषसिंह! भरतवंशशिरोमणे! इस प्रकार हाथमें धनुष लेकर उन श्रेष्ठ असुरों और दानवोंने जब अग्निबलसे युक्त देवयान और पितरोंके बलसे युक्त पितृयान नामक महामार्गका अपहरण कर लिया, तब समस्त देवगण ब्रह्माजीके पास दौड़े गये। उनका मुख उदास हो गया था। वे दोनों मार्गोंके नष्ट होनेसे गमन-कर्मका उच्छेद हो जानेके कारण अत्यन्त विवर्ण (शोकाकुल) हो रहे थे॥ ९—२०॥ वे ब्रह्माजीके सामने खड़े होकर आर्तनादयुक्त स्वरसे बोले—'देवताओंको भाग देनेवाले पितामह! शत्रुगण हमारे यज्ञभागका उच्छेद करके हमें मार रहे हैं'॥ २१॥ 'वक्ताओंमें श्रेष्ठ! उन दैत्योंके वधका कोई उपाय बताइये, जिसे जानकर हम बाहुबलशाली देवता समरमें शत्रुओंको पीड़ित कर सकें॥ २२॥ तब वरदायक ब्रह्माजीने उन देवगणोंको सान्त्वना देकर उनसे कहा—'देवताओ! तुम सब लोग शत्रुओंसे बदला लेनेका उत्तम उपाय सुनो—वे समस्त दानव अविनाशी भगवान् शङ्करके सिवा दूसरेके लिये अवध्य हैं'। भरतनन्दन! उनके उस वचनको मन और वाणीद्वारा स्वीकार करके सब देवता रुद्रगणोंके साथ पृथ्वीपर आये। वे विन्ध्य और मेरुपर्वतकी तलैटीमें तथा भूतलके मध्यभागमें उग्र तपस्या करते हुए सब-के-सब योगज्ञ मुनि हो गये और ब्रह्मसंहिता (प्रणव)-का जप करते हुए कश्यपनन्दन हरकी शरणमें गये॥ २३—२६॥ उनके लिये जनसमुदायमें परायी स्त्रियाँ वन्ध्य—निष्फल अर्थात् मोह उत्पन्न करनेमें असमर्थ थीं। वे कुशकी चटाई बिछाकर उसीपर सोते थे। ताँबा और लोहा ही उनका आभूषण था॥ २७॥ कुरुश्रेष्ठ! स्वयं मरे हुए वनचारी काले मृगोंके शरीरोंसे उधेड़कर लिये गये सुन्दर और कोमल मृगचर्म एवं बाघम्बर ही उनके पहननेके वस्त्र थे। व्याघ्रचर्म धारण करके मायासे अपनेको छिपाकर समस्त देवता आकाशमार्गका आश्रय ले भगवान् शङ्करके धाममें जा पहुँचे और उन भगवान् विश्वनाथ हरको प्रणाम करके स्पष्ट शब्दोंमें उनसे बोले—। 'भगवन्! आपने हमारी ओरसे मुँह फेर लिया है, इसलिये जैसे राखसे ढकी हुई आगमें अज्ञानवश दी हुई आहुति निष्फल हो जाती है, उसी प्रकार हमें मिला हुआ वरदान व्यर्थ हो गया है। अतः देवाधिदेव ब्रह्माजीने आकाशचारी देवताओंके समीप जो बात कही थी, उनके उस वचनका आप देश-कालके अनुसार पालन करें'। इस प्रकार देवताओंके कहनेसे तथा भावी कार्यके प्रभावसे

समनह्यन्महादेवो देवैः सह सवासवैः।
आदित्यपथमास्थाय संनद्धाः समलंकृताः॥ ३४

सर्वे काञ्चनवर्णाभा बभुर्दीप्ता इवाग्नयः।
रुद्रेण सहिता रुद्रा दहन्त इव तेजसा॥ ३५

संनद्धाः कुशलाः सर्वे प्रांशवः पर्वता इव।
विश्वे विश्वेन वपुषा बलिनः कामरूपिणः॥ ३६

समनह्यन्महात्मानो दानवान्तं विधित्सवः।
एभिः सहधनाध्यक्षैः समन्तात् परिवारितः॥ ३७

त्रिपुरं योधयत् त्र्यक्षः प्रगृह्य सशरं धनुः।
अथ दैत्या भिन्नदेहाः पुराट्टालं गता इव॥ ३८

न्यपतन्त विदेहास्ते विशीर्णा इव पर्वताः।
अतिविद्धाः सुविद्धाश्च रणमध्यगता नृप॥ ३९

न्यपतन् दैत्यसंघाता वज्रेणेव हता नगाः।
असिभिश्च हता देवैः शक्तिचक्रपरश्वधैः॥ ४०

बाणैश्च भिन्नमर्माणो दैत्येन्द्रा युद्धगोचरे।
प्रपेतुः सहिता उर्व्यां छिन्नपक्षा इवाचलाः॥ ४१

तत्र संज्ञां विमुञ्चन्ति दीप्यमानेन तेजसा।
एवं तेऽन्योन्यसम्बाधे क्षीयन्ते क्षयकर्मणा॥ ४२

नोपालभ्यन्त चक्षुर्भ्यामपि दिव्येन चक्षुषा।
अस्तं प्राप्ते दिनकरे सुरेन्द्रास्ते निशामुखे।
छिन्नभिन्नक्षतमुखा निपेतुर्वसुधातले॥ ४३

अथ दैत्या जयं प्राप्ता निशायां निशितैः शरैः।
विनेदुर्विपुलैर्नादैर्मेघा इव महारवाः॥ ४४

जयप्राप्त्यासुराश्चैव तेऽन्योन्यमभिजल्पिरे।
त्रासितास्त्रिदशाः सर्वे संग्रामजयकाङ्क्षिणः॥ ४५

प्रेरित हो इन्द्र आदि देवताओंके साथ महादेवजी कवच बाँधकर युद्धके लिये तैयार हो गये। वे सब-के-सब कवच और अलंकार धारण करके सुवर्णकी-सी कान्तिसे प्रकाशित हो सूर्यके मार्गका आश्रय ले प्रज्वलित अग्नियोंके समान उद्भासित होने लगे। महादेवजीके साथ कवच बाँधकर युद्धकुशल समस्त रुद्रगण अपने तेजसे शत्रुओंको दग्ध-से करने लगे। वे पर्वतोंके समान ऊँचे दिखायी देते थे। दानवोंका अन्त करनेकी इच्छावाले वे सभी महात्मा बलवान् तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले थे। वे अपने विश्वमय शरीरसे कवच बाँधकर युद्धके लिये तैयार हो गये। कुबेरसहित इन समस्त देवताओंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए त्रिनेत्रधारी महादेवने धनुष-बाण लेकर त्रिपुरवासियोंके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। तदनन्तर जैसे नगरकी अट्टालिकापर चढ़े हुए लोग गिरते हों, उसी प्रकार वे त्रिपुरवासी दैत्यगण अपने शरीरोंके विदीर्ण हो जानेसे देहरहित हो जीर्ण-शीर्ण हुए पर्वतोंके समान उस नगरसे नीचे गिरने लगे। नरेश्वर! समराङ्गणमें आये हुए दैत्यसमूह अत्यन्त घायल और क्षत-विक्षत हो वज्रके मारे हुए पर्वतोंके समान धराशायी होने लगे। देवताओंके खड्गों, शक्तियों, चक्रों, फरसों और बाणोंसे युद्धस्थलमें मारे गये उन दैत्यराजोंके मर्म विदीर्ण हो गये और वे पंख कटे हुए पर्वतोंके समान एक साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २८—४१॥ देवताओंके बढ़ते हुए तेजसे दग्ध हो वे दैत्य वहाँ अपनी सुध-बुध खोने लगे। इस प्रकार वे देवता और दैत्य एक-दूसरेको बाधा देते हुए युद्धरूपी क्षयकर्मसे क्षीण होने लगे। दैत्योंके दोनों नेत्रोंसे तथा दिव्य दृष्टिसे देखनेपर भी उस समय देवता उनकी पकड़में नहीं आते थे। सूर्यके अस्त हो जानेपर प्रदोषकालमें (सबल हुए दैत्योंके आक्रमणसे) उन देवेश्वरोंके मुख छिन्न-भिन्न एवं क्षत-विक्षत हो गये तथा वे पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ४२-४३॥ रातमें अपने तीखे बाणोंसे विजयको प्राप्त हुए दैत्यगण महान् सिंहनाद करते हुए जोर-जोरसे गर्जना करनेवाले मेघोंकी भाँति बड़ा भारी कोलाहल मचाने लगे॥ ४४॥ विजयकी प्राप्तिसे उत्साहित हुए वे असुर आपसमें कहने लगे—'संग्राममें विजयकी इच्छा रखनेवाले समस्त देवताओंको हम बलवान् दैत्योंने संगठित होकर प्रास, खड्ग और

अस्माभिर्बलसम्पन्नैः सह प्रासासितोमरैः।
विरेजुश्च जयं प्राप्ता उशनोहव्यबोधिताः॥ ४६

समरे बलसम्पन्नाः सायुधा दैत्यसत्तमाः।
सुरैश्च सहितः सर्वैं रथमास्थाय शंकरः॥ ४७

दर्पितान् निनदन् दैत्यान् प्रदहन्निव तेजसा।
युगान्तकाले वितते रश्मिवानिव निर्दहन्॥ ४८

सर्वभूतानि भूताग्र्यः प्रलये समुपस्थिते।
स रथो वाजिभिः शीघ्रैरुह्यमानो मनोजवैः॥ ४९

विबभौ नभसो मध्यं सविद्युदिव तोयदः।
वृषभेण ध्वजाग्रेण गर्जमानेन भारत॥ ५०

भाति स्म स रथो राजन् सेन्द्रायुध इवाम्बुदः।
ततोऽम्बरगताः सिद्धास्तुष्टुवुर्वृषभध्वजम्॥ ५१

कर्मभिः पूर्वजं पूर्वैः शुचिभिस्त्र्यम्बकं तदा।
ऋषयश्च तपःशान्ताः सत्यव्रतपरायणाः॥ ५२

अमृतप्राशिनश्चैव सुरसंघास्तथैव च।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव गान्धर्वेण स्वरेण वै॥ ५३

प्रहृष्टवदनाः सौम्याः पैत्र्ये स्थानान्तरे नृप।
चयाट्टालकसम्पन्ने शतघ्नीशतसंकुले॥ ५४

तस्मिंस्तु दैत्यनगरे सर्वभूतभयावहे।
ततस्तु शरवर्षाणि मुमुचुर्दैत्यदानवाः॥ ५५

सुराणामरयो मध्ये तीक्ष्णाग्राणि समन्ततः।
शतघ्नीभिश्च निघ्नन्तो भल्लैः शूलैश्च भारत॥ ५६

ते चक्रिरे महत्कर्म दानवा युद्धकोविदाः।
गदाभिश्च गदा जघ्नुर्भल्लैर्भल्लांश्च चिच्छिदुः॥ ५७

अस्त्रैरस्त्राण्यबाधन्त माया मायाभिरेव च।
ततोऽपरे समुद्यम्य शरशक्तिपरश्वधान्॥ ५८

अशनींश्च महाघोरानमुञ्चन्त सहस्रशः।
असिभिर्मायाविहितैर्मृत्योर्विषयगोचरे॥ ५९

ते वध्यमाना विबुधाः शरवर्षैरवस्थिताः।
गन्धर्वनगराकारः सोऽसीदत् सहरो रथः॥ ६०

तोमरोंसे भयभीत कर दिया'। शुक्राचार्यके हविष्यसे सजग एवं बलसम्पन्न हुए विजयी दैत्यशिरोमणि समराङ्गणमें आयुधोंसहित बड़ी शोभा पा रहे थे। तब दर्पमें भरे हुए उन दैत्योंको अपने तेजसे दग्ध-से करते हुए भगवान् शङ्कर समस्त देवताओंके साथ रथपर बैठकर गर्जना करने लगे। जैसे युगान्तकाल आनेपर अंशुमाली सूर्य सम्पूर्ण लोगोंको दग्ध करने लगते हैं तथा प्रलय उपस्थित होनेपर भूतनाथ भगवान् रुद्र सम्पूर्ण भूतोंका संहार कर डालते हैं, उसी प्रकार वे अपने तेजसे दैत्योंको दग्ध करने लगे। मनके समान वेगशाली और शीघ्रगामी घोड़ोंके द्वारा खींचा जाता हुआ वह रथ आकाशके मध्यभागमें पहुँचकर विद्युत्सहित मेघकी भाँति प्रकाशित होने लगा। भरतनन्दन! नरेश्वर! ध्वजके अग्रभागमें गर्जते हुए वृषभसे उपलक्षित होनेवाला वह रथ इन्द्रधनुषसहित मेघके समान शोभा पाने लगा। तदनन्तर आकाशमें उपस्थित हुए सिद्धोंने सबके पूर्वज त्रिनेत्रधारी भगवान् वृषभध्वजका उनके परम पवित्र पूर्वकर्मोंका उल्लेख करते हुए स्तवन किया। तपस्यासे शान्तिको प्राप्त हुए सत्यव्रतपरायण ऋषियों, अमृतभोजी देवसमूहों तथा गन्धर्वों और अप्सराओंने भी गान्धर्वस्वरसे उनकी स्तुति की। नरेश्वर! पितृसम्बन्धी दूसरे स्थानपर खड़े हुए सौम्यस्वभाववाले देवताओंके मुखपर महान् हर्ष छा रहा था। तदनन्तर परकोटे और अट्टालिकाओंसे युक्त, सैकड़ों शतघ्नियों (तोपों)-से व्याप्त तथा समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर उस दैत्यनगरके मध्यभागमें खड़े हुए देववैरी दैत्यों और दानवोंने सब ओरसे तीखे अग्रभागवाले बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। भारत! वे युद्धकुशल दानव शतघ्नियों, भल्लों और शूलोंसे चोट करते हुए महान् पराक्रम प्रकट कर रहे थे। उन्होंने गदाओंसे गदाएँ तोड़ डालीं, भल्लोंसे भल्ल काट दिये, अस्त्रोंसे अस्त्रोंको बाधा पहुँचायी और मायाओंको मायाओंसे ही शान्त कर दिया। तदनन्तर दूसरे दैत्योंने सहस्रों बाणों, शक्तियों, फरसों और महाभयंकर अशनियोंको उठाकर देवताओंपर चलाया। उनके मायानिर्मित खड्गों और बाण-वर्षाओंसे आहत होते हुए देवता मृत्युके पथपर खड़े थे और गन्धर्वनगरके समान आकारवाला महादेवजीका वह रथ उनके साथ ही बड़े सङ्कटमें पड़ गया॥ ४५—६०॥

हन्यमानोऽसुरगणैः प्रासासिशरतोमरैः।
तैश्च दैत्यप्रहरणैर्गुरुभिर्भारसाहिभिः।
चित्रैश्च बहुभिः शस्त्रैरतिष्ठत शचीपतिः॥ ६१
ततो मध्ये दिव्यशब्दः प्रादुरासीन्महीपते।
ऋषीणां ब्रह्मपुत्राणां महतामपि भारत॥ ६२
स एष शंकरस्याग्रे रथो भूमिं प्रतिष्ठितः।
अजेयो जय्यतां प्राप्तः सर्वलोकस्य पश्यतः॥ ६३
तस्मिन्निपतिते राजन् रथानां प्रवरे रथे।
निपेतुः सर्वभूतानि भूतले वसुधाधिप॥ ६४
विचेलुः पर्वताग्राणि चेलुश्चैव महाद्रुमाः।
विचुक्षुभुः समुद्राश्च न रेजुश्च दिशो दश॥ ६५
वृद्धाश्च ब्राह्मणास्तत्र जेपुश्च परमं जपम्।
यत् तद् ब्रह्ममयं तेजः सर्वत्र विजयैषिणाम्॥ ६६
शान्त्यर्थं सर्वभूतानामिह लोके परत्र च।
समाधायात्मनाऽऽत्मानं योगप्राप्तेन हेतुना॥ ६७
रथन्तरेण साम्नाथ ब्रह्मभूतेन भारत।
तेजसा ज्वलयन् विष्णोस्त्र्यक्षस्य च महात्मनः॥ ६८
सर्वेषां चैव देवानां बलिनां कामरूपिणाम्।
ऋषीणां तपसाऽऽढ्यानां वसतां विजने वने॥ ६९
अथ विष्णुर्महायोगी सर्वतोऽदृश्य तत्त्वतः।
वृषरूपं समास्थाय प्रोज्जहार रथोत्तमम्॥ ७०
समाक्रान्तं देवगणैः समग्रबलपौरुषैः।
बलवांस्तोलयित्वा तु विषाणाभ्यां महाबलः।
ननाद प्राणयोगेन मथ्यमान इवार्णवः॥ ७१
तृतीयं वायुविषयं समाक्रम्य विषाणवान्।
ननाद बलवान् नादं समुद्र इव पर्वणि॥ ७२

उन असुरोंके प्रासों, खड्गों, बाणों और तोमरोंकी मार खाकर तथा दैत्योंके भार सहन करनेमें समर्थ, भारी, विचित्र और बहुसंख्यक अस्त्र-शस्त्रोंसे पीड़ित होकर शचीपति इन्द्र जहाँ-के-तहाँ खड़े रह गये॥ ६१॥ पृथ्वीनाथ! भरतनन्दन! इसी बीचमें ब्रह्माजीके पुत्ररूप महर्षियोंका दिव्य शब्द प्रकट हुआ—'यह आगे चलनेवाला भगवान् शङ्करका रथ भूमिपर प्रतिष्ठित हो रहा है। यह अजेय होकर भी सब लोकोंके देखते-देखते जीतने योग्य हो गया'॥ ६३॥ राजन्! वसुधापते! रथोंमें श्रेष्ठ भगवान् शङ्करके उस रथके पृथ्वीपर गिरते ही समस्त प्राणी भूतलपर आ गिरे॥ ६४॥ पर्वतोंके शिखर हिलने लगे। बड़े-बड़े वृक्ष झोंके खाने लगे। समुद्रोंमें तूफान आ गया और दसों दिशाएँ श्रीहीन हो गयीं॥ ६५॥ वहाँ जो वृद्ध ब्राह्मण थे, वे उस परम उत्तम मन्त्रका जप करने लगे। जो सर्वत्र विजय चाहनेवाले पुरुषोंके लिये ब्रह्ममय तेजःस्वरूप है, वह तेज इहलोक और परलोकमें भी समस्त प्राणियोंको शान्ति प्रदान करनेवाला है। भारत! तदनन्तर उस तेजःस्वरूप महायोगी विष्णुने सब ओर दृष्टि डालकर अपने-आप ही मनको एकाग्र करके योगबलसे वृषरूप धर्मके स्वरूपका आश्रय ले ब्रह्मभूत रथन्तर सामके द्वारा महादेवजीके उस उत्तम रथको ऊपर उठाया। उस समय वे विष्णुदेव अपने, महात्मा त्रिनेत्रधारी शिवके, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सम्पूर्ण बलवान् देवताओंके तथा निर्जन वनमें वास करनेवाले तपोबलसम्पन्न महर्षियोंके तेजसे प्रकाशित हो रहे थे॥ ६६—७०॥ सम्पूर्ण बल-पौरुषसे सम्पन्न देवता जिसपर आरूढ़ थे, उस उत्तम रथको अपने दोनों सींगोंसे उठाकर वे महाबली श्रीहरि मथे जाते हुए समुद्रकी भाँति पूरी प्राणशक्तिसे गर्जना करने लगे॥ ७१॥ दो सींगोंसे युक्त वृषभरूपधारी बलवान् विष्णु तृतीय[१] वायु (उद्वह)-के स्थानमें पहुँचकर पूर्णिमाके समुद्रकी भाँति जोर-जोरसे

१. महाभारत शान्तिपर्वके अध्याय ३२८ में श्लोक ३८ से ४० तक तृतीय वायुका परिचय इस प्रकार दिया गया है—जो सदा सोम, सूर्य आदि ग्रहोंका उदय एवं उद्भव करता है। मनीषी पुरुष शरीरके भीतर जिसे 'उदान' कहते हैं। जो चारों समुद्रोंसे जलको ऊपर उठाकर जीमूत नामक मेघोंमें स्थापित करता है तथा जीमूत नामक मेघोंको जलसे संयुक्त करके उन्हें पर्जन्यके हवाले कर देता है, वह महान् वायु 'उद्वह' कहलाता है। जो तृतीय मार्गपर चलनेके कारण तीसरा कहा गया है।

ततो नादेन वित्रस्ता दैतेया युद्धदुर्मदाः।
पुनस्ते कृतसन्नाहा युयुधुः सुमहाबलाः॥ ७३
सर्वे वै बाहुबलिनः समर्थबलपौरुषाः।
सुरसैन्यं प्रमर्दन्तः प्रगृहीतशरासनाः॥ ७४
अग्निं संधाय धनुषि शितं बाणं सुपत्रिणम्।
ब्रह्मास्त्रेणाभिसंयोज्य ब्रह्मदण्डं शिवोऽव्ययः।
मुमोच दैत्यनगरं त्रिधाशब्देन संज्ञितम्॥ ७५
तं बाणं त्रिविधं वीर्यात् संधाय मनसा प्रभुः।
सत्येन ब्रह्मयोगेन तपसोग्रेण भारत॥ ७६
मुमोच दैत्यनगरे सर्वप्राणहराञ्छरान्।
दीप्तान् कनकवर्णाभान् सुवर्णांश्च सुनिर्मलान्॥ ७७
मुक्त्वा वरशरान् घोरान् सविषानिव पन्नगान्।
सुप्रदीप्तैस्त्रिभिर्बाणैर्वेगिभिस्तद्विदारितम्॥ ७८
शरघातप्रदीप्तानि विन्ध्याग्राणीव भारत।
गोपुराणि पुरैः सार्धं व्यशीर्यन्त नराधिप॥ ७९
अग्निना सम्प्रदीप्तानि वह्निगर्भाणि भारत।
धरणीं सम्प्रपद्यन्त पुराणि वसुधाधिप॥ ८०
तानि वैदूर्यवर्णानि शिखराणि गिरेरिव।
शंकरेण प्रदग्धानि ब्रह्मास्त्रेणापतन्नृप॥ ८१
हते च त्रिपुरे देवैर्वाचो हर्षात् किलेरिताः।
सर्वाञ्जहीति शत्रूंस्त्वं प्रवृद्धान् पुरुषोत्तम॥ ८२
विष्णुरेव महायोगी योगेन प्रस्मयन्निव।
स्तूयते ब्रह्मसदृशैर्ऋषिभिः शंकरेण च।
ब्रह्मणा सहितैर्देवैः सम्पन्नबलपौरुषैः॥ ८३

गर्जना करने लगे॥ ७२॥ तब उस गर्जनासे भयभीत हो वे महाबली रणदुर्मद दैत्य कवच बाँधकर पुनः युद्ध करने लगे॥ ७३॥ वे सब-के-सब बाहुबलशाली और समर्थ बल-पौरुषसे सम्पन्न थे। उन्होंने धनुष लेकर देवताओंकी सेनाका मर्दन करना आरम्भ किया॥ ७४॥

तब अविनाशी शिवने अपने धनुषपर सुन्दर पंखवाले और तीखे अग्नितुल्य तेजस्वी बाणको रखकर उसे ब्रह्मास्त्रसे संयुक्त किया, फिर उस ब्रह्मदण्डको उस त्रिपुर-संज्ञक दैत्यनगरपर छोड़ दिया॥ ७५॥ भरतनन्दन! भगवान् शिवने मन-ही-मन उस बाणका सत्य, ब्रह्मयोग तथा उग्र तपस्याद्वारा बलपूर्वक तीन रूपोंमें संधान करके उस दैत्यनगरपर ऐसे बाण छोड़े, जो सबके प्राण हर लेनेवाले थे। वे बाण उद्दीप्त, सुवर्णकी-सी कान्तिवाले, सुवर्णमय और अत्यन्त निर्मल थे॥ ७६-७७॥ विषैले सर्पोंके समान उन श्रेष्ठ एवं भयंकर बाणोंको छोड़कर तीन प्रज्वलित एवं वेगशाली बाणोंद्वारा उस दैत्यनगरको विदीर्ण कर दिया॥ ७८॥ भरतनन्दन! नरेश्वर! बाणोंके आघातसे जलते हुए गोपुर विन्ध्यपर्वतके शिखरोंके समान उन तीनों पुरोंसहित भस्म होकर बिखर गये॥ ७९॥ भारत! पृथ्वीनाथ! अग्निसे जलकर भीतर आग छिपाये हुए वे तीनों पुर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ८०॥ नरेश्वर! पर्वत-शिखरोंके समान वे वैदूर्य-वर्णवाले नगर भगवान् शङ्करके ब्रह्मास्त्रसे दग्ध होकर नीचे गिर पड़े॥ ८१॥ त्रिपुरके नष्ट हो जानेपर देवताओंने बड़े हर्षसे यह बात कही—'पुरुषोत्तम! आप ही सम्पूर्ण बढ़े हुए शत्रुओंको नष्ट कीजिये'॥ ८२॥ इस प्रकार उस समय योगबलसे सम्पन्न एवं मुस्कराते हुए महायोगी विष्णुकी ही ब्रह्मतुल्य ऋषियोंने, भगवान् शङ्करने तथा बल-पौरुषसे सम्पन्न ब्रह्माजीसहित देवताओंने स्तुति की॥ ८३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि त्रिपुरवधे त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें त्रिपुरवधविषयक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३३॥

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

हरिवंशमें वर्णित वृत्तान्तोंका संग्रह

वैशम्पायन उवाच

हरिवंशेऽत्र वृत्तान्ताः प्रकीर्त्यन्ते क्रमोदिताः।
तत्रादावादिसर्गस्तु भूतसर्गस्ततः परः॥ १

पृथोर्वैन्यस्य चाख्यानं मनूनां कीर्तनं तथा।
वैवस्वतकुलोत्पत्तिर्धुन्धुमारकथा तथा॥ २

गालवोत्पत्तिरिक्ष्वाकुवंशस्याप्यनुकीर्तनम्।
पितृकल्पस्तथोत्पत्तिः सोमस्य च बुधस्य च॥ ३

अमावसोरन्वयस्य कीर्तनं कीर्तिवर्धनम्।
च्युतिप्रतिष्ठे शक्रस्य प्रसवः क्षत्रवृद्धजः॥ ४

दिवोदासप्रतिष्ठा च त्रिशङ्कोः क्षत्रियस्य च।
ययातिचरितं चैव पूरुवंशस्य कीर्तनम्॥ ५

कीर्तनं कृष्णसम्भूतेः स्यमन्तकमणेस्तथा।
संक्षेपात् कीर्तिता विष्णोः प्रादुर्भावास्ततः परम्॥ ६

तारकामययुद्धं च ब्रह्मलोकस्य वर्णनम्।
योगनिद्रासमुत्थानं विष्णोर्वाक्यं च वेधसः॥ ७

पृथ्वीवाक्यं च देवानामंशावतरणं तथा।
ततो नारदवाक्यं च स्वप्नगर्भविधिस्तथा॥ ८

आर्यास्तवः पुनः कृष्णसमुत्पत्तिः प्रपञ्चतः।
गोव्रजे गमनं विष्णोः शकटस्य निवर्तनम्॥ ९

पूतनाया वधो भङ्गो यमलार्जुनयोरपि।
वृकसंदर्शनं चैव वृन्दावननिवेशनम्॥ १०

प्रावृषो वर्णनं चापि यमुनाह्रददर्शनम्।
कालियस्यापि दमनं धेनुकस्य च भञ्जनम्॥ ११

प्रलम्बनिधनं चैव शरद्वर्णनमेव च।
गिरियज्ञप्रवृत्तिश्च गोवर्धनविधारणम्॥ १२

गोविन्दस्याभिषेकं च गोपीसंक्रीडनं तथा।
रिष्टासुरस्य निधनमक्रूरप्रेषणं तथा॥ १३

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! इस हरिवंशमें क्रमशः कहे गये वृत्तान्तोंका यहाँ संक्षेपसे कीर्तन किया जाता है— इसमें पहले (हरिवंशपर्वमें) आदिसृष्टिका वर्णन है, तत्पश्चात् भूतसृष्टिका वर्णन किया गया है॥ १॥ फिर वेनके पुत्र पृथुकी कथा है। इसके बाद मनुओंका वर्णन, वैवस्वत मनुके कुलकी उत्पत्ति तथा धुन्धुमारकी कथा आयी है॥ २॥ फिर गालवकी उत्पत्ति, इक्ष्वाकुवंशका वर्णन, पितृकल्प (श्राद्ध) तथा सोम एवं बुधकी उत्पत्तिका प्रसंग है॥ ३॥ तदनन्तर अमावसुके वंशका वर्णन है, जो पढ़ने और सुननेवालेकी कीर्तिको बढ़ानेवाला है। इसके बाद इन्द्रके अपने स्थानसे च्युत होने और पुनः उसपर प्रतिष्ठित होनेका प्रसंग है॥ तत्पश्चात् क्षत्रवृद्धकी संततिका वर्णन आया है॥ ४॥ फिर दिवोदासकी प्रतिष्ठा, राजा त्रिशङ्कुकी कथा, ययातिका चरित्र और पूरुवंशका वर्णन है॥ ५॥ इसके बाद श्रीकृष्णके प्राकट्यका वर्णन है, फिर स्यमन्तकमणिकी कथा संक्षेपसे कही गयी है। तत्पश्चात् भगवान् विष्णुके अवतार बताये गये हैं॥ ६॥ तदनन्तर तारकामय युद्धका प्रसंग है। फिर ब्रह्मलोकका वर्णन है। भगवान् विष्णुके योगनिद्रासे उठनेकी कथा है। इसके बाद ब्रह्माजी और पृथ्वीके वचन हैं। तत्पश्चात् देवताओंके अंशावतरणकी कथा है। तदनन्तर (द्वितीय विष्णुपर्वमें) कंसके प्रति नारदजीका वचन, भगवान् विष्णुका जलमें सोये हुए षड्गर्भ नामक दैत्योंके जीवोंको खींचकर निद्रादेवीके हाथमें देना, आर्यादेवीकी स्तुति, श्रीकृष्णके अवतारका विस्तारपूर्वक वर्णन, उनका गौओंके व्रजमें गमन, छकड़ेको उलटना, पूतनाका वध करना, अर्जुन नामक जुड़वें वृक्षोंको तोड़ देना, गोपोंको भेड़ियोंका दर्शन तथा समस्त गोव्रजका वृन्दावनमें निवास—इन विषयोंका क्रमशः वर्णन है॥ ७—१०॥ इसके बाद वर्षाका वर्णन, श्रीकृष्णद्वारा यमुनाके कालियदहका दर्शन, कालियनागका दमन, बलरामद्वारा धेनुकासुर और प्रलम्बासुरका वध, शरद्-वर्णन, गिरियज्ञका आरम्भ, श्रीकृष्णद्वारा गोवर्धन-धारण, उनका गोविन्द-पदपर अभिषेक, उनकी गोपियोंके साथ क्रीड़ा, उनके द्वारा अरिष्टासुरका वध और कंसका अक्रूरको व्रजमें भेजना—इन विषयोंका उल्लेख है॥ ११—१३॥

अन्धकस्य च वाक्यानि केशिनो निधनं तथा।
अक्रूरागमनं चैव नागलोकस्य दर्शनम्॥ १४
धनुर्भङ्गस्य कथनं कंसवाक्यमतः परम्।
कुवलयापीडवधश्चाणूरान्ध्रवधस्तथा ॥ १५
कंसस्य निधनं चापि विलापः कंसयोषिताम्।
उग्रसेनाभिषेकश्च यादवाश्वासनं तथा॥ १६
प्रत्यागतिर्गुरुकुलादथोक्ता रामकृष्णयोः।
मथुरायाश्चोपरोधो जरासंधनिवर्तनम्॥ १७
विकद्रुवाक्यं रामस्य दर्शनं भाषणं तथा।
गोमन्तारोहणं चापि जरासंधगतिस्तथा॥ १८
गोमन्तस्य गिरेर्दाहः करवीरपुरे गतिः।
शृगालस्य वधस्तत्र मथुरागमनं ततः॥ १९
यमुनाकर्षणं चैव मथुरापक्रमस्तथा।
उपायेन वधः कालयवनस्य प्रकीर्तितः॥ २०
निर्माणं द्वारवत्यास्तु रुक्मिणीहरणं तथा।
विवाहश्चैव रुक्मिण्या रुक्मिणो निधनं तथा॥ २१
बलदेवाह्निकं पुण्यं बलमाहात्म्यमेव च।
नरकस्य वधः पारिजातस्य हरणं तथा॥ २२
द्वारवत्या विशेषेण पुनर्निर्माणकीर्तनम्।
द्वारकायां प्रवेशश्च सभायां च प्रवेशनम्॥ २३
नारदस्य च वाक्यानि वृष्णिवंशानुकीर्तनम्।
षट्पुरस्य वधाख्यानमन्धकस्य निबर्हणम्॥ २४
समुद्रयात्रा कृष्णस्य जलक्रीडाकुतूहलम्।
तथा भैमप्रवीराणां मधुपानप्रवर्तकम्॥ २५
ततश्छालिक्यगान्धर्वसमुदाहरणं हरेः।
भानोश्च दुहितुर्भानुमत्या हरणकीर्तनम्॥ २६
शम्बरस्य वधश्चैव धन्योपाख्यानमेव च।
वासुदेवस्य माहात्म्यं बाणयुद्धं प्रपञ्चितम्॥ २७
भविष्यं पुष्करं चैव प्रपञ्चेनैव कीर्तितम्।
वाराहं नारसिंहं च वामनं बहुविस्तरम्॥ २८
कैलासयात्रा कृष्णस्य पौण्ड्रकस्य वधस्ततः।
हंसस्य डिम्भकस्यैव वधश्चैव प्रकीर्तितः॥ २९

फिर कंसके प्रति अंधकके वचन, केशीका वध, अक्रूरका व्रजमें आगमन, लौटते समय उन्हें यमुनामें नागलोकका दर्शन, श्रीकृष्णके द्वारा कंसके धनुषके तोड़े जानेका वर्णन, कंसकी चाणूर और मुष्टिकसे बातचीत, तत्पश्चात् श्रीकृष्णद्वारा कुवलयापीड, चाणूर एवं अन्ध्र-देशीय मुष्टिकका वध, कंसका निधन, कंसकी स्त्रियोंका विलाप, उग्रसेनका अभिषेक तथा श्रीकृष्णद्वारा यादवोंको आश्वासन आदि विषयोंका वर्णन है॥ १४—१६॥ बलराम और श्रीकृष्णका गुरुकुलसे विद्या पढ़कर लौटना, जरासंधका मथुरापर घेरा डालना और पराजित होकर लौटना, विकद्रुका भाषण, श्रीकृष्ण और बलरामको परशुरामजीका दर्शन और उनसे बातचीत, उन सबका गोमंत पर्वतपर चढ़ना, जरासंधका आक्रमण, उसके द्वारा गोमंतपर्वतका दाह, श्रीकृष्ण और बलरामका करवीरपुरमें जाना, श्रीकृष्णद्वारा शृगालका वध तथा दोनों भाइयोंका मथुरामें आगमन आदि प्रसंगोंका वर्णन है॥ १७—१९॥ इसके बाद बलरामद्वारा यमुनाका आकर्षण, यादवोंका मथुरासे हट जाना और कालयवनका युक्तिपूर्वक वध—इन विषयोंका वर्णन है॥ २०॥ तदनन्तर द्वारकाका निर्माण, रुक्मिणीका हरण, रुक्मिणीके साथ श्रीकृष्णका विवाह, बलरामद्वारा रुक्मीका वध, ६२ वें अध्यायमें बलदेवजीके माहात्म्य तथा १०९ वें अध्यायमें बलदेवजीके द्वारा प्रद्युम्नको आह्निक स्तोत्रके उपदेशका वर्णन है। फिर ६३ वें अध्यायमें नरकासुरके वधका वर्णन है। तदनन्तर पारिजात-हरण, द्वारकापुरीका पुनः विशेषरूपसे निर्माण, द्वारकामें प्रवेश, सभामें प्रवेश, नारदजीके वचन तथा वृष्णिवंशकी परम्पराका वर्णन है। इसके बाद षट्पुर-वधकी कथा, अन्धकासुर-संहार, श्रीकृष्णकी समुद्रयात्रा और जलक्रीड़ा-कौतूहल, भीमवंशी वीरोंकी मधुपानमें प्रवृत्ति, श्रीहरिकी इच्छासे छालिक्य गान्धर्वका भूतलपर आनयन, भानुपुत्री भानुमतीके हरणकी कथा, शम्बरासुरका वध, धन्योपाख्यान, वासुदेव-माहात्म्य तथा बाणासुरके युद्ध आदि विषयोंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है॥ २१—२७॥ (तीसरे भविष्यपर्वमें) भविष्य- राजवंश एवं भावी कलियुगका वर्णन, फिर पुष्कर-प्रादुर्भावका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् भगवान्के वराह, नृसिंह और वामन अवतारकी कथाका अधिक विस्तृत वर्णन है॥ २८॥ तदनन्तर श्रीकृष्णकी कैलासयात्रा, पौण्ड्रक-वध तथा हंस और डिम्भकके मारे जानेके प्रसंगका वर्णन आया है॥ २९॥

पुरत्रयस्य संहार इति वृत्तान्तसंग्रहः।
कथितो नृपशार्दूल सर्वपापप्रणाशनः॥ ३०

वृत्तान्तं शृणुयाद् यस्तु सायं प्रातः समाहितः।
स याति वैष्णवं धाम लब्धकामः कुरूद्वह।
धन्यं यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ ३१

नृपश्रेष्ठ! तत्पश्चात् महादेवजीके द्वारा त्रिपुरके संहारकी कथा है। इस प्रकार हरिवंशके वृत्तान्तोंका यह संक्षिप्त संग्रह बताया गया है। यह समस्त पापोंका नाश करनेवाला है॥ ३०॥ कुरुश्रेष्ठ! जो एकाग्रचित्त होकर प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल इस वृत्तान्तको सुनता है, वह सफलमनोरथ होकर भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। यह वृत्तान्त धन, यश और आयुकी प्राप्ति करानेवाला तथा भोग और मोक्षरूपी फलको देनेवाला है॥ ३१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वृत्तान्तसंग्रहे चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वृत्तान्तसंग्रहविषयक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३४॥

पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

हरिवंश-श्रवणकी दक्षिणा, फल एवं माहात्म्यका वर्णन

जनमेजय उवाच

हरिवंशे पुराणे तु श्रुते मुनिवरोत्तम।
किं फलं किं च देयं वै तद् ब्रूहि त्वं ममाग्रतः॥ १

वैशम्पायन उवाच

हरिवंशे पुराणे तु श्रुते च भरतोत्तम।
कायिकं वाचिकं चैव मनसा समुपार्जितम्॥ २

तत् सर्वं नाशमायाति तमः सूर्योदये यथा।
अष्टादशपुराणानां श्रवणाद् यत् फलं भवेत्॥ ३

तत् फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः।
श्लोकार्धं श्लोकपादं वा हरिवंशसमुद्भवम्॥ ४

शृण्वन्ति श्रद्धया युक्ता वैष्णवं पदमाप्नुयुः।
जम्बूद्वीपं समाश्रित्य श्रोतारो दुर्लभाः कलौ॥ ५

भविष्यन्ति नरा राजन् सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।
स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः॥ ६

दक्षिणा चात्र देया वै निष्कत्रयसुवर्णकम्।
वाचकाय यथाशक्त्या यथोक्तं फलमिच्छता॥ ७

जनमेजयने पूछा—मुनिवरोत्तम! अब आप मेरे सामने यह बताइये कि हरिवंशपुराण सुन लेनेपर क्या फल होता है और उस समय क्या दान देना चाहिये?॥ १॥

वैशम्पायनजीने कहा—भरतवंशशिरोमणे! हरिवंशपुराण सुन लेनेपर शरीर, वाणी और मनके द्वारा उपार्जित सारे पापोंका उसी प्रकार नाश हो जाता है, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार। अठारह पुराणोंके श्रवणसे जो फल प्राप्त होता है, उसे विष्णुभक्त पुरुष केवल हरिवंश सुनकर प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है। जो श्रद्धापूर्वक हरिवंशके आधे या चौथाई श्लोकको भी सुनते हैं, वे भगवान् विष्णुके धाममें चले जाते हैं। राजन्! कलियुगमें जम्बूद्वीपका आश्रय लेकर रहनेवाले लोगोंमें इस ग्रन्थके श्रोता दुर्लभ हो जायँगे, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ। पुत्रकी कामना रखनेवाली स्त्रियोंको भगवान् विष्णुके सुयशसे भरे हुए इस ग्रन्थका अवश्य श्रवण करना चाहिये॥ २—६॥ जो शास्त्रोक्त फलको प्राप्त करनेकी इच्छा रखता हो, उस श्रोताको चाहिये कि वह अपनी शक्तिके अनुसार वाचकको हरिवंश सुननेकी दक्षिणाके रूपमें तीन निष्क[१] सुवर्ण प्रदान करे॥ ७॥

१. सोलह मासे वजनका एक निष्क होता है। (संस्कृत शब्दार्थकौस्तुभ)

स्वर्णशृङ्गीं च कपिलां सवत्सां वस्त्रसंयुताम्।
वाचकाय प्रदद्याद् वै आत्मनः श्रेयकाङ्क्षया॥ ८

अलंकारं प्रदद्याच्च पाण्योर्वै भरतर्षभ।
कर्णस्याभरणं दद्याद् यानं च सविशेषतः॥ ९

भूमिदानं समादद्याद् ब्राह्मणाय नराधिप।
भूमिदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति॥ १०

शृणोति श्रावयेद् वापि हरिवंशं तु यो नरः।
सर्वथा पापनिर्मुक्तो वैष्णवं पदमाप्नुयात्॥ ११

पितॄनुद्धरते सर्वानेकादशसमुद्भवान्।
आत्मानं ससुतं चैव स्त्रियं च भरतर्षभ॥ १२

दशांशश्चात्र होमो वै कार्यः श्रोत्रा नराधिप।
इदं मया तवाग्रे च सर्वं प्रोक्तं नरर्षभ॥ १३

यस्य स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।
अपुत्रः पुत्रमाप्नोति अधनो धनमाप्नुयात्॥ १४

नरमेधाश्वमेधाभ्यां यत् फलं प्राप्यते नरैः।
तत् फलं लभते नूनं पुराणश्रवणाद्धरेः॥ १५

ब्रह्महा भ्रूणहा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः।
सकृत्पुराणश्रवणात् पूतो भवति नान्यथा॥ १६

इदं मया ते परिकीर्तितं मह-
च्छ्रीकृष्णमाहात्म्यमपारमद्भुतम्।
शृण्वन् पठन्नाशु समाप्नुयात् फलं
यच्चापि लोकेषु सुदुर्लभं महत्॥ १७

अपने कल्याणकी इच्छासे वह वाचकको वस्त्र और बछड़ेसहित एक कपिला गौ भी दे, जिसके सींगोंमें सोना मढ़ा हुआ हो॥ ८॥ भरतश्रेष्ठ! वह दोनों हाथोंके लिये अलंकार (कड़े, बाजूबन्द, अँगूठी आदि) भी दे तथा कानके आभूषण (कुण्डल आदि) भी अर्पित करे; विशेषतः, शिविका आदि कोई सवारी अवश्य दे॥ ९॥ नरेश्वर! उसे ब्राह्मणके लिये भूमिका दान भी देना चाहिये; क्योंकि भूमिदानके समान दूसरा कोई दान न तो हुआ है और न होगा ही॥ १०॥ जो मनुष्य हरिवंशको सुनता और सुनाता है, वह सब प्रकारसे पापमुक्त होकर भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त कर लेता है॥ ११॥ भरतश्रेष्ठ! वह अपनी ग्यारह पीढ़ीके समस्त पितरोंका उद्धार कर देता है। साथ ही अपना, अपने पुत्रका तथा अपनी पत्नीका भी उद्धार करता है॥ १२॥ नरेश्वर! नरश्रेष्ठ! श्रोताको इस हरिवंश-श्रवणके उपलक्ष्यमें इसकी श्लोकसंख्याका दशांश हवन करना चाहिये। यह सब कुछ मैंने तुम्हारे सामने कह दिया॥ १३॥ इसके स्मरणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसके श्रवणसे पुत्रहीनको पुत्र और निर्धनको धनकी प्राप्ति होती है॥ १४॥ नरमेध और अश्वमेध यज्ञोंसे मनुष्योंको जो फल प्राप्त होता है, उसीको श्रीहरिके इस पुराणका श्रवण करनेसे मनुष्य निश्चय ही प्राप्त कर लेता है॥ १५॥ ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, गोहत्या, सुरापान और गुरुपत्नीगमन—इन महापातकोंसे युक्त मनुष्य भी इस पुराणको एक बार पूर्वोक्त विधिसे सुन लेनेपर पवित्र हो जाता है। इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये॥ १६॥ यह मैंने तुमसे श्रीकृष्णके अपार, अद्भुत एवं महान् माहात्म्यका वर्णन किया है। जो इसे सुनता और पढ़ता है, वह लोकमें जो परम दुर्लभ और महान् फल है, उसे भी शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है॥ १७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि श्रवणफलकथने पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतमें व्यासनिर्मित एक लाख श्लोकोंकी संख्याके अन्तर्गत उसके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रवणफलका वर्णनविषयक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३५॥

॥ भविष्यपर्व सम्पूर्ण॥

[श्रीहरिवंशपुराण समाप्त]

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीहरिवंशमाहात्म्यम्

प्रथमोऽध्यायः

हरिवंश-श्रवणका माहात्म्य, नारीके पाँच दोष और हरिवंशश्रवणसे उनकी निवृत्ति, पाठके उत्तम, मध्यम आदि भेद तथा गोव्रतकी विधि

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥ १

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति॥ २

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ३

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत् पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ४

जनमेजय उवाच

त्वया मे भगवन् प्रोक्तो भारतश्रवणे विधिः।
श्रवणे हरिवंशस्य विशेषाद् वद मे विधिम्॥ ५

वैशम्पायन उवाच

ब्रह्मविष्णुमहेशानां हरिवंशं जगुर्वपुः।
शब्दब्रह्ममयं विद्धि हरिवंशं सनातनम्॥ ६
शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति।
हरिवंशपुराणे तु श्रुते वै राजसत्तम॥ ७
कायिकं वाचिकं पापं मनसा समुपार्जितम्।
तत् सर्वं नाशमायाति तमः सूर्योदये यथा॥ ८
अष्टादशपुराणानां श्रवणाद् यत् फलं लभेत्।
तत् फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः॥ ९

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (इतिहास-पुराण एवं महाभारत)-का पाठ करना चाहिये॥ १॥ सत्यवतीके हृदयको आनन्दित करनेवाले उन पराशरपुत्र व्यासजीकी जय हो, जिनके मुखारविन्दसे निकले हुए वाङ्मय अमृतका सारा जगत् पान करता है॥ २॥ मैं अज्ञानरूपी तिमिररोग (रतौंधी)-से अन्धा हो रहा था, उस दशामें जिन्होंने ज्ञानरूपी अञ्जनकी शलाकासे मेरे बुद्धिरूपी नेत्रको खोल दिया है—उसमें ज्ञानका प्रकाश भर दिया है, उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है॥ ३॥ जिससे यह अखण्ड मण्डलाकार चराचर जगत् व्याप्त है, उस परमात्माके पद (स्वरूप)-का जिन्होंने साक्षात्कार कराया है, उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है॥ ४॥

जनमेजय बोले—भगवन्! आपने मुझे महाभारत-श्रवणकी विधि बतायी है। अब हरिवंश सुननेकी जो विधि है, उसे विशेषरूपसे मुझे बताइये॥ ५॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! ऋषि-मुनि हरिवंशको ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीका स्वरूप बताते हैं। तुम यह समझ लो कि हरिवंश सनातन शब्दब्रह्ममय है। इस शब्दब्रह्ममें निष्णात हुआ पुरुष परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है। नृपश्रेष्ठ! हरिवंशपुराण सुन लेनेपर शरीर, वाणी और मनके द्वारा संचित किये हुए सारे पाप उसी तरह नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार॥ ६—८॥ अठारह पुराणोंका श्रवण करनेसे जो फल मिलता है, उसीको विष्णुभक्त पुरुष केवल हरिवंश सुनकर प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है॥ ९॥

स्त्रियश्च पुरुषाश्चैव वैष्णवं पदमाप्नुयुः।
जम्बूद्वीपं समाश्रित्य श्रोतारो दुर्लभाः कलौ॥ १०

भविष्यन्ति नरा राजन् सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।
स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः॥ ११

बालघाती च पुरुषो मृतवत्सः प्रजायते।
श्रवणं हरिवंशस्य कर्तव्यं च यथाविधि॥ १२

गुरुचन्द्राग्निसूर्याणां सम्मुखे मेहते च यः।
बीजमुत्सृज्यते तेन त्यक्तरेता नरो भवेत्॥ १३

योषित्पुष्पफलानां च बालानां घातिनी तथा।
फलानां कर्तनकरी मातापितृवियोगिनी॥ १४

स्राविणी परगर्भाणां तत् तत् प्रायोपजोषिणी।
ईदृग्विधा भविष्यन्ति पञ्चदोषयुताः स्त्रियः॥ १५

अपुष्पा मृतवत्साश्च काकवन्ध्यास्तथैव च।
कन्याप्रजात्वं च तथा स्रावयुक्ताः स्वपातकैः॥ १६

तासां दोषापहारार्थं हरिवंशोऽभिगर्जति।
मदीयश्रवणात् सद्यो दोषा नश्यन्ति सत्वरम्॥ १७

नरः सुवर्णं सर्पिश्च पददानैः समन्वितम्।
दशावृत्तीः शृणोत्येवं बीजसाफल्यमाप्नुयात्॥ १८

दशावृत्तीरपुष्पार्थं मृतवत्सा तु सप्त वै।
पञ्चावृत्तीः स्रवद्गर्भा काकवन्ध्या त्रयं तथा॥ १९

कन्याप्रसूश्चैकावृत्तिं श्रुत्वा पुत्रमवाप्नुयात्।
जीवितावधिकं श्राव्यं सर्वदोषोपशान्तये॥ २०

भविष्यं जन्म सम्प्राप्य न भवेत् तादृशी पुनः।
उत्तमं सार्थपाठं च मध्यमं च निरर्थकम्॥ २१

स्त्रियाँ और पुरुष इसे सुनकर भगवान् विष्णुके धाममें जाते हैं। राजन्! कलियुगमें जम्बूद्वीपका आश्रय लेकर रहनेवाले लोगोंमें इस ग्रन्थके श्रोता दुर्लभ हो जायँगे, यह मैं सत्य-सत्य बता रहा हूँ। पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाली स्त्रियोंको भगवान् विष्णुके इस यशका श्रवण करना चाहिये। बालकोंकी हत्या करनेवाले पुरुषके पुत्र हो-होकर मर जाते हैं। ऐसे मनुष्यको विधिपूर्वक हरिवंश सुनना चाहिये॥ १०—१२॥ जो गुरु, चन्द्रमा, अग्नि और सूर्यकी ओर मुँह करके पेशाब करता है अथवा वीर्य छोड़ता है, वह पुरुष जन्मान्तरमें वीर्यहीन (नपुंसक) हो, जाता है॥ १३॥ जो स्त्री फूलों और फलोंका नाश तथा बालकोंकी हत्या करनेवाली होती है, जो फलोंको काटती तथा बालकोंका माता-पितासे वियोग करा देती है, जो दूसरी स्त्रियोंके गर्भ गिरानेवाली और प्रायः ऐसी ही स्त्रियोंके सम्पर्कमें रहनेवाली हैं, इस तरहकी सारी स्त्रियाँ अपने पापोंके कारण पाँच प्रकारके दोषोंसे युक्त होती हैं—अपुष्पा (रजोदर्शनसे रहित), मृतवत्सा (जिसके बच्चे पैदा होकर मर जाते हों ऐसी), काकवन्ध्या (जिसके एक ही संतान होकर रह जाय, दूसरी संतति न हो वह), कन्याप्रजा (केवल कन्या पैदा करनेवाली) तथा स्रावयुक्ता (जिसका गर्भ ही गिर जाता हो, ऐसी)॥ १४—१६॥ उन सभी स्त्रियोंके दोषोंका निवारण करनेके लिये हरिवंश गर्जता रहता है। वह कहता है, मेरा श्रवण करनेसे सारे दोष तत्काल नष्ट हो जाते हैं॥ १७॥ जो मनुष्य सुवर्णदान, घृतदान और पद-दानके साथ हरिवंशको दस बार सुनता है, उसका वीर्य सफल होता है॥ १८॥ अपुष्पा—रजोदर्शनसे रहित नारीके लिये दस आवृत्ति हरिवंश सुननेका विधान है। जिसके बच्चे पैदा होकर मर जाते हों, वह सात बार हरिवंश सुने। जिसके गर्भ गिर जाते हों, वह पाँच बार और जो काकवन्ध्या हो, वह तीन बार हरिवंशकी कथा सुने॥ १९॥ केवल कन्या पैदा करनेवाली स्त्री एक ही आवृत्ति हरिवंशकी कथा सुनकर पुत्र प्राप्त कर सकती है। सम्पूर्ण दोषोंकी शान्तिके लिये जीवनभर हरिवंश सुनते रहना चाहिये, जिससे भावी जन्म पाकर वह फिर उन दोषोंसे युक्त न हो। हरिवंशका पाठ उत्तम और मध्यमके भेदसे दो प्रकारका होता है। यदि अर्थसहित इसका पाठ या श्रवण किया जाय तो वह उत्तम है। बिना अर्थका पाठ मध्यम श्रेणीका माना गया है॥ २०-२१॥

विनार्थं शुद्धपाठश्चेदुत्तमेन समो भवेत्।
नवाहमुत्तमं प्रोक्तमेकविंशाहं मध्यमम्॥ २२

निकृष्टमेकत्रिंशाहं सुखसाध्यं समाचरेत्।
बहुभिर्दिवसै राजन् साध्यानां साधनं कलौ॥ २३

तेन पारायणं साध्यं प्रोक्तं नारायणात्मना।
नवाहो गर्जति कलौ चैकविंशाहिकस्तथा॥ २४

एकत्रिंशाहिको यज्ञो वन्ध्यादोषविनाशकः।
गोव्रतं तु स्त्रिया कार्यं पारणं पुरुषेण च॥ २५

श्रवणारम्भणे राजन् यथावत् कथयामि ते।
अवसायान्तपर्यन्तं कार्यं मासव्रतं शुभम्॥ २६

चतुर्थ्यां प्रातरुत्थाय स्त्रिया हृष्टेन चेतसा।
गोव्रतं नियतं कार्यं निराहारं निरूदकम्॥ २७

सूर्यास्तकालपर्यन्तं यावद्ग्रामागमो भवेत्।
आगतां च सवत्सां हि पूजयित्वा यथाविधि॥ २८

यवसं पुष्कलं दत्त्वा यवान्नं कुरुते स्वयम्।
एवं मासे चतुर्थ्यां सा शुक्लायां व्रतमाचरेत्॥ २९

स्त्रीव्रतं कथितं राजन् पुरुषस्य तथैव च।
एवं मासव्रतं कृत्वा सुपुत्रं लभते ध्रुवम्॥ ३०

बिना अर्थके भी यदि शुद्ध पाठ हो तो वह उत्तमके ही समान होता है। (दिनोंकी संख्याके भेदसे इसके पाठकी उत्तम, मध्यम और अधम तीन श्रेणियाँ हैं—) नौ दिनोंमें इसका पाठ हो तो वह उत्तम कहा गया है, इक्कीस दिनोंमें हो तो मध्यम माना गया है और एकतीस दिनोंमें हो तो उसे निकृष्ट श्रेणीका पाठ बताया गया है। जो भी सुगमतापूर्वक साध्य हो, वही पाठ करना चाहिये? राजन्! कलियुगमें बहुत दिनोंके प्रयत्नसे साध्य फलोंकी सिद्धि होती है, अतः नारायणस्वरूप व्यासजीने हरिवंशका यह पारायण साध्यरूप बताया है। कलियुगमें नवाह्नपारायण और इक्कीस दिनोंका पारायण श्रोताके अभीष्टकी सिद्धि करनेके लिये गर्जना करता है। एकतीस दिनोंमें पूर्ण होनेवाला हरिवंशपारायणयज्ञ नारीके वन्ध्यात्वदोषका नाश करनेवाला है। राजन्! हरिवंश-कथा-श्रवण आरम्भ करना हो तो पहले स्त्री और पुरुषको भी गोव्रत करना चाहिये, फिर व्रतके अन्तमें उसका पारण भी स्त्री और पुरुष दोनोंको करना चाहिये। इसकी विधि मैं तुम्हें यथावत्‌रूपसे बता रहा हूँ। इसका आरम्भ करके अन्ततोगत्वा एक मासतक इस शुभ व्रतका अनुष्ठान करना उचित है। स्त्रीको चाहिये कि वह मनमें अत्यन्त प्रसन्न हो चतुर्थी तिथिको प्रातःकाल उठकर नियमपूर्वक गोव्रत आरम्भ करे। प्रातःकालसे सूर्यास्ततक जबतक चरनेको गयी हुई गौएँ गाँवमें लौट न आयें, तबतक अन्न और जल ग्रहण नहीं करना चाहिये। जब गौ द्वारपर आ जाय, तब बछड़ेसहित उसकी विधिवत् पूजा करके उसे प्रचुरमात्रामें घास-भूसा देकर स्वयं भी यवान्न ग्रहण करे। इस प्रकार किसी भी मासके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको नारी यह व्रत आरम्भ करे और उसे एक मासतक निभाये। राजन्! इस तरह यह स्त्री और पुरुषके लिये व्रत बताया गया है। इसका इसी प्रकार एक मासतक आचरण करके मनुष्य निश्चय ही उत्तम पुत्र प्राप्त कर लेता है॥ २२—३०॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

इस प्रकार श्रीपद्मपुराणमें हरिवंशमाहात्म्यके अन्तर्गत श्रवण आदिकी विधिका वर्णनविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

द्वितीयोऽध्यायः

(१) हरिवंशश्रवणकी विधि और फल

वैशम्पायन उवाच

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि नवाहश्रवणे विधिम्।
सहायैर्बहुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिस्त्वयम्॥ १

दैवज्ञं तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छ्य यत्नतः।
विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्प्य च॥ २

नभस्यश्चाश्विनोर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिर्नभः।
एते मासाः कथारम्भे श्रोतॄणां कामसूचकाः॥ ३

सहायाश्च त एवात्र कर्तव्याः सोद्यमाश्च ये।
देशे देशे तथा सेयं वार्ता प्रोच्या प्रयत्नतः॥ ४

भविष्यति कथा चात्र आगन्तव्यं कुटुम्बिभिः।
देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवाः कीर्तनोत्सुकाः॥ ५

तेष्वेव पत्रं प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम्।
सतां समाजो भविता नवरात्रं सुदुर्लभः॥ ६

आगन्तुकानां सर्वेषां वासस्थानानि कल्पयेत्।
तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा श्रवणं स्मृतम्॥ ७

विशाला वसुधा यत्र कर्तव्यं तत् कथास्थलम्।
शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम्॥ ८

गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत्।
कर्तव्यो मण्डपः प्रोच्चैः कदलीस्तम्भमण्डितः॥ ९

फलपुष्पदलैर्विष्वग्वितानेन विराजितः।
चतुर्दिक्षु ध्वजारोपस्तोरणेन विराजितः॥ १०

ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च सप्ताधः परिकल्पयेत्।
तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य वै॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! अब मैं तुम्हें हरिवंशके नवाह्न-श्रवणकी विधि बताऊँगा। यह विधि प्रायः बहुत-से सहायकोंकी सहायतासे ही सिद्ध होनेवाली है॥ १॥ पहले यत्नपूर्वक ज्यौतिषीको बुलाकर मुहूर्त पूछना चाहिये तथा विवाहके लिये जितने धनका प्रबन्ध किया जाता है, उतने धनकी व्यवस्था इसके लिये करनी चाहिये॥ २॥ भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ़ और श्रावण—ये छः मास कथा आरम्भ करनेमें श्रोताओंके लिये अभीष्ट सिद्धिके सूचक हैं॥ ३॥ इस कार्यमें उन्हीं लोगोंको सहायक बनाना चाहिये, जो उद्योगी हों। फिर प्रयत्न करके देश-देशान्तरों (विभिन्न स्थानों)-में यह संदेश कहला देना चाहिये कि यहाँ कथा होगी, अतः आप सब सज्जनोंको सपरिवार पधारना चाहिये। भिन्न-भिन्न स्थानोंमें हरिकीर्तनके लिये उत्सुक रहनेवाले जो विरक्त वैष्णव हों, उनके पास अवश्य निमन्त्रण-पत्र भेजना चाहिये। उस पत्रके लेखनकी विधि इस प्रकार बतायी गयी है—'महानुभावो! यहाँ नौ दिनोंतक सत्पुरुषोंका समागम—सत्संगका सुअवसर रहेगा, जो सबके लिये परम दुर्लभ है (अतः आपलोग हरिवंश-कथामृतका पान करनेके लिये अवश्य पधारनेकी कृपा करें)' ॥ ४—६॥ जो लोग आयें, उन सबके रहनेके लिये स्थानका यथोचित प्रबन्ध करे। कथाका श्रवण किसी तीर्थमें, वनमें अथवा अपने घरपर भी अच्छा माना गया है॥ ७॥ जहाँ लम्बा-चौड़ा मैदान हो, वहीं कथा-स्थल बनाना चाहिये। उस भूमिका शोधन, मार्जन और लेपन करके रंग-बिरंगी धातुओंसे वहाँ चौक पूरे॥ ८॥ घरकी सारी सामग्री उठाकर एक कोनेमें रख दे और कथाके लिये एक ऊँचा मण्डप तैयार कराये, जो केलेके खम्भोंसे सुशोभित हो॥ ९॥ उसे सब ओर फल, फूल, पल्लव और चँदोवेसे अलंकृत करे। चारों दिशाओंमें ध्वजारोपण करे। उस मण्डपमें सुन्दर फाटक लगाकर उसकी शोभा बढ़ाये॥ १०॥ उस मण्डपमें कुछ ऊँचाईपर सात विशाल लोकोंकी कल्पना करे और उनमें विरक्त ब्राह्मणोंको बुला-बुलाकर समझा-बुझाकर बैठाये। इसी प्रकार नीचे भी सात लोकोंकी कल्पना करे (और उनमें साधारण जनताको बिठाये)॥ ११॥

पूर्वं तेषामासनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम्।
वक्तुश्चापि तथा दिव्यमासनं परिकल्पयेत्॥ १२

उदङ्मुखो भवेद् वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखस्तथा।
प्राङ्मुखोऽथ भवेद् वक्ता श्रोता चोदङ्मुखस्तथा॥ १३

विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशारदः।
दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्यो दयान्वितः॥ १४

वेदवेदान्ततत्त्वज्ञैर्गुरुभिर्ब्रह्मवादिभिः।
नृणां कृतोपदेशानां सद्यः सिद्धिर्हि जायते॥ १५

अथान्यजनसामान्यैर्गुरुभिर्नीतिकोविदैः।
नृणां कृतोपदेशानां सिद्धिर्भवति कीदृशी॥ १६

अनेकधर्मविभ्रान्ताः स्त्रैणाः पाखण्डवादिनः।
धर्मशास्त्रकथोच्चारे त्याज्यास्ते यदि पण्डिताः॥ १७

वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः।
पण्डितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः॥ १८

वक्त्रा क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनादर्वाग् व्रतामये।
वक्तुः श्रोतुश्चन्द्रशुद्धौ दम्पत्योः शुभतारके॥ १९

अरुणोदये विनिर्वर्त्य शौचं स्नानं समाचरेत्।
नित्यं संक्षेपतः कृत्वा संध्याद्यं प्रयतस्ततः॥ २०

सुक्षालितपाणिपादः स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।
गोमयोपलिप्तदेशे सर्वतोभद्रकल्पनम्॥ २१

स्वीयशक्त्यनुसारेण पूजनं सर्वमाचरेत्।
कथाविघ्नविनाशाय गणनाथं प्रपूजयेत्॥ २२

सलक्ष्मीपुत्रसहितं गोपालं स्थापयेत् ततः।
निर्विघ्नेनैव सिद्ध्यर्थं देवपूजनपूर्वकम्॥ २३

पहले उन विरक्त ब्राह्मणोंके लिये उत्तमोत्तम आसनोंका प्रबन्ध करना चाहिये। फिर वक्ता (वाचक)-के लिये भी दिव्य आसनकी व्यवस्था करे॥ १२॥ जब वक्ताका मुँह उत्तरकी ओर रहे, तब श्रोताका मुख पूर्वकी ओर होना चाहिये और यदि वक्ताका मुख पूर्वकी ओर हो तब श्रोताको उत्तराभिमुख होकर बैठना चाहिये॥ १३॥ जो विरक्त, विष्णुभक्त, वेदशास्त्रविशारद, जातिका ब्राह्मण, भाँति-भाँतिके दृष्टान्त देकर ग्रन्थके भावको हृदयङ्गम करानेमें कुशल, धीर और दयालु हो, ऐसे पुरुषको ही वक्ता बनाना चाहिये॥ १४॥ जिन मनुष्योंको वेद-वेदान्तके तत्त्वज्ञ, ब्रह्मवादी गुरुओंसे उपदेश प्राप्त होता है, उन्हें तत्काल सिद्धि सुलभ होती है॥ १५॥ जो गुरु अन्य सामान्य लोगोंके समान ही नीतिकुशल हैं, उनसे जिन मनुष्योंको उपदेश प्राप्त होता है, उनको कैसी सिद्धि मिलेगी?॥ १६॥ जो अनेक मत-मतान्तरोंके चक्करमें पड़कर भ्रान्त हो रहे हों, स्त्रीलम्पट हों और पाखण्डकी बातें करते हों, ऐसे लोग यदि पण्डित भी हों तो उन्हें धर्ममय शास्त्र—इतिहास-पुराणकी कथा कहनेके लिये वक्ता न बनाये, उन्हें ऐसे कार्यसे दूर ही रखे॥ १७॥ वक्ताके पास उसकी सहायताके लिये उसी योग्यताका एक और विद्वान् रखे। वह भी संशय-निवारण करनेमें समर्थ और लोगोंको समझानेमें कुशल होना चाहिये॥ १८॥ वक्ताको उचित है कि वह कथा आरम्भ होनेसे एक दिन पहले क्षौर करा ले, जिससे व्रतका पूर्णतया निर्वाह हो सके। जब वक्ता और श्रोता दोनोंके चन्द्रबल ठीक हों और सुननेवाले दम्पतिके ग्रह एवं ताराबल भी अनुकूल हों, तब कथा आरम्भ करनी चाहिये॥ १९॥ श्रोता अरुणोदयकालमें—दिन निकलनेसे दो घड़ी पहले शौच आदिसे निवृत्त होकर विधिपूर्वक स्नान करे। प्रतिदिन मनको संयममें रखकर संक्षेपसे संध्या-वन्दन आदि करके हाथ-पैरोंको अच्छी तरह धोकर पहले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराये। फिर गोबरसे लिपे-पुते स्थानपर सर्वतोभद्रमण्डलकी रचना करे और अपनी शक्तिके अनुसार सम्पूर्ण पूजन कर्म सम्पन्न करे। कथाके विघ्नोंका निवारण करनेके लिये श्रीगणेशजीकी पूजा करे॥ २०—२२॥ तत्पश्चात् लक्ष्मी (रुक्मिणी) तथा (प्रद्युम्न आदि) पुत्रोंसहित गोपालक भगवान् श्रीकृष्णकी स्थापना करे। कथाकी निर्विघ्नता-पूर्वक सिद्धिके लिये ही देवपूजनपूर्वक पत्नी और पुत्रसहित भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करे॥ २३॥

संकल्पं कुर्यात्—

अद्येहेत्यादिदेशकालौ स्मृत्वा अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्यामुकशर्मणः सपत्नीकस्य मम जन्मनि जन्मनि संचितमहापातकपटलनाशपूर्वकं तेन पापसंचयेन कृतसंतानबाधकताविनाशपूर्वकमिह जन्मनि संतानोत्पत्तिहेतवे तस्य संतानस्य शरदां शतमायुषो वृद्ध्यर्थमात्मनश्च सकलसुखाप्तिहेतवे इह शरीरशुद्ध्यर्थं परत्र चेन्द्रादिलोकातिक्रमणपूर्वकश्रीमद्विष्णुभक्त्युद्रेकजनितकल्पावधितल्लोकगमनतत्रवासपूर्वकतत्स्वरूपावाप्तिहेतवे आवां दम्पती श्रीमद्धरिवंशपुराणश्रवणं कर्तृकतया करिष्यावहे। अन्यतरकर्तृत्वे करिष्ये इत्येवसंकल्पः।

इति कृत्वा तु संकल्पं वक्तारं वृणुयात्ततः।
श्रुताध्ययनसम्पन्नं पूजयित्वा यथाविधि॥ २४

सुवर्णमुद्रिकां गृह्य कुण्डले च विशेषतः।
धौतवस्त्रं सोत्तरीयं चोष्णीषेण समन्वितम्॥ २५

सुवर्णषोडशपलं पुष्पताम्बूलसंयुतम्।
पूगीफलं चाक्षतान् वै गृहीत्वा शुद्धमानसः॥ २६

संकल्पः—अद्येहेत्यादि अमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिश्चन्दनताम्बूलसुवर्णवस्त्रादिभिर्हरिवंशश्रवणे वाचकत्वेनावां दम्पती त्वां वृणीवहे।

वृतोऽस्मीति तेनोक्ते—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति इति मन्त्रेण वक्तुर्दक्षिणकरमूले रक्षाबन्धनं कार्यम्। ब्राह्मणेन श्रोतॄणां रक्षाबन्धनं कार्यम्।

चन्दनाद्युपचारैस्तु वस्त्रपुष्पाक्षतैस्तथा।
हेमालंकरणैः पूगैः फलैर्ऋतुसमुद्भवैः॥ २७

इसके बाद निम्नाङ्कितरूपसे संकल्प करना चाहिये—आज यहाँ इत्यादिरूपसे वर्तमान देश-कालका स्मरण करके यजमान यों कहे—अमुक गोत्र, अमुक प्रवर और अमुक नाम और जातिवाले मुझ सपत्नीक यजमानके जन्म-जन्मान्तरोंमें संचित महापातकसमूहोंके नाशपूर्वक उस पापसंचयसे होनेवाली संतानबाधाका निवारण करके इस जन्ममें संतानोत्पत्तिके उद्देश्यसे और उस संतानकी आयु बढ़कर सौ वर्षोंकी हो जाय—इस अभिलाषासे अपनेको भी सम्पूर्ण सुखोंकी प्राप्ति हो—इस कामनासे इहलोकमें शरीरकी शुद्धिके लिये और परलोकमें इन्द्रादि लोकोंको लाँघकर भगवान् विष्णुकी भक्तिके उद्रेकसे सुलभ विष्णुलोकमें गमन और वहाँ एक कल्पतक निवासपूर्वक अन्ततोगत्वा भगवत्स्वरूपकी प्राप्तिके लिये हम दोनों दम्पती यज्ञकर्तारूपसे हरिवंशपुराणका श्रवण करेंगे। यदि पति और पत्नीमेंसे कोई एक ही कथाश्रवणका कर्ता हो तो एकवचन '**करिष्ये**' (करूँगा) ऐसी क्रिया बोलकर संकल्प करना चाहिये।

इस प्रकार संकल्प करनेके अनन्तर वेद-शास्त्रोंके अध्ययनसे सम्पन्न वक्ताका विधिपूर्वक पूजन करके उसका वरण करे॥ २४॥ सोनेकी अँगूठी, विशेषतः दो सुवर्णमय कुण्डल, धोती, चादर, पगड़ी, सोलह पल सुवर्ण, फूल, पान, सुपारी और अक्षत लेकर शुद्धचित्त हो निम्नाङ्कितरूपसे संकल्प बोलकर वक्ताका वरण करे॥ २५-२६॥

(१) वरणका संकल्प इस प्रकार है—आज यहाँ इत्यादिरूपसे वर्तमान देश-कालका स्मरण करके यजमान यों कहे—हम दोनों दम्पती अमुकगोत्रवाले, अमुक शर्मा ब्राह्मणका इन चन्दन, ताम्बूल, सुवर्ण और वस्त्र आदि उपकरणोंद्वारा हरिवंश सुनानेके लिये वाचक (व्यास)-रूपसे वरण करते हैं।

(२) फिर वाचक कहे—'मेरा वरण हो गया' उसके ऐसा कहनेपर—

(३) यजमान '**व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्, दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते**' अर्थात् 'साधक व्रतसे दीक्षाको पाता है, दीक्षासे दक्षिणाको और दक्षिणासे श्रद्धाको पा लेता है। फिर उस श्रद्धासे सत्यकी प्राप्ति होती है।' इस मन्त्रसे वक्ताके दाहिने हाथके मूलभागमें रक्षाबन्धन करे, तत्पश्चात् ब्राह्मणको श्रोताओंके हाथमें भी रक्षाबन्धन करना चाहिये।

(४) तदनन्तर चन्दनादि उपचारोंसे तथा वस्त्र, पुष्प, अक्षत, सुवर्णमय आभूषण, सुपारी और ऋतुफल आदिसे

पुराणपूजनं प्रोक्तं विधिना षोडशेन तु।
पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठाञ्श्रवणं फलदं स्मृतम्॥ २८
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्रोतव्यं विधिपूर्वकम्।
अथ व्यासं नमस्कुर्युर्मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥ २९
नमस्ते भगवन् व्यास सर्वशास्त्रार्थकोविद।
ब्रह्मविष्णुमहेशानमूर्ते सत्यवतीसुत॥ ३०
इति व्यासं नमस्कृत्य शुभदेशे कुशासने।
उपविश्य प्रतिदिनमुल्लसत्प्रीतमानसः॥ ३१
बालो युवाथ वृद्धो वा दरिद्रो दुर्बलोऽपि वा।
पुराणज्ञः सदा वन्द्यः पूज्यश्च सुकृतार्थिभिः॥ ३२
नीचबुद्धिं न कुर्वीत पुराणज्ञे कदाचन।
यस्य वक्त्रोद्गता वाणी कामधेनुः शरीरिणाम्॥ ३३
गुरवः सन्ति लोकस्य जन्मतो गुणतश्च ये।
तेषामपि च सर्वेषां पुराणज्ञः परो गुरुः॥ ३४
भवकोटिसहस्त्रेषु भूत्वा भूत्वा च सीदते।
यो ददाति पुण्यवृत्तिं कोऽन्यस्तस्मात् परो गुरुः॥ ३५
पुराणज्ञः शुचिर्दान्तः शान्तोऽपि जितमत्सरः।
साधुः कारुण्यवान् वाग्मी वदेत् पुण्यकथां सुधीः॥ ३६
व्यासासनसमारूढो यदा पौराणिको द्विजः।
आ समाप्तेः प्रसंगस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित्॥ ३७
ये धूर्ता ये च दुर्वृत्ता ये चान्ये विजिगीषवः।
तेषां कुटिलवृत्तीनामग्रे नैव वदेत् कथाम्॥ ३८
न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृते।
देशे नापूतसदने वदेत् पुण्यकथां सुधीः॥ ३९
सद्ग्रामे सुजनाकीर्णे सुक्षेत्रे देवतालये।
पुण्ये नदनदीतरे वदेत् पुण्यकथां सुधीः॥ ४०
ईदृशाद् वाचकाद् राजञ्छ्रुत्वा फलमवाप्नुयात्।
ऐहिकामुष्मिकं शर्म पुण्यं पुत्रादिसिद्धिदम्॥ ४१

षोडशोपचारकी विधिद्वारा पुराणका पूजन करना आवश्यक बताया गया है। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करके हरिवंशका श्रवण करना अभीष्ट फलदायक माना गया है, इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके विधिपूर्वक इसका श्रवण करना चाहिये। तदनन्तर सभी श्रोता व्यासको नमस्कार करें! उस समय यजमान इस मन्त्रका उच्चारण करे—'समस्त शास्त्रोंके अर्थको जाननेवाले, ब्रह्म, विष्णु, शिवस्वरूप, सत्यवतीनन्दन भगवान् व्यास! आपको नमस्कार है'॥ २७—३०॥ इस प्रकार व्यासको नमस्कार करके सुन्दर पवित्र स्थानमें कुशासनपर बैठकर प्रतिदिन उल्लासपूर्ण प्रसन्नचित्त हो कथा श्रवण करे॥ ३१॥ पुराणज्ञ पुरुष बालक हो या जवान, बूढ़ा हो या दरिद्र एवं दुर्बल, पुण्यकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंके लिये वह सदा ही वन्दनीय एवं पूजनीय है॥ ३२॥ जिसके मुखसे निकली हुई वाणी देहधारियोंके लिये कामधेनुके तुल्य है, उस पुराणवेत्ता विद्वान्के प्रति कभी नीचबुद्धि न करे॥ ३३॥ जगत्के मनुष्योंके लिये जो जन्मसे और गुणोंकी शिक्षा देनेके कारण गुरु हैं, पुराणका विद्वान् उन सबका भी परम गुरु है,॥ ३४॥ कोटि सहस्त्र जन्मोंमें बारम्बार उत्पन्न होकर कष्ट पानेवाले जीवको जो पुराणकथा सुनाकर पुण्यवृत्ति प्रदान करता है, उससे श्रेष्ठ गुरु दूसरा कौन है?॥ ३५॥ जो पुराणोंका ज्ञाता, पवित्र, जितेन्द्रिय, शान्त, मात्सर्यरहित, साधु और दयालु है, वह विद्वान् वक्ता पुराणोंकी पुण्यकथा कहे॥ ३६॥ पुराणवेत्ता द्विज जब व्यासासनपर आरूढ़ हो जाय, तबसे कथा-प्रसंगकी समाप्तितक वह दूसरे किसीको नमस्कार न करे॥ ३७॥ जो धूर्त हों, जो दुराचारी हों तथा दूसरे जो-जो तर्कसे हरानेकी इच्छा रखकर आये हों, उन कुटिल वृत्तिवाले मनुष्योंके सामने कभी कथा न कहे॥ ३८॥ जो स्थान दुर्जनोंसे भरा हो, शूद्रों और हिंसक जन्तुओंसे आवृत हो वहाँ और अपवित्र गृहमें विद्वान् पुरुष कभी पुराणोंकी पवित्र कथा न कहे॥ ३९॥ सज्जनोंसे भरे हुए अच्छे ग्राममें, उत्तम क्षेत्रमें, देवताके मन्दिरमें तथा नदों और नदियोंके पावन तटपर विद्वान् वक्ता पुण्यकथाका उपदेश करे॥ ४०॥ राजन्! ऐसे वाचकसे कथा सुनकर मनुष्य अभीष्ट फलको पा लेता है। हरिवंशपुराण इहलोक और परलोकमें भी कल्याणकारी, पुण्यदायक, पुत्र आदि अभीष्ट वस्तुओंकी सिद्धि देनेवाला

महापापादिशमनं पुराणं हरिवंशकम्।
योऽयं पुत्रादिसिद्ध्यर्थं हरिवंशं जितेन्द्रियैः॥ ४२

शृणुयात् सर्वभावेन पुण्यं पापप्रणाशनम्॥ ४३

तथा बड़े-बड़े पाप आदिका शमन करनेवाला है। जितेन्द्रिय पुरुषोंको पुत्र आदिकी सिद्धिके लिये हरिवंशका सहारा लेना चाहिये। इस पुण्यदायक और पापनाशक पुराणको पूर्ण श्रद्धा और एकाग्रताके साथ सुनना चाहिये॥ ४१—४३॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

इस प्रकार श्रीपद्मपुराणमें हरिवंशमाहात्म्यके अन्तर्गत श्रवण आदिकी विधिका प्रतिपादनविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तृतीयोऽध्यायः

(३) हरिवंशश्रवणकी विधि और फल

वैशम्पायन उवाच

जपाद्धि श्रवणं प्रोक्तं हरिवंशस्य सूरिभिः।
पितॄन् संतर्प्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥ १

सुमण्डपं च कर्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा।
कृष्णमुद्दिश्य मन्त्रेण चरेत् पूजाविधिं क्रमात्॥ २

प्रदक्षिणानमस्कारान् पूजान्ते स्तुतिमाचरेत्।
संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे॥ ३

कर्मग्राहगृहीतोऽहं मामुद्धर भवार्णवात्।
ततः श्रीहरिवंशस्य पूजा कार्या प्रयत्नतः॥ ४

विधिना षोडशेनैव धूपदीपसमन्विता।
ततस्तु श्रीफलं धृत्वा नमस्कारं समाचरेत्॥ ५

स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या केवलं तदा।
स्वीकृतोऽसि मया नाथ पुत्रार्थं भवसागरे॥ ६

मनोरथो मदीयोऽयं सफलः सर्वथा त्वया।
निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव॥ ७

एवं दीनवचः प्रोक्त्वा वक्तारं चाथ पूजयेत्।
सम्भूष्य वस्त्रभूषाभिः पूजान्ते तं च संस्तवेत्॥ ८

व्यासरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय॥ ९

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! विद्वान् पुरुषोंने जपसे हरिवंश-श्रवणकी सफलता बतायी है। पहले पितरोंका तर्पण करके आत्मशुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करे॥ १॥ उत्तम मण्डप बनाये और उसमें श्रीहरिकी स्थापना करे, फिर भगवान् श्रीकृष्णके उद्देश्यसे मन्त्रद्वारा क्रमशः पूजाविधि सम्पन्न करे॥ २॥ पूजाके अन्तमें प्रदक्षिणा और नमस्कार करके इस प्रकार स्तुति करे—'करुणानिधे! मैं इस संसार-समुद्रमें डूबा हुआ हूँ। मुझे कर्मरूपी ग्राहने पकड़ रखा है। आप मुझ दीनका इस भवसागरसे उद्धार कीजिये'। तदनन्तर धूप, दीप आदि सामग्रियोंसे षोडशोपचारकी विधिके अनुसार प्रयत्नपूर्वक श्रीहरिवंशकी भी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर पुस्तकके आगे श्रीफल (नारियल) रखकर नमस्कार करे और उस समय प्रसन्नचित्तसे अनन्यभावपूर्वक इस प्रकार स्तुति करे— 'नाथ! मैंने इस भवसागरमें पुत्रकी प्राप्तिके लिये आपकी शरण ली है। केशव! मेरे इस मनोरथको किसी विघ्न-बाधाके बिना ही आप सब प्रकारसे सफल करें। मैं आपका दास हूँ'॥ ३—७॥ इस प्रकार दीन वचन कहकर वक्ताको वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित करके उसका पूजन करे और पूजनके पश्चात् उसकी इस प्रकार स्तुति करे—॥ ८॥ 'व्याසस्वरूप महानुभाव! आप समझानेकी कलामें निपुण और समस्त शास्त्रोंके विशेषज्ञ हैं। इस हरिवंशकी कथाको प्रकाशित करके आप मेरे अज्ञानको दूर कीजिये'॥ ९॥

तदग्रे नियमः पश्चात् कर्तव्यः श्रेयसे मुदा।
नवरात्रं यथाशक्त्या धारणीयः स एव हि॥ १०

वरणं पञ्चविप्राणां कथाभङ्गनिवृत्तये।
कर्तव्यं तैर्हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया॥ ११

संतानगोपालमन्त्रो महारुद्रजपस्तथा।
पूजनं पार्थिवस्यैव गणनाथमनोर्जपः॥ १२

ब्राह्मणान् वैष्णवांश्चान्यांस्तथा कीर्तनकारिणः।
नत्वा सम्पूज्य दत्ताज्ञः स्वयमासनमाविशेत्॥ १३

लोकवित्तधनागारसर्वचिन्ता व्युदस्य च।
कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत् फलमुत्तमम्॥ १४

दम्पती शुद्धमनसौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितौ।
श्रद्धैव सर्वधर्माणां मातेव हितकारिणी॥ १५

श्रद्धयैव नृणां सिद्धिर्जायते लोकयोर्द्वयोः।
श्रद्धया भजतः पुंसः शिलापि फलदायिनी॥ १६

मूर्खोऽपि पूजितो भक्त्या गुरुर्भवति ज्ञानदः।
श्रद्धया भजतो मन्त्रस्त्वसद् योऽपि फलप्रदः॥ १७

श्रद्धया पूजितो देवो नीचस्यापि वरप्रदः।
अश्रद्धया कृता पूजा दानं यज्ञस्तपो व्रतम्॥ १८

सर्वं निष्फलतां याति पुष्पं बन्धुतरोरिव।
सर्वत्र संशयाविष्टः श्रद्धाहीनोऽतिचञ्चलः॥ १९

परमार्थात् परिभ्रष्टः संसृतेर्न हि मुच्यते।
मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ॥ २०

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।
अतो भावमयं विश्वं पुण्यपापं च भावतः॥ २१

ते उभे भावहीनस्य न भवेतां कदाचन।
तस्मात् सर्वात्मना राजञ्छ्रद्धाभक्ती समाश्रयेत्॥ २२

आ सूर्योदयमारभ्य सार्धं त्रिप्रहरार्धकम्।
वाचनीया कथा सम्यग् धीरकण्ठं सुधीमता॥ २३

तदनन्तर वक्ताके आगे अपने कल्याणके लिये प्रसन्नतापूर्वक नियम ग्रहण करे और यथाशक्ति नौ दिनोंतक निश्चय ही उसका पालन करे। कथामें कोई विघ्न न पड़े, इसके लिये पाँच ब्राह्मणोंका वरण करना चाहिये और उन ब्राह्मणोंको द्वादशाक्षरमन्त्र (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**)-का जप, संतानगोपालमन्त्रका जप, महारुद्रमन्त्रका जप, पार्थिवपूजन तथा गणेशमन्त्रका जप करना चाहिये॥ १०—१२॥ इसके बाद वहाँ उपस्थित हुए ब्राह्मणों, वैष्णवों तथा कीर्तन करनेवाले अन्य लोगोंको भी नमस्कार करके उनकी पूजा करे और उनसे आज्ञा लेकर स्वयं श्रोताके आसनपर बैठे॥ १३॥ जो पुरुष लोक, सम्पत्ति, धन और घर आदिकी सारी चिन्ता छोड़कर शुद्ध बुद्धिसे केवल कथामें ही मन लगाये रहता है, उसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है॥ १४॥ कथा सुननेवाले पति-पत्नी शुद्ध हृदयसे श्रद्धा और भक्तिके साथ कथा सुनें। सब धर्मोंमें श्रद्धा ही माताके समान हितकारिणी है॥ १५॥ श्रद्धासे ही मनुष्योंको इहलोक और परलोकमें सिद्धि प्राप्त होती है। श्रद्धापूर्वक आराधना करनेवाले पुरुषको शिला भी अभीष्ट फल देनेवाली है॥ १६॥ मूर्ख भी यदि भक्तिभावसे पूजित हो तो वह ज्ञानदाता गुरु हो जाता है। असत् मन्त्रका भी यदि श्रद्धापूर्वक सेवन (जप) किया जाय तो वह फलदायक हो जाता है॥ १७॥ यदि देवताकी श्रद्धापूर्वक पूजा की गयी तो वह नीच पुरुषको भी वर प्रदान करता है। अश्रद्धासे की हुई पूजा, दान, यज्ञ, तप और व्रत—ये सभी दुपहरियाके फूलकी भाँति निष्फल हो जाते हैं। जो सर्वत्र संशययुक्त, श्रद्धाहीन और अत्यन्त चञ्चल होता है, वह परमार्थसे भ्रष्ट होकर संसारबन्धनसे मुक्त नहीं हो पाता। मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, औषध और गुरुके विषयमें जैसी जिसकी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है। यह सारा विश्व भावमय है। पुण्य और पाप भी भावसे ही होते हैं। जो भावसे हीन है, उसे वे दोनों पुण्य और पाप कभी नहीं प्राप्त होते हैं। अतः राजन्! सम्पूर्ण हृदयसे श्रद्धा और भक्तिका आश्रय लेना चाहिये॥ १८—२२॥ बुद्धिमान् वक्ताको उचित है कि वह सूर्योदयसे लेकर साढ़े तीन प्रहरतक मध्यमस्वरसे अच्छी तरह कथा बाँचे॥ २३॥

कथाविरामः कर्तव्यो मध्याह्ने घटिकाद्वयम्।
तत् कथामनु कार्यं वै कीर्तनं वैष्णवैस्तदा॥ २४
एवं श्रुत्वा विधानेन सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ २५

दोपहरके समय दो घड़ीतक कथा बंद रखे। कथा बंद होनेपर वैष्णव पुरुषोंको उस बीचमें कुछ देरतक कीर्तन करना चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक कथा सुनकर मनुष्य अपनी सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त करे॥ २४-२५॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

इस प्रकार श्रीपद्मपुराणमें हरिवंशमाहात्म्यके अन्तर्गत श्रवण आदि विधिका वर्णनविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चतुर्थोऽध्यायः

नवाहव्रती श्रोताओंके पालन करने योग्य नियम, उनके द्वारा त्याज्य वस्तुओंका उल्लेख, न्यायविरुद्ध कथाश्रवण करनेवालोंकी दुर्गति, कथामें विघ्न डालनेके कारण एक नारीको नरकयातना एवं राक्षसयोनिकी प्राप्ति तथा श्रोताओंके चौदह भेद

वैशम्पायन उवाच

नवाहव्रतिनां पुंसां नियमाञ्छृणु सत्तम।
एककालाशनश्चैव अधःशायी भवेन्नरः॥ १
स्थातव्यं ब्रह्मचर्येण यावद् ग्रन्थः समाप्यते।
हरिवंशे तथा राजन् पायसं चरुभोजनम्॥ २
पारणे पारणे यातं यथावद् भरतर्षभ।
मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः॥ ३
हविष्यान्नेन कर्तव्यमेकवारं कथार्थिना।
उपोष्य नवरात्रं वा शक्तिश्चेच्छृणुयात् तदा॥ ४
घृतपानं पयःपानं कृत्वा वा शृणुयात् सुखम्।
फलाहारेण वा श्राव्यमेकभुक्तेन वा पुनः॥ ५
सुखसाध्यं भवेद् यत्तु कर्तव्यं श्रवणाय तत्।
भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारकम्॥ ६
नोपवासो वरः प्रोक्तो कथाविघ्नकरो यदि।
शृणुयाद् यः शुचिस्तिष्ठन्नेकचित्ततया सदा॥ ७
प्रातःस्नानादिकं कृत्वा पुत्रदारसमन्वितः।
पुराणश्रवणं कुर्यात् कृष्णपूजनपूर्वकम्॥ ८
पुष्पधूपफलैः सम्यङ् नैवेद्यैः श्रद्धयोद्धृतैः।
गुरोः शुश्रूषणं तेन कर्तव्यं फलकाङ्क्षिणा॥ ९

वैशम्पायनजी कहते हैं—साधुशिरोमणे! नवाहकथा-श्रवणका व्रत लेनेवाले पुरुषोंके लिये जो आवश्यक नियम हैं, उन्हें बताता हूँ, सुनो! व्रती पुरुष एक समय भोजन करे और नीचे भूमिपर सोये॥ १॥ जबतक ग्रन्थ समाप्त न हो जाय, तबतक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए रहना चाहिये। राजन्! भरतश्रेष्ठ! हरिवंशकी प्रत्येक पारणामें यथावत् रूपसे खीर अथवा चरुके भोजनका विधान प्राप्त होता है। कथाके समय मल-मूत्रके वेगको काबूमें रखनेके लिये हलका भोजन करना सुखद होता है, अतः कथा सुननेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको एक बार हविष्यान्न भोजन करना उचित है। यदि शक्ति हो तो नौ रात उपवास करके कथा सुने अथवा केवल घी या दूध पीकर सुखपूर्वक कथा सुने। इससे काम न चले तो फलाहार अथवा एक समय भोजन करके कथा सुननी चाहिये॥ २—५॥ तात्पर्य यह है कि जिससे जो नियम सुगमतापूर्वक निभ सके, वह उसीको कथा सुननेके लिये ग्रहण करे। मैं तो उपवासकी अपेक्षा भोजनको ही श्रेष्ठ मानता हूँ, यदि वह कथाश्रवणमें सहायक हो सके॥ ६॥ यदि उपवाससे कथामें विघ्न पड़ता हो तो वह अच्छा नहीं बताया गया है। जो इस कथाको सुने, वह सदा पवित्र हो एकाग्र-चित्तसे सुननेके लिये बैठे॥ ७॥ श्रोता स्त्री-पुत्रोंके साथ प्रातःस्नान आदि कर्म करके पहले भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करे। तत्पश्चात् इस पुराणको सुने॥ ८॥ अभीष्ट फलकी इच्छा रखनेवाला श्रोता श्रद्धापूर्वक अर्पित किये हुए पुष्प, धूप, फल और उत्तम नैवेद्यके द्वारा गुरुकी शुश्रूषा करे॥ ९॥

श्रुत्वा यथेच्छया शौचं कार्यं पुण्येन वर्त्मना।
सायंकाले गुरुश्रेष्ठं तोषयित्वा सबान्धवः॥ १०

स्वपरिग्रहसङ्गेन सुखं स्वपिति वै तदा।
नियमादि प्रकर्तव्यं पापानां विनिवर्तने॥ ११

यथासुखं व्यवहरेन्नित्यं विष्णुपरायणः।
शुचिः शुद्धमनास्तिष्ठन् पत्रावल्यां च भोजनम्॥ १२

कथासमाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती।
द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठान्नं तथैव च॥ १३

भावदुष्टं पर्युषितं जह्यान्नित्यं कथाव्रती।
वृन्ताकं च कलिङ्गं च दग्धमन्नं मसूरिकाम्॥ १४

निष्पावानामिषाद्यं च वर्जयेच्च कथाव्रती।
पलाण्डुं लशुनं हिंगुं मूलकं गृञ्जनं तथा॥ १५

नालिकामूलकूष्माण्डं नैवाद्याच्च कथाव्रती।
कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभमेव च॥ १६

दम्भं मोहं तथा द्वेषं दूरयेच्च कथाव्रती।
वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा॥ १७

स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेच्च कथाव्रती।
रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतितव्रात्यकैः सह॥ १८

द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेच्च कथाव्रती।
सत्यं शौचं दया मौनमार्जवं विनयं तथा॥ १९

उदारं मानसं तद्वत् कुर्यादेव कथाव्रती।
श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः॥ २०

वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः।
अभक्त्या ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः॥ २१

तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि।
पुराणं ये तु सम्पूज्य ताम्बूलाद्यैरुपायनैः॥ २२

कथा सुननेके पश्चात् अपनी इच्छाके अनुसार सायंकालमें पवित्र मार्गसे शौच-सम्बन्धी कार्य सम्पन्न करे, फिर बन्धु-बान्धवोंसहित सेवामें उपस्थित हो गुरुश्रेष्ठ व्यासको संतुष्ट करके अपनी स्त्रीके साथ घर जाकर पृथक् आसनपर सुखपूर्वक सोये। पापोंके निवारणके लिये शौच—संतोष आदि नियमों और ब्रह्मचर्य आदि यमोंका दृढ़ताके साथ पालन करना चाहिये। नित्य-निरन्तर भगवान् विष्णुके चिन्तनमें तत्पर रहकर वह सुखपूर्वक पूर्वोक्त नियमोंका पालन करे। कथाका व्रत लेनेवाला पुरुष पवित्र एवं शुद्ध-चित्त रहकर कथा सुने और प्रतिदिन कथा समाप्त होनेपर पत्तलमें ही भोजन करे। कथा-श्रवणकालमें दाल, मधु, तेल, गरिष्ठ अन्न, भाव-दूषित पदार्थ और वासी अन्नको कथाव्रती पुरुष प्रतिदिन त्याग दे। बैगन, कलिंग (सिरस), जला हुआ अन्न, मसूर, निष्पाव (लोबिया या सेम) तथा मांस आदिको कथाव्रती सर्वथा त्याग दे। प्याज, लहसुन, हींग, मूली, गाजर, नालिका (नाड़ीका शाक), मूल (जमीनके अन्दर पैदा होनेवाले कंद, आलू, अरवी आदि) और कुम्हड़ा—इन सबको कथा सुननेका व्रत लेनेवाला पुरुष कदापि न खाय। कथाव्रती पुरुष काम, क्रोध, मद, मान, मत्सर, लोभ, दम्भ, मोह तथा द्वेषको अपने मनसे दूर कर दे। वह वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गुरु, गोसेवक, स्त्री, राजा और महापुरुषोंकी निन्दाको सर्वथा त्याग दे। कथाव्रती रजस्वला स्त्री, अन्त्यज (चाण्डाल आदि), म्लेच्छ, पतित, गायत्रीहीन द्विज, ब्राह्मणद्रोही तथा वेदको न माननेवाले पुरुषोंसे बात न करे। नियमसे कथाका व्रत लेनेवाले पुरुषको सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता तथा विनयका पालन करना चाहिये और अपने हृदयको उदार बनाये रखना चाहिये। जो श्रद्धा और भक्तिसे सम्पन्न हो, दूसरे किसी कार्यकी लालसा न रखते हुए पवित्र, मौन और शान्तभावसे कथा सुनते हैं, वे पुण्यके भागी होते हैं। जो अधम मनुष्य भक्तिभावसे रहित होकर इस पुण्य कथाको सुनते हैं, उन्हें कभी पुण्य-फल नहीं प्राप्त होता और जन्म-जन्ममें दुःख भोगना पड़ता है। जो ताम्बूल आदि उपहारोंसे पुराणका पूजन करके

शृण्वन्ति च कथां भक्त्या दरिद्राः स्युर्न पापिनः।
कथायां कीर्त्यमानायां ये गच्छन्त्यन्यतो नराः॥ २३
भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च सम्पदः।
सोष्णीषमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति पावनीम्॥ २४
ते बलाकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः।
ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथां शृण्वन्ति पावनीम्॥ २५
स्वविष्ठां खादयन्त्येतान्नरके यमकिङ्कराः।
नार्या रजस्वलायाश्च योनितुल्यं मुखं भवेत्॥ २६
ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः।
अक्षय्यान् नरकान् भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः॥ २७
ये च वीरासनारूढा ये च शय्यासनस्थिताः।
शृण्वन्ति तत्कथां ते वै भवन्त्यर्जुनपादपाः॥ २८
असम्प्रणम्य शृण्वन्तो विषवृक्षा भवन्ति ते।
तथा शयानाः शृण्वन्तो भवन्त्यजगरा नराः॥ २९
यः शृणोति कथां वक्रः समानासनमास्थितः।
गुरुतल्पसमं पापं सम्प्राप्य नरकं व्रजेत्॥ ३०
ये निन्दन्ति पुराणज्ञान् कथां वा पापहारिणीम्।
ते वै जन्मशतं मर्त्याः शुनकाः सम्भवन्ति च॥ ३१
कथायां वर्तमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम्।
ते गर्दभाः प्रजायन्ते कृकलासास्ततः परम्॥ ३२
कदाचिदपि ये पुण्यां न शृण्वन्ति कथां नराः।
ते भुक्त्वा नरकान् घोरान् भवन्ति वनशूकराः॥ ३३
कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः।
कोट्यब्दान् नरकान् भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः॥ ३४
मध्ये वार्तां न कुर्वीत चेत् कुर्यान्निरयं व्रजेत्।
कथायां श्रूयमाणायां न कुर्याच्छिशुलालनम्॥ ३५
नर्मवादान् वदेन्नैव स्त्रिया सम्भाषणं तथा।
न कर्तव्यं प्रयत्नेन कथाविच्छेदकारणम्॥ ३६
विच्छेदेन कथायास्तु ब्रह्महत्यासमं त्वघम्।
प्राप्नोति नृपशार्दूल कथाविच्छेदकः पुमान्॥ ३७
न कुर्यात् तु कथामध्ये त्वन्यवार्ताः प्रयत्नतः।
नारी वा पुरुषो वापि कुर्यान्निरयमाप्नुयात्॥ ३८

भक्तिभावसे इस कथाको सुनते हैं, वे दरिद्र और पापी नहीं होते हैं। जो कथा होते समय उसे छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं, उनकी स्त्री और सम्पदाएँ भोगके बीचमें ही नष्ट हो जाती हैं (वह उनका पूर्णतः उपभोग नहीं कर पाता है)। जो पापी नराधम सिरपर पगड़ी रखकर इस पावन कथाको सुनते हैं, वे बगुले होते हैं। जो लोग पान खाते हुए पुराणकी पावन कथाको सुनते हैं, उन्हें यमराजके दूत नरकमें डालकर अपनी ही विष्ठा खिलाते हैं। उनका मुख रजस्वला स्त्रीकी योनिके समान हो जाता है॥ १०—२६॥ जो दम्भी मनुष्य ऊँचे आसनपर बैठकर कथा सुनते हैं, वे अक्षय नरकोंका उपभोग करके अन्तमें कौए होते हैं॥ २७॥ जो वीरासनपर आरूढ हो तथा जो शय्यारूप आसनपर बैठकर उस पुराण-कथाको सुनते हैं, वे अर्जुन नामक वृक्ष होते हैं॥ २८॥ जो कथाको प्रणाम किये बिना ही सुनते हैं, वे विषवृक्ष होते हैं। जो सोते हुए सुनते हैं, वे मनुष्य अजगर सर्प होते हैं॥ २९॥ जो वक्र स्वभाववाला मनुष्य वक्ताके समान आसनपर बैठकर कथा सुनता है, वह गुरुपत्नीगमन-तुल्य पापका भागी होकर नरकमें पड़ता है॥ ३०॥ जो लोग पुराणवेत्ताओं तथा पुराणकी पापहारिणी कथाकी निन्दा करते हैं, वे मनुष्य सौ जन्मोंतक कुत्ते होते हैं॥ ३१॥ जो कथा होते समय दूषित उत्तर-प्रत्युत्तर करते हैं, वे पहले तो गदहे होते हैं, तत्पश्चात् गिरगिटकी योनिमें जन्म पाते हैं॥ ३२॥ जो कभी भी पुराणकी पुण्यमयी कथाको नहीं सुनते हैं, वे घोर नरकोंका कष्ट भोगकर वनैले सूअर होते हैं॥ ३३॥ जो शठ कथा-कीर्तनमें विघ्न डालते हैं, वे करोड़ों वर्षोंतक नरक भोगकर अन्तमें ग्रामसूकर होते हैं॥ ३४॥ कथा सुनते समय बीचमें बातचीत न करे। यदि कोई करे तो वह नरकमें जायगा। कथा-श्रवणकालमें बच्चोंका लाड़-प्यार भी न करे॥ ३५॥ कथा होते समय हँसी-परिहासकी बातें न करे, स्त्रीके साथ वार्तालाप भी न करे। इन बातोंका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये; क्योंकि ये सब बाते कथामें विच्छेद (विघ्न) डालनेवाली हैं॥ ३६॥ राजसिंह! कथामें विच्छेद पैदा करनेसे वह कथाविच्छेदक पुरुष ब्रह्महत्याके समान पापका भागी होता है॥ ३७॥ स्त्री हो या पुरुष, कथाके बीचमें दूसरी बातें न करे और इसके लिये सदा प्रयत्नशील रहे। यदि कोई बात करता है तो वह नरकमें पड़ता है॥ ३८॥

इतिहासं वदाम्यत्र शृणुष्वैकं हि मानद।
यं श्रुत्वा न वदेद् वार्तां कथामध्ये कदाचन॥ ३९
जनस्थाने पुरा कश्चिद् ब्राह्मणो वेदपारगः।
धर्मशास्त्रेऽतिनिपुणः सदाचारपरायणः॥ ४०
गङ्गास्नानं विधायादौ कृत्वा माध्याह्निकं तथा।
कृत्वा देवार्चनं चैव श्रवणे तत्परोऽभवत्॥ ४१
तस्य भार्यातिदुष्टा च कर्कशा कलहप्रिया।
असत्यालापनिपुणा परद्वेषपरायणा॥ ४२
हृत्वा चक्रे धनस्यापि संग्रहं पापनिश्चया।
दधि दुग्धं समानीय शर्करागुडमेव च॥ ४३
घृतं च नवनीतं च स्वयमानीय सर्वदा।
एकान्ते भक्षणं चक्रे भर्तर्यन्नं प्रशुष्ककम्॥ ४४
दुराग्रहा दुष्टमनाः पतिनिन्दापरायणा।
बहुपापप्रकर्त्री च परवेश्मोपवेशिनी॥ ४५
सुभाषणं वदेन्नैव द्विषः क्षेमविधायिनी।
पंक्तिभेदं प्रकुर्वाणा सदा निष्ठुरभाषिणी॥ ४६
अतिथिषु सदा वैरकारिणी धर्मनाशिनी।
सज्जनोऽपि गुणी सौम्यस्तस्या भर्ता सुपूजितः॥ ४७
यदा भर्ता पुराणस्य श्रवणाय हि संस्थितः।
प्रत्यहं तत्र गत्वा तु तस्य निन्दां चकार ह॥ ४८
संन्यासिवत् कथं ह्यत्र श्रवणे व्यासवत् कृतः।
समुत्पन्ननिरुद्योग किं कर्तव्यं मया वद॥ ४९
शिशवो मां पीडयन्ति भक्षणाय दिने दिने।
किं तेषां च प्रकर्तव्यं भक्षणार्थं मया वद॥ ५०
नास्त्येवान्नं गृहे किञ्चिद् वस्त्रं वाप्यथवा धनम्।
किं मया च प्रकर्तव्यं कुत्र गन्तव्यमेव च॥ ५१
कथं विलिखितं दिष्टं धात्रा पापेन मे पुरा।
मूर्खश्चालस्यसंयुक्तो दरिद्रो निष्ठुरस्तथा॥ ५२
स्नेहहीनः कुटुम्बे च कथायाः श्रवणे रतः।
एतादृशः पतिर्मह्यं धात्रा दत्तो दुरात्मना॥ ५३

मानद! इस विषयमें मैं एक इतिहास बताता हूँ, इसे सुनो। इसे सुन लेनेपर कोई भी मनुष्य कभी कथाके बीचमें वार्तालाप नहीं कर सकता॥ ३९॥ प्राचीन कालकी बात है, जनस्थानमें कोई ब्राह्मण रहते थे, जो वेदोंके पारङ्गत विद्वान् थे। वे धर्मशास्त्रमें अत्यन्त निपुण तथा सदाचारमें तत्पर रहनेवाले थे॥ ४०॥ वे प्रतिदिन पहले गङ्गा-स्नान और मध्याह्न-संध्या-वन्दन आदि करके देवपूजन करनेके पश्चात् कथा-श्रवणमें प्रवृत्त होते थे॥ ४१॥ उनकी स्त्री बड़ी दुष्ट और कर्कशा थी। सदा कलह करना ही उसे प्रिय लगता था। वह झूठ बोलनेमें निपुण थी और दूसरोंसे द्वेष करनेमें ही लगी रहती थी॥ ४२॥ वह पापपूर्ण निश्चयवाली नारी चोरी-चोरी धनका भी संग्रह करने लगी। वह स्वयं दही, दूध, शक्कर, गुड़-घी और माखन खरीद लाती और एकान्तमें बैठकर अकेली ही खाती थी। पतिको केवल रूखा-सूखा अन्न परोस दिया करती थी॥ ४३-४४॥ उसका स्वभाव दुराग्रही था, मनमें दुष्टता भरी रहती थी। वह सदा अपने पतिकी निन्दामें ही लगी रहनेवाली और पाप करनेवाली थी, प्रायः दूसरेके घरमें ही बैठी रहती थी॥ ४५॥ वह अच्छी बात तो कभी बोलती ही नहीं थी। जो पतिके द्वेषी थे, उन्हींका वह भला किया करती थी। भोजनमें सदा पंक्तिभेद करती थी—किसीको कुछ परोसती और किसीको कुछ। सदा निष्ठुर बात ही बोलती थी॥ ४६॥ अतिथियोंसे सदा वैर रखती और धर्मका नाश करती थी। उसके पति बड़े सज्जन, गुणवान्, सौम्य तथा सर्वत्र सम्मानित होनेवाले थे॥ ४७॥ जब उसके पति प्रतिदिन पुराण सुननेके लिये बैठते, तब वहाँ जाकर वह उनकी निन्दा करने लगती थी— ॥ ४८॥ 'संसारमें पैदा होकर भी जीवन-निर्वाहके लिये कोई उद्योग न करनेवाले आलसी! यहाँ संन्यासीकी तरह कथा सुनने कैसे बैठे हो? तुम तो यहाँ आकर व्यासबाबा बन गये, अब मुझे बताओ, मैं क्या करूँ?॥ ४९॥ 'बच्चे प्रतिदिन भोजनके लिये मुझे तंग करते रहते हैं; बताओ, मैं उनके खानेके लिये क्या प्रबन्ध करूँ?'॥ ५०॥ 'मेरे घरमें न तो मुट्ठीभर अन्न है, न वस्त्र है और न धन ही है। मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?'॥ ५१॥ 'न जाने पापी विधाताने पूर्वकालमें मेरा भाग्य कैसा लिख दिया? दुरात्मा ब्रह्माने मुझे ऐसा पति दिया, जो मूर्ख, आलसी, दरिद्र और निष्ठुर है। इसका अपने कुटुम्बपर तनिक भी स्नेह नहीं हैं। यह सिर्फ कथा सुननेमें लगा रहता है॥ ५२-५३॥

पृथिव्यां दुर्भगैकाहं दरिद्रगृहमागता।
उदरापूर्तिमात्रं हि नान्नं मे भक्षितं कदा॥ ५४
सौभाग्यास्ता: स्त्रियो लोके यासामुद्योगशालिन:।
पतयो धनधान्यादिसमृद्धिपरिशोभिता:॥ ५५
ते वै स्त्रीणां वाक्यकरा: शिशुपालनतत्परा:।
नित्यं गृहेषु तिष्ठन्ति स्त्रीणां संतोषकारका:॥ ५६
सदन्नभक्षणात् पुष्टा भार्याज्ञापरिपालका:।
व्यवसायं च भार्याणां कुर्वन्ति बुद्धिशालिन:॥ ५७
अयं मूर्खश्च जडधीरुपेक्षां कुरुते गृहे।
अद्य तैलं गृहे नास्ति चेन्धनं लवणं तथा॥ ५८
शाकश्च मम नास्त्येव धान्यलेशो न मद्गृहे।
किं मया तु प्रकर्तव्यं पतिरेतादृशो मम॥ ५९
कथायां श्रूयमाणायां पत्या सन्मार्गमूर्तिना।
धान्यादौ विद्यमानेऽपि मिथ्याभाषणतत्परा॥ ६०
कथाविघ्नं चकारासौ कर्कशा सा दिने दिने।
तत: कालेन मरणं प्राप्ता सा दुष्टमानसा॥ ६१
यमदूतैस्तु बद्ध्वा सा नीता च यममन्दिरे।
ततो यमाज्ञया तैस्तु नरके पातिता चिरम्॥ ६२
पश्चात् सा राक्षसी जाता भैरवे जलवर्जिते।
अरण्ये क्षुत्तृषायुक्ता पूर्वपापप्रभावत:॥ ६३
तस्माद् विघ्नं न कर्तव्यं भार्यया पुरुषेण वा।
श्रीहरे: सत्कथायास्तु तव सत्यं वदाम्यहम्॥ ६४
मीनालिनो महिषहंसबकस्वभावा
मार्जारकाकवृककंकजलौकतुल्या:।
सच्छिद्रकुम्भजलसिन्धुशिलोपमाश्च
ते श्रावकाश्च सुचतुर्दशधा भवन्ति॥ ६५
दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्य: पापकर्मवान्।
अनपत्यो मोक्षकाम: शृणुयात् स कथामिमाम्॥ ६६
अपुष्पा काकवन्ध्या च वन्ध्या या च मृतार्भका।
स्त्रवद्गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नत:॥ ६७

'इस पृथ्वीपर एकमात्र मैं ही ऐसी अभागिनी हूँ, जो इस दरिद्रके घरमें आ गयी। यहाँ आकर कभी मैंने भरपेट भोजन भी नहीं किया॥ ५४॥ संसारमें वे ही स्त्रियाँ सौभाग्यशालिनी हैं, जिनके पति उद्योगशील हैं, धन-धान्य आदिकी समृद्धिसे सुशोभित हैं॥ ५५॥ 'वे अपनी स्त्रियोंकी आज्ञा मानते हैं, बच्चोंके लालन-पालनमें तत्पर रहते हैं, सदा घरमें रहते हैं और स्त्रियोंको संतुष्ट रखते हैं॥ ५६॥ 'वे उत्तम अन्न खाकर पुष्ट होते हैं, पत्नीकी आज्ञाका पालन करते हैं, बुद्धिशाली हैं और पत्नियोंका जैसा निश्चय होता है, वैसा ही वे करते हैं॥ ५७॥ 'यह मेरा पति तो मूर्ख और जडबुद्धि है, घरके प्रति उपेक्षाका भाव रखता है। आज घरमें न नमक है, न तेल है और न लकड़ी ही है'॥ ५८॥ 'साग भी मेरे घरमें नहीं है। अनाज तो लेशमात्र भी नहीं है। क्या करूँ? मेरा पति ऐसा आलसी है'॥ ५९॥ सन्मार्गके मूर्तिरूप पतिके कथा सुनते समय वह घरमें अनाज आदिके रहते हुए भी वहाँ आकर इस प्रकार मिथ्या भाषण किया करती थी॥ ६०॥ वह कर्कशा स्त्री प्रतिदिन इसी तरह कथामें विघ्न डाला करती थी। उसका हृदय दुष्टतासे भरा था। तदनन्तर काल आनेपर उसकी मृत्यु हो गयी॥ ६१॥ यमराजके दूत आये और उसे बाँधकर यमराजके घर ले गये। वहाँ यमकी आज्ञासे उन्होंने उसे चिरकालके लिये नरकमें गिरा दिया॥ ६२॥ नरकसे छूटनेपर वह पूर्व पापके प्रभावसे ही भयानक वनमें, जहाँ पानीका सर्वथा अभाव था, राक्षसी हुई और भूख-प्याससे पीड़ित रहने लगी॥ ६३॥ अत: स्त्री हो या पुरुष, किसीको भी श्रीहरिकी उत्तम कथामें विघ्न नहीं डालना चाहिये। यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ॥ ६४॥ वे भले-बुरे श्रोता चौदह प्रकारके होते हैं—मीन, भ्रमर, महिष, हंस, बक, मार्जार, काक, वृक, कङ्क, जोंक, छिद्रयुक्त घट, जल, सिन्धु और शिला। इनके समान स्वभाववाले होनेके कारण वे इन्हीं नामोंसे कहे गये हैं॥ ६५॥ दरिद्र, क्षयका रोगी, अन्य किसी रोगसे पीड़ित, भाग्यहीन, पापाचारी, संतानहीन तथा मुमुक्षु पुरुष इस हरिवंशकथाको अवश्य सुने॥ ६६॥ जिस स्त्रीका मासिक धर्म रुक गया हो, जिसके एक ही संतान होकर रह गयी हो, जिसके बच्चे होते ही न हों, जिसके बच्चे पैदा होकर मर जाते हों तथा जिसका गर्भ गिर जाता हो, उस स्त्रीको प्रयत्नपूर्वक इस हरिवंशकथाका श्रवण करना चाहिये॥ ६७॥

सुपुत्रं लभते राजन् व्यासस्य वचनं यथा।
सर्वान् कामानवाप्नोति कथां श्रुत्वा हरेरिमाम्॥ ६८

राजन्! नारी यह कथा सुनकर उत्तम पुत्र प्राप्त कर लेती है। जैसा कि व्यासजीका वचन है। श्रीहरिकी इस कथाको सुनकर मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको पा लेता है॥ ६८॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

इस प्रकार श्रीपद्मपुराणमें हरिवंशमाहात्म्यके अन्तर्गत कथा-श्रवण आदिकी विधिका वर्णनविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पञ्चमोऽध्यायः

हरिवंशके नवाह-पारायणका उद्यापन, उसमें किये जानेवाले दान, पुस्तकपूजा और वाचक-पूजन आदिका विधान एवं माहात्म्य

वैशम्पायन उवाच

एवं कृत्वा व्रतविधिमुद्यापनमथाचरेत्।
जन्माष्टमीव्रतमिव कर्तव्यं फलकाङ्क्षिभिः॥ १

अकिञ्चनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनग्रहः।
श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामा वैष्णवा यतः॥ २

एवं नवाहयज्ञेऽस्मिन् समाप्ते श्रोतृभिस्तदा।
पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्यातिभक्तितः॥ ३

प्रसादतुलसीमाला श्रोतृभ्यश्चाथ दीयताम्।
मृदङ्गतालललितं कीर्तनं कीर्त्यतां ततः॥ ४

जयशब्दो नमःशब्दः शङ्खशब्दश्च गीयताम्।
विप्रेभ्यो याचकेभ्यश्च वित्तमन्नं च दीयताम्॥ ५

श्रवणान्ते हरेर्मूर्तिः सश्रीकस्य प्रदीयताम्।
सुवर्णस्य कृता सम्यग्लक्ष्म्यङ्का पलमानतः॥ ६

समाप्तौ विधिवद् वस्त्रं क्षौमं दद्याच्च वाचके।
विशेषोऽयं समुद्दिष्टो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ७

समाप्य सर्वं प्रयतः संहिताशास्त्रकोविदः।
शुभे दिने निवेश्याथ क्षौमवस्त्राभिसंवृतः॥ ८

शुक्लाम्बरधरस्तत्र शुचिर्भूत्वा स्वलंकृतः।
अर्चयेत् तु यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक्पृथक्॥ ९

संहितापुस्तकं तत्र प्रयतः सुसमाहितः।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्चापूपैश्च कौतुकैर्विविधैः शुभैः॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार व्रतकी विधि पूर्ण करके उसका उद्यापन करे। उत्तम फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको जन्माष्टमीव्रतके समान इसका उद्यापन करना चाहिये॥ १॥ जो अकिंचन भक्त हैं, उनके लिये प्रायः उद्यापनका आग्रह नहीं है। वे कथा-श्रवणमात्रसे ही शुद्ध हो जाते हैं; क्योंकि वे निष्काम वैष्णव हैं॥ २॥ इस प्रकार नवाह-यज्ञ पूर्ण होनेपर श्रोताओंको बड़ी भक्तिके साथ पुस्तक तथा कथावाचककी पूजा करनी चाहिये और वक्ताको उचित है कि वह श्रोताओंको प्रसाद और तुलसीकी माला दे। तत्पश्चात् मृदंग बजाकर तालस्वरके साथ कीर्तन किया जाय, जय-जयकार और नमस्कार शब्दके साथ शङ्खोंकी ध्वनि हो तथा ब्राह्मण और याचकोंको अन्न और धन दिया जाय॥ ३—५॥ कथा श्रवणके अन्तमें एक पल सुवर्णकी बनी हुई लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुकी मूर्ति, जो श्रीवत्सचिह्नसे अङ्कित हो, वाचकके लिये देनी चाहिये॥ ६॥ कथा समाप्त होनेपर वाचकको विधिपूर्वक रेशमी वस्त्र भी देना चाहिये। तत्त्वदर्शी मुनियोंने यह विशेष बात बतायी है॥ ७॥ संहिताशास्त्रका विद्वान् वाचक पवित्र हो सम्पूर्ण हरिवंशको समाप्त करके शुभ दिनमें पुस्तकको सिंहासनपर स्थापितकर रेशमी वस्त्र ओढ़ श्वेत वस्त्र धारण करके पवित्र एवं विभूषित हो गन्ध, माल्य आदि पृथक्-पृथक् उपचारोंसे संहिता-पुस्तककी यथोचितरूपसे पूजा करे। उस समय चित्त शुद्ध एवं एकाग्र होना चाहिये। भक्ष्य, भोज्य और पुआ आदि नैवेद्यों तथा नाना प्रकारके शुभ कौतुकोंद्वारा उस पूजनकर्मको सम्पन्न करना चाहिये॥ ८—१०॥

हिरण्यमन्यद् द्रव्यं च दक्षिणां तत्र दापयेत्।
ये श्रावयन्ति मनुजान् पुण्यां पौराणिकीं कथाम्॥ ११
कल्पकोटिशतं साग्रं यान्ति ते ब्रह्मणः पदे।
आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः॥ १२
कम्बलाजिनवासांसि मञ्चाफलकमेव च।
स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान्॥ १३
स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम्।
पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये सूत्रवसनं नवम्॥ १४
भोगिनो ज्ञानसम्पन्नास्ते भवन्ति भवे भवे।
ये महापातकैर्युक्ता उपपातकिनश्च ये॥ १५
पुराणश्रवणादेव ते यान्ति परमं पदम्।
हरिवंशं लिखित्वा यो वाचकाय प्रदापयेत्॥ १६
यत् फलं भूमिदानस्य तत् फलं लभते हि सः।
राजसूयेन तेनेष्टमश्वमेधेन वै नृप॥ १७
दत्तानि सर्वदानानि हरिवंशे श्रुतेऽखिले।
राजसूयाश्वमेधाद्या यज्ञाश्चैव युगे युगे॥ १८
श्रवणं हरिवंशस्य कलौ यज्ञफलप्रदम्।
श्रद्धावानास्तिको दान्तो हरिवंशं यदारभेत्॥ १९
पातकानि प्रकम्पन्ते प्रत्यूहानि ज्वलन्ति च।
समारभ्य नयेत् पारं हरिवंशं य आदितः॥ २०
स्पर्शनाद् दर्शनात् तस्य विष्णुर्दृष्टो भवेन्नृप।
जन्मत्रयस्य निकषः पातकस्य क्षयो ध्रुवम्॥ २१
फलाप्तिश्च समाप्तौ च हरिवंशस्य बुद्ध्यते।
श्रोतुर्भारत विज्ञेयं पूर्वं सुकृतिलक्षणम्॥ २२
येन संजायते बुद्धिर्हरिवंशावधारणे।
सर्वाणि च पुराणानि वेदाश्च स्मृतयस्तथा॥ २३
हरिवंशेन बद्धार्था व्यासेन च महर्षिणा।
श्रुतिस्मृतिपुराणानां निन्दकेभ्यः कथंचन॥ २४
पापिभ्यश्च महाराज श्रावयेन्नैव वाचकः।
श्रुत्वा तुष्टेन मनसा वाचकं परिपूजयेत्॥ २५
दान्तं यशस्विनं कान्तं शुचिं स्पष्टाक्षरब्रुवम्।
त्रिशुक्लमाचारपरमक्रोधनमवादिनम्॥ २६

यजमान वहाँ सुवर्ण तथा अन्य द्रव्योंको दक्षिणा-रूपसे दे। जो लोग अपने यहाँ आयोजन करके लोगोंको पुण्यमयी पौराणिक कथा सुनवाते हैं, वे सौ कोटि कल्पोंसे अधिक कालतक ब्रह्मधाममें विराजते हैं। जो मानव पुराणवेत्ता वाचकको आसनके लिये कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, शय्या और चौकी आदि प्रदान करते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाकर मनोवाञ्छित भोगोंका उपभोग करके ब्रह्मा आदिके लोकोंमें निवास करते हुए अन्ततोगत्वा निरामय पद (वैकुण्ठ-धाम)-को प्राप्त होते हैं। जो पुराणके वेष्टनके लिये नया सूती वस्त्र देते हैं, वे जन्म-जन्ममें भोग और ज्ञानसे सम्पन्न होते हैं। जो महापातकों और उपपातकोंसे युक्त हैं, वे भी इस पुराणके श्रवणमात्रसे परमपदको प्राप्त कर लेते हैं। जो हरिवंशको लिखकर उसका वाचकको दान करता है, उसे भूमिदानका फल प्राप्त होता है। नरेश्वर! जिसने सारा हरिवंश सुन लिया, उसने राजसूय और अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान कर लिया तथा सम्पूर्ण दान दे दिये। राजसूय और अश्वमेध आदि यज्ञ प्रत्येक युगमें केवल अपना फल देते हैं, परंतु हरिवंशका श्रवण कलियुगमें समस्त यज्ञोंका फल देनेवाला है। श्रद्धालु, आस्तिक एवं जितेन्द्रिय पुरुष जब हरिवंश आरम्भ करता है, तब सारे पातक काँपने लगते हैं और समस्त विघ्न जल जाते हैं। नरेश्वर! जो हरिवंशकी कथाको आदिसे आरम्भ करके अन्ततक पहुँचा देता है, उसके दर्शन और स्पर्शसे भगवान् विष्णुका ही दर्शन और स्पर्श हुआ ऐसा मानना चाहिये। हरिवंशकी समाप्ति होनेपर श्रोताके तीन जन्मोंके पातकोंका निश्चय ही नाश हो जाता है और अभीष्ट फलकी प्राप्तिका भी बोध होता है, यही इसकी सफलताकी कसौटी है। भरतनन्दन! यह श्रोताके पूर्व पुण्यका लक्षण समझना चाहिये, जिससे उसके मनमें हरिवंश सुननेका विचार उत्पन्न होता है। महर्षि व्यासने समस्त पुराणों, वेदों और स्मृतियोंके भावोंको हरिवंशके साथ बाँध रखा है। महाराज! वाचकको उचित है कि वह श्रुतियों, स्मृतियों और पुराणोंके निन्दकोंको तथा पापियोंको किसी तरह कथा न सुनाये। कथा सुनकर श्रोता संतुष्ट चित्तसे जितेन्द्रिय, यशस्वी, कान्तिमान्, पवित्र, अक्षरोंका सुस्पष्ट उच्चारण करनेवाले, जन्म, विद्या और संस्कार तीनोंसे शुद्ध, सदाचारपरायण, क्रोधहीन और वाद-विवादसे रहित वाचककी पूजा करे॥ ११—२६॥

ग्रामं दद्यात् सुवसितं कुण्डलोष्णीषमालिकाम्।
पादुकोपानहौ छत्रं सवितानं मसूरिकाम्॥ २७

एवं कृत्वा तु विधिवद् वाचकाय प्रदापयेत्।
यानं वार्षं हयगजौ क्षौमं मणिमयासनम्॥ २८

पञ्च भाण्डानि ताम्रस्य ताम्रस्यैवाम्बुभाजनम्।
सकुटुम्बं च सस्त्रीकं वाचकं परया मुदा॥ २९

विभूषणैरलंकृत्य परिधाप्य सुवाससी।
कृष्णद्वैपायनं ध्यायन् नमस्कुर्वीत भावतः॥ ३०

वाचके परितुष्टे तु तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः।
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं हरिवंशफलेप्सुभिः॥ ३१

प्रदेया गौः शुभा चैका सवत्सा हेमपूरिता।
पलेन च पलार्धेन तदर्धं वाथ वा पुनः॥ ३२

वाचकं येन केनापि तोषयेत् सुसमाहितः।
तुष्टे तु वाचके राजंस्तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः॥ ३३

तुष्टेषु सर्वदेवेषु कार्यं तु सफलं भवेत्।
हरिवंशे समाप्ते तु वाचके परिपूजिते॥ ३४

ऋणत्रयेण मुक्ताः स्युस्ते नरा जनमेजय।
मोदन्ते पितरस्तेषां लोकान् प्राप्याक्षयान् नृप॥ ३५

हरिवंशस्य प्रारम्भे समाप्तौ चैव तैः सह।
सर्वान् कामानवाप्नोति विपाप्मा जायते नरः॥ ३६

एवं कृते विधाने तु प्रजां प्राप्नोति मानवः।
धनमारोग्यमायुष्यं सौभाग्यं गुणगौरवम्॥ ३७

प्राप्नोति मनुजः सम्यङ्नात्र कार्या विचारणा॥ ३८

उसे भलीभाँति बसा हुआ ग्राम दे, कुण्डल, पगड़ी और माला अर्पित करे, खड़ाऊँ, जूता, छाता, चँदोवा और मसहरी—इन सबको एकत्र करके विधिपूर्वक वाचकको अर्पित करे। साथ ही बैलगाड़ी, घोड़ा, हाथी, रेशमी वस्त्र और मणिमय आसन, ताँबेके पाँच बर्तन तथा ताँबेका ही जलपात्र दे। पत्नी और कुटुम्बसहित वाचकको बड़ी प्रसन्नताके साथ आभूषणोंद्वारा अलंकृत करके उन्हें दो सुन्दर वस्त्र पहनाये और श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीका चिन्तन करते हुए उन्हें भक्तिभावसे नमस्कार करे॥ २७—३०॥ वाचकके संतुष्ट होनेपर सम्पूर्ण देवता संतुष्ट हो जाते हैं, अतः हरिवंशके फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको धन खर्च करनेमें कंजूसी नहीं करनी चाहिये॥ ३१॥ एक, आधे या चौथाई पल सुवर्णके साथ बछड़ेसहित एक सुन्दर गौ भी वाचकको देनी चाहिये॥ ३२॥ राजन्! जिस किसी उपायसे सम्भव हो, एकाग्रचित्त हो वाचकको संतुष्ट करे। वाचकके संतुष्ट होनेपर सम्पूर्ण देवता संतुष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण देवताओंके संतुष्ट होनेपर यजमानका कार्य सफल होता है। जनमेजय! हरिवंश समाप्त होनेपर वाचककी भलीभाँति पूजा कर लेनेके पश्चात् मनुष्य तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाते हैं। नरेश्वर! उनके पितर अक्षय लोकोंमें पहुँचकर आनन्द भोगते हैं॥ ३३—३५॥ हरिवंशका आरम्भ करके उसकी पूर्ति हो जानेपर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और अपने उन पितरोंके साथ सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है॥ ३६॥ इस प्रकार विधि-विधानका पालन करनेपर मनुष्य उत्तम संतान तो पाता ही है, धन, आरोग्य, आयु, सौभाग्य, गुणजनित गौरवको भी भलीभाँति प्राप्त कर लेता है। इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये॥ ३७-३८॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

इस प्रकार श्रीपद्मपुराणमें हरिवंशमाहात्म्यके अन्तर्गत श्रवण आदि विधिका वर्णनविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

षष्ठोऽध्यायः

हरिवंश आरम्भ करनेके लिये उत्तम मास, तिथि, नक्षत्र आदिका निर्देश, देवपूजन, व्यासपूजन तथा कथा-समाप्तिपर दी जानेवाली दक्षिणा एवं दान आदिका उल्लेख तथा श्रवणका माहात्म्य

जनमेजय उवाच

प्रारम्भस्तु कथं कार्यः कथं पूजाविधिः स्मृतः।
कथं विसर्जयेद् व्यासं कथं सम्यक् फलं लभेत्॥ १
एतत् सर्वं समाचक्ष्व विस्तरान्मुनिसत्तम।

वैशम्पायन उवाच

शृणु राजन् यथा वन्ध्या संततिं लभते ध्रुवम्॥ २
वैशाखे माघ ऊर्जे च अन्यस्मिञ्छुभमासके।
शुक्लपक्षे तिथौ पूर्णानन्दाभद्राजयासु च॥ ३
वारे गुरौ तथा शुक्रे चन्द्रे चन्द्रात्मजे तथा।
नक्षत्रे श्रवणे हस्ते पुष्ये मूले पुनर्वसौ॥ ४
वासवे तुहिनांशौ च पौष्णे च हयतारके।
सौभाग्यादिषु योगेषु करणे विष्टिवर्जिते॥ ५
श्रोतुश्चाथापि वक्तुश्च चन्द्रे च बलशालिनि।
पूर्वाह्णे चापि मध्याह्ने प्रारम्भः क्रियते बुधैः॥ ६
आदौ लम्बोदरः पूज्यः कलशस्तु ततः परम्।
श्रीखण्डागुरुकर्पूरकुङ्कुमामोदलेपनैः॥ ७
पङ्कजैश्चम्पकैरन्यैर्जातीपुष्पैः सुगन्धिभिः।
तुलसीबिल्वधात्रीणां पत्रैरन्यैर्नवाङ्कुरैः॥ ८
धूपैर्दीपैश्च विविधैर्नारिकेलफलादिभिः।
ताम्बूलैर्मुखवासैश्चाखण्डितैः शुक्लतण्डुलैः॥ ९
चामरैर्व्यजनैश्चैव घण्टावाद्यादिभिस्तथा।
प्रत्यहं पूजयेद् देवं यावद् ग्रन्थः समाप्यते॥ १०
लत्तादिदोषरहिते वारे च शुभसंज्ञके।
समर्पयेत् पुराणं तु ततः पूजां समाचरेत्॥ ११
प्रारम्भे च यथा पूजा तथा कार्या विसर्जने।
चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमैर्गन्धकादिभिः॥ १२

जनमेजयने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! हरिवंशका प्रारम्भ कैसे करना चाहिये? उसकी पूजाका विधान किस प्रकार बताया गया है? व्यासका विसर्जन कैसे करे? और किस प्रकार उत्तम फलकी प्राप्ति सम्भव है? यह सब विस्तारपूर्वक बताइये॥ १$\frac{1}{2}$॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! जिस प्रकार कथा सुननेसे वन्ध्या स्त्री निश्चय ही संतान प्राप्त कर लेती है, वह विधि बताता हूँ, सुनो—वैशाख, माघ, कार्तिक अथवा दूसरे किसी शुभ मासमें, शुक्लपक्षमें, पूर्णा (५, १०, १५), नन्दा (१, ६, ११), भद्रा (२, ७, १२), तथा जया (३, ८, १३) तिथियोंमें, बृहस्पति, शुक्र, सोम तथा बुधवारको, श्रवण, हस्त, पुष्य, मूल, पुनर्वसु, धनिष्ठा, मृगशिरा, रेवती और अश्विनी नक्षत्रोंमें, सौभाग्य आदि शुभ योगों तथा विष्टिरहित करणोंमें, वक्ता और श्रोताके चन्द्रमा जब बलिष्ठ हों, उस समय पूर्वाह्ण अथवा मध्याह्नकालमें विद्वान् पुरुष हरिवंश-कथाका आरम्भ करते हैं॥ २—६॥ पहले गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये, तत्पश्चात् कलशकी। चन्दन, अगर, कपूर, कुंकुम, गन्ध, अनुलेपन, कमल, चम्पा, सुगन्धित चमेलीके फूल, तुलसीदल, बिल्वपत्र, आँवलेके पत्ते, दूर्वा आदिके नूतन अंकुर, धूप, दीप, नारियलके फल आदि विविध नैवेद्य, मुखको सुवासित करनेवाले ताम्बूल, अखण्ड श्वेत तण्डुल, चँवर, व्यजन तथा घंटा-वाद्य आदि उपकरणोंसे श्रोता प्रतिदिन तबतक भगवान्‌का पूजन करता रहे, जबतक कि ग्रन्थ समाप्त न हो जाय॥ ७—१०॥ लत्ता[1] आदि दोषोंसे रहित शुभ दिनको हरिवंशपुराण वक्ताके हाथमें समर्पित करे। तदनन्तर प्रारम्भिक पूजा आरम्भ करे॥ ११॥ कथाके आरम्भमें जैसी पूजा की जाय, उसके विसर्जनमें भी वैसी ही पूजा करनी चाहिये। चन्दन, अगर, कपूर, रोली और गन्ध आदिसे पूजन सम्पन्न करे॥ १२॥

१. सूर्य, पूर्णचन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु ग्रह क्रमशः अपने आश्रित नक्षत्रसे आगे और पीछे १२, २२, ३, ७, ६, ५, ८ तथा नवें दैनिक नक्षत्रको लातोंसे दूषित करते हैं, इसलिये इसका नाम लत्ता दोष है। इनमें सूर्य अपनेसे आगे और पूर्णचन्द्र पीछे, फिर मंगल आगे और बुध पीछे, गुरु आगे और शुक्र पीछे तथा शनि आगे और राहु पीछेके नक्षत्रोंको दूषित करते हैं।

गीतवादित्रनृत्यैश्च राजन् कार्यो महोत्सवः।
ततः पुराणपूजायां यथा दानं तथा शृणु॥ १३

अष्टादशशतं दानं पुराणाय समर्पयेत्।
अभावे द्वादशशतं पूजा वै जनमेजय॥ १४

तदभावेऽपि राजेन्द्र षट्शतं परिकीर्तितम्।
उत्तमं मध्यमं दानमधमं च प्रकीर्तितम्॥ १५

सपत्नीकं ततो व्यासं दुकूलैरंशुकैर्नवैः।
पूजयेत् सर्वभावेन स सम्यक् फलमश्नुते॥ १६

परिधेयानि देयानि कुण्डलानि शुभानि च।
मुकुटाद्यैरलंकृत्य केयूराङ्गदभूषणैः॥ १७

गावस्तु कपिला देयाः सवत्सा गर्भसंयुताः।
यानमश्वादिकं राजन् दासीदासान् समर्पयेत्॥ १८

आसनं पुरुषव्याघ्र धूपदीपादि भाजनम्।
शय्या तूलादिकं सर्वं सोपधानं सलड्डुकम्॥ १९

स्थाली पीठादिकं राजञ्जलपात्रं तथैव च।
अन्नं च बहु दातव्यं लवणं जनमेजय॥ २०

घृततैलादिकं राजन् यावद् वर्षं समाप्यते।
एतत् सर्वं द्विजेन्द्राय व्यासासनगताय च॥ २१

मनोऽभीष्टं वरं लब्ध्वा ततः कुर्यात् प्रदक्षिणाम्।
पारणान्ते तु राजेन्द्र द्विजेन्द्रं रुद्रजापिनम्॥ २२

वस्त्रादिभिरलंकृत्य मुद्रिकाभिस्तथैव च।
नवीनं कम्बलं शुभ्रं ताम्रपात्रं तथैव च॥ २३

द्विजं द्विजं समुद्दिश्य दातव्या दक्षिणा बहु।
ततोऽभिषेकसंयुक्तं गुरुं चैव पुरोधसम्॥ २४

वस्त्रादिभिरलंकृत्य दक्षिणाभिश्च तोषयेत्।
ततोऽन्यान् ब्राह्मणान् सर्वान् दक्षिणाभिः समर्चयेत्॥ २५

हवनं च तथा राजन् कर्तव्यं कर्मशान्तये।
प्रतिश्लोकं च जुहुयाद् दशांशेनैव वा पुनः॥ २६

पायसं मधु सर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम्।
अथवा हवनं कुर्याद् गायत्र्या सुसमाहितः॥ २७

राजन्! फिर गीत, वाद्य और नृत्यके द्वारा महान् उत्सव करना चाहिये। तदनन्तर पुराणपूजामें जैसा दान बताया गया है, वैसा सुनो॥ १३॥ जनमेजय! पुराणके लिये अठारह सौ रुपयेकी दक्षिणा समर्पित करे। उसके अभावमें बारह सौ रुपयेकी पूजा चढ़ाये। राजेन्द्र! उतना भी न बन सके तो कम-से-कम छः सौ रुपयेकी दक्षिणा बतायी गयी है। यह क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणीका दान कहा गया है॥ १४-१५॥ तत्पश्चात् नूतन वस्त्रोंद्वारा पत्नीसहित व्यासका सम्पूर्ण भावसे पूजन करे। ऐसा करनेसे यजमानको उत्तम फलकी प्राप्ति होती है॥ १६॥ वाचकको केयूर और अंगद आदि आभूषणों तथा मुकुट आदिसे अलंकृत करके उन्हें पहिनने योग्य सुन्दर कुण्डल भी देने चाहिये॥ १७॥ बछड़ेसहित तथा गर्भवती कपिला गौओंका भी दान करना चाहिये। राजन्! पुरुषसिंह जनमेजय! यजमान वाचकको अश्व आदि वाहन और दास-दासी भी समर्पित करे। आसन, धूप, दीप आदि वस्तुएँ, पात्र, शय्या, गद्दा-रजाई आदि, तकिया, लड्डू, बटलोई, पीढ़ा आदि, जलपात्र, बहुत-सा अन्न, नमक तथा घी, तेल आदि सामग्री भी, जो एक वर्षतक अँट सके, वाचककी सेवामें दे। ये सारी वस्तुएँ व्यासासनपर विराजमान हुए द्विजराज वक्ताको भेंट करनी चाहिये॥ १८—२१॥ फिर वाचकसे मनोवाञ्छित वर पाकर यजमान उनकी परिक्रमा करे। राजेन्द्र! पारणा पूरी होनेपर रुद्रमन्त्रका जप करनेवाले द्विजराजको वस्त्र आदि तथा मुद्रिकाओंसे अलंकृत करके उसे नवीन कम्बल और सुन्दर ताम्रपात्र दे॥ २२-२३॥ प्रत्येक द्विजके उद्देश्यसे बहुत-सी दक्षिणा देनी चाहिये। तत्पश्चात् अभिषेकयुक्त गुरु और पुरोहितको वस्त्र आदिसे विभूषित करके दक्षिणाओंसे संतुष्ट करे। तदनन्तर अन्य सब ब्राह्मणोंको भी दक्षिणा देकर उनका सत्कार करे। राजन्! कर्मकी शान्तिके लिये होम भी करना चाहिये। ग्रन्थके प्रत्येक श्लोकसे खीर, मधु, घी, तिल और अन्न आदिसे युक्त हवनसामग्रीकी आहुति दे अथवा ग्रन्थमें जितने श्लोक हों, उनके दशांशसे ही हवन करे अथवा एकाग्रचित्त होकर गायत्रीमन्त्रसे हवन करे;

तन्मयत्वात् पुराणस्य परमस्यास्य तत्त्वतः।
होमाशक्तौ बुधो हेम दद्यात् तत्फलसिद्धये॥ २८

नानाच्छिद्रनिरोधार्थं न्यूनताधिकताख्ययोः।
दोषयोः प्रशमार्थं च पठेन्नामसहस्रकम्॥ २९

तेन स्यात् सफलं सर्वं नास्त्यस्मादधिकं यतः।
भोजयेन्मिथुनान्येव चतुर्विंशतिमादरात्॥ ३०

ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलंकृत्य द्विजोत्तमान्।
तोषयेद् दक्षिणाहेमैर्धान्यै रत्नादिभिस्तथा॥ ३१

भुक्तवत्सु च विप्रेषु यथावत् समया च तान्।
वाचकं भरतश्रेष्ठ भोजयित्वा स्वलंकृतम्॥ ३२

सपत्नीकं च संतोष्य वस्त्रालङ्करणादिभिः।
ब्राह्मणेषु प्रसन्नेषु प्रसन्नास्तस्य देवताः॥ ३३

वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा।
दद्यात् सुवर्णं धेनुं च व्रतपूर्णत्वसिद्धये॥ ३४

शक्तौ पलत्रयमितं स्वर्णसिंहं विधाय च।
तत्रास्य पुस्तकं स्थाप्य लिखितं ललिताक्षरम्॥ ३५

सम्पूज्यावाहनाद्यैश्च उपचारैः सदक्षिणैः।
वस्त्रभूषणगन्धाद्यैः पूजिताय महात्मने॥ ३६

आचार्याय सुधीर्दत्त्वा मुक्तः स्याद् भवबन्धनैः।
एवं कृते विधाने च सर्वपापनिवारणे॥ ३७

फलदं स्यात् पुराणं तु सर्वकामार्थसिद्धिदम्।
अनेन विधिना राजन् यः पुराणं समापयेत्॥ ३८

तस्य स्त्री लभते गर्भं मासेनैकेन भारत।
अनेन विधिना राजन् व्यासं यस्तु समर्चयेत्॥ ३९

पूजयेद् दानमानाभ्यां तस्य स्त्री गर्भिणी भवेत्।
यन्मया विविधं प्रोक्तं भक्तिपूजादिकं पुनः॥ ४०

तत् कृत्वा लभते नारी पुत्रं भास्करतेजसम्।
तथा वन्ध्या लभेद् गर्भं व्यासस्य वचनं यथा॥ ४१

क्योंकि वास्तवमें यह उत्कृष्ट पुराण गायत्रीमन्त्र ही है। यदि होम करानेकी शक्ति न हो तो विद्वान् पुरुष उसका फल प्राप्त करनेके लिये ब्राह्मणोंको कुछ सुवर्ण दान कर दे तथा कर्ममें जो नाना प्रकारकी त्रुटियाँ रह गयी हों, या विधिमें जो न्यूनता अथवा अधिकता हो गयी हो, उन दोषोंकी शान्तिके लिये विष्णुसहस्रनामका पाठ करे॥ २४—२९॥ उससे सभी कर्म सफल हो जाते हैं; क्योंकि इससे बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। हवनके पश्चात् चौबीस सपत्नीक ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक भोजन कराये॥ ३०॥ तत्पश्चात् उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको गन्ध और मालाओंसे अलंकृत करके सुवर्णमयी दक्षिणा, धान्य और रत्न आदि देकर संतुष्ट करे॥ ३१॥ भरतश्रेष्ठ! उन ब्राह्मणोंके यथावत् भोजन कर लेनेपर उन्हींके निकट सपत्नीक वाचकको भी भलीभाँति अलंकृत करके भोजन कराये और वस्त्र तथा आभूषणोंसे संतुष्ट करके नमस्कार करे। ब्राह्मणोंके प्रसन्न होनेपर यजमानके ऊपर देवता प्रसन्न होते हैं॥ ३२-३३॥ वाचकके संतुष्ट होनेपर श्रोताको शुभ एवं सर्वोत्तम प्रीति प्राप्त होती है। व्रतकी पूर्तिके लिये यजमान दूध देनेवाली गौ तथा सुवर्णका दान करे॥ ३४॥ यदि शक्ति हो तो तीन पल सोनेका एक सिंहासन बनवाकर उसके ऊपर सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुई हरिवंशकी पोथी रखे और आवाहन आदि दक्षिणासहित उपचारोंसे उसका पूजन करके वस्त्र, आभूषण और गन्ध आदिसे पूजित हुए महात्मा आचार्यको वह पुस्तक दान कर दे। इस प्रकार दान करके उत्तम बुद्धिवाला विद्वान् श्रोता संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाय। नवाह-यज्ञका यह विधान सम्पूर्ण पापोंका निवारण करनेवाला है। इसका इस प्रकार यथावत् रूपसे पालन करनेपर यह हरिवंशपुराण मनोवाञ्छित फल प्रदान करता है तथा समस्त कामनाओं और पुरुषार्थोंका साधक होता है। राजन्! भरतनन्दन! जो इस विधिसे इस पुराणको समाप्त करता है, उसकी पत्नी एक ही महीनेमें गर्भ धारण कर लेती है। राजन्! जो इस विधिसे व्यासकी पूजा करता है तथा दान-मानके द्वारा उसका सत्कार करता है, उसकी स्त्री अवश्य गर्भवती होती है। मैंने जो नाना प्रकारके भजन-पूजन आदि बताये हैं, उन्हें करके नारी सूर्यतुल्य तेजस्वी पुत्र प्राप्त करती है तथा वन्ध्या नारी भी अवश्य गर्भ धारण कर लेती है। जैसा कि व्यासजीका वचन है॥ ३५—४१॥

विप्ररत्नापहारी च सोऽनपत्यः प्रजायते।
तेन कायविशुद्ध्यर्थं महारुद्रजपादिकम्॥ ४२

जो ब्राह्मणके रत्नका अपहरण करता है, वह संतानहीन हो जाता है। उससे शरीरकी शुद्धिके लिये महारुद्रमन्त्रके जप आदिका विधान है॥ ४२॥

अथ पारीक्षितो राजा श्रद्धायुक्तेन चेतसा।
भावतः सत्ययुक्तेन चैकाग्रमनसा तथा॥ ४३

श्रुत्वान्ते निश्चयं कृत्वा दम्भशाठ्यविवर्जितः।
श्रुत्वेमं हरिवंशं वै व्यासं सम्पूज्य भक्तितः॥ ४४

दानं च बहुलं कृत्वा व्यासाशीर्गृह्य भारतः।
प्रसन्नवदनो भूत्वा रमते रमणीयुतः॥ ४५

(**सूतजी कहते हैं**—शौनक!) तदनन्तर भरतवंशी राजा जनमेजयने भक्ति-भाव एवं सत्यसे युक्त श्रद्धापूर्ण एकाग्र चित्तसे हरिवंशकी कथा सुनकर अन्तमें दृढ़ निश्चय करके दम्भ और शठता (कंजूसी) छोड़कर भक्तिपूर्वक व्यास (वक्ता)-का पूजन किया। फिर वे बहुत-सा दान करके व्यासका आशीर्वाद ले प्रसन्नमुख होकर अपनी पत्नीके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे॥ ४३—४५॥

प्राग्जन्मजनिते पापे क्षीणे वै जनमेजय।
ऋतावाद्ये तु संधत्ते गर्भं तस्य कुलाङ्गना॥ ४६
द्वितीये वा तृतीये वा चतुर्थे मासि वै पुनः।
पञ्चमे वापि षष्ठे वा सप्तमे अष्टमेऽपि वा॥ ४७
नवमे दशमे मासि दोहदं निश्चयं भवेत्।
व्यासेनोक्तमिदं पुण्यं वन्ध्यागर्भस्य लक्षणम्॥ ४८
पितॄनुद्धरते सर्वान् दश पूर्वान् दशापरान्।
हरिवंशं नरः श्रुत्वा सेतिहासं पुरातनम्॥ ४९
इदं मया तवाग्रे च सर्वं प्रोक्तं नरर्षभ।
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ५०
अपुत्रः पुत्रमाप्नोति ह्यधनो धनमाप्नुयात्।
नरमेधाश्वमेधाभ्यां यत् फलं प्राप्यते नरैः॥ ५१
तत् फलं लभ्यते सर्वं पुराणश्रवणाद्धरेः।
ब्रह्महा भ्रूणहा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः।
सकृत् पुराणश्रवणात् पूतो भवति नान्यथा॥ ५२
इदं मया ते परिकीर्तितं मह-
च्छ्रीकृष्णमाहात्म्यमपारमद्भुतम्।
शृण्वन् पठन्नाशु समाप्नुयात् फलं
यच्चापि लोकेषु सुदुर्लभं महत्॥ ५३

(**वैशम्पायनजी कहते हैं**—) जनमेजय! हरिवंशके श्रवणसे पूर्व जन्मके पापका नाश हो जानेपर यजमानकी कुलवती पत्नी प्रथम ऋतुकालमें ही गर्भ धारण कर लेती है॥ ४६॥ अथवा दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें, नवें या दसवें मासमें उसे निश्चय ही गर्भ रह जाता है। वन्ध्याके गर्भ-धारणका यह पवित्र लक्षण साक्षात् व्यासजीने कहा है॥ ४७-४८॥ इतिहाससहित इस पुरातन हरिवंशको सुनकर मनुष्य अपनी दस पीढ़ी पहलेके समस्त पितरों और दस पीढ़ी बादकी संतानोंका उद्धार कर देता है॥ ४९॥ नरश्रेष्ठ! यह सब माहात्म्य मैंने तुम्हारे सामने कह सुनाया, जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ५०॥ इससे पुत्रहीनको पुत्र और धनहीनको धनकी प्राप्ति होती है। नरमेध और अश्वमेध यज्ञोंसे मनुष्योंको जो फल प्राप्त होता है, वह सारा फल श्रीहरिके हरिवंशपुराणका श्रवण करनेसे ही मिल जाता है। ब्रह्महत्यारा, गर्भघाती, गोहत्यारा, शराबी और गुरुपत्नीगामी पुरुष भी एक बार इस पुराणका श्रवण कर लेनेसे पवित्र हो जाता है। इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये॥ ५१-५२॥ जनमेजय! यह मैंने तुमसे श्रीकृष्णके अपार, अद्भुत एवं महान् माहात्म्यका वर्णन किया है। इसका श्रवण और पाठ करनेवाला पुरुष तीनों लोकोंमें जो अत्यन्त दुर्लभ है, उस महान् फलको भी शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है॥ ५३॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणविधौ दानविधानकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

इस प्रकार श्रीपद्मपुराणमें हरिवंशमाहात्म्यके अन्तर्गत श्रवणविधिके प्रसङ्गमें दानविधिका वर्णनविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

॥ सविधि हरिवंशमाहात्म्य सम्पूर्ण॥

(१) संतानगोपालमन्त्रविधिः

'श्रीगणेशाय नमः'। अब संतानगोपालमन्त्रके अनुष्ठानकी विधि दी जा रही है।

निम्नाङ्कित वाक्य पढ़कर विनियोग करे—

अस्य श्रीसंतानगोपालमन्त्रस्य श्रीनारद ऋषिः,अनुष्टुप् छन्दः, श्रीकृष्णो देवता, ग्लौं बीजम्, नमः शक्तिः, पुत्रार्थे जपे विनियोगः।

अङ्गन्यास

'देवकीसुत गोविन्द' हृदयाय नमः (इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथकी मध्यमा, अनामिका और तर्जनी अङ्गुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे)। **'वासुदेव जगत्पते' शिरसे स्वाहा** (इस वाक्यको बोलकर सिरका स्पर्श करे)। **'देहि मे तनयं कृष्ण' शिखायै वषट्** (इस वाक्य-को बोलकर दाहिने हाथके अँगूठेसे शिखाका स्पर्श करे)। **'त्वामहं शरणं गतः' कवचाय हुम्** (इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथकी पाँचों अङ्गुलियोंसे बायीं भुजाका और बायें हाथकी पाँचों अङ्गुलियोंसे दाहिनी भुजाका स्पर्श करे)। **'ॐ नमः' अस्त्राय फट्** (इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथको सिरके ऊपरसे बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर ले आये और तर्जनी तथा मध्यमा अङ्गुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजाये)।

इसके पश्चात् निम्नाङ्कित रूपसे ध्यान करे—

वैकुण्ठादागतं कृष्णं रथस्थं करुणानिधिम्।
किरीटिसारथिं पुत्रमानयन्तं परात्परम्॥ १॥
आदाय तं जलस्थं च गुरवे वैदिकाय च।
अर्पयन्तं महाभागं ध्यायेत् पुत्रार्थमच्युतम्॥ २॥

'पार्थसारथि अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण करुणाके सागर हैं। वे जलमें डूबे हुए गुरु-पुत्रको लेकर आ रहे हैं। वे वैकुण्ठसे अभी-अभी पधारे हैं और रथपर विराजमान हैं। अपने वैदिक गुरु सान्दीपनिको उनका पुत्र अर्पित कर रहे हैं—साधक पुत्रकी प्राप्तिके लिये इस रूपमें महाभाग भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करे'॥ १-२॥

मूल मन्त्र

'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥'

यह सम्पूर्ण मन्त्र है। इसका तीन लाख जप करना चाहिये।

इस मन्त्रका भावार्थ इस प्रकार है—सच्चिदानन्दस्वरूप, ऐश्वर्यशाली, शक्तिशाली, कामनापूरक, सौम्यस्वरूप, देवकीनन्दन! गोविन्द! वासुदेव! जगत्पते! श्रीकृष्ण! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, आप मुझे पुत्र प्रदान कीजिये।

(२) संतानगोपालमन्त्र

विनियोग

अस्य श्रीसंतानगोपालमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्रीच्छन्दः, श्रीकृष्णो देवता, क्लीं बीजम्, नमः शक्तिः, पुत्रार्थे जपे विनियोगः।

अङ्गन्यास

ग्लौं हृदयाय नमः। क्लीं शिरसे स्वाहा। ह्रीं शिखायै वषट्। श्रीं कवचाय हुम्। ॐ अस्त्राय फट्।

ध्यान

शङ्खचक्रगदापद्मं दधानं सूतिकागृहे।
अङ्के शयानं देवक्याः कृष्णं वन्दे विमुक्तये॥

जो सूतिकागृहमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये माता देवकीकी गोदमें सो रहे हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णकी मैं (संतान एवं) मोक्षकी प्राप्तिके लिये वन्दना करता हूँ।

(मूल मन्त्र इस प्रकार है—)

'**ॐ नमो भगवते जगदात्मसूतये नमः**' (सम्पूर्ण जगत् जिनकी अपनी संतान है, उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है)।

इसका भी तीन लाख जप करना चाहिये।

---

(३) सनत्कुमारोक्त संतानगोपालमन्त्र

विनियोग

ॐ अस्य श्रीसंतानगोपालमन्त्रस्य श्रीनारद ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीकृष्णो देवता, ग्लौं बीजम्, नमः शक्तिः, पुत्रार्थे जपे विनियोगः।

अङ्गन्यास

इस मन्त्रका अङ्गन्यास ठीक वैसा ही है, जैसा कि द्वितीय मन्त्रका है। अथवा—

'देवकीसुत गोविन्द' हृदयाय नमः। 'वासुदेव जगत्पते' शिरसे स्वाहा। 'देहि मे तनयं कृष्ण' शिखायै वषट्। 'त्वामहं शरणं गतः' कवचाय हुम्। 'देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ अस्त्राय फट्।

ध्यान

शङ्खचक्रगदापद्मं धारयन्तं जनार्दनम्।
अङ्के शयानं देवक्याः सूतिकामन्दिरे शुभे॥
एवं रूपं सदा कृष्णं सुतार्थं भावयेत् सुधीः॥

'उत्तम बुद्धिवाला साधक पुत्रकी प्राप्तिके लिये सदा ऐसे रूपवाले जनार्दन भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करे, जो मङ्गलमय सूतिकागारमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये देवकीके अङ्कमें शयन करते हैं।'

सम्पूर्ण मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥

इसका भी तीन लाख जप करे।

इस मन्त्रके पूजन आदिका विधान जैसा सनत्कुमारजी-ने बताया है, इस प्रकार है—वैष्णव* पीठपर देवताओंका आवाहन करके उनकी पूजा करे। प्रथम आवृत्ति (आवरण)-में छः कोणोंमेंसे आग्नेय कोणमें '**हृदयाय नमः**', नैर्ऋत्यकोणमें '**शिरसे स्वाहा**', वायव्यकोणमें '**शिखायै**

---

* वैष्णव पीठ एवं देवपूजनकी विधि नारदपुराण पूर्वभाग अ० ६७में विस्तारपूर्वक दी गयी है, उसे पढ़कर उसीके अनुसार पूजन करना चाहिये।

वषट्', ईशानकोणमें '**कवचाय हुम्**', अग्रभागमें '**नेत्रत्रयाय वौषट्**' तथा पूर्व आदि चारों दिशाओंमें '**अस्त्राय फट्**' इस प्रकार मन्त्रोच्चारणपूर्वक क्रमशः हृदय आदि अङ्गोंकी पूजा करे।

दूसरे आवरणमें पीठकी पूर्व आदि आठ दिशाओंमें क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर और ईशानकी पूजा करे।

तथा तीसरे आवरणमें उन्हीं दिशाओंमें क्रमशः वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा और शूलकी पूजा करे।

शुक्ल पक्षकी दशमी तिथिको आधी रातके समय भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करे। पूजाके लिये स्वस्तिककी रचना करके उसपर घीसे भरा हुआ सकोरा या कोसा स्थापित करे। फिर उसमें रूईकी बत्ती डालकर उत्तम दीप प्रज्वलित करे। तत्पश्चात् अष्टदल कमल बनाकर उसमें स्थापित हुए श्रीकृष्णकी पूजा करे। फिर दो कलशोंको जलसे भरकर उनकी विधिवत् स्थापना करके सम्पूर्ण उपचारोंसे युक्त पूजा करे। तत्पश्चात् उन कलशोंमें भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णका आवाहन करके पुनः उनका पूर्वोक्त रीतिसे पूजन करे। तदनन्तर उन दोनों कलशोंका स्पर्श करके अनन्यभावसे एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार उपर्युक्त मन्त्रका जप करे। इसके बाद द्वादशीको गोविन्दकी विधिपूर्वक पूजा करके अगहनीके चावलकी स्वादिष्ट खीर तथा गायके घी और गुड़से युक्त पकवानका भोग अर्पण करे। इन सबके साथ सामयिक फल भी होना चाहिये। इसके अतिरिक्त दाल, भात, स्वादिष्ट सुस्निग्ध व्यञ्जन, कपिला गायके दूधका दही और खाँड भी रहना चाहिये। इन समस्त भोज्य पदार्थोंको पात्रमें रखकर इनके पात्रभूत भगवान् विष्णुको इन्हें निवेदन करे। साथ ही शीतल कर्पूर और गुलाबसे सुवासित तथा कपड़ेसे छाना हुआ स्वच्छ जल अर्पण करे।

इसके बाद अपनी आर्थिक शक्तिके अनुसार शुद्धबुद्धिसे भगवान् श्रीकृष्णमें श्रद्धा रखते हुए अपनी सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्तिके लिये ब्राह्मणोंको भोजन दे। संस्कारयुक्त अग्निमें भगवान् विष्णुका आवाहन करके अर्घ्य आदिसे उनका पूजन करे। फिर १०८ बार या २८ बार हविष्य (खीर)-की आहुति देकर शेष हविष्यको कहीं सुरक्षित रख दे। इसके बाद घीकी ८०० आहुतियाँ दे। हुतशेष घृतको उक्त दोनों कलशोंमें गिराकर उस घृतमिश्रित जलद्वारा दम्पती (यजमान और उसकी पत्नी दोनों)-का अभिषेक करे। तदनन्तर जलमय श्रीहरिका ध्यान करते हुए ब्राह्मण पुनः उन कलशोंके जलसे उन दोनोंका अभिषेक करके एक सौ आठ बार पूर्वोक्त मन्त्रका जप करनेके पश्चात् शेष रखे हुए हविष्यको यजमान-पत्नीके हाथमें दे दे।

यजमान-पत्नी उस हविष्यको लेकर श्रीकृष्णका ध्यान करती हुई एक सुखद आसनपर पूर्वाभिमुख होकर बैठ जाय और उसका भक्षण करे; उस समय यह भावना करे कि इस हविष्यके साथ भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं मेरे उदरमें आकर विराजमान हुए हैं। फिर जब श्रेष्ठ ब्राह्मणलोग अच्छी तरह भोजन कर लें, तब यजमान पान और मोदक आदिसे उन्हें तृप्त करे। तत्पश्चात् वह श्रीविष्णुके चिन्तनपूर्वक उन ब्राह्मणोंके चरणोंमें मस्तक झुकाये। उस समय ब्राह्मणलोग यजमान दम्पतीसे यह कहें कि 'आप दोनोंके अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि हो।' फिर वे निष्पाप दम्पती यह भावना करते हुए कि 'अब हमारा मनोरथ सफल हो गया' अत्यन्त प्रसन्न हो स्वयं भी भोजन करें।

जो ब्राह्मण इस प्रकार धन खर्च करनेमें कंजूसी न करके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको भगवान् विष्णुके प्रति भक्तिभावसे युक्त हो इस प्रकार पूजन आदि करता है, वह शीघ्र ही तेजस्वी एवं चिरायु पुत्र प्राप्त कर लेता है। उसका वह पुत्र भी वंशपरम्पराको चलानेवाला, विष्णुभक्त एवं परम बुद्धिमान् होता है।

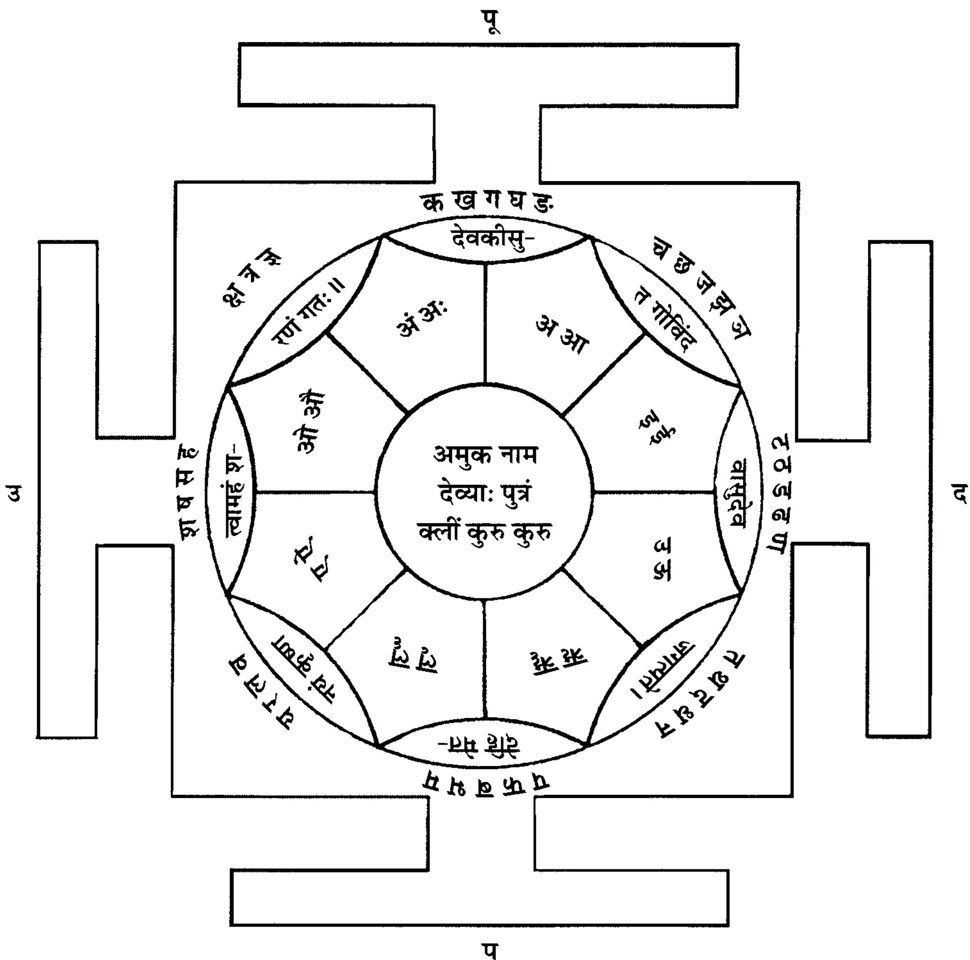
जो श्रेष्ठ द्विज दरिद्र होनेके कारण ऐसा न कर सके,

वह यदि पूर्वोक्त मन्त्रका जप एवं तर्पण करे तो उसे भी पुत्र प्राप्त हो सकता है।

मन्त्रसारोक्त संतानकर यन्त्र

पहले अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिकामें '**क्लीं**' इस कामबीजका उल्लेख करे। फिर वहीं यजमान पति-पत्नीके नाम और उसकी कामना भी लिख दे। यथा— '**अमुकस्य धर्मपत्न्याः अमुकदेव्याः पुत्रं कुरु कुरु।**' फिर आठ दलोंके निम्न भागोंमें दो-दो करके अकारादि सोलह स्वरोंको अङ्कित करे तथा उन्हींके ऊपरी भागोंमें संतानगोपाल-मन्त्रके चार-चार अक्षरोंको लिखे। फिर उन दलोंके बाह्य भागमें एक गोल रेखा खींचकर उसे ककारादि वर्णोंसे आवेष्टित करे। तत्पश्चात् उस वृत्तके बाहर चतुष्कोण बनावे। किसी पात्रमें माखन रखकर उसपर यह यन्त्र अङ्कित करे अथवा सूक्ष्म स्वर्ण आदिके पत्रपर इस यन्त्रको लिखे। यन्त्रसे अङ्कित नवनीतको नारी खा जाय और स्वर्णादि पत्रोंपर लिखे हुए यन्त्रको वह धारण करे। इससे वह पुत्रको जन्म देती है।

(शारदातिलकमें बताये अनुसार यह संतान-गोपालके मन्त्रकी अनुष्ठानविधि यहाँ दी गयी है।)



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

संतानगोपालस्तोत्रम्

श्रीशं कमलपत्राक्षं देवकीनन्दनं हरिम्।
सुतसम्प्राप्तये कृष्णं नमामि मधुसूदनम्॥ १
नमाम्यहं वासुदेवं सुतसम्प्राप्तये हरिम्।
यशोदाङ्कगतं बालं गोपालं नन्दनन्दनम्॥ २
अस्माकं पुत्रलाभाय गोविन्दं मुनिवन्दितम्।
नमाम्यहं वासुदेवं देवकीनन्दनं सदा॥ ३
गोपालं डिम्भकं वन्दे कमलापतिमच्युतम्।
पुत्रसम्प्राप्तये कृष्णं नमामि यदुपुङ्गवम्॥ ४
पुत्रकामेष्टिफलदं कञ्जाक्षं कमलापतिम्।
देवकीनन्दनं वन्दे सुतसम्प्राप्तये मम॥ ५
पद्मापते पद्मनेत्र पद्मनाभ जनार्दन।
देहि मे तनयं श्रीश वासुदेव जगत्पते॥ ६
यशोदाङ्कगतं बालं गोविन्दं मुनिवन्दितम्।
अस्माकं पुत्रलाभाय नमामि श्रीशमच्युतम्॥ ७
श्रीपते देवदेवेश दीनार्तिहरणाच्युत।
गोविन्द मे सुतं देहि नमामि त्वां जनार्दन॥ ८
भक्तकामद गोविन्द भक्तं रक्ष शुभप्रद।
देहि मे तनयं कृष्ण रुक्मिणीवल्लभ प्रभो॥ ९
रुक्मिणीनाथ सर्वेश देहि मे तनयं सदा।
भक्तमन्दार पद्माक्ष त्वामहं शरणं गतः॥ १०
देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ११
वासुदेव जगद्वन्द्य श्रीपते पुरुषोत्तम।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ १२
कञ्जाक्ष कमलानाथ परकारुणिकोत्तम।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ १३
लक्ष्मीपते पद्मनाभ मुकुन्द मुनिवन्दित।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ १४

मैं पुत्रकी प्राप्तिके लिये लक्ष्मीपति, कमलनयन, देवकीनन्दन तथा सर्वपापहारी, मधुसूदन, श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ॥ १॥ मैं पुत्रप्राप्तिके उद्देश्यसे उन वासुदेव श्रीहरिको प्रणाम करता हूँ, जो यशोदाके अङ्कमें बालगोपालरूपसे विराजमान हैं और नन्दको आनन्द दे रहे हैं॥ २॥ अपनेको पुत्रकी प्राप्तिके लिये मैं मुनि-वन्दित वसुदेवदेवकीनन्दन गोविन्दको सदा नमस्कार करता हूँ॥ ३॥ मैं पुत्र पानेकी कामनासे उन यदुकुलतिलक श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ, जो साक्षात् कमलापति अच्युत (विष्णु) होकर भी गोपबालकरूपसे गौओंकी रक्षामें लगे हुए हैं॥ ४॥ मुझे पुत्रकी प्राप्ति हो, इसके लिये मैं पुत्रेष्टियज्ञका फल देनेवाले कमलनयन लक्ष्मीपति देवकीनन्दन श्रीकृष्णकी वन्दना करता हूँ॥ ५॥ पद्मापते! कमलनयन! पद्मनाभ! जनार्दन! श्रीश! वासुदेव! जगत्पते! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये॥ ६॥ यशोदाके अङ्कमें बालरूपसे विराजमान तथा अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले मुनिवन्दित लक्ष्मीपति गोविन्दको मैं प्रणाम करता हूँ। ऐसा करनेसे मुझे पुत्रकी प्राप्ति हो॥ ७॥ श्रीपते! देवदेवेश्वर! दीन-दुःखियोंकी पीड़ा दूर करनेवाले अच्युत! गोविन्द! मुझे पुत्र दीजिये। जनार्दन! मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥ ८॥ भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले गोविन्द! भक्तकी रक्षा कीजिये। शुभदायक! रुक्मिणीवल्लभ! प्रभो! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये॥ ९॥ रुक्मिणीनाथ! सर्वेश्वर! मुझे सदाके लिये पुत्र दीजिये। भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्षस्वरूप कमलनयन श्रीकृष्ण! मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ १०॥ देवकीपुत्र! गोविन्द! वासुदेव! जगन्नाथ! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ११॥ विश्ववन्द्य वासुदेव! लक्ष्मीपते! पुरुषोत्तम! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ १२॥ कमलनयन! कमलाकान्त! दूसरोंपर दया करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ १३॥ लक्ष्मीपते! पद्मनाभ! मुनिवन्दित मुकुन्द! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ १४॥

कार्यकारणरूपाय वासुदेवाय ते सदा।
नमामि पुत्रलाभार्थं सुखदाय बुधाय ते॥ १५
राजीवनेत्र श्रीराम रावणारे हरे कवे।
तुभ्यं नमामि देवेश तनयं देहि मे हरे॥ १६
अस्माकं पुत्रलाभाय भजामि त्वां जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण वासुदेव रमापते॥ १७
श्रीमानिनीमानचोर गोपीवस्त्रापहारक।
देहि मे तनयं कृष्ण वासुदेव जगत्पते॥ १८
अस्माकं पुत्रसम्प्राप्तिं कुरुष्व यदुनन्दन।
रमापते वासुदेव मुकुन्द मुनिवन्दित॥ १९
वासुदेव सुतं देहि तनयं देहि माधव।
पुत्रं मे देहि श्रीकृष्ण वत्सं देहि महाप्रभो॥ २०
डिम्भकं देहि श्रीकृष्ण आत्मजं देहि राघव।
भक्तमन्दार मे देहि तनयं नन्दनन्दन॥ २१
नन्दनं देहि मे कृष्ण वासुदेव जगत्पते।
कमलानाथ गोविन्द मुकुन्द मुनिवन्दित॥ २२
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।
सुतं देहि श्रियं देहि श्रियं पुत्रं प्रदेहि मे॥ २३
यशोदास्तन्यपानज्ञं पिबन्तं यदुनन्दनम्।
वन्देऽहं पुत्रलाभार्थं कपिलाक्षं हरिं सदा॥ २४
नन्दनन्दन देवेश नन्दनं देहि मे प्रभो।
रमापते वासुदेव श्रियं पुत्रं जगत्पते॥ २५
पुत्रं श्रियं श्रियं पुत्रं पुत्रं मे देहि माधव।
अस्माकं दीनवाक्यस्य अवधारय श्रीपते॥ २६
गोपालडिम्भ गोविन्द वासुदेव रमापते।
अस्माकं डिम्भकं देहि श्रियं देहि जगत्पते॥ २७
मद्वाञ्छितफलं देहि देवकीनन्दनाच्युत।
मम पुत्रार्थितं धन्यं कुरुष्व यदुनन्दन॥ २८
याचेऽहं त्वां श्रियं पुत्रं देहि मे पुत्रसम्पदम्।
भक्तचिन्तामणे राम कल्पवृक्ष महाप्रभो॥ २९

आप कार्य-कारणरूप, सुखदायक एवं विद्वान् हैं। मैं पुत्रकी प्राप्तिके लिये आप वासुदेवको सदा नमस्कार करता हूँ॥ १५॥ राजीवनेत्र (कमलनयन)! रावणारे (रावणके शत्रु)! हरे! कवे (विद्वन्)! देवेश्वर! विष्णो! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप मुझे पुत्र प्रदान कीजिये॥ १६॥ जगदीश्वर! मैं अपने लिये पुत्र-प्राप्तिके उद्देश्यसे आपकी आराधना करता हूँ। रमावल्लभ! वासुदेव! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये॥ १७॥ मानिनी श्रीराधाके मानका अपहरण करनेवाले तथा अपनी आराधना करनेवाली गोपाङ्गनाओंके वस्त्रको यमुनातटसे हटानेवाले (उन्हें सुख प्रदान करनेवाले) जगन्नाथ वासुदेव श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये॥ १८॥ यदुनन्दन! रमापते! वासुदेव! मुनिवन्दित मुकुन्द! हमें पुत्रकी प्राप्ति कराइये॥ १९॥ वासुदेव! मुझे बेटा दीजिये। माधव! मुझे तनय (संतान) दीजिये। श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये। महाप्रभो! मुझे वत्स (बच्चा) दीजिये॥ २०॥ श्रीकृष्ण! मुझे डिम्भक (पुत्र) दीजिये। रघुनन्दन! मुझे आत्मज (औरस पुत्र) दीजिये। भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्षस्वरूप नन्दनन्दन! मुझे तनय दीजिये॥ २१॥ श्रीकृष्ण! वासुदेव! जगत्पते! कमलानाथ! गोविन्द! मुनिवन्दित मुकुन्द! मुझे आनन्ददायक पुत्र प्रदान कीजिये॥ २२॥ प्रभो! यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो दूसरा कोई मुझे शरण देनेवाला नहीं है। आप ही मेरे शरणदाता हैं। मुझे पुत्र दीजिये। सम्पत्ति दीजिये। सम्पत्ति और पुत्र दोनों प्रदान कीजिये॥ २३॥ यशोदाजीके स्तनोंके दुग्धपानके रसको जाननेवाले और उनका स्तनपान करनेवाले, भूरे नेत्रोंसे सुशोभित यदुनन्दन श्रीकृष्णकी मैं सदा वन्दना करता हूँ। इससे मुझे पुत्रकी प्राप्ति हो॥ २४॥ देवेश्वर! नन्दनन्दन! प्रभो! मुझे आनन्ददायक पुत्र दीजिये। रमापते! वासुदेव! जगन्नाथ! मुझे धन और पुत्र दीजिये॥ २५॥ माधव! पुत्र और धन (दीजिये), धन और पुत्र (दीजिये), मुझे पुत्र प्रदान कीजिये। श्रीपते! हमारे दीनतापूर्ण वचनपर ध्यान दीजिये॥ २६॥ गोपकुमार गोविन्द! रमावल्लभ वासुदेव! जगन्नाथ! मुझे पुत्र दीजिये, सम्पत्ति दीजिये॥ २७॥ देवकीनन्दन! अच्युत! मुझे मनोवाञ्छित फल (पुत्र) दीजिये। यदुनन्दन! मेरी पुत्रविषयक प्रार्थनाको सफल एवं धन्य कीजिये॥ २८॥ भक्तोंके लिये चिन्तामणिस्वरूप राम! भक्तवाञ्छाकल्पतरो! महाप्रभो! मैं आपसे धन और पुत्रकी याचना करता हूँ। मुझे पुत्र और धन-सम्पत्ति दीजिये॥ २९॥

आत्मजं नन्दनं पुत्रं कुमारं डिम्भकं सुतम्।
अर्भकं तनयं देहि सदा मे रघुनन्दन॥ ३०

वन्दे संतानगोपालं माधवं भक्तकामदम्।
अस्माकं पुत्रसम्प्राप्त्यै सदा गोविन्दमच्युतम्॥ ३१

ॐकारयुक्तं गोपालं श्रीयुक्तं यदुनन्दनम्।
क्लींयुक्तं देवकीपुत्रं नमामि यदुनायकम्॥ ३२

वासुदेव मुकुन्देश गोविन्द माधवाच्युत।
देहि मे तनयं कृष्ण रमानाथ महाप्रभो॥ ३३

राजीवनेत्र गोविन्द कपिलाक्ष हरे प्रभो।
समस्तकाम्यवरद देहि मे तनयं सदा॥ ३४

अब्जपद्मनिभं पद्मवृन्दरूप जगत्पते।
देहि मे वरसत्पुत्रं रमानायक माधव॥ ३५

नन्दपाल धरापाल गोविन्द यदुनन्दन।
देहि मे तनयं कृष्ण रुक्मिणीवल्लभ प्रभो॥ ३६

दासमन्दार गोविन्द मुकुन्द माधवाच्युत।
गोपाल पुण्डरीकाक्ष देहि मे तनयं श्रियम्॥ ३७

यदुनायक पद्मेश नन्दगोपवधूसुत।
देहि मे तनयं कृष्ण श्रीधर प्राणनायक॥ ३८

अस्माकं वाञ्छितं देहि देहि पुत्रं रमापते।
भगवन् कृष्ण सर्वेश वासुदेव जगत्पते॥ ३९

रमाहृदयसम्भार सत्यभामामनःप्रिय।
देहि मे तनयं कृष्ण रुक्मिणीवल्लभ प्रभो॥ ४०

चन्द्रसूर्याक्ष गोविन्द पुण्डरीकाक्ष माधव।
अस्माकं भाग्यसत्पुत्रं देहि देव जगत्पते॥ ४१

कारुण्यरूप पद्माक्ष पद्मनाभसमर्चित।
देहि मे तनयं कृष्ण देवकीनन्दनन्दन॥ ४२

देवकीसुत श्रीनाथ वासुदेव जगत्पते।
समस्तकामफलद देहि मे तनयं सदा॥ ४३

भक्तमन्दार गम्भीर शङ्कराच्युत माधव।
देहि मे तनयं गोपबालवत्सल श्रीपते॥ ४४

रघुनन्दन! आप सदा मुझे आनन्ददायक आत्मज, पुत्र, कुमार, डिम्भक (बालक), सुत, अर्भक (बच्चा) एवं तनय (बेटा) दीजिये॥ ३०॥ मैं अपने लिये पुत्रकी प्राप्तिके उद्देश्यसे संतानप्रद गोपाल, माधव, भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाले अच्युत गोविन्दकी वन्दना करता हूँ॥ ३१॥ ॐकारयुक्त गोपाल, श्रीयुक्त यदुनन्दन तथा क्लींयुक्त देवकीपुत्र यदुनाथको मैं प्रणाम करता हूँ (अर्थात् **'ॐ श्रीं क्लीं'** इन तीनों बीजोंसे युक्त **'देवकीसुत गोविन्द'**......' इत्यादि मन्त्रका मैं आश्रय लेता हूँ)॥ ३२॥ वासुदेव! मुकुन्द! ईश्वर! गोविन्द! माधव! अच्युत! श्रीकृष्ण! रमानाथ! महाप्रभो! मुझे पुत्र दीजिये॥ ३३॥ राजीवनयन (कमल-सदृश नेत्रवाले)! गोविन्द! कपिलाक्ष! हरे! प्रभो! सम्पूर्ण कमनीय मनोरथोंकी सिद्धिके लिये वर देनेवाले श्रीकृष्ण! मुझे सदाके लिये पुत्र दीजिये॥ ३४॥ नीलकमलसमूहके समान श्यामसुन्दर रूपवाले जगन्नाथ! रमानायक! माधव! मुझे जलज कमलके सदृश मनोहर एवं श्रेष्ठ सत्पुत्र प्रदान कीजिये॥ ३५॥ अजगर और वरुणके दूतोंसे नन्दजीकी रक्षा करनेवाले! पृथ्वीपालक! यदुनन्दन! गोविन्द! प्रभो! रुक्मिणीवल्लभ श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये॥ ३६॥ अपने सेवकोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्षस्वरूप! गोविन्द! मुकुन्द! माधव! अच्युत! गोपाल! पुण्डरीकाक्ष (कमलनयन)! मुझे संतान और सम्पत्ति दीजिये॥ ३७॥ यदुनायक! लक्ष्मीपते! यशोदानन्दन! श्रीधर! प्राणवल्लभ! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये॥ ३८॥ रमापते! भगवन्! सर्वेश्वर! वासुदेव! जगत्पते! श्रीकृष्ण! हमें मनोवाञ्छित वस्तु दीजिये। पुत्र प्रदान कीजिये॥ ३९॥ रमा (लक्ष्मी)-को अपने वक्षःस्थलमें धारण करनेवाले! सत्यभामाके हृदयवल्लभ! तथा रुक्मिणीके प्राणनाथ! प्रभो! मुझे पुत्र दीजिये॥ ४०॥ चन्द्रमा और सूर्यरूप नेत्र धारण करनेवाले गोविन्द! कमलनयन माधव! देव! जगदीश्वर! हमें भाग्यशाली श्रेष्ठ पुत्र प्रदान कीजिये॥ ४१॥ करुणामय! कमलनयन! पद्मनाभ श्रीविष्णुसे सम्मानित देवकीनन्दनन्दन श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये॥ ४२॥ देवकीपुत्र! श्रीनाथ! वासुदेव! जगत्पते! समस्त मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाले श्रीकृष्ण! मुझे सदा पुत्र दीजिये॥ ४३॥ भक्तवाञ्छाकल्पतरो! गम्भीर स्वभाववाले कल्याणकारी अच्युत! माधव! ग्वाल-बालोंपर स्नेह करनेवाले श्रीपते! मुझे पुत्र दीजिये॥ ४४॥

श्रीपते वासुदेवेश देवकीप्रियनन्दन।
भक्तमन्दार मे देहि तनयं जगतां प्रभो॥ ४५
जगन्नाथ रमानाथ भूमिनाथ दयानिधे।
वासुदेवेश सर्वेश देहि मे तनयं प्रभो॥ ४६
श्रीनाथ कमलपत्राक्ष वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ४७
दासमन्दार गोविन्द भक्तचिन्तामणे प्रभो।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ४८
गोविन्द पुण्डरीकाक्ष रमानाथ महाप्रभो।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ४९
श्रीनाथ कमलपत्राक्ष गोविन्द मधुसूदन।
मत्पुत्रफलसिद्ध्यर्थं भजामि त्वां जनार्दन॥ ५०
स्तन्यं पिबन्तं जननीमुखाम्बुजं
विलोक्य मन्दस्मितमुज्ज्वलाङ्गम्।
स्पृशन्तमन्यस्तनमङ्गुलीभि-
र्वन्दे यशोदाङ्कगतं मुकुन्दम्॥ ५१
याचेऽहं पुत्रसंतानं भवन्तं पद्मलोचन।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ५२
अस्माकं पुत्रसम्पत्तेश्चिन्तयामि जगत्पते।
शीघ्रं मे देहि दातव्यं भवता मुनिवन्दित॥ ५३
वासुदेव जगन्नाथ श्रीपते पुरुषोत्तम।
कुरु मां पुत्रदत्तं च कृष्ण देवेन्द्रपूजित॥ ५४
कुरु मां पुत्रदत्तं च यशोदाप्रियनन्दन।
मह्यं च पुत्रसंतानं दातव्यं भवता हरे॥ ५५
वासुदेव जगन्नाथ गोविन्द देवकीसुत।
देहि मे तनयं राम कौसल्याप्रियनन्दन॥ ५६
पद्मपत्राक्ष गोविन्द विष्णो वामन माधव।
देहि मे तनयं सीताप्राणनायक राघव॥ ५७
कञ्जाक्ष कृष्ण देवेन्द्रमण्डित मुनिवन्दित।
लक्ष्मणाग्रज श्रीराम देहि मे तनयं सदा॥ ५८
देहि मे तनयं राम दशरथप्रियनन्दन।
सीतानायक कञ्जाक्ष मुचुकुन्दवरप्रद॥ ५९

श्रीकान्त! वसुदेवनन्दन! ईश्वर! देवकीके प्रिय पुत्र! भक्तोंके लिये कल्पवृक्षरूप! जगत्प्रभो! मुझे पुत्र दीजिये॥ ४५॥ जगन्नाथ! रमानाथ! पृथ्वीनाथ! दयानिधे! वासुदेव! ईश्वर! सर्वेश्वर! प्रभो! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये॥ ४६॥ श्रीनाथ! कमलदललोचन! वासुदेव! जगत्पते! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ४७॥ अपने दासोंके लिये कल्पवृक्ष! गोविन्द! भक्तोंकी इच्छापूर्तिके लिये चिन्तामणिस्वरूप प्रभो! श्रीकृष्ण! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मुझे पुत्र प्रदान कीजिये॥ ४८॥ गोविन्द! पुण्डरीकाक्ष! रमानाथ! महाप्रभो! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ४९॥ श्रीनाथ! कमलदललोचन! गोविन्द! मधुसूदन! जनार्दन! मैं अपने लिये पुत्ररूप फलकी सिद्धिके निमित्त आपकी आराधना करता हूँ॥ ५०॥ जो मैया यशोदाके मुखारविन्दकी ओर देखते हुए मन्द मुसकराहटके साथ उनके एक स्तनका दूध पी रहे हैं और दूसरे स्तनका अङ्गुलियोंसे स्पर्श कर रहे हैं तथा जिनका प्रत्येक अङ्ग उज्ज्वल आभासे प्रकाशित होता है, मैया यशोदाके अङ्कमें बैठे हुए उन बाल-मुकुन्दकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ५१॥ कमललोचन! मैं आपसे पुत्र—संततिकी याचना करता हूँ। श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ५२॥ जगत्पते! हमें पुत्रकी प्राप्ति हो, इस उद्देश्यसे हम आपका चिन्तन करते हैं। आप मुझे शीघ्र पुत्र प्रदान कीजिये। मुनिवन्दित श्रीकृष्ण! आपको मुझे अवश्य मेरी प्रार्थित वस्तु संतान देनी चाहिये॥ ५३॥ वासुदेव! जगन्नाथ! श्रीपते! पुरुषोत्तम! देवेन्द्रपूजित श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र-दान कीजिये॥ ५४॥ यशोदाके प्रिय नन्दन! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये। हरे! आपको मुझे पुत्ररूप संतानका दान अवश्य करना चाहिये॥ ५५॥ वासुदेव! जगन्नाथ! गोविन्द! देवकीकुमार! कौसल्याके प्रिय पुत्र राम! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये॥ ५६॥ कमलदललोचन! गोविन्द! विष्णो! वामन! माधव! सीताके प्राणवल्लभ! रघुनन्दन! मुझे पुत्र दीजिये॥ ५७॥ कमलनयन श्रीकृष्ण! देवराजसे अलंकृत एवं पूजित हरे! लक्ष्मणके बड़े भैया मुनिवन्दित श्रीराम! मुझे सदाके लिये पुत्र प्रदान कीजिये॥ ५८॥ दशरथके प्रिय नन्दन श्रीराम! सीतापते! कमलनयन! मुचुकुन्दको वर देनेवाले श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये॥ ५९॥

विभीषणस्य या लङ्का प्रदत्ता * भवता पुरा।
अस्माकं तत्प्रकारेण तनयं देहि माधव॥ ६०
भवदीयपदाम्भोजे चिन्तयामि निरन्तरम्।
देहि मे तनयं सीताप्राणवल्लभ राघव॥ ६१
राम मत्काम्यवरद पुत्रोत्पत्तिफलप्रद।
देहि मे तनयं श्रीश कमलासनवन्दित॥ ६२
राम राघव सीतेश लक्ष्मणानुज देहि मे।
भाग्यवत्पुत्रसंतानं दशरथात्मज श्रीपते॥ ६३
देवकीगर्भसंजात यशोदाप्रियनन्दन।
देहि मे तनयं राम कृष्ण गोपाल माधव॥ ६४
कृष्ण माधव गोविन्द वामनाच्युत शङ्कर।
देहि मे तनयं श्रीश गोपबालकनायक॥ ६५
गोपबाल महाधन्य गोविन्दाच्युत माधव।
देहि मे तनयं कृष्ण वासुदेव जगत्पते॥ ६६
दिशतु दिशतु पुत्रं देवकीनन्दनोऽयं
दिशतु दिशतु शीघ्रं भाग्यवत्पुत्रलाभम्।
दिशतु दिशतु श्रीशो राघवो रामचन्द्रो
दिशतु दिशतु पुत्रं वंशविस्तारहेतोः॥ ६७
दीयतां वासुदेवेन तनयो मत्प्रियः सुतः।
कुमारो नन्दनः सीतानायकेन सदा मम॥ ६८
राम राघव गोविन्द देवकीसुत माधव।
देहि मे तनयं श्रीश गोपबालकनायक॥ ६९
वंशविस्तारकं पुत्रं देहि मे मधुसूदन।
सुतं देहि सुतं देहि त्वामहं शरणं गतः॥ ७०
ममाभीष्टसुतं देहि कंसारे माधवाच्युत।
सुतं देहि सुतं देहि त्वामहं शरणं गतः॥ ७१
चन्द्रार्ककल्पपर्यन्तं तनयं देहि माधव।
सुतं देहि सुतं देहि त्वामहं शरणं गतः॥ ७२
विद्यावन्तं बुद्धिमन्तं श्रीमन्तं तनयं सदा।
देहि मे तनयं कृष्ण देवकीनन्दन प्रभो॥ ७३
नमामि त्वां पद्मनेत्र सुतलाभाय कामदम्।
मुकुन्दं पुण्डरीकाक्षं गोविन्दं मधुसूदनम्॥ ७४

माधव! आपने पूर्वकालमें जो विभीषणको लङ्काका राज्य दिया था, उसी प्रकार हमें पुत्र दीजिये॥ ६०॥ सीताके प्राणवल्लभ रघुनन्दन! मैं आपके चरणारविन्दोंका निरन्तर चिन्तन करता हूँ, मुझे पुत्र प्रदान कीजिये॥ ६१॥ मुझे मनोवाञ्छित वर और पुत्रोत्पत्तिरूप फल देनेवाले श्रीराम! ब्रह्माजीके द्वारा वन्दित लक्ष्मीपते! आप मुझे पुत्र दीजिये॥ ६२॥ लक्ष्मणके बड़े भाई! सीताके प्राणवल्लभ! दशरथकुमार! रघुकुलनन्दन! श्रीराम! श्रीपते! आप मुझे भाग्यशाली पुत्ररूप संतान दीजिये॥ ६३॥ देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए यशोदाके लाड़ले लाल! गोपाल कृष्ण! राम! माधव! मुझे पुत्र दीजिये॥ ६४॥ माधव! गोविन्द! वामन! अच्युत! कल्याणकारी श्रीपते! गोपबालकनायक! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये॥ ६५॥ गोपकुमार! सबसे बढ़कर धन्य! गोविन्द! अच्युत! माधव! वासुदेव! जगत्पते! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये॥ ६६॥ ये भगवान् देवकीनन्दन मुझे पुत्र दें, पुत्र दें। शीघ्र ही भाग्यवान् पुत्रकी प्राप्ति करायें। श्रीसीताके स्वामी! रघुकुलनन्दन श्रीरामचन्द्र! मेरे वंशके विस्तारके लिये मुझे पुत्र प्रदान करें, पुत्र प्रदान करें॥ ६७॥ वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण तथा सीतापति भगवान् श्रीराम सदा मुझे आनन्ददायक कुमारोपम प्रिय पुत्र प्रदान करें॥ ६८॥ राम! राघव! गोविन्द! देवकीपुत्र! माधव! श्रीपते! गोपबालकनायक श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये॥ ६९॥ मधुसूदन! मुझे वंशका विस्तार करनेवाला पुत्र दीजिये! पुत्र दीजिये!! पुत्र दीजिये!!! मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ७०॥ कंसारे! माधव! अच्युत! मुझे मनोवाञ्छित पुत्र प्रदान कीजिये! पुत्र दीजिये!! पुत्र दीजिये!!! मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ७१॥ माधव! जबतक चन्द्रमा, सूर्य और कल्पकी स्थिति रहे, तबतकके लिये मुझे पुत्रपरम्परा प्रदान कीजिये! पुत्र दीजिये!! पुत्र दीजिये!!! मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ७२॥ प्रभो! देवकीनन्दन श्रीकृष्ण! आप सदा मेरे लिये विद्वान्, बुद्धिमान् और धनसम्पन्न पुत्र प्रदान कीजिये॥ ७३॥ कमलनयन श्रीकृष्ण! मैं पुत्रकी प्राप्तिके लिये समस्त कामनाओंके दाता आप पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्ण मुकुन्द मधुसूदन गोविन्दको प्रणाम करता हूँ॥ ७४॥

* भवता दीयते पुरा इति पाठान्तरम्।

भगवन् कृष्ण गोविन्द सर्वकामफलप्रद।
देहि मे तनयं स्वामिंस्त्वामहं शरणं गतः॥ ७५
स्वामिंस्त्वं भगवन् राम कृष्ण माधव कामद।
देहि मे तनयं नित्यं त्वामहं शरणं गतः॥ ७६
तनयं देहि गोविन्द कञ्जाक्ष कमलापते।
सुतं देहि सुतं देहि त्वामहं शरणं गतः॥ ७७
पद्मापते पद्मनेत्र प्रद्युम्नजनक प्रभो।
सुतं देहि सुतं देहि त्वामहं शरणं गतः॥ ७८
शङ्खचक्रगदाखड्गशार्ङ्गपाणे रमापते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ७९
नारायण रमानाथ राजीवपत्रलोचन।
सुतं मे देहि देवेश पद्मपद्मानुवन्दित॥ ८०
राम राघव गोविन्द देवकीवरनन्दन।
रुक्मिणीनाथ सर्वेश नारदादिसुरार्चित॥ ८१
देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं श्रीश गोपबालकनायक॥ ८२
मुनिवन्दित गोविन्द रुक्मिणीवल्लभ प्रभो।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ८३
गोपिकार्जितपङ्केजमरन्दासक्तमानस ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ८४
रमाहृदयपङ्केजलोल माधव कामद।
ममाभीष्टसुतं देहि त्वामहं शरणं गतः॥ ८५
वासुदेव रमानाथ दासानां मङ्गलप्रद।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ८६
कल्याणप्रद गोविन्द मुरारे मुनिवन्दित।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ८७
पुत्रप्रद मुकुन्देश रुक्मिणीवल्लभ प्रभो।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ८८
पुण्डरीकाक्ष गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ८९
दयानिधे वासुदेव मुकुन्द मुनिवन्दित।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ९०
पुत्रसम्पत्प्रदातारं गोविन्दं देवपूजितम्।
वन्दामहे सदा कृष्णं पुत्रलाभप्रदायिनम्॥ ९१

सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंके दाता! गोविन्द! स्वामिन्! भगवन्! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ७५॥ स्वामिन्! भगवन्! राम! कृष्ण! कामनाओंके दाता माधव! मुझे सदा पुत्र प्रदान कीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ७६॥ गोविन्द! कमलनयन! कमलापते! मुझे पुत्र दीजिये! पुत्र दीजिये!! पुत्र दीजिये!!! मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ७७॥ लक्ष्मीपते! कमललोचन! प्रद्युम्नको जन्म देनेवाले प्रभो! मुझे पुत्र दीजिये! पुत्र दीजिये!! मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ७८॥ अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग और शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले रमापते! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ७९॥ नारायण! रमानाथ! कमलदललोचन! देवेश्वर! कमलालया लक्ष्मीसे वन्दित श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये॥ ८०॥ राम! राघव! गोविन्द! देवकीके श्रेष्ठ पुत्र! रुक्मिणीनाथ! सर्वेश्वर! नारदादि महर्षियों तथा देवताओंसे पूजित देवकीकुमार गोविन्द! वासुदेव! जगत्पते! श्रीकान्त! गोपबालकनायक! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये॥ ८१-८२॥ मुनिवन्दित गोविन्द! रुक्मिणीवल्लभ! प्रभो! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ८३॥ गोपियोंद्वारा लाकर समर्पित किये गये कमलोंके मकरन्दमें आसक्त चित्तवाले श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ८४॥ लक्ष्मीके हृदयकमलके लिये लोलुप माधव! समस्त कामनाओंके दाता श्रीकृष्ण! मुझे मनोवाञ्छित पुत्र प्रदान कीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ८५॥ अपने सेवकोंके लिये मङ्गलदायक रमानाथ! वासुदेव! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ८६॥ कल्याणप्रद गोविन्द! मुनिवन्दित मुरशत्रु श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ८७॥ पुत्रदाता मुकुन्द! ईश्वर! रुक्मिणीवल्लभ प्रभो! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ८८॥ पुण्डरीकाक्ष! गोविन्द! वासुदेव! जगदीश्वर! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ८९॥ दयानिधे! वासुदेव! मुनिवन्दित मुकुन्द! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ९०॥ पुत्र और सम्पत्तिके दाता, पुत्रलाभदायक, देवपूजित गोविन्द श्रीकृष्णकी हम सदा वन्दना करते हैं॥ ९१॥

कारुण्यनिधये गोपीवल्लभाय मुरारये।
नमस्ते पुत्रलाभार्थं देहि मे तनयं विभो॥ ९२

नमस्तस्मै रमेशाय रुक्मिणीवल्लभाय ते।
देहि मे तनयं श्रीश गोपबालकनायक॥ ९३

नमस्ते वासुदेवाय नित्यश्रीकामुकाय च।
पुत्रदाय च सर्पेन्द्रशायिने रङ्गशायिने॥ ९४

रङ्गशायिन् रमानाथ मङ्गलप्रद माधव।
देहि मे तनयं श्रीश गोपबालकनायक॥ ९५

दासस्य मे सुतं देहि दीनमन्दार राघव।
सुतं देहि सुतं देहि पुत्रं देहि रमापते॥ ९६

यशोदातनयाभीष्टपुत्रदानरतः सदा।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ९७

मदिष्टदेव गोविन्द वासुदेव जनार्दन।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ९८

नीतिमान् धनवान् पुत्रो विद्यावांश्च प्रजायते।
भगवंस्त्वत्कृपायाश्च वासुदेवेन्द्रपूजित॥ ९९

यः पठेत् पुत्रशतकं सोऽपि सत्पुत्रवान् भवेत्।
श्रीवासुदेवकथितं स्तोत्ररत्नं सुखाय च॥ १००

जपकाले पठेन्नित्यं पुत्रलाभं धनं श्रियम्।
ऐश्वर्यं राजसम्मानं सद्यो याति न संशयः॥ १०१

प्रभो! आप करुणाके सागर, गोपियोंके प्राणवल्लभ और मुर नामक दैत्यके शत्रु हैं, पुत्रकी प्राप्तिके लिये आपको मेरा नमस्कार है, मुझे पुत्र प्रदान कीजिये॥ ९२॥ लक्ष्मीके स्वामी तथा रुक्मिणीके प्राणवल्लभ! आप भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। गोपबालकोंके नायक श्रीकान्त! मुझे पुत्र दीजिये॥ ९३॥ सदा ही श्रीजीकी कामना रखनेवाले आप वासुदेवको नमस्कार है। आप पुत्रदायक, नागराज शेषकी शय्यापर शयन करनेवाले तथा श्रीरङ्गक्षेत्रमें सोनेवाले हैं, आपको नमस्कार है॥ ९४॥ रङ्गशायी रमानाथ! मङ्गलदायक माधव! गोपबालकनायक श्रीपते! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये॥ ९५॥ दीनोंके लिये कल्पवृक्षस्वरूप रघुनन्दन! मुझ दासको पुत्र दीजिये। रमापते! पुत्र दीजिये! पुत्र दीजिये!! पुत्र दीजिये!!!॥ ९६॥ सदा मनोवाञ्छित पुत्र देनेमें तत्पर रहनेवाले यशोदानन्दन श्रीकृष्ण! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मुझे पुत्र प्रदान कीजिये॥ ९७॥ मेरे इष्टदेव गोविन्द! वासुदेव! जनार्दन! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ९८॥ भगवन्! इन्द्रपूजित वासुदेव! आपकी कृपासे नीतिज्ञ, धनवान् और विद्वान् पुत्र उत्पन्न होता है॥ ९९॥ जो श्रीवासुदेवकथित पुत्रशतकका पाठ करता है, वह भी उत्तम पुत्रसे सम्पन्न होता है। यह स्तोत्ररत्न सुखकी भी प्राप्ति करानेवाला है॥ १००॥ जो प्रतिदिन जपके समय इसका पाठ करता है, उसे तत्काल पुत्रलाभ होता है तथा वह शीघ्र ही धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य एवं राजसम्मान प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है॥ १०१॥

॥ इति संतानगोपालस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

श्रीविष्णुशतनामस्तोत्रम्

नारद उवाच

ॐ वासुदेवं हृषीकेशं वामनं जलशायिनम्।
जनार्दनं हरिं कृष्णं श्रीवत्सं गरुडध्वजम्॥ १

वाराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं नरकान्तकम्।
अव्यक्तं शाश्वतं विष्णुमनन्तमजमव्ययम्॥ २

नारायणं गदाध्यक्षं गोविन्दं कीर्तिभाजनम्।
गोवर्धनोद्धरं देवं भूधरं भुवनेश्वरम्॥ ३

वेत्तारं यज्ञपुरुषं यज्ञेशं यज्ञवाहकम्।
चक्रपाणिं गदापाणिं शङ्खपाणिं नरोत्तमम्॥ ४

वैकुण्ठं दुष्टदमनं भूगर्भं पीतवाससम्।
त्रिविक्रमं त्रिकालज्ञं त्रिमूर्तिं नन्दकेश्वरम्॥ ५

रामं रामं हयग्रीवं भीमं रौद्रं भवोद्भवम्।
श्रीपतिं श्रीधरं श्रीशं मङ्गलं मङ्गलायुधम्॥ ६

दामोदरं दमोपेतं केशवं केशिसूदनम्।
वरेण्यं वरदं विष्णुमानन्दं वसुदेवजम्॥ ७

हिरण्यरेतसं दीप्तं पुराणं पुरुषोत्तमम्।
सकलं निष्कलं शुद्धं निर्गुणं गुणशाश्वतम्॥ ८

हिरण्यतनुसंकाशं सूर्यायुतसमप्रभम्।
मेघश्यामं चतुर्बाहुं कुशलं कमलेक्षणम्॥ ९

ज्योतीरूपमरूपं च स्वरूपं रूपसंस्थितम्।
सर्वज्ञं सर्वरूपस्थं सर्वेशं सर्वतोमुखम्॥ १०

ज्ञानं कूटस्थमचलं ज्ञानदं परमं प्रभुम्।
योगीशं योगनिष्णातं योगिनं योगरूपिणम्॥ ११
ईश्वरं सर्वभूतानां वन्दे भूतमयं प्रभुम्।

नारदजी कहते हैं—१-ॐ (सच्चिदानन्दस्वरूप) वासुदेव, २-हृषीकेश,, ३-वामन, ४-जलशायी, ५-जनार्दन, ६-हरि, ७-कृष्ण, ८-श्रीवत्स, ९-गरुडध्वज, १०-वाराह, ११-पुण्डरीकाक्ष, १२-नृसिंह, १३-नरकान्तक, १४-अव्यक्त, १५-शाश्वत, १६-विष्णु, १७-अनन्त, १८-अज, १९-अव्यय, २०-नारायण, २१-गदाध्यक्ष, २२-गोविन्द, २३-कीर्तिभाजन, २४-गोवर्धनोद्धर, २५-देव, २६-भूधर, २७-भुवनेश्वर, २८-वेत्ता (ज्ञानी), २९-यज्ञपुरुष, ३०-यज्ञेश, ३१-यज्ञवाहक, ३२-चक्रपाणि, ३३-गदापाणि, ३४-शङ्खपाणि, ३५-नरोत्तम, ३६-वैकुण्ठ, ३७-दुष्टदमन, ३८-भूगर्भ, ३९-पीतवासा, ४०-त्रिविक्रम, ४१-त्रिकालज्ञ, ४२-त्रिमूर्ति, ४३-नन्दकेश्वर, ४४-राम (परशुराम), ४५-राम (रामचन्द्र), ४६-हयग्रीव, ४७-भीम, ४८-रौद्र, ४९-भवोद्भव, ५०-श्रीपति, ५१-श्रीधर, ५२-श्रीश, ५३-मङ्गल, ५४-मङ्गलायुध, ५५-दामोदर, ५६-दमोपेत, ५७-केशव, ५८-केशिसूदन, ५९-वरेण्य, ६०-वरद, ६१-विष्णु, ६२-आनन्द, ६३-वसुदेवज, ६४-हिरण्यरेता, ६५-दीप्त, ६६-पुराण, ६७-पुरुषोत्तम, ६८-सकल, ६९-निष्कल, ७०-शुद्ध, ७१-निर्गुण, ७२-गुणशाश्वत, ७३-हिरण्यतनुसंकाश, ७४-सूर्यायुतसमप्रभ, ७५-मेघश्याम, ७६-चतुर्बाहु, ७७-कुशल, ७८-कमलेक्षण, ७९-ज्योतीरूप, ८०-अरूप, ८१-स्वरूप, ८२-रूपसंस्थित, ८३-सर्वज्ञ, ८४-सर्वरूपस्थ, ८५-सर्वेश, ८६-सर्वतोमुख, ८७-ज्ञान, ८८-कूटस्थ, ८९-अचल, ९०-ज्ञानद, ९१-परम, ९२-प्रभु, ९३-योगीश, ९४-योगनिष्णात, ९५-योगी, ९६-योगरूपी, ९७-ईश्वर, ९८-सर्वभूतेश्वर, ९९-भूतमय और १००-प्रभुकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १—११ $\frac{१}{२}$॥

इति नामशतं दिव्यं वैष्णवं खलु पापहम्॥ १२
व्यासेन कथितं पूर्वं सर्वपापप्रणाशनम्।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स भवेद् वैष्णवो नरः॥ १३
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्।
चान्द्रायणसहस्राणि कन्यादानशतानि च॥ १४
गवां लक्षसहस्राणि मुक्तिभागी भवेन्नरः।
अश्वमेधायुतं पुण्यं फलं प्राप्नोति मानवः॥ १५

भगवान् विष्णुके ये सौ दिव्य नाम निश्चय ही पापोंका नाश करनेवाले हैं। व्यासजीने सर्वप्रथम इनका उपदेश दिया है। इसके पाठसे समस्त पापोंका नाश हो जाता है। जो प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करेगा, वह मनुष्य भगवान् विष्णुका भक्त हो जायगा। उसके हृदयके सारे पाप धुल जायँगे और वह शुद्धचित्त होकर भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेगा। इसके पाठसे सहस्रों चान्द्रायणव्रत, सैकड़ों कन्यादानजनित पुण्य तथा सहस्रों लक्ष गोदानोंका फल पाकर मनुष्य मोक्षका भागी होता है; उसे दस हजार अश्वमेध-यज्ञोंका पुण्य फल प्राप्त होता है॥ १२—१५॥

॥ इति श्रीविष्णुशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

वन्ध्यानां पुत्रोत्पत्त्यर्थं संतानगोपालमन्त्रविधिः

अथ वन्ध्यानां पुत्रोत्पत्त्यर्थं संतानगोपाल-विधानम्॥ मन्त्रसारे—आदौ शरीरशुद्ध्यर्थं कर्माधिकारार्थं जन्मान्तरीयसंततिप्रतिबन्धक-दुरदृष्टजनितदोषपरिहारार्थं कर्माधिकारसिद्ध्यर्थं द्वादशाब्दषडब्दत्र्यब्दसार्द्धाब्दादीनि यथा-शक्त्यनुसारेण प्रायश्चित्तानि दद्यात्—

''प्रायः पापं विजानीयाच्चित्तं तस्य विशोधनम्।
कृत्वा शुद्धिं तु देहस्य ततः कर्माणि कारयेत्॥''

—इति नियमात्।

अर्धादिप्रायश्चित्तलक्षणं तु महार्णवादावुक्तम् ''त्रिंशद्भिश्च तथा गोभिरर्धं तु मुनिभिः स्मृतम्'' इत्यादिना द्रष्टव्यम्। उक्तविधानेन प्रायश्चित्ते कृते वन्ध्यात्वनिरासार्थं महार्णवोक्तं सुवर्ण-धेनुदानं तथा षोडशशूर्पसौभाग्यद्रव्यं वस्त्रालंकार-सहितयज्ञोपवीतदानं च विधेयम्। उक्तं च—

''वन्ध्यात्वस्य निरासार्थं धेनुं दद्याच्च हेमजाम्।
तथा यज्ञोपवीतं तु दद्याद्धेममयं शुभम्।
षोडशानि च शूर्पाणि फलयुक्तानि दापयेत्॥
एवं कृते विधानेन वन्ध्यत्वात् प्रतिमुच्यते।
सत्पुत्रं लभते नूनमेतत् कर्म प्रयोजयेत्॥''

—इति नियमात्।

अथ प्रयोगः—आचार्यहस्तेन देयमिति नियमात् तस्मादादौ आचार्यवरणं कार्यं ''सर्वमाचार्यः प्रतिजानीते'' इति नियमात्। तत्र धेनुमानमाह सूर्यार्णवे—

''धेनुं निष्कचतुष्कस्य तदर्द्धं स्यात्तदर्द्धकम्।
तदर्द्धस्य च वा तत्र चतुर्थांशेन वत्सकम्॥''

—इति हेमाद्रिवचनानुसारेण विदध्यात्। एवं यज्ञोपवीतमपि देयम्। सोमो धेनुमिति मन्त्रेण होमाचरणं कुर्यात्। तद्विशेषविधानं महार्णवादौ द्रष्टव्यम्। एवं पूर्वोक्तमादौ निर्वर्त्य प्रायश्चित्तोत्तरं पूर्वाणि दशस्नानानि कृत्वा तत्प्रोक्तानि गोदानानि दत्त्वा पञ्चगव्यं प्राश्य तद्दिने उपोषणं कार्यम्। अशक्तश्चेद्धविष्यान्नं भुञ्जीत। ततः सुदिने चन्द्रतारानुकूल्ये पुरुषनक्षत्रे संतानगोपालविधानं कार्यम्।

अथ विधानम्। पुरश्चरणस्य लक्षसंख्या नियमः, तत्रापि कलौ चतुर्गुणं कार्यं तदुक्तम् ''कलौ चतुर्गुणः प्रोक्तः पुरश्चरणके विधिः॥'' इति वचनात्। तत्रादौ ऋत्विग्वरणं तत्र मूलमन्त्रजपार्थमष्टौ ब्राह्मणान् वृणुयाच्चतुरो वा। तत्र सर्वकर्माधिकारार्थं शान्तं तद्विधिज्ञमाचार्यं वृणुयात्। ततस्तदङ्गत्वेन चतुर्विधवन्ध्यात्वदोष-

परिहारार्थं च लक्षसंख्याकपार्थिवलिङ्गपूजनं च शतचण्डीपाठं मन्युसूक्तजपं नवग्रहजपं रुद्राध्यायजपं हरिवंशश्रवणं च कुर्यात्। तत्र ऋत्विजः स्वशक्त्यनुसारेण जपं कुर्युरेवं मन्युसूक्तजपं लक्षसंख्याकं तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा कुर्यात्। नित्यं तद्दशभिर्मन्त्रितदशघटैर्जलपूर्णैर्दम्पती स्नायाताम्।

'देवकीसुत गोविन्द' अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। 'वासुदेव जगत्पते' तर्जनीभ्यां नमः। 'देहि मे तनयं कृष्ण' मध्यमाभ्यां नमः। 'त्वामहं शरणं गतः' अनामिकाभ्यां नमः। 'ॐ क्लीं देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते' कनिष्ठिकाभ्यां नमः। 'देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः' करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। एवं हृदयादि न्यासः। एवं न्यासं विधाय मूलेन त्रिव्यापकं कुर्यात्।

अथ ध्यानम्—

शान्तं सम्मुखसन्निषण्णममलं रक्ताम्बुजे बालकं माणिक्योज्ज्वलमालभूषणलसत्संतप्तहेमद्युतिम्।
प्रेम्णालिंग्य मुहुर्मुहुः सुखवशात् सम्भावितं स्वात्मना ध्यायेत् पुत्रतया पुराणपुरुषं पुत्राभिलाषी पुमान्॥

—एवं ध्यात्वा यथोक्तजपं कुर्यात्।

जपान्ते दशांशहोमं कुर्यात्। तर्पणं ब्राह्मणभोजनं च सम्पाद्य दानान्तं कृत्वा कुण्डं पूजयित्वा पुनर्मण्डलदेवतानि सम्पूज्य (तत्र योनिकुण्डं मुख्यम्) एवं कुण्डमण्डपादि निर्वर्त्य गणेशादिलोकपालादिवास्तुयोगिनीनवग्रहमातृकाणां स्थापनं मूलदेवतास्थापनं मण्डलदेवतास्थापनं तोरणद्वारध्वजपताकानां स्थापनं कृत्वा तत्तन्मन्त्रैस्तत्तत्स्थाने सम्पूज्य कुण्डसंस्कारं कृत्वा अग्निं प्रतिष्ठाप्य दशांशेन हुत्वा तर्पणं ब्राह्मणभोजनं मार्जनं मण्डलदेवतास्थापनं लोकपालानां नवग्रहादिमण्डलचतुष्टयदेवतानां च यथाशक्त्या हेमप्रतिमाः कृत्वा मूलदेवताप्रतिमां च निष्काष्टकेन वा निष्कत्रयेण सम्पाद्य अग्न्युत्तारणं कृत्वा अधिवासनादि विसर्जनान्तं पूजयित्वा आचार्याय निवेद्य दक्षिणां दद्यात्।

शक्तश्चेत् कृष्णविग्रहः कर्तव्यः। पद्मोपरि निविष्टो बालकरूपेण सुवर्णनिष्काष्टकस्य सुवर्णादिनिर्मितकलशे देवतानां प्रतिकलशं स्थापयित्वा एकादशकलशांस्तदुपरि आच्छादनपात्राणि वस्त्रफलसंयुतानि संस्थाप्य कलशपूजाविधानं कृत्वा मही द्यौरिति भूमिं प्रार्थ्य तण्डुलादिधान्यराशिं कृत्वा कलशं संस्थाप्य आकलशेष्विति इमं मे गङ्गे इत्यादिना उदकं पूरयित्वा तन्मध्ये पञ्चनद्येत्यादि तीर्थोदकं दत्त्वा पञ्चरत्नानि निक्षिप्य पञ्चामृतं पञ्चगव्यं पञ्चपल्लवान् पञ्चत्वचः सप्तमृत्तिका फलानि हिरण्यं च तत्तन्मन्त्रैर्निधायाच्छाद्यासनं दत्त्वा भूमौ स्थापयेत्।

तासां प्रतिमानामग्न्युत्तारणं विधाय प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् तत्तन्नाम्ना पृथक्पृथक्प्राणान् संस्थाप्य इष्टदेवैः सह स्नानं कारयित्वा ततः पुरुषसूक्तादिनाम्नाऽऽवाहनाद्युपचारैः सम्पूज्य—

आगच्छ देव भगवञ्छ्रीगोपाल नमोऽस्तु ते।
मम संतानसिद्ध्यर्थं सान्निध्यं कुरु सर्वदा॥

—एवमावाहनादिषोडशोपचारैः सम्पूज्य तिलसर्पिः फलपुष्पनैवेद्यान्तं विधाय एवं नियमो द्रष्टव्यः। तिलघृतपायसेन हुत्वा देवस्य शयनार्थमान्दोलकं चामरं छत्रमादर्शं पादुकान्तं षोडशोपचारान्तपूजां विधाय पूर्णाहुतिं कृत्वा तर्पणमार्जनादि विधाय श्रेयःसम्पादनं सम्पाद्य आचार्यादिऋत्विग्भ्यो वस्त्रालङ्कारादिना संतोष्य आचार्याय मूर्तिदानं कृत्वा जापकेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा दानपत्रे ब्राह्मणाय दक्षिणा देया—

देवतानां व्रतैर्युक्तं संतुष्टहृदयान्वितम्।
वेदाध्ययनसंयुक्तं सपत्नीकं सपुत्रकम्॥
सुगन्धवस्त्रमालाद्यैः कुण्डलैरङ्गुलीयकैः।
तस्मिन् संतानगोपालदानं भक्त्या समाचरेत्॥

अथ दानमन्त्रः—

करुणाकर देवेश नवनीताशन प्रिय।
देहि मे पुत्रसंतानं कुलवृद्धिकरं मम॥

—इति दत्त्वा सुवर्णदक्षिणां दद्यात्। आचार्याय द्विगुणां गोमिथुनं दत्त्वा संतोष्य ब्राह्मणान् भोजयित्वा आशिषो गृहीत्वा यथासुखं विहरेत्। एवं कृते पुत्रवान् भवति, गोपालः स्वयमेवावतरिष्यति।

अथ मन्त्रचन्द्रिकावचनम्। होमस्तु जीवपुत्रवृक्षस्य समिद्धिर्वा फलैः कार्यः। तदभावे तिलसर्पिषा पायसेन वा कार्यः। अत्र पार्थिवपूजनं तु एकोत्तरवृद्धिलक्षं पृथक्पृथक्कार्यं तदभावे लक्षादिविधानैः सहैकतन्त्रेण वा कार्यम्। तदुक्तं लिङ्गार्चनविधाने एकोत्तरविधाने तु पृथक्पृथक्पूजनं च कार्यं लक्षलिङ्गप्रकारे तु सहैकतन्त्रेण कारयेत्। लिङ्गविधाने होमे तु दशांशनियमो नास्ति किंतु यत्संख्याकानि लिङ्गानि पूजयेत्तावदेव तु होमयेत्॥ तदुक्तं मन्त्रमहोदधौ—'यत्संख्याके यजेल्लिङ्गं तत्संख्यं होममाचरेत्' इति लिङ्गार्चनदीपिकोक्तं कुर्यात्।

आचार्यादिवरणप्रकारः—देशकालौ संकीर्त्य अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहममुकशर्माहमाचार्यत्वेन त्वामहं वृणे। तत आचार्यः—अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहममुकशर्माहं वृतोऽस्मि करिष्यामीति प्रतिवचनम्। तं वासोऽलङ्कारादिभिः पूजयेत्। एवमृत्विजोऽपि पूजयेत्।

अथ जपविधिः॥ स्नात्वाऽऽचम्य प्राणानायम्य देशकालौ सङ्कीर्त्य अमुकगोत्रस्य अमुकशर्मणो यजमानस्य धर्मपत्न्यां चिरञ्जीवशुभसंतानप्राप्त्यर्थं लक्षादिसंख्यान्तर्गतयथोक्तसंख्यां प्रारभ्यैतत्संख्यापर्यन्तं संतानगोपालमन्त्रस्य जपमहं करिष्ये॥ इति सङ्कल्प्य आसने उपविश्य भूशुद्धिं भूतशुद्धिं प्राणप्रतिष्ठामन्तर्मातृकाबहिर्मातृकान्यासांश्च कृत्वा तदुपरि षडङ्गानि कुर्यात्। यथा ॐ क्लां हृदि। ॐक्लीं शिरसि। ॐ क्लूं शिखायै। ॐ क्लैं कवचम्। ॐ क्लौं नेत्रम्। ॐ क्लः अस्त्रम्। एवं करन्यासादि विधाय। ॐ भूर्भुवः स्वरोमिति दिग्बन्धं कृत्वा मूलमन्त्रन्यासं च कुर्यात्। यथा क्लीं देवकीसुतसंतानगोपालस्यायुधध्यानम्—

शङ्खचक्रधरं देवं श्यामवर्णं चतुर्भुजम्।
सर्वाभरणसंदीप्तं पीतवासःसमन्वितम्॥
मयूरपिच्छसंयुक्तं विष्णुतेजोपबृंहितम्।
समर्पयन्तं विप्राय नष्टानानीय बालकान्॥
करुणामृतसम्पूर्णं चेष्टैकनिलयं त्वजम्॥

चतुर्भुजमित्यनेन गदाम्बुजे सूचिते। वामाद्यूर्ध्वयोराद्ये तदाद्यन्ययोरन्ये इत्यायुधध्यानम्॥

स्त्रीभिस्तु—स्वान्ते सम्मुखसन्निविष्टममले रक्ताम्बुजे बालकं माणिक्योज्ज्वलबालभूषणगणं संतप्तहेमद्युतिम्। प्रेम्णाऽऽलिंग्य मुहुर्मुहुः सुखवशात् संलालितं स्वात्मना पुत्रत्वेन विभावयेन्मुररिपुं पुत्रार्थिनी कामिनी॥ इति ध्यात्वा पूजादि विधाय मन्त्रो जप्यः।

॥ इति संतानगोपालमन्त्रानुष्ठानविधानपद्धतिः॥

॥ शुभम्भवतु ॥